



परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

अष्टपाहुड़ प्रवचन

भाग-५

परम पूज्य श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित
परमागम श्री अष्टपाहुड़ (भावपाहुड़, गाथा ९३-१६५) पर
परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाहिक शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णाकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

प्रथम संस्करण :

ISBN No. :

न्यौछावर राशि : 20 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250, फोन : 02846-244334
2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)
अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.)
4. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,
ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,
कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. श्री परमागम प्रकाशन समिति
श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट
योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीर परमात्मा का वर्तमान शासन प्रवर्त रहा है। आपश्री की दिव्यध्वनि द्वारा प्रकाशित मोक्षमार्ग, परम्परा हुए अनेक आचार्य भगवन्तों द्वारा आज भी विद्यमान है। श्री गौतम गणधर के बाद अनेक आचार्य हुए, उनमें श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव का स्थान श्री महावीरस्वामी, श्री गौतम गणधर के पश्चात् तीसरे स्थान पर आता है, यह जगत विदित है।

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य विक्रम संवत् ४९ के लगभग हुए हैं। आपश्री ने स्वयं की ऋद्धि द्वारा वर्तमान विदेहक्षेत्र में प्रत्यक्ष विराजमान श्री सीमन्धर भगवान के समवसरण में आठ दिन रहकर दिव्यदेशना ग्रहण की है, वहाँ से आकर उन्होंने अनेक महान परमागमों की रचना की। उनमें अष्टप्राभृत ग्रन्थ का भी समावेश होता है। आचार्य भगवन्त की पवित्र परिणति के दर्शन उनकी प्रत्येक कृतियों में होते हैं। भव्य जीवों के प्रति निष्कारण करुणा करके उन्होंने मोक्षमार्ग का अन्तर-बाह्यस्वरूप स्पष्ट किया है। आचार्य भगवन्त ने मोक्षमार्ग को टिका रखा है, यह कथन वस्तुतः सत्य प्रतीत होता है।

चतुर्थ गुणस्थान से चौदह गुणस्थानपर्यन्त अन्तरंग मोक्षमार्ग के साथ भूमिकानुसार वर्तते विकल्प की मर्यादा कैसी और कितनी होती है वह आपश्री ने स्पष्ट किया है। इस प्रकार निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप स्पष्ट करके अनेक प्रकार के विपरीत अभिप्रायों में से मुमुक्षु जीवों को उभारा है। अष्टप्राभृत ग्रन्थ में मुख्यरूप से निर्ग्रन्थ मुनिदशा कैसी होती है और साथ में कितनी मर्यादा में उस गुणस्थान में विकल्प की स्थिति होती है, यह स्पष्ट किया है।

वर्तमान दिग्म्बर साहित्य तो था ही परन्तु साहित्य में निहित मोक्षमार्ग का स्वरूप यदि इस काल में किसी दिव्यशक्ति धारक महापुरुष ने प्रकाशित किया हो तो वे हैं परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी। पूज्य गुरुदेवश्री ने शास्त्रों में निहित मोक्षमार्ग को स्वयं की दिव्य श्रुतलब्धि द्वारा समाज में निर्भीकता से उद्घाटित किया है। शास्त्र में मोक्षमार्ग का रहस्य तो प्ररूपित था ही परन्तु इस काल के अचम्भा समान पूज्य गुरुदेवश्री की अतिशय भगवती प्रज्ञा ने उस रहस्य को स्पष्ट किया है। पूज्य गुरुदेवश्री का असीम उपकार आज तो गाया ही जाता है किन्तु पंचम काल के अन्त तक गाया जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा अनेक परमागमों पर विस्तृत प्रवचन हुए हैं। उनमें अष्टपाहुड़ का भी समावेश होता है। प्रस्तुत प्रवचन शब्दशः प्रकाशित हों, ऐसी भावना मुमुक्षु समाज में से व्यक्त होने से श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विले पार्ला, मुम्बई द्वारा इन प्रवचनों का अक्षरशः प्रकाशित करना सहर्ष स्वीकार किया गया तदनुसार ये प्रवचन लगभग सात भाग में प्रकाशित होंगे। इस पाँचवें भाग में **भावपाहुड़** की 93 से 165 गाथाओं के प्रवचनों का समावेश है।

भावपाहुड़ में, अनादिकाल से परिभ्रमण करता जीव, जो अनन्त दुःख सहन करता है, उसका हृदयस्पर्शी वर्णन इस प्राभृत में किया गया है। तथा इन दुःखों से छूटने के लिये शुद्धभावरूप परिणमन करके भावलिंगी मुनिदशा प्रगट करने के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है, इसका स्पष्टरूप से वर्णन किया गया है। परिभ्रमण के दुःखों से छूटने के लिये शुद्धभाव से शून्य द्रव्यमुनिलिंग अकार्यकारी है, ऐसा स्पष्टरूप से दर्शाया है। यह प्राभृत अति वैराग्यप्रेरक और भाववाही है। तथा शुद्धभाव प्रगट करनेवाले सम्यक् पुरुषार्थ के प्रति जीव को जागृत करनेवाला है।

उपरोक्त विषयों की सम्पूर्ण छनावट पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक पहलुओं से प्रस्तुत प्रवचनों में की है। आचार्य भगवान के हृदय में प्रविष्ट होकर उनके भावों को खोलने की अलौकिक सामर्थ्य के दर्शन पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों में होते हैं। सम्यक्त्वसहित चारित्र का स्वरूप कैसा होता है, इसका विशद वर्णन प्रस्तुत प्रवचनों में हुआ है।

इन प्रवचनों को सी.डी. में से सुनकर गुजराती भाषा में शब्दशः तैयार करने का कार्य नीलेशभाई जैन, भावनगर द्वारा किया गया है, तत्पश्चात् इन प्रवचनों को श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा जाँचा गया है। बहुत प्रवचन बैटरीवाले होने से जहाँ आवाज बराबर सुनायी नहीं दी, वहाँ.... करके छोड़ दिया गया है। वाक्य रचना पूर्ण करने के लिये कोष्ठक का भी प्रयोग किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज में भी इन प्रवचनों का व्यापक प्रचार-प्रसार हो इस भावना से इन प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) ने किया है। तदर्थ संस्था सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करती है।

ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रवचनों को पुस्तकारूढ़ करने में जागृतिपूर्वक सावधानी रखी गयी तथापि कहीं क्षति रह गयी हो तो पाठकवर्ग से प्रार्थना है कि वे हमें अवश्य सूचित करें। जिनवाणी का कार्य अति गम्भीर है, इसलिए कहीं प्रमादवश क्षति रह गयी हो तो देव-गुरु-शास्त्र की विनम्रतापूर्वक क्षमायाचना करते हैं। पूज्य गुरुदेवश्री के चरणों में तथा प्रशममूर्ति भगवती माता के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन समर्पित करते हुए भावना भाते हैं कि आपश्री की दिव्यदेशना जयवन्त वर्तो.. जयवन्त वर्तो..

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ www.vitragvani.com पर रखा गया है।

अन्ततः प्रस्तुत प्रवचनों के स्वाध्याय द्वारा मुमुक्षु जीव आत्महित की साधना करें इसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

एवं

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृतने पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोडे परिणति।

(शार्दूलविक्रीडित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।



श्री सद्गुरुदेव-स्तुति



(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!



अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी (संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रातःकाल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव ।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको निःशंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अतः अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल 'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुर्ब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यो के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वी सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वी सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वी सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्णपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :-

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणामन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!



अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनांक	गाथा	पृष्ठ नम्बर
१२९	०१-११-१९७०	९३ - ९४	००१
१३०-ए	२०-०२-१९७४	९५ - ९६	०१७
१३०-बी	२१-०२-१९७४	९६ - ९७	०३४
१३०-सी	२२-०२-१९७४	९७	०४९
१३१	०४-११-१९७०	९८ से १०१	०६६
१५७	२६-०५-१९७४	१०२ से १०५	०८६
१३३	०७-११-१९७०	१०६ - १०७	१०६
१३४	०८-११-१९७०	१०८ - १०९	१२३
१३५	०९-११-१९७०	११० से ११२	१३९
१३६	१०-११-१९७०	११२ से ११४	१५८
१३७	११-११-१९७०	११४	१७८
१३८	१२-११-१९७०	११४	१९२
१३९	१४-११-१९७०	११४ से ११७	२०८
१४०	१५-११-१९७०	११७ - ११८	२२८
१४१	१६-११-१९७०	११८ - ११९	२४५
१४१	१६-११-१९७०	११८ - ११९	२४५
१४२	१७-११-१९७०	११९ - १२०	२६४
१४३	१८-११-१९७०	१२० से १२२	२८४
१४४	१९-११-१९७०	१२२ से १२४	३०३
१४५	१२-१२-१९७०	११४ - १२५	३२०
१४६	१३-१२-१९७०	१२५ - १२६	३३७
१४७	१४-१२-१९७०	१२७ से १३०	३५४
१४८	१५-१२-१९७०	१२१ से १३३	३७३
१४९	१६-१२-१९७०	१३३ से १३७	३९२
१५०	१७-१२-१९७०	१३७ से १४१	४१३

१५१	१८-१२-१९७०	१४२ से १४७	४३२
१५२	१९-१२-१९७०	१४७ - १४८	४५३
१५३	२०-१२-१९७०	१४८	४७१
१५४	२१-१२-१९७०	१४८ - १४९	४८७
१५५	२३-१२-१९७०	१४९ से १५१	५०५
१५६	२४-१२-१९७०	१५१ से १५३	५१९
१५७	२५-१२-१९७०	१५३ से १५५	५४१
१५८	२६-१२-१९७०	१५५ से १५७	५५९
१५९	२७-१२-१९७०	१५८ से १६०	५७९
१६०	२८-१२-१९७०	१६० से १६२	५९६
१६१	२९-१२-१९७०	१६२ - १६३	६१६
१६२	३१-१२-१९७०	१६३ से १६५	६३७
१६३	०१-०१-१९७१	१६५	६५९



नमः श्री सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ प्रवचन

(श्रीमद् भगवत कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री अष्टपाहुड़ ग्रन्थ पर
अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन)

(भाग - ५)

भावपाहुड़

गाथा-९३

ऐसा करने से क्या होता है? सो कहते हैं -

१पीऊण णाणसलिलं णिम्महतिसडाहसोसउम्मुक्का ।

होंति शिवालयवासी तिहुवणचूडामणी सिद्धा ॥९३॥

१पीत्वा ज्ञानसलिलं निर्मथ्यतृषादाहशोषोन्मुक्ता ।

भवन्ति शिवालयवासिनः त्रिभुवनचूडामणयः सिद्धाः ॥९३॥

तू तीव्र तृष्णा दाह-शोषक ज्ञान-जल पी सतत ही।

इससे शिवालय-वास सिद्धि हो त्रिजग चूडामणी ॥९३॥

अर्थ - पूर्वोक्त प्रकार भाव शुद्ध करने पर ज्ञानरूप जल को पीकर सिद्ध होते हैं।
कैसे हैं सिद्ध। निर्मथ्य अर्थात् मथा न जावे ऐसे तृषा दाह शोष से रहित हैं, इस प्रकार
सिद्ध होते हैं, ज्ञानरूप जल पीने का यह फल है। सिद्धशिवालय अर्थात् मुक्तिरूप महल

में रहनेवाले हैं, लोक के शिखर पर जिनका वास है। इसीलिए कैसे हैं? तीन भुवन के चूड़ामणि हैं, मुकुटमणि हैं तथा तीन भुवन में ऐसा सुख नहीं है, ऐसे परमानन्द अविनाशी सुख को वे भोगते हैं। इस प्रकार वे तीन भुवन के मुकुटमणि हैं।

भावार्थ - शुद्ध भाव करके ज्ञानरूप जल पीने पर तृष्णा दाह शोष मिट जाता है, इसलिए ऐसे कहा है कि परमानन्दरूप सिद्ध होते हैं॥९३॥

प्रवचन-१२९, गाथा-९३-९४, सोमवार, कार्तिक शुक्ल ०३, दिनांक ०२-११-१९७०

९३, भावपाहुड़ की ९३ (गाथा)। कहते हैं कि आत्मा वह चीज़-वस्तु क्या? उसमें ज्ञान और आनन्दरूपी जल भरा है। उसे भावश्रुतज्ञान द्वारा अनुभव कर। जो भावश्रुत ... है, उसके बिना दूसरी कोई चीज़ नहीं। उसे भावश्रुतज्ञान द्वारा अर्थात् आत्मा के अनुभव द्वारा (अनुभव कर)। राग और पुण्य-पाप के जहर को किया, वह तो अनन्त काल से कर रहा है। अब ज्ञानजल के अमृत को पी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो, ९३।

पीऊण णाणसलिलं णिम्महत्तिसडाहसोसउम्मुक्का।

होंति सिवालयवासी तिहुवणचूडामणी सिद्धा॥९३॥

अर्थ - पूर्वोक्त प्रकार भाव शुद्ध करने पर... अर्थात्? शुभ-अशुभराग से रहित आत्मतत्त्व जो शुद्ध आनन्द का धाम है, उसका अनुभव कर। शुद्ध करने पर... उसकी शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान प्रगट कर, जो अनन्त काल से प्रगट नहीं किया। भाव शुद्ध करने पर... पुण्य-पाप के भाव तो अशुद्ध हैं। उनका—जहर का अनुभव तो अनादि से अज्ञानी को है। अब कहते हैं कि इस पुण्य-पाप के भाव का—अशुद्धपने का मलिन अनुभव, उसको छोड़कर शुद्धभाव जो आत्मा पवित्र है, उसका ज्ञान करके, श्रद्धा करके भाव की शुद्धता प्रगट कर। और ज्ञानरूप जल को पीकर... भगवान चैतन्यसागर है, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम आत्मा, उसके सन्मुख देखकर, उसकी दृष्टि करके, निर्मल वीतरागी ज्ञान प्रगट हो, वह धर्म है। ऐसे निर्विकल्प रस को पी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

शुद्ध करने पर ज्ञानरूप जल को पीकर... राग और पुण्य के भाव को तो तूने

अनन्त काल पीया। शरीर, वाणी, मन, पैसा का तो तूने कुछ पीया नहीं। वह तो परवस्तु है। उसका—जड़ का अनुभव इसे नहीं होता। इसके स्वभाव से विरुद्ध भाव, शुभ और अशुभभाव जो अशुद्धभाव, उन्हें इसने वेदन किया है, अनुभव किया है, वह जहर का प्याला पीया है। बलुभाई! यह पैसेवाले को कहते हैं, शुभ-अशुभ परिणाम करे, वह जहर का प्याला पीता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : माने, वह तो पागल बालक... यह तो कहा न। ज्येष्ठ महीने में बालक हो और अधिक दूध पीया हो। दूध अधिक पीवे तो दस्त हो जाए। उसकी माँ बाहर गयी हो, पश्चात् उसमें हाथ डालकर चाटे। इसलिए कहीं वह वस्तु हो जाए? वह पतली दस्त चाटे, इसलिए वह हलुवा हो जाए? समझ में आया? ज्येष्ठ महीने में धूप—गर्मी होती है न? लड़के को उसकी माँ ने अधिक दूध पिलाया हो तो उसे... दस्त अधिक हो जाए और ठण्डा हो। ... हाथ में लेकर चाटे। हलुवा मानकर चाटे तो क्या हलुवा हो जाए? इसी प्रकार अनादि का इसे पुण्य और पाप का भाव, यह भावशुद्ध की व्याख्या है न? शुद्धभाव, वह आत्मा की चीज़ है। क्योंकि स्वयं शुद्ध आनन्द का, शान्ति का सागर है। उसके सन्मुख की श्रद्धा-ज्ञान को प्रगट करके शुद्धभाव द्वारा... ज्ञान अर्थात् रागरहित के स्वभाव का अनुभव, उसको पी, कि जिससे तेरी अनादि की तृषा छूट जाए। आहाहा! कहो, समझ में आया?

भाव शुद्ध करने पर... भाव बिना कुछ होगा? कहा था न? भाई ने रात्रि में कहा था। हळवेक देकर। क्या? यह पैसे की बात चलती थी और भाई आये। मलूकचन्दभाई। ऐसा कि भाव की बात है न इसलिए भाव होते हैं। ऐसे यह भाव शुद्ध है। आहाहा!

मुमुक्षु : ... पर की जरूरत नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे किसी चीज़ की जरूरत नहीं पड़ती। और पुण्य-पाप के विकल्पों का भी जहाँ अभाव होकर स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान को अनुभव करे, वह ज्ञान का पीना है। ज्ञान अर्थात्? सम्यक् चैतन्य वस्तु की श्रद्धा, वह भी ज्ञान का भाग। अर्थात् राग का भाग नहीं, ऐसा। समझ में आया? आत्मा चैतन्यवस्तु, उसकी श्रद्धा—सन्मुख

की निर्विकल्प श्रद्धा, उसके सन्मुख का स्वसंवेदन ज्ञान और उसमें रमणता अर्थात् तो ज्ञानभाग है। ज्ञानभाग अर्थात्? उसमें राग का भाग नहीं। समझ में आया? ऐसी गजब बातें।

ज्ञानरूप जल को पीकर... ज्ञान आनन्द का सरोबर, आनन्द का सागर तू अन्दर है। यह आत्मा आनन्द का सागर, वह आत्मा। पुण्य-पाप के भाव, वह आत्मा नहीं; वे तो अनात्मा हैं। और शरीर, वाणी, मन तो स्पष्ट अनात्मा है। कहते हैं, अनन्त काल से इसने चैतन्य के अमृतरस के प्याला पीये नहीं। उसके अभाव में शुभ-अशुभभाव के मलिन परिणाम के जहर के प्याले पीये, इसलिए दुःखी वर्तमान और उसके फल में चार गति में भटकने का इसे दुःख है। समझ में आया? आये हैं या नहीं? कहाँ बैठे हैं? जयन्तीभाई आये हैं, वे पीछे बैठे हैं। समझ में आया यह? लो, यह मार्ग।

परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव सर्वज्ञ भगवान इन्द्रों और गणधरों की सभा के बीच यह परमात्मा कहते थे। आहाहा! भाई! तूने आत्मा के आनन्द और ज्ञान के जल के अभाव में तेरा विश्वास पुण्य और पाप में अनादि से गया। उसके विश्वास में चढ़ा। अपने आनन्द और ज्ञान-भान के विश्वास से गिरा। समझ में आया? कहो, हसुभाई! यह व्यापार और धन्धे के भाव हैं, वे जहर के प्याले हैं, ऐसा कहते हैं। यह तो ठीक, परन्तु शुभभाव भी जहर का प्याला है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा!

आत्मा एक शुद्ध स्वरूप चिदानन्द प्रभु, उसे ज्ञानरूपी जल को पी, भाई! तेरी विषय अभिलाषा की तृषा तुझे शरीर का आताप—दाह और शरीर का रस, वह मिट जाएगा। और तुझे आत्मा की शान्ति और सन्तोष और उसकी शीतलता तुझे उसमें शान्तरस का बढ़ना प्रगट होगा। आहाहा! समझ में आया? अब इसमें अता-पता हाथ आवे नहीं, क्या करना इसमें? परमात्मा यह मार्ग कहते हैं। पहले श्रद्धा में तो ले कि यह आत्मा आनन्द और ज्ञान का समुद्र है। वहाँ डुबकी लगा, ऐसा कहते हैं। पुण्य-पाप के विकल्प, विकार, उसमें तो तू छेदा गया है, भेदा गया है, वेदा गया है। चन्दुभाई! आहाहा! गजब, गाथा बहुत सरस है।

‘पीऊण गाणसलिलं’ नीचे ‘पाऊण’ शब्द है और कितनी ही जगह ‘पीऊण’ भी है। ‘पीऊण’ पी। भगवान अनाकुल आनन्द... प्रकाशदासजी! ‘प्यालो मने पायो रे।

रे मने... प्यालो मने। पहेलो पयालो प्याले आत्मा अमृत... ' यह आत्मा अमृत के कुण्ड में पड़ा है, जहाँ अन्दर। आहाहा! क्या कहते हैं यह? अरे! अनादि के जहर पुण्य और पाप के भाव। चाहे तो महाव्रत के विकल्प हों, वे भी जहर हैं। ऐसी बात सुन नहीं सकता। आहाहा! मोक्ष अधिकार में समयसार में वर्णन किया है। प्रतिक्रमण आदि, वन्दन व्यवहारादि विकल्प है, वह तो जहर है। जहर का घड़ा है। उसमें जहर टपकेगा। आहाहा! ...सुना न हो। सत्य को सुना नहीं। सत्य, सत्य को क्या घूँटते हैं, इसकी इसे खबर नहीं। सत् सत्स्वरूप भगवान साहेबो, चिदानन्द का नाथ अमृत का सागर स्वयं है। समझ में आया? इसे इसकी खबर नहीं, इसलिए इसे तो यह मानो पुण्यभाव हुआ, इसलिए मानो बहुत हो गया, धर्म हो गया। समझ में आया? गिरधरभाई! आहाहा! उसमें यह कुछ बाहर की धूल मिले, पाँच, पचास लाख, करोड़-दो करोड़, वहाँ हो गया-सुखी हैं। जहर को पीकर सुखी हैं! आहाहा! समझ में आया?

वह लड़का मर गया न अस्पताल में? बारह वर्ष का। उसे साँप डस गया। नागिन थी। वे कहे कि तू हाथ डाल, वह कहे, तू हाथ डाल। ... हाथ डाला वहाँ नागिन अन्दर थी। डंक मारा। बाहर हाथ निकालकर खून निकला। बूँद। ... धनतेरस का दिन। फिर अब हाथ डाले ... घुसा। पश्चात् बुखार चढ़ा। वह कहे तू डाल, वह कहे तू डाल। उसमें फिर डंक मारा। अन्दर खून निकला। खून की बूँद। ... बेचारा। रास्ते में ले जाते थे बीच में एकदम हरा शरीर हो गया। जहर चढ़ा... मर गया।

इसी प्रकार कहते हैं कि पुण्य-पाप की रक्त की बूँदें बाहर निकली जहर की। वह काली नागिन है। समझ में आया? आहाहा! तेरी नजरें विकारभाव में पड़ीं और तूने विकार को चाटा है। जहर चढ़ गया है, भाई! तुझे खबर नहीं। बलुभाई! बराबर है या नहीं इसमें? समझ में आये ऐसा है। कहीं न समझ में आये ऐसा नहीं। भले न कर सके, वह अलग बात है। ऐसा है। इस प्रकार ऐसा होवे तो धर्म हो और शान्ति हो। ऐसा तो इसके ख्याल में आना चाहिए न? गजब गाथा!

‘पीऊण णाणसलिलं’ आहाहा! ज्ञानरूप जल को पीकर... हे प्रभु! तेरी अनादि की विषय-अभिलाषा... विषय-अभिलाषा का अर्थ? आत्मा का विषय छोड़कर पर में विषय किया है, वह अभिलाषा, ऐसा कहते हैं। अकेली यह विषयभोग की नहीं।

यहाँ तो परपदार्थ की ओर के झुकाव की भावना, वह विषय-अभिलाषा। हों! आहाहा! भगवान आत्मा अनाकुल शान्तरस का सागर अन्दर छलाछल भरा है, उसके सन्मुख देखे बिना पर की सन्मुख, परद्रव्य के सामने देखकर... चाहे तो भगवान हो और चाहे तो स्त्री हो। ऐई!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाण, वह इस अपेक्षा से। ... पर के विषय की अपेक्षा से यह स्वविषय का वहाँ अभाव होता है। उसमें परविषय अर्थात् परद्रव्य में लक्ष्य जाता है। और परद्रव्य में लक्ष्य जाने से उसमें पुण्य के ही भाव, पाप के ही भाव उत्पन्न होते हैं। आहाहा! उसमें आत्मा की शान्ति और धर्म का भाव परद्रव्य के लक्ष्य से उसे (उत्पन्न) होता नहीं।

कहते हैं, अरे! **भाव शुद्ध करने पर...** ऐसा कहते हैं। आत्मा पवित्र आनन्दस्वरूप की प्रतीति, ज्ञान और लीनतारूपी **भाव शुद्ध करने पर ज्ञानरूप जल को पीकर...** यह क्या कहते हैं? कि ज्ञानरूपी जल को पीकर सिद्धपद होता है। बीच में वह राग आवे, उससे सिद्धपद होता है, ऐसा नहीं है। क्या कहा? भगवान आत्मा ज्ञानानन्दरस से भरपूर, पुण्य-पाप के विकल्प के जहर से खाली और अनाकुल आनन्द के भाव से ठसाठस भरपूर। ऐसे भगवान को... आहाहा! ज्ञानरसरूपी शुद्धता प्रगट करके। अन्तर में सन्मुख होकर, पर से विमुख होकर। यह नास्ति से बात है। स्व के सन्मुख होकर ज्ञानानन्द शुद्धस्वभाव के निर्विकारी रस को पी। इस अमृत रस के घूँट पी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? धर्म, यह अमृतरस का पेय है। अधर्म, वह जहर का पेय है। यह सब पैसेवालों को सुखी कहा जाता है न? कहते हैं, ऐसा कहा, हों! है नहीं, कहा जाता है। ... इसका बाप भी आनेवाला... गया था। तब बात करते थे, इसलिए खबर हो न। ...

मुमुक्षु : यह तो सिद्धान्त सूचित करते हैं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न? आहाहा! यह तो एक बात है। आहाहा!

भाई! यह तुझे राग की तीव्रता का भाव हो। विषय, वासना, भोग समागम, वह

तो जहर है। उस जहर का पान तो अनन्त बार पीया, भाई! और पुण्य के भाव—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा और राग की मन्दता, यह भी जहर का पेय है। गजब बात है, हों! लोग बेचारे कहते हैं, हों! महाराज! एकान्त करते हैं। ...भाई! जँचे नहीं इसलिए... उसे खबर नहीं, खबर नहीं। अज्ञानी को क्या हो? ऐसा कहे, अर र! हाय-हाय इस पुण्य परिणाम को भी जहर कहते हैं। भगवान! तेरे द्रव्य में जो वस्तु है, उससे उल्टी परद्रव्य के अनुसार दृष्टि हो, उसका नाम जहर। ...भाई! आहाहा!

सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव के अमृतवचन का प्याला तो जगत से अलग प्रकार का है। इस जगत में ऐसी बात कहीं नहीं है। वीतराग परमात्मा के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं हो सकती। सम्प्रदायवालों को खबर नहीं तो अन्यत्र तो कहाँ से होगी? आहाहा! राजमलजी! लो, यह क्या करना इसमें? कहाँ गये जीतुभाई? दोनों आये थे। क्या करना? यह करना, ऐसा कहते हैं। अन्दर भगवान है आत्मा द्रव्य-स्वभाव, ध्रुवस्वभाव, नित्यानन्द का नाथ, उसके सन्मुख देखकर जल को, आनन्द को पीना। ज्ञानजल को पीना। इसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। आहाहा! मार्ग यह है। उसे कोई दूसरे प्रकार से हलका और हलका अर्थात् उल्टा बनावे, इससे मार्ग हाथ नहीं आता। उसकी श्रद्धा में तो पहले पक्का करना पड़ेगा इसे। समझ में आया?

कहते हैं, एक ही सिद्धान्त। 'पीऊण णाणसलिलं' 'होंति सिवालयवासी' ऐसे दो अर्थ किये हैं। 'पीऊण णाणसलिलं' नास्ति से बात बाद में करेंगे। 'पीऊण णाणसलिलं' 'होंति सिवालयवासी' ऐसा कि ज्ञानरूपी जल को पी और ... बस। ऐसा कहा। समझ में आया? आहाहा! सिद्ध अर्थात् परमात्मा। परन्तु इस ज्ञानरूपी जल को पी कर परमात्मा हुआ जाता है। कोई बीच में राग की क्रिया और पुण्य की क्रिया द्वारा परमात्मा-सिद्धपद होता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? धर्म की शुरुआत भी ज्ञानरूपी जल को पीने से होती है और ज्ञानरूपी जल का पूर्ण पीना हो, तब उसे सिद्धपद होता है—मोक्षपद होता है। समझ में आया? यह तो समझ में आये ऐसी भाषा है। इसमें कहीं बहुत (कठिन बात नहीं है)। हेमचन्दभाई! कहाँ गये जयन्तीभाई? यह समझ में आता है या नहीं यह? यह कैसे में रचपच जाते हैं! कल माँडी थी न हमारे मलूकचन्दभाई की। यह मलूकचन्दभाई यह बात तो ऐसी आयी। राग की बात है न। आहाहा!

यहाँ तो शुद्धभाव की बात है। आहाहा! कहते हैं, कैसे हैं सिद्ध? अब कहते हैं। सिद्ध परमात्मा। णमो सिद्धाणं है न? वह णमो सिद्धाणं का पद कैसे मिले? कि आत्मा के आनन्द के ज्ञानरूपी जल को पीने से मिले, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? भारी बातें परन्तु कठिन। तब तो वे बेचारे शोर मचाते हैं न? यह क्या? यह व्रत, तप और क्रिया यह सब व्यर्थ है। बापू! यह तो विकल्प है, भाई! तुझे खबर नहीं। तेरी जात की भात से यह उल्टी जाति है। समझ में आया? तेरी जाति भगवान की जाति तेरी है। भगवान की बराबरी में बैठनेवाला तू है। समझ में आया? अभी श्रद्धा का ठिकाना न हो और ज्ञान का ठिकाना न हो, उसे व्रत और चारित्र आ गये! आहाहा! भाई! तेरे उद्धार का पन्थ दूसरा है। क्या? कि तेरी जाति के सामने देखकर जाति का अनुभव, उसका नाम अनुभव। आनन्दघनजी में आता है न?

‘आशा औरन की क्या कीजे? ज्ञानसुधारस पीजे, आशा औरन की क्या कीजे?’

आशा औरन की क्या कीजे? ज्ञानसुधारस पीजे।

भटकत द्वार द्वार लोकनके कूकर आशा धारी।

आतम अनुभवरस के रसिया, चेतन, उतरे न कबहु खुमारी।

आशा औरन की क्या कीजे?’

भगवान! परपदार्थ की आशा से क्या तुझे शान्ति है? समझ में आया? ‘ज्ञान सुधारस पीजे, आशा...’ भगवान चैतन्य जल है न, नाथ! आहाहा! प्रकाशदासजी! यह बात कहीं है नहीं। गड़बड़ करा दी है बाहर में। भगवान! तू ऐसा महाप्रभु है न, नाथ! तेरी महिमा के समक्ष किसी चीज की महिमा तुझे नहीं हो सकती। समझ में आया? तुच्छ बात है। पुण्य के परिणाम भी भगवान के समक्ष, स्वभाव के समक्ष तुच्छ है। जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भाव भगवान आत्मा के समक्ष तुच्छ है। आहाहा! समझ में आया? भाई! तू ऐसा है। समझ में आया?

कहते हैं, ऐसा कि... पूरा किया, भाई! तेरा स्वभाव है न शुद्ध चैतन्य, उसके सामने देखकर शुद्धभाव प्रगट कर और शुद्ध ज्ञानजल के स्वभाव को पी। प्रभु! राग का पेय अब छोड़। तूने अनन्त काल से जहर के प्याले पीये। कहीं सुख का स्वाद नहीं आया? आहाहा! कहते हैं, ऐसे ज्ञानस्वरूपी आत्मा को अनुभव करने से तृप्त होगा। उसे

अनुभवते... अनुभवते... अनुभवते... अनुभवते... पूर्ण होने पर सिद्ध हो जाएगा। बीच की कोई क्रिया सिद्ध होने के लिये कारण-फारण है नहीं। आहाहा!

कैसे हैं सिद्ध ? अब सिद्ध कैसे हैं ? यह सिद्ध पद जो ... निर्मथ्य अर्थात् मथा न जावे ऐसे तृषा दाह... ओहोहो! अनादि की... झंखना, तृषा, वह ऐसे भान बिना उसका नाश नहीं हो सकेगा। आहाहा! मथा न जावे ऐसे तृषा... अभिलाषा। परद्रव्य के ओर की अभिलाषा। स्वद्रव्य के ओर की भावना छोड़कर, परद्रव्य के ओर की अभिलाषा, वह तृषा टूट न जाए नाथ। अनन्त पुरुषार्थ हो तब वह टूटती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह मथा न जावे ऐसे तृषा दाह... विषयाभिलाषा। स्वद्रव्य के ओर की भावना नहीं, उसे परद्रव्य की भावना, उसको यहाँ तृषा कहा जाता है। आहाहा!

दाह। भाई! इस भाव में तृषा—विषय की वासना आदि से शरीर में तो आताप होता है। शरीर में दाह होता है। तुझे उसकी खबर नहीं। इसे ऐसा लगता है कि आहाहा! इस शरीर में दाह होती है, कहते हैं। और शोक होता है। इस शरीर के अच्छे रसकस, वहाँ सूखते हैं। समझ में आया ? और भगवान के... यहाँ तो कहते हैं निर्मथ्य अर्थात् मथा न जावे ऐसे तृषा दाह... पर के ओर की अभिलाषा को छोड़ना महातृषा है। समझ में आया ? लगावे न जरा ? अँगुली ले अँगुली, यह कहते हैं यह ... है। ऐसे आत्मा का बाजा। एक समय की पर्याय राग में दबाकर बैठा है, वह दुःख के बाजे वहाँ बजते हैं। और एक समय की पर्याय को अन्तर में एकाग्र हो, आनन्द का बाजा बजे ऐसा आत्मा है। समझ में आया ? आहाहा! ... भाषा शास्त्र में ऐसी ली है निर्मथ्य अर्थात् मथा न जावे... मथा तो जाता है। परन्तु कहते हैं कि ऐसी कठिन चीज़ है। परसन्मुख के झुकाव की अभिलाषा छोड़ना और स्वसन्मुख की दृष्टि करना, वह निर्मथ्य महा मुश्किल है। ऐसा आया। समझ में आया ? आहाहा!

तृषा दाह शोष से... जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। ... पसन्मुख के झुकाव की अभिलाषा और उसमें शरीर में विषय भोग आदि के तो आताप हैं। और शोष से... शरीर के ... रस भाग में उसमें से ... जाए। तब आत्मा की ओर के वस्तु के स्वभाव सन्मुख की भावना में तृषा है, तब वहाँ शान्ति है। वहाँ दाह है तो यहाँ शीतलता है। वहाँ रस सूख जाता है तो यहाँ आत्सरस बढ़ता है। समझ में आया ? ... बहुत ऊँची वस्तु है।

... तृषा और विषय अभिलाषा दाह आताप को ... इसका अर्थ ही यह है। ऐसा भगवान आत्मा, उसके ज्ञानस्वभाव सन्मुख होने पर शुद्धभाव धर्म की दशा प्रगट होने पर वहाँ सन्तोष है, शीतलता है, आत्मारस की वृद्धि है। परसन्मुख के विषय के झुकाव में तृषा है। पर की अभिलाषा है, आताप है। और शरीर में ... उसमें ... है। ... धन्धा में सभी लो न, शरीर में सूख जाए। ज्ञानी हो, वहाँ रूखा दिखाई दे उसे, हों! दिखाई दे रूखा हों। नहीं। सवेरे से शाम तक मजदूरी, वहाँ पड़ा हो कमाने। ऐई! शशीभाई! यह सब सवेरे से शाम तक।

कहते हैं कि उसमें शरीर का रस पोषित होता है। और आत्मा का रस भी पोषित होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे जो तृषा दाह शोष से रहित हैं, ... सिद्ध तो इससे रहित है। जहाँ तृषा नहीं, परद्रव्य में झुकाव नहीं, वहाँ दाह आताप नहीं, और जहाँ शोष नहीं। रस पोषण है और ऐसे आत्मा का रस ... है। इस प्रकार सिद्ध होते हैं, ज्ञानरूप जल पीने का यह फल है। लो! समझ में आया? दुकान में बैठा हो, पाँच-पाँच हजार, दो-दो हजार की आमदनी ... दिखाई दे। कितने पैदा किये अभी? ठीक से बैठा हो तो दस हजार की लॉटरी लगे। व्यापार हुआ होगा। आहाहा! इसलिए ... इतने ... गिने थे वे। ... समझ में आया? यह तो सब हमने अन्दर अनुभव किया है, हों! ... रुपये निकले कुछ व्यापार करते-करते ... है। ... रोकड़ थे न, तब नोट कहाँ थे? रुपये दो आना अनुकूल हो तो इतने होते हैं, ऐसा लिया न..? आहाहा! भगवानजीभाई! ... धन्धा अच्छा चलता हो न वहाँ। भाई तो तब छोटा था। इसने बड़ा किया है। आहाहा! ... परन्तु सन्तोष। यह तो अब ...

कहते हैं, इस प्रकार सिद्ध होते हैं, ज्ञानरूप जल पीने का यह फल है। इसका फल है। आहाहा! यह निश्चय मोक्षमार्ग का फल सिद्ध है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा के आनन्द में एकाग्रता, निश्चय सम्यग्दर्शन में लीनता यह मोक्ष का फल आत्मा का है। व्यवहार मोक्षमार्ग-व्यवहार मोक्षमार्ग करे तो व्यवहार मोक्षमार्ग वह व्यवहार मोक्ष हो गया? दो मोक्षमार्ग में दो फल होंगे? निश्चय मोक्षमार्ग का निश्चय मोक्ष, व्यवहार मोक्षमार्ग का व्यवहार मोक्ष। है दो? शशीभाई! दो मार्ग होवे तो दो के फल भी दो होंगे न? निश्चयवाला पहुँचे, इसलिए स्थिरता का और व्यवहारवाला

पहुँचे, वह व्यवहार मोक्षमार्ग। व्यवहार मोक्षमार्ग-बोक्षमार्ग है ही नहीं। सुन न। यह यहाँ सिद्ध करते हैं। जेठालालजी! ऐसी बातें हैं। बाकी सब थोथा... थोथा... थोथा...

सिद्धशिवालय... कैसे हैं सिद्ध? सिद्धशिवालय अर्थात् मुक्तिरूप महल में रहनेवाले हैं,... लो! शिवालयवासी। और सिद्ध। इसका संक्षिप्त किया है। कैसे होते हैं? आनन्दरूपी जल भगवान आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान का पीकर सिद्ध पद होता है, वह शिवालय। शिव-आलय। मुक्तिरूपी महल। आलय अर्थात् महल। वहाँ रहनेवाले हैं,... यह विकार के वेदनेवाले संसार में बसनेवाले होते हैं। समझ में आया? यह शुभ और अशुभ परिणाम के वेदनेवाले, उसके फलरूप से संसार में बसना गति में होता है। ज्ञानजल को पीनेवाले सिद्धपद को पाने से शिवलायवास में महल शिवरूपी महल निरुपमद्रव्य भगवान आत्मा की दशा, वह शिवालय, हों! देखो! शिवालय अर्थात् यह शिवालय नहीं कहते? शंकर का देवालय, उसे शिवालय कहते हैं। मन्दिर। उस शंकर का मन्दिर यह। शंकर का अर्थ शिव होता है। शंकर का अर्थ सुख का आलय। शंकर का अर्थ सिद्ध होता है। सुख का आलय शिवालय। शिवालय, वह आत्मा का पद निश्चय है। सिद्धपद पावे, वह शिवालय पद पावे। आहाहा! अरे! बातें हो गयी महँगी और लोगों को चढ़ा दिया उल्टे रास्ते। उसे जन्म-मरण टालने का यह मार्ग है अभी। यह काल मुश्किल से आया है अनन्त काल में, कहते हैं। उसमें यह गँवा बैठता है।... आहाहा! इसमें तो यह दुनिया की इज्जत-कीर्ति धूल में भी नहीं। और वहाँ दया, दान और व्रत के परिणाम में रुककर जिन्दगी चली गयी। जो करने का है, वह किया नहीं। आहाहा!

सिद्धशिवालय अर्थात् मुक्तिरूप महल में... आलय का अर्थ महल किया है। शिव का अर्थ मुक्ति किया है। रहनेवाले हैं, लोक के शिखर पर जिनका वास है। लो! लोक के शिखर पर जिसका वास है। ... है। अज्ञान में जहाँ अशुद्ध परिणाम शुभाशुभ के वेदनेवाले को... तीन भुवन (चूड़ामणि) पद नहीं परन्तु चार गति में भटकने का पद है। आहाहा! तीन भुवन के चूड़ामणि हैं,... है न? लोक के शिखर पर जिनका वास है। इसीलिए कैसे हैं? तीन भुवन के चूड़ामणि हैं, मुकुटमणि हैं... आहाहा! भगवान सिद्ध... लोक के अग्र में विराजमान हैं। लोक के अग्र में

परमात्मा सिद्ध हों, वे वहाँ विराजते हैं। कैसे हैं? तीन भुवन के चूड़ामणि। यह मुकुटमणि। आहाहा! चौदह ब्रह्माण्ड में मुकुटमणि हैं। मुकुटमणि। मुकुटमणि अर्थात् यह मुकुट रखते हैं न यहाँ सिर पर? उसमें यह लोक और उसके सिर पर मुकुटमणि है। आहाहा!

तथा तीन भुवन में ऐसा सुख नहीं है, ... तीन लोक में ऐसा सुख नहीं। ऐसे परमानन्द अविनाशी सुख को... ऐसा परमानन्द अविनाशी सुख सिद्धपद के अतिरिक्त नहीं है। ऐसे परमानन्द अविनाशी सुख को वे भोगते हैं। यहाँ ज्ञानरस का पान ... करते-करते अनन्त अविनाशी आनन्द को अनुभव करते हैं। आहाहा! लो! यह वर्ष (नूतन) वर्ष की बौनी आयी यह। ऐसे परमानन्द अविनाशी सुख को वे भोगते हैं। ऐसा परमानन्द, ऐसा। अविनाशी सुख को भोगते हैं। इस प्रकार वे तीन भुवन के मुकुटमणि हैं। ऐसे तीन भुवन के सिद्ध भगवान मुकुटमणि। उसे मुकुट तो सही परन्तु मुकुटमणि। वह आत्मा में शुद्धभाव। भावपाहुड़ है न? इसलिए शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति, ऐसे शुद्धभाव द्वारा इस शिवालय का वास जीव को होता है। बाकी यह सब बँगले का वास और वह सब उपद्रव का वास है। यह शिवालय है। कहो, समझ में आया? बहुत डाला है, हों! टीका में। अस्ति-नास्ति भरी है। कुन्दकुन्दाचार्य की शैली अर्थात् अलौकिक ... जैसी शैली है उनकी।

भावार्थ - शुद्धभाव करके ज्ञानरूप जल पीने पर... ऐसा। शुद्धभाव करके ज्ञानरूप जल पीने पर... ऐसा। आहाहा! क्या करना? कि शुद्धभाव करना। करना कैसे? कि वस्तु है, उसके सामने देखकर एकाग्र होना, ऐसे। बाबूभाई! यह ... आहाहा! कठिन काम है, भाई! कोई दूसरा रास्ता होगा? ... तो नहीं। ... भाई! ... तुम्हारा रास्ता जाए, वह कठिन भी ... निकले ऐसा है वहाँ से। इसमें कोई रास्ता है? गये थे न? ... भटक जाए। अभी मर गया। परन्तु कुछ अन्यत्र व्यवस्था ... अपने यह ... कहते हैं। इसका कुछ दूसरा रास्ता है?

कहते हैं कि 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ।' आहाहा! शुद्धभाव करके ज्ञानरूप जल पीने पर तृष्णा दाह शोष मिट जाता है, ... लो! बहुत संक्षिप्त किया। इसलिए ऐसे कहा है कि परमानन्दरूप सिद्ध होते हैं। उसके फलरूप से परमानन्द की प्राप्ति, वह परमानन्द का शिष्य होता है। यहाँ पाँच-पच्चीस करोड़ मिले, धूल मिले उसमें तो सेठिया कहलावे। वे सब नीचे जानेवाले हैं, सब नीचे। समझ में आया?

गाथा-९४

आगे भावशुद्धि के लिए फिर उपदेश करते हैं -

दस दस दो सुपरीसह सहहि मुणी सयलकाल काण्ण ।
 सुत्तेण अप्पमत्तो संजमघादं पमोत्तूण ॥९४॥
 दश दश द्वौ सुपरीषहान् सहस्व मुने! सकलकालं कायेन ।
 सूत्रेण अप्रमत्तः संयमघातं प्रमुच्य ॥९४॥
 इस देह से बाईस परिषह सर्व काल मुनी! सहो।
 अप्रमत्त रह सूत्रानुसार निवार संयम घात को॥९४॥

अर्थ - हे मुने! तू दस-दस-दो अर्थात् बाईस जो सुपरीषह अर्थात् अतिशय कर सहने योग्य को सूत्रेण अर्थात् जैसे जिनवचन में कहे हैं, उसी रीति से निःप्रमादी होकर संयम का घात दूर कर और तेरे काय से सदा काल निरंतर सहन कर ।

भावार्थ - जैसे संयम न बिगड़े और प्रमाद का निवारण हो, वैसे निरन्तर मुनि क्षुधा, तृषा आदिक बाईस परीषह सहन करे। इनको सहन करने का प्रयोजन सूत्र में ऐसा कहा है कि इनके सहन करने से कर्म की निर्जरा होती है और संयम के मार्ग से छूटना नहीं होता है, परिणाम दृढ़ होते हैं ॥९४॥

गाथा-९४ पर प्रवचन

९४... बात है न आगे बढ़ने की ? आगे भावशुद्धि के लिए फिर उपदेश करते हैं-

दस दस दो सुपरीसह सहहि मुणी सयलकाल काण्ण ।
 सुत्तेण अप्पमत्तो संजमघादं पमोत्तूण ॥९४॥

अर्थ - हे मुने! बात की है न ? आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान के पेय पीते हुए आगे बढ़कर आनन्द की अच्छी धारा बहाता हुआ। हे मुने! यदि यह सिद्धपद तुझे प्राप्त करना हो तो 'सादि-अनन्त, अनन्त समाधि सुख में।' शिवपद अर्थात् जब सिद्धपद प्राप्त हुआ।

‘सादि-अनन्त, अनन्त समाधि सुख में। अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो। सादि-अनन्त, अनन्त समाधि सुख में। अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो। अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा ? कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब। सर्व सम्बन्ध का बन्धन तीक्ष्ण छेदकर, विचरूँगा कब महत्पुरुष के पन्थ जब ? विचरूँगा कब महत्पुरुष के पन्थ जब ? अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा ?’ कब ? पैसेवाले होंगे तब... ऐसा भाव नहीं फिर। हैं ! आहाहा !

हे मुने ! तू दस-दस-दो अर्थात् बाईस जो सुपरीषह... परीषह के बाईस भाग हैं न ? ‘सुपरीषह अर्थात् अतिशयकर सहनेयोग्य को...’ ऐसा। पाठ है न ? ‘दो सुपरीषह’ ऐसा लिया है। ‘दस दस दो सुपरीषह’ ऐसी भाषा है। बाईस प्रकार के परीषह हैं। कहते हैं कि आनन्द के ध्यान में रहता हुआ बाहर में परीषह को ज्ञाता-दृष्टारूप से देख। समझ में आया ? आहाहा ! ज्ञान को ... कहते हैं न ? अर्थात् प्रतिकूलता हो बाहर की, वह जाननेयोग्य है। जानकर शान्ति में स्थिर होनेयोग्य है। उससे जीते जाँएँ ऐसा है। उसे जीत लेता है। आहाहा ! प्रतिकूलता की गन्ध आती है, भाई ! आत्मा का धाम और बाहर की प्रतिकूलता की गन्ध आ जाए, ऐसा हो जाए हाय-हाय अब ? स्थिर हो-स्थिर हो अन्दर में। तुझे सहन करना अर्थात् जानना-देखना, वह तेरा स्वभाव है। प्रतिकूलता-बतिकूलता आत्मा की बिल्कुल चीज़ है ही नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! यह सुपरीषह, अतिशयकर परीषह को, इस वस्तु का अर्थ किया है। अतिशय कर सहने योग्य को सूत्रेण अर्थात् जैसे जिनवचन में कहे हैं, उसी रीति से... ऐसी बात है। ऐसे तो बहुत कहते हैं बाहर का सहन कर। ऐसा नहीं। देश के लिये... है। हूँकार न करे। समझ में आया ? ऐसा नहीं।

जिनवचन में कहे हैं, उसी रीति से... वीतरागभाव से आत्मा ने वीतराग वचनों में जिनवचन वीतरागभाव में पोषक है। वह वीतरागभाव यह आत्मा, इसके सन्मुख की वीतरागभाव से सहन कर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ऐसे ... बहुत सहन करते हैं। देश का ऐसा होगा, ... मिट जाएगा इसलिए मुझे सहन करने का ... प्रतिकूलता हो जाएगी, ऐसा करके भी सहन करते हैं न ? हैं ! ऐसा नहीं। ऐसा नहीं। भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु, आनन्द की लहर में रहते हुए अनुकूल-प्रतिकूल के सामने न देखकर। ज्ञाता-दृष्टा

में आनन्द में रहे, इसका नाम सहन करना कहा जाता है। समझ में आया ?

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि प्रतिकूलता आवे, तब तुझे दुःख हो तो उसे सहन किया ही नहीं कहा जाता। समझ में आया ? उस प्रतिकूलता के समय आत्मा में आनन्द की लहर को खड़ा कर। तुझे सिद्ध होगा। दुःख को जीत ले। आहाहा! आता है न शास्त्र में ? नहीं ? ... निर्जरा है। मार्ग से नहीं छूटने के लिये और निर्जरा के लिये... परीषह सहन करे। आता है। अलौकिक बातें हैं। दिगम्बर मुनि की वाणी... आहाहा! किसके लिये है ? उसका मुनिपना अलौकिक, उनकी वाणी अलौकिक। अरे! कितने ही ऐसा कहते हैं कि यह मुनि ... भगवान। मुनि परमेश्वर। उन्हें न माने वह ... णमोकार गिने... बहुमान देते हैं। आहाहा! णमो लोए सव्वसाहूणं। .. पहला स्थापित करे। समझ में आया ? आहाहा! भाई! मुनि कहना किसे ? ... ऐसा नहीं चलता। मार्ग में हो ऐसा चलता है। दूसरे प्रकार से कहे तो भले सर करना ... भाई!

यहाँ तो कहते हैं देखो! सूत्र के कहे अनुसार बाईस परीषह को **निःप्रमादी होकर संयम का...** भाषा देखो! आहाहा! अप्रमत्त अर्थात् आनन्द में रहता हुआ। समझ में आया ? बौद्ध में एक बात आती है। ... भगत को बहुत गाली देने लगे बहुत गाली देने लगे महाराज को। फिर... कैसे... तेरे काम की हो उतनी निकाल बाकी तेरे पास है। मुझे रखने के लिये जगह नहीं है। तेरी गाली रखने के लिये जगह नहीं है। हमारे तो सामने थे न सब ? हम सब सामने रहे। नवनीतभाई!

यहाँ तो आनन्दसहित को... प्रमाण स्वआश्रय लेकर ऐसा कहते हैं। यहाँ तो बाहर... साधारण... यह तो मन्दकषाय की बात है। चिमनभाई! इस देश के लिये शहीद होते हैं और मर गये न कितने ही युवक ? क्या कहा जाता है उन्हें ? शहीद-शहीद। यहाँ तो कहते हैं, नाथ! तेरे घर में खड़ा, आनन्द में खड़ा, ज्ञान की खिड़की से देख, यह क्या है ? बस इतना। उसमें से प्रतिकूलता हो और दुःख हो, ऐसा तुझमें है नहीं। आहाहा! समझ में आया ? कहते हैं 'सूत्रेण...' भगवान की आज्ञा जो सम्यग्ज्ञान में कही। **जिनवचन में कहे हैं,...** उसमें क्या हुआ ? पूरी... सहन करते हैं, वह सहनपना नहीं है। वह तो वहाँ स्थिति सहन करते हैं कषाय की मन्दता की। उस पर में लक्ष्य रखकर कि अपन करें तो अपने देश को लाभ होगा, अमुक को लाभ होगा, अमुक को लाभ

होगा। समझ में आया ? यह सहन नहीं किया। ऐसा कहते हैं।

जिनवचन परमात्मा ने कहा कि तेरा स्वरूप ही वीतराग है। और वीतराग स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति पर्याय तुझे वीतराग की है। वीतरागीभावपने तू दूसरे को देख और जान, इसका नाम सहन किया कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया ? निःप्रमादी होकर... वह तो प्रमाद है अनन्त में। समझ में आया ? निःप्रमादी... अप्रमाददशा प्रगट करके उसकी ... जाति ... की। चारित्र में घात न हो। विकल्प उठे पुण्य करने के लिये तो वहाँ चारित्र का घात हुआ, ऐसा कहते हैं। मेरे... कर्म के उदय से, यह तो विकल्प है। कहते हैं। समझ में आया ? यह नहीं। जानने-देखने के भाव में रमता हुआ सहन कर। इसलिए मार्ग से च्युत नहीं हो और पूर्व के बन्धन से छूट जाएगा। आहाहा!

संयम का घात दूर कर और तेरे काय से सदा काल निरंतर सहन कर। शरीर द्वारा सहन कर, ऐसा कहते हैं। शरीर में मार-काट आवे। ... जिसे ठीक न लगे। सहन करे पीड़ा है। वह तो शरीर की क्रिया में शामिल होती है। तुझमें कुछ होता नहीं। ऐसे जानते, देखते हुए आत्मा के आनन्द के झकाव में परीषह सहन कर।

भावार्थ - जैसे संयम न बिगड़े और प्रमाद का निवारण हो, वैसे निरन्तर मुनि क्षुधा, तृषा आदिक बाईस परीषह सहन करे। इनको सहन करने का प्रयोजन सूत्र में ऐसा कहा है कि इनके सहन करने से कर्म की निर्जरा होती है और संयम के मार्ग से छूटना नहीं होता है, ... लो, आया न, यह तो इन्होंने मार्ग कहा है। ... निर्जरा की। अशुद्धता खिर जाए, इसके लिये समता, ज्ञाता-दृष्टा रहे और संयम में घात न हो, इसके लिये परिणाम दृढ़ हो, उसे सहन किया कहने में आता है। उसे मोक्ष के मार्ग में सन्धि होती है। च्युत नहीं होता। विकल्प से भी हटा नहीं। उसे मोक्ष के मार्ग से च्युत नहीं होता, ... है। आगे बढ़कर उसे शुद्धपद की प्राप्ति होती है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-९५

आगे कहते हैं कि जो परीषह सहने में दृढ़ होता है तो उपसर्ग आने पर भी दृढ़ रहता है, च्युत नहीं होता, उसका दृष्टान्त कहते हैं -

जह पत्थरो ण भिज्जइ परिट्ठिओ दीहकालमुदणण^१ ।

तह साहू वि ण भिज्जइ उवसग्गपरीसहेहिंतो ॥९५॥

यथा प्रस्तरः न भिद्यते परिस्थितः दीर्घकालमुदकेन ।

तथा साधुरपि न भिद्यते उपसर्गपरीषहेभ्यः ॥९५॥

पत्थर रहे चिर-काल जल में नहीं भिदता उदक से।

त्यो मुनी भी भिदते नहीं बहु परीषह उपसर्ग से ॥९५॥

अर्थ - जैसे पाषाण जल में बहुत काल तक रहने पर भी भेद को प्राप्त नहीं होता है, वैसे ही साधु उपसर्ग परीषहों से नहीं भिदता है।

भावार्थ - पाषाण ऐसा कठोर होता है कि यदि वह जल में बहुत समय तक रहे तो भी उसमें जल प्रवेश नहीं करता है, वैसे ही साधु के परिणाम भी ऐसे दृढ़ होते हैं कि उपसर्ग परीषह आने पर भी संयम के परिणाम से च्युत नहीं होता है और पहिले कहा जो संयम का घात जैसे न हो, वैसे परीषह सहे। यदि कदाचित् संयम का घात होता जाने तो जैसे घात न हो वैसे करे ॥९५॥

प्रवचन-१३०-ए, गाथा-९५-९६, बुधवार, माघ कृष्ण १४, दिनांक २०-०२-१९७४

यह अष्टपाहुड़ है। अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़ आता है। ९५ गाथा। आगे कहते हैं कि जो परीषह सहने में दृढ़ होता है तो उपसर्ग आने पर भी दृढ़ रहता है, च्युत नहीं होता, उसका दृष्टान्त कहते हैं -

१. 'मुदणण' पाठान्तर 'मुदकेण'।

जह पत्थरो ण भिज्जइ परिट्ठिओ दीहकालमुदण्ण।

तह साहू वि ण भिज्जइ उवसग्गपरीसहेहिंतो ॥१५॥

मुख्य मुनि की बात करते हैं न? मुनि किसको कहते हैं? प्रथम आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन जिसको हुआ हो। सम्यग्दर्शन होने के बाद स्वरूप में आनन्द की लीनता प्रगट हो, उसे साधु कहते हैं। गृहस्थाश्रम में समकित्ती को स्वरूप में शुद्धउपयोग की लीनता विशेष नहीं होती। परन्तु सम्यग्दर्शन, आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु, उसका प्रथम सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। समझ में आया? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। समझ में आया? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद की दृष्टि से समकित्ती को पर पदार्थ में से और पुण्य-पापभाव में से सुखबुद्धि उड़ जाती है। जब तक सम्यग्दर्शन हो तो पर में सुखबुद्धि उसको होती है। शरीर में, वाणी में, पुण्य में, पापभाव में ठीक है, ऐसा भाव जो है, वह मिथ्यात्वभाव है। उस मिथ्यात्वभाव का नाश कर चैतन्य शुद्ध आनन्द का नाथ उसका अवलम्बन लेकर मिथ्यात्व का नाश होकर सम्यग्दर्शन शुद्धउपयोग की दशा में सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। चतुर्थ गुणस्थान। आहाहा!

उसके बाद उसकी आनन्द में लीनता रहती है, अतीन्द्रिय आनन्द में जिसको प्रचुर स्वसंवेदन (प्रगट हुआ है), चौथे गुणस्थान में आनन्द का वेदन अल्प है। सम्यग्दृष्टि को अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन अल्प है। पंचम गुणस्थान में जब यथार्थ सम्यग्दर्शनसहित श्रावक होता है तो उसको आनन्द विशेष होता है। जो सर्वार्थसिद्धि का देव है, उसको आनन्द नहीं, ऐसा पंचम गुणस्थान में आनन्द की झलक विशेष होती है। उसको पंचम गुणस्थानवन्त श्रावक कहने में आता है। आहाहा! बाकी इसके अतिरिक्त व्रत और नियम हो, वह सब थोथा है।

यहाँ तो मुनि की बात करते हैं। मुनि को भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का दल है, उसकी अन्तर में जमावट मुनि को तो बहुत हो गयी है। समयसार में पाँचवीं गाथा में कहते हैं, प्रचुर स्वसंवेदन। आहाहा! मार्ग तो देखो, भाई! मुनि को तो प्रचुर, स्व अर्थात् अपना, सं अर्थात् प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे मुनि को कहते हैं, जैसे पाषाण जल में बहुत काल तक रहने पर भी... पत्थर

पानी में बहुत काल रहने पर भी भेद को प्राप्त नहीं होता है,... 'ण भिज्जइ' है न? वास्तव में तो वह पत्थर पानी में रहने पर भी भीगता नहीं और भेद को भी प्राप्त नहीं होता। आहाहा!

वैसे ही साधु... अहो! जिसने स्वरूप आनन्द का साधन बहुत किया है... आहाहा! ऐसा साधु उपसर्ग परीषहों से नहीं भिदता है। मनुष्यकृत प्रतिकूलता का उपसर्ग, देवकृत प्रतिकूला का उपसर्ग, तिर्यचकृत और अचेतनकृत। कोई दीवार गिर जाए, पेड़ गिर जाए, उसमें वह आनन्द में रहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह परीषह से यह उपसर्ग कहा। परीषह अर्थात् कर्म के उदय से क्षुधा बहुत लगी हो, तृषा बहुत लगी हो, उसमें भी, और रोग की तीव्र वेदना शरीर में असाता के कारण हो तो भी मुनि तो आनन्द में रहते हैं। उसमें आनन्द का भंग होता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! 'ण भिज्जइ' अपने अतीन्द्रिय आनन्द की लीनता में उसको भेद नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत अलौकिक है, भाई! सम्यग्दर्शन ही पहले तो अलौकिक है, चारित्र की तो बात ही क्या कहना! ओहोहो! धन्य अवतार! जिसने स्वरूप में अन्तर चरना, आनन्द में रमना और जिसने दुःख का नाश किया है और अतीन्द्रिय आनन्द की लहर में रमते हैं, उसको उपसर्ग परीषह से आनन्द में भेद, छेद नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ - पाषाण ऐसा कठोर होता है कि यदि वह जल में बहुत समय तक रहे तो भी उसमें जल प्रवेश नहीं करता है,... आहाहा! वैसे ही साधु के परिणाम... ओहो! वीतरागी परिणाम जहाँ प्रगट हुआ है। आहाहा! सम्यग्दर्शन भी वीतरागी परिणाम है। सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान में (हुआ है), वह भी वीतरागी परिणाम है। समझ में आया? तो यहाँ छठवें गुणस्थान में तो वीतरागी परिणाम बहुत प्रगट हुआ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी दशा में साधु के परिणाम भी ऐसे दृढ़ होते हैं... आहाहा! स्वद्रव्य के आश्रय से उग्रपने का परिणाम जिसको वीतरागभाव हुआ... आहाहा! चैतन्यद्रव्य भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, उसका आश्रय लेकर तो सम्यग्दर्शन हुआ है और उसका विशेष उग्र आश्रय लेकर चारित्र हुआ है। आहाहा! चारित्र कोई पंच महाव्रत का परिणाम या देह (से) नग्नपना वह चारित्र नहीं है। समझ में आया?

भावपाहुड़ है न! सम्यग्दर्शनरूपी जिनभावना और वीतरागपरिणामरूपी चारित्र की भावना, उसको यहाँ भावपाहुड़ कहते हैं। आहाहा! उपसर्ग परीषह आने पर भी संयम के परिणाम से च्युत नहीं होता है... ओहोहो! और पहिले कहा जो संयम का घात जैसे न हो, वैसे परीषह सहे। ९४ में आया था न? 'सुत्तेण अप्पमत्तो संजमघादं पमोत्तूण।' वह बात है। भगवान ने जैसी अन्तर में रहने की आज्ञा की है, ऐसे अप्रमत्त होकर। आहाहा! मुनि अन्तर में आनन्द में अप्रमत्त होकर 'संजमघादं पमोत्तूण।' संयम का घात छोड़ देते हैं। आहाहा! स्वरूप भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु, उसका अनुभव होकर जिसको वीतरागी परिणाम प्रगट हुआ, वह संयम का घात होने नहीं देता। आहाहा! समझ में आया? मार्ग सूक्ष्म बहुत।

यदि कदाचित् संयम का घात होता जाने तो जैसे घात न हो वैसे करे। ऐसी प्रतिकूलता में सहनशक्ति की अल्पता देखे तो अन्तर आत्मा का उग्र आश्रय ले। आहाहा! समझ में आया? अन्तर भगवान आनन्द का अवलम्बन लेकर (संयम का) घात होने न दे। आहाहा! देखो! मुनिपना! ये साधुपद। जिसको गणधर भी नमस्कार करे। चौदह पूर्व की रचना करते हैं, तब साधु सन्त आनन्द की लहर में अनुभव करनेवाला, उसको भी गणधर 'णमो लोए सव्व साहूणं...' ओहो! सर्व लोक में जिस आनन्द की लहर में मुनिराज विराजते हैं, कहते हैं मेरा नमस्कार, गणधर कहते हैं। आहाहा! चौदह पूर्व और चार ज्ञान जिसको अन्तर्मुहूर्त में प्रगट होता है, ऐसे गणधर भी साधु को नमस्कार करते हैं। वह साधुपद कैसा होगा! समझ में आया? अकेला नग्नपना और पंच महाव्रत का परिणाम,... वह पंच महाव्रत का परिणाम भी उग्र है। समझ में आया? उसका भी जिसे ठिकाना नहीं, उसको चारित्र और सम्यग्दर्शन तो होता नहीं। आहाहा!

गाथा-९६

आगे परीषह आने पर भाव शुद्ध रहे ऐसा उपाय कहते हैं -

भावहि अणुवेक्खाओ अवरे पणवीसभावणा भावि ।

भावरहिण्ण किं पुण बाहिरलिंगेण कायव्वं ॥९६॥

भावय अनुप्रेक्षाः अपराः पंचविंशतिभावनाः भावय ।

भावरहितेन किं पुनः बाह्यलिंगेन कर्त्तव्यम् ॥९६॥

भाओ अनूप्रेक्षा अपर भाओ पच्चीसों भावना।

है भाव-विरहित बहिर्लिंग से क्या प्रयोजन? साध्य क्या? ॥९६॥

अर्थ - हे मुने! तू अनुप्रेक्षा अर्थात् अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षा हैं, उनकी भावना कर और अपर अर्थात् पाँच महाव्रतों की पच्चीस भावना कही है उनकी भावना कर, भावरहित जो बाह्यलिंग है, उससे क्या कर्त्तव्य है? अर्थात् कुछ भी नहीं।

भावार्थ - कष्ट आने पर बारह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करना योग्य है। इनके नाम ये हैं - १. अनित्य, २. अशरण, ३. संसार, ४. एकत्व, ५. अन्यत्व, ६. अशुचित्व, ७. आस्रव, ८. संवर, ९. निर्जरा, १०. लोक, ११. बोधिदुर्लभ, १२. धर्म, इनका और पच्चीस भावनाओं का भाना बड़ा उपाय है। इनका बारम्बार चिन्तन करने से कष्ट में परिणाम बिगड़ते नहीं हैं, इसलिए यह उपदेश है ॥९६॥

गाथा-९६ पर प्रवचन

आगे परीषह आने पर भाव शुद्ध रहे ऐसा उपाय कहते हैं - आहाहा!

भावहि अणुवेक्खाओ अवरे पणवीसभावणा भावि ।

भावरहिण्ण किं पुण बाहिरलिंगेण कायव्वं ॥९६॥

अर्थ - हे मुने! मुनि को उदेशकर बात है, सम्यग्दर्शन सहित आनन्द की लहर में विराजमान सन्त हैं। आहाहा! हे मुने! तू अनुप्रेक्षा अर्थात् अनित्य आदि बारह

अनुप्रेक्षा हैं, ... आहाहा! तू विचार की अनुप्रेक्षा की भावना में रहे। अर्थात् अन्य पाँच महाव्रतों की पच्चीस भावना... है तो वह विकल्प। महाव्रत स्वयं विकल्प और राग है। और उसमें भी उसकी भावना करना, वह भी विकल्प है। परन्तु उस विचार में रुकने से, तेरी स्वरूप ओर की दृष्टि में से नहीं खिसकने से तुझे परीषह और उपसर्ग से दुःख नहीं होगा। समझ में आया? आहाहा! उनकी भावना कर, भावरहित जो बाह्यलिंग... जिसको सम्यग्दर्शन की भावना और अनुभव की भावना नहीं है, उसके बाह्यलिंग है, उससे क्या कर्तव्य है? बाह्य वेश पंच महाव्रत, नग्नपना या बारह व्रत का या क्षुल्लकपना के वेश धारण करने से क्या है? अन्तर में भगवान आत्मा आनन्दस्वरूपी भावना और अनुप्रेक्षा आदि की भावना नहीं है, वहाँ बाह्य वेश से क्या कर्तव्य है? यह कहा न? 'बाहिरलिंगेण कायव्वं।' आहाहा! अर्थात् कुछ भी कर्तव्य नहीं। बाह्य लिंग अकेला धारण करे, नग्नपना, बारह व्रतादि का या पंच महाव्रत परन्तु अन्तर्दृष्टि आनन्दस्वरूप ज्योति सुखधाम, स्वयं ज्योति सुखधाम, आनन्द का धाम प्रभु चैतन्यज्योति के अनुभव में आया नहीं, सम्यग्दर्शन हुआ नहीं, उसे बाह्य वेश का कर्तव्य क्या करे? समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य भावपाहुड़ में ऐसे प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : शुभराग...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु शुभराग अन्तर्दृष्टि सहित है। अशुभ नहीं आने देने की अपेक्षा से बात है। है तो शुभभाव, कहा न, पंच महाव्रत का भाव ही शुभ है; धर्म नहीं। परन्तु उसमें रहने से अशुभभाव नहीं होता। इतना बचने के कारण यहाँ बात कही है। समझ में आया?

मुमुक्षु : निश्चय...

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय, व्यवहार दोनों का उपदेश है। पहले कहा न? सम्यग्दर्शन आत्मा का अनुभव हुआ, वह भी चैत्यप्रतिमा की भक्ति करते हैं, भगवान की प्रतिमा की भक्ति करते हैं। भगवान की भक्ति तो शुभराग है।

मुमुक्षु : बहुत से सम्यग्दृष्टि भगवान की भक्ति नहीं करता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं करे, ऐसा होता है क्या? आये बिना रहे नहीं। भले थोड़े काल में (आये) परन्तु आये भक्ति।

मुमुक्षु : पूरी जिन्दगी में न आवे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी जिन्दगी में न आये, ऐसा बने नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ अन्दर आती है। भावभक्ति अन्दर करते हैं। प्रतिमा भले बाहर नहीं हो। अन्तर भगवान की भक्ति है। भगवान की प्रतिमा जैसी मछली होती है। स्वयंभूरमण समुद्र में। उसको देखकर... उसके ख्याल में रहता है। मछली का आकार प्रतिमा जैसा होता है। शास्त्र में ऐसा पाठ है। शास्त्र में तो बहुत भरा है न। वह प्रतिमा देखकर अन्दर में जातिस्मरण हो जाता है। समझे ? ऐसे देखने से... ओहो ! मैं चैतन्यप्रतिमा हूँ। मेरी चीज़ आनन्दकन्द ध्रुव आनन्द में हूँ, ऐसी दृष्टि तिर्यच को भी स्वयंभूरमण समुद्र में हो जाती है। और वह प्रतिमा भले साक्षात् न हो, परन्तु अन्तर में भगवान की प्रतिमा पर भक्ति का भाव आता है। बारहव्रत में साधु का संयोग कहाँ है वहाँ ? है ? तो उसको बारह व्रत नहीं है ? पंचम गुणस्थानवाला श्रावक तिर्यच असंख्य है। स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य पंचम गुणस्थानवाले सच्चे श्रावक हैं। आत्म-अनुभवसहित, बारह व्रतवाला। बाहर में संविभाग तो है नहीं। भाव में है। समझ में आया ? ओहो ! धन्य मुनिराज सन्त ! आनन्द में झूलनेवाला, उसे आहार देने का विकल्प (आता है)। वस्तु नहीं हो, भाव आता है। समझ में आया ? धन्नालालजी !

मुमुक्षु : आप अकेले कुन्दकुन्दाचार्य को मानते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको मानते हैं। आचार्य दिगम्बर सब है। जो सन्त है, पूज्यपादस्वामी, अमृतचन्द्राचार्य सब दिगम्बर भावलिंगी सन्त हैं, सबको हम मानते हैं। जितने दिगम्बर भावलिंगी सन्त हैं, (उन) सबको हम तो मानते हैं। ऐसा कि पंचम गुणस्थान और बारह व्रत है न ? शास्त्र में कहा है, उसे मानते हो न, ऐसा कहते हैं। आहाहा !

अरे ! भाई ! स्वयंभूरमण समुद्र में हजार योजन का मगरमच्छ, हजार योजन (अर्थात्) चार हजार कोस लम्बा और अन्दर पंचम गुणस्थान, आत्मा का अनुभव (सहित)। पूर्व संस्कार, कोई जातिस्मरण, कोई नये संस्कार से भी प्राप्त करते हैं। आत्मा

है न! जहाँ-तहाँ प्रभु विराजता है अन्दर। पूर्णानन्द का नाथ आत्मदल, शान्तदल, वीतरागदल... आहाहा! उसमें अन्तर्दृष्टि लगाकर, निर्विकल्प अनुभव आनन्द का स्वाद तिर्यच को भी स्वयंभूरमण समुद्र में आता है! आहाहा! भाई! मार्ग यह है। और बारह व्रत का विकल्प है तो मुनि की उपस्थिति न हो, परन्तु उसको भावना है न! वैसे प्रतिमा की उपस्थिति न हो, भावना में है। समझ में आया? अवधिज्ञान हो। कितने ही तिर्यच समकिति को तो अवधिज्ञान भी होता है। पंचम गुणस्थान। अवधिज्ञान से जहाँ-तहाँ प्रतिमा देखने में आये, वहाँ वन्दन कर लेते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों की... परन्तु यहाँ तो चैत्य की बात चलती है न। पहले तीन बोल आये न? चैत्यभक्ति। ९१ में आया। सम्यग्दृष्टि आत्मा का अनुभवी, आनन्द का वेदन करनेवाला ऐसा समकिति चौथे, पाँचवें में हो, अरे! छठवें मुनि हों, उसे चैत्य—प्रतिमा की भक्ति का विकल्प आता है। समझते हैं कि यह शुभ है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : आये ही। नहीं आये, ऐसा नहीं हो सकता। अन्तर्मुहूर्त में कोई केवल (ज्ञान) प्राप्त कर ले और नहीं आये, वह दूसरी बात है। लम्बा काल रहे, उसे भाव आये बिना रहे नहीं। अन्तर्मुहूर्त में एकदम सम्यग्दर्शन, एकदम चारित्र और एकदम केवलज्ञान हो जाए। समाप्त हो जाए। आहाहा! अन्तर की दृष्टि, अन्तर आनन्द में आकर... अरे! बाह्य लिंग द्रव्यलिंग हो, ऐसा भी शास्त्र में चला है। नग्न लिंग हो, हो मिथ्यादृष्टि, परन्तु अन्तर की दृष्टि (हुई), जहाँ गुरु मिला और वाणी सुनी और उसके अन्तर स्मरण में चलता है तो बाह्यलिंग हो और अन्तर में सम्यग्दर्शन होकर मुनिपना हो जाता है, भावलिंग हो जाता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : द्रव्यलिंग तो होता ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यलिंग होता है। द्रव्यलिंग हो तो उसको सच्चा भावलिंग होता है। द्रव्यलिंग नग्न न हो और भावलिंग-सप्तम आ जाए, ऐसा नहीं है। तत्त्वार्थराजवार्तिक में यह आया है। अनादि मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यलिंग में है, बाह्य

नग्नपना आदि में है, अन्तर्दृष्टि में जहाँ गया तो सम्यग्दर्शनसहित साधुपद प्रगट हो जाता है। समझ में आया? वस्त्रसहित हो, उसको मुनिपना नहीं आता। परन्तु वस्त्ररहित हो तो उससे मुनिपना आता है, ऐसा भी नहीं। परन्तु वस्त्ररहित हो उसको आत्मदर्शन में आकर मुनिपना प्राप्त हो जाता है। स्व का आश्रय उग्रपने ले तो। ऐसी बात है, भैया! समझ में आया?

मुमुक्षु : पंच परमेष्ठी में नहीं आते होंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधु पंच परमेष्ठी में नहीं आये तो किसमें आये?

मुमुक्षु : आपने भाव का कहा न...

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव आया तो वह पंच परमेष्ठी में नहीं आ गया? श्रावक पंच परमेष्ठी में नहीं आता। क्षुल्लक हो तो पंच परमेष्ठी में नहीं आता। भावलिंग जहाँ अन्दर में प्रगट हुआ, द्रव्यलिंग नग्न तो है ही, अन्तर भगवान का अवलम्बन लेकर प्रचुर स्वसंवेदन हुआ (तो) गणधर भी नमस्कार करे। बापू! यह तो अन्तर का मार्ग है। बाह्य वेश से, बाह्य क्रिया से कोई मार्ग प्राप्त होता है, ऐसा नहीं।

कहते हैं, आया न? चैत्य, प्रवचन की भक्ति। सर्वज्ञ की वाणी, उसकी भक्ति समकिति को आती है। है शुभभाव, है, है आस्रव परन्तु वीतराग भूमिका जब (तब) प्रगट न हो, तब ऐसा भाव आये बिना रहे नहीं। अन्तर दृष्टि में निषेध है, दृष्टि उसका आदर नहीं करती। आहाहा! परन्तु पर्याय में ऐसा व्यवहारभाव आये बिना रहे नहीं। वह जान कि उसका आधार मेरा आत्मा है। मेरे आत्मा के आधार से शुभभाव उत्पन्न हुआ। वह शुभभाव कोई कर्म से उत्पन्न हुआ है, प्रतिमा को देखकर हुआ है, ऐसा नहीं। समझ में आया? भाई! यह तो प्रमाण ऐसा है, 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही, वहाँ-वहाँ वह-वह आचरे, आत्मार्थीजन सही।'

प्रवचन और गुरु। गुरु सन्त की भक्ति। ओहो! सम्यग्दर्शन अनुभव होने पर भी, पंचम गुणस्थान में आनन्द का अनुभव होने पर भी, छठे गुणस्थान में मुनि को आनन्द का अनुभव होने पर भी, गुरु की भक्ति का भाव आये बिना रहे नहीं। समझ में आया? वह व्यवहार है। स्व के आश्रय से जितनी निर्मलता प्रगट हुई है, वह निश्चय है।

व्यवहार व्यवहार के स्थान में होता है, परन्तु व्यवहार से निश्चय प्राप्त हो, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? न्याय में अन्तर है। कहा न? 'जड़ जिणमयं पवज्जह' गाथा आती है न? 'जड़ जिणमयं पवज्जह' बारहवीं गाथा के भावार्थ के बाद श्लोक। यदि जैनमत को अंगीकार करना चाहते हो तो व्यवहार-निश्चय 'मुयदूत' व्यवहार या निश्चय किसी को छोड़ना नहीं। उसका अर्थ कि व्यवहार है, ऐसा मानना; निश्चय है और आदरणीय है, ऐसा मानना।

मुमुक्षु : व्यवहार को आदरणीय नहीं मानना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आदरणीय नहीं मानना, परन्तु है (ऐसा) मानना। है, ऐसा मानना। उसके अर्थ में अन्तर करते हैं न। देखो, उसमें आया। 'जड़ जिणमयं पवज्जह' बारहवीं गाथा। दो नय है। दो नय का विषय है। ऐसे मत छोड़ो। परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि व्यवहार है तो व्यवहार धर्म है। आदरणीय है, ऐसा नहीं। दो नय की कथनी जैनशासन में अनादि से चली आती है। परन्तु उसका अर्थ व्यवहारनय का विषय मुनि को होता है। है, ऐसा मानना। आदरणीय है और उसका आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा नहीं। समझ में आया? बहुत गड़बड़ है, भाई! तत्त्व की वस्तु की खबर बिना कुछ न कुछ खींचे, कुछ न कुछ खींचने की दृष्टि उल्टी पड़े। आहाहा! कहा न? वहाँ तो यहाँ तक आया... देखो! वहाँ तो ऐसा आया। 'चेइयपवयणगुरुणं करेहिं भक्तिं जिणाणाए', देखो! वहाँ तो ऐसा आया। ९१ (गाथा)। 'जिणाणाए' भक्ति करनी। वीतराग कहते हैं ऐसे साधु हैं, ऐसा प्रवचन है, ऐसी प्रतिमा है। समझ में आया? आहाहा!

जिनप्रतिमा जिनसारखी, आता है या नहीं? बनारसीदास। है, भगवान की भक्ति आती है न। एकावतारी इन्द्र, शकेन्द्र है और उसकी रानी है, वह एक भवतारी है। एक भव करके मोक्ष जानेवाला है। तो भी अष्टाह्निका में नन्दीश्वरद्वीप में घुँघरुं बाँधकर भक्ति करते हैं। वह क्रिया तो क्रिया से होती है, परन्तु अन्दर भाव शुभ होता है, इतनी बात है। समझ में आया? जिसको, पति-पत्नी को एक भव में मुक्ति है। इन्द्र और इन्द्राणी पहले स्वर्ग में दोनों एकावतारी है। दोनों मनुष्य होकर मोक्ष में जानेवाले हैं। दोनों... जब अष्टाह्निका आती है न? कार्तिक, फाल्गुन, आषाढ़ में आती है। आठ-आठ दिन नन्दीश्वरद्वीप में भगवान की रत्नमय प्रतिमा बावन जिनालय (हैं)। भाव शुभ होता है।

समझ में आया ? और जब भगवान का जन्म होता है और राजा होता है न ? पिताजी के घर इन्द्र आते हैं न ? है न ? जन्म हुआ तब तो अभी चौथे गुणस्थान में हैं । तीर्थकर जन्में, तब तो चौथे गुणस्थान में हैं । तो भी इन्द्र आकर भक्ति करते हैं । भाव ऐसा आता है, परन्तु है बन्ध का कारण, ऐसा ज्ञानी जानते हैं । आहाहा ! समझ में आया ?

भगवान का जन्म हुआ, वे तो तीन ज्ञानवाले हैं, समकिति हैं, पंचम गुणस्थान नहीं है । शकेन्द्र समकिति-क्षायिक समकिति है । जब माता जन्म देती है (तब कहते हैं), माता ! रत्नकूखधारिणी ! ऐसे तीर्थकर जैसे रत्न को कूख में धारनेवाली माता ! पहला नमस्कार तुम्हें करते हैं । माता भी समकिति है न ! नमो रत्नकूखधारिणी । अहो ! चैतन्य तीर्थकर जैसे रत्न को माता ! सवा नौ महीने रखकर जन्म दिया, जनेता ! तुम उसकी माता नहीं हो, तुम हमारी माता, जगत की माता हो । नमस्कार करते हैं । देखो ! चौथे गुणस्थान में है । भगवान भी चौथे गुणस्थान में है । चौथा गुणस्थानवाला चौथे गुणस्थानवाले को नमस्कार करते हैं । नेमचन्द्रभाई ! भाई ! जहाँ-जहाँ जितना है, उतना समझना चाहिए । खींचातानी करे वह मार्ग नहीं चलता । समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, ओहो ! अकेले बाह्यलिंग से तुझे क्या लाभ है ? भगवान आत्मा का आनन्द का आश्रय नहीं और उसका अनुभव नहीं और उसकी शान्ति का वेदन नहीं तो अकेला बाह्यलिंग तुझे क्या लाभ करेगा ? उससे क्या कर्तव्य है ? ओहोहो !

भावार्थ - कष्ट आने पर बारह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करना योग्य है । इनके नाम ये हैं - अनित्य,... मुनि अनित्य भावना भावे । ओहो ! शरीर को माता जन्म देती है तो माता को अभी ख्याल नहीं आये कि ये कौन है, पुत्र है या कन्या ? उसके पहले तो अनित्यता ने उसे गोद में ले लिया है । माता गोद में ले, इससे पहले शरीर को अनित्य भावना आ गयी—अनित्य ने गोद में ले लिया है । तत्त्वार्थसार में है । ऐसी भावना मुनि भावे । समझ में आया ? ओहो !

अनित्य... अनित्य... अनित्य । किस क्षण में शरीर का नाश न हो ? सुन्दर शरीर दिखे, क्षण में भाण्ड... भाण्ड... भाण्ड समझे ? बरतन । जैसा मिट्टी का भाण्ड रे, क्षण में लागे यह खोखरु । ऐसी स्वाध्याय आती है । चार स्वाध्याय है । स्वाध्याय । समझे ? सज्जायमाला चार आती है । एक-एक में २००-३००-४०० सज्जाय आती है । ऐसी

चार आती है। यहाँ है। हमने तो दुकान पर मँगवायी थी। चारों सज्जायमाला हमने बहुत देखी है। दुकान पर, हों! (संवत्) १९७० में दीक्षा ली उससे पहले। १९७० में दीक्षा ली। स्थानकवासी की ली न। उस चार सज्जायमाला में यह आया था। क्षण में लागे रे खोखरुं। यह शरीर। जैसा मिट्टी का भण्ड रे। मिट्टी का भण्ड समझे? बरतन। मिट्टी का बरतन। क्षण में लागे रे खोखरुं। बरतन को पत्थर से मारे तो दरार पड़ जाती है, फट। तड़ कहते हैं? दरार पड़ जाए। ऐसा शरीर क्षण में खोखला हो जाए। आहाहा! ऐसी अनित्य भावना भाते हैं। है विकल्प, परन्तु अन्दर अशुभ से बचने को है न। प्रतिकूलता के परीषह में दुःख न हो, इसलिए भाते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत बात आयेगी। सभी बोल वही आयेंगे। ख्याल है।

अन्तर्दृष्टि स्वभाव-सन्मुख होकर भी ऐसा उसका विकल्प आता है, वह भाव यहाँ प्रधान चलता है। पाटनीजी! ओहोहो!

अनित्य। अशरण। अशरण भावना भावे। ओहो! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप के शरण के अतिरिक्त कोई शरण नहीं है। शरीर में रोग हो, पीड़ा हो, उस समय शरण कौन है? शरण चैतन्यप्रभु शरण है। जहाँ नजर करने से आनन्द आये, वह शरण है। बाकी सब अशरण है। माता, पिता, इन्द्र, देव कोई शरण नहीं है। आहाहा! शरीर में रोग आये। आहाहा! वह आयेगा।

संसार भावना। उदयभाव जितना संसार। चार गति दुःखरूप है। आहाहा! सर्वार्थसिद्धि के देव का भव करना, वह भी दुःखरूप है। समझ में आया? ऐसी भावना करना। आहाहा! पाण्डव, पाँच पाण्डव, शत्रुंजय यहाँ है न? ऊपर है। ध्यान में थे, मस्त थे। लोहे को अग्निमय करके आभूषण पहनाये। पाँचों मुनि हैं, सन्त हैं, भावलिंगी हैं। तीन तो आत्मा की भावना में लीन होकर केवल (ज्ञान) प्राप्तकर शत्रुंजय (से) मोक्ष चले गये। भगवान ऊपर विराजते हैं। जिस क्षेत्र से मुक्ति हुई, उस क्षेत्र में ऊपर विराजते हैं। आहा! यात्रा का कारण वह है, दूसरा कुछ नहीं। जहाँ-जहाँ से मुक्ति में पधारे, उस-उस स्थान पर जाकर (उनका स्मरण करते हैं कि) भगवान ऊपर विराजते हैं।

उनका स्मरण करने की बात है। समझ में आया? आहाहा! शत्रुंजय से जहाँ-से मुक्ति पधारे उसी क्षेत्र में ऊपर विराजते हैं। सादि-अनन्त। उसमें दो मुनि को विकल्प आ गया। यह भावना कहते हैं ऐसा साधर्मी के प्रति विकल्प आया। बड़े मुनि धर्मराजा, भीम और अर्जुन। ओहो! बड़े भाई हैं, साधर्मी, हैं सहोदर। एक (पेट) से उत्पन्न हुए हम साधर्मी हैं। विकल्प आया कि कैसा होगा? सर्वार्थसिद्धि का बन्ध हो गया। केवलज्ञान दूर हो गया। विकल्प राग है न। ऐसी संसार भावना का विचार करे। ऐसे शुभभाव से भी जहाँ स्वर्ग मिले। तैतीस सागर तक केवलज्ञान नहीं होगा। वहाँ से मनुष्यभव पाकर कुछ काल तक केवलज्ञान नहीं होगा। अहो! ऐसा उदयभाव। उदयभाव ही संसार है। समझ में आया? और मूल तो मिथ्यात्व है, वह संसार है। समझ में आया? पुण्य में धर्म मानना, पाप में मजा मानना... आहाहा! अपनी पूर्णता का अनादर करना, ऐसा मिथ्यात्व है, वह संसार है। ऐसी विचारणा करना। वह तो समकित्ती है, उसकी यहाँ बात नहीं है।

मुमुक्षु : तुष-माष भिन्न क्या होती है, बता दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुष-माष भिन्न से चलेगा नहीं, विपरीतता बहुत हो तो दूसरा बहुत (समझना होगा)। कितनी विपरीतता अन्दर घुस गयी है। साता आदि के। तुष-माष भिन्न में नहीं था, वह तो आनन्द में लीन थे, भावलिंगी सन्त थे। उनको विशेष ज्ञान नहीं था परन्तु आत्मा के आनन्द का अनुभव था। शब्द बहुत याद नहीं रहते थे। परन्तु भाव में तो भाव भावश्रुतज्ञान परिणमन हो गया है। आहाहा! शब्द उनको विशेष ख्याल नहीं था। तुष-माष ऐसा देखा। बहिन! क्या करती हो? एक स्त्री ने पूछा कि क्या करती हो? तुष-माष। छिलके को उड़द से भिन्न करती हूँ। छिलके को उड़द से भिन्न करती हूँ। ओहो! रागादि छिलका है, मेरी चीज़ आनन्दकुन्द अन्दर है। उसमें से केवल (ज्ञान) हो गया। समझ में आया? परन्तु जिसे बहुत विपरीतता घुस गयी हो, उसे इतने संक्षेप से नहीं चलता। समझ में आया?

वह बात हमारे (संवत्) १९८० के वर्ष में चली। १९८० के वर्ष। पचास वर्ष हुए। हम व्याख्यान करते थे। हजारों लोग आते थे। हमारी प्रतिष्ठा बहुत थी। सम्प्रदाय में तो हमारा नाम बहुत था। हमको तो प्रभुरूप से मानते थे। १०००-१५०० लाग।

पचास वर्ष पहले संक्षेप रुचि की व्याख्या चलती थी। दस रुचि है न? संक्षेप रुचि की व्याख्या चलती थी। श्वेताम्बर का उत्तराध्ययन का २८वाँ अध्ययन है। वह पूरा कण्ठस्थ था, वह तो पूरा कण्ठस्थ था, ६००० श्लोक कण्ठस्थ थे। वह चलता था। मैंने ऐसा कहा, संक्षेप रुचि का अर्थ ऐसा नहीं है कि विपरीत दृष्टि बहुत हो और थोड़ा ज्ञान हो और संक्षेप रुचि है, ऐसी यह बात नहीं है। ऐ... देवानुप्रिया! १९८० के वर्ष। और उत्तराध्ययन के उस श्लोक में ऐसा है। ‘अणमिग्गहियकुदिट्ठी’ ऐसा पाठ है। ‘अणमिग्गहियकुदिट्ठी’ और ‘अणमिग्गहिओ य सेसेसु’ एक पद में ऐसे दो बोल हैं। हम तो प्रत्येक पद का अर्थ करते थे न। उस समय भी, पचास वर्ष पहले। तो हमारे जो गुरुभाई थे, उनका ऐसा आग्रह था कि हमारी सम्प्रदाय है, उसकी दृष्टि है, वह सत्य है, बस! दूसरा विशेष भले न हो। उसका नाम संक्षेप रुचि। स्थानकवासी का धर्म है, उसको विशेष ज्ञान न हो परन्तु उस धर्मवाला है, वह संक्षेप रुचि समकिति है। ऐसी बात पचास वर्ष पहले चली। कहा, वह सब झूठ बात है। सम्प्रदाय की दृष्टि है, वह सच्ची दृष्टि है ही नहीं। ‘अणमिग्गहिओ य सेसेसु’ शेष जो विपरीत मार्ग है, उसको ग्रहण किया न हो और ज्ञान अल्प हो तो सम्यग्दर्शन है, उसकी यहाँ बात है। ऐ.. देवानुप्रिया! आपके जैसा ही प्रश्न उस दिन था।

यह तो पचास वर्ष पहले की बात है। हमारे गुरुभाई थे, उनको यह बात रुचि नहीं, सुहाया नहीं। हम तो व्याख्यान करते थे, ऐसा ही करते थे। कोई सम्प्रदाय की विपरीत दृष्टि है और संक्षेप ज्ञान है और संक्षेप रुचि हो जाए, ऐसा है नहीं। हमारे गुरुभाई थे, उसे सहन नहीं हुआ, बाहर बैठे थे। भाग गये, बाहर जंगल में दिशा के लिये चले गये। दिशा समझे? दस्त। आकर बोले, तेरी बात सुनकर मुझे तो ऐसा लगा इसलिए मैं तो भाग गया। नहीं तो उस समय तकरार (हो जाती)। मैंने कहा, रहने दो, तकरार करके क्या काम है? मार्ग यह है। ...धन्नालालजी! ये नारद कहते हैं, उसके भाँति।

विशेष ज्ञान न हो, तुष-माष जितना हो, उसको हो जाता है। परन्तु विपरीत दृष्टि का एक अंश नहीं है, उसके पास। और जितने ३६३ पाखण्ड हैं, उसकी अंश भी रुचि नहीं, सब छूट गया है। उसको थोड़ा ज्ञान हो और आत्मा का अनुभव हो तो संक्षेप रुचि समकित कहने में आता है। धन्नालालजी! आहाहा! यह तो...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह शर्त पहली है। बहुत चर्चा हुई थी। ५० वर्ष पहले बहुत चर्चा (हुई थी)। बाद में एकान्त में बुलाया, एकान्त में चार-पाँच बैठे, १९८० के वर्ष। देखो! तब तक यह बात आप खुली नहीं करोगे तो हम तो आपकी दृष्टि मिथ्या मानते हैं। परन्तु यदि बाहर में खुल्ली करोगे (तो) हम सम्प्रदाय छोड़ देंगे। हम यहाँ नहीं रह सकेंगे। इसलिए गुप्त रखो। खुल्ली बात है, यहाँ गुप्त (रखने की) बात नहीं है। फिर दब गये। पश्चात् शान्ति, छह महीने। बाद में चैत्र शुक्ल-तेरस को तूफान खड़ा किया, मुँहपत्ती ले लो। ले लो। हमारी मुँहपत्ती है ही नहीं। १९८० चैत्र शुक्ल-तेरस। १९८० की चैत्र शुक्ल-तेरस की यह बात है। वह बात १९८० की कार्तिक शुक्ल-पूनम की है। चैत्र शुक्ल-तेरस को मुँहपत्ती छोड़ दी। १९९१ में यहाँ। वह भी तेरस थी। मार्ग... बापू! अन्तर में बैठे, उसके सिवा किसी का बैठे नहीं। दुनिया की कोई असर हमें नहीं लगती कि सम्प्रदाय में हमें बड़ा माने, वह (बात) नहीं। मार्ग तो ऐसा है। पण्डितजी! पण्डितजी... नरम इन्सान है न। आहाहा!

भगवान आत्मा... संक्षेप रुचि। थोड़ा ज्ञान हो, परन्तु विपरीत ज्ञान का अंश नहीं हो। विपरीत मार्ग जितने पाखण्ड जगत में हैं, उस सम्प्रदाय की विपरीत दृष्टि आंशिक भी न हो। ऐसी दृष्टिरहित जिसको थोड़े ज्ञान में आत्मा का अनुभव हुआ हो तो संक्षेप रुचि समकित कहने में आता है। यह तो ५० साल पहले की बात है। यहाँ तो जो है, सो है। यहाँ तो सम्प्रदाय में हम हैं, इसलिए हम उससे बँध गये हैं, ऐसा है नहीं। हम तो जो सत्य है, वह स्वीकार करते हैं। पण्डितजी! ये कहते हैं, थोड़ा ज्ञान हो और ऐसा सब ज्ञान नहीं हो तो? ये ऐसा कहते हैं। दूसरी विपरीत मान्यता अन्दर बहुत घुस गयी हो उल्टी। ऐ... देवानुप्रिया! आहाहा! देवानुप्रिया समझते हो? मनुष्यभव देव को प्रिय है। ऐसा श्वेताम्बर में बहुत चलता है। देवानुप्रिया, ऐसा बोले। हे देवानुप्रिया! तुम्हारा मनुष्यभव तो देव को भी प्रिय है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, संसारभावना। उदयभाव मात्र दुःखरूप है, ऐसी संसार भावना ज्ञानी भाते हैं। स्वर्ग का भव मिले तो भगवान के पास जा सके, ऐसा है नहीं। भव ही संसार है। उदयभाव की विचारणा करते हैं, वह नहीं। ओहो! मैं तो परमपारिणामिक स्वभावमय

चैतन्यबिम्ब हूँ। ऐसे उदयभाव का संसार का विचार करके स्वभाव सन्मुख हो जाए और विकार का त्याग कर दे। उसका नाम संसारभावना है।

एकत्वभावना। मैं अकेला हूँ। मेरे साथ किसी का सम्बन्ध है नहीं। मैं अकेला हूँ। 'एगो मे सासदो अप्पा' नियमसार में (१०२ गाथा में) आता है। 'णाणदंसणलक्खणो। सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा' नियमसार में आता है। 'एगो मे सासदो अप्पा' मैं अकेला शाश्वत चिदानन्द ध्रुव आत्मा हूँ। 'एगो मे सासदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो' मेरा स्वरूप का लक्षण तो जानना-देखना, वह मेरा लक्षण है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि राग, वह कोई मेरा लक्षण और मेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! 'णाणदंसणलक्खणो सेसा मे बाहिरा भावा' शरीर, वाणी, कर्म, देव, गुरु, शास्त्र और पुण्य-पाप भाव, सब बहिर भाव है, मेरे नहीं। आहाहा! धर्मात्मा परीषह और उपसर्ग के काल में ऐसी भावना का विचार करे। समझ में आया ?

अन्यत्वभावना। रागादि सब मेरे से अन्य है। यह एकत्व है, यह अन्य है। राग अन्य है, शरीर अन्य है, स्त्री, कुटुम्ब, देव-गुरु-शास्त्र भी मेरे से तो अन्य है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आता है। आ गया न। इसमें आ गया। नियमसार में है और उसमें भी है। 'एगो मे सासदो अप्पा' ५९ गाथा। 'णाणदंसणलक्खणो सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा।' यह गाथा नियमसार में भी है (१०२ गाथा) और यहाँ भी है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की है। शाश्वत् रहनेवाली चीज़ तो मैं एक ही हूँ। अरे! केवलज्ञान आदि पर्याय भी नाशवान है। आहाहा! केवलज्ञान भी एक समय की पर्याय है, वह नाशवान है। दूसरे समय वह केवलज्ञान की पर्याय रहती नहीं। आहाहा! यह ३८ गाथा में आया है, नियमसार ३८ गाथा। केवलज्ञान आदि पर्याय सब नाशवान है। मैं अविनाशी त्रिकाली आनन्द हूँ। ओहो! ऐसी एकत्वभावना भावे।

अन्यत्व। मेरे से सब अन्य हैं। देव-गुरु और शास्त्र भी अन्य हैं और उनकी भक्ति उत्पन्न होती है, वह भाव भी मेरे से तो अन्य है। समझ में आया ? अन्यत्व।

अशुचि। यह शरीर अशुचि है। माँस, हड्डी और चमड़ा है। अरे! वह तो अशुचि

है, परन्तु पुण्य-पाप का भाव भी अशुचि है। ७२ गाथा, समयसार की ७२ गाथा। शुभभाव अशुचि है, मैल है। आहाहा! भगवान आत्मा शुचि है। वहाँ ऐसा लिया है। भगवान कहकर ही सम्बोधन किया है। भगवान! तेरा स्वरूप तो पवित्र है न, नाथ! शुभभाव तो अशुचि / मैल है। आहाहा! ऐसी भावना करने से उपसर्ग और परीषह का दुःख अथवा प्रतिकूलता का ख्याल छूट जाता है। समझ में आया? अशुचि।

आस्रव। पुण्य और पाप दोनों आस्रव हैं, वह अशुचि है। आहाहा! जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बाँधे, वह भाव भी अशुचि है। ऐसा मार्ग है, भगवान! भाव आता है, वह तो कहा। परन्तु है तो अशुचि। जिससे बन्ध हो, वह शुचि कहाँ से हो? तीर्थकरगोत्र का तो बन्ध पड़ता है, उस भाव से। जिस भाव से बन्ध पड़े, उसमें शुचि कहाँ से आयी? धर्म से बन्ध पड़ता है? तीर्थकरगोत्र जिस भाव से बाँधे, वह भी धर्म नहीं; वह तो अधर्म है। समझ में आया? कहा था न पहले?

(संवत्) १९८५ के वर्ष। ४५ वर्ष हुए। वह भी बोटाद सम्प्रदाय में हजारों लोग सभा में। १९८५ की बात है, पौष मास। जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बाँधे, वह भाव धर्म नहीं। वह आस्रवभाव है। शान्तभाव से कहें तो वह अधर्मभाव है। ऐसा कहा। १९८५, बोटाद। ४५ वर्ष हुए। बड़ी सभा थी, बड़े सेठ गृहस्थ लोग (थे)। बहुत पैसेवाले हैं वहाँ। खलबली! सभा में खलबली नहीं, सभा तो सुने। साधु बैठे थे। (वह) वोसरे... वोसरे... (बोलने लगे)। यह श्रद्धा हमें (स्वीकार नहीं)। भगवान! शान्ति से सुनो तो सही।

ऐसी विचारणा पुण्य-पाप का भाव भी आस्रव है, ऐसी विचारणा करना वह परीषह उपसर्ग के समय शान्ति को लाना और शुभभाव में रहे तो अशुभभाव होता नहीं। ऐसी भावना कहते हैं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१३०-बी, गाथा-९६-९७, गुरुवार, माघ कृष्ण १५, दिनांक २१-०२-१९७४

यह अष्टपाहुड़ है, भावपाहुड़ चलता है। ९६ गाथा। बारह भावना का अधिकार है। पहले तो क्या कहते हैं? पहले तो आत्मा आनन्द और ज्ञायकस्वरूप ध्रुव है, ऐसा अनुभव में पहले सम्यग्दर्शन होता है। उसके बाद क्या बात है, वह इसमें आयेगा। पहले बात आ गयी है। पहले में पहली चीज़ (यह है)। आत्मा पर से भिन्न, शरीर, कर्म से भिन्न और पुण्य-पाप का विकल्प जो है, उससे भी भिन्न और एक समय की पर्याय से भी भिन्न है। ऐसी ध्रुव चीज़ परमानन्द का सामान्यस्वभाव जो एकरूप, उसका आश्रय करके निर्विकल्प सम्यग्दर्शन प्रथम होता है। उसमें जितने अनन्त गुण हैं, उन सब गुण का अंश सम्यग्दर्शन होने पर सब गुण का अंश प्रगट होता है। समझ में आया? सर्व गुणांश, वह समकित, ऐसा श्रीमद् का शब्द है। अपने रहस्यपूर्ण चिट्ठी में (भी आता है)।

सम्यक्, अनन्त गुण जो आत्मा वस्तु की अपेक्षा एक है, परन्तु शक्तियाँ—गुण-स्वभाव-भाव सत् का पूर्ण सत्त्व ऐसी सत्त्व (स्वरूप) उसमें अनन्त शक्ति है। एक-एक शक्ति में अनन्त सामर्थ्य है। ऐसा अनन्त गुणरूपी आत्मा का सामर्थ्य जो स्वभाव, उसकी ध्रुवता नित्यता 'भूदत्थमस्सिदो खलु।' ग्यारहवीं गाथा। भूतार्थ सत्यार्थ एक समय में त्रिकाल वस्तु की दृष्टि करने से, उसका आश्रय करने से प्रथम सम्यग्दर्शन होता है। इस सम्यग्दर्शन में अपना आनन्दस्वभाव है, उसका स्वाद आता है और उस सम्यग्दर्शन में जो वीर्य नाम का गुण है, वह शुद्धता की पर्याय की रचना करता है, ऐसा प्रतीति में आता है। समझ में आया? शुभ-अशुभभाव की रचना करे, वह वीर्य नहीं।

अपने स्वरूप में एक वीर्य नाम का गुण है। वह अपनी जितनी शक्तियाँ हैं, उन सबकी शुद्धपने पवित्रपने आनन्दपने स्वच्छतापने स्वतन्त्रता के अखण्ड प्रताप से शोभित, ऐसी अनन्त पर्याय की निर्मलता की वीर्य रचना करे, ऐसा प्रतीति में पहले आता है। सूक्ष्म बात है, भगवान! पहले सम्यग्दर्शन चीज़ ही ऐसी है। उसे प्राप्त किये बिना जो कोई व्रतादि या नियमादि है, वह तो विकल्प है, वह तो बन्ध का कारण है। भगवान आत्मा अबन्धस्वरूपी है, पहले बात आ गयी है। जिनभावना। जिनभावना का अर्थ ही

यह है कि वीतरागी पर्याय से अपने त्रिकाल स्वभाव की दृष्टि-रुचि करना और उसमें एकाग्र होना, उसका नाम जिनभावना कहो, सम्यग्दर्शन कहो, वीतरागी पर्याय कहो या मोक्षमार्ग स्वभाव के आश्रय से एकाग्र होता है तो उसको मोक्षमार्ग कहो, वह होने के बाद की यहाँ बात है। क्या कहते हैं ?

बारह भावना भाते हैं। मुख्य मुनि की बात है, (उनके) उद्देश्य से बात करते हैं। मुनि को आत्मदर्शन, आत्मा का अनुभव उपरान्त मुनि को तो स्वसंवेदन प्रत्यक्ष बहुत आनन्द की प्राप्ति का अनुभव है। समझ में आया ? स्वसंवेदन प्रचुर। वह पाँचवीं गाथा में है। समयसार। प्रचुर स्वसंवेदन। साधुपना कोई नग्नपना या महाव्रत का विकल्प, वह कोई साधुपना नहीं। अन्तर आत्मा का प्रचुर विशेष स्व—अपना सं—प्रत्यक्ष आनन्द का प्रचुर वेदन आना, उसका नाम मुनिपना है। इस मुनिपने में ऐसी भावना भाना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

यहाँ तक अपने आया है—आस्रवभावना, आस्रवभावना। सम्यग्दृष्टि जीव आस्रवभाव का विचार करते हैं तो ऐसा करते हैं कि जो शुभ और अशुभ दोनों भाव अशुचि और मैल है और शुभ-अशुभ दोनों भाव जड़ हैं। उसमें ज्ञानानन्दस्वभाव भगवान, ज्ञान की पर्याय अशुद्ध भाव में आस्रव में आती नहीं। आहाहा! चाहे तो व्रत का विकल्प हो या अव्रत का विकल्प हो, भगवान की भक्ति का विकल्प हो, सब आस्रव है और वह जड़ है। ७२ गाथा में आया है। समयसार ७२ (गाथा) में आया है। आहाहा! ऐसी आस्रवभावना का विचार करे और वह पुण्य और पाप का भाव दुःखरूप है। वह तीसरा बोल है। अशुचि है, जड़ है, दुःखरूप है। भगवान आत्मा शुचि-पवित्र है, चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा है और आनन्दस्वरूप है। आहाहा! ऐसी आस्रव की विचारणा करना, उसका नाम आस्रवभावना है। है तो शुभ विकल्प। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ... संवर कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संवर कहा है, परन्तु यहाँ तो अभी नव की विचारणा है न। समझ में आया ? अनुप्रेक्षा को तो वहाँ संवर कहा है। यहाँ पच्चीस महाव्रत की भावना और इस भावना को साथ में लेकर बात कही है। समझ में आया ?

जैसे दशलक्षण धर्म है, वह तो अपनी पवित्र दशा है, उसका नाम दशलक्षण है। परन्तु दशलक्षण धर्म में भी शुभ विकल्प उठते हैं, उसको भी दशलक्षण धर्म का आरोप (करते हैं)। कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है। समझ में आया? विकल्प उठता है न दशलक्षण धर्म की विचारणा में? वह आगे आयेगा। धर्मभावना आती हैं न, उसमें आयेगा।

यहाँ तो मात्र आस्रव की विचारणा (करते हैं)। बापू! यह तो अपूर्व बात, है भगवान! अनन्त काल में उसने कभी आत्मा की प्राप्ति की नहीं। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' मुनिव्रत धार दिगम्बर सन्त होकर... 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' ... पंच महाव्रत का परिणाम, व्यवहार समिति, गुप्ति का भाव दुःखरूप है। क्योंकि ऐसे पंच महाव्रत आदि मुनिव्रत लिया परन्तु आत्मसुख नहीं पाया। उसका अर्थ कि दुःख पाया। धन्नालालजी! बात ऐसी है, भगवान! आत्मज्ञान बिन लेश सुख (न पायो)। आस्रवभाव, पंच महाव्रतादि भाव सब दुःखरूप है। आहाहा! और वह दुःख का कारण है, वह आत्मा की शान्ति का कारण आस्रवभाव शुभभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी विचारणा सम्यग्दृष्टि जीव (करते हैं)। आहाहा! अपने स्वभाव सन्मुख अनुभव हुआ है और अनुभव में सम्यग्दर्शन में आनन्द आया है। इस आनन्द की भूमिका में ऐसा विचार करते हैं। समझ में आया? वीतराग मार्ग है, भगवान! अपूर्व सूक्ष्म बात है। यह कोई बाहर से मिल जाए ऐसी चीज़ नहीं। कहते हैं कि आस्रवभाव की विचारणा इस प्रकार करे।

संवरभावना। राग के विकल्प से भिन्न होकर अपनी चीज़ में लीनता करना, वही संवर है। ऐसी संवरभावना का विचार समकिति करे। वैसे तो बारह भावना को संवर में डाला है। कहा न? तत्त्वार्थसूत्र में। उस बारह भावना में जो विकल्प उठता है, उसमें स्वभाव का आश्रय और लक्ष्य करके ऐसी भावना में शुभभाव आता है। धन्नालालजी! ऐसी बात है। संवरभावना। आहाहा! राग पुण्य-पाप के विकल्प से मेरी चीज़ भिन्न है, उसमें लीनता का होना, शुद्धता की उत्पत्ति होना, शुद्धभाव और शुद्ध उपयोग उत्पन्न होना वह संवर है। आहाहा! तत्त्व की वास्तविकता भी जिसकी व्यवहार श्रद्धा में भी नहीं है, उसको वास्तविक अनुभवदृष्टि तो होती नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं?

संवरभावना। और निर्जराभावना। सम्यग्दृष्टि चैतन्य का अनुभव होने पर भी

और अपने स्वभाव के सन्मुख होने पर भी उसको निर्जरा की विचारणा आती है। निर्जरा तीन प्रकार की है। एक, अपने शुद्ध उपयोग में आना, वह शुद्ध उपयोग ही निर्जरा है। समझ में आया? शुभ-अशुभ से रहित अपने चैतन्य का उपयोग शुद्ध आचरण में आना, उस शुद्ध उपयोग को भी निर्जरा कहा है और अशुद्ध उपयोग का नाश हो, वह निर्जरा है। और उसका निमित्त पाकर कर्म की निर्जरा हो, वह सद्भूतव्यवहारनय से कर्म की निर्जरा कहने में आती है। समझ में आया? जब चैतन्यस्वभाव भगवान पूर्ण आनन्द का नाथ जिसने अन्तर में दृष्टि में आलम्बन में—आश्रय में लिया है, वह ऐसी भावना करते हैं कि ओहो! मेरी चीज़ में शुद्ध उपयोग से लीन होना, वह निर्जरा है। वह अस्ति से कहा।

अशुद्ध परिणाम का, शुभाशुभभाव दोनों अशुद्ध है, उसका नाश होना, वह भी निर्जरा है। और ऐसा शुद्धभाव का निमित्त होने से कर्म में जो निर्जरा स्वतन्त्र उसके कारण से जो कर्म की पर्याय है, उसमें से कुछेक अकर्म पर्याय हो जाए। समझ में आया? वह कर्म के कारण से (होता है)। ऐसी विचारणा सम्यग्दृष्टि अपनी अनुभूति की पर्याय में सावधान है... आहाहा! समझ में आया? तो ऐसी विचारणा करते हैं।

मुमुक्षु : निर्जरा...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी है, यह तो बहुत बार आ गया है। प्रवचनसार में है, पंचास्तिकाय में है। पंचास्तिकाय में है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो स्पष्टीकरण करना पड़ा। कर्म की निर्जरा, वह तो जड़ की निर्जरा है, उसके साथ आत्मा का क्या सम्बन्ध? अपना चैतन्य शुद्धस्वरूप वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा है, आत्मा वीतरागस्वभावी वीतरागस्वरूपी आत्मा है। आहाहा! उसके अन्दर शुद्ध उपयोग से लीनता करना। कितने ही कहते हैं शुद्ध उपयोग तो अभी है नहीं। आहाहा! तब तो धर्म है नहीं, समकित है नहीं, कुछ नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सौ प्रतिशत झूठी। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा...

बापू! प्रभु! पूर्ण सम्पदा आनन्द की सम्पदा से तो तेरा नाथ भरा पड़ा है। आहाहा! उसमें शुद्ध उपयोग को लगाना... आहाहा! सम्यग्दर्शन तो है, उसकी बात है। समझ में आया? इसके उपरान्त अन्तर में ध्रुव चैतन्य की दृष्टि है, उस ध्रुव में उपयोग लगाना। आहाहा! जगत तो ऐसे ही अनन्त काल से चला जा रहा है। इस चीज़ को समझा नहीं कभी। आहाहा! मुनिव्रत ले लिया, श्रावक के बारह व्रत भी अनन्त बार लिये, वह तो सब आस्रव है, उसमें धर्म कहाँ? धरमचन्दभाई! आहाहा!

कहते हैं, निर्जराभावना। तीन प्रकार की निर्जरा कही। शुद्ध उपयोग वह शुद्धनिश्चय से निर्जरा। अशुद्ध उपयोग का नाश वह अशुद्धनिश्चय से निर्जरा और कर्म की निर्जरा वह असद्भूतव्यवहारनय से निर्जरा। समझ में आया? वस्तु ऐसी है, भगवान! यहाँ तो आत्मा को भगवान कहकर ही बुलाते हैं। भगवान पूर्णानन्द का नाथ है। भग अर्थात् आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मीवान तुम तो हो। राग और पुण्यवाले तुम नहीं हो। वह तो आस्रव है। आत्मा आस्रववाला है? आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्यलिंगी मुनि ऐसी भावना करता होगा या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान में विकल्प से करे, परन्तु वस्तु का भान नहीं है। बारह अंग पढ़ा है तो उसको विचारणा तो आती है, परन्तु वह विकल्प की विचारणा है। यह तो निर्विकल्प दृष्टिपूर्वक विकल्प आता है, उसकी बात है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी ... होता नहीं। प्रतिक्षण बन्धन होता है। क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : अन्तिम ग्रैवेयक गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तिम ग्रैवेयक गया, उसमें क्या हुआ? मक्खी यहाँ-से उड़कर लकड़ी में गयी तो क्या ऊपर गयी? मनुष्य में ऊँची हो गया, मक्खी है, वह उड़कर ऊपर जाती है तो मनुष्य से ऊँची हो गयी? ऐसे शुभभाव से ऐसी शुक्ललेश्या होती है। अभव्य को भी होती है, भव्य को भी होती है। शुक्ललेश्या से नौवीं ग्रैवेयक जाओ, वह शुक्ललेश्या बन्ध का कारण है। भगवान आत्मा अबन्धस्वरूप- 'अबद्धपुट्टं' ऐसा पर के बन्धन से रहित, ऐसी अन्दर में अबद्धस्वरूप चैतन्य, अस्ति से कहें तो

मुक्तस्वरूप भगवान हैं। अबद्धस्वरूप तो पर की नास्ति की अपेक्षा से कहा। मुक्तस्वरूप भगवान का स्पर्श न हो और भगवान आत्मा का अन्दर में वेदन न हो, तब तक तो वह मिथ्यादृष्टि है। मार्ग तो परमात्मा का ऐसा है, प्रभु! कहो, समझ में आया? क्या कहा? ऊपर नौवीं ग्रैवेयक गया तो क्या निर्जरा हो गयी? अकामनिर्जरा है। अशुभ का कुछ अभाव हुआ। परन्तु अशुभ जो मिथ्यात्व है, उसका तो अभाव हुआ नहीं। मूल अशुभ तो मिथ्यात्व है। ऐसा अभाव किये बिना अकेली अकामनिर्जरा उसको कुछ लाभदायक नहीं। नौवीं ग्रैवेयक गया। 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो, फिर पीछे पटक्यो।' वह सज्जाय में आता है। मिथ्यादृष्टि को राग की रुचि है, अपने द्रव्य की रुचि तो हुई नहीं। अपना भगवान आनन्दस्वभाव का तो प्रेम आया नहीं और शुभभाव का प्रेम गया नहीं। आहाहा! उसको तो आत्मा प्रति द्वेष है। जिसको शुभराग का प्रेम है, उसको आत्मस्वभाव के प्रति द्वेष है। आहाहा!

आनन्दघनजी कहते हैं। श्वेताम्बर। 'द्वेष अरोचक भाव।' संभवनाथ की स्तुति की है। तीसरे संभवनाथ भगवान। संभवदेव... लही प्रभु सेव न... सेवन कारण प्रथम भूमिका, उभय अद्वेष अखेद...' ऐसा लिया है। अद्वेष की व्याख्या ऐसी की है। आत्मा के प्रति प्रेम होना और राग प्रति का प्रेम छूट जाना वह अद्वेष भाव है। परन्तु राग के प्रति प्रेम रहना और स्वभाव के प्रति रुचि और प्रेम नहीं रहना, वह द्वेष है। आहाहा! परमात्मा के मार्ग में स्पष्ट है। तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर तीन काल-तीन लोक देखकर, वाणी तो वाणी के कारण उत्पन्न हुई। वाणी में स्व-पर यथार्थ कहने की ताकत है। वाणी में भी स्व-पर की कथा करने की ताकत है। वाणी भगवान की ऐसी आयी... आहाहा! निमित्त से कहने में आता है, वाणी तो वाणी की है। आहाहा! निर्जरा। जिसमें पवित्रता की परिणति प्रगट न हो, वह निर्जरा कहाँ-से आयी? वह भावना (हुई)।

लोकभावना। चौदह राजूलोक सर्वज्ञ ने कहा, ऐसी विचारणा है तो विकल्प, परन्तु अन्दर में दृष्टिपूर्वक अन्तर विचारधारा चलती है तो उस अपेक्षा से जितनी अन्दर में स्थिरता है, उस अपेक्षा से संवर कहा और विकल्प की अपेक्षा से उसको आस्रव कहा। आहा!

बोधिदुर्लभ। अहो! सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य ये तीनों मिलकर बोधि कहने में आता है। बोधिदुर्लभ है। जगत का पदार्थ मिलना वह तो सुलभ है। समझ में आया? पैसा मिलना, लक्ष्मी मिलना, इज्जत मिलना, स्त्री, कुटुम्ब अनुकूल मिलना, स्वर्ग मिलना, वह तो सुलभ है। आत्मा की दृष्टि, ज्ञान और लीनता होना, वह दुर्लभ है। समझ में आया? कुछ व्रत पालना और लेना, वह कोई दुर्लभ चीज़ नहीं। वह तो अनन्त काल से उसने शुभभाव लिया है, वह तो सुलभ है। समझ में आया? भगवान आत्मा... पर्याय में ऐसी विचारणा होती है। आहाहा! बोधिदुर्लभभावना। अहो! भगवान आत्मा, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान और उसमें लीनता—निर्विकल्पदशा, तीनों की एकता दुर्लभ है। समझ में आया? कोई पुण्य पाना और पुण्य की लक्ष्मी दो, पाँच करोड़-धूल मिलना वह कोई दुर्लभ नहीं, सुलभ है। दूसरी दृष्टि से कहें तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान पाना सुलभ है। क्योंकि अपने आत्मा के आश्रय से स्वतन्त्र उत्पन्न होता है और पैसे आदि मिलना, वह दुर्लभ है। क्यों? -कि पूर्व का पुण्य हो तो मिलता है; पुरुषार्थ से मिलता नहीं। ... है न? क्या कहते हैं? तत्त्वज्ञान तरंगिणी में है। तत्त्वज्ञान तरंगिणी है न? शुभचन्द्राचार्य की बनायी हुई, उसमें है। दो बात कही। अपनी चीज़ है परन्तु उस चीज़ की दृष्टि और ज्ञान और शान्ति प्राप्त करना तो दुर्लभ है। क्योंकि अनन्त काल में हुआ नहीं और ये लक्ष्मी आदि, आबरू आदि, शरीर सुन्दर, स्त्री अनुकूल मिलना तो सुलभ है। फिर गुलॉट मारकर बात करते हैं, लक्ष्मी और शरीर की सुन्दरता और अनुकूलता मिलना दुर्लभ है। क्योंकि पुरुषार्थ आधीन नहीं, वह तो पूर्व का पुण्य हो तो मिलता है और सम्यग्दर्शन, ज्ञान सुलभ है। क्योंकि कोई पर का आश्रय उसमें है नहीं। आहाहा! समझ में आया? तत्त्वज्ञान तरंगिणी में दो बोल लिये हैं। वह तो अनेक प्रकार से विचित्र बात (कही है)। वस्तु की स्थिति मर्यादा है, वह कहते हैं। आहाहा!

यहाँ तो बोधिदुर्लभभावना की बात है। ओहो! दुर्लभ्य। दुर्लभ है न? दुर्लभ्य। महा पुरुषार्थ से प्राप्त होता है।

मुमुक्षु : ...जरूरत नहीं है?

पुण्य गुरुदेवश्री : इसमें पुण्य की जरूरत जरा भी नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे तो लाभ होता ही नहीं। सुनने से धर्म होता है, ऐसा है नहीं। अनन्त बार भगवान की वाणी समवसरण में सुनी। केवली आगल रही गयो कोरो।' यह हमारी गुजराती भाषा है। सज्जायमाला है न? चार है। श्वेताम्बर में चार सज्जायमाला है। एक सज्जायमाला में सज्जाय होती है। समझे न? 'सहजानन्दी रे आतमा... सहजानन्दी रे आतमा... केम सूतो तुं निश्चिंत रे, मोह तणा रे रणिया भमे।' अरे! तू क्यों निश्चिंत सूतो? प्रभु सर पर मोह का, राग और द्वेष का देणा है। देणा समझते हो? देणा को क्या कहते हैं? कर्ज। 'मोह तणा रणिया भमे।' 'जाग... जाग मतिवन्त रे... लूंटे जगतना जंत रे...' जगत के जन-स्त्री (कहती है), फिर हमसे क्यों विवाह किया? वह सब लूटनेवाले इकट्ठे हुए हैं। क्या कहा? वह नियमसार में आता है न? ठगों की टोली तुझे मिली है। पण्डितजी! स्त्री, पुत्र, माँ-बाप सब ठगों की टोली है। नियमसार में आया है।

मुझे तो दूसरा कहना है। ऐसी सज्जाय है वैसी बहुत है। वैसी २००-३०० सज्जाय हैं। ऐसे-ऐसे चार पुस्तक है। हम तो दुकान पर थे, तब सब पढ़ा था। संवत् १९६५-६६ का वर्ष। हमारे तो निवृत्ति थी। पिताजी की दुकान थी। सब सज्जाय देखी है। उसमें यह एक आया था कि 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो, फेर पीछो पटक्यो' और 'केवली आगण रही गयो कोरो।' ये दो शब्द आये थे। वीरचन्दभाई! आहाहा! केवली आगण रही गयो कोरो।' समझते हो? कि केवली की सभा में गया परन्तु कोरा रहा, तूने आत्मा की दृष्टि की नहीं। आहाहा! सेठ! सुना, भगवान के पास सुना।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बारह प्रकार की सभा, बारह कोस चौदह योजन में सब शान्ति से सुनते हैं। पशु भी अपनी भाषा में समझ जाते हैं। समवसरण में ऐसा सुना। परन्तु अन्तर चीज जो भगवान कहते थे कि राग और पर्याय जितना आत्मा नहीं; वह तो त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द है। उस ओर की दृष्टि नहीं की। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : संस्कार देनारो नजदीक आवे तो थाय।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ करे तो संस्कार देनेवाला नजदीक आवे पुरुषार्थ किये

बिना आता है ? अपने स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ करे तो उसके संसार का किनारा आ गया। समझ में आया ? आहाहा ! कहा न ? परित संसार हो गया। आत्मा के स्वरूप की अनुभव दृष्टि हुई... समझे ? परित संसार हो गया। संसार अल्प रहा। शास्त्र में—धवल में आता है। समझ में आया ? परित-अपरित संसार की व्याख्या चलती है न। धवल में बहुत बात है। सम्यग्दर्शन पाने से संसार परित हो गया। क्योंकि मिथ्यात्व का नाश हुआ, वह मिथ्यात्व ही अपरित संसार था। अनन्त संसार का कारण जो मिथ्यात्व था, उसको जिसने भगवान आत्मा के अवलम्बन से नाश किया, उसका अपरित संसार-अनन्त संसार का नाश हुआ। अल्प रहा। एक, दो भव, पाँच भव (रहे)। आहाहा ! पुरुषार्थ हुए बिना मिल जाए, (ऐसा नहीं है)। आहाहा !

मुमुक्षु : अंजन चोर....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कुछ हुआ नहीं, उसे हुआ नहीं। बहुत पुरुषार्थ किया, तब अन्तर निर्विकल्प दृष्टि (हुई), तब उसे समकित हुआ है। अंजन चोर में तो मात्र व्यवहार समकित का एक अंश निःशंक गिनकर व्यवहार गिना और व्यवहार का निश्चय में आरोप करके कहा। बाकी अंजन चोर में समकित नहीं था। ऐई ! निःशंक का एक अंश व्यवहार का गिनकर उसे व्यवहार समकित कहा और व्यवहार का आरोप करके भविष्य में निश्चय पानेवाला ही है, इसलिए उसे निश्चय में गिना। आहाहा !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह झूठी वस्तु है। मोक्षमार्गप्रकाशक में स्पष्टीकरण किया है कि अंजन चोर को ... मोक्षमार्गप्रकाशक में है। वहाँ तो उसे व्यवहार समकित भी नहीं था। व्यवहार समकित में तो निःशंक आदि की बात है और ये तो एक ही ... था। परन्तु वह भविष्य में निश्चय सम्यक् अनुभव आत्मा के आश्रय से पानेवाला जीव है तो उसमें व्यवहार के अंश का-व्यवहार का आरोप किया और व्यवहार में निश्चय का आरोप किया। ऐसे कथन किया। समझ में आया ? आहाहा ! बोधिदुर्लभभावना (हुई)।

धर्मभावना। धर्मी धर्म की विचारणा करते हैं। वीतरागी स्वरूप मेरा धर्म है। निर्मल शुद्ध निर्लोभता, अकिंचनता इत्यादि मेरी दशा-वीतरागी दशा धर्म है। आहाहा !

ऐसी धर्म की विचारणा करते हैं। सम्यग्दृष्टि सहित की बात है। सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ ... की भावना होती नहीं। और पच्चीस भावनाओं का भाना... पाँच महाव्रत की पच्चीस भावना है तो विकल्प। क्योंकि महाव्रत स्वयं विकल्प, आस्रव है। परन्तु उसके अतिचार टालने को ऐसी विचारणा करते हैं। स्वभाव की दृष्टि-आश्रय, लक्ष्य रखकर। ऐसी बात है। इतनी शर्त है। इस शर्त के बिना बात नहीं। ऐसी बात है, भगवान! क्या कहे? पच्चीस भावना। है तो पच्चीस भावना विकल्प, राग, परन्तु उस विचारणा में रुकने से अशुभ नहीं होता है, परन्तु शुद्ध का तो लक्ष्य है। तो उसकी भावना भाना, (ऐसा) व्यवहार से कहने में आया है।

इनका बारम्बार चिन्तन करने से कष्ट में परिणाम बिगड़ते नहीं हैं,... बस, यह बात है। प्रतिकूल परीषह और उपसर्ग हो तो ऐसी विचारणा रहने से कष्ट अर्थात् दुःखदायक परिणाम उत्पन्न नहीं होता। समझ में आया? ९६ (गाथा पूरी हुई)। अब ९७। देखो! यह कुन्दकुन्दाचार्यदेव! भावपाहुड़ में १६५ गाथा है। भावपाहुड़ की १६५ गाथा हैं।



गाथा-९७

आगे फिर भाव शुद्ध रखने को ज्ञान का अभ्यास करते हैं -

सव्वविरओ वि भावहि णव य पयत्थाइं सत्त तच्चाइं ।

जीवसमासाइं मुणी चउदसगुणठाणणामाइं ॥९७॥

सर्वं विरतः अपि भावय नव पदार्थान् सप्त तत्त्वानि ।

जीवसमासान् मुने! चतुर्दशगुणस्थाननामानि ॥९७॥

हो सर्व विरति भी मुनी! भाओ सदा नौ अर्थ को।

गुणस्थान जीव-समास चौदह कहे सातों तत्त्व को ॥९७॥

अर्थ - हे मुने! तू सब परिग्रहादिक से विरक्त हो गया है, महाव्रत सहित है तो भी भाव विशुद्धि के लिए नव पदार्थ, सप्त तत्त्व, चौदह जीवसमास, चौदह गुणस्थान, इनके नाम लक्षण भेद इत्यादिकों की भावना कर ।

भावार्थ - पदार्थों के स्वरूप का चिन्तन करना, भावशुद्धि का बड़ा उपाय है इसलिए यह उपदेश है । इनका नाम स्वरूप अन्य ग्रन्थों से जानना ॥९७॥

गाथा-९७ पर प्रवचन

आगे फिर भाव शुद्ध रखने को ज्ञान का अभ्यास करते हैं - यह ज्ञान के अभ्यास की बात है ।

सव्वविरओ वि भावहि णव य पयत्थाइं सत्त तच्चाइं ।

जीवसमासाइं मुणी चउदसगुणठाणणामाइं ॥९७॥

आता है न । व्यवहार बीच में होता है न । निर्विकल्पदशा शुद्ध उपयोग नहीं हो, निर्विकल्प दृष्टि और निर्विकल्प उपयोग में सम्यग्दर्शन हुआ । समझ में आया ? परन्तु बाद में विकल्प उत्पन्न होता है या नहीं ? वीतरागदशा नहीं है, तब तक राग तो उत्पन्न होता है । तो अशुभराग टालने को ऐसे शुभराग की भावना करना, ऐसा कहने में आया । समझ में आया ? निश्चय सम्यग्दर्शन हो या निश्चय मुनिपना हो, परन्तु व्यवहार आता है या नहीं ? देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, विनय (का भाव आता है) ।

समन्तभद्राचार्य तो ऐसा कहते हैं, चौबीस (तीर्थकर) की स्तुति है न ? भगवान की चौबीस स्तुति की है न ? समन्तभद्राचार्य (कहते हैं), प्रभु ! मुझे तो आपकी भक्ति का व्यसन हो गया है । उसमें आता है । भाई ! चौबीस (स्तुति में) । मुझे तो प्रभु ! यह व्यसन हो गया है । त्रिलोकनाथ चैतन्य भगवान वीतरागमूर्ति की भक्ति का विचार मुझे बहुत आता है, व्यसन हो गया है । है तो दृष्टि निर्मल सम्यक् । समझ में आया ? हे जिनेन्द्रदेव ! परमात्मा पूर्णानन्द पुरुष प्रभु, मेरी दृष्टि द्रव्य पर तो है ही । मैं सम्यग्दृष्टि हूँ, परन्तु मुझे आपकी भक्ति के विकल्प का व्यसन हो गया है । आहाहा ! वह विकल्प

आता है। अशुभ से बचने को (आता है)। समझ में आया? अशुभ वंचनार्थ, ऐसा पाठ है। पंचास्तिकाय। धन्नालालजी!

ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे तहां समझवुं तेह,
त्यां त्यां ते ते आचरे आत्मार्थी जन अेह।

व्यवहार के स्थान में व्यवहार आता है। धर्मी जानता है कि यह शुभराग है। निश्चय से हेय है, परन्तु व्यवहार से अशुभ से बचने को सम्यग्दृष्टि को भी, मुनि को भी आता है। परन्तु जानते हैं कि वह आस्रव है। आहाहा! वीतरागमार्ग कहीं नहीं है। सर्वज्ञ परमात्मा, उसमें जो दिगम्बर सन्तों ने मार्ग कहा, न भूतो न भविष्यति, कहीं और जगह नहीं है। समझ में आया? ऐसी चीज़ की सर्वज्ञ अनुसारिणी वाणी में सब स्पष्ट कर दिया है। अमरचन्द्रभाई! आहाहा! उसमें भी कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे, महाविदेह में। आहाहा!

श्वेताम्बर में एक बात आती है, भाई! भगवान जब पधारे न? जब राजा को बात करे न? महाराज पधारो, भगवान पधारे हैं। तुझे आजीवन धन्धा नहीं करना है। भगवान तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ। यह तो प्रतिमा है। आहाहा! ऐसा पाठ आता है। सब देखा है न। श्वेताम्बर शास्त्र करोड़ों (श्लोक) देखे हैं। ऐसा पाठ आता है। ऐसी भाषा में सुना नहीं? कि भगवान जब पधारते हैं, या कोई सन्त, गणधर आदि या मुनि महाराज (कहते हैं), साहेब! कल यहाँ भगवान पधारनेवाले हैं। तो जो यह (बात) राजा को सुनाते हैं तो सुनानेवाले को वहाँ स्थान देकर (कहते हैं), तुझे आजीवन व्यापार करना नहीं है। इतनी उसे जमीन और पैसा देते हैं। अरे! त्रिलोक के नाथ का हमको स्मरण करवाया। तुझे कमाना नहीं पड़ेगा, जाओ! लाखों, करोड़ों रुपये देते हैं। ऐई! भक्ति का भाव है, भक्ति का भाव आता है। जानते हैं कि है शुभराग, परन्तु आये बिना रहे नहीं। आये, नहीं आये; तो अशुभराग हो जाए। इस कारण से भगवान की भक्ति का कारण है। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, अशुभ वंचनार्थ। आता है। आहाहा! अयोग्य स्थान में भाव नहीं जाए, इसलिए भी आता है। दो आया है, दो भाव आये हैं। आहाहा! परन्तु उसकी मर्यादा जाननी चाहिए। उसकी मर्यादा पुण्य जितनी है। उसकी मर्यादा धर्म समझ ले (तो विपरीतता हो जाती है)।

भगवान! यहाँ तो जितना जितना स्वभाव है, उतना उसको मानना। उससे अधिक, विपरीत मानना, वह तो विपरीत दृष्टि है। आहाहा! अरे! ऐसा मनुष्यभव मिला, उसमें ऐसी दृष्टि होकर ऐसी भावना करना, ऐसी बात यहाँ चलती है। आहाहा! जन्म-मरण के अन्त की बात है, प्रभु!

अर्थ - हे मुने! मुनि के उद्देश्य से मुख्य बात है न। तू सब परिग्रहादिक से विरक्त हो गया है,... मुनि को तो कपड़े का टुकड़ा भी नहीं होता। अन्तर में जिसको तीन कषाय का अभाव हुआ, उसको कपड़ा लेने का विकल्प ही नहीं होता। और कपड़ा लेने का विकल्प हो, वहाँ मुनिपना होता नहीं। वस्तुस्थिति ऐसी है। यह कोई सम्प्रदाय की चीज़ नहीं। समझ में आया? वह कहते हैं, देखो! सब परिग्रहादिक से विरक्त हो गया है,... आहाहा! तुझे स्त्री, कुटुम्ब, परिवार तो है नहीं, परन्तु वस्त्र, पात्र भी नहीं। आहाहा! क्योंकि परिग्रह है।

मुनि को... कुन्दकुन्दाचार्य ने तो कहा, तिलतुष मात्र भी परिग्रह रखे और हम साधु हैं, ऐसा माने तो निगोद गच्छई। समझ में आया? क्या ककड़ी के चोर को फाँसी, ऐसा कहा है? नहीं। इसमें नव तत्त्वों की भूल हो गयी। जिसने वस्त्र रखकर मुनिपना माना, उसको नवों तत्त्वों की भूल है, एक तत्त्व की नहीं। क्योंकि मुनिपना जहाँ छठवें गुणस्थान में हैं, वहाँ तो आत्मा का उग्र आश्रय है और उग्र आश्रय है तो वहाँ संवर दशा भी उग्र उत्पन्न हुई है। उस उग्र संवर में आस्रव का विकल्प होता है तो मात्र आहार-पानी लेना या विनय करना या सुनना, इतना विकल्प होता है। अट्टाईस मूलगुण आदि के विकल्प होते हैं। इतना जिसने नहीं जाना, उसे वस्त्र लेना ऐसा विकल्प तीव्र आस्रव है। और तीव्र आस्रव है तो संवर नहीं है। तो संवर में भूल, आत्मा के आश्रय में भूल, आस्रव में भूल, अजीव संयोग में (भूल)। जब मुनिपना हुआ, तीन कषाय का अभाव (हुआ) तो वस्त्र-पात्र अजीव के संयोग का अभाव होता है। अजीव का ज्ञान भी उसका सच्चा नहीं है। ऐसे ही शब्द कह दिया है कि वस्त्र रखे तो निगोद में जाएगा? वह कारणसर है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य नौ तत्त्वों की भूल उसमें कहते हैं। समझ में आया? जहाँ वस्त्र लेने का भाव है, वहाँ मुनिपने की संवर दशा है ही नहीं। और संवर

मान ले तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसी बात है। आहाहा! बहुत कठिन। पहले श्रद्धा में भी सच्चापना नहीं आया तो उसको मुनिपना कहाँ से आयेगा ?

कहते हैं, 'सर्व विरतः अपि', ऐसा शब्द है न? पहला बोल। प्रभु! मुनि तुझे तो सर्व परिग्रह से विरक्त भाव हो गया है। आहाहा! जिसके लिये आहार करके लेना, वह भी विकल्प उठ गया है। उसके लिये आहार बनाया हो और ले, वह भी भ्रष्ट है। समझ में आया? सब परिग्रहादिक... परिग्रह आदि है न? उस सम्बन्धी ममता और उस सम्बन्धित संयोगीभाव, सब छूट गया है। आहाहा! महाव्रत सहित है... है न? 'सर्व विरतः अपि भावय'। महाव्रत सहित है। तुझे महाव्रत का विकल्प है। आहाहा! सम्यग्दर्शन अनुभव सहित, अनुभूति आत्मा की हुई है। इसके उपरान्त उसको ममता का त्याग बहुत हो गया है और उसको महाव्रत के परिणाम का भाव आता है। उस भूमिका में महाव्रत का भाव है आस्रव। वह आये बिना रहे नहीं। उसका भाव छूट जाए तो सप्तम गुणस्थान हो जाए। आहाहा! इतना प्रमाद है। कहते हैं, महाव्रत का भाव आया तो भी भाव विशुद्धि के लिए... फिर भी भाव के स्वभाव की शुद्धि के लक्ष्य से अशुभभाव टालने को शुभभाव में ऐसी विचारणा तुझे आती है।

नव पदार्थ,... नव पदार्थ की विचारणा। जीव जो है, वह तो शुद्ध चैतन्यघन पूर्णानन्द है, ऐसी विचारणा (करते हैं)। दृष्टि तो हुई है, चरित्र है, महाव्रत है तो ऐसी विचारणा (होती है)। परमात्मा बन्ध-मोक्ष रहित आत्मा... ओहो! जीव उसे कहते हैं... कल कहा था न? ३२० गाथा। ३२० गाथा की टीका जयसेनाचार्य ने की है। वहाँ परमात्मप्रकाश में गाथा ली है। जीव कैसा है? और जिनवर ने जीव किसको कहा? जिनवर भणेई जीव। जीव (वह है) जिसमें बन्ध और मोक्ष नहीं। बन्ध-मोक्ष तो पर्याय है। यह तो जीव अखण्डानन्द ज्ञायक। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! ...भाई, नेमचन्दभाई! ऐसी बात है। इसीलिए लोगों को ऐसा लगता है न कि यह सोनगढ़ की बात है। सोनगढ़ की है या भगवान है? ऐसा कहकर सोनगढ़ का एकान्त है, एकान्त है—ऐसा (लोग) कहते हैं। भगवान! क्या करे? सम्यक् एकान्त तो यह है, भगवान! आहाहा!

कहते हैं, जीव उसको कहें, जीव न उपज्जई, जीव न मरई। अर्थात् पर्याय का उत्पाद हो, वह जीव नहीं, व्ययवाला जीव नहीं। वह तो व्यवहार जीव है। मोक्ष की पर्याय का उत्पन्न होना और बन्धपर्याय का नाश होना, वह तो व्यवहारजीव है। निश्चयजीव में तो बन्ध-मोक्ष की पर्याय है ही नहीं। यह जीव है। और जीव जो है, नव तत्त्व में जो मूल जीव ज्ञायकभाव, वह तो मोक्ष की पर्याय नहीं है, परन्तु मोक्षमार्ग की पर्याय करनेवाला वह नहीं है। मोक्ष की पर्याय करनेवाला तो जीव नहीं, परन्तु मोक्ष का मार्ग जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, उसका करनेवाला जीव नहीं। यह तो मोक्षमार्ग पर्याय है, जीव तो ध्रुव त्रिकाल लेना है। निश्चयजीव लेना है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : रोगी जीव को यदि बुखार आया हो तो उसे चिरायता ही दिया जाता है, उसे खीर नहीं पिलाते। करियाता समझते हों ? उसे वह दिया जाता है। उसके बिना उसका बुखार उतरता नहीं। यहाँ तो कहते हैं, आत्मा रोगी नहीं। राग का रोग अपने में है नहीं। भगवान् चिदानन्द आत्मा ध्रुव, जो मोक्ष का करनेवाला नहीं है तो राग का करनेवाला कहाँ से आया ? आहाहा ! ३२० गाथा पर व्याख्यान हो गया है। ३२० गाथा का व्याख्यान बहुत बार हो गया है। यहाँ ३९ वर्ष हुए। चालीस में एक कम। इस फाल्गुन कृष्णा-३ को ३९ वर्ष पूरे होंगे। यहाँ सोनगढ़ में ३९ वर्ष (हुए)। यह १७वीं बार व्याख्यान में समयसार चलता है। १७। १७ अर्थात् एक और सात। सत्रह।

यहाँ कहते हैं, अहो ! जीव पदार्थ इसको कहते हैं, ऐसी विचारणा सम्यग्दृष्टि करते हैं। विशेष आयेगा.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-१३०-सी, गाथा-९७, शनिवार, फाल्गुन शुक्ल १, दिनांक २२-०२-१९७४

यह अष्टपाहुड़, उसमें भावपाहुड़ चलता है। उसमें ९७ गाथा चलती है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं, अभी तो प्रतिष्ठा होगी। ये तो अभी नाम लिखा है। भगवान महावीर परमात्मा, वे तो पूर्णानन्द की प्राप्ति करके मुक्त हुए हैं। परन्तु उनकी स्थापना निक्षेप है, वह भी व्यवहार से वन्दनीक है। पहले कहा था, बहुत वर्ष पहले विचार आया था न? हमारे सम्प्रदाय में तो मूर्ति का विरोध था न। कहा था, सम्यग्दर्शन होने के बाद ही मूर्तिपूजन होता है। पहले कब होता है? सम्यग्दर्शन (पहले) ही मूर्तिपूजक होता है। सम्यग्दर्शन के बाद नहीं, ऐसा कहते थे। सुनो! यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है। (संवत्) १९८३ के वर्ष। ४७ वर्ष हुए। ५० में तीन कम। तो यह चर्चा चली कि भगवान की प्रतिमा का पूजन तो जब तक मिथ्यादृष्टि हो, तब तक कर सकते हैं। सम्यग्दर्शन होने के बाद उसको पूजा, भक्ति आदि स्थापना की नहीं करे। ऐसा चलता था। तो ऐसा कहा, जब तक सम्यग्दर्शन नहीं हो, तब तक श्रुतज्ञान नहीं होता। अपना चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप है, ऐसी अन्तर्दृष्टि अनुभव हो, तब तो उसको भावश्रुतज्ञान होता है। और भावश्रुतज्ञान प्रमाणज्ञान है। उसका नय है, वह अवयव है। श्रुतज्ञान का नय, निश्चय-व्यवहार दो अवयव है। तो जब सम्यग्दृष्टि होता है, बाद में निक्षेप उसे पूजनीक गिनने में आता है। सम्यग्दर्शन बिना उसको श्रुतज्ञान नहीं। नय नहीं तो नय का निक्षेप भी उसको होता नहीं। समझ में आया? नय जब अपने में... शुद्ध चैतन्य वस्तु पवित्रधाम... उसमें लिखा है न? बनारसीदास ने। बनारसीदास में चौदह गुणस्थान पहले वह आता है न? कितने वर्ष हुए? ५२। उसको कहते हैं—जिनप्रतिमा का माहात्म्य। बनारसीदास कहते हैं। 'जाके मुख दरससौं भगत के नैनिकौं' भगत के—सम्यग्दृष्टि को।

सम्यग्दर्शन में अपना स्वरूप पूर्णानन्द है, ऐसा अनुभव हुआ तो उसके साथ

श्रुतज्ञान हुआ। भावश्रुतज्ञान में भावश्रुतज्ञान है, वह अवयवी प्रमाण है और निश्चय और व्यवहारनय है, वह प्रमाण का—अवयवी का अवयव है। यह तो अन्तर की बात आयी थी, उस समय। समझ में आया? तो समकित दृष्टि को नय होते हैं। नय विषयी है, नय विषयी है और निक्षेप विषय है। तो नय, ज्ञान का भेद है और निक्षेप, ज्ञेय का भेद है। समझ में आया? वास्तव में तो सम्यग्दर्शन होने के बाद ही नय होता है और नय में निक्षेप उसको लागू पड़ता है। अज्ञानी को मिथ्यादृष्टि को निक्षेप और नय है नहीं। समझ में आया? ये तो (संवत्) १९८३ की बात है। ३० + १७।५० में तीन कम। वस्तु ऐसी है। कोई गड़बड़ करे, ऐसा नहीं चलता। यह तो जैनदर्शन है। नय में जब भान हुआ तो निक्षेप ज्ञेय का भेद है तो नय का विषय हो जाता है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को ही स्थापना निक्षेप व्यवहार से पूजनीक होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रभु! कठिन पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन पड़े परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी है, क्या करना? आहाहा! भगवान आत्मा अपनी चीज़ में पूर्ण शुद्धता और आनन्द पड़ा है, उसके सन्मुख होकर, उसके सन्मुख होकर और संयोगी चीज़ और राग और पर्याय से विमुख होकर... समझ में आया? सम्यग्दर्शन प्राप्त होने की यह रीति है। समझ में आया? तो ये सम्यग्दर्शन में ही सम्यक् श्रुतज्ञान होता है तो वहाँ निक्षेप पूजनीक है। यह उसका मांगलिक है। (चौदह गुणस्थान अधिकार, पद-२)।

जाके मुख दरससौं भगत के नैननिकाँ

थिरता की बानी बढै चंचलता विनसी।

आहाहा! प्रतिमा ऐसी देखी न। बहुत वीतराग मूर्ति है। अभी तो नाम निक्षेप है। ये खुल्ला रखा न।

‘मुद्रा देखि केवली की मुद्रा याद आवै जहां’ ऐसी मुद्रा देखने से अपनी पर्याय में केवली की मुद्रा याद आवे। हैं! आहाहा! वीतरागी बिम्ब सर्वज्ञ परमात्मा केवली का प्रतिबिम्ब है। समकित्ती को देखने में आती है तो केवली याद आते हैं। ओहो! ऐसे स्थिरबिम्ब जिसको विकल्प नहीं। शान्त... शान्त। यहाँ कहते हैं न?

**कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकी
सोहै जिनकी छबी सुविद्यमान जिनसी।**

साक्षात् तीर्थकरदेव विद्यमान जैसे हैं, ऐसी भगवान की प्रतिमा तीर्थकर समान विद्यमान है। भक्तिवन्त को तो प्रतिमा जिनसारखी... आता है न? आया न? जिनसी। इसमें पीछे भी आता है। 'कहत बनारसी अल्प भवथिति जाकी।' सम्यग्दृष्टि की अल्प भवस्थिति है। अल्पकाल में केवलज्ञान पाने की उसकी तैयारी हो गयी है। आहाहा! दूज उगी है, उसकी पूनम होगी ही। उसको वैसे सम्यग्दर्शन बीज जहाँ प्रगट हुआ... आहाहा! केवलज्ञान होगा ही। कहते हैं,

**कहत बनारसी अल्प भवथिति जाकी,
सोई जिन प्रतिमा प्रमाणे जिन सारखी।**

निश्चय आत्मा की प्रतिमा, जिनप्रतिमा निश्चय से तो अपने स्वरूप है। आहाहा! अकषायरस बिम्ब वीतरागबिम्ब प्रभु, वही वीतराग प्रतिमा तो यह है। परन्तु वीतराग प्रतिमा का जिसको अनुभव और प्रतीति हुई, उसको शुभ विकल्प में जिनप्रतिमा जिन सारखी आये बिना रहे नहीं। समझ में आया? यह कहा न? यह तो (संवत्) १९८३ के वर्ष में हम कहते थे। सम्प्रदाय में (कहते थे)। सम्प्रदाय से हमें कोई सम्बन्ध नहीं था, हमको तो सत्य से सम्बन्ध है। और कोई भी यदि थोड़ा-सा विपरीत कहे और हमारे पर आक्षेप करेगा, उसी क्षण सम्प्रदाय छोड़ देंगे। आहा! सम्प्रदाय में आये हैं; इसलिए बन्धन में आ गये ऐसा है नहीं। सम्प्रदाय के अनेक प्रकार हो, वह हमें मान्य नहीं है। वही कहा है, देखो न!

'जाके उर अंतर सुदृष्टि की लहर लसी' आहाहा! पहले यह डाला है भाई ने। 'जाके उर अंतर सुदृष्टि की लहर लसी।' आहा! 'विनसी मिथ्यात मोहनिद्रा की ममारखी।' जिसे भ्रमणा का नाश हुआ है। राग मेरा है, पर्याय जितना मैं हूँ, ऐसे मिथ्यात्व का तो नाश हुआ है। 'शैली जिनशासन की फैली जाकै घट भयौ' जैनशासन की शैली फैली। निश्चयनय, व्यवहारनय का विषय, वह जैनशासन की शैली है। समझ में आया? और समन्तभद्राचार्य तो स्तुति में तो वहाँ तक कहते हैं, कहा था न? चौबीस

स्तुति। समन्तभद्राचार्य ने चौबीस स्तुति की। उसमें तो ऐसा कहा है, प्रभु! मुझे आपकी भक्ति का व्यसन हो गया है। क्योंकि बारम्बार मेरा विकल्प आपके बहुमान में आता ही है। अशुभराग नहीं, शुभराग में भी तेरी भक्ति का मुझे बारम्बार विकल्प आता है। मुझे व्यसन हो गया है, ऐसा चौबीस स्तुति में लिखा है। समझ में आया ?

सैली जिनशासन की फैली जाकै घट भयौ

गरवकौ त्यागी षट-दरवकौ पारखी।

भेदज्ञान है। यह प्रतिमा! आहाहा! यह वीतरागमुद्रा, ऐसे लक्ष्य करके वीतरागभाव याद आता है, केवली याद आते हैं। समझ में आया ? सिद्ध का भी प्रश्न हुआ था। पहले जब हम (संवत्) २०१३ के वर्ष में मुम्बई गये न? पहली सम्मेलनशिखर की यात्रा थी। एक स्थानकवासी ने प्रश्न किया, महाराज! यह प्रतिमा और यह यात्रा क्या है? भाई! यात्रा का अर्थ ऐसा है कि जहाँ से भगवान, मुनि, सन्त मोक्ष जिस क्षेत्र से पधारे हैं, उस क्षेत्र में ऊपर भगवान विराजमान हैं। आया न?

‘गरवकौ त्यागी षट-दरवकौ पारखी...’ धर्मी को तो रागादि का अहंकार जिसको छूट गया है। पुण्यभाव है। परन्तु गर्व छूट गया है कि पुण्यभाव मेरा है। स्वामित्व छूट गया है, धनीपता छूट गया है। भगवान की भक्ति का भाव (आता है), परन्तु गर्व छूट गया है। आहाहा! समझ में आया ? तो वह जिनप्रतिमा यथार्थ रीति मान सकती है। और परमात्मा जिसने मोक्ष लिया है, वह सिद्ध की बात है। जिस क्षेत्र से सिद्ध हुए उस क्षेत्र में ऊपर विराजते हैं। शत्रुंजय। तीन सन्त मोक्ष पधारे। उस स्थान में ऊपर मोक्ष में है। समश्रेणी में जाते हैं न। सीधी श्रेणी-समश्रेणी। धर्मराजा, भीम और अर्जुन तीन तो देह छोड़कर मुक्ति में पधारे। वहाँ शत्रुंजय में ही ऊपर सादि-अनन्त काल (विराजते हैं)। वहाँ जाकर स्मरण करना, वह यात्रा है। यहाँ भी प्रतिमा को देखकर भगवान का स्मरण करना, सर्वज्ञ का स्मरण करना। आहाहा! समझ में आया ?

‘आगमकै अच्छर परे हैं जाके श्रवनमें’ वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि जिसके कान में पड़ी है। सन्तों की बात चलती है। ‘हिरदै-भंडारमें समानी वानी आरखी’ जिसके हृदय में वीतराग की वाणी आरसी के समान घुस गयी है।

आहाहा! 'कहत बनारसी अल्प भवथिति जाकी, सोई जिन प्रतिमा प्रवानै जिन सारखी।' बनारसीदास कहते हैं। यहाँ (पद-२ में) यह आया। 'जाके आगे इन्द्र की विभूति दीसै तिनसी।' आहाहा! भगवान की मुद्रा देखते हैं तो वीतराग केवलज्ञान याद आते हैं। जिसकी मुद्रा देखकर 'केवली की मुद्रा याद आवै जहां, जाके आगे इन्द्र की विभूति दीसै तिनसी।' इन्द्र की विभूति भी वहाँ एक छिलके समान दिखे, ऐसी भगवान की प्रतिमा का दर्शन करनेवाले को ऐसा भाव होता है। आहाहा! समझ में आया? यह मुद्रा बहुत अच्छी है। ओहोहो! शान्त! कितनी है? पाँच फीट? सवा पाँच फीट, सवा पाँच फीट। मानो साक्षात् भगवान विराजते हों! कहा न? जिनप्रतिमा जिन सारखी। आहाहा!

धर्मी का प्रेम यदि झुकता है तो भगवान की प्रतिमा के दर्शन में झुकता है। वह भाव आता ही है। है शुभ। वही बात चलती है अपने। परन्तु शुद्ध की दृष्टि में पाप से बचने को ऐसा शुभभाव आये बिना रहे नहीं। छठे गुणस्थान तक मुनि को भी ऐसा भक्ति का भाव आता है। वह द्रव्यपूजा नहीं करते। परन्तु भावपूजा का भाव तो उनको भी आता है। उसकी मर्यादा इतनी है। वह यहाँ कहते हैं।

'जाकौ जस जपत प्रकास जगै हिरदेमें' 'जाकौ जस जपत...' उसका जस वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव अरहन्त परमात्मा, ऐसा जस जपत 'प्रकास जगै हिरदेमें' ज्ञान की ज्योति-प्रकाश अपने में प्रगट होती है। यह कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! जैनदर्शन को समझना... जैनदर्शन अर्थात् वस्तु का स्वभाव अलौकिक है। और दिगम्बर दर्शन, वही जैनदर्शन है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा पुकार करते हैं। आहाहा! 'सोई सुद्धमति होई हुती जु मलिनसी।' कहते हैं, वीतराग मुद्रा सर्वज्ञ की प्रतिमा ऐसी, जैसे सर्वज्ञ थे... आत्मज्ञान कहते हैं न? आत्मज्ञान जिसको हुआ, आत्मधर्म, आत्मा जिसको पूर्ण प्रगट हुआ, ऐसी प्रतिमा की भक्ति का बहुमान आये बिना रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ आत्मधर्म की बात तो चलती है। नरसिंह महेता ऐसा कहते हैं न, 'जहां लगी आत्मतत्त्व चिह्नयो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' भगवान आत्मा क्या चीज़ है, उसका ज्ञान और अनुभव बिना जो कोई

साधन आदि करते हैं, पूजा, भक्ति, व्रत, तप आदि, वह सब निरर्थक है। बात सूक्ष्म है, भगवान! आत्मधर्म की यहाँ तो बात चलती है। आत्मज्ञान की बात चलती है।

जिसको यहाँ आत्मज्ञान और धर्म का भान हुआ, उसको प्रतिमा में, जिसको पूर्ण सर्वज्ञता प्रगट हुई, दूज उगी तो पूनम होती ही है, दूज उगी और पूनम नहीं हो ऐसा होता नहीं। वैसे आत्मज्ञान हो और बाद में सर्वज्ञपद नहीं आये, ऐसा होता ही नहीं है। तो केवलज्ञान पाने की चीज़ जिसको हुई, उसको प्रतिमा वन्दनीक है। आहाहा! दूसरी प्रकार, सर्वज्ञ अनुसारिणी वाणी जो है, जो ये परमागम में है, वह सर्वज्ञ की वाणी उत्कीर्ण की है। वह दूसरी गाथा में आया है। त्रिलोकनाथ आत्मा जहाँ वीतराग सर्वज्ञ दशा अन्दर प्रगट करते हैं, आत्मज्ञान उपरान्त जो पूर्ण केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं, उसके मुख से इच्छा बिना वाणी निकलती है, वह वाणी यह है। तो सर्वज्ञ अनुसारिणी वाणी भी, प्रतिमा जैसे पूज्य है, वैसे वह भी पूज्य है। आहाहा! बात तो भाई, कहाँ से कहाँ आ गयी है। सूक्ष्म बात है। आहाहा!

कहते हैं, 'सोई सुद्धमति होई...' भगवान की प्रतिमा देखकर शान्त... शान्त... शान्त... अविकारी मुद्रा, निर्दोष आनन्दकन्द की मुद्रा जहाँ देखे, मति में मलिनता हो, वह टाल सके, ऐसी मति हो जाती है। समझ में आया? धन्नालालजी! 'सोई जिनकी छवि सुविद्यमान जिनसी।' ये बनारसीदास महा अध्यात्म कवि! अभी भाई को पुस्तक दिया था न? कौन से कवि? दुल्ला कवि। फाग को अभी दिया था। ... पुस्तक दिया तो वह बहुत खुश हो गये। अभी आये थे न। दो दिन पहले आये थे। दुला फाग। आपने मुझे पुस्तक दिया... (उसको) कहा, वह महा परम अध्यात्म कवि है। (तो कहा), हाँ, ऐसा है। मैंने लिखा है कि... दिल्ली का बड़ा वो... बड़ा मकान—मन्दिर बनाया है। बिरला, बिरला। भूल गये। अभी आये थे न। पुस्तक तो पहले दिया था। पढ़कर उसे लगा, ओहो! बापू! ये तो लौकिक चीज़ अन्तर के घर की है, यह कोई बाहर की चीज़ नहीं, उस चीज़ को मैंने उसको लिखा। कहा था न? अध्यात्म रामायण उसने लिखी है, उसे मैंने बिरला को लिख दी है। अध्यात्म रामायण आत्मा में विराती है। ऐसा उसमें लिखा है। बनारसीदास में श्लोक है न? इसमें है? इसमें नहीं होगा। उसमें बनारसी

विलास में है। अभी आया था। ... गरासदार है, घर में गरास है। यहाँ अभी आया था और पुस्तक दिया था तो बहुत खुशी हुई। भाई! प्रभु! यहाँ तो आत्मा की यह बात है। यहाँ कोई सम्प्रदाय या बाहर की चीज़ है नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि ऐसी प्रतिमा जिनप्रतिमा जब हो तो धर्मीजीव को (उसे) देखने से उसको आह्लाद और शुभभाव निर्मल होता है। समझ में आया? लो, इतनी बात तो भगवान की प्रतिमा (की) आयी न, (इसलिए भी)। रामजीभाई न कहा।

अब, अपने यहाँ चलता है। देखो! कुन्दकुन्दाचार्य महाराज दिगम्बर सन्त वनवासी थे। वन में रहते थे। दो हजार वर्ष पहले हुए। आत्मज्ञान और आत्मदर्शन में मस्त थे। अन्तर आनन्द-अतीन्द्रिय आनन्द भगवान आत्मा का... आहाहा! मुनि तो उसको कहे, अतीन्द्रिय आनन्द में जिसकी मस्ती (जमी है), इस मस्ती में यह शास्त्र लिख दिया है। कहते हैं कि धर्मी जीव पहले जब धर्म प्रगट होता है तो आत्मा अन्दर चिदानन्द प्रभु ज्ञान की मूर्ति आत्मा है, देह से तो भिन्न है, यह तो मिट्टी है। कर्म जो अन्दर पुण्य-पाप का बन्धन है, वह भी भिन्न जड़ चीज़ है। नारियल होता है न? नारियल। नारियल नहीं? श्रीफल। श्रीफल में ऊपर का छिलका है, वह भिन्न चीज़ है, अन्दर काचली है, वह भिन्न चीज़ है और काचली ओर का लाल छिलका खोपरापाक करते हैं तो निकाल देते हैं न, वह लाल छिलका भिन्न है और अन्दर में खोपरा सफेद मीठा है, वह श्रीफल भिन्न है। आहाहा!

ऐसे भगवान आत्मा में... यह शरीर तो ऊपर का छिलका है। समझ में आया? जैसे वह छाल है न? छाल। छाल कहते हैं न, हिन्दी में क्या कहते हैं? छिलका। यहाँ हमारे छाला कहते हैं। बाई पीसे न? फिर आटा बाहर निकालती है। यहाँ तो छाल कहते हैं, छोटी उम्र में सुना है। यह शरीर छिलका है, अन्दर कर्म रजकण सूक्ष्म पुण्य-पाप के पड़े हैं, वह काचली है। काचली को क्या कहते हैं? वह काचली है। और अन्दर में पुण्य और पाप का जो विकल्प उठता है, वह लाल रंग का छिलका है। भगवान आत्मा उससे अन्दर भिन्न है। आहाहा! श्रीफल कहते हैं न उसको? श्रीफल। आहाहा! भाई! तेरी चीज़ (ऐसी है)।

श्री-स्वरूप की लक्ष्मीरूपी अन्दर फल पड़ा है। आहाहा! अरे! उसने कभी विचार किया नहीं। अनन्त काल हुआ, अनन्त काल हुआ। चौरासी में भटकते-भटकते मर गया। चैतन्यमूर्ति मेरी चीज़ अन्दर... आहाहा! मैं आनन्द... मीठा कहते हैं न? खोपरा को मीठा कहते हैं न? तो मीठा अर्थात् यहाँ आनन्द है और सफेद में शुद्ध है। भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दमूर्ति है। आहाहा! अरे! भाई! शब्द सुनने मिले नहीं, वह कब विचार करे और कब जन्म-मरण का नाश करे? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि परमात्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो कहा, ऐसा सन्त कुन्दकुन्दाचार्य ने ग्रहण किया और अनुभव किया। मैं आत्मा आनन्दस्वरूप हूँ। मेरे में जो पुण्य-पाप दिखते हैं, वह छिलका है। वह लाल छिलका जैसे खोपरा की होती है (ऐसे हैं)। बाई जब खोपरापाक करती है तो खमणी में से निकाल देती है। छिलका निकाल देती है, काचली निकालती है, परन्तु वह (लाल) छिलका भी निकाल देती है तो सफेद खोपरापाक होता है। ऐसे भगवान आत्मा... यह तो दृष्टान्त दिया।

सिद्धान्त—यह शरीर छिलका मिट्टी धूल है, उससे मैं भिन्न हूँ। आहाहा! अन्दर कर्म का रजकण जो पुण्य का पड़ा हो तो यह लक्ष्मी आदि मिले। पाप के पड़े हो तो लक्ष्मी आदि टले, नाश हो जाए। ऐसे रजकण अन्दर है, वह काचली समान जड़ है। वह मैं नहीं। और पुण्य और पाप, खोपरा का जो लाल छिलका है, (वैसे हैं)। भगवान सूक्ष्म बात है, प्रभु! उसने अनन्त काल में अपनी चीज़ की पहचान की नहीं और सब पर की पंचायती की। 'घर का छोकरा घंटी चाटे और पड़ोसी को आटो।' वैसे अपनी चीज़ क्या है, उसकी खबर नहीं और दुनिया की पंचायती की। कहते हैं,... हमारे यहाँ कहते हैं, घर का छोकरा चक्की चाटे। आप में भी कुछ होगा। आपकी हिन्दी भाषा होगी। हमारी तो यहाँ गुजराती भाषा है न। क्या हिन्दी है, ब्राह्मण को आटा दे और घर में कुछ नहीं। वैसे परमात्मा त्रिलोकनाथ सन्त और मुनि कहते हैं कि तेरी चीज़ की तूने पहचान की नहीं, उसका प्रयत्न किया नहीं, उसकी सावधानी कभी की नहीं। दुनिया की पंचायती की और दुनिया में होशियार और पण्डित हो गया।

यहाँ वह कहते हैं, जिसे ऐसे आत्मा का भान हुआ, वह ऐसा विचार करता है।

यहाँ नव पदार्थ आये न? भाई! नव पदार्थ की विचारणा करते हैं। आहाहा! है? ९७ गाथा है। देखो! दूसरी पंक्ति। नव पदार्थ। अपने शुद्ध परिणाम होने के कारण नव पदार्थ की विचारणा करते हैं। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! कहते हैं, नव पदार्थ में जीव आत्मा पहला है। नौ में जीव पहला है। जीव पदार्थ का विचार धर्मीजीव ऐसे करता है कि मैं शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द हूँ। आहाहा! सच्चिदानन्द चीज़ वह मैं हूँ। सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो कहीं से आयी हुई बात यहाँ सोनगढ़ में पड़े हैं। दरबार! दरबार की जमीन में यहाँ आ गये। कहाँ से कहाँ थे। ओहो! वह देह की चीज़ भिन्न है। आहाहा!

देखो न! देह तो एक क्षण में गिर जाता है न। गृहस्थ अभी आये थे न? शान्तिलाल खुशाल, गोवावाले। दो अरब चालीस करोड़ रुपये उसके पास है। अभी। दो अरब। अर्थात् दो सौ चालीस करोड़। भाई! ये आपकी भाषा (भूल जाते हैं)। २४० करोड़। शान्तिलाल खुशाल है। उसकी बहन की लड़की यहाँ है, ब्रह्मचारी है। पचास (ब्रह्मचारी बहनों में) उसकी बहन की लड़की ब्रह्मचारी है और दूसरी लड़की अभी ब्रह्मचारी होनेवाली है। इस (महोत्सव के) तेरस के दिन। भगवान की प्रतिमा की प्रतिष्ठा है न। ग्यारह लड़कियाँ नयी बालब्रह्मचारी होनेवाली है। ५१ लड़कियाँ बालब्रह्मचारी है। बालब्रह्मचारी। और ये चिन्तनभाई की लड़की भी बालब्रह्मचारी है। ५१ तो है, ग्यारह नयी होगी। उसमें उसकी बहन की लड़की है। उसके पिता आये हैं। पोपटभाई है। ये रहे पोपटभाई, लो। शान्तिलाल के बहनोई है। शान्तिलाल खुशाल के सगे बहनोई। उसके पास दो अरब चालीस करोड़। धूल में भी कुछ काम नहीं आये और अभी मर गया। उसकी स्त्री को... क्या कहते हैं? हेमरेज हो गया था, हेमरेज। मुम्बई लाये, गोवा से। रात को डेढ़ बजे उठे, मुझे दर्द होता है, मुझे थोड़ा दर्द होता है। ऐसा कहा, डॉक्टर को बुलाओ। डॉक्टर आये, उसके पहले तो (चल बसे)। देह की स्थिति पूरी होने के काल में डॉक्टर तो क्या, इन्द्र उतरे तो भी फेरफार नहीं कर सके। तेरे दो अरब और चालीस करोड़ ... हैं। दस मिनट में समाप्त। आये तब तक तो देह में कुछ नहीं। आहाहा! देह की स्थिति छूटने के काल में देह छूटेगा ही। वह कहाँ उसकी चीज़ है। समझ में आया? जो छूट जाए वह उसकी चीज़ नहीं और छूटे नहीं वह उसकी चीज़ है। वह तो आनन्द और ज्ञान स्वभाव की चीज़ है जो कभी छूटती नहीं। यह शरीर तो छूट जाता है।

समझ में आया ? क्षण में समाप्त हो गया। समाप्त ! फिर गोवा ले गये। इज्जत बड़ी है न। चालीस लाख का तो मकान है। दस-दस लाख के दो मकान। चालीस लाख का मकान। धूल में मकान क्या करे ? वह तो जड़ मिट्टी धूल है। वहाँ ले गये फिर फूल इत्यादि डाले होंगे। इस जीववस्तु को जाने बिना ऐसी चीज़ अनन्त बार मिली तो आत्मा को कुछ लाभ हुआ नहीं। आहाहा !

कहते हैं कि मैं तो चैतन्य आनन्द का नाथ हूँ। मेरे में ये पुण्य और पाप के विकल्प उठते हैं, वह भी मैं नहीं। वह तो आस्रवतत्त्व है, विकारतत्त्व है, बन्धतत्त्व है, संयोगीभाव है। आहाहा ! ऐसे धर्मी अपने आत्मतत्त्व का विचार ऐसे करता है। आहाहा ! मैं जो आत्मा ध्रुव हूँ। ओहोहो ! मैं जो चीज़, पर्याय—वर्तमान दशा ऐसा निर्णय करती है, मैं तो नित्य अविनाशी आत्मा हूँ। मैं कभी उत्पन्न हुआ नहीं, मेरा कभी नाश होता नहीं। ऐसा मैं अविनाशी आत्मतत्त्व हूँ। 'आतमराम अविनाशी आव्यो अकेलो, आतमराम अविनाशी आव्यो अकेलो' अकेला आया, बाहर में कोई साथ में नहीं था। 'अनन्त दर्शन ज्ञान तारूँ रूप जो' आहाहा ! भाई ! तेरा रूप तो अन्दर बेहद ज्ञान है और दर्शन, आनन्द तेरा रूप है। 'अन्य भाव तुझे स्पर्श नहीं।' पुण्य, पाप और शरीर मेरी चीज़ को छूते नहीं, ऐसी मेरी चीज़ है। ऐसा धर्मीजीव अपने आत्मा की ऐसी भावना करते हैं। आहाहा ! 'ज्ञायक भडवीर गणाय जो' वह तो ज्ञायकतत्त्व भडवीर है। आहाहा ! परन्तु बैठे कैसे पामर को ? एक बीड़ी के बिना चले नहीं। दो बीड़ी पीये तब तो... क्या कहते हैं ? सिगरेट। तब तो उसे पाखाने में जंगल (दस्त) उतरे। उसे ऐसा कहे कि तेरा आत्मा आनन्द का नाथ है। कहाँ तू अटक गया है ? तुझे तेरी खबर नहीं।

यहाँ कहते हैं कि धर्मीजीव अपने आत्मा का ऐसा विचार करते हैं। आहाहा ! मेरे धाम में तो आनन्द पड़ा है न। मैं तो स्वयं ज्योति सुखधाम। मैं तो स्वयं चैतन्यज्योति। चैतन्यप्रकाश की मूर्ति मैं हूँ और मेरे में तो आनन्द का धाम, आनन्द का स्थान मैं हूँ। आनन्द की उत्पत्ति हो तो ऐसा मैं हूँ। पर में कोई आनन्द-फानन्द है नहीं। पैसे में है नहीं, स्त्री में है नहीं, आबरू में है नहीं, धूल में कुछ है नहीं। आनन्द तो सच्चिदानन्द प्रभु मेरा आनन्द मेरे पास है। आहाहा ! मृग की नाभि में कस्तूरी है, फिर भी मृग को उस कस्तूरी की कीमत है नहीं। थोड़ी गुजराती आ जाती है। नाभि में कस्तूरी होने पर भी

मृग को कीमत है नहीं। वैसे भगवान आत्मा के अन्दर आनन्द और शान्ति पड़ी हैं, परन्तु पामर को उसकी कीमत होती नहीं। आहाहा! ऐसा आत्मतत्त्व का विचार पहले करते हैं।

दूसरी अजीव। शरीर आदि अजीव है, मिट्टी है, पैसा धूल है—ऐसा धर्मी विचार करते हैं। आहाहा! सेठ! ये सब करोड़पति बैठे हैं। चार करोड़ है इसके पास। चार भाई के पास चार करोड़। धूल में धूल, हों!

मुमुक्षु : आप तो अभी न कहते हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं, लोग कहते हैं न। उनके मकान में ही ठहरे थे न पिछले वर्ष। कलकत्ता उनके मकान में ठहरे थे। रतनभाई ... छोटे भाई। अपने वच्छराजजी। केशुभाई है न? अपने वच्छराजजी ने मकान बनाया न? गोगीदेवी। वच्छराजजी थे न, उनके पुत्र हैं। वच्छराज सेठ। दरबार तो जानते हैं। वच्छराज सेठ तो यहाँ रहते थे। मकान बनाया न? उनके पुत्र हैं, बड़े पुत्र। यहाँ तो कहते हैं कि करोड़ हो या अरब हो, धर्मी विचार करते हैं कि वह तो अजीव होकर रहा है। मेरी चीज़ होकर रही नहीं। आहाहा! समझ में आया? सेठ! ...दो भाई तो छोटे मर गये बेचारे, हाँ! वच्छराज सेठ के चार पुत्र। ये बड़े हैं। उनसे दो छोटे मर गये। छोटी उम्र में मर गये। करोड़ों रुपये थे। उसमें धूल क्या करे? आहाहा!

यहाँ धर्मी ऐसा विचार करते हैं, लक्ष्मी अजीव होकर रही है, शरीर भी जड़ होकर रहा है और पुण्य-पाप का भाव जो अन्दर है, वह मलिनभाव होकर रहा है, मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! यह धर्मी की विचारधारा की बात करते हैं। है तो यह विकल्प की बात, हों! परन्तु अन्दर शुद्ध चैतन्य की दृष्टिपूर्वक अशुभ से बचने को ऐसा शुभभाव आये बिना रहता नहीं। पुण्य-पाप का विचार करते हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव हो, वह पुण्य है। उससे संयोग मिलता है। उससे आत्मा को लाभ नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? नरसिंह महेता ने कहा न? 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' तेरी पूजा, भक्ति, व्रत, तप, दान और दया सब शून्य है। दरबार! वह बात यहाँ चलती है, लो! आत्मधर्म की बात। आहाहा! तेरी आत्मा की

चीज़ में आनन्द पड़ा है, ऐसा अनुभव होने के बाद उसका पुण्य-पाप का भाव बन्धन का कारण है, ऐसा धर्मी विचार करते हैं। आता है, आता है, परन्तु है बन्धन। और ये पुण्य और पाप का भाव दोनों भावबन्ध है।

जैसे स्फटिकमणि में, स्फटिकमणि में फूल लाल-पीले हो तो लाल-पीली झाँई वहाँ दिखती है। वह लाल-पीली झाँई स्फटिकमणि की नहीं। अपनी चीज़ नहीं है वह। जैसे भगवान आत्मा चैतन्य स्फटिकमणि जैसा, ऐसा भान हुआ है, वह विचार करते हैं कि मेरे में जो पुण्य और पापभाव है, वह कर्म की झलक विकार है। आहाहा! समझ में आया? 'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों जीव स्वभाव रे... श्री वीरे धर्म प्रकाशियो, श्री जिन जिनवीरे धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय अभाव रे...' पुण्य और पाप के विकल्प से रहित मेरी चीज़ है, ऐसा भगवान ने उसको धर्म कहा है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! अपूर्व बात है।

स्वर्ग में भी अनन्त बार गया, राजा भी अनन्त बार हुआ। अरबोंपति। महीने की अरबों की कमाई। ऐसा राजा अनन्त बार हुआ है। अनादि का है। आहाहा! आत्मा कोई नया हुआ है? अनादि से है। ऐसी सम्पदा भी अनन्त बार मिली थी। उसमें क्या हुआ? भटकने का भाव ममता हुई और भटककर मर गया। मैं तो मेरी चीज़ में जो पुण्य-पाप का भाव दिखता है, वह मलिनता का भाव है, ऐसा विचारते हैं। आहाहा! मैं तो निर्मलानन्द चैतन्य स्फटिक हूँ।

एक बार कहा था न? भाई! स्फटिक रत्न देखा था। वहाँ जामनगर। जामनगर में छह लाख का सोलेरियम है न? क्या कहते हैं? सोलेरियम है छह लाख का। वह तो उस समय की बात है। (संवत्) १९९०। जब हम यहाँ १९९१ में आये न? १९९१ में फाल्गुन कृष्ण तृतिया के दिन यहाँ आये हैं। इस फाल्गुन कृष्ण में ३९ वर्ष पूरे होंगे। उस मास में हम वहाँ थे। जामनगर में बड़े डॉक्टर हैं न? प्राणजीवन डॉक्टर। २५०० का पगार। उस दिन! मासिक २५००। उस दिन! कितने? ३९ वर्ष हुए। ४० वर्ष पहले। उसके पास स्फटिक था। १००वीं गाथा सुनने आये थे। बड़े आये थे, बड़े पण्डित आये थे, बड़े दीवान वहाँ आये थे। महेरबानजी पारसी दीवान थे। एक पारसी दीवान था,

बहुत नीतिवान आदमी। उसका १०००-१२०० रुपये का वेतन था। दरबार ने २०० रुपया वेतन बढ़ा दिया। दरबार के पास महेरबानजी पारसी गये (और कहा), किसने बढ़ाया? २०० रुपया ज्यादा वेतन में किसने चढ़ाया? मेरा वेतन तो १००० रुपया है। २०० किसने चढ़ाया? दरबार ने कहा, मैंने चढ़ाया। क्यों? क्या करने को? कभी राजा का काम आये तो ढीला छोड़ दूँ ऐसी बात है? मैं वह नहीं करूँगा। निकाल दो २०० रुपया। बहुत नीतिवान आदमी। वह वहाँ सुनने आया था। १००वीं गाथा चलती थी, भाई! और डॉक्टर (आते थे)। डॉक्टर ने कहा, महाराज! मेरा सोलेरियम देखने पधारिये। आपको (दृष्टान्त देने में) लागू पड़े ऐसा है। सवा लाख का सोलेरियम। अभी तो एक करोड़ का होवे। उसके पास इतना बड़ा स्फटिक रत्न था। बताया, यह स्फटिक।

वह स्फटिक की जैसी निर्मलता है, वैसे भगवान आत्मा निर्मलानन्द पुण्य-पाप के मैल से रहित है। पुण्य-पाप तो मेरे में मैल है। ऐसा धर्मी विचार करते हैं। आहाहा! और उसका फल मिलता है, वह अजीव है। पुण्य से लक्ष्मी मिले, स्त्री अनुकूल मिले, लड़का अनुकूल हो। यह सब पुण्य का फल जड़ पर है। मेरे में उसका कोई सम्बन्ध है नहीं। ऐसे धर्मी अपने पुण्य-पाप के फल का भी विचार करता है।

ऐसे नव तत्त्व। संवर का विचार करते हैं। मुझे धर्म कैसे होता है? पुण्य-पाप के राग से भिन्न मेरी चीज़ की मैं दृष्टि करता हूँ और उसमें लीन होता हूँ, उतना मुझे धर्म है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! अपूर्व! पूर्व में अनन्त काल में कभी नहीं किया है। अनन्त काल में किया, वही किया। बारम्बार करता है, वह दशा तो संसार में भटकने की है। मैं आत्मा। आहाहा! अपने भेदज्ञान का (विषय ही) चलेगा, जब बहुत लोग आयेंगे, (तब) संवर अधिकार चलेगा। यहाँ कहते हैं, नव तत्त्व में संवर है। जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव और बन्ध। वह आ गया।

अब संवर। आत्मा में पुण्य और पाप के विकल्प का रुक जाना। जैसे जहाज में छिद्र में पानी आना रुक जाए। जहाज में छिद्र हो जाता है न? पानी आना रुक जाए। वैसे भगवान आत्मा में पुण्य-पाप का आस्रव, विकल्प राग रुक जाए और आत्मा में शुद्धता प्रगट हो, उसका नाम संवर और धर्म कहते हैं। ऐसे समकित दृष्टि नव तत्त्व में

ऐसा विचार करते हैं। निर्जरा का विचार करते हैं। आहाहा! मेरी चीज़ में शुद्ध उपयोग में लगाता हूँ। शुभ-अशुभ से रहित जो पवित्र शुद्ध उपयोग है, वही निर्जरा है। वही शुद्धि की वृद्धि है। समझ में आया? संवर है, वह शुद्धि है और बाद में निर्जरा होती है, वह शुद्धि की वृद्धि है। और जब मोक्ष होता है तो शुद्धि की पूर्णता होती है। आहाहा! शुद्धि, शुद्धि की वृद्धि और शुद्धि की पूर्णता, वह संवर, निर्जरा और मोक्ष। ये तीन तत्त्व हैं। अरे रे! कभी अपनी चीज़ में क्या है और पर क्या है, इसका कभी विचार किया नहीं। आहाहा! वह विचार कर, कहते हैं।

मोक्ष। आत्मा में पूर्ण शुद्धता पड़ी है, वह पूर्ण शुद्धता प्रगट हो जाए, पूर्ण आनन्द प्रगट हो जाए, पूर्ण ज्ञान प्रगट हो जाए, उसका नाम मोक्ष। मोक्ष कोई दूसरी चीज़ नहीं है। समझ में आया?

**मोक्ष कह्यो निज शुद्धता, ते पामे ते पंथ,
समझाव्यो संक्षेपमां सकल मार्ग निर्ग्रथ।**

श्रीमद् राजचन्द्र, जिन्हें जातिस्मरण बहुत भव का था। छोटी उम्र में पूर्वभव का ज्ञान (हुआ था)। समझ में आता है? श्रीमद् राजचन्द्र ववाणिया के थे, चल बसे। जिन्होंने गाँधीजी को समझाया था। विलायत से आने के बाद। विलायत से आकर दो घण्टे गाँधीजी से बात की। इनकी २२ वर्ष की छोटी उम्र। जैसी बात कही, ... ओहोहो! उनको ख्रिस्ती का असर था। गाँधीजी को ख्रिस्ती धर्म का असर हो गया था। उसमें ये मिले। दो घण्टे बात की, ऐसा था, ऐसा-वैसा। दो घण्टे बात की। ओहोहो! हिन्दुस्तान में भी ऐसे आत्मा पड़े हैं! ख्रिस्ती धर्म... आत्मा का धर्म हिन्दुस्तान में ही है। वहाँ विलायत में गोरी चमड़ी और बड़े बँगले, धूल में वहाँ कुछ नहीं है। श्रीमद् स्वयं कहते हैं। समझ में आता है? आहाहा!

**शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम
बीजुं कहीये केटलुं कर विचार तो पाम।**

३३ वर्ष में देह छूट गया। ३३ वर्ष, हों! बहुत छोटी उम्र में। आहाहा! उन्होंने यह कहा, इस आत्मा में मोक्ष होता है, वह क्या चीज़ है? 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता।'

आत्मा की शुद्ध पूर्ण दशा सोलह कला से खिल जाए, चन्द्रमा जैसे सोलह कला से पूर्णिमा के दिन खिलता है; वैसे भगवान आत्मा अपनी अन्तर शक्ति में से विकास करके पूर्ण शुद्धदशा प्रगट हो जाए, उसका नाम मोक्ष। अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्णता प्राप्त हो, उसका नाम भगवान मोक्ष कहते हैं। इस मोक्षतत्त्व का विचार धर्मीजीव इस प्रकार करता है। आहाहा! ये नव पदार्थ हुए।

सप्त तत्त्व, ... सप्त तत्त्व में पुण्य-पाप, आस्रव और बन्ध में डाल देते हैं। तो नव का सप्त होता है। और चौदह जीवसमास, चौदह गुणस्थान, ... वह थोड़ी सूक्ष्म बात है। ... उतनी बात है। थोड़ी सूक्ष्म है। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चौइन्द्रिय जीव होते हैं न? उसके पर्याप्त और अपर्याप्त चौदह भेद है। उसका विचार करे। और चौदह गुणस्थान का विचार करे। आहा! जैसे सीढ़ी होती है न? सीढ़ी। ऊपर जाने को। वैसे चौदह सीढ़ी है। धर्म की अधर्म की दशा के चौदह भेद है। उस चौदह भेद का सम्यग्दृष्टि विचार करते हैं।

पहले मिथ्यात्व में तो ऐसा है, अज्ञानी पुण्य और पाप को अपना मानता है और मिथ्यात्वभाव का सेवन करता है। आहाहा! मिथ्या अर्थात् झूठी दृष्टि। शरीर मेरा, पुण्य मेरा, लक्ष्मी मेरी, पुत्र-पुत्री मेरे, ये सब मान्यता मिथ्या भ्रम है। आहाहा! तेरा हो, वह तेरे से भिन्न क्यों रहे? और भिन्न रहे, वह तेरी चीज़ कहाँ से हो गयी? क्षण में चले जाते हैं। देखो न! अभी तो देखो न... क्षण में चल बसे, लो! पुत्र सब पड़े रहे। धीरुभाई के पिताजी। धीरुभाई की पत्नी अभी एक महीने पहले चल बसी। दस मिनट में। किसी ने कुछ दिया नहीं और किसी को दिया नहीं। यहाँ पन्द्रह दिन रह गयी थी। कुछ नहीं था। एकदम उठी। साढ़े दस? कितने बजे? ढाई बजे। अभी एक महीने पहले। धीरुभाई, कल उनकी माताजी चल बसी न। मुम्बई में बंगड़ी का कारखाना है। (स्त्री बोली), मुझे दुःखता है। बाहर आये। मकान के बाहर। यहाँ परमागम के महोत्सव में आने का बहुत भाव, बहुत भाव था। वह बोली, परमागम की जय! मैं नहीं आ सकती, मैं नहीं आ सकूँगी। आहाहा!

आज एक महीना हुआ। २४-२५ दिन पहले। यहाँ पन्द्रह दिन रह गयी थीं। जब

सोना का पहले था न ? तब उनकी ओर से सोना दिया है। उनकी ओर से दस हजार का सोना दिया था। वह महिला उस समय वहाँ खड़ी थी। मरते समय यहाँ आने का भाव बहुत था (तो बोली), परमागम के महोत्सव की जय! मैं आ नहीं सकूँगी। आहाहा! धीरुभाई के... हार्ट का दर्द कहते हैं न ? क्या कहते हैं ? हार्ट। हृदय में रक्त सूख गया। सांस नहीं ले सके। ... आहाहा! गुरुदेव की जय! ऐसा बोली। उसके वहाँ मन्दिर है। मलाड मन्दिर के अधिष्ठाता है। बाई दर्शन करने बाहर निकली। दस मिनट में समाप्त। छोटी लड़की ने कहा, माँ, नहीं जाना है। जाती हूँ, ऐसा कहा। जाती हूँ। यह बन्द हो गया। छोटी लड़की ने कहा, माँ, नहीं जाने दूँगी। ऐसा बोली। आत्मा अमर है। बस, इतना बोली। देह छूट गया। २४-२५ दिन हुए। सुना था न। आत्मा अमर है। आत्मा मरता-फरता नहीं। आहाहा! आत्मा का जन्म होता नहीं और आत्मा मरे नहीं। अविनाशी आत्मा चिदानन्द प्रभु हूँ। आहाहा! ऐसी पीड़ा में भी उतना याद आना। बहुत पीड़ा होती है, ऐसा कहते हैं। ये हार्ट की। रक्त सूख जाता है और सांस अन्दर से चलता नहीं।

मुमुक्षु : ... अभी अनुभव हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा! हो गया आपको ? दामोदरभाई का मकान है न ? दामोदरभाई का मकान। नदी के किनारे। यहाँ रहते न ? अमृतलाल रहते थे। ... तीन मंजिल का मकान था, वहाँ रहते थे। पत्नी मर गयी। भाई अकेला था, उसे ऐसा है। अभी तो वहाँ रहते हैं। झरिया में। खाने-पीने की अनुकूलता रहे, इसलिए वहाँ रहते हैं। बहुत बार कहा है। ऐसा ही है। अकेले रहे। घर का मकान, घर का किराया बहुत पैसे आते हैं। अब अकेले हैं। अच्छी वीशी खाना-पीना और मौज करनी रही। सोनगढ़ छोड़ दिया। समझ में आया ?

धर्मी तो ऐसा विचार करते हैं, क्षणभंगुर चीज़ नाश हो जाएगी। वह मेरी चीज़ है नहीं। मिथ्यात्व में तो ऐसा भाव नहीं आता। मिथ्यादृष्टि को तो मेरा है, मेरा है, मेरा है, (ऐसा लगता है)। आहाहा! ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती छह खण्ड का राजा और सोलह हजार देव तो उसकी सेवा करते थे। और एक स्त्री की हजार देव सेवा करते हैं। मरते समय प्रेम में... प्रेम में मिथ्यादृष्टि मूढ़... आहाहा! कुरुमति, कुरुमति ऐसा बोलते-

बोलते सातवीं नरक (में चला गया)। अभी सातवीं नरक में है। नीचे सात नरक हैं। सात पाताल हैं। उसमें सातवीं नरक में सर्वोत्कृष्ट पीड़ा और सर्वोत्कृष्ट बड़ी स्थिति। तैतीस सागर की स्थिति। आहाहा! बापू! ऐसे भव उसने अनन्त किये। वह मिथ्यात्व के कारण किये हैं। विपरीत मान्यता। मिथ्यात्व जैसा पाप नहीं और मिथ्यात्व जैसा कोई अधर्म नहीं। ऐसा समकिति जीव विचार करते हैं। ऐसे दूसरा गुणस्थान सूक्ष्म है, तीसरा सूक्ष्म है। चौथा गुणस्थान समकित का है। आत्मा का शुद्ध स्वरूप, उसका अनुभव होना, उसकी दृष्टि करना, वह चौथा गुणस्थान है। वहाँ से धर्म की शुरुआत होती है। बाद में पंचम गुणस्थान में थोड़ी शुद्धता की वृद्धि होती है। मुनि होता है तो शान्ति की वृद्धि होती है, आनन्द में बहुत रहते हैं, वह मुनिपना है। छठवाँ गुणस्थान। सातवें में अप्रमत्तदशा रहती है। वैसे आठवें से लेकर बारह, तेरह। तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान होता है और चौदहवें में अन्तिम स्थिति होकर सिद्ध होता है। ऐसा चौदह गुणस्थान का विचार करते हैं, अपने में वह शुभ विकल्प है। अशुभ से बचने को शुद्ध की दृष्टि रखने से ऐसा भाव आता है। उसको पुण्य और अशुभ से बचने का भाव कहने में आता है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-९८

आगे भावशुद्धि के लिए अन्य उपाय कहते हैं -

णवविहबंभं पयडहि अब्बंभं दसविहं पमोत्तूण ।
 मेहुणसण्णासत्तो भमिओ सि भवण्णवे भीमे ॥९८॥
 नवविधब्रह्मचर्यं प्रकटय अब्रह्म दशविधं प्रमुच्य ।
 मैथुनसंज्ञासक्तः भ्रमितोऽसि भवार्णवे भीमे ॥९८॥
 अब्रह्म दशधा छोड़ नवधा ब्रह्मचर्यं प्रगट करो।
 इस भीम भव-सागर में भटके मिथुन संज्ञासक्त हो ॥९८॥

अर्थ - हे जीव ! तू पहिले दस प्रकार के अब्रह्म हैं, उसको छोड़कर नव प्रकार के ब्रह्मचर्य हैं, उसको प्रगट कर, भावों में प्रत्यक्ष कर। यह उपदेश इसलिए दिया है कि तू मैथुनसंज्ञा जो कामसेवन की अभिलाषा उसमें आसक्त होकर अशुद्ध भावों से इस भीम (भयानक) संसाररूपी समुद्र में भ्रमण करता रहा।

भावार्थ - यह प्राणी मैथुन संज्ञा में आसक्त होकर गृहस्थपना आदिक अनेक उपायों से स्त्रीसेवनादिक अशुद्धभावों से अशुभ कार्यों में प्रवर्तता है, उससे इस भयानक संसारसमुद्र में भ्रमण करता है; इसलिए यह उपदेश है कि दस प्रकार के अब्रह्म को छोड़कर नव प्रकार के ब्रह्मचर्य को अंगीकार करो।

दस प्रकार के अब्रह्म ये हैं। १. पहिले तो स्त्री का चिन्तन होना, २. पीछे देखने की चिन्ता होना, ३. पीछे निश्वास डालना, ४. पीछे ज्वर होना, ५. पीछे दाह होना, ६. पीछे काम की रुचि होना, ७. पीछे मूर्च्छा होना, ८. पीछे उन्माद होना, ९. पीछे जीने का संदेह होना, १०. पीछे मरण होना, ऐसे दस प्रकार का अब्रह्म है।

नव प्रकार का ब्रह्मचर्य इसप्रकार है ह्य नव कारणों से ब्रह्मचर्य बिगड़ता है, उनके नाम ये हैं - १. स्त्री को सेवन करने की अभिलाषा, २. स्त्री के अंग का स्पर्शन, ३. पुष्ट रस का सेवन, ४. स्त्री से संसक्त वस्तु शय्या आदिक का सेवन, ५. स्त्री के मुख, नेत्र आदि को देखना, ६. स्त्री का सत्कार पुरस्कार करना, ७. पहिले किये हुए स्त्रीसेवन को

याद करना, ८. आगामी स्त्रीसेवन की अभिलाषा करना, ९. मनोवांछित इष्ट विषयों का सेवन करना - ऐसे नव प्रकार हैं। इनका त्याग करना सो नवभेदरूप ब्रह्मचर्य है अथवा मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना से ब्रह्मचर्य का पालन करना ऐसे भी नव प्रकार हैं। ऐसे करना सो भी भाव शुद्ध होने का उपाय है।।९८।।

प्रवचन-१३१, गाथा-९८ से १०१, बुधवार, कार्तिक शुक्ल ०५, दिनांक ०४-११-१९७०

यह अष्टपाहुड़, इसमें भावपाहुड़। ९८वीं गाथा। 'णवविहबंभं' प्रगट कर, ऐसा है न पहला शब्द? ब्रह्मचर्य अर्थात् मूल बात यह है कि आत्मा ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप है। उस आनन्दस्वरूप के अनुभव में आत्मा का आनन्द है, वैसा स्वाद आने पर उसे अब्रह्म—विषय की वासना की रुचि घट जाती है। समझ में आया? विषय-वासना में सुखबुद्धि जो है, वह मिथ्यात्वभाव है। ब्रह्मचर्य—ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्द अतीन्द्रिय आनन्दरस के स्वभाववाला तत्त्व है। उसकी रुचि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और उसमें स्थिर होना, इसका नाम ब्रह्मचर्य का शुद्धभाव का परिणमन। समझ में आया? यहाँ मुनि को लक्ष्य कर मुख्य बात है।

पहला ब्रह्मचर्य पालने में सम्यग्दर्शन अनुभव तो होना चाहिए। इसके बिना पर में से इसकी रुचि हटेगी नहीं। विषय-वासना, अरे! पुण्य के परिणाम शुभभाव, उसमें भी जिसकी रुचि और प्रेम है, उसे ब्रह्मानन्द ऐसा आत्मा, उसका उसे प्रेम अन्तर रुचि में है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ - कहते हैं कि यह प्राणी मैथुनसंज्ञा में आसक्त होकर... अपना आनन्दस्वभाव, उसका इसे भान नहीं होता। अतीन्द्रिय आनन्द ब्रह्मानन्दस्वरूप आत्मा है। उसकी रुचि, उसके प्रेम बिना विषय-वासना—मैथुनसंज्ञा में आसक्ति होकर उसमें राग में अर्पित हो गया। गृहस्थपना आदिक अनेक उपायों से... पश्चात् आरम्भ परिग्रह स्त्री के लिये व्यापार-धन्धा आदि अनेक प्रकार से करके, उपायों से स्त्रीसेवनादिक अशुद्धभावों से... स्त्री सेवन आदि पाँचों इन्द्रिय के भोग की भावना, अशुद्धभाव से अशुभ कार्यों में प्रवर्तता है, उससे इस भयानक संसारसमुद्र में भ्रमण करता है;...

भयानक—भय का आनक—समुद्र। अकेला भय। चौरासी के अवतार। जहाँ कहीं सख नहीं, ऐसे चौरासी के अवतार में आत्मा के आनन्द के ब्रह्मचर्य के प्रेम बिना इस प्रकार पर में आसक्त होकर चौरासी के अवतार में भटकता है। **उससे इस भयानक संसारसमुद्र में भ्रमण करता है; इसलिए यह उपदेश है...** इसलिए यह उपदेश है कि **दस प्रकार के अब्रह्म को छोड़कर नव प्रकार के ब्रह्मचर्य को अंगीकार करो।** दसविध अब्रह्म तो विषय में प्रेम है, उसमें—विषय में मुख्य वस्तु स्त्री है, ऐसा कहते हैं।

पहिले तो स्त्री का चिन्तन होना,... अपने आत्मा के आनन्द का स्वरूप है, उसका भान नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द का भान होवे, तब तो अतीन्द्रिय आनन्द की चिन्तवना होती है। समझ में आया? उसकी खबर नहीं; इसलिए भाव बिना सम्यग्दर्शन के ब्रह्मचर्य आत्मा के आनन्द की रुचि और भाव बिना अकेले स्त्री का चिन्तन करे। **२. पीछे देखने की चिन्ता होना,...** आत्मा का चिन्तन, आनन्दस्वरूप का भान होवे तब तो उसका चिन्तन करके अनुभव में आने की भावना हो। इस परपदार्थ के लक्ष्य का चिन्तन और उसे देखने का मन हो। भगवान आनन्दमूर्ति है, उसे देखने का वह प्रयत्न नहीं करता, इसलिए उसे बाहर के स्त्री आदि, जो विषय में मुख्य चीज़ है, उसे देखने का मन करता है।

३. पीछे निश्वास डालना,... जब तक न मिले, तब तक हा... ऐसा करे, हाह डाले, श्वास डाले। समझ में आया? **४. पीछे ज्वर होना,...** पश्चात् ज्वर—जिसे कामज्वर कहा जाता है, (वह उपजे)। काम की वासना की अन्दर में आताप लगे, शरीर में ज्वर उत्पन्न हो। भगवान आत्मा के आनन्द के भानवाला तो आनन्द में रमते हुए उसे शान्ति आवे। इसे बुखार आवे। ज्वर-कामज्वर जिसे कहते हैं। वैद में भी यह अधिकार है। समझ में आया? हों! कामज्वर। बुखार-आताप शरीर में (लगे)। आहाहा! यहाँ आत्मा के भानसहित की बात है, हों! ब्रह्मचर्य पालने की बात। भान नहीं वहाँ इस प्रमाण करता है, उसे छोड़ ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

७. पीछे मूर्च्छा होना,... **५. पीछे दाह होना,...** ज्वर के पश्चात् दाह। शरीर में दाह होती है। **६. पीछे काम की रुचि होना,...** विषय-वासना सेवन का मन होता है। **७. पीछे मूर्च्छा होना,...** विषय में मूर्च्छित हो जाता है। **८. पीछे उन्माद होना,...**

पागल भी हो जाता है, पागल हो जाता है। कामज्वर से पागल हो जाता है। हमने तो बहुत देखे हैं न। समझ में आया? नाम नहीं दिये जाते। उतरते हैं न। पागल हो जाए, पागल। विषय में पर की वासना की मूर्च्छा में पागल-गहल हो जाए। धर्मी आत्मा के आनन्द में उन्मत्त हो जाए। उसमें झुक जाए, ढल जाए। ऊन अर्थात् ढल जाए। यह इसमें अकेला गहल-पागल हो जाए। आहाहा! ९. पीछे जीने का संदेह होना,... अरे! मैं जिऊँगा या नहीं? पूरे शरीर में दाह इत्यादि होकर जीने की आशा उड़ जाए। १०. पीछे मरण होना,... मर जाए। आहाहा! आत्मा आनन्दमूर्ति की श्रद्धा और ज्ञान के भान बिना ऐसे भावों में भटककर चार गति में भटका है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि के आत्मा के आनन्द का अनुभव होता है। पश्चात् उसे जरा वासना आवे परन्तु उसका उसे प्रेम और रुचि नहीं है। आसक्ति है परन्तु रुचि नहीं है। वह भी आसक्ति छोड़ने के लिये मुनि को उपदेश करते हैं। आहाहा! चौरासी के अवतार में भ्रमण करके डोल रहा है। उसने आत्मा में आनन्द है, उस ओर की नजर नहीं की, प्रयत्न नहीं किया, सन्मुख देखने को सावधान नहीं हुआ। यह सब बाहर में भटकने की सावधानी है, कहते हैं। यह दस प्रकार तो अब्रह्म के कहे।

अब नवविध ब्रह्मचर्य। नव कारणों से ब्रह्मचर्य बिगड़ता है,... स्त्री को सेवन करने की अभिलाषा,... भगवान आनन्द के प्रेम की अभिलाषा चाहिए, उसके बदले स्त्रीसेवन, माँस, हड्डियाँ, चमड़ी के सेवन की अभिलाषा (करता है)। उसे यह लगे। समझ में आया? तपसी को कहाँ सुने? तपसी की आवाज कौन सुने वहाँ? कहते हैं, पाँच इन्द्रिय के विषयों में स्त्री का विषय मुख्य है। इसलिए उसके विषय की अभिलाषा होने पर उसे आनन्द की अभिलाषा टल जाती है। भगवान आनन्दस्वरूप हूँ, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर हूँ। जिसके एक क्षण के आनन्द में अतीन्द्रिय आनन्द में, समकितदर्शन में—सम्यग्दर्शन में आनन्द की लहर का अनुभव आवे, उसके समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए कचरे जैसा लगता है। सड़ा हुआ कचरा। ऐसा भगवान आनन्द का सागर है। अकेले आनन्द से भरपूर महापर्वत है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु इसकी कुछ खबर नहीं होती। यह हड्डियाँ, माँस देखे। देखनेवाला कौन है, उसे नहीं देखता। इसे देखे, यह है, यह है और यह है और यह है। परन्तु देखनेवाला कौन है? देखनेवाले में

क्या है ? जो चीज़ दिखती है, वह क्या ? उसमें क्या है, यह तो खबर नहीं, जड़ है और मिट्टी है यह सब। देखनेवाला भगवान आत्मा है। वह तो चैतन्यबिम्ब आनन्द का नाथ है। आहाहा! आनन्द से ही वह रक्षित है।

ऐसे आनन्द के भान बिना, कहते हैं, स्त्री को सेवन करने की अभिलाषा, २. स्त्री के अंग का स्पर्शन,... करने का भाव। आहा! ३. पुष्ट रस का सेवन,... ऊँची-ऊँची चीज़ें। बादामपाक और मूसलीपाक और सालमपाक ऊँचे आते हैं न? ऊँची-ऊँची चीज़ें बहुत आती हैं। समझ में आया ? उसका रस पुष्टि करके विषय की वृद्धि करने का भाव। समझ में आया ? ३. पुष्ट रस का सेवन, ४. स्त्री से संसक्त वस्तु शय्या आदिक का सेवन,... जो स्त्री जिस मकान में रहती हो अथवा जिसके कपड़े आदि हों, उन्हें देखने का मन होता है, उन्हें स्पर्श करने का मन होता है, वह सब आत्मा के आनन्द को स्पर्श करने का भाव नहीं और यह स्पर्श करने का भाव। आहाहा!

५. स्त्री के मुख, नेत्र आदि को देखना, ६. स्त्री का सत्कार पुरस्कार करना,... उसका आदर करना, बहुमान देना। शरीर की सुन्दरता का बहुमान देना, शरीर के अवयवों की आकृति के अवयवों को देखकर बहुमान देना, ऐसी मीठी नजर से देखना, यह उसका सत्कार है। समझ में आया ? भगवान आनन्दस्वभाव का सत्कार चाहिए, उसके बदले इस सत्कार में ढल गया। इसके कारण चार गति में परिभ्रमण करता है। समकित्ती हो, फिर ऐसा हो परन्तु वह तो उसका प्रेम नहीं, उसे रुचि नहीं। उसका उसे रस नहीं। इसलिए सम्यग्दर्शन, वही मुख्य तो ब्रह्मचर्य है और मिथ्यात्व, वही पहला अब्रह्म है। समझ में आया ? ७. पहिले किये हुए स्त्रीसेवन को याद करना,... अहो! एक स्त्री थी, वह चली गयी। फिर बारम्बार उसका विचार आया करे। वापस पागल हो जाए। या उसकी छवियाँ करके, फोटो करके भी देखा करे कि आहा! थी न यह वस्तु। धूल था अब, सुन न! इस विषय की सेवना को बारम्बार स्मृति में लावे, वह महापाप है, कहते हैं। समझ में आया ?

८. आगामी स्त्रीसेवन की अभिलाषा करना,... भविष्य में भी अभिलाषा करना। ९. मनोवांछित इष्ट विषयों का सेवन करना... मन, इच्छा प्रमाण खाने-पीने की लहर करे अन्दर से। यह सब ब्रह्मचर्य को तोड़ने के उपाय हैं। तोड़ने के उपाय हैं।

ऐसे नव प्रकार हैं। इनका त्याग करना... इन्हें छोड़ दे। आत्मा के आनन्द की रुचि करे, उसकी अभिलाषा करे, उसका सत्कार करे, इत्यादि उसे चाहे। समझ में आया? उसे स्पर्श करे, उसे याद करे। अपना भगवान स्वभाव, उसे याद करे या नहीं? याद करे कौन? जिसे पहले ज्ञान में भान हुआ हो, वह याद करे न? वह वस्तु ही याद आयी नहीं, उसे याद करे किस प्रकार?

इनका त्याग करना सो नवभेदरूप ब्रह्मचर्य है अथवा मन-वचन-काय,... मन, वाणी और काया, कृत-कारित-अनुमोदना से ब्रह्मचर्य का पालन करना ऐसे भी नव प्रकार हैं। लो! ऐसे करना सो भी भाव शुद्ध होने का उपाय है। यह भाव शुद्ध। शुभ-अशुभ, अशुद्ध। शुभ-अशुभभाव, वह अशुद्ध, वह बन्ध का कारण। यह शुद्ध होने का कारण। आत्मा आनन्दस्वरूप, शुद्ध आनन्द शान्ति, ऐसी अन्तर्दृष्टि के विश्वास में भगवान आने पर उसे पर का रस उड़ जाता है। और इसलिए उसके भाव में शुद्धि—शुभाशुभ परिणाम रहित शुद्धि होती है। यहाँ शुद्धता, वही मोक्ष का मार्ग है। शुभ-अशुभ परिणाम, वह तो बन्ध का मार्ग है। समझ में आया?



गाथा-९९

आगे कहते हैं कि जो भावसहित मुनि है, सो आराधना के चतुष्क को पाता है, भाव बिना वह भी संसार में भ्रमण करता है -

भावसहिदो य मुणिणो पावइ आराहणाचउक्कं च ।

भावरहिदो य मुणिवर भमइ चिरं दीहसंसारे ॥९९॥

भावसहितश्च मुनिनः प्राप्नोति आराधनाचतुष्कं च ।

भावरहितश्च मुनिवर! भ्रमति चिरं दीर्घसंसारे ॥९९॥

हैं भाव-सहित मुनि हि पाते चार आराधन सदा।

हैं भाव-विरहित श्रमण भटकें दीर्घ भव में सर्वदा ॥९९॥

अर्थ - हे मुनिवर! जो भावसहित है सो दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप ऐसी आराधना

के चतुष्क को पाता है, वह मुनियों में प्रधान है और जो भावरहित मुनि है, सो बहुत काल तक दीर्घ संसार में भ्रमण करता है।

भावार्थ - निश्चय सम्यक्त्व का शुद्ध आत्मा का अनुभूतिरूप श्रद्धान है, सो भाव है, ऐसे भावसहित हो उसके चार आराधना होती है, उसका फल अरहन्त सिद्ध पद है और ऐसे भाव से रहित हो उसके आराधना नहीं होती है, उसका फल संसार का भ्रमण है। ऐसा जानकर भाव शुद्ध करना - यह उपदेश है ॥१९॥

गाथा-१९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो भावसहित मुनि... देखो! अब समकित। भाव अर्थात् समकित। आत्मा पूर्णानन्द निर्विकल्प अभेद आनन्दकन्द है, ऐसा अन्तर अनुभव में सम्यग्दर्शन प्रगट होना, उसे यहाँ भाव कहा जाता है। समझ में आया? उस भावसहित मुनि है, सो आराधना के चतुष्क को पाता है,... वह अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्दादि आराधना को पा सके। सम्यग्दृष्टि मुनि होवे तो। कहो, प्रकाशदासजी! लो, यह सम्यग्दर्शन की बात यहाँ चलती है। आहाहा! मन, वचन और काया से पार हूँ। शुभ-अशुभराग से भी भिन्न / पृथक् चीज़ हैं, मुझमें शान्ति और आनन्द से अभिन्न हूँ, ऐसी अन्तर अनुभव की सम्यग्दर्शन अनुभूति, आगे कहेंगे। भावार्थ में कहेंगे, भावार्थ में यह लेंगे। समझ में आया? निश्चय सम्यक्त्व का शुद्ध आत्मा का अनुभूतिरूप श्रद्धान है,... है भावार्थ? उसमें है। उसमें है। १९ का भावार्थ है, इस पुरानी प्रति में। समझ में आया?

निश्चय समकित, आत्मसमकित वह क्या? कि शुद्ध आत्मा का अनुभूतिरूप श्रद्धान... समझ में आया? अर्थात् क्या? यह निश्चय समकित अर्थात् क्या? ऐसा कहते हैं। शुद्ध आत्मा का... शुद्ध आत्मा। पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-भक्ति के परिणाम, वे सब अशुद्ध हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, वासना भी अशुद्ध है। उससे भिन्न शुद्ध आत्मा। ऐसे शुद्धात्मा की अनुभूति—उसका अनुभव, उसका नाम श्रद्धान, उसका नाम समकित, उसका नाम भाव। कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि भावसहित मुनि है,... ऐसे भावसहित साधु हों, वे आराधना के

चतुष्क को पाता है, ... अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द और शान्ति को पाते हैं। आहाहा! भाव बिना वह भी संसार में भ्रमण करता है। ऐसे सम्यग्दर्शन, आत्मा की शुद्ध की अनुभूति की श्रद्धा, उसके भान बिना साधु नग्न मुनि, अट्टाईस मूलगुण पाले तो भी वह चार गति में भटकता है। समझ में आया? आहाहा! यह कहते हैं, देखा! ९९ गाथा है। ९९ का धक्का लगता है न। ९९ के धक्के का सुना है या नहीं बलुभाई! ९९ का धक्का। बनिये के पास बहुत पैसे थे। फिर उस वाणंद के पास थोड़े। कुछ ऐसा जाति का लो न, नाम खबर न हो। थोड़े थे, फिर ऐसे करते-करते किसी ने उसे ९९ रुपये की थैली उसके घर में छोड़ दी। ९९ देखे। तब अधिक करने का भाव हुआ अब। सौ पूरे करना। फिर अब धक्का लगा। कुछ नहीं था, वहाँ तक कुछ नहीं। ऐसे ९९ आत्मा के भान की दशा बिना के यह चार गति में धक्का खाने के और आत्मा के भानवाले वे सिद्धपद की प्राप्ति को पानेवाले हैं। आहाहा!

भावसहिदो य मुणिणो पावइ आराहणाचउक्कं च ।

भावरहिदो य मुणिवर भमइ चिरं दीहसंसारे ॥९९॥

पश्चात् कहा मुनिवर, भाई! यह तो भावरहित हो तो भी मुनिवर। ऐसा। मुनिवर क्यों कहा? कि सम्यग्दर्शन नहीं, परन्तु उसकी क्रिया महीने-महीने के अपवास, दो-दो महीने के अपवास, रूखा आहार (करे), ऐसी चमड़ी सूख जाए ऐसी क्रिया (पालन करे)। मुनिवर। हे मुनिवर द्रव्यलिंगी! ऐसा कहते हैं। आत्मा का भान सम्यग्दर्शन बिना निर्विकल्प आत्मा की दृष्टि... आहाहा! समझ में आया? ऐसे अनुभव बिना 'मुनिवर भमइ चिरं दीहसंसारे'

अर्थ - हे मुनिवर! देखो! जो भावसहित है, सो दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप ऐसी आराधना के चतुष्क को पाता है, ... सम्यग्दर्शनसहित होवे तो उसका फल दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप आराधना उसे मिलता है। परन्तु सम्यग्दर्शन ही मुख्य नहीं और ऊपर की क्रियाकाण्ड सब पंच महाव्रत और अट्टाईस मूलगुण की है, वे सब बिना एक के शून्य हैं। आहाहा! समझ में आया? भावसहित है, सो दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप ऐसी आराधना के चतुष्क को पाता है, ... सम्यग्दृष्टि आराधक होता है। मिथ्यादृष्टि आराधक होगा? वह मुनियों में प्रधान है... लो! मुनिवर कहा न?

जो भावरहित (समकितरहित है) मुनि है, सो बहुत काल तक दीर्घ संसार में भ्रमण करता है। आहाहा! जितना सिद्धकाल में रहता है अनन्त काल ऐसा इस संसार में अनन्त काल निगोद में रहता है, ऐसा कहते हैं। देखो! व्याख्या। भाव की व्याख्या। लोग कहते हैं कि यह शुभभाव है न? शुभभाव, हमारा भाव तो शुभ है न? अच्छे है न? परन्तु यह शुभभाव अच्छा ही नहीं, सुन न! हमने भाव बिना यह संसार छोड़ा होगा? भाव बिना स्त्री-पुत्र और धन्धा छोड़ा होगा? परन्तु भाव कौन सा? सुन न! यह तो राग की मन्दता का कोई शुभभाव हो मिथ्यात्वसहित। दृष्टि तो वहाँ राग पर, पर्याय पर पड़ी है। समझ में आया? इस भाव को भाव कहते नहीं। यह भटकने का भाव है। आहाहा!

भावार्थ – निश्चय सम्यक्त्व का शुद्ध आत्मा का... निश्चय समकित का श्रद्धान। क्या? शुद्ध आत्मा का अनुभूतिरूप श्रद्धान... ऐसा जिसमें पंच महाव्रत का विकल्प हो तो भी जिसका कर्ता आत्मा नहीं। देह की क्रिया का वह साक्षी और दृष्टा है, उसका वह कर्ता नहीं। ऐसी जो सम्यग्दर्शनरूपी अनुभूति, उसकी श्रद्धा अनुभूति में। निश्चय समकित। देखो! यह (अज्ञानी) निश्चय समकित की इनकार करते हैं। अभी वह कुछ होता नहीं। व्यवहार होता है... व्यवहार होता है... व्यवहार होता है। आहाहा! व्यवहार समकित, वह समकित ही नहीं है। वह तो राग है। व्यवहार समकित यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा। निश्चय तो पहले आवे? पहला व्यवहार आवे, पश्चात् निश्चय आवे। नहीं आवे? ऐई! जयन्तीभाई! व्यवहार कहना किसे अब? व्यवहार राग की मन्दता तो अनन्त बार की है। अनन्त बार की है। निगोद में भी भाव शुभ तो अनन्त बार हुआ है। निगोद में! एकेन्द्रिय, आलू, शक्करकन्द में भी शुभभाव अनन्त बार हुआ है। वहाँ शुभ है? है। क्या नहीं? हाँ करते हैं, उसमें और इनकार करे, यह कहाँ से आया? यह निगोद आलू, शक्करकन्द, मूला, गाजर की एक कणी में अनन्त जीव हैं। असंख्य शरीर और अनन्त जीव। उस एक-एक जीव को भी शुभभाव अनन्त बार हो गया है। नित्यनिगोद में भी। आहाहा!

मुमुक्षु : निगोद में हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अनन्त बार। शुभभाव है न? आत्मा है तो, क्षण में शुभ,

क्षण में अशुभ, क्षण में शुभ, क्षण में अशुभ। ऐसा अनन्त बार नित्यनिगोद में भी शुभभाव अनन्त बार हुआ। यह शुभ कहाँ नयी चीज़ है ? आहाहा !

मुमुक्षु : राग की मन्दता होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग की मन्दता होती है न वहाँ। उतना अंश घटता है। भले मिथ्यादृष्टि हो, भले अभव्य हो। अभव्य को भी निगोद में शुभभाव सदा घड़ीक में शुभ, घड़ीक में अशुभ, घड़ीक में शुभ, घड़ीक में अशुभ - ऐसा अनन्त बार हो गया है। यह कुछ कोई वस्तु नहीं है, शुभ कुछ नयी चीज़ नहीं है। यहाँ जरा जहाँ पंच महाव्रत और दया-दान को जहाँ करे, वहाँ आहाहा! अपने हो गया धर्म। धूल भी धर्म नहीं। बापू! धर्म की चीज़ बहुत अलग है। समझ में आया ?

यहाँ तो निश्चय समकित। निश्चय अर्थात् सच्चा, सत्य। समकित अर्थात् यथार्थ श्रद्धान। किसकी ? कि शुद्ध आत्मा का अनुभूतिरूप श्रद्धान... अकेला आत्मा पुण्य-पाप के रागरहित, अकेला आत्मा वीतरागी स्वभाव से भरपूर आनन्द का नाथ, उसके सन्मुख होकर अन्तर में निर्णय होकर, अनुभूति में निर्णय होकर समकित हो, उसे श्रद्धान कहते हैं। आहाहा! इस श्रद्धा बिना सो भाव है, ऐसे भावसहित हो... ऐसा भाव हो। सो भाव है,... उसे यहाँ भाव कहा है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसे भावसहित हो, उसके चार आराधना होती है,... पाठ है न पाठ ? देखो ! 'भावसहिदो य मुणिणो पावइ आराहणाचउक्कं च' उसका फल अरहन्त-सिद्धपद है... लो! सम्यग्दर्शन, निश्चय शुद्ध आत्मा की अनुभूति का श्रद्धान, वह अरिहन्तपद पावे। क्योंकि आराधना तो उसे मिलती है। आत्मा का सेवन मिले। उससे अरहन्त सिद्ध पद है... उसका फल तो अरिहन्त और सिद्ध होता है। लो !

ऐसे भाव से रहित हो... शुद्ध आत्मा की अनुभूति की श्रद्धा, ऐसे भावरहित हो और चाहे तो चाहे जैसे शुभ-अशुभभावसहित हो, उसके आराधना नहीं होती है,... उसे आत्मा का सेवन नहीं है। उसका फल संसार का भ्रमण है। चार गति में भटकना है। आहाहा! समझ में आया ? परन्तु मैं शुद्ध हूँ, उसे उसका परिचय नहीं, सुनने को मिले नहीं। अन्दर वह कौन है यह अन्दर ? शुद्ध आत्मा पवित्रता का पिण्ड प्रभु अन्दर। अकेले पवित्र अनन्त गुणों का सागर, उसकी अनुभूति हुई, उसका अनुभव हो, उसमें

श्रद्धान हो, उसे समकित सच्चा कहा जाता है। यह तो समझ में आये ऐसा है। भाषा सादी है। भाव भले ऊँचे हों। आहाहा! समझ में आया ?

ऐसे भाव से रहित हो... और बाहर नग्नमुनि दिगम्बर हो, अट्टाईस मूलगुण विकल्प भी जिसे हो, परन्तु उसका फल चार गति में भटकने का है। समझ में आया ? आहाहा! भले पहला कोई देव आदि हो, परन्तु पश्चात् ढोर में, निगोद में जाएगा। परन्तु वहाँ चार गति है। यहाँ अरिहन्त-सिद्ध है, वहाँ चार गति है। ऐसी दो बातें करते हैं। समझ में आया ? शुद्ध आत्मा परिपूर्ण परमात्मस्वभाव, ध्रुव नित्य आनन्दनाथ का अनुभव, उसका ज्ञान। अनुभूति अर्थात् अनुभव में उसका ज्ञान हो। उसके भानसहित की प्रतीति को सच्चा सम्यग्दर्शन, धर्म का पहला अवयव अथवा धर्म का पहला भाग मोक्ष का, उसे समकित कहते हैं। बाकी दुनिया माने कि नव तत्त्व की श्रद्धा, देव-गुरु की श्रद्धा, वे सब समकित नहीं है, वह तो राग है। समझ में आया ? पहले इसके श्रद्धा-ज्ञान में यह बात निश्चित तो करे। मार्ग यह है। इसके अतिरिक्त सब थोथे थोथा है।

यहाँ तो आचार्य कहते हैं, मुनिवर। 'भावरहिदो य मुणिवर भमइ' मुनि—बड़ा महामुनि, ऐसा। नौवें ग्रैवेयक गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' छहढाला में आता है। 'पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पाया।' छहढाला में आता है। पढ़ा है ? ऐसा ! बलुभाई कहते हैं, पढ़ा है। समझ में आया ? 'मुनिव्रत धार...' बाह्य क्रियाकाण्ड के मुनिव्रत पंच महाव्रत और अट्टाईस मूलगुण अनन्त बार किये। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' तब इसका अर्थ क्या हुआ ? नौवें ग्रैवेयक में गया, पंच महाव्रत पालन किये, अट्टाईस मूलगुण पालन किये, वह सुख नहीं; दुःख था। ऐसा था या नहीं ? ... हुआ ? पंच महाव्रत दुःख। ऐई ! प्रकाशदासजी ! क्या हुआ ? पंच महाव्रत के परिणाम दुःख, अट्टाईस मूलगुण पालन किये, वह दुःख ? आहाहा ! आया है या नहीं ? डॉक्टर ! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' पंच महाव्रत के परिणाम, अट्टाईस मूलगुण के परिणाम कुछ न कुछ-कुछ न कुछ-कुछ न कुछ तो सुख होगा न ? धूल भी नहीं है। वह तो राग है, वह तो दुःख है। आहाहा ! यहाँ पंच महाव्रत के परिणाम अकेला धर्म हो गया। अरे रे ! यहाँ वह दुःख है। बहुत अन्तर। जगत को

और वीतराग के मार्ग को बहुत अन्तर है। लोग कहीं का कहीं मानकर बेचारे भटकते हैं। समझ में आया ?

कहते हैं, **भाव से रहित...** ऐसा समकित शुद्ध आत्मा का अनुभव। आनन्द का नाथ भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द का भान-अनुभव होकर सम्यक्त्व, जिसमें आनन्द का स्वाद आवे, ऐसी भान की प्रतीति को यहाँ सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शन बिना उसके आराधना नहीं होती है, ... उसे आराधना नहीं है। राग को आराधे, उसमें आत्मा का आराधन कहाँ रहा वहाँ ? सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ तो राग का आराधन है, मिथ्यात्व का आराधन है। **उसका फल संसार का भ्रमण है।** लो! उसका फल चार गति में भटकना है। यह चार गति में दुःख है, यह जँचता नहीं लोगों को। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, **'भावरहिदो'** जिसे सम्यग्दर्शन, आत्मा का अन्तर पुण्य-पाप के शुभाशुभभाव से रहित और निश्चय आत्मस्वभाव का भान, उसमें जो सम्यग्दर्शन जो अनन्त काल में कभी हुआ नहीं, ऐसे सम्यग्दर्शन बिना नौवें ग्रैवेयक में जैन दिगम्बर साधु भी गया, उसमें भटकने का फल मिला, परन्तु आत्मा का फल नहीं मिला। समझ में आया ? वह यहाँ आचार्य कहते हैं। ९९ गाथा। भावपाहुड़। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, आत्मा निर्मलानन्द प्रभु, शुद्ध चैतन्य के अनुभव का समकित जिसे नहीं और द्रव्यलिंग धारण करे, द्रव्यश्रावकपना धारण करे, उसके फल में संसारभ्रमण है। आहाहा! कहो, प्रकाशदासजी! कल कहते थे न ? कि ऐसी श्रद्धा माने, फिर प्रतिमा लें तो ? यहाँ इनकार करते हैं। समझ में आया ? प्रतिमा कैसी ? कहते हैं।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' ऐसा अन्तर में अनुभव, शुभ और अशुभभाव रहित श्रद्धा में शुद्धता प्रगट हुए बिना जो कुछ दूसरा करे, उसके फल में संसार है, चार गति में रुलने का है धूलधाणी (है)। कहो, समझ में आया ? यह सेठिया-बेठिया दस-पचास लाखवाले मिले, वे सब दुखिया हैं, ऐसा कहते हैं। बलुभाई! बलुभाई को पचास लाख का कारखाना है, कल ऐसा कोई कहता था। वह कल नाम खबर है न। अपने गये थे वह है।

मुमक्षु : वही इन्हें रोक देता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : रोके। इनका दवा का कारखाना पचास लाख का। मुम्बई में।

क्या कहलाता है वह क्षेत्र ? कांदीवली । ऐसे करोड़ और पचास लाख और दो करोड़ देखे वहाँ तो आहाहा ! पागल हो जाए पागल । कहते हैं कि अब ऐसा तो अनन्त बार तुझे मिला है । कारण ? कि पाप के भाव हैं, उससे प्रतिकूलता का संयोग मिले और दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम पुण्य के हैं, उससे अनुकूल संयोग मिले । बाह्य चीज़ मिले । उसमें आत्मा मिले नहीं । आहाहा ! कहो, हसुभाई ! समझ में आया ? आहाहा !

भगवान आत्मा इन शुभ और अशुभपरिणाम में जितना आवे, उतना उसे अनुकूल-प्रतिकूल संयोग आवे । परन्तु वह तो संयोग अर्थात् परचीज़ । और परचीज़ में मूर्छित... आहाहा ! यह पैसा मेरा, शरीर मेरा, इज्जत मेरी—मूढ़ हो गया । जड़ को अपना माने, वह तो जड़-मूढ़ है । आहाहा ! समझ में आया ? भगवान आत्मा अमृत का सागर निर्विकल्प वस्तु, उसकी श्रद्धा और भान बिना, पुण्य के भाव किये और उसके फल में धूल मिली कुछ पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़ । अंक करो । अंक गिनना है, वहाँ कहाँ घुस गये हैं पास में ? ऐई ! आहाहा !

कहते हैं कि जिस चीज़ में तू नहीं, जो चीज़ तुझमें नहीं, उस चीज़ को मेरी मानना, वह मिथ्यात्व का मूल है । आहाहा ! कहो, ...लालजी ! यह चीज़ है । वीतराग परमात्मा की तो यह चीज़ है । आहाहा ! एक रजकण जो है परमाणु, वह तो अजीव है । ऐसे अनन्त रजकण का दल यह शरीर है । अनन्त रजकण का पिण्ड यह पैसा है । वह तो अजीव है । वह अजीव मेरा, वह अजीव का स्वामी होता है, मिथ्यादृष्टि मूढ़ चार गति में भटकने के भाव को सेवन करता है । ऐ... धर्मचन्दजी ! कहो, समझ में आया ? यहाँ वजन कितना देते हैं, देखो न ! भाव । कैसा भाव ? शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान, जिसमें पुण्य का भाव भी मेरा माने तो वह मिथ्या चार गति में भटकने का बीज है । समझ में आया ? क्योंकि पुण्यभाव भी आत्मतत्त्व से भिन्न आस्रवतत्त्व है । आस्रवतत्त्व, वह जीवतत्त्व की चीज़ नहीं है । ऐसी मान्यता वह मिथ्यात्व और चार गति में भ्रमण करने के वे सब भाव हैं । आहाहा ! भारी कठिन काम । दुनिया को यह सब बाहर का स्वाद लेना और अन्दर से कुछ धर्म करना है । आहाहा ! दोनों नहीं बनते । एक म्यान में दो तलवारें नहीं रहतीं । जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप का भान सम्यग्दर्शन है, उसे बाहर के पुण्य-पाप के परिणाम का भी रस और प्रेम उड़ गया है । और जिसे पुण्य-पाप के फल

में रस है, उसे भगवान आत्मा के रस से विरुद्ध मिथ्यात्वभाव है। ऐई! भारी कठिन बात है यह। वीतराग का ऐसा धर्म होगा? वीतराग का धर्म तो वीतरागभाव से होता है। रागभाव से धर्म होगा? समझ में आया?

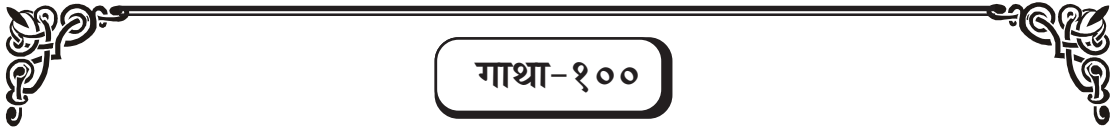
भगवान कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में उपस्थिति थी यहाँ भरत में। भगवान के पास महाविदेह में गये थे। वहाँ से आकर यह (शास्त्र बनाया कि) भगवान ऐसा कहते हैं। और वे ऐसा कहते हैं कि यह तो श्रुतकेवलियों ने कहा, वैसा कहा है। उसमें सीमन्धर भगवान ने कहा, ऐसा क्यों नहीं कहा? और ऐसी टीका (आलोचना) करते हैं। आहाहा! गजब करते हैं न! दो भिन्न टीका में कहा है। उसमें है न? इतिहास में है, शिलान्यास (शिलालेख) में है कि भगवान के पास गये थे। आचार्य स्वयं आठ दिन रहे थे। और ऐसा कहा ऐसा कि? श्रुतकेवली-श्रुतकेवली भणेई, ऐसा कहा। टीका यह आयी। भगवान के पास गये तो भगवान ने कहा, ऐसा इन्होंने क्यों नहीं कहा? अरे! ऐसे के ऐसे ऐसे पके हैं। तथापि टीका में दोनों लिखा नहीं? श्रुत और केवली के निकट सुना है। श्रुतकेवली और केवली दोनों से सुना हुआ।

मुमुक्षु : नियमसार में दोनों है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों है ही न उसमें। अर्थ में भी है। टीका में भी दो है। मूल पाठ में है। आहाहा! जयसेनाचार्य की टीका में है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि आत्मध्यानी महाविदेह में गये थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये। यह तो टीका में है। संस्कृत टीका। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा जानकर भाव शुद्ध करना - यह उपदेश है। लो! ऐसा जानकर। क्या जानकर? क्या जानकर? शुभ-अशुभ परिणाम वे बन्ध के कारण हैं। यह संवर-निर्जरा और मोक्ष का कारण बिल्कुल नहीं है। आहाहा! आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु सिद्ध समान अपना स्वरूप है। उसे अन्तर में भान में पहिचान करके अनुभव करना, इसका नाम प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन है। इस सम्यग्दर्शन बिना संसारभ्रमण के कारण सेवन कर अनादि से संसार में भटकता है। निगोद में भाव शुभ है। शुभभाव तो निगोद में भी है। कहा न? आलू, शकरकन्द और नित्यनिगोद में भी शुभभाव तो है। तो और कहे कि वहाँ शुभभाव कैसा? वहाँ तो आहार-पानी लेने का नहीं, भगवान का स्मरण करने का

नहीं। परन्तु अब स्मरण-फमरण न हो तो भी भाव होते हैं। सुन न! राग की मन्दता ऐसा शुभभाव निगोद में एकेन्द्रिय जीव को भी अनन्त बार हो गया है। वह कुछ नयी चीज़ नहीं है। उससे रहित आत्मा भिन्न चैतन्य का शुद्ध स्वरूप उसकी अनुभव में प्रतीति होना, वह सम्यग्दर्शन, उसे शुद्धभाव कहते हैं, लो। उसे शुद्धभाव (कहते हैं) और वह शुद्धभाव मुक्ति का कारण है। समझ में आया ?



गाथा-१००

आगे भाव ही के फल को विशेषरूप से कहते हैं -

पावन्ति भावसवणा कल्लाणपरंपराइं सोक्खाइं ।

दुक्खाइं दव्वसवणा णरतिरियकुदेवजोणीए ॥१००॥

प्राप्नुवन्ति भावश्रमणाः कल्याणपरंपराः सौख्यानि ।

दुःखानि द्रव्यश्रमणाः नरतिर्यक्कुदेवयोनी ॥१००॥

कल्याण पारंपर्य सुख पाते हैं भाव-श्रमण सदा।

दुखमय असुर नर तिर्यग् योनि द्रव्य मुनि पाते सदा ॥१००॥

अर्थ - जो भावश्रमण हैं, भावमुनि हैं, वे जिसमें कल्याण की परम्परा है-ऐसे सुखों को पाते हैं और जो द्रव्यश्रमण हैं, वे तिर्यच मनुष्य कुदेव योनि में दुःखों को पाते हैं।

भावार्थ - भावमुनि सम्यग्दर्शन सहित हैं, वे तो सोलहकारण भावना भाकर गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण, पंच कल्याणक सहित तीर्थकर पद पाकर मोक्ष पाते हैं और जो सम्यग्दर्शन रहित द्रव्यमुनि हैं, वे तिर्यच, मनुष्य, कुदेव योनि पाते हैं। यह भाव के विशेष से फल का विशेष है ॥१००॥

गाथा-१०० पर प्रवचन

आगे भाव ही के फल को विशेषरूप से कहते हैं - अब आगे भाव ही के... अर्थात् सम्यग्दर्शन के फल को विशेष कहते हैं।

पावन्ति भावसवणा कल्लाणपरंपराइं सोक्खाइं ।

दुक्खाइं दव्वसवणा णरतिरियकुदेवजोणीए ॥१००॥

यहाँ स्पष्ट बात की है ।

अर्थ - जो भावश्रमण हैं, भावमुनि हैं,... जिसे सम्यग्दर्शन का भान और अनुभव हुआ है, ऐसे भावमुनि वे जिसमें कल्याण की परम्परा है - ऐसे सुखों को पाते हैं... उनके कल्याण की परम्परा तीर्थकरगोत्र बाँधकर परम्परा से तीर्थकर होकर, केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष जायेंगे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तीर्थकरगोत्र भी समकिति को होता है, मिथ्यादृष्टि को नहीं होता। षोडश भावना में दर्शनविशुद्धि पहली है। निश्चय सम्यग्दर्शन अनुभव बिना तीर्थकरपने का भाव भी नहीं हो सकता।

यहाँ कहते हैं कि जो कोई आत्मा के अनुभवसहित, आत्मा के आनन्द के स्वाद के अनुभवी जीव और आगे बढ़कर साधु (हुए, जिसे) अन्दर रमणता चारित्र की हुई है, वह कल्याण की परम्परा है... कल्याण ही मिलेगा। एक के बाद एक... एक के बाद एक... फिर एक कल्याण की वृद्धि होगी। ऐसे सुखों को पाते हैं और जो द्रव्यश्रमण हैं,... कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा कहते हैं। जिसे सम्यक् अनुभवदृष्टि आत्मा के स्वाद की नहीं और अकेले क्रियाकाण्ड में लगे पड़े हैं, वे द्रव्यश्रमण हैं, वे तिर्यच, मनुष्य, कुदेव योनि में दुःखों को पाते हैं। है पाठ? पाठ है या नहीं? पाठ तो है। 'णरतिरियकुदेवजोणीए' ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य का पाठ है।

आत्मा का अनुभव, चैतन्य आनन्द के स्वभाववाला तत्त्व, ऐसा जहाँ अन्दर ज्ञान होकर, भान होकर प्रतीति हुई, ऐसा साधु आगे बढ़कर शुद्धभाव की परम्परा बढ़ाकर सुखों को पाता है। सुख को पावे। द्रव्यश्रमण हैं, वे तिर्यच, मनुष्य, कुदेव योनि में दुःखों को पाते हैं। आत्मा के सम्यक् अनुभव निश्चय बिना जितना क्रियाकाण्ड सब हो, वह कोई कुदेव हों, मरकर मनुष्य हो, फिर मरकर ढोर हो-पशु हो। दुःखों को पाते हैं। लो! पहले तिर्यच लिया है। नर पहला। अर्थ में पहले तिर्यच लिया है। 'नरतिर्यक्कुदेवयोनी'

मुमुक्षु : मूल गाथा में ऐसा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नर। पहला नर है। अर्थ में ऐसा लिखा है।

भावार्थ - भावमुनि सम्यग्दर्शनसहित हैं,... देखो! है? यह तो पण्डित जयचन्द्रजी ने अर्थ किया है। जयपुर, २०० वर्ष पहले, हों! सम्यग्दर्शनसहित हो। जिसे एक विकल्प का कर्तापना भी नहीं होता। विकल्प होता अवश्य है परन्तु धर्मात्मा समकिति उसका जाननेवाला रहता है, करनेवाला नहीं होता। आहाहा! भारी कठिन व्याख्या। भावमुनि सम्यग्दर्शन सहित हैं, वे तो सोलहकारण भावना भाकर... सोलहकारण जो तीर्थकरगोत्र के हैं, वे समकिति को होते हैं। जिसकी श्रद्धा मिथ्यात्व है (अर्थात्) शुभभाव से धर्म होगा, पाप में मजा है—ऐसी जिसकी मिथ्याबुद्धि है, उसे सोलहकारण में एक भी कारण सच्चा नहीं होता। सम्यग्दर्शन आत्मा के भानवाला स्थान, उसमें जो शुभभाव समकिति को होता है, वह भावना भाता है।

गर्भ,... कल्याणक। उसे गर्भ कल्याणक होता है। **जन्म,...** कल्याणक होता है। **तप,...** अर्थात् सच्चा मुनि कल्याणक होता है, **ज्ञान,...** कल्याणक होता है और **निर्वाण,...** कल्याणक होता है। समझ में आया? **पंच कल्याणक सहित तीर्थकर पद पाकर...** वह तीर्थकर होकर मोक्ष जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो यह जोर दिया है, भाई! देखो! अर्थ में कहा है, हों! ऐसे तो कल्याण परम्परा ... टीका में ऐसा लेते हैं। परन्तु सब उसे पाते नहीं, परन्तु उसमें कोई पाते हैं। ऐसा। सब तीर्थकरपद नहीं पाते। इसलिए यह शब्द नहीं है। राग होता है, इसलिए नहीं तो साधारण तो ऐसा है। **‘पावंति भावसवणा कल्लाणपरंपराइं’** बस, यह शब्द इतना। शुद्धि की वृद्धि करते-करते आगे पूर्ण पद परमात्मा को पावे। ऐसा साथ में व्यवहार डाला। परन्तु ऐसा व्यवहार किसी को होता है। ऐसा।

किसी को आत्मज्ञान के भानसहित ऐसा तीर्थकरगोत्र का भाव होता है, तीर्थकरपना बाँधता है। और वह तीर्थकररूप से जब उपजता है, तब उसके पंच कल्याणक होते हैं। माता के गर्भ में आवे तो उसका कल्याणक होता है। इन्द्र मनाते हैं। हें! कहो! उसका जन्म कल्याणक होता है। आत्मा के अनुभवसहित, सम्यग्दर्शनसहित जहाँ अवतरित हुआ है, और उस भव में तीर्थकर होनेवाला है, उसका तो जन्म कल्याणक होता है। उसका जन्म कल्याणक होता है। तप कल्याणक अर्थात् मुनिदीक्षा। भावलिंगी, आत्मा

के आनन्दसहित स्वरूप की रमणता के चारित्र को अंगीकार करनेवाले, उसका भी कल्याणक देव आकर करते हैं। ज्ञान कल्याणक। पश्चात् केवलज्ञान होता है। इस सम्यग्दर्शनसहित हो, उसे तीर्थकरगोत्र होता है, उसे पंच कल्याणक होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा की पहिचान नहीं और सोलहकारण भावना भावे, तीर्थकर पद पावे, ऐसा नहीं हो सकता। आता है या नहीं? क्या आता है उसमें? सोलहकारण भावना। दंसण विशुद्धि भावना भावे, तीर्थकर पद पाय परमगुरु हो। भजन में आता है, भजन में। परन्तु वह तो सम्यक् आत्मा के एक विकल्प का-राग का कण जो दुःख है, महाव्रत का, दया-दान का, उसे भी जो दुःखरूप जानता है और आत्मा को आनन्दरूप जानता है, ऐसे समकित्ती को ऐसा भाव होता है। इसके अतिरिक्त ऐसा भाव अज्ञानी को नहीं होता। समझ में आया?

तीर्थकर नाम पड़े, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए कि आहाहा! परन्तु वह तो सहज ऐसा आत्मा हो जिसका, उसे ऐसे भाव सहज आ जाते हैं और उसमें तीर्थकर होकर आगे मोक्ष जाए, ऐसा कहते हैं। जिसे सौ इन्द्र पूजते हैं। समझ में आया? यह महत्ता नहीं। उसके आनन्द और पूर्ण शान्ति की महत्ता अन्दर है। और सम्यग्दर्शनरहित जिसे आत्मा का अनुभव नहीं, 'अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।' इस आत्मा का जहाँ अनुभव नहीं, आत्मा के आनन्द के स्वाद की खबर नहीं और अकेले क्रियाकाण्ड में रचे-पचे हैं, ऐसे सम्यग्दर्शनरहित द्रव्यमुनि है, वह ढोर में जाएगा, कहते हैं! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य का कथन वह कठिन और कड़क। समझ में आया? वह हल्का मनुष्य होगा या कुदेव—व्यंतर, भूतड़ा आदि होगा। आहाहा!

तीन लोक का नाथ आनन्द का धनी प्रभु, उसकी जिसे खबर नहीं। मृग की नाभि में कस्तूरी, मृग की नाभि में कस्तूरी परन्तु उसे कस्तूरी की खबर नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्दर में आनन्द का नाथ स्वयं है, उसकी इसे खबर नहीं। यह खबर सब बाहर की धूल की। समझ में आया? ऐसा कहते हैं कि आत्मा के अनुभव के सम्यग्दर्शन बिना तिर्यच, मनुष्य, कुदेव योनि पाते हैं। आहाहा! यह भाव के विशेष से फल का विशेष है। लो! भाव विशेष, फल विशेष। ऐसा। भारी कठिन परन्तु कठिन

जगत को। बाहर में से खोजा है और माना है न। बाहर में सब खोजने गया है। है अन्दर। 'उपजे मोह विकल्प से समस्त यह संसार, अन्तर्मुख अवलोकते विलय होत नहीं वार।' ऐसा मार्ग जिसने सुना नहीं न, इसलिए ऐसा लगता है कि यह तो सब निश्चय की बात। निश्चय अर्थात् सच्ची बात। परन्तु खोटी बात तो साथ में करते नहीं कुछ। ऐई! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो यह कहते हैं।



गाथा-१०१

आगे कहते हैं कि अशुद्ध भाव से अशुद्ध ही आहार किया, इसलिए दुर्गति ही पाई -

छायालदोसदूसियमसणं गसिउं असुद्धभावेण ।
 पत्तो सि महावसणं तिरियगईए अणप्पवसो ॥१०१॥
 षट्चत्वारिंशदोषदूषितमशनं ग्रसितं अशुद्धभावेन ।
 प्राप्तः असि महाव्यसनं तिर्यग्गतौ अनात्मवशः ॥१०१॥
 छ्यालीस दोषों से मलिन भोजन लिया अविशुद्ध से।
 पाए तिर्यग्गति में महा दुख अनेकों पारतन्त्र्य से ॥१०१॥

अर्थ - हे मुने! तूने अशुद्धभाव से छियालीस दोषों से दूषित अशुद्ध अशन (आहार) ग्रस्या (खाया) इस कारण से तिर्यग्गति में पराधीन होकर महान (बड़े) व्यसन (कष्ट) को प्राप्त किया।

भावार्थ - मुनि छियालीस दोषरहित शुद्ध आहार करता है, बत्तीस अन्तराय टालता है, चौदह मलदोषरहित करता है सो जो मुनि होकर सदोष आहार करे तो ज्ञात होता है कि इसके भाव भी शुद्ध नहीं हैं। उसको यह उपदेश है कि हे मुने! तूने दोषरहित अशुद्ध आहार किया, इसलिए तिर्यग्गति में पहिले भ्रमण किया और कष्ट सहा, इसलिए भाव शुद्ध करके शुद्ध आहार कर जिससे फिर भ्रमण न करे। छियालीस दोषों में सोलह तो उद्गम दोष हैं, वे आहार के बनने के हैं, ये श्रावक के आश्रित हैं। सोलह

उत्पादन दोष हैं, ये मुनि के आश्रित हैं। दस दोष एषणा के हैं, ये आहार के आश्रित हैं। चार प्रमाणादि के हैं। इनके नाम तथा स्वरूप 'मूलाचार', 'आचारसार' ग्रंथ से जानिये ॥१०१॥

गाथा-१०१ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि अशुद्ध भाव से अशुद्ध ही आहार किया, इसलिए दुर्गति ही पाई - भगवान कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं), अनन्त बार किया, बापू! इसलिए तेरे लिये किया हुआ आहार उद्दिष्ट बनाकर, चौका बनाकर तूने लिया, उसके कारण चार गति में भटका। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो! १०१ (गाथा)।

छायालदोसदूसियमसणं गसिउं असुद्धभावेण।

पत्तो सि महावसणं तिरियगईए अणप्पवसो ॥१०१॥

'गसिउं' अर्थात् खाया। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य मुनि कहते हैं कि हे मुने! तूने अशुद्धभाव (मलिनभाव) से छियालीस दोषों से दूषित अशुद्ध अशन (आहार) ग्रस्या... तेरे लिये किया हुआ उद्देशकर बनाया हुआ, तेरे लिये पानी गर्म किया, उसे तूने लिया, उसे भटकाव खाकर चार गति में भटका है। आहाहा! प्रकाशदासजी! है? पाठ तो है न, अपने पाठ? अशुद्धभाव से छियालीस दोषों से दूषित अशुद्ध... लो! छियालिस दोषरहित। चाहिए इसके बदले छियालिस दोषसहित, ऐसा आहार किया, ऐसा मुनिपने का नाम धराकर और ऐसा सदोष आहार किया।

अशुद्ध अशन... अशन-पानी सब लेना। (आहार) ग्रस्या (खाया) इस कारण से तिर्यचगति में... इस कारण से तू तिर्यचगति में... आहाहा! 'तिरियगईए' यहाँ तो शब्द एक ही लिया है। तेरे लिये बनाया हुआ, तेरे लिये किया हुआ तूने आहार-पानी लिया। वह सदोष आहार, उद्देशिक आहार साधु होकर ऐसा तूने लिया। आहाहा! पराधीन होकर महान (बड़े) व्यसन (कष्ट)... है न 'महावसणं'? 'महावसणं' अर्थात् कष्ट। महान (बड़े) व्यसन (कष्ट) को प्राप्त किया। चौरासी के अवतार का कष्ट मिला। विशेष व्याख्या भावार्थ में कहेंगे.... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१०२

आगे फिर कहते हैं -

सच्चित्तभक्तपाणं गिद्धीं दप्पेणऽधी पभुत्तूण ।
 पत्तो सि तिच्चदुक्खं अणाइकालेण तं चिंत ॥१०२॥
 सच्चित्तभक्तपाणं गृद्धया दर्पेण अधीः प्रभुज्य ।
 प्राप्तोऽसि तीव्रदुःखं अनादिकालेन त्वं चिन्तय ॥१०२॥
 दुर्बुद्धि गृद्धि दर्प से सच्चित्त भोजन पान कर ।
 पाए अनादि काल से अति तीव्र दुःख विचार कर ॥१०२॥

अर्थ - हे जीव! तू दुर्बुद्धि (अज्ञानी) होकर अतिचार सहित तथा अतिगर्व (उद्धतपने) से सच्चित्त भोजन तथा पान, जीवसहित आहार-पानी लेकर अनादिकाल से तीव्र दुःख को पाया, उसका चिन्तवन कर-विचार कर ।

भावार्थ - मुनि को उपदेश करते हैं कि अनादि काल से जब तक अज्ञानी रहा जीव का स्वरूप नहीं जाना, तब तक सच्चित्त (जीवसहित) आहार-पानी करते हुए संसार में तीव्र नरकादिक के दुःख को पाया । अब मुनि होकर भाव शुद्ध करके सच्चित्त आहार पानी मत करे, नहीं तो फिर पूर्ववत् दुःख भोगेगा ॥१०२॥

प्रवचन-१५७, गाथा-१०२ से १०५, रविवार, ज्येष्ठ शुक्ल ५, दिनांक २६-०५-१९७४

नोंध - सलंग प्रवचनों में गाथा १०२ से १०५ उपलब्ध नहीं होने से १९७४ के वर्ष में से यह प्रवचन लिये गये हैं ।

भावपाहुड़ १०२ है ।

अर्थ - हे जीव! तू दुर्बुद्धि (अज्ञानी) होकर... मुनि बाह्य द्रव्यलिङ्गी है, उसे सम्बोधन कर बात करते हैं । हे दुर्बुद्धि अज्ञानी! इस दुर्बुद्धि का अर्थ ही अज्ञानी है । कोष्ठक में अज्ञानी की आवश्यकता नहीं । दुर्बुद्धि अज्ञानी पूरा एक है । 'ऽधी' है न

‘ऽधी’ वह दुर्बुद्धि। यह ‘ऽधी’ का अर्थ दुर्बुद्धि है न। देखो न, पाठ है न ‘ऽधी’ ?

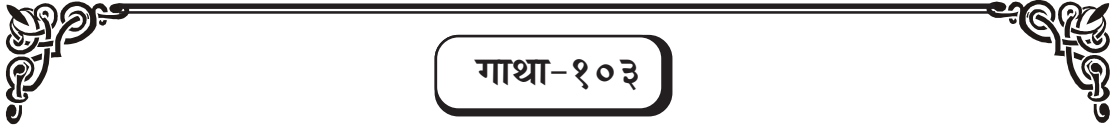
मुमुक्षु : ‘ऽधी’

पूज्य गुरुदेवश्री : ‘ऽधी’ दुर्बुद्धि।

(अज्ञानी) होकर अतिचारसहित... कोई अतिचार लगाया सचेत आहार खाकर। जिसमें एकेन्द्रिय जीव है। यह वनस्पति, कन्दमूल इत्यादि जीव है, ऐसा सूचित करते हैं। उसे तू मुनि नाम धराकर और ऐसे दोष अतिचार लगाये। **तथा अतिगर्व...** वहाँ उद्धत अलग शब्द की आवश्यकता नहीं है। यह अतिगर्व उद्धतपने से, ऐसा है पूरा शब्द। **अतिगर्व (उद्धतपने) से...** पण्डित जयचन्द्रजी का यह शब्द है। **सचित्त भोजन...** एकेन्द्रिय जीव जिसमें है, ऐसा भोजन किया। मुनि नाम धराकर अनन्त बार। आहाहा! **तथा पान,...** सचेत पानी है न यह जीव? एक बूँद में असंख्य जीव है। अज्ञानी को तो उसकी खबर नहीं। ऐसा **जीवसहित आहार-पानी लेकर अनादि काल से तीव्र दुःख को पाया,...** अनन्त-अनन्त काल में अनन्त संसार में ऐसे दुःख तुझे प्राप्त हुए। मुनि नाम धराकर भी, नग्न दिगम्बर होकर भी जिसमें ऐसे सचेत आहार खाये अथवा तपस्वी नाम धराकर हम कन्दमूल खाये तो हमारे बाधा नहीं, आदि। यह कहेंगे अर्थ में। **अनादि काल से तीव्र दुःख को पाया,...** जीव की खबर नहीं अभी। जीव कहाँ है? कितने हैं? एक आलू, शक्करकन्द की एक कणी में असंख्य तो शरीर हैं और एक शरीर में अनन्त जीव हैं। कौन माने? ऐसा जिसे ज्ञान नहीं और जिसे ज्ञान होने पर भी वह सचेत, मुनि नाम धराकर खाता है, वह तीव्र दुःख को पाता है, ऐसा कहते हैं। चार गति में भटकने के दुःख को पाता है।

भावार्थ - मुनि को उपदेश करते हैं... मुख्य मुनि की अभी बात है न भावपाहुड़ में? **कि अनादि काल से जब तक अज्ञानी रहा...** अनादि से अज्ञानी (है, उसे) वस्तु की खबर नहीं होती। भगवान सर्वज्ञ जीव किसे कहते हैं? अजीव किसे कहते हैं? वह कितनी संख्या में है? उसकी खबर जिसे नहीं होती। **अज्ञानी रहा जीव का स्वरूप नहीं जाना,...** उसने भगवान ने—सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो कहा, ऐसे जीव का स्वरूप जाना नहीं। ऐसा एक-एक जीव और ऐसे अनन्त जीव एकेन्द्रियादि। उसके जीव के स्वरूप को उसने जाना नहीं। आहाहा!

तब तक सचित्त (जीवसहित) आहार-पानी करते हुए... जीवसहित। वह सचेत जीवसहित शब्द लिया है। यह कोष्ठक में डाला है, यह सब फेरफार है। सचित्त (जीवसहित) आहार-पानी... ऐसा है शब्द। आहार-पानी करते हुए संसार में तीव्र नरकादिक के दुःख को पाया। नरक में, निगोद में जाकर अनन्त दुःख पाये। अब मुनि होकर भाव शुद्ध करके... अब तो जैन मुनि होकर आत्मा का सम्यग्दर्शन प्रगट करके। ऐसा कहते हैं। आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द का अन्तर सम्यग्दर्शन, अनुभूति। आत्मा का अनुभव करके सम्यग्दर्शन प्रगट करके शुद्ध करके सचित्त आहार पानी मत करे,... मुनि होकर फिर आहार-पानी में सचेतपना हो, वह न कर। आहाहा! भावपाहुड़ की बात है न, इसलिए चिन्तवन... नहीं तो फिर पूर्ववत् दुःख भोगेगा। अनन्त काल में दुःख मिले, वे तुझे मिलेंगे, भाई! आहाहा!



गाथा-१०३

आगे फिर कहते हैं -

कंदं मूलं बीयं पुष्पं पत्रादि किंचि सच्चित्तं ।

असिऊण माणगव्वं भमिओ सि अणतसंसारे ॥१०३॥

कंदं मूलं बीजं पुष्पं पत्रादि किंचित् सचित्तम् ।

अशित्वा मानगर्वे भ्रमितः असि अनंतसंसारे ॥१०३॥

नित मान मद से कंद मूल रु बीज फूल पत्रादि कुछ।

सच्चित्त खाकर अमित-भव में भटकते दुख सहे तुम ॥१०३॥

अर्थ - कन्द जमीकन्द आदिक, बीज चना आदि अन्नादिक, मूल अदरक मूली गाजर आदिक, पुष्प फूल, पत्र नागरबेल आदिक इनको आदि लेकर जो भी कोई सचित्त वस्तु थी, उसे मान (गर्व) करके भक्षण की। उससे हे जीव! तूने अनन्त संसार में भ्रमण किया।

भावार्थ - कन्दमूलादिक सचित्त अनन्त जीवों की काय है तथा अन्य वनस्पति

बीजादिक सचित्त हैं, इनको भक्षण किया। प्रथम तो मान करके कि हम तपस्वी हैं, हमारे घरबार नहीं है, वन के पुष्प फलादिक खाकर तपस्या करते हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टि तपस्वी होकर मान करके खाये तथा गर्व से उद्धत होकर दोष समझा नहीं, स्वच्छन्द होकर सर्वभक्षी हुआ। ऐसे इन कन्दादिक को खाकर, इस जीव ने संसार में भ्रमण किया। अब मुनि होकर इनका भक्षण मत कर, ऐसा उपदेश है। अन्यमत के तपस्वी कन्दमूलादिक फल-फूल खाकर अपने को महन्त मानते हैं, उनका निषेध है ॥१०३॥

गाथा-१०३ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं -

कंदं मूलं बीयं पुष्पं पत्तादि किंचि सच्चित्तं ।

असिऊण माणगव्वं भमिओ सि अणतसंसारे ॥१०३॥

अर्थ - कन्द कहिये जमीकन्द... ऐसा मूल शब्द है, भाई! कन्द कहिये जमीकन्द... ऐसा शब्द है पण्डित जयचन्द्रजी का। ऐसा कन्द कहिये जमीकन्द, ऐसा नहीं। कन्द कहिये जमीकन्द... ऐसा। सर्वत्र कहिये शब्द है। बहुत अधिक फेरफार कर डाला।

मुमुक्षु : भाषान्तर कर्ता ने कर डाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा का फेरफार किया। भाषा आनी चाहिए।

मुमुक्षु : भाषान्तर कर्ता ने किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर ऐसा किसलिए किया ? डालना किसलिए चाहिए ? ... पूरा फेरफार है यह।

कन्द कहिये जमीकन्द... अब रामजीभाई कहते हैं न और ऐसा हुआ। उसका क्या करना ? यह तो जानने के लिये बात होती है। जमीकन्द... सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त कन्दमूल में अनन्त जीव है, यह किसी ने जाने नहीं और माने नहीं।

मुमुक्षु : अनन्त जीव है, उसमें कौन माने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक जीव में अनन्त गुण है और अनन्त जीव हैं, यह किसने माने हैं ? अज्ञानी ने सर्वज्ञ के अतिरिक्त कल्पना से सभी बातें कीं। किये जाए। यह कहते हैं कि एक कन्दमूल का टुकड़ा, आलू, शकरकन्द, एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव है। यह सर्वज्ञ परमेश्वर ने प्रत्यक्ष देखा, वह कहा है। कहो, जयन्तीभाई ! अब इसका तो भान नहीं होता और आत्मा का ध्यान करो। किसका धूल में ध्यान करे ? जड़ हो जाएगा, जड़। मिथ्यात्व के पोषण हैं सब। आहाहा ! समझ में आया ?

कन्द कहिये जमीकन्द, बीज चना आदि अन्नादिक,... अन्न है और इस अन्न में चावल, गेहूँ, बाजरे यह जीव है। उसमें जीव है। सर्वज्ञ के अतिरिक्त जिसे तीन काल का ज्ञान नहीं और आत्मा का स्वभाव सर्वज्ञ है, वह सर्वज्ञ की दशा पूर्ण हो, तब आत्मा पूर्ण हुआ कहलाता है। कहो, ऐई ! आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है। उसका ज्ञ स्वभाव है—जानना। अर्थात् कि सर्वज्ञशक्ति और सर्वज्ञस्वरूपी ही आत्मा है। उसमें से जिसमें सर्वज्ञपने में से सर्वज्ञपर्याय अन्दर से प्रगट की, उसे तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए, ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर। अनन्त सिद्ध हुए, वे सर्वज्ञ हैं। लाखों भगवान विराजते हैं महाविदेह में। सर्वज्ञ परमेश्वर केवली तीन काल का ज्ञान है। ऐसे ज्ञानरहित अज्ञानी ने अपनी कल्पना से जीव की बात की हो तो उसमें कन्दमूल को जीव मानता नहीं। वे मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव हैं। समझ में आया ? आहाहा !

मूल कहिये अदरक, मूली... अदरक। अदरक अर्थात् मूल। क्या कहलाता है ? मूली-मूली। मूली और है न प्याज ? उसके एक टुकड़े में अनन्त जीव है। आहाहा ! एक-एक जीव अनन्त गुणवाला है। एक-एक जीव सर्वज्ञस्वभावी है। ऐसी जिसे खबर नहीं, वे तो मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि पाप बाँधकर चार गति में भटकनेवाले हैं। आहाहा ! समझ में आया ? **गाजर आदिक,...** लो। गाजर-गाजर। यह गाजर नहीं ? एक टुकड़े में अनन्त जीव गाजर में हैं। कोमल गाजर होती है न ? आहाहा ! शकरकन्द, लहसुन, प्याज इन सबमें एक टुकड़े में अनन्त जीव है। यह सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त किसी ने देखे नहीं। दूसरे मत में यह कुछ बात है ही नहीं। वीतराग के अतिरिक्त, सर्वज्ञ के अतिरिक्त। यह सब बातें कल्पना से जोड़ दी, आत्मा ऐसा होता है, फिर ऐसा करना, अमुक करना। उन मूढ़ जीवों ने अज्ञान में से सब कल्पना की है। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं, आदि लेकर जो भी कोई सचित्त वस्तु... यह पुष्प। पुष्प अर्थात् फूल। पुष्प फूल,... पुष्प का अर्थ फूल हुआ। बस, यह तो साथ-साथ में शब्द करते हैं। पुष्प अर्थात् फूल, पत्र नागरबेल आदिक... आदि पान। नागरबेल आदि इनको आदि लेकर जो भी कोई सचित्त वस्तु थी, उसे मान (गर्व) करके भक्षण की। यह गर्व नहीं चाहिए कोष्ठक में। पूरा चाहिए। मानगर्व। मूल पाठ है न? मूल पाठ 'माणगव्वं' है न? मान और गर्व से खाया। उसमें क्या है जीव-जीव करते हो? मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव, ऐसे को जीव मानकर ऐसा कहे तुम क्या (कहते हो)? ऐसे अनन्त जीव किसने देखे थे? ऐसा मानकर अभिमानी गर्व करके भक्षण करते हैं। उससे हे जीव! तूने अनन्त संसार में भ्रमण किया। अनन्त संसार चार गति में भ्रमण किया। आहाहा!

भावार्थ - कन्दमूलादिक सचित्त अनन्त जीवों की काय है... यह कन्दमूल आलू, शकरकन्द, लहसुन, प्याज, गाजर। यह इतना बड़ा होता है। बेल बड़ी होती है, उसे क्या कहा जाता है? सूरण-सूरण। सूरण की गाँठ होती है न इतनी बड़ी? उस सूरण के टुकड़े में अनन्त जीव है। कौन माने यह? अन्ध को खबर नहीं होती। आहाहा! ऐसी अनन्त जीव की खान है वह तो। आहाहा! कन्दमूलादिक सचित्त अनन्त जीवों की काय है... वह तो। समूह है। अन्य वनस्पति बीजादिक सचित्त हैं, इनको भक्षण किया। प्रथम तो मान करके कि हम तपस्वी हैं,... हम तो त्यागी हैं। हमारे क्या है? हमारे घरबार नहीं है, वन के पुष्प फलादिक खाकर तपस्या करते हैं,... चाहे जो खायें, हमारे क्या है? हमको कुछ नहीं। मर जाएगा। नरक और निगोद में जाएगा। वहाँ कुछ सिफारिश काम ऐसा नहीं वहाँ। खबर ही नहीं उसे वस्तु की। आहाहा!

ऐसे मिथ्यादृष्टि तपस्वी... जिसकी दृष्टि मिथ्यात्व है। जिसे जीव की खबर नहीं होती। कितने जीव कहाँ हैं, उसकी खबर ही अज्ञानी को-मूढ़ को नहीं होती। ... हमको कुछ पाप लगता नहीं। ऐसा मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि होकर ऐसे पाप अनन्त किये। अभी भी यह नाम धराकर ऐसा करता है। आहाहा! ऐसे इन कन्दादिक को खाकर, इस जीव ने संसार में भ्रमण किया। अब मुनि होकर इनका भक्षण मत कर,... जो आत्मा के ज्ञानसहित मुनि हुआ, आत्मा के भानसहित मुनि। मुनि तो उसे कहते हैं कि जंगल में बसे, जिसे वस्त्र न हो, नग्नदशा हो, जिसे अन्तर में तीन कषाय का अभाव हो,

जिसे आनन्द के रस की रेलमछेल अन्दर चलती हो। आहाहा! बाहर की जिसकी नग्नदशा हुई हो, वस्त्र का एक धागा भी जिसे नहीं होता, ऐसे जंगल में बसनेवाले को मुनि कहा जाता है। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! उसे साधु कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : तो फिर भगवान किसे कहना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : केवली किसे कहना और भगवान किसे कहना! आहाहा! क्या हो? अज्ञानियों को... आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। जैन के सम्प्रदाय में जन्मे, उसे खबर नहीं होती। वाड़ा में जन्मे उसे! और जहाँ-तहाँ भटका-भटक करे। आहाहा! अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है, ऐसे अनन्त सिद्ध हो गये और अनन्त० संख्यात लाखों केवली महाविदेह में विराजते हैं। कौन देखने गया था महाविदेह में है या नहीं? और ऐसा कोई कहता है। अरे! भगवान! सुन न, भाई! जिसे ज्ञान हो, वह देखने गये थे वहाँ। देखा है उन्हें। समझ में आया? आहाहा! तीन काल-तीन लोक का जिन्हें ज्ञान है। सर्वज्ञ, अनन्त नेत्र जिनके खुल गये हैं। चार कर्मरहित हुए हैं, चार कर्म बाकी हैं। वाणी आदि समवसरण में है। सीमन्धर परमात्मा महाविदेह क्षेत्र में विराजते हैं। यह बात अन्यत्र कहाँ है कहीं किसी जगह? अज्ञानियों ने अपनी कल्पना से बातें बिना भान के करके दुनिया को भ्रमणा में डाला है। वह दुनिया मूढ़ जैसी भ्रमणा में पड़कर भटकना चार गति में। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे इन कन्दादिक को खाकर,... लो! स्वच्छन्द होकर सर्वभक्षी हुआ। ऐसे इन कन्दादिक को खाकर, इस जीव ने संसार में भ्रमण किया। अब मुनि होकर इनका भक्षण मत कर, ऐसा उपदेश है। अन्यमत के तपस्वी कन्दमूलादिक फल-फूल खाकर अपने को महन्त मानते हैं,... हम महन्त हैं, हम साधु हैं, मुनि हैं, त्यागी हैं। खावे सब। कन्दमूल, शहद आदि (खावे) और माने कि हम साधु। मूढ़ है, कहते हैं। मर जाएगा, यह नरक में-निगोद में जाएगा। आहाहा! अब कहते हैं कि यह सब मानना, इसमें विवेक चाहिए, ऐसा कहते हैं।

गाथा-१०४

आगे विनय आदि का उपदेश करते हैं, पहिले विनय का वर्णन है -

विणयं पंचपयारं पालहि मणवयकायजोएण ।
अविणयणरा सुविहियं तत्तो मुत्तिं न पावंति ॥१०४॥

विनयः पंचप्रकारं पालय मनोवचनकाययोगेन ।
अविनतनराः सुविहितां ततो मुक्तिं न प्राप्नुवंति ॥१०४॥

है विनय पंच प्रकार पालो मन वचन तन योग से।
अविनीत नर सुविहित मुक्ति को कभी नहीं पा सकेंगे ॥१०४॥

अर्थ - हे मुने! जिस कारण से अविनयी मनुष्य भले प्रकार विहित जो मुक्ति उसको नहीं पाते हैं अर्थात् अभ्युदय तीर्थकरादि सहित मुक्ति नहीं पाते हैं, इसलिए हम उपदेश करते हैं कि हाथ जोड़ना, चरणों में गिरना, आने पर उठना, सामने जाना और अनुकूल वचन कहना, यह पाँच प्रकार का विनय है अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और इनके धारक पुरुष इनका विनय करना, ऐसे पाँच प्रकार के विनय को तू मन वचन काय तीनों योगों से पालन कर।

भावार्थ - विनय बिना मुक्ति नहीं है, इसलिए विनय का उपदेश है। विनय में बड़े गुण हैं, ज्ञान की प्राप्ति होती है, मानकषाय का नाश होता है, शिष्टाचार का पालना है और कलह का निवारण है इत्यादि विनय के गुण जानने। इसलिए जो सम्यग्दर्शनादि से महान् हैं, उनका विनय करो यह उपदेश है और जो विनय बिना जिनमार्ग से भ्रष्ट भये, वस्त्रादिकसहित जो मोक्षमार्ग मानने लगे उनका निषेध है ॥१०४॥

गाथा-१०४ पर प्रवचन

आगे विनय आदि का उपदेश करते हैं, पहिले विनय का वर्णन है -

विणयं पंचपयारं पालहि मणवयकायजोएण ।
अविणयणरा सुविहियं तत्तो मुत्तिं न पावंति ॥१०४॥

आहाहा! देखो! यह डालकर वापस विनय डाला। अर्थात् अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर, पंच परमेष्ठी कौन हैं, उन्हें पहचानकर उनका विनय चाहिए। पाँच परमेश्वर। णमो अरिहन्ताणं। यह तो गुण के धारक की दशावाले हैं। उन्हें पहिचानकर उनका विनय चाहिए।

अर्थ – हे मुने! जिस कारण से अविनयी मनुष्य भले प्रकार विहित जो मुक्ति उसको नहीं पाते हैं... सर्वज्ञ परमेश्वर सिद्ध भगवान सच्चे सन्त, आचार्य, उपाध्याय, साधु का विनय किये बिना, उन्होंने कहा उसे माने बिना मुक्ति नहीं मिलती, उसे मोक्ष नहीं मिलता, उसे धर्म नहीं होगा। आहाहा! बहुत कठिन बात। भले प्रकार... है न, पाठ है न? 'विहियं'। 'सुविहियं' इसका अर्थ किया है। विहित। जो मुक्ति... ऐसा। उसको नहीं पाते हैं अर्थात् अभ्युदय तीर्थकरादि सहित मुक्ति नहीं पाते हैं,... 'विहियं' कहा सही न बीच में। जिसे तीर्थकर पदवी मिले, फिर मुक्ति हो, ऐसी दशा ऐसे अविनयी जीव को, जिसे सर्वज्ञ परमेश्वर कौन है, उसकी पहिचान भी नहीं हो, उसका आदर भी न हो और मैं ही स्वयं हूँ... समझ में आया? ऐसा माननेवाले मूढ़ जीव चार गति में भटकनेवाले हैं। आहाहा! मुक्ति नहीं पाते हैं,... वह तीर्थकरादि पदवी नहीं होती।

इसलिए हम उपदेश करते हैं कि हाथ जोड़ना,... सर्वज्ञ परमेश्वर हों, आचार्य हों, सच्चे उपाध्याय-साधु, सन्त हों। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं वे, हों! अज्ञानी कहते हैं, वे नहीं। चरणों में गिरना,... उनके चरण में गिरना। आहाहा! आने पर उठना, सामने जाना और अनुकूल वचन कहना, यह पाँच प्रकार का विनय है... लो! जिसे सच्चा परमेश्वर, सच्चे सिद्ध और सच्चे साधु, आचार्य, उपाध्याय, साधु, उनकी जिसे पहिचान हो, वह उनका विनय करे, कहते हैं। उनका बहुत विनय करे। वे कहते हैं, तत्प्रमाण माने। वे आवे वहाँ खड़ा हो, चरण में पड़े, हाथ जोड़े। सामने जाना और अनुकूल वचन कहना, यह पाँच प्रकार का विनय है... लो!

अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और इनके धारक पुरुष इनका विनय करना, ऐसे पाँच... जिसे सम्यग्ज्ञान हुआ है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ जो कहते हैं, ऐसी जिसे अन्तर सम्यग्ज्ञान दशा हुई है। राग से, विकल्प से, संयोग से भिन्न पड़कर

अन्तर अनुभूति जिसे आत्मा का ज्ञान हुआ है। वह आत्मज्ञानी जीव पंच परमेष्ठी को व्यवहार से बराबर मानता है, ऐसा कहते हैं। वह उनका विनय करता है। आहाहा! वह स्वयं ज्ञान का भी विनय करता है। आहाहा! ज्ञान उसे कहते हैं। समझ में आया? ऐसे शून्य हो जाओ, शून्य हो जाओ, विकल्प छोड़ दो। क्या शून्य हो जाए? जड़ होगा। स्वयं चीज क्या है आत्मा, पदार्थ अस्ति क्या है, अस्ति-मौजूदगी कितनी और कैसी और कितने क्षेत्र में कितने गुण से और कैसी है, उसके भान बिना उस पर दृष्टि पड़ेगी ही नहीं। यह बाहर के विकल्प कम करे, ऐसा इसे दिखता है, विकल्प कम हुए ऐसा दिखता है। जड़ जैसा हो जाएगा, मिथ्यात्व का पोषण करके। आहाहा! कहो, समझ में आया?

यहाँ तो ज्ञान, जिसे एक आत्मा सर्वज्ञ स्वरूपी है, ऐसे अनन्त आत्मायें हैं, उनका अपना आत्मा का अन्तर ज्ञान जिसे हुआ है। वह ज्ञान का विनय करे। वह ज्ञान का विनय करे, वह दर्शन का विनय करे। सम्यग्दर्शन। आहाहा! वह पूर्णानन्द का नाथ प्रभु आत्मा स्वयं, उसकी अन्तर में प्रतीति अनुभूतिसहित, आनन्द के स्वादसहित... आहाहा! इसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह सम्यग्दर्शन का विनय करे। धर्मी हो, वह सम्यग्दर्शन का विनय करे। मिथ्यादर्शन का आदर नहीं करे। बड़े महन्त नाम धराते हों परन्तु जिसे सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग से विपरीत दृष्टि है, कल्पना करके कल्पित बातें की हैं, ऐसे अज्ञानियों का धर्मी आदर नहीं करता, उन्हें नहीं मानता। कहो, जयन्तीभाई! क्या करना यह सब परन्तु? वह ज्ञान का विनय।

चारित्र का विनय। आत्मा आनन्दस्वरूप के अनुभवपूर्वक आनन्द में लीनता की रमणता जिसे हुई हो, ऐसी चारित्रदशा। आहाहा! वह चारित्रदशा नग्न मुनि को होती है। ऐसी चारित्रदशा वस्त्रवाले को नहीं हो सकती, तीन काल-तीन लोक में। समझ में आया? आहाहा! अरे! एक भी बात का ठिकाना नहीं हो और माने कि हम धर्मी हैं, चारित्रवन्त हैं और तपस्वी हैं। आहाहा! अनादि काल से ऐसे विपरीत भाव किये। कहते हैं, चारित्र का विनय करे। आहाहा! चारित्र अर्थात् आत्मा के आनन्द में जिसकी अतीन्द्रिय आनन्द की धारा बहती है और पंच महाव्रतादि का विकल्प-राग भी होता है। बाह्य में नग्नदशा होती है, ऐसे चारित्रवन्त का विनय करे। कहो, पण्डितजी! यह एक-एक गुण क्या है, उसे समझा नहीं। भाई! अभी तो... पड़ गयी। आहाहा!

चारित्र, तप... उग्र आनन्द का उछाला अन्दर आवे। चारित्र की रमणता करते हुए आनन्द की दशा, अतीन्द्रिय आनन्द का उछाला आवे। जिसमें इच्छा की उत्पत्ति ही न हो। ऐसी अन्तर दशा को तप कहते हैं। बाकी यह सब लंघन। अपवास-बपवास करे, वह सब लंघन है। इस आत्मदर्शनसहित, अनुभूतिसहित सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो सम्यग्दर्शन कहा, उस सहित जिसकी चारित्रदशा है और उसमें उसकी उग्रदशा, चारित्र का ही भाव उग्र पुरुषार्थ से जो आनन्द की लहर आवे, आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से तपे और शोभे, उसे तप कहा जाता है। बाकी लंघन है। आहाहा! गजब बातें, भाई! बात-बात में अन्तर है। अज्ञानी की और ज्ञानी की बात में बहुत अन्तर है। आहाहा! और इनके धारक पुरुष... चार गुण लिये। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और उनके धारक आत्मायें। इनका विनय करना,...

मुमुक्षु : समन्तभद्राचार्य ने कहा - न धर्मो धार्मिके बिना....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पाँच है न।

इनके धारक पुरुष इनका विनय करना, ऐसे पाँच प्रकार के विनय को तू मन -वचन-काय... आहाहा! मन से, वचन से और काया से। तीनों योगों से पालन कर। आहाहा! भावपाहुड़ है न?

भावार्थ - विनय बिना मुक्ति नहीं है, इसलिए विनय का उपदेश है। पाँच परमेष्ठी और इन गुण के धारक और ये गुण, इनका जिसे विनय नहीं, उसे मोक्ष नहीं होता। उसे धर्म ही नहीं होता। मोक्ष तो बाद में। आहाहा! समझ में आया? विनय बिना मुक्ति नहीं है,.... अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा पूर्ण दशा प्राप्त वर्तते हैं। उनका जिसे आदर नहीं, विनय नहीं, मानता नहीं और मैं ही स्वयं भगवान हूँ, ऐसा सब माने, वे सब मूढ़ मिथ्यादृष्टि चार गति में नरक और निगोद में भटकनेवाले हैं।

मुमुक्षु : अभी तो भगवान....

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम तो दे सब बहुत। भगवान नाम नहीं देते लोगों को? होवे बिखारी और भगवान नाम हो। भगुभाई! लो न। 'भगु' नहीं कहा था हमारे? जेतपुर में था। कन्दोई-कन्दोई। (संवत्) १९७० की बात है। ७० का वर्ष। भगु एक कन्दोई था।

भोला जीव बेचारा लड़का। ७० की बात है। ७० का पौष महीना। कितने वर्ष हो गये ? ६० वर्ष हो गये। दीक्षा लेकर गये पहले। ७० में दीक्षा हुई न ? मगसिर। भगु आवे, फिर कहे, महाराज ! भगु पशु है। ऐसा बोले। नाम भगवान। 'भगु' कहे, महाराज ! 'भगु' पशु है। स्वयं ऐसा बोला। किसलिए ? कि वे घर के लोग कहे न, उसके माँ-बाप ? लड़के की बहू ? देखो, बापू ! भगु पशु जैसा है, तुम ध्यान रखना। इसलिए यहाँ आकर (ऐसा कहे)। आहाहा ! घर में उसके माँ-बाप कहे न स्त्रियों को ? वह बेचारा भोला व्यक्ति। मूर्ख परन्तु पागल नहीं। भोला बहुत। भोला, उसे कुछ भान नहीं होता। भगु पशु है, महाराज ! कहा, यह क्या ? यह कौन है ? यह तो कन्दोई है। इसके माँ-बाप घर में इसे पशु कहते होंगे न इसलिए। इसी प्रकार यह भगवान नाम धरावे और हो पशु जैसा। मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, मिथ्या आचरण सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ अरिहन्त ने कहे गये जो तत्त्व, उस तत्त्व की श्रद्धा न हो, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव भगवान नाम कहे, और धरावे, वे भगु जैसे होनेवाले हैं सब। आहाहा ! समझ में आया ? यह कहते हैं, देखो !

विनय बिना मुक्ति नहीं है, इसलिए विनय का उपदेश है। विनय में बड़े गुण हैं, ... परमात्मा सर्वज्ञदेव सिद्ध भगवान शरीररहित परमात्मा हैं। अरिहन्त को अभी शरीर होता है, वाणी भी होती है। वाणी खिरे। त्रिकाल ज्ञान हो। तीन काल-तीन लोक का ज्ञान हो। उसे परमात्मा और उसे भगवान कहते हैं। जिसे शरीर हो, आहार न हो, पानी न हो, क्षुधा न हो, रोग न हो, ऐसे परमात्मा को अरिहन्त परमात्मा कहा जाता है। और सिद्ध को शरीर नहीं होता। वे तो अशरीरी परमात्मा पूर्ण दशा (सहित) लोकाग्र में विराजमान हैं। आहाहा ! उन सब जीवों के विनय में बड़े गुण हैं, ... उनका विनय करने से बहुत गुण है।

ज्ञान की प्राप्ति होती है, ... लो ! आया। वह कहे कि विनय करो तो शुभराग है और शुभराग से... जिस समय... विनय करना है, वह तो शुभ विकल्प है। परन्तु उसमें बहुमानपने का भान है न, उतना अन्दर आत्मा को गुण है। आहाहा ! ज्ञान की प्राप्ति होती है। उसमें ऐसा आता है कि पर का विनय करना, वह विकल्प है। निश्चय की बात आती है। आहाहा ! व्यवहार से कहे। बहुमान है न ? है तो वह विकल्प, परन्तु उसके

पीछे ज्ञान में उस प्रकार का बहुत विवेक वर्तता है। इसलिए वह ज्ञान की प्राप्ति है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

मानकषाय का नाश होता है... पंच परमेष्ठी, धर्मात्मा के प्रति बहुमान से इसके मान का नाश होता है। आहाहा! मैं हूँ, ऐसा हो गया हो उसे। पंच परमेष्ठी त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव केवली, जिनका इन्द्र आदर करे, जिनकी सभा में सिंह और बाघ आते हैं... आहाहा! ऐसी सभा महाविदेह में अभी विराजमान हैं प्रभु सर्वज्ञ वीतराग, उनकी सभा में इन्द्र, करोड़ों देव आते हैं, ऐसे परमात्मा का विनय करने से, कहते हैं, मान कषाय का नाश होता है। उनके आज्ञाकारी साधु, आचार्य, उपाध्याय, मुनि (हों), उनका भी विनय करने से मान का नाश होता है।

शिष्टाचार का पालना है... जो सज्जनों का शिष्टाचार है। बहुमान करना, वह उसका पालन इसमें होता है। और **कलह का निवारण है...** अविनय में तो कलह होती है, क्लेश होता है। विनय में तो कलह का निवारण होता है। **इत्यादि अनेक विनय के गुण जानने। इसलिए जो सम्यग्दर्शनादि से महान् हैं...** लो! अपने से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र आदि में बड़े हैं, **उनका विनय करो...** आहाहा! अपने से विशेष गुणवाले, सम्यग्दर्शनसहितवाले, हों! उसकी बात है। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, यह बहुत मुश्किल पड़ गयी है अभी जगत को। हें! आहाहा! एक आत्मा परिपूर्ण परमात्मा, उसकी ओर की अन्तर्दृष्टि करके निर्विकल्प दर्शन हो, उसे यहाँ निर्विकल्प आनन्द की दशासहित हो, उसे निर्विकल्प सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! यह जैन परमेश्वर के मार्ग के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता, तीन काल-तीन लोक में। समझ में आया? आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! यह पक्ष की बात नहीं होगी? बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। किसी प्रकार से, दूसरी प्रकार से सिद्ध होगा ही नहीं। आहाहा!

सर्वज्ञ परमात्मा साक्षात् महाविदेह में विराजते हैं। गणधर चार ज्ञान के धारक, अन्तर्मुहूर्त में चौदह पूर्व की रचना करते हैं। उस में के यह आगम हैं। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में वहाँ भगवान के पास गये थे। वहाँ जाकर, (वापस) आकर यह शास्त्र रचे हैं। वे कहते हैं कि विनय चाहिए। पंच परमेष्ठी का अथवा उस

गुण का। और अपने से गुण में अधिक हों, सम्यग्दर्शन में विशेष हों, सम्यग्ज्ञान में विशेष हों, चारित्र अन्दर रमणता में विशेष हों, महान हों, उनका विनय करो... आहाहा! वहाँ गर्व न रखो, अभिमान न करो। आहाहा! यह उपदेश है...

और जो विनय बिना जिनमार्ग से भ्रष्ट भये,... यह स्पष्टीकरण डाला। जैन सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग केवलज्ञानी परमात्मा का पन्थ चला आता था। अन्यमत तो अभी चलते हैं, ऐसे तो थे उस समय, परन्तु यह श्वेताम्बर है, वह जैनधर्म से भ्रष्ट होकर निकले हैं। उनकी यह बात करते हैं। कठिन लगे ऐसी है जरा। सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग के अतिरिक्त अन्यमतियों का मार्ग, जिसमें सर्वज्ञ नहीं, जिन्होंने कल्पित अर्थ और पदार्थों की बातें की हैं, वे तो मानो मिथ्यादृष्टि है, परन्तु यह श्वेताम्बर पन्थ जो दिगम्बर में से निकला, वह श्रद्धा भ्रष्ट होकर निकला है। ऐई! है ?

विनय बिना... धर्मात्मा, समकिती, सन्त थे उस समय। परन्तु बारह वर्ष के तीन दुष्काल पड़े, निभ नहीं सके, इसलिए वस्त्रसहित मुनिपना माना। वस्त्र हो और मुनिपना है, ऐसा माना। जैनधर्म से भ्रष्ट हो गये। भारी कठिन बातें, भाई! आहाहा! यह श्वेताम्बर और उसमें से निकले स्थानकवासी। दोनों जैनधर्म से भ्रष्ट हो गये हैं। अन्य तो भ्रष्ट है ही। परन्तु यह भी भ्रष्ट होकर निकले हैं। आहाहा! ऐई! जयन्तीभाई!

मुमुक्षु : एकदम सच्ची बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकदम सच्ची बात है ?

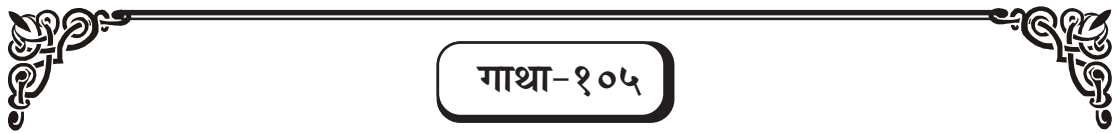
विनय बिना.... मुनि और धर्मात्मा थे, उनका आदर नहीं रहा और नग्नरूप से मुनिपना पाल नहीं सके। फिर वस्त्र का टुकड़ा रखकर पहले अर्धफालक थे। श्वेताम्बर का पन्थ निकला वह। इतना आधा टुकड़ा साथ में रखते थे और उसमें मुनिपना माना और सब कल्पित शास्त्र रचे। कहो, खीमचन्दभाई! ऐसी बात है जरा। कठिन लगे, भाई! मार्ग तो यह है, बापू! माने, न मान इससे तो कहीं... वस्तु तो है, वह है।

विनय बिना जिनमार्ग से भ्रष्ट भये, वस्त्रादिकसहित... देखो! वस्त्र रखे, पात्र रखा, ऐसे सहित जो मोक्षमार्ग मानने लगे... हमारे मोक्ष का मार्ग है, ऐसा मानने लगे, वे सब मिथ्यादृष्टि भ्रष्ट हैं। आहाहा! जैन में रहे हुए की बात है, हों! यह। अन्य की बातें

तो है ही नहीं। वे तो सब पाखण्ड के पोषक हैं। वीतराग के अतिरिक्त सब मार्ग। मार्ग ऐसा है। ३६३ पाखण्ड कहे हैं न? आत्मा की बातें करे परन्तु वे सब कल्पित, अपनी दृष्टि से कल्पित की हो वह। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग से विनयपना छोड़ दिया। भ्रष्ट होकर मोक्षमार्ग मानने लगे। आहाहा! वस्त्र और पात्र रखकर (मुनिपना माना)। मुनि को वस्त्र का टुकड़ा नहीं होता। पात्र-बात्र कैसे? वे तो आनन्द की लहर में भिक्षा के लिये जाए। हाथ में आहार ले। खड़े-खड़े आहार लें, खड़े (रहकर) आहार लें। ऐसी मुनि की सत्त्व दशा वीतरागमार्ग में अनादि से चली आती है। अरे! कहीं सुना न हो। ऐई! प्रवीणभाई! है या नहीं पुस्तक? वहाँ रह गयी? समाप्त हो गयी। इतनी ही है? अधिक नहीं रखी होगी? चींटियाँ हो गयी हों! इसमें बहुत चींटियाँ हुई हैं। वह है न कुछ अन्दर? चींटियाँ बहुत हुई हैं, ऐसा भाई कहते थे। चेतन कहता था, चींटियाँ बहुत (हुई है)। खुराक हो वहाँ आवे। आनन्द की खुराक तो आत्मा में है। आहाहा! वहाँ राग से भिन्न पड़कर आनन्द की खुराक में आत्मा जाए, उसे धर्मात्मा कहा जाता है यहाँ तो, भाई! आहाहा! और वह सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ वह आत्मा। ऐसी आत्मा की जाति को जानकर अपने आनन्द की खुराक करे जीव। अतीन्द्रिय आनन्द का (खुराक ले)। आहाहा!

कहते हैं, इससे भ्रष्ट हो गये। बहुमान नहीं रहा। अपनी कल्पित (मान्यता से) वस्त्रादि रखकर हम भी साधु हैं, वस्त्र रखकर हम भी मुनि हैं, ऐसा मनवाने लगे, वे सब भ्रष्ट हुए हैं। उनका यहाँ निषेध है। उनकी इस मार्ग में गिनती नहीं है। कठिन लगे, बापू!



गाथा-१०५

आगे भक्तिरूप वैयावृत्य का उपदेश करते हैं -

णियसत्तीए महाजस भत्तीराण णिच्चकालम्मि ।

तं कुण जिणभत्तिपरं विज्जावच्चं दसवियप्पं ॥१०५॥

निजशक्त्या महायशः! भक्तिरागेण नित्यकाले ।
 त्वं कुरु जिनभक्तिपरं वैयावृत्यं दशविकल्पम् ॥१०५॥
 हे महायश! अनुराग भक्ति से सदा निज-शक्ति से।
 दश भेद-युत वैयावृति को करो जिनवर भक्ति से ॥१०५॥

अर्थ - हे महायश! हे मुने! जिनभक्ति में तत्पर होकर भक्ति के रागपूर्वक उस दस भेदरूप वैयावृत्य को सदाकाल तू अपनी शक्ति के अनुसार कर। 'वैयावृत्य' के दूसरे दुःख (कष्ट) आने पर उसकी सेवा चाकरी करने को कहते हैं। इसके दस भेद हैं - १. आचार्य, २. उपाध्याय, ३. तपस्वी, ४. शैक्ष्य, ५. ग्लान, ६. गण, ७. कुल, ८. संघ, ९. साधु, १०. मनोज्ञ, ये दस भेद मुनि के हैं। इनका वैयावृत्य करते हैं, इसलिए दस भेद कहे हैं ॥१०५॥

गाथा-१०५ पर प्रवचन

आगे भक्तिरूप वैयावृत्य का उपदेश करते हैं - भक्ति चाहिए, कहते हैं। आहाहा! सच्चे तत्त्व के भानवाले जीव की भक्ति चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

णियसत्तीए महाजस भक्तीराणण णिच्चकालम्मि ।
 तं कुण जिणभक्तिपरं विज्जावच्चं दसवियप्पं ॥१०५॥

अर्थ - हे महायश! आहाहा! नग्नमुनि हुए हैं, इसलिए महायशरूप से (सम्बोधन करते हैं)। अकेले स्त्री, पुत्र छोड़कर बैठा, अकेला मुनि होकर। आहाहा! हे मुने! जंगल में बसता है, स्त्री, पुत्र हो नहीं, धन्धा-व्यापार छोड़ा होता है। कहते हैं, इस अपेक्षा से तो भाई ठीक महायश है तू। दूसरे की अपेक्षा त्याग किया इतना, परन्तु सच्चा मुनि नहीं तू। जिनभक्ति में तत्पर होकर... वीतराग त्रिलोकनाथ। आहाहा! वीतराग परमेश्वर, जिन्हें राग का नाश होकर वीतरागता प्रगटी है, ऐसे त्रिलोकनाथ जगत में विचरते हैं, ऐसे उनकी भक्ति कर। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य देखो न! महासन्त, महामुनि थे। आत्मा के आनन्द की लहर जिन्हें उछली थी। अनुभव में आगे बढ़कर चारित्रवन्त थे। जिन्हें प्रचुर स्वसंवेदन था।

ऐसी दशावन्त भी भगवान के पास गये थे। महाविदेह में परमात्मा साक्षात् विराजते हैं, वहाँ गये थे। आठ दिन वहाँ रहे। साक्षात् भगवान की वाणी सीधी सुनी। समवसरण में लाखों-करोड़ों देव के समीप सहित। वह वाणी सुनने के पश्चात् यहाँ आकर यह शास्त्र बनाये। कितना उनका विनय! ओहोहो! पंचम काल के प्राणी, साधु, उन्होंने सदेह महाविदेह भगवान की भक्ति की। महाविदेह भगवान की यात्रा की। आहाहा! अरे! कौन माने? अज्ञानी को इसका कुछ पता नहीं लगता कि यह क्या कहते हैं? पागल कहे। सुन, बापू! वे परमात्मा विराजते हैं, प्रभु। वर्तमान समवसरण में। इन्द्र आते हैं, गणधर शास्त्र रचते हैं। सिंह और बाघ जिनके समवसरण में आते हैं, नाग आते हैं। भगवान की वाणी इच्छा बिना ॐ ध्वनि खिरती है। परमेश्वर को ऐसी वाणी नहीं होती, उन्हें तो पूर्ण परमात्मदशा प्रगट हुई है और वीतरागता-सर्वज्ञता (हुई है), उनकी वाणी में ॐ ऐसी आवाज उठती है। इच्छा बिना, होंठ हिले बिना, कण्ठ हिले बिना। ऐसी जिन की भक्ति में तत्पर रहो। इसमें भाषा थोड़ी आड़ी-टेढ़ी की है।

मूल तो ऐसा है कि भक्ति के रागपूर्वक उस दस भेद... नहीं डाले इसमें। उस वैयावृत्त्य को सदाकाल तू अपनी शक्ति के अनुसार कर। ऐसा है उसमें। कैसी भक्ति? कि जिनभक्ति में तत्पर होकर,... ऐसा। ऐसी। ऐसा अन्दर फेरफार शब्द का बहुत फेरफार है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव... आहाहा! अरे रे! अरिहन्त पद के नाम में जन्मे, उन्हें अरिहन्तपद की खबर नहीं होती और जहाँ-तहाँ बेचारा सिर फोड़े, भटके। आहाहा! मरकर नरक और निगोद जानेवाले हैं सब। आहाहा! यहाँ दुनिया भले माने। ऐसी बात है, भाई! सूक्ष्म बात, बापू! मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! जिनभक्ति कहते हैं। आहाहा! वह अनादर करता है।

जिनभक्ति में तत्पर होकर भक्ति के रागपूर्वक उस दस भेदरूप वैयावृत्त्य को सदाकाल तू अपनी शक्ति के अनुसार कर। कैसी? जिनभक्ति में तत्पर होकर... ऐसी भाषा आड़ी-टेढ़ी ली है, भाई! पण्डित जयचन्द्रजी की। भक्ति के रागपूर्वक उस दस भेदरूप वैयावृत्त्य को सदाकाल तू अपनी शक्ति के अनुसार कर। आहाहा! वीतरागदेव परमात्मा विराजते हों तो उनकी भक्ति, न हो तो उनकी प्रतिमा की भक्ति भी शास्त्र में कही गयी है। है वह शुभभाव।

मुमुक्षु : स्वयं होवे तो शुभभाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव। आहाहा! ऐसा भाव उसे आता है। सम्यग्दृष्टि जीव को ऐसे जिनभक्ति के भाव आते हैं। भाव है शुभ, पुण्य; धर्म नहीं। आहाहा! धर्मदशा पूर्ण न हुई हो, न हो, तब ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। बहुमान आता है। ओहो! धन्य अवतार प्रभु! तेरी दशा पूर्ण तूने प्रगट की और तेरी वाणी खिरी, उसमें हमारा मार्ग उसमें से हाथ आया। आहाहा! समझ में आया ?

जिनभक्ति में तत्पर होकर... लोक दिखाव के लिये, ऐसा कहते हैं। दुनिया देखे कि हम भगवान की भक्ति करते हैं, कुछ गिनती में आवें, ऐसा नहीं। **जिनभक्ति में तत्पर होकर भक्ति के रागपूर्वक...** आहाहा! उस दस भेदरूप वैयावृत्य को सदाकाल तू अपनी शक्ति के अनुसार कर। आहाहा! आनन्दघनजी कहते हैं, एक बार भगवान की स्तुति करते हुए, 'देखण दे सखी देखण दे। जिनकंद प्रभु मुने देखण दे।' न देखा एकेन्द्रिय में मैंने प्रभु को हे नाथ! हरितकाय, एकेन्द्रिय, पृथ्वी, पानी में, अग्नि में भटककर मर गया अनन्त भव। वहाँ नहीं देखा मैंने। नहीं देखा दो इन्द्रिय में, नहीं देखा त्रिन्द्रिय में, नहीं देखा चौइन्द्रिय में, ऐसा कहकर व्यवहार भी सिद्ध किया वीतराग ने कहा वह। 'अमां सखी मुने देखण दे।' अब मुझे देखने दे। मेरा नाथ अन्तर सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा ऐसा, पूर्णानन्द से, अमृत से भरपूर प्रभु, ऐसा मेरा स्वरूप अब मुझे देखने दे, सखी! सुमति को श्रद्धा कहते हैं। वह आता है उसमें। नहीं? आनन्दघनजी में। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। क्या कहा? चन्द्रप्रभु के दर्शन में आता है। देखण दे सखी। मैंने नहीं देखा मेरा वीतराग रूप। आहाहा!

भगवान आत्मा तो अन्दर वीतराग का रूप है चैतन्य। राग के कण रहित चीज वीतराग से भरपूर आत्मा है। आहाहा! ऐसा स्वरूप, हे सखी! अब मुझे देखने दे। मैंने दूसरा बहुत देखा। जगत का बहुत देखा। परन्तु कभी मेरा नाथ मैंने नहीं देखा, ऐसा कहते हैं। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, ऐसा आत्मा असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का

पिण्ड, अनन्त जिसकी पर्याय, वह वस्तु वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकती। धर्म है, वह पर्याय है। अब पर्याय की खबर न हो इसे। ध्यान है, वह पर्याय है। और ध्यान का ध्येय है वस्तु, वह द्रव्य-गुण वस्तु सामान्य है, उसकी भी खबर नहीं होती सामान्य क्या और पर्याय क्या? अन्ध दौड़ से (दौड़ता जाता है)। समझ में आया?

सदाकाल तू अपनी शक्ति के अनुसार कर। 'वैयावृत्य' दूसरे दुःख (कष्ट)... कोष्ठक में नहीं चाहिए। दुःख और कष्ट दोनों साथ में शब्द है। दुःख (कष्ट) आने पर उसकी सेवा चाकरी करने को कहते हैं। लो! आहाहा! भाव होता है न ऐसा। आचार्य,... की भक्ति कर। आचार्य। आचार्य किसे कहना? आहाहा! जिसे अन्तर का आनन्द, भगवान पूर्णानन्द का नाथ जिसे श्रद्धा में, अनुभव में प्रगट हुआ है, और जिसे आत्मज्ञान का स्वसंवेदन अन्तर वर्तता है। तदुपरान्त जिसे चारित्र की रमणता अन्दर में वर्तती है। आहाहा! तदुपरान्त इस जगत के प्राणी को शिक्षा और दीक्षा देनेवाले हैं। बाह्य की जिसे नग्नदशा होती है। ऐसे आचार्य की भक्ति कर, कहते हैं। आहाहा! अभी तो कुछ दिखते नहीं परन्तु श्रद्धा में करके भक्ति कर, ऐसा कहते हैं। कठिन पड़े। आचार्य की भक्ति कर।

उपाध्याय,... की (भक्ति) कर। उपाध्याय वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित होते हैं अन्दर। मात्र वे पढ़े और पढ़ावें, उसकी मुख्यता से उन्हें उपाध्याय कहा जाता है। उनकी भक्ति कर। सेवा-चाकरी कर। तपस्वी,... मुनि-मुनि। मुनि होते हैं न बड़े महीने-महीने के उपवास हों। आत्मा के आनन्द के ध्यान में ऐसे मस्त होते हैं कि जिन्हें आहार लेने की वृत्ति ही उत्पन्न नहीं होती। महीने-महीने दो-दो महीने तक। आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द में झूलते होते हैं। आहाहा! ऐसे तपस्वी, सम्यग्दर्शन के भानसहित, वीतरागी तपस्वी मुनि हों, उनकी भक्ति कर, सेवा-चाकरी कर।

शैक्ष्य,... शैक्ष्य अर्थात् शिष्य। नवदीक्षित हों, ऐसे शिष्यों की। आत्मज्ञान हो, आत्मदर्शन हो, अनुभव की दशा प्रगट हुई हो और जिनकी नग्नदशा शिष्य मुनि की, ऐसे की सेवा कर। ग्लान,... रोगी-रोगी। मुनि हों, उन्हें रोग हो, कठोर वर्तता हो। शरीर है। मुनि हों, उन्हें कठोर रोग हो। आहाहा! उनकी भक्ति। गण,... साधु का टोला, सन्त का झुण्ड, अरे! एक सन्त मिले नहीं, उसमें झुण्ड की बातें करे। आहाहा!

सन्त के गण की सेवा, यह कुल,... परम्परा से चला आता हो न धर्म का कुल, धर्मात्मा का। संघ,... उनका समुदाय। साधु, मनोज्ञ, ये दस भेद मुनि के हैं। मुनि के दस प्रकार हैं। विस्तार बहुत है तत्त्वार्थसूत्र में। तत्त्वार्थसूत्र है, उसमें बहुत अधिकार है। यह दस प्रकार के सब समकिती, ज्ञानी, जैन मुनियों की यह बात है। दूसरे में तो मुनिपना ऐसा हो नहीं सकता। आहाहा! अभी समकित नहीं हो सकता दूसरे में तो फिर साधुपना कहाँ से आया? आहाहा! कठिन बात। इनका वैयावृत्त्य करते हैं, इसलिए दस भेद कहे हैं। लो! इनकी सेवा करे, चाकरी करे। विशेष आयेगा.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



गाथा-१०६

आगे अपने दोष को गुरु के पास कहना, ऐसी गर्हा का उपदेश करते हैं -

जं किंचि कयं दोसं मणवयकाएहिं असुहभावेण ।

तं गरहि गुरुसयासे गारव मायं च मोत्तूण ॥१०६॥

यः कश्चित् कृतः दोषः मनोवचः कायैः अशुभभावेन ।

तं गर्हं गुरुसकाशे गारवं मायां च मुक्त्वा ॥१०६॥

जो कुछ किया है दोष मन वच काय की अविशुद्धि से।

उसकी करो गर्हा महत्ता-कपट-तज गुरु पास में ॥१०६॥

अर्थ - हे मुने! जो कुछ मन-वचन-काय के द्वारा अशुभ भावों से प्रतिज्ञा में दोष लगा हो उसको गुरु के पास अपना गौरव (महंतपने का गर्व) छोड़कर और माया (कपट) छोड़कर मन वचन काय को सरल करके, गर्हा कर अर्थात् वचन द्वारा प्रकाशित कर।

भावार्थ - अपने को कोई दोष लगा हो और निष्कपट होकर गुरु को कहे तो वह दोष निवृत्त हो जावे। यदि आप शल्यवान् रहे तो मुनिपद में यह बड़ा दोष है, इसलिए अपना दोष छिपाना नहीं, जैसा हो वैसा सरलबुद्धि से गुरुओं के पास कहे तब दोष

मिटे, यह उपदेश है। काल के निमित्त से मुनिपद से भ्रष्ट हुए, पीछे गुरुओं के पास प्रायश्चित्त नहीं लिया, तब विपरीत होकर अलग सम्प्रदाय बना लिये, ऐसे विपर्यय हुआ ॥१०६॥

प्रवचन-१३३, गाथा-१०६-१०७, शनिवार, कार्तिक शुक्ल ०९, दिनांक ०७-११-१९७०

भावपाहुड़ की १०६ गाथा। १०६। आगे अपने दोष को गुरु के पास कहना, ऐसी गर्हा का उपदेश करते हैं - भावपाहुड़ है न?

जं किंचि कयं दोसं मणवयकाएहिं असुहभावेण ।

तं गरहि गुरुसयासे गारव मायं च मोत्तूण ॥१०६॥

मुनि को लक्ष्य कर मुख्य बात है। है जरा सूक्ष्म बात, थोड़ा व्यवहार का भाग है यह। प्रथम तो आत्मा पूर्ण-पूर्ण वीतरागस्वरूप है। उसे राग और पर अजीव की दृष्टि छोड़कर। जिस पर दृष्टि है, उसे वह अपना मानता है; इसलिए राग, विकल्प हो या पर, उसमें अस्तित्व है, वह पर है, अपना नहीं, तथापि उसके अस्तित्व पर, अस्ति पर दृष्टि है, इसलिए इतना मैं, यह मैं-ऐसा मानता है। यह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? उसे यह राग और अजीवादि परपदार्थ; प्रथम जिसे हित करना हो, उसे पर की रुचि और लक्ष्य छोड़कर वस्तु के स्वभाव शुद्ध चैतन्य वीतरागमूर्ति आत्मा की दृष्टि और उसका ज्ञान और उसमें लीनता की एकाग्रता आंशिक प्रगट हो, वह सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? धर्म की शुरुआत वहाँ से होती है। तदुपरान्त यहाँ तो बात है।

आत्मा में राग और पर से भिन्न का भान है, तदुपरान्त स्वरूप में चारित्र-रमणता है। वह खास मोक्ष का मार्ग है। उसमें कोई दोष लगे हों, उनकी उसे गुरु के पास गर्हणा करना। कितनी बात है, देखो! एक ओर ऐसा कहना कि सम्यक्त्व होने पर दोष से मुक्त है। समझ में आया? आत्मा पवित्र वीतरागमूर्ति आत्मा है। उसका दर्शन, ज्ञान होने पर धर्मी पूर्ण पवित्रता का स्वामी और पवित्रता का धनी है। बीच में यह दोष आवे, उससे तो सम्यग्दृष्टि मुक्त है। यह दृष्टि और सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा से। समझ में आया? परन्तु मुनिपने की दशा में भी जो कुछ उसके योग्य शुभभाव हो, उसे अशुभभाव, तीन कषाय

के अभावरूप जो भाव है, उसके कारण उसे तीन कषाय के भाव से हिंसा, झूठ आदि के भाव का अशुभभाव होता नहीं। क्या कहा, समझ में आया ?

मुमुक्षु : अशुभभाव होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभभाव, ऐसा अशुभभाव। मुनि है। आत्मदर्शन पहले होता है। सम्यग्दर्शन की शुरुआत, पश्चात् स्वरूप की लीनता होती है। उसे तीन कषाय के अभाव के कारण से। अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरणी, प्रत्याख्यानावरणी तीन कषाय के अभाव, इस प्रकार का जो अशुभभाव हिंसा, झूठ, चोरी, विषय आदि ऐसे भाव उसे नहीं होते। परन्तु दूसरा भाव जरा शुभभाव हो, उसमें कोई विशेष अशुभता थोड़ी हो। वैसे तो ऐसा कहते हैं कि मुनि को अशुभ नहीं है। परन्तु वह अशुभ नहीं, इसका अर्थ यह। समझ में आया ? तीन कषाय के अभावरूप जो भाव, उसमें तीन कषाय के भाव से होता अशुभभाव नहीं है। समझ में आया इसमें ? यह तो भावपाहुड़ है। दर्शनशुद्धि से लेकर निर्मलता, वीतरागता मुनि को भी कैसी होती है, वह वर्णन करते हैं। इसे पहिचान तो करना पड़ेगी न पहले ? समझ में आया ? कि ऐसे मुनि होते हैं।

जिसे होना है, उसे जानना तो पड़ेगा या नहीं कि ऐसे मुनि होते हैं। समझ में आया ? उन्हें तो अन्तर आत्मा के आनन्द का भान, सम्यग्दर्शन होते ही आनन्द हूँ, ऐसा भान हो गया और उसका आया है अनुभव। अब दुःख के परिणाम और राग के परिणाम से तो सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से तो मुक्त है। परन्तु स्वरूप की चारित्रदशा की अपेक्षा से जब उनसे भी, राग से भी छूटकर स्वरूप में स्थिर होता है, तब उसे चारित्र होता है। उस चारित्र में उसे तीन कषाय के भाव से होता अशुभभाव, ऐसा भाव नहीं होता। समझ में आया ? परन्तु थोड़ा दूसरा भाव आर्तध्यान का आदि या थोड़ा ऐसे दोष का भाव आवे, उसकी बात यहाँ करते हैं। अरे ! भाई ! कितने पहलू ! अभी तो दर्शनशुद्धि के पहलू इतने। उसमें फिर चारित्र के पहलू कितने प्रकार। समझ में आया ?

हे मुने ! जो कुछ मन-वचन-काय के द्वारा अशुभभावों से प्रतिज्ञा में दोष लगा हो... मन, वचन और काया से अशुभभाव से किंचित् प्रतिज्ञा में दोष लगा हो उसको गुरु के पास अपना गौरव (महन्तपने का गर्व) छोड़कर... अभिमान छोड़कर (कहते हैं कि) ऐसे भाव मुझे हुए थे। आहाहा ! समझ में आया ? मुनि की अन्दर की

अपेक्षा से बात है, हों! सम्यग्दृष्टि को राग का स्वामीपना नहीं, तथा राग का कर्तृत्व मेरा है, ऐसा नहीं। आहाहा! गजब! परन्तु राग का परिणमन है, उसे छोड़कर आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु का आश्रय लेकर स्थिर होकर जिसमें तीन प्रकार के कषाय के राग का अभाव किया है। एक संज्वलन कषाय का अभाव रहा है। समझ में आया? यह सब समझना कहाँ? देवशीभाई! यह सब कितने पहलू समझना इसमें? आहाहा! प्रभु! तेरी पवित्रता तो पूर्ण पड़ी है तुझमें। परन्तु उसकी विपरीत की परिणति जितनी अशुद्ध है, उसे यहाँ छोड़ना और छोड़ने में भी कुछ दोष लगा हो तो उसे भी छोड़कर शुद्ध होना, ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

गौरव (महन्तपने का गर्व)... गौरव अर्थात् अभिमान। हम ऐसे... हम ऐसे। ऐसे कैसे कहा जाए हमारे दोष को? उसे छोड़ देना। बापू! महन्त तो केवलज्ञान हो, तब पूर्ण कहलाये। इसके बिना तो दोषादि उसकी भूमिका की योग्य में जरा तीन कषाय के अभाव-स्वभावरूप तो दोष उसे नहीं होते, परन्तु दूसरे दोष जरा हों (उन्हें कहना)। आहाहा! जिस पवित्रता के पन्थ में पड़े हैं और पूर्ण पवित्रता की प्राप्ति करना है उसे तो, कहते हैं कि श्रद्धा का दोष तो एक भी नहीं हो सकता। समझ में आया? इतनी श्रद्धा तो सम्यग्दर्शन में (ऐसी है कि) पूर्ण पवित्र आत्मा परमेश्वर में हूँ। मेरा परमेश्वर दूसरा कोई नहीं। आहाहा! मुझे कुछ पुण्यादि मिले, ऐसी भी अभिलाषा ज्ञानी को नहीं होती। आहाहा! ज्ञानी को अभिलाषा भाव होवे तो आत्मा की शुद्धि की वृद्धि का भाव होता है। आहाहा! समझ में आया? यह शुद्धि की वृद्धि सम्यग्दर्शन में थोड़ी हुई, फिर चारित्र में... चारित्र अर्थात् अन्तर आनन्द में रमण करना, इसका नाम चारित्र है। चारित्र कोई बाह्य क्रिया वस्त्र बदलना और नग्नपना वह चारित्र नहीं है। आहाहा! तथा पंच महाव्रत के परिणाम वे कोई चारित्र नहीं हैं, वह तो राग है। चारित्र में दोष है, अचारित्र है। ऐई! प्रकाशदासजी!

मुमुक्षु : बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु क्या बराबर है? तब अभी तक क्या किया? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा, जिसे परमात्मा होना हो, उसकी विधि की बात करते हैं। भटकना तो अनादि काल से भटक कर दुःखी है। पहली भूमिका जिसने सम्यग्दर्शन का

सुधार किया है,... समझ में आया ? जिसे कोई पुण्य के परिणाम हों, उसकी भी जिसे रुचि और आदर नहीं, तो उसके फलरूप से प्राप्त सामग्री का आदर धर्मी को नहीं होता। आहाहा! मनसुखभाई! तब क्या करना ? ऐसा माने तो बाबा हो, तब माना जाए। गृहस्थ अवस्था में ऐसा माना जाए ?

मुमुक्षु : मानने के समय जोर पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानने में क्या ... वह कहता था एक अपने था न ? अमृतलाल। था न वह धनबाद, क्या कहलाता है ? झरिया। वह कहे, महाराज (कहते) हैं, यह तो बाबा हो तो माना जाए। ऐसा वह कहता था। वह मजाकिया था, मजाकिया। यहाँ रहता था न पहले ? बाबा ही है। सुन न तू। आहाहा!

भगवान् चिदानन्द की मूर्ति, जिसमें पंच महाव्रत का विकल्प-राग, वह भी स्वरूप में नहीं। जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भाव भी विकार और दोष है, आत्मा में नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसे आत्मा की... पूर्ण पवित्रता का धाम भगवान्, उसका जिसने अन्तर में स्वसन्मुख होकर दर्शनशुद्धि प्रगट हुई है, तब उसे धर्म की शुरुआत कही जाती है। वह तो गृहस्थाश्रम में हो सकती है। छह खण्ड के राज में पड़ा हो तो वह हो सकती है। राज में पड़ा ही नहीं। आहाहा!

सम्यक् आत्मा का भान होने पर मैं तो आनन्द का समुद्र हूँ। अन्दर आनन्द का सागर उछलता है। ऐसी जहाँ अन्तर श्रद्धा और भान हुआ, उसे छह खण्ड के चक्रवर्ती के राज में भी कहीं आनन्द भासित नहीं होता। आहाहा! समझ में आया ? इन्द्र के इन्द्रासन में भी समकिति है इन्द्र। करोड़ों अप्सरायें और उनकी देव की ऋद्धि (होती है)। यह नहीं रे, मुझे यह नहीं। मेरी ऋद्धि तो आनन्द और शान्ति अन्दर में है। उस ऋद्धि के समक्ष यह सब सड़े हुए कुत्ते के कचड़े के ढेर हैं। आहाहा! ऐसी दृष्टि और दृष्टि के विषय का जहाँ भान हो, इसलिए चाहे जहाँ हो परन्तु एक राग और संयोग का वह अन्तर में स्वामी नहीं है। चीज़ दिखाई दे, हों! साथ में। पुण्य हो तो दिखाई अवश्य दे। साथ में हो, उसमें नहीं। समझ में आया ? भारी काम, भाई! धर्म, ऐसा धर्म! समझ में आया ?

प्रथम धर्म सम्यग्दर्शन होने पर, राग का छोटे में छोटा कण और रजकण एक

परमाणु, वह भी मेरी चीज़ नहीं, मुझमें नहीं, वह मेरी नहीं, मैं उसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? अब यहाँ तो तदुपरान्त भाव की शुद्धि की अन्तिम गाथायें यह ली जाती हैं न? इनमें चारित्र की शुद्धि की बात है। सौ गाथा हो गयी। १०५-१०६ है। (कुल) १६५ गाथायें हैं।

कहते हैं कि भाई! इसे समझण में तो लेना पड़ेगा न कि चारित्र कैसा होता है? चारित्र कोई यह बाहर की क्रिया और स्त्री, पुत्र छोड़कर नग्न हो, इसलिए चारित्र है, वह चारित्र नहीं। समझ में आया? पंच महाव्रत के विकल्प उठाये कि हमारे किसी की हिंसा नहीं करना, झूठ नहीं बोलना, चोरी नहीं करना। यह कोई चारित्र नहीं। समझ में आया? आनन्दधाम भगवान आत्मा, उसका जहाँ दृष्टि में स्वाद आया है, वह स्वाद लेने के लिये उसमें स्थिर होता है, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! समझ में आया?

इस चारित्र में कहते हैं, 'जं किंचि कयं दोसं' ऐसा शब्द है न? जरा। ऐसा शब्द कहकर तीव्र दोष तो उसे होते नहीं, ऐसा कहना है, भाई! तीन कषाय जो टले हैं, उसे तो आत्मा का आनन्द अन्दर में उफनता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का उफान! पोला नहीं, हों! दूध का उफान आवे परन्तु पोला उफान आवे। दूध-दूध। नीचे अग्नि होती है न? उफान तो आवे परन्तु वह तो पोला होता है। वह कहीं अन्दर कठिन नहीं होता। वापस अग्नि ले ले तो बैठ जाए नीचे। यह तो आनन्द का कन्द भगवान। जिसने आत्मा के आनन्द के साथ रमणता माँडी है, आहाहा! जिसने राग की रमणता अन्तर में से छोड़ी है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में आनन्द का भान है राग का नहीं। परन्तु अब राग की अस्थिरता जो थी... समझ में आया? आहाहा! उसे छूटी है और वीतरागता आत्मा में आनन्द की लहरें अन्दर में से उठी है, उसे भी 'जं किंचि' ऐसा शब्द है। उसकी भूमिका में कषाय अभी थोड़ी कषाय है। संज्वलन की है न? ऐसा कहते हैं। इतना कोई सहज दोष होता है।

मन-वचन-काय के द्वारा अशुभभावों से प्रतिज्ञा में दोष लगा हो... आहाहा! सरल होकर गुरु के पास, उससे भी आनन्द और शान्ति में बड़े हुए सन्तों के पास जाकर (कहे), महाराज! यह दोष लगा है। आहाहा! आत्मा का भान है, अन्दर आनन्द की चारित्रदशा प्रगट हुई है। उग्रदशा। अतीन्द्रिय आनन्द की उग्रदशा का नाम चारित्र। उसमें

भी कुछ दोष अन्दर खटकता है। आहाहा! उस भूमिका में यह नहीं होता। उसे गुरु के पास जाकर, गर्व छोड़कर, अपनी महत्ता के पद का अभिमान छोड़कर गर्व छोड़कर और माया (कपट) छोड़कर... सरलरूप से। जैसे बालक उसकी माँ के पास बात करते हुए हिचकता नहीं है। बालक उसकी माँ के पास बात करते हुए हिचकता नहीं है। कपट नहीं, सरल होता है। आठ वर्ष का लड़का हो और बारह वर्ष के लड़के को आठ वर्ष के बालक का हाथ लग गया हो तो उसकी मा को ऐसा कहता है कि माँ! मुझे इसने मारा। ऐसा कहते हुए उसे ऐसा कहे, अरे! तू बारह वर्ष का और आठ वर्ष के ने तुझे मारा? परन्तु ऐसा कहते हुए भी उस बालक को कपट और दम्भ है नहीं। समझ में आया? आहाहा! देखो तो मोक्ष का पन्थ! समझ में आया?

कहते हैं, इतना दोष भूमिका के योग्य (हुआ हो)। वैसे तो अशुभ नहीं परन्तु वह अशुभ नहीं, तीन कषाय के अभाववाला अशुभ नहीं। दूसरा है। समझ में आया? ऐसे तो मुनि को तीन लेश्या गिनी हैं, लो। भाई! आहाहा! कितनी बात स्याद्वाद की अपेक्षा से। मुनि को तेज, पद्म और शुक्ल तीन शुभ लेश्या होती है। और कहते हैं कि कोई ऐसा दोष हो तो, भाई! संज्वलन की भूमिका के प्रकार में ऐसे प्रकार होते हैं। होता है न थोड़ा, आहाहा! नहीं भी कहा और होता है, ऐसा भी कहा। समझ में आया? मोक्ष के मार्ग... आहाहा! 'सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख में' जब से आनन्द प्रगट हुआ, वह अनन्त काल रहे और अनादि दुःख का अन्त आवे, अनादि दुःख का अन्त आवे। वह दशा जिसे प्राप्त करनी है, उसकी दशा कैसी होगी? समझ में आया?

कहते हैं, कुछ दोष हो तो माया छोड़कर (स्वीकार करे)। अपना पद बड़ा है, ऐसा यदि गर्व रहे तो सरलरूप से कहा नहीं जाए। समझ में आया? आचार्य हो, उपाध्याय हो, साधु हो। सच्चे, हों! यह तो सच्चे की बात है। आत्मा का सम्यक् भान नहीं और द्रव्यलिंगी है, उसकी तो बात है ही नहीं। वह तो साधु ही नहीं, वहाँ चारित्र नहीं, वहाँ फिर चारित्र में दोष लगे, यह कहाँ से होगा? समझ में आया?

मन-वचन-काय को सरल करके, गर्हा कर... गर्हा करके अर्थात् निन्दा करके। अरे! यह गजब बात। आलोचना में तो आया था। आलोचना नहीं? कौन सी आलोचना? पद्मनन्दि। हे भगवान! जितने पाप के परिणाम आदि हैं, उतने प्रायश्चित तो

शास्त्र में होते नहीं। तब उनको परिक्षीण करता हूँ एकसाथ। अर्थात्? उन विकल्पों को दोषरूप को मैं निर्विकल्प स्वरूप में स्थिर होकर उन्हें छोड़ता हूँ। आलोचना में आया था। अनेक प्रकार से... आहाहा! यहाँ तो प्रगटरूप से व्यवहार वर्णन करना है न? यह निश्चय की बात थी।

भगवान आत्मा अपने आनन्द के घर में से कुछ भी विकल्प से बाहर निकला, चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो, सब अपराध और सब दोष है। समझ में आया? लो! शुभ उपयोग से तीर्थकरगोत्र बँधे। समकित्ती को, हों! अज्ञानी को तो होता भी नहीं। परन्तु वह अपराध है। सोलहकारण भावना, वह भी अपराध है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में अमृतचन्द्राचार्य महाराज कहते हैं कि भाई! यह सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य जिस भाव से बँधे, तीर्थकरगोत्र जिस भाव से बँधे, वह भाव अपराध है। आहाहा! तब छठवें-सातवें गुणस्थान में तीर्थकरगोत्र बँधता है। समझ में आया? तब कहते हैं कि अशुभभाव तो होता नहीं। तो किस प्रकार का (नहीं होता)? लेश्या नहीं होती। किस प्रकार की? उसके योग्य जो हैं तीन कषाय के अभाव की, ऐसी उसकी लेश्या नहीं है। परन्तु जरा ऐसा भाव... समझ में आया? अस्थिरता का थोड़ा होता है। उसे सरलरूप से, महन्तपने की महत्ता छोड़कर गुरु के समक्ष बात करे। गर्हा करते-करते, ऐसा कहते हैं। कहाँ बात! आहाहा!

एक ओर सम्यग्दृष्टि को राग नहीं, एक ओर मुनि को ऐसा राग आवे दोष का तो गुरु के निकट जाकर कहे कि मैं इस प्रकार मैं निन्दा करता हूँ। वस्तु की पर्याय में जो होता है, उसकी यहाँ बात है। हें! सब पहलू समझना चाहिए। एक ही पहलू समझे, ऐसा नहीं चलता। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि में तो एक कषाय का अभाव है और तीन कषाय के दोष अभी उसमें खड़े हैं। पंचम गुणस्थान में दो कषाय का अभाव और दो कषाय के दोष खड़े हैं। मुनि को तीन कषाय का अभाव है और एक कषाय का दोष खड़ा है। नहीं तो यथाख्यातचारित्र हो जाए। ऐई! भीखाभाई! बहुत सूक्ष्म परन्तु यह। कहाँ का कहाँ और।

एक ओर कहे सम्यग्दृष्टि अकेला ज्ञाता-दृष्टा और साक्षी है। जो कुछ राग आवे और जो कुछ हो, उसका साक्षी है। ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से (यह बात है)। परन्तु

अस्थिरता की अपेक्षा का जो प्रकार है, मुनि को भी जितनी अस्थिरता का भाग है, दोषभाव हो, उसकी गर्हणा करे। आहाहा! अरे! मेरी पवित्रता में यह कलंक! समझ में आया? वह ऐसा न कहे कि मेरे कर्म का उदय था, इसलिए अन्दर ऐसा दोष हुआ। समझ में आया? क्योंकि वह तो क्रमबद्ध में आनेवाला था तो आया। लो! ऐसा न कहे? रतिभाई! ऐसा नहीं कहे। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है। यह कहीं आलीपाली का मार्ग नहीं है। ऐरे-गैरे जैसे का (नहीं है)। यह तो तीन लोक के नाथ ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर, ऐसा ही सर्वज्ञ परमेश्वर आत्मा। उसकी पूर्ण प्राप्ति के मार्ग में पवित्रता के पन्थ में गतिशील, उसे थोड़ा भी दोष होवे तो कहते हैं, सफेद में जरा भी काला लगे तो मैल दिखता है। अकेले मैल में मैल ठहरे, इससे कितने ही लाल वस्त्र और पीले पहनते हैं कि वह मैल बहुत दिखाई न दे। धोया हुआ सफेद हो, उसमें तो जरा भी मैल तुरन्त दिखाई दे। ऐसे वस्त्र में मैल किस प्रकार दिखाई दे? कहो, सफेद श्वेत हो तो तुरन्त दिखाई दे। इसी प्रकार चारित्र की सफेदाई जहाँ आनन्द की प्रगटी है... आहाहा! छोटे में छोटा दोष भी वहाँ दिखता है, ऐसा कहते हैं। और उसका प्रायश्चित्त लेने के लिये गुरु के पास जाता है। देखो तो यह दशा! आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ - अपने को कोई दोष लगा हो... आप अर्थात् स्वयं को। निष्कपट होकर गुरु को कहे तो वह दोष निवृत्त हो जावे। देखो! दोष छूट जाए। स्वभाव का आश्रय उग्र होने से ऐसी बात करते हैं, वहाँ यह दोष छूट जाते हैं। शान्ति की स्थिरता होने पर वह दोष छूट जाते हैं। आहाहा! गजब मार्ग, भाई! बाह्य की क्रिया, वह कहीं धर्म नहीं है, देह की क्रिया। अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम आवे, वे भी कहीं धर्म नहीं है। महाव्रत के परिणाम, वे भी धर्म नहीं है। वे सब पुण्य और बन्ध के कारण हैं। आहाहा! इसके बिना के अबन्धपरिणाम जिसे प्रगट हुए हैं, पहले तो अबन्धस्वरूप भगवान आत्मा है, उसका सम्यग्दर्शन (हुआ, वह) अबन्धपरिणाम है। पश्चात् फिर चारित्र प्रगट हो, तब उग्र अबन्ध परिणाम हैं। आहाहा! अन्दर में आनन्द की लहर उठे, उसे चारित्र कहते हैं। उसे छठवाँ गुणस्थान मुनि का कहते हैं। आहाहा!

कहते हैं, वह स्वयं जरा-सा भी इतना दोष हो तो बताता है। निवृत्त हो जाता है। सरलरूप से अन्दर उग्ररूप से अन्दर देखता हुआ, जानता हुआ बात होती है, उसमें

विकल्प आ जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो अभ्यास चाहिए, तो समझ में आये। यह कहीं साधारण बात नहीं है। यह भगवान वीतराग का मार्ग है। स्वयं वीतरागस्वरूप आत्मा का यह मार्ग है। अन्तर्मुख में गया है, उसे बहिर्मुख की कितनी ही वृत्तियाँ बाकी होती हैं। उसकी भूमिका प्रमाण में जब आगे जाए, तब उनकी आलोचना करता है। आहाहा!

और एक ओर कहना कि विकल्प के दोष का वह कर्तारूप से नहीं है। कर्ता नहीं, परन्तु परिणामन उसका है। करनेयोग्य है, वह तो शुभभाव की... करनेयोग्य बुद्धि उड़ गयी है। शुभभाव कर्तव्य है, यह तो बुद्धि उड़ गयी है। उसका परिणामन है। जशुभाई! यह सब समझना पड़ेगा। वहाँ अकेले... यह भरे, यह किया और धूल की। उसमें कुछ माल नहीं मिलता, हों! सब हैरान होने के रास्ते हैं। आत्मा को दुःखी करने के रास्ते हैं। आहाहा! उसमें समझने, वाँचने का समय नहीं मिलता। उसमें ऐसा मौसम होता है। ऐई! नटु! उसे सामने रखे। सबका अच्छा हो सही न। कर सब, ध्यान रखना। अरे! यह भारी संसार का नाटक। कनुभाई! यह वहाँ ठीक से होम होते हैं, मियागाँव में। आहाहा!

यह आत्मा भगवान अकेला आनन्द का वृक्ष है। आनन्द का आम है। उसमें से आनन्द के आम-केरी पकती है। आमली पके ऐसा आत्मा है। उस आम्र का आम ... पके। यह नहीं केरी कुछ कहते हैं? जमादार का आम, अमुक का आम। बहुत नाम देते हैं या नहीं? ऐई! मनसुखभाई! केसर आम। बहुत बातें करते हैं। और आते हैं बहुत आम, उस समय जब आम का अवसर हो तब। यह आम है, भगवान आनन्द का आम। भाई! तुझे खबर नहीं। जिसमें एकाग्र होने पर अतीन्द्रिय आनन्द के फल पकते हैं, उसे आत्मा कहते हैं। आत्मा, वह कहाँ तुझे खबर है (कि) आत्मा कौन है? समझ में आया?

कहते हैं, गुरु के निकट दोष छिपाना नहीं,... ओहोहो! यदि आप शल्यवान् रहे तो मुनिपद में यह बड़ा दोष है,... यह शल्य रह जाए। निःशल्यो व्रती। आत्मा के आनन्द का धाम, तदुपरान्त चारित्र की रमणता की आनन्द की उग्रता में यदि कुछ भी शल्य रह जाए तो मुनिपना रहेगा नहीं, ऐसा कहते हैं। शल्य रहे तो। दोष हो, परन्तु

उसका शल्य रह जाए। समझ में आया ? आहाहा ! शरीर में देखो न, आधी सुई घुस गयी हो। निकालते-निकालते एक टुकड़ा रह गया हो तो भी वापस अन्दर सड़ता है। सुई आ जाती है न किसी को खाने में। भैंसों को खाने में आ जाती है। सुई। सूया होता है न सूया ? वह भैंस को घास में आ जाए। अब उसे निकालना हो। बड़ी लौहचुम्बक हो। लौहचुम्बक को ऐसे रखे बाहर। जहाँ दिखाई दे। उसके द्वारा करते... करते... करते... करते... वापस मुँह में लावे, तब उसमें से सुई निकले। समझ में आया ? इसी प्रकार यह शल्य अन्दर घुस गयी हो, उसे तो आत्मा की मुख्यता करके अन्दर में एकाग्रता करने से उसे टाला जा सकता है। बाकी कोई उपाय है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो आचार्य यह भी कहना चाहते हैं कि एक सम्यग्दर्शन हुआ, इसलिए मुक्ति हो जाएगी, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। तीन होकर एक मार्ग है। समझ में आया ? आहाहा !

वस्तु का भान सम्यग्दर्शन तो श्रेणिक राजा को हुआ, गृहस्थाश्रम में राज्य में थे, परन्तु चारित्र नहीं था और नरक का आयुष्य पहले बँधा हुआ था। बँधा हुआ था। नरक में जाना पड़ा। अभी नरक में है। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में है। आहाहा ! भगवान के समवसरण में बैठे हुए, भगवान के समवसरण में रहे हुए, भगवान के भक्त भगवान के पास प्रार्थना की—हे नाथ ! हमें उभारो, प्रभु ! भाषा तो ऐसी कहे न ? समझ में आया ? आहाहा ! ऐसे जीव पूर्व में नरक का आयुष्य बँध गया। बाद में सम्यक्त्व आत्मा का भान हुआ, अनुभव हुआ सम्यग्दर्शन का। परन्तु नरक का आयुष्य छूटा नहीं। लम्बा था तैंतीस सागर का, वह घट गया। सम्यग्दर्शन होने पर तैंतीस सागर का आयुष्य था, वह ८४ (हजार वर्ष) तक रह गया। ८४ हजार वर्ष रह गया। लो ! अभी नरक में है। सम्यग्दृष्टि है, आनन्द के स्वादिया हैं। राग का स्वादिया (पना) छूट गया है। आहाहा ! जिसे अज्ञान में राग का स्वाद आता है, शुभराग का स्वाद आता है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ऐसे श्रेणिक राजा जैसे भी... आहाहा ! भविष्य में पहले तीर्थकर होंगे। आगामी चौबीसी में ८४ हजार वर्ष की स्थिति पूरी होकर तीर्थकर होंगे। ओहोहो ! सौ-सौ इन्द्र जिनके तलिया चाटेंगे। चारित्र नहीं था परन्तु भव आया न ? समझ में आया ? नरक का भव और अभी एक तीर्थकर का भव होगा। दो भव हुए।

यहाँ कहते हैं कि जिसे भव नहीं करना, ऐसे चारित्रवन्त को जरा भी दोष हो, उसे सरलरूप से गुरु के निकट कहे। आहाहा! जैसा हो वैसा सरलबुद्धि से गुरुओं के पास कहे, तब दोष मिटे, यह उपदेश है। पश्चात् क्या कहते हैं जरा? काल के निमित्त से मुनिपद से भ्रष्ट हुए,... भगवान सन्तों का मार्ग तो अनादि अनुभव आनन्द में रहकर, बाह्य में नग्नदशा थी। यह अनादि का सनातन वीतराग मार्ग था। वह भगवान पश्चात् छह सौ वर्ष में काल के निमित्त से। मुनिपद से भ्रष्ट हुए,... उसमें से यह श्वेताम्बर पन्थ निकला। ऐई! प्रकाशदासजी! उसमें अर्थ नहीं, उसमें पाठ ही है। समझ में आया? इसमें है।

काल के निमित्त से मुनिपद से भ्रष्ट हुए,... यह तो वस्तु की स्थिति वर्णन करते हैं, हों! किसी की निन्दा नहीं। आत्मा का सम्यग्दर्शन, तदुपरान्त चारित्र था परन्तु बारह वर्ष का बड़ा दुष्काल पड़ा। मुनिपना निभ नहीं सका। पश्चात् वस्त्र का एक छोटा टुकड़ा रखा। भिक्षा लेने के लिये जाए वहाँ। वे मुनिपने से भ्रष्ट हो गये। फिर यह पन्थ पूरा श्वेताम्बर पन्थ उसमें से निकला। उसकी यहाँ बात करते हैं। प्रायश्चित्त नहीं लिया। दोष लगाया, मुनि दक्षिण में से वापस आये। (कहा), मार्ग ऐसा नहीं है। यह तुमने क्या किया? वस्त्र का टुकड़ा रखकर और आत्मा की ममता अन्दर पड़ी है, तुम मुनि हो (ऐसा मानते हो), (यह) मार्ग नहीं है। प्रायश्चित्त लो। नहीं लिया। समझ में आया? मुनि से भ्रष्ट हो गये। चेतनजी! ऐसा होगा यह सब? ऐसे सब बड़े पन्थ निकले। ऐई! रसिकभाई! उसमें से वापस स्थानकवासी निकला। श्वेताम्बर में से स्थानकवासी अधिक भ्रष्ट होकर (निकले)।

मुमुक्षु : उनसे बड़े पन्थ दुनिया में बहुत हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत हैं। वहाँ कहाँ... बौद्धमत में कितने लोग! वस्तु को समझे बिना... यह यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य कहना चाहते हैं। समझ में आया?

पीछे गुरुओं के पास प्रायश्चित्त नहीं लिया,... यह कहा, प्रायश्चित्त लो। वस्त्र नहीं रखा जाता। वस्त्र रखकर मुनिपना माने तो मिथ्यात्व है। मुनिपना तो तीन कषाय का जहाँ अभाव हो, वहाँ वस्त्र को लेने का विकल्प नहीं होता। अकेले वस्त्र छोड़कर बैठे, उनकी बात यहाँ नहीं है। ऐसे द्रव्यलिंग तो अनन्त बार धारण किये। वह कहीं मुनिपना

नहीं है, वहाँ समकित भी नहीं है। यह तो आत्मा के भान में चारित्र था। उसमें ऐसे काल में ऐसा प्रसंग बना। प्रायश्चित्त नहीं लिया। उस समय साधु ने कहा था-प्रायश्चित्त लो, यह मार्ग छोड़ दो। ऐसा शिथिलपना, एकलपना मार्ग में नहीं होता। अब काल ऐसा आया है, दूसरा नहीं होगा। उनकी यह बात है। समझ में आया? ऐई! मनसुखभाई! तुम्हारे गाँव में तो यह सब बड़ा है। देखो! समझ में आया? तो दूसरे की बात तो क्या करना, ऐसा कहते हैं। ऐई! कनुभाई! ब्राह्मण और अमुक और अमुक को मानना, वह तो महामिथ्यात्व है। समझ में आया? महामिथ्यात्व है। पूर्व का पुण्य बाँधा हो, वह घट जाए और नया पाप अधिक बँधे। ऐई! शान्तिभाई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, सच्चे सन्त का मार्ग भगवान ने-सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ, ऐसे मार्ग में थे, परन्तु काल के कारण से ऐसा काम... निमित्त कही है न भाषा? काल तो निमित्त है। आहाहा! उसमें से मुनिपद से भ्रष्ट हुए, पीछे गुरुओं के पास प्रायश्चित्त नहीं लिया, तब विपरीत होकर अलग सम्प्रदाय बना लिये,... सम्प्रदाय अलग पड़ गया। आहाहा! कोई देव भी आये नहीं। ऐसे जीव निकले। कोई देव आवे (और कहे कि), यह मार्ग नहीं है अपने वीतराग का। वीतराग का मार्ग तो आत्मा के आनन्द का भान होकर स्वरूप में-आनन्द में रमे, उसे वस्त्र नहीं हो सकते। वह तो नगनदशा, नगन दिगम्बरदशा अनादि की सनातन आत्मा के धर्म में थी। समझ में आया? नटुभाई! आहाहा! समझ में आया? क्या हो भाई! सत्य हो, वह सत्य काल से तो आवे। इससे कोई व्यक्ति के लिये कुछ बात नहीं है। समझ में आया? मार्ग का स्वरूप अनादि का ऐसा है। वह यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य का आशय है, उसमें यह।

मुमुक्षु : यह तो आशय निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : आशय निकाला। इसमें से। वजुभाई! यह आशय निकाला है।

ऐसे विपर्यय हुआ। सच्ची श्रद्धा से भी भ्रष्ट हो गये। चारित्र से भ्रष्ट हुए वस्त्र लेकर। पश्चात् तो श्रद्धा से भ्रष्ट हो गये। वीतराग मार्ग से पृथक् पड़े। अरे! उसे कोई सत्य कहे तो उसे ऐसा लगे कि नहीं, ऐसा नहीं होता। हमारा यह धर्म इतने वर्ष से चला आता है। भगवान! यह तो केवली का मार्ग है, भाई! यह किसी का अन्दर में स्वच्छन्दपना नहीं चलता। यह मार्ग ऐसा है। समझ में आया?

गाथा-१०७

आगे क्षमा का उपदेश करते हैं -

दुज्जणवयणचडक्कं णिट्ठुरकडुयं सहंति सप्पुरिसा ।
कम्ममलणासणट्ठं भावेण य णिम्ममा सवणा ॥१०७॥

दुर्जनवचनचपेटां निष्ठुरकटुकं सहन्ते सत्पुरुषाः ।
कर्ममलनाशनार्थं भावेन च निर्ममाः श्रमणाः ॥१०७॥

दुर्जन कटुक निष्ठुर वचन थप्पड़ सहें सब सत्पुरुष ।
निर्मम श्रमण सद्भाव से मल कर्म-नाशन हेतु निज ॥१०७॥

अर्थ - सत्पुरुष मुनि हैं, वे दुर्जन के वचनरूप चपेट जो निष्ठुर (कठोर) दया रहित और कटुक (सुनते ही कानों को कड़े शूल समान लगे) ऐसी चपेट है, उसको सहते हैं। वे किसलिए सहते हैं? कर्मों का नाश होने के लिए सहते हैं। पहिले अशुभ कर्म बांधे थे उसके निमित्त से दुर्जन ने कटुक वचन कहे, आपने सुने, उसको उपशम परिणाम से आप सहे तब अशुभकर्म उदय होय खिर गये। ऐसे कटुकवचन सहने से कर्म का नाश होता है।

वे मुनि सत्पुरुष कैसे हैं ? अपने भाव से वचनादिक से निर्ममत्व हैं, वचन से तथा मानकषाय से और देहादिक से ममत्व नहीं है। ममत्व हो तो दुर्वचन सहे न जावें, यह न जानें कि इसने मुझे दुर्वचन कहे, इसलिए ममत्व के अभाव से दुर्वचन सहते हैं। अतः मुनि होकर किसी पर क्रोध नहीं करना यह उपदेश है। लौकिक में भी जो बड़े पुरुष हैं, वे दुर्वचन सुनकर क्रोध नहीं करते हैं, तब मुनि को सहना उचित ही है। जो क्रोध करते हैं, वे कहने के तपस्वी हैं, सच्चे तपस्वी नहीं हैं ॥१०७॥

गाथा-१०७ पर प्रवचन

आगे क्षमा का उपदेश करते हैं - आहाहा!

दुज्जणवयणचडक्कं णिट्ठुरकडुयं सहंति सप्पुरिसा ।

कम्ममलणासणट्ठं भावेण य णिम्ममा सवणा ॥१०७॥

अर्थ - सत्पुरुष मुनि हैं, ... सत्पुरुष। जिन्होंने सत्य का सेवन किया है। सत्य, वह परमेश्वर है। ऐसा सत्य भगवान आत्मा, ऐसे सत्य का सेवन करके जिसने सम्यग्दर्शनसहित चारित्र प्रगट किया है। सत्पुरुष है न? 'सत्पुरुषाः' आहाहा! कहते हैं कि ऐसी दशा देखकर वे दुर्जन के वचनरूप चपेट जो निष्ठुर (कठोर) दया रहित और कटुक (सुनते ही कानों को कड़े शूल समान लगे)... कठिन लगे। आहाहा! नग्न होकर, भ्रष्ट होकर घूमते हो। लज्जा नहीं आती, इस समाज में ऐसे घूमते हो? शान्ति रख। समझ में आया? उसमें है? इसमें नहीं होगा। यह हिन्दी में है।

दुर्जन के वचनरूप चपेट जो निष्ठुर (कठोर) दया रहित... आहाहा! महामुनि, आत्मध्यानी आनन्द में-आनन्द में मस्त होते हैं। उन्हें भी कोई ऐसा कहे, नगनों, लुच्चाओं ऐसी बस्ती में घूमते हो। जगत को विकार का कारण होता है। ऐसे पापी इसमें कहाँ पड़े हो? ऐसा बोले। रसिकभाई! बोलते हैं या नहीं? वह तो महामुनि आनन्द में, अतीन्द्रिय आनन्द में होते हैं। आहाहा! क्षमा रख, क्षमा रखा, भाई! सुन ... यह पूर्व के किसी कर्म का उदय हो तो ऐसा योग आवे। इससे कहीं बापू! तेरा दोष नहीं है। उस वाणी में से हमें कुछ दोष नहीं है। सुने, जाने, जानने ... जाने, क्षमा करे। आहाहा! जो आत्मा में अन्दर निगल गये हैं, अन्दर राग गल गया है। स्वरूप में स्थिर हैं। उन्हें देखकर कोई कठिन वचन कहे। कान में कड़ाशूल। कड़े शब्द से (आशय) कठोर। कड़े शब्द से (तात्पर्य) कठोर।

ऐसी चपेट है, ... चपेट मारे अन्दर, झपट मारे। उसको सहते हैं। किसलिए सहते हैं? कर्मों का नाश होने के लिये सहते हैं। 'कम्ममलणासणट्ठं' है न? तीसरा पद है। 'कर्ममलनाशनार्थ' समझाना हो तो ऐसा समझावे न! शान्त-शान्त। कहा था न

एक ? बौद्ध में कथा है। कोई ऐसा पुरुष होगा। होते हैं न लौकिक ? लौकिक है। यह तो धर्म की लोकोत्तर की बात है। सम्यग्दर्शनी जीव और मुनि चारित्र हो, उसकी बात है। यों ही सहन करे, वह नहीं। अज्ञानी ऐसा सहन करे, वह कहीं धर्मी नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? यह देश के लिये देखो न, यह लकड़ियाँ मारे तो सहन करते हैं न ? क्या कहलाते हैं ? शहीद हो गये। शहीद। उमराला में है न ? उसे कुछ... कुछ दिशा में जाते थे, तब कहते थे यहाँ ... हुआ। ... इस ओर मकान है। यह क्षमा नहीं कहलाती।

क्षमा तो आत्मा शान्त और आनन्द का धाम, उसका रसीला होकर स्वरूप में रमता है, जिसकी राग की क्रीड़ा छूट गयी है। समझ में आया ? आहाहा! चारित्र अर्थात् स्वरूप में रमना। राग का रमना—अस्थिरता जिसकी छूट गयी है, ऐसे मुनि को कोई कठोर-कठिन वचन कहे (तो) क्षमा करे। देव उन्हें पूजता हो, देव के वन्दनीक हों। उसे खबर हो कि यह देव मुझे मानता है, तथापि एक विकल्प नहीं उठाते। मेरी... तुझे क्या करूँ ? मेरा देव आयेगा तो तुझे ऐसा... अरे ! देव कौन सा ? भगवान ! मैं देव हूँ। क्षमा करनेवाला मैं देव हूँ। समझ में आया ? साक्षात् देव होवे तो आशा न रखे। किसका देव ? देव तो मैं स्वयं हूँ। देव दूसरा कौन सा था ? समझ में आया ? ऐसी तुम्हारी प्रतिष्ठा है। व्यन्तर तुम्हें मानता है और तुम्हारे आसपास घूमता है। क्या है घूमता है तो ? घूमने दे न उसे। उसका भक्ति का विकल्प हो तो घूमे। उसमें मुझे क्या ? मैं तो शान्ति रखूँ। वह भी ऐसी गाली तुमको ! ऐसी अर्थात् किसे ? वह तो ज्ञेय है। भाषा जड़ है। ... नहीं आता ? समयसार में नहीं आया ? निन्दा के स्तवन के वचन सुनकर, अरे ! मुनि ! तू राग और द्वेष क्या करता है ? वह तुझे कहाँ कहा है ? और वे शब्द ऐसा कहाँ कहते हैं कि तू मुझे सुनने मेरे सन्मुख लक्ष्य कर। कहते हैं ? वे शब्द ऐसा कहते हैं ? मुझे सुनने में रुक। और आत्मा अपना स्थान छोड़कर सुनने जाता है ? ... आता है न ? ... आहाहा !

जहाँ वीतरागभाव रेलमछेल होता हो, जहाँ आनन्द का रस, घूँट आनन्द की पी जाती हो। अतीन्द्रिय आनन्द। बापू ! भाई ! क्षमा है, हों ! आहाहा ! ऐसा मार्ग सन्तों का है। वीतराग मार्ग में तो यह है। देवों आदि को माननेवाले करोड़पति या चक्रवर्ती हों, उनकी हूंक में वह गाली देता हो, उसके सामने बतावे कि देखो ! मेरे माननेवाले ऐसे

हैं। वह माने कौन? मैं स्वयं ही भगवान हूँ। मेरी समता में किसी के आश्रय की अपेक्षा की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! देखो! यह मार्ग। यह वीतराग का मार्ग है। आहाहा! सम्यक् अनुभवसहित की बात, हों! आत्मा का भान नहीं और सहन करे, वह सहन नहीं है। वह तो कषाय की मन्दता है, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है, धर्म नहीं।

कहते हैं कि पहिले अशुभ कर्म बांधे थे, उसके निमित्त से दुर्जन ने कटुक वचन कहे, आपने सुने, उसको उपशम परिणाम से आप सहे... यह एक दृष्टान्त है। एक बहुत गालियाँ देने लगा। वह बैठा हुआ सुनता था। सुनता था। भाई अब मैं जाऊँ? ऐसा पूछा।

मुमुक्षु : पूरा किया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा किया, भाई! बहुत गालियाँ देने लगा। फिर खड़ा था। सुनता था। भाई! अब मैं जाऊँ? हो गया तुम्हारे? तुम्हारे हो, वह निकाल डालो। मुझे लेने की शक्ति नहीं है। मुझे लेने का कोई अरमान नहीं है। तुझे हो तो भले। अरे! यह क्या? ठीक भाई! भाई! तब अब मैं जाऊँ? हो गया? वह तो... किसकी निन्दा कौन करे? उसमें नहीं आता? **निन्दा...** योगीन्द्रदेव। 'कौन किसकी निन्दा करे...' योगसार। 'कौन किसकी निन्दा करे?' कौन निन्दा करे? भाई! मुझे तो यह जानता नहीं तो मेरी निन्दा किस प्रकार करे? इस शरीर को देखता है। तो शरीर तो जड़ है। वह कहीं मैं नहीं हूँ। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वीतरागी सन्तों की मस्ती के यह सब वाक्य हैं। शान्त... शान्त... शान्त... बापू! तू गाली देकर भी प्रसन्न हो न! मेरे प्रसन्न करने का साधन नहीं तो तू गाली देकर प्रसन्न हो। मेरे पास नाराज होने का कोई कारण नहीं है। आहाहा!

वे मुनि सत्पुरुष कैसे हैं? अपने भाव से वचनादिक से निर्ममत्व हैं,... वचन में भी निर्ममत्व। मेरे सामने इतना कहना, ऐसा भी नहीं। इतना कहता है या थोड़ा तो तू भाई ... यह कहने की वह वचन की मन्दता नहीं है, कहते हैं। आहाहा! नवनीतभाई! आहाहा! भाव से वचनादिक से निर्ममत्व हैं, वचन से तथा मानकषाय से और देहादिक से ममत्व नहीं है। वचन में ममता नहीं, इतना मुझे कहना। देह में ममता नहीं

कि इस देह में मारता है न इतना ? कौन किसे मारे ? जो पर्याय जड़ की होनी है, वह होती है। मैं तो उसका जाननेवाला हूँ। आहाहा! भावपाहुड़ है, देखो!

मानकषाय से और देहादिक से ममत्व नहीं है। ममत्व हो तो दुर्वचन सहे न जावें, ... सहे न जायें। सीधे सामने लावे। आहाहा! ऐई! इतना सब अमुक-अमुक कह जाए तो मैं याद रखना। कौन याद रखे ? सुन न अब। उसने इतना कहा। सुना... आहाहा! देखो! यह क्षमा का मार्ग। सम्यग्दर्शन सहित की बात है, हों! उसे ऐसी क्षमा होती है। अज्ञानी को नहीं होती। वहाँ वह तो चारित्र सहित। अतः मुनि होकर किसी पर क्रोध नहीं करना, यह उपदेश है। लो! क्या कहते हैं ? वे साधु कहे न ? तपस्वी, वह क्रोधी हो। ऐसा कहते हैं न ? क्या कहते हैं ? यह बहुत तपस्वी हो, वह क्रोधी हो, उसे बहुत नहीं बुलवाना। ऐसा सब कहाँ से मारा ? चीपीया खखडे। ... तपस्वी ऐसा नहीं होता। और ऐसे हों वे तपस्वी नहीं कहलाते। आहाहा!

लौकिक में भी जो बड़े पुरुष हैं, वे दुर्वचन सुनकर क्रोध नहीं करते हैं, ... महा बड़े पुरुष हों। साधारण मनुष्य है, उसे गिने ही नहीं। हाथी चला जा रहा हो और कुत्ता भौंकता हो तो गिनता होगा ? सामने देखता होगा पीछे ? लड़के हाथी को कंकण मारे, सामने नहीं देखता। कौन देखे ? हाथी तो अपनी मस्त चाल से चलता जाता है। इसी प्रकार धर्मी अपनी शान्ति के रास्ते—पन्थ में चलता जाता है। आहाहा! किसी पर क्रोध नहीं करते हैं, तब मुनि को सहना उचित ही है। जो क्रोध करते हैं, वे कहने के तपस्वी हैं, ... देखो! कहने के तपस्वी हैं। यह वर्षी तप करती हैं न महिलायें ? घर में वर्षीतप करे, इसलिए उसे अधिक नहीं बुलाते, हों! मुख से (भोजन ग्रहण का) अपवास है। अपवास है। अन्दर में कुछ नहीं, ऐसा। मुख से भोजन ग्रहण का अपवास है। ऐई! एक बार महिला बोलती थी, उसके लड़के को, मैंने सुना था। था वर्षीतप। अपवास करती थी। लड़के को कहे कि मुझे मुख से भोजन ग्रहण का अपवास है और तू यह किसलिए करता है ? ओय! कुछ खबर नहीं होती। मुख क्या और अपवास क्या ? लंघन करे। जो क्रोध करते हैं, वे कहने के तपस्वी हैं, सच्चे तपस्वी (मुनि) नहीं हैं। आहाहा! लो, अब क्षमा का फल कहेंगे। क्षमा का फल।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१०८

आगे क्षमा का फल कहते हैं -

पावं खवइ असेसं खमाए पडिमंडिओ य मुणिपवरो ।
खेयरअमरणराणं पसंसणीओ धुवं होइ ॥१०८॥

पापं क्षिपति अशेषं क्षमया परिमंडितः च मुनिप्रवरः ।
खेचरामरनराणां प्रशंसनीयः ध्रुवं भवति ॥१०८॥

मुनि-प्रवर परिमण्डित क्षमा से सभी कालुष क्षय करें।
वे अमर विद्याधर मनुज से प्रशंसित हों नियम से ॥१०८॥

अर्थ - जो मुनिप्रवर (मुनियों में श्रेष्ठ प्रधान) क्रोध के अभावरूप क्षमा से मण्डित है, वह मुनि समस्त पापों का क्षय करता है और विद्याधर देव मनुष्यों द्वारा प्रशंसा करनेयोग्य निश्चय से होता है।

भावार्थ - क्षमा गुण बड़ा प्रधान है, इससे सबके स्तुति करनेयोग्य पुरुष होता है। जो मुनि हैं, उनके उत्तम क्षमा होती है, वे तो सब मनुष्य देव विद्याधरों के स्तुतियोग्य होते ही हैं, और उनके सब पापों का क्षय होता ही है, इसलिए क्षमा करना योग्य है - ऐसा उपदेश है। क्रोधी सबके निन्दा करनेयोग्य होता है, इसलिए क्रोध का छोड़ना श्रेष्ठ है ॥१०८॥

प्रवचन-१३४, गाथा-१०८-१०९, रविवार, कार्तिक शुक्ल १०, दिनांक ०८-११-१९७०

भावपाहुड़ । १०८ गाथा ।

पावं खवइ असेसं खमाए पडिमंडिओ य मुणिपवरो ।
खेयरअमरणराणं पसंसणीओ धुवं होइ ॥१०८॥

मुनि को लक्ष्य कर मुख्य बात है। बाकी गौणरूप से समकिति और श्रावक इसमें आ जाते हैं।

अर्थ - जो मुनिप्रवर (मुनियों में श्रेष्ठ प्रधान) क्रोध के अभावरूप क्षमा से मण्डित है, वह मुनि समस्त पापों का क्षय करता है... अर्थात् क्या ? कि यह आत्मा, पहले तो आत्मा राग-विकल्प से रहित है। समझ में आया ? देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, वह भी एक विकल्प है, राग है। हो, परन्तु वह राग आत्मा के स्वरूप को प्राप्ति करने का कारण नहीं है। गजब बात ! आराध्य। वास्तव में तो देव-गुरु-शास्त्र वे पर हैं, वे व्यवहार से आराध्य हैं। निश्चय से आराध्य वे नहीं हैं। निश्चय से तो भगवान आत्मा वीतराग निर्विकल्प आनन्दमूर्ति का आराध्य करना अर्थात् उनका अनुभव करना, उसकी दृष्टि करना, वही पहला तो क्रोध का अभाव कहा जाता है।

जब तक उसे अन्दर राग की मन्दता, शुभराग का भी प्रेम रहता है, तब तक उसे स्वभाव का द्वेष है। समझ में आती है भाषा ? गुजराती चलती है। कल चल गया है। आ गया है। समझ में आया ? यह आत्मा अकषायस्वभावी वस्तु है। उसकी रुचि छोड़कर राग, शुभराग, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का, उसके प्रति भी यदि रुचि हो तो उसे स्वभाव के प्रति द्वेष है। प्रकाशदासजी ! भारी कठिन बात। भगवान आत्मा तो अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द का निर्विकल्प पदार्थ है। समझ में आया ? उसका प्रेम करके राग के प्रति जो प्रीति और रुचि है, उसका व्यय होने पर, स्वरूप की दृष्टि और अनुभव होने पर आत्मा के प्रति जो द्वेष था, वह क्रोध था। राग के प्रेम में स्वभाव के प्रति क्रोध था। समझ में आया ? सर्वज्ञ ऐसा कहते हैं कि हमारे प्रति की भक्ति, वह राग है। और यदि राग की रुचि है तो उसे आत्मा के प्रति द्वेष है। आहाहा ! राग-द्वेष की यह व्याख्या है। साधारण राग-द्वेष करे, वह चीज़ अस्थिरता, वह अलग बात है। समझ में आया ?

द्वेष अरोचक भाव। 'आनन्दघनजी' में यह आता है। 'द्वेष अरोचक भाव' आत्मा आनन्द वीतरागी विकल्परहित चीज़, उसके प्रति अरुचि, वही उसके प्रति द्वेष सूचित करता है। भारी कठिन बात। समझ में आया ? यहाँ क्रोध का अभाव कहा, इसलिए ऊपर जरा क्षमा करनी, इतना ही उसका अर्थ नहीं है। सम्यग्दर्शन के भानसहित क्षमा ज्ञाता-दृष्टारूप से करे, उसका नाम क्षमा कहा जाता है। समझ में आया ?

देखो ! क्रोध के अभावरूप क्षमा से मण्डित है, वह मुनि समस्त पापों का क्षय करता है... अर्थात् ? जहाँ भगवान आत्मा आराध्य होकर आराधा है। समझ में

आया? परमेश्वर ने कहा, मुनियों ने कहा कि भाई! मार्ग यह है। परन्तु इस मार्ग में उन्होंने ऐसा कहा कि तेरा आराधन कर, वह तेरी क्षमा है। तू तेरा आराधन कर अन्दर में दृष्टि और ज्ञाता रहकर। समझ में आया? भारी सूक्ष्म! एक महाव्रत के परिणाम या तीन लोक के नाथ तीर्थकर की शुभभाव से समवसरण में पूजा, मणिरत्न के दीपक, कल्पवृक्ष के फूल भगवान समवसरण में हों और ऐसे भक्ति का राग (आवे), कहते हैं कि वह राग है। परन्तु राग में रुचि है तो उसे आत्मा के आनन्द की अरुचि है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ यह कहते हैं मूल बात।

मुनिप्रवर (मुनियों में श्रेष्ठ प्रधान)... तुझे तो आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसका तुझे तो स्वाद-शान्ति का अनुभव हुआ है। राग से पृथक् होकर विकल्प जो है, सूक्ष्म में सूक्ष्म विकल्प गुण-गुणी का भेद, गुणी आत्मा और आनन्द उसका गुण—ऐसा भेद करना, वह भी एक विकल्प राग है। उस राग का भी प्रेम छूटकर भगवान आत्मा पूर्णानन्द अतीन्द्रिय आनन्द 'अप्पा सो परम अप्पा' वह आत्मा स्वयं ही परमात्मस्वरूप है। आहाहा! उसकी रुचि करके उसमें स्थिर होना, इसका नाम यहाँ क्षमा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे भान बिना आत्मा की तो दृष्टि है नहीं और राग में कुछ मन्द करे और क्षमा करे, वह क्षमा नहीं है। वह तो स्वभाव के प्रति द्वेष है और विकार के प्रति प्रेम है। जिसे विकार का प्रेम है, उसे विकार के अभाव की क्षमा कहाँ से होगी? समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, वह मुनि समस्त पापों का क्षय करता है... आत्मा अनाकुल आनन्दमूर्ति का जहाँ भान हुआ है, और उसमें यहाँ मुनि की बात है न? पश्चात् स्वरूप में, शान्ति में स्थिर होता है। उसे पाप के भाव आदि थे, उनका नाश होता है, उसे पाप का क्षय होता है। अज्ञानी को क्षमा करने से भी पाप का क्षय नहीं होता। समझ में आया? और विद्याधर-देव... यह इसके अन्दर पहला गुण बताया। आत्मा पूरी दुनिया का साक्षी है। व्यवहाररत्नत्रय का शुभ उपयोग, उसका वह साक्षी है। वह शुभराग का कर्ता नहीं। आहाहा! है। ऐसा भान होकर स्वरूप में स्थिर होता है, उसके पाप भिंद जाते हैं। यह तो उसका गुण वर्णन किया। परन्तु ऐसे जीवों को विद्याधर-देव-मनुष्यों द्वारा प्रशंसा करनेयोग्य निश्चय से होता है। उसे—ऐसे धर्मात्मा को विद्याधर

महालब्धिवाले, बाहर की ऋद्धिवाले देव, ऐसा कहते हैं। ऐसी जिसे ऋद्धि स्वभाव का भान और अनुभव स्थिरता प्रगट हुई है, उसे पाप का तो नाश होता है परन्तु उसे ऐसे बाह्य में विद्याधर, महा विद्याएँ जिन्हें प्रगट हुई हो, ऐसे भी उसकी—मुनि की प्रशंसा करते हैं। जिन्हें आत्मऋद्धि प्रगट हुई है। समझ में आया? सच्चिदानन्दस्वरूप सत्-चिद्-आनन्द ऐसा आत्मा सम्यक् में, अनुभव में भान होकर जहाँ प्रगट हुआ है, उसे आत्मऋद्धि प्रगट हुई है। ऐसी ऋद्धिवन्त को बाह्य ऋद्धिवाले भी जिनकी स्तुति करते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? चक्रवर्ती। देखो!

विद्याधर-देव-मनुष्यों... चक्रवर्ती आदि हो। यह हमारे छियानवें करोड़ सैनिक और छियानवें हजार स्त्रियों की ऋद्धि, यह नहीं। यह तो धूल पर है। वह धर्मात्मा, जिसे आनन्द की ऋद्धि प्रगट हुई है, सम्यग्दर्शन में आनन्द का स्वाद जिसे आया है, समझ में आता है? सम्यग्दर्शन, उसे कहते हैं कि जिसमें आत्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय का स्वाद आया है, स्वाद शब्द से अनुभव; उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव विकल्प से लेकर पूरी दुनिया की चीज़ का वह ज्ञाता-दृष्टा है। आहाहा! उसे वस्तु के स्वरूप में स्थिर होने पर जो शान्ति और क्षमा प्रगट होती है, उसके द्वारा पाप का नाश होता है। बाकी क्रियाकाण्ड करके मर जाए, पंच महाव्रत और यह और वह... समझ में आया? ऐई! शान्तिभाई! समझ में आया यह? यह भगवान की भक्ति कर-करके मर जाता है पूरे दिन, तो भी उसमें धर्म नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और महाव्रत पालकर ध्यान रखे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, वह तो सब विकल्प-राग हैं, पुण्य है; धर्म नहीं। समझ में आया? यह आत्मा शुद्ध आनन्द के भानवाला अन्तर में क्षमा से जगत की प्रतिकूलता को भी ज्ञाता-दृष्टारूप से जाने-देखे, उसे क्षमा कहा जाता है। समझ में आया? उसे ऐसे मनुष्य-देव-विद्याधर। देखो न! मनुष्य में विद्याधर लिये बड़ी लब्धिवाले। और मनुष्य में चक्रवर्ती आदि बड़े दूसरे। उन्हें प्रशंसा करनेयोग्य... है। उन्हें प्रशंसा करने के योग्य ऐसे मुनि हैं। समझ में आया?

भरत चक्रवर्ती और बाहुबली दोनों समकित्ती थे, तो भी युद्ध हुआ। वह क्रोध चारित्र दोष का क्रोध था। समझ में आया? अन्तर में तो उस क्रोध के विकल्प के ज्ञाता-दृष्टा थे। यह गजब बात। यहाँ तो तदुपरान्त की बात है कि जिसे वह चारित्रदोष का जो

क्रोध है, वह भी जिसने आत्मा के अवलम्बन का आश्रय लेकर टाल दिया है, उसे यहाँ मुनि कहा जाता है। समझ में आया ?

भावार्थ - क्षमा गुण बड़ा प्रधान है,... भावार्थ है न? क्षमा गुण बड़ा प्रधान है, ... मुख्य-प्रधान है। प्रधान अर्थात् मुख्य है। इस क्षमा की व्याख्या यह। समझ में आया? मुनि के दस प्रकार का धर्म है न, उत्तम क्षमा आदि? दस लक्षणी पर्व में आते हैं न दस। उत्तम क्षमा, वह उत्तम क्षमा समकृती को होती है। अज्ञानी को क्षमा नहीं होती। आहाहा! जिसे राग और बाह्य पदार्थ में सुखबुद्धि जिसकी है, उसे आत्मा के प्रति क्रोध है। उसे क्षमा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! जयन्तीभाई! चक्रवर्ती के राज, इन्द्र के राज, अरबों पैसे (रुपये), सुन्दर शरीर के प्रति जिसे प्रेम है अथवा उसमें सुखबुद्धि है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? अरे! दया, दान, व्रत, भक्ति का शुभभाव, उसमें भी जिसकी सुखबुद्धि-हितबुद्धि है, वह मिथ्यादृष्टि है। धर्मी को राग होता अवश्य है, तथापि उस राग में हितबुद्धि, सुखबुद्धि, धर्मबुद्धि नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी यहाँ क्षमा गिनने में आयी है।

क्षमा गुण बड़ा प्रधान है,... भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा होकर एकाग्र हो, उसका नाम क्षमा है। समझ में आया? इस देश के लिये मार खाता है, लड़ता है, मरता है, वह क्षमा नहीं। आता है न उसमें? लोक के लिये क्षमा, वह क्षमा नहीं है तथा बड़े पुरुषों के सामने यदि क्षमा न रखे तो वे मुझे निकाल डालेंगे अथवा मेरी पदवी छोड़ देंगे, ऐसा करके क्षमा करना, वह भी क्षमा नहीं है। मेरे कर्म का ऐसा उदय आया है, इसलिए यह प्रतिकूलता है, ऐसा सहारा लेकर क्षमा करे, वह भी वास्तविक क्षमा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वहाँ चार प्रकार की वर्णन की है। नियमसार में आता है न?

आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञान और शान्ति का भण्डार, निजनिधान परमात्मा के सन्मुख देखने से जो शान्ति होती है, उसके सन्मुख से जो शान्ति सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है, उसमें ज्ञाता-दृष्टापना सहजरूप से रहता है, उसे यहाँ क्षमा कहा जाता है। आहाहा! कहो, प्रकाशदासजी! यह क्षमा। आहाहा! बाहर से कहे... यह कहा न श्रीमद् ने? आपने कही, वह क्षमा हमने जानी नहीं। श्रीमद् में आता है। नहीं? हे भगवान! मैं भूल गया। ऐसा आता है न? दया, क्षमा। आपने कहे, वे पहिचाने नहीं। श्रीमद् में आता है।

आपने कहे, वे पहिचाने नहीं, दया, क्षमा किसे कहना ? आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं, इससे सबके स्तुति करनेयोग्य पुरुष होता है। यहाँ तो व्यवहार से बात की है परन्तु स्वयं स्तुति स्वयं अपनी करता है। आहाहा ! आनन्दमूर्ति के अनन्त गुण की स्तुति करता है अर्थात् कि एकाग्र होता है। वह स्वस्तुति है और परस्तुति करे, वह तो उसे विकल्प होता है। उसे वह मूल चीज़ नहीं है। भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, वह स्वयं ही उसके अनन्त गुण में एकाग्र हो, उसका नाम स्तुति कहा जाता है।

समयसार की ३१वीं गाथा में नहीं आया ? 'जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावधियं मुणदि आदं'। भगवान केवलज्ञानी परमात्मा की स्तुति किसे कहना ? केवलज्ञानी परमात्मा की स्तुति किसे कहना ?—ऐसा शिष्य का प्रश्न है। किसे कहते हैं, समझे ? किसको कहना। ऐसा प्रश्न शिष्य ने किया। उत्तर में यह कहा कि अनीन्द्रिय भगवान आत्मा में एकाग्र होना और पाँच इन्द्रिय, उसके विषय और खण्ड-खण्ड भावेन्द्रिय, इनका आश्रय छोड़ना, इनकी रुचि छोड़ना। आहाहा ! गजब बात है। तीर्थंकर की वाणी की भी रुचि छोड़ना, कहते हैं। यह विषय में जाता है, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है। समझ में आया ? वह इन्द्रिय में जाती है। सर्वज्ञ की वाणी—दिव्यध्वनि भी इन्द्रिय के विषय में जाती है। क्योंकि उसके ऊपर लक्ष्य करने से शुभराग होता है। वहाँ कुछ धर्म नहीं होता। आहाहा ! वाणी से धर्म नहीं होता। गजब बात है। वाणी तो परद्रव्य है। जिनवाणी भी परद्रव्य है। जिन स्वयं परद्रव्य हैं, इस आत्मा की अपेक्षा से। आहाहा ! उनका आश्रय करने से कहीं सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन तो स्वस्वरूप है, उसका आश्रय करने से होता है। बराबर है ? यह सब उल्टा कब तक सीखा ?

मुमुक्षु : अनादि से चला आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक कहते हैं। बात सच्ची। अनादि से चला आता है। आहाहा !

भगवान निर्विकल्प आनन्द की मूर्ति, जिसमें पंच महाव्रत के विकल्प की भी जहाँ गन्ध नहीं। भगवान के प्रति बहुमान की विनय की वृत्ति उठे, वह भी जिसमें गन्ध नहीं। बलुभाई ! भारी कठिन काम। वे लोग कहे, बस ! अपने आगम और मूर्ति दो

आधार पंचम काल में। कहते हैं न तुम्हारे ? ' भविजन को आधार ' आगम अर्थात् यह वाणी भगवान की और मूर्ति अर्थात्... ऐई! मानवजी ! यह आधार है। यहाँ कहते हैं कि यह पर का आधार, वह राग है। सुन न!

भगवान आत्मा अखण्डानन्द पूर्णानन्द प्रभु शुद्ध आनन्दकन्द का आधार (ले), उसे धर्म होता है। आहाहा! समझ में आया ? हो, बीच में शुभराग आवे, परन्तु वह राग वह कहीं आत्मा का कल्याण करनेवाला है अथवा कल्याण को मददगार है, ऐसा नहीं है। विवाद यह उठा न। अन्दर आवे तो सही राग। पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक भगवान की भक्ति, वाणी का बहुमान आदि राग आता है। आता है, होता है। क्योंकि पूर्ण वीतराग नहीं, इसलिए ऐसा आये बिना रहता नहीं। परन्तु आता है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। स्वभाव की शोधनदशा में वह मददगार नहीं है। समझ में आया ? कहो, हिम्मतभाई! बहुत आवे परन्तु। फिर वापस मूर्ति और मन्दिर बनाना। अब वह तो उसके कारण से होते हैं। करे कौन ? उसका शुभभाव हो पुण्य का। बस इतना। परन्तु उससे वह शुभभाव आत्मा के स्वभाव को मदद करे... ऐई! शान्तिभाई! ऐसा है नहीं। जिसे व्यवहार कहते हैं बीच में एक दखल आती है। समझ में आया ? आहाहा!

जो मुनि हैं, उनके उत्तम क्षमा होती है, वे तो सब मनुष्य-देव-विद्याधरों के स्तुतियोग्य होते ही हैं, और उनके सब पापों का क्षय होता ही है,... भगवान ध्रुव तो निश्चय है। इसलिए क्षमा करना योग्य है - ऐसा उपदेश है। क्रोधी सबके निन्दा करनेयोग्य होता है, इसलिए क्रोध का छोड़ना श्रेष्ठ है। करनेयोग्य निश्चय से होता है। अन्तिम शब्द था न अर्थ में ? यह ध्रुव का अर्थ है। करनेयोग्य... निश्चय किया। यह ध्रुवपद। वास्तव में। है वह लेंगे वहाँ। यह यहाँ कहा। प्रशंसनीय ध्रुव होता है। निश्चय से होता है, वास्तव में होता है। अपना आत्मा भी अपने प्रशंसनीय है और दुनिया भी उसकी प्रशंसा करती है। ऐसा होता है।

गाथा-१०९

आगे ऐसे क्षमागुण को जानकर क्षमा करना और क्रोध छोड़ना ऐसा कहते हैं -

इय णाऊण ख्रमागुण ख्रमेहि तिविहेण सयल जीवाणं ।

चिरसंचियकोहसिहिं वरखमसलिलेण सिंचेह ॥१०९॥

इति ज्ञात्वा क्षमागुण! क्षमस्व त्रिविधेन सकलजीवान् ।

चिरसंचितक्रोधशिखिनं वरक्षमासलिलेन सिंच ॥१०९॥

इससे क्षमा गुणधर! क्षमा कर सभी जीवों को त्रिविध।

चिर संचिता क्रोधाग्नि को वर क्षमा जल से सींच कर ॥१०९॥

अर्थ - हे क्षमागुण मुने! (जिसके क्षमागुण है ऐसे मुनि का सम्बोधन है) इति अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार क्षमागुण को जान और सब जीवों को पर मन वचन काय से क्षमा कर तथा बहुत काल से संचित क्रोधरूपी अग्नि को क्षमारूप जल से सींच अर्थात् शमन कर ।

भावार्थ - क्रोधरूपी अग्नि पुरुष के भले, गुणों को दग्ध करनेवाली है और परजीवों का घात करनेवाली है इसलिए इसको क्षमारूप जल से बुझाना, अन्य प्रकार यह बुझती नहीं है और क्षमा गुण सब गुणों में प्रधान है। इसलिए यह उपदेश है कि क्रोध को छोड़कर क्षमा ग्रहण करना ॥१०९॥

गाथा-१०९ पर प्रवचन

आगे ऐसे क्षमागुण को जानकर... देखो! क्षमागुण को जानकर, ऐसा कहते हैं। क्षमा करना और क्रोध छोड़ना, ऐसा कहते हैं - देखो!

इय णाऊण ख्रमागुण ख्रमेहि तिविहेण सयल जीवाणं ।

चिरसंचियकोहसिहिं वरखमसलिलेण सिंचेह ॥१०९॥

१०९। 'इय णाऊण' में वजन है। यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का इतना पाठ

है। यहाँ तो ऐसा कहा कि, हे क्षमागुण मुने! सम्बोधन किया। 'खमागुण खमेहि' हे क्षमागुणवाले! ऐसा। आहाहा! हे क्षमागुण मुने! श्लोक है या नहीं? ऐई! प्रकाशदासजी! श्लोक है? या कहाँ-कहाँ भटकते हो? १०९ श्लोक। पुस्तक में अन्तर है। ... गाथा है न गाथा, हाथ आवे न? 'णाऊण खमागुण' है? इन्हें हाथ नहीं आयी। यह गाथा दिखती है न। अर्थ भले न हो। गाथा ... पहली गाथा वाँचन हो गयी, उसके पहले की। अब यहाँ हे क्षमागुण मुने! बस। क्षमागुण मुनि। क्षमावाले ही सन्त हैं। आनन्द के भान में क्षमा और शान्ति रखनेवाले। जिन्हें पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, वह भी जिन्हें दुःखदायक लगता है। जिन्हें परमात्मा के प्रति शुभ उपयोग भक्ति आदि स्तुति का आता है। स्तुति का आवे, वह भी राग, कषाय अग्नि दिखती है उन्हें। समझ में आया? ऐई! शान्तिभाई! गजब मार्ग ऐसा। शान्ति का दूसरा मार्ग है, यह तो कहते हैं। आहाहा!

देखो! हे क्षमागुण मुने! ऐसी भाषा प्रयोग की है न? अर्थात् जो कुछ राग आता है, यह उसका नहीं। अन्दर राग, शुभराग (आवे), वह उसका नहीं। वह तो क्षमागुण मुनि है। वीतरागभाव से परिणमित है। आनन्द के कन्द में झूलते हैं। समझ में आया? प्रत्यक्ष स्वसंवेदन। जिसे आनन्द का स्व-अपना वेदन आनन्द का उग्र है। अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन उग्र है। उसे ऐसा नहीं कहा कि हे भक्तिवाले! भगवान की भक्तिवाले, पंच महाव्रतवाले—ऐसा नहीं कहा। क्योंकि पंच महाव्रत और भक्ति के रागवाला वह आत्मा है ही नहीं। समझ में आया? यह विशेषण किया है न? क्षमागुण। बराबर है। 'णाऊण खमागुण' पाठ ऐसा है न?

(जिसके क्षमागुण है, ऐसे मुनि का सम्बोधन है)... आहाहा! क्या कहते हैं? कि मुनि धर्मात्मा उसे कहते हैं कि जो अन्दर राग है न विकल्प? वह मेरा है, ऐसा स्वामीपना टल गया है उसे। राग का स्वामी धर्मी नहीं है। आहाहा! देखो! कैसी बात की है। जो कोई इस आत्मा को, इस शुभराग और कर्म अजीवसहित मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। यहाँ तो क्षमागुण मुनि ऐसा कहा है। रागवाला और व्यवहारवाला, ऐसा नहीं कहा। समझ में आया? स्वरूप आत्मा का सच्चिदानन्द प्रभु, उसकी दृष्टि निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, स्वसंवेदन आत्मा का ज्ञान और आत्मा में लीनता, वह क्षमागुण मुनि। यह पंच महाव्रत का विकल्प या शास्त्र लिखने का भाव या दूसरे को समझाने का भाव, वह

राग है। हे रागवाले मुनि! ऐसा नहीं कहा। राग उसे होता नहीं। समकृति को राग होता नहीं न। होता नहीं अर्थात् कि राग उसे पर्याय में, उसका राग मानता नहीं। राग पर है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि भी राग से मुक्त है। आहाहा! राग से मैं बन्धन में हूँ, ऐसी मान्यता तो मिथ्यादृष्टि की है ... भाई! समझ में आया? यह वापस दुकान में जुड़ जाएगा, इसलिए पूरे दिन फिर हा... हो... होगी। यह अब कभी सुनने का मिले, उसमें टिके कहाँ अन्दर? आहाहा! अरे! इसने आत्मा का वास्तविक स्वरूप क्या है, इसकी दृष्टि अनन्त काल में की नहीं। समझ में आया?

देखो! यहाँ तो एक इस सम्बोधन में ऐसा आया कि वह कहीं रागवाला आत्मा है, ऐसा नहीं मानता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मुनि को व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प होता है—ऐसा कहना, वह व्यवहार है। उसे होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह वस्तु ऐसी है। आहाहा! ज्ञान के स्वभाव में जिसकी अन्तर में ... एकाग्रता वर्तती है। बस, वह मुनि। इतनी मुनिदशा। उन्हें रागादि आवे, वह उनका नहीं और वह मुनिपने का साधन भी नहीं। उनका नहीं तो उन्हें साधन कैसे होगा? आहाहा! बात भारी कठिन। समझ में आया? लोगों को ऐसा लगता है कि यह तो इसमें अकेला निश्चय है। व्यवहार का लोप (हो जाता है)। व्यवहार है, ऐसा आवे वह माननेवाला ही मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार हो भले परन्तु वह मेरा है, (यह) मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? अबद्धस्पृष्ट भगवान आत्मा है। कर्म और राग से बँधा हुआ नहीं, उसे आत्मा कहते हैं। बँधा हुआ है, ऐसा मानता है, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! गजब बात, भाई! यह किसमें से निकलता है? हे क्षमागुण मुने! इतने में से यह आता है।

क्षमागुणवाला वह स्वयं ज्ञान-दर्शन-आनन्द की दृष्टि, ज्ञान और रमणता बस। इतना वह आत्मा। उसे मुनि कहकर बुलाया है। बीच में जो रागादि आते हैं, वे तो परज्ञेय हैं। समझ में आया? वह स्वज्ञेय में नहीं मिलते। आहाहा! वीतराग का मार्ग, वीतराग अर्थात् आत्मा। स्वयं ही वीतराग भगवान आत्मा है। उसका मार्ग तो अन्तर के आश्रय से प्रगट होता है। पराश्रय का भाव है, वह उसका है ही नहीं। समझ में आया? यहाँ तो एक ही पकड़ कि जितना अपने पराश्रय भाव—महाव्रत, भक्ति, पूजा, दान, दया (करते हैं), बस! उससे अपने को कल्याण होगा।

मुमुक्षु : अकल्याण से कल्याण कैसे होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अकल्याण से कल्याण मान लेता है। आहाहा! क्या हो? लुटाया है न यह? लुटाया है और लाभ मानता है! चोर आकर लूट जाए, पाँच-पचास हजार रुपये। भार गया ले न, ऐसा कहकर... पोपटभाई! आहाहा!

यहाँ तो इतना हे क्षमागुण मुने! बस। (जिसके क्षमागुण है, ऐसे मुनि का सम्बोधन है)... अर्थात् कि उसे तो ज्ञाता-दृष्टा की स्थिरता, वह मुनिपना है, वह आत्मा है। उसे क्षमागुण प्रधान मुनि कहा गया है। उसे जरा विकल्प उठता है, वह कहीं इसका नहीं है, इसमें नहीं है। राग में आत्मा नहीं, आत्मा में राग नहीं। शुभराग भी आत्मा में नहीं और शुभराग में आत्मा नहीं। मानो शुभराग भी अनात्मा है। आस्रव है न? आस्रव अर्थात् अनात्मा है। चाहे तो पुण्यभाव हो। आहाहा! वाह! 'इय णारुण खमागुण' ऐसा क्षमागुण होता है, ऐसा जानकर।

शुद्ध स्वरूप भगवान आत्मा का निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान, विकल्प की अपेक्षा बिना का और स्वरूप में शान्तिरूपी क्षमा, उसे कहा—हे क्षमागुण मुनि! वाह! समझ में आया? (जिसके क्षमागुण है, ऐसे मुनि का सम्बोधन है) इति अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार क्षमागुण को जान... देखो! क्षमागुण को जान... इसका नाम क्षमा है, ऐसा जान। राग की एकत्वबुद्धि है, सूक्ष्म विकल्प है, उसके साथ एकत्वबुद्धि है, उसे क्षमा नहीं होती। क्योंकि वह तो कषायसहित हूँ तो कषायसहित ही माना है। कषायरहित ही हूँ, ऐसा जिसे अन्दर में भान नहीं, उसे क्षमा कहाँ से आयी? कहते हैं। समझ में आया? गजब बात, भाई! ऐसा लगे कि यह तो कोई मार्ग कैसा होगा? यह तो कहे, उत्कृष्ट केवली की बात है। केवली की नहीं, केवली होने की बात है। पहली चोट में सम्यग्दृष्टि। जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, उस भाव को भी अचेतन मानता है। भाव, हों! वह मेरे चैतन्य की जाति का भाव नहीं है। आहाहा! बन्ध पड़े, वह तो प्रकृति और अचेतन-जड़ है। परन्तु वह तीर्थकरपने का बन्धन का जो भाव है, वह अपराध है, वह अचेतन है। षोडशकारण भावना अपराध। अरे! परन्तु अपराध बिना बन्ध किसका? बन्ध पड़े, वही अपराध का कारण है। भगवान निरपराधी तत्त्व में बन्ध किसका? समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : षोडशभावना। दर्शनविशुद्धि आदि तीर्थकरगोत्र बँधता है न ? सोलह बोल है। स्थानकवासी में बीस आते हैं। इसे याद नहीं होगा। श्वेताम्बर में बीस बोल आते हैं। ज्ञातासूत्र (में आते हैं)। मल्लिनाथ अधिकार है, उसमें बीस बोल आते हैं। दिग्म्बर में सोलह आते हैं। और मूल तत्त्वार्थसूत्र में भी सोलह हैं। सोलह बोलते हैं। षोडशभावना आती है न ? पूजा में नहीं ? दर्शनविशुद्धि भावना भाये, षोडश तीर्थकर पद पाये, परमगुरु होय-आती है न स्तुति ? परन्तु वह तो राग है, सुन न ! तू प्रसन्न किसका होता है ? ऐसा कहते हैं। आहाहा ! राग तो दोष है। वह तो अग्नि है, कषाय अग्नि है। आहाहा ! समझ में आया ? क्षमा... क्षमा। ज्ञान और आनन्द के अनुभव में, जो ज्ञान की शान्ति और रागरहित स्थिरता प्रगट होती है, उसे यहाँ क्षमा कहा जाता है। कहो, समझ में आया ? साधारण जनता को तो ऐसा लगता है कि यह तो पूरे व्यवहार का लोप हो गया। परन्तु सब उस भक्ति में बहुत चिपटे होते हैं न ? उसे कहते हैं कि ऐ ! भक्ति का भाव, वह धर्म नहीं। तब कहे, अधर्म है। हाय.. हाय ! धर्म नहीं ? राग है न ? आवे भले। होवे तो पंच महाव्रत के परिणाम भी मुनि को होते हैं। परन्तु मुनि को होते हैं, ऐसा कहना वह व्यवहार है। मुनि को राग ही नहीं। वह तो रागरहित दृष्टि बिना की रमणता, उसे मुनि कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? कहाँ के कहाँ लगे, चिपटे न सिर पर... इसमें धर्म होगा। हमारे धर्म होगा। धर्म की ना करते हैं। ऐई ! यह तो एकान्त है। सुन न अब ! एकान्त है।

मुमुक्षु : एकान्त है अर्थात् निश्चय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय है। है न निश्चय। एकान्त एक अन्त धर्म निश्चय, ऐसा। दूसरा व्यवहार नहीं। समझ में आया ? मगनभाई ! ऐसा मार्ग है। बहुत कठिन लगता है। यह तो दुनिया से निराला मार्ग है। सम्प्रदायवालों को भी अन्दर कठिन लगता है। परन्तु मार्ग तो यह है। इस मार्ग की इस बात की अभी श्रद्धा भी न करे, उसका ठिकाना समकित का कहाँ आया ? श्रद्धा में भी ऐसा नहीं लेता कि राग चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो। दोनों बन्ध का कारण है। धर्म नहीं और धर्म का कारण भी नहीं।

आहाहा! अभी ऐसी श्रद्धा का ठिकाना नहीं, उसे सम्यग्दर्शन और चारित्र-फारित्र आवे कहाँ से? समझ में आया?

मुमुक्षु : धर्म और धर्म का कारण भी नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। अधर्म है।

कहा था न एक बार। सम्प्रदाय में कहा था एक बार। सम्प्रदाय में थे न उसमें? (संवत्) १९८५ की बात है। ४१ वर्ष हुए। ४० और १। बोटद में थे न सम्प्रदाय में? स्थानकवासी में। बड़ी सभा थी। सभा में तो बहुत आते थे न! सम्प्रदायवालों को हमारे ऊपर बहुत प्रेम था न? बहुत बड़ी सभा थी। १९८५ का पौष महीना था। पौष मास। यह कार्तिक है। बात ऐसी आयी कि जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भाव धर्म नहीं और पाँच महाव्रत के परिणाम, वे धर्म नहीं; आस्रव हैं। ८५ में सम्प्रदाय में कहा था। समझ में आया? बोटद में बड़ी सभा-बड़ी सभा। हमारी मान्यता बहुत थी न? हजार-पन्द्रह सौ लोग आवे। कानजी मुनि बैठे हैं। इतनी प्रतिष्ठा थी न लोक में। ऐसा जहाँ कहा, वहाँ एक साधु था, वह भड़क गया। सभा तो कुछ बोले नहीं। हमारे ऊपर विश्वास।

जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भाव धर्म नहीं। धर्म से बन्धन नहीं और बन्धन का भाव धर्म नहीं। पंच महाव्रत के परिणाम, वह बन्धन का कारण आस्रव है। वह धर्म नहीं और धर्म का कारण नहीं। एक साधु बैठे थे। वोसरे-वोसरे (बोलने लगे)। वोसरे-वोसरे अर्थात् कि यह छोड़ता हूँ... यह छोड़ता हूँ... छोड़ता हूँ। यह हमें सुनना नहीं। अपने वोसरे-वोसरे ... यह बात स्थानकवासी में बहुत है न? 'अप्पाणं वोसरे।' आता है तस्सूतरी में? ऐई! जयन्तीभाई! भागे, उठ गये। परन्तु उसका कौन सुने। मैंने कहा, किसलिए उठ गये तुम? बैठना था न? न मानना था। तुम्हारी किसी को खबर है, इस सभा को (कि) यह तुमने क्या कहा? सभा को खबर है तुम्हारी भाषा की? तुमने वोसरे-वोसरे कहा था। हमें नहीं चाहिए... नहीं चाहिए। कौन सुनता है तुम्हारा? मुँहपत्ती लेकर यहाँ बैठे हैं, तब तक लोग अनादर कौन करे? अनादर नहीं। लोगों की प्रतिष्ठा ही थी ऐसी। बोले नहीं। बड़ी सभा भरे। रायचन्द गाँधी आदि बड़े-बड़े लाखोंपति (बैठे थे)। यह बात है, कहा। जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधता है, जिस भाव में पंच महाव्रत के विकल्प राग पंच महाव्रत स्वयं राग विकल्प है। धर्म नहीं और

धर्म का कारण नहीं। समझ में आया ? सुजानमलजी ! यह मगनभाई मास्टर कहे, मारने उठे। सादड़ी-बादड़ी में जाए... सादड़ी उठे, सादड़ी। आहाहा ! अरे ! भगवान !

मुमुक्षु : दिगम्बर...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दिगम्बर की कहाँ ? यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। यह दिगम्बर सम्प्रदाय होने की सम्प्रदाय की बात ही कहाँ है ? वस्तु ही ऐसी है।

मुमुक्षु : क्षमा वीरस्य भूषणं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु ऐसी क्षमा। जहाँ एक विकल्प का भी स्वामी नहीं, विकल्प मेरा नहीं, विकल्प में मैं नहीं। ऐसी जहाँ दृष्टि क्षमा की हुई है, उसे जो स्थिरता की शान्ति बढ़े, उसे क्षमा कहा जाता है। बाकी सब क्रोध के पुतले हैं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा ! राग की मन्दता, ऐसी क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति (करे)... आहाहा ! वे सब क्रोध के पुतले हैं, कहते हैं। ऐई ! प्रकाशदासजी ! आत्मा राग, विकल्परहित का जहाँ आदर नहीं, अन्दर में भान नहीं। सच्चिदानन्द प्रभु एक समय में परमात्मा स्वयं साक्षात् प्रभु स्वयं है। उसका प्रभु कोई दूसरा नहीं है। समझ में आया ? ऐसी जिसकी दृष्टि नहीं। वह तो क्रोधी-क्रोधी है।

मुमुक्षु : आत्मा के प्रति द्वेष।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्वेष ही है। अरुचि कहा न ? 'द्वेष अरोचकभाव...' आनन्दघनजी ने कहा है, लो ! श्वेताम्बर में। आत्मा आनन्दमूर्ति निर्विकल्प वीतरागमूर्ति जिसे रुचती नहीं, उसे आत्मा के प्रति द्वेष—क्रोध है। कहो, समझ में आया ?

क्षमागुण को जान... ऐसा शब्द है न ? जानो क्षमागुण पहला। आत्मा राग और विकल्परहित चीज़ है, उसे जानो। ऐसी क्षमा कहलाती है। और सब जीवों को पर मन-वचन-काय से क्षमा कर... यहाँ तो मुनि की मुख्य (बात) है न ? एकेन्द्रिय प्राणी। एक दाना जो हरितकाय का दाना, उसे भी दुःख देने का भाव नहीं और उसे न मारने का भाव जो विकल्प, वह भी जिसे नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? सर्व जीव अर्थात् एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय। पृथ्वीकाय, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति, वे सब एकेन्द्रिय जीव हैं। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु असंख्य जीव हैं। वनस्पति अनन्त जीव हैं। अनन्त

जीव हैं। वनस्पति आलू, शकरकन्द, बटाटा। बटाटा समझते हो न? आलू। उसके एक टुकड़े में असंख्य शरीर हैं और एक शरीर में अनन्त जीव हैं। आहाहा! उसमें कोई एकेन्द्रिय प्राणी के प्रति मारने का तो भाव नहीं परन्तु उसे जिलाने का अर्थात् नहीं मारने का विकल्प, वह भी जिसे नहीं। नहीं मारने का विकल्प, वह भी पुण्य है। मारने का विकल्प, वह पाप है। समझ में आया?

सब जीवों को पर मन-वचन-काय से क्षमा कर... आहाहा! एक तो जैनदर्शन बिना अनन्त जीव हैं, ऐसा कोई माने नहीं। इसलिए सर्व जीव लिये हैं। समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो छह काय के अनन्त जीव कहे, ऐसा सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं है नहीं। इसलिए कहते हैं, इतने सब अनन्त जीव, उनका ज्ञान उसकी पर्याय में आता है कि यह है इतना, परन्तु उन्हें मारने, न मारने के विकल्परहित दशा को यहाँ सर्व जीव की दया मन-वचन-काया से की है, ऐसा कहा जाता है। **मन-वचन-काय से क्षमा कर...**

तथा बहुत काल से संचित क्रोधरूपी अग्नि को... भगवान आत्मा को जलाने की जो क्रोधरूप अग्नि, उसे क्षमारूप जल से सींच... अन्तर के ज्ञाता-दृष्टा के भाव से उसे बुझा। आहाहा! समझ में आया? क्रोधरूपी अग्नि—स्वभाव से विपरीत भाव, उसे अपना मानकर जो क्रोध अर्थात् कषाय से जल-सुलग रहा है, उसे क्षमारूप जल, स्वरूप के आनन्द में रमने से शान्ति की दशा जो प्रगट होती है, उसके द्वारा क्रोध को बुझा। क्रोध को बुझा। बुझा-बुझा। ओलवे समझे? क्या कहते हैं? ठार। हिन्दी में क्या कहते हैं? बुझा। इस जल से अग्नि बुझा। क्या कहते हैं? सुजानमलजी!

मुमुक्षु : ठण्डा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठण्डा, वह तो पानी हुआ। बुझा कहते हैं न? यहाँ लिखा है न? बुझा। उसमें शब्द है न। यह हिन्दी है। बुझा हिन्दी शब्द है। क्रोधरूपी कषाय की अग्नि को आत्मा के ज्ञाता-दृष्टा के आनन्द से उसे बुझा। आहाहा! यह तो वीरों का काम है। कायर का काम नहीं यह। कायर धूज उठते हैं। समझ में आया? ... यह शब्द व्याख्यान में बहुत कहते। व्याख्यान में आता था। बहुत आता। वीरों का मार्ग महा दुष्कर पुरुषार्थ से प्राप्त होता है। ... वीर जिस रास्ते चढ़े, उससे वापिस गिरते नहीं।

अफरगामी हैं। जहाँ चढ़े, वहाँ चढ़े। क्षत्रिय का तेज जहाँ चढ़ा, वह चढ़ा, वह वापस गिरता नहीं। समझ में आया ?

क्रोधरूपी अग्नि... लो! क्रोधरूप अग्नि कहा, देखो! पुण्य और पाप दोनों अग्नि हैं। बराबर होगा? शुभ और अशुभभाव दोनों अग्नि। ऐई! शान्तिभाई! भगवान की भक्ति और देव-गुरु की भक्ति का भाव, वह अग्नि है—ऐसा कहते हैं। अर..र..!

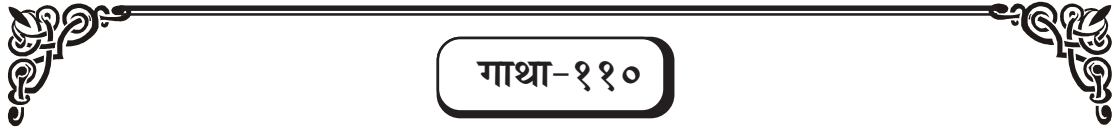
मुमुक्षु : उसे तो बुझाने को कहा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे बुझाने को कहा है। परन्तु उसको अग्नि कहे, वहाँ चिल्लाहट मचाये। देखो! यहाँ कहा...

भावार्थ - क्रोधरूपी अग्नि पुरुष के भले, गुणों को दग्ध करनेवाली है... शान्त अकषायस्वरूप अकषायस्वभाव भगवान में कषाय का कण वह अकषायभाव की पर्याय को जलाता है। गुण तो है, वह है। और परजीवों का घात करनेवाली है... आगे जाकर वह क्रिया में भी उतर जाती है। अपना घात तो करे परन्तु पर का घात करने का भाव... इसलिए इसको क्षमारूप जल से बुझाना,... लो! यह क्षमा भी अन्दर आत्मा को राग से भिन्न जानकर शान्ति में अन्तर रगड़ता रहना, इसका नाम क्षमा। यह क्षमा करे न मुझे। अपने क्रोध नहीं करना भाई, हों! वह सब शुभभाव है, बन्ध का कारण है। आनन्द की क्षमा। आत्मा का माहात्म्य लाकर अन्दर में स्थिर होकर क्षमा प्रगट करे, उसे क्षमा कहा जाता है। आहाहा! अभी धर्म की रीति क्या है, इसकी खबर न हो और धर्म हो जाए, (ऐसा नहीं होता)। जिन्दगी गयी ऐसी की ऐसी, कहते हैं। आहाहा!

बुझती नहीं है और क्षमा गुण सब गुणों में प्रधान है। लो! 'वरखमसलिलेण' 'वरखम' है न? अर्थात्। प्रधान क्षमा है न पाठ में। 'वरखम' है न। प्रधान क्षमा 'सलिलेण सिंचेह' शान्ति... शान्ति... शान्ति... अकषायरूपी शान्ति। उसके द्वारा कषाय को बुझा। शान्त कर। उत्पन्न हो नहीं। बुझाओ का अर्थ यह कहा। कषाय अग्नि है, उसे बुझा। स्वभाव सन्मुख स्थिर होता है तो कषाय अग्नि उत्पन्न नहीं होती। उत्पन्न नहीं होती, उसे बुझावे—ऐसा कहा जाता है। यह राग है, उसे बुझाऊँ। इसे क्या करे? अकषाय स्वभाव सन्मुख ढलने से शान्ति में आने से कषाय की उत्पत्ति नहीं होती, उसने कषाय को उपशमित किया, बुझाया—ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ?

इसलिए यह उपदेश है कि क्रोध को छोड़कर क्षमा ग्रहण करना। लो! क्रोध को छोड़कर क्षमागुण प्रधान करना। लो! अब विशेष भावना के लिये आगे बहुत सरस गाथा लेंगे। ऐसा कि दीक्षा ली हो, तब तेरा समकित सहित वैराग्य था और रोग के समय जब तुझे वैराग्य हो कि आहाहा! ऐसे रोग में और कोई दरिद्रपने की निर्धनता के महाप्रतिकूल उस समय तुझे वैराग्य हो, वैसा वैराग्य रख ... ऐसा कहते हैं। यह गाथा कहेंगे....
(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



गाथा-११०

आगे दीक्षाकालादिक की भावना का उपदेश करते हैं -

दिक्खाकालाईयं भावहि अवियारदंसणविसुद्धो ।

उत्तमबोहिणिमित्तं असारसाराणि मुणिरुण ॥११०॥

दीक्षाकालादिकं भावय अविकारदर्शनविसुद्धः ।

उत्तमबोधिनिमित्तं असारसाराणि ज्ञात्वा ॥११०॥

सुविसुद्ध पावन समकित्ती वर बोधि हेतु जानकर।

संसार सार-रहित सुदीक्षा काल वाले भाव कर ॥११०॥

अर्थ - हे मुने ! तू संसार को असार जानकर उत्तमबोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति के निमित्त अविकार अर्थात् अतिचाररहित निर्मल सम्यग्दर्शनसहित होकर दीक्षाकाल आदिक की भावना कर।

भावार्थ - दीक्षा लेते हैं तब संसार (शरीर) भोग को (विशेषतया) असार जानकर अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न होता है वैसे ही उसके आदिशब्द से रोगोत्पत्ति, मरणकालादिक जानना। उस समय में जैसे भाव हों वैसे ही संसार को असार जानकर विसुद्ध सम्यग्दर्शन सहित होकर उत्तम बोधि जिससे केवलज्ञान उत्पन्न होता है उसके लिए दीक्षाकालादिक की निरन्तर भावना करना योग्य है, ऐसा उपदेश है ॥११०॥

(निरन्तर स्मरण में रखनाह- क्या? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वृद्धि हेतु हे मुनि! दीक्षा के समय की अपूर्व उत्साहमय तीव्र विरक्त दशा को; किसी रोगोत्पत्ति के समय की उग्र ज्ञान-वैराग्य, सम्पत्ति को, किसी दुःख के अवसर पर प्रगट हुई उदासीनता की भावना को किसी उपदेश तथा तत्त्वनिर्णय के धन्य अवसर पर जगी पवित्र अन्तःभावना को स्मरण में रखना, निरन्तर स्वसन्मुख ज्ञातापन का धीरज अर्थ स्मरण रखना, भूलना नहीं। (इस गाथा का विशेष भावार्थ)

प्रवचन-१३५, गाथा-११० से ११२, सोमवार, कार्तिक शुक्ल ११, दिनांक ०९-११-१९७०

अष्टपाहुड़-भावपाहुड़। ११० गाथा। इसमें ११० है। किसी को फेरफार होवे तो। यहाँ मुख्यरूप से मुनि को लक्ष्य कर बात है। उसमें गौणरूप से सम्यग्दृष्टि आदि की भी सब बात आ जाती है। कहते हैं कि आगे दीक्षाकालादिक की भावना का उपदेश करते हैं -

दिक्खाकालाईयं भावहि अवियारदंसणविसुद्धो ।

उत्तमबोहिणिमित्तं असारसाराणि मुणिऊण ॥११०॥

अर्थ - हे मुने! तू दीक्षाकालादि की भावना कर। आहाहा! दीक्षा ली थी, तब जो वैराग्य था... गाथा है न? दीक्षाकाल में, यह शब्द होना चाहिए न। उसमें क्या? इन्हें हाथ नहीं आता परन्तु तुम्हें हाथ नहीं आया? गाथा! अंक नहीं लेना। 'दिक्खाकालाईयं' 'दिक्खाकालाईयं' शब्द होगा न। अंक भले न हो। कल हाथ नहीं आता था इन्हें। गाथा का ... कहते हैं कि दीक्षा कालादि। अब यह शब्द जहाँ तो वह गाथा खोजे। अंक किस काम का? यहाँ शब्द का काम है, अंक नहीं। यह तो दीक्षा काल शब्द पड़ा है न!

कहते हैं कि मुनि होकर वैराग्य इतना करना चाहिए कि दीक्षा काल में उसका वैराग्य कैसा हो? पूरे संसार में मेरा कुछ नहीं, मेरा कोई नहीं। मैं अकेला आत्मा हूँ। दीक्षा के समय वैराग्य, उस वैराग्य को बारम्बार याद कर, ऐसा कहते हैं। भावशुद्धि करने के लिये बारम्बार याद कर, सम्यग्दर्शनसहित, हों! उसकी बात है। आत्मा शुभ-अशुभराग से रहित अकेला चैतन्यबिम्ब, उसकी शुद्धि दर्शन की हुई, पश्चात् उसे ऐसा

वैराग्य होना चाहिए, ऐसा कहना चाहते हैं। सम्यग्दर्शन बिना तो वैराग्य सच्चा नहीं हो सकता। इसलिए पहला आत्मा ही अन्दर स्वयं निरावरण अलिप्त शुद्ध आनन्दकन्द ऐसा अन्तर सम्यग्दर्शन प्रगट कर, कि जो धर्म का पहला बीज है, उसके पश्चात् उसने मुनिपना जो लिया है, उसे कहते हैं कि पुष्टि करने के लिये दीक्षा समय वैराग्य था, उस वैराग्य को बारम्बार याद कर। अर्थ में विशेष लेंगे। आदि शब्द है न ?

कैसा भया... ? अविकार अर्थात् अतिचाररहित निर्मल सम्यग्दर्शनसहित... निर्मल सम्यग्दर्शनसहित। जिसमें अतिचार भी नहीं, जरा सूक्ष्म दोष (भी नहीं)। ऐसा भगवान आत्मा, उसे पर निमित्त से और राग से कुछ आत्मा में लाभ नहीं और आत्मा में वह चीज नहीं। समझ में आया ? परचीज तो आत्मा में नहीं, कर्म नहीं परन्तु राग का विकल्प सूक्ष्म भी इस आत्मा में नहीं। ऐसा आत्मा निर्विकल्प, उसकी दृष्टि-सम्यग्दर्शन करना, वह पहले में पहला धर्म का, मुक्ति का उपाय है। समझ में आया ? उस सहित उसे अविकार अर्थात् अतिचाररहित निर्मल सम्यग्दर्शनसहित... ऐसा। दीक्षाकाल आदिक की भावना कर। पूर्व में क्या की ? संसार को असार जानकर। आहाहा! नाशवान... नाशवान... नाशवान... बाह्य पदार्थ तो नाशवान। पुण्य-पाप के भाव भी नाशवान। वे असार हैं। टीकाकार ने बहुत बोल लिये हैं। इस गाथा में असार-सार के ४४ बोल लिये हैं। इसमें ४४ बोल हैं। असार-सार के। यह असार है और यह सार है, यह असार है और यह सार है। ऐसा करके (४४ बोल लिये हैं)।

मुमुक्षु : यह उपादेय और यह हेय।

पूज्य गुरुदेवश्री : असार-सार ऐसा ही शब्द लिया है। है इसमें अन्दर देखो। टीकाकार ने संस्कृत में से निकाले हैं। देखो! संस्कृत में है, वही इसमें डाला है। इसमें तीन लाईन के बाद है परन्तु तीन पृष्ठ के बाद है। खोला उसमें नहीं।

आलोचना नहीं करना, यह असार है। आलोचना करना, यह सार है। परनिन्दा करना असार है, निजनिन्दा करना सार है। इसी प्रकार किसी में अन्तर होगा थोड़ा-बहुत। व्यवहार की बात है न। 'गुरु के आगे अपने दोषों को नहीं कहना, वह असार है और अपने दोष को गुरु के पास कहना, वह सार है।' ऐसे-ऐसे ४४ बोल इसमें—संस्कृत टीका में हैं। 'प्रतिक्रमण नहीं करना असार है,... राग से विमुख न होना असार

है। राग से विमुख होना वह सार है। ऐसा करके ४४ लिये हैं। देखो! 'अपने दोष कहना सार है।' है न? पश्चात् 'व्रत में दोष नहीं लगाना सार है। आराधना करना निर्दोष पालना सार है। अज्ञान असार है, सम्यग्ज्ञान सार है। मिथ्यादर्शन असार है, सम्यग्दर्शन सार है। मिथ्याचारित्र असार है, सम्यक्चारित्र सार है। कुतप असार है, सुतप सार है।' सुतप, हों! सम्यग्दर्शनसहित। आत्मा के अनुभव सहित स्थिरता, रमणता, इच्छा का निरोध वह सार है। अकेला तप यह लंघन करे, वह कुछ तप नहीं। समझ में आया? यह अपवास-बपवास करते हैं न आत्मा के भान बिना संथारा-बन्थारा... ऐई! शान्तिभाई! यह सब संथारा मिथ्यात्व के हैं। मिथ्यादृष्टि। आत्मा जहाँ अन्दर रागरहित चिदानन्द की खबर नहीं। वह यहाँ कहते हैं, देखो! सम्यग्दर्शन सार है। 'कुतप असार, सुतप सार। अकृत सार कृत सार। प्राणघात असार, अभयदान सार।' व्यवहार की कितनी ही बातें डालते हैं। '... सार ... ब्रह्मचर्य सार, निर्ग्रन्थपना सार, एक बार सात्विक भोजन करना सार। बहुत बार खाना असार।' मुनि को दो बार भोजन नहीं होता। मुनि को एक बार भोजन होता है।

'आर्त-रौद्रध्यान असार, धर्म शुक्लध्यान सार, ... लेश्या असार, ... सार' यह भी व्यवहार का है। लेश्या सार कहाँ है? एक भी लेश्या सार कहाँ है? लेश्या अधर्म है। 'तेजो, पद्म, शुक्ल तीनों लेश्या अधर्म है। पुण्य है, बन्ध का कारण है। व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? 'आरम्भ असार, अनारम्भ सार। असंयम असार, संयम सार। परिग्रह असार, परिग्रहरहित सार। वस्त्रसहित असार, वस्त्ररहित सार। केशलोंच नहीं करना असार, केशलोंच करना सार। स्नान असार, अस्नान सार।' लो! ऐसा करके सब है। क्षमा सार, ... सार, समकित सार और शील सार और विनय सार और जिनवाणी सार, अन्य मार्ग असार। गुप्ति सार, मुक्ति सार, समाधि सार, नियम सार। लो! समझ में आया?

कहते हैं, निर्मल सम्यग्दर्शन सहित होकर... पहला वजन इसका ऊपर है। निर्मल सम्यग्दर्शन। अर्थात् कि आत्मा परिपूर्ण पवित्र, उसका अन्तर्मुख होकर, निमित्त की और राग की अपेक्षा छोड़कर, पूर्ण शुद्ध भगवान पवित्र पिण्ड परमात्मा स्वयं, उसका आश्रय लेकर प्रतीति अनुभव में करना, यह पहला सम्यग्दर्शन है। तब से धर्म की

शुरुआत होती है। समझ में आया ? इस सम्यग्दर्शनसहित संसार को असार जानकर... सार-असार की व्याख्या थोड़ी कही। उत्तमबोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति के निमित्त... दीक्षा कालादि की भावना करना, ऐसा कहते हैं।

भावार्थ - दीक्षा लेते हैं, तब संसार (शरीर) भोग को (विशेषतया) असार जानकर अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न होता है... दीक्षा के समय, सम्यग्दर्शन सहित की दीक्षा है, हों यह! अकेले मुँडाते हैं अभी, वह कहीं दीक्षा नहीं है। समझ में आया ? अभी दीक्षाएँ ली जाती हैं न ? बालब्रह्मचारी दीक्षा, वह सब मिथ्यात्व की दीक्षा है। मिथ्यात्व की पुष्टि करेंगे अब, उसका अर्थ (यह)। ऐई! पोपटभाई! यह संधारा-बंधरा किया है न ? करते हैं या नहीं ? तुम्हारे गाँव में किया था या नहीं ? कलकत्ता। क्या कहते हैं ? राजगृही। पोपटभाई बहुत गये थे वहाँ। शान्तिभाई! यह सब बातें आवे न यहाँ। वह तो सब मिथ्यात्व के पोषक हैं। जिसे अभी देव-गुरु-शास्त्र सच्चे की श्रद्धा की खबर नहीं। और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की खबर हो और श्रद्धा हो तो भी वह राग है। वह कहीं सम्यग्दर्शन नहीं है। सम्यग्दर्शन तो आत्मा वस्तु पूर्णानन्द, उसे किसी राग की अपेक्षा ही नहीं है। ऐसी अन्तर में सम्यक् प्रतीति, अनुभवज्ञान... का करके, स्वस्वरूप का ज्ञान करके प्रतीति होना, इसका नाम प्रथम निर्विकल्प सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया ? उसके पश्चात् यह सब बात है। यह न हो तो एक भी तप भी नहीं, चारित्र भी नहीं, दीक्षा भी नहीं और सब रण में शोर मचाने जैसा है। समझ में आया ?

कहते हैं, संसार (शरीर) भोग को (विशेषतया) असार जानकर अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न होता है... दीक्षा के समय। वैसे ही उसके आदिशब्द से रोगोत्पत्ति,... लो! कठिन रोग शरीर में आया हो, उस समय कैसा होता है ? आहाहा! है न ? ...खबर है न ? जरा सा हुआ। वह वृद्ध आये थे तुम्हारे पिता। गया तब तो खबर भी नहीं। सो रहा था। बापू! आये हो तुम। फिर वापिस भूल गया। समझ में आया ? यह याद किया था यहाँ आया तब। ऐसे कठोर रोग आये हों और फिर ऐसे हो। उसमें असाध्य हो गया हो। क्या हुआ ? कहाँ आया ? अस्पताल में ले गये हों तो कहे कहाँ से आये ? क्या है ? ऐसे समय में उसे वैराग्य... आहाहा! अरे! यह सब पैसा, माँ-बाप, कुटुम्ब, स्त्री, पुत्र, यह कुछ नहीं मिलते ? हाय... हाय... मेरे पास कोई नहीं ? मुझे सहायक कोई नहीं ?

उस समय अन्दर निराधार लगे। समझ में आया ? शरीर में भी कुछ भान नहीं रहे। यह शरीर जड़, मिट्टी और खदबदाहट, परमाणु के परमाणु पलट जाए। एक-एक अँगुल में छियानवें-छियानवें रोग। पूरे शरीर में कितने कहे थे ? पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यावें हजार पाँच सौ चौरासी—इतने रोग शरीर में हैं। इस एक शरीर में इतने रोग हैं। पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यावें हजार पाँच सौ चौरासी। कहो, भीखाभाई! यह जाड़ा-बाड़ा तो एकाध रोग कहलाये परन्तु ऐसे तो इतने-इतने रोग, पाँच करोड़। आहाहा!

मुमुक्षु : कहीं पाँच करोड़ एक साथ होंगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी समय एक साथ हो जाए। किसी समय की बात है न ? सब साथ में हो।

सातवें नरक के नारकी को तो सब रोग एक साथ भयंकर रोग तो बड़े महारोग। सातवें नरक का नारकी। यहाँ बड़ा चक्रवर्ती हो, उसे खम्मा-खम्मा सोलह हजार देव (सेवा करते हों)। वह मरकर सातवें नरक में जाए। शरीर में भयंकर रोग तो जन्म से। आहाहा! सोने को शैय्या नहीं मिले, बैठने का सिंहासन नहीं मिले, खाने को आहार और पीने को पानी न मिले, हवा और पंखा न मिले। आहाहा! यह तो पंखा ऊपर ठीक सा चाहिए, बैठा हो वहाँ। वैराग्य से विचारे कि आहा! ऐसे-ऐसे प्रसंगों में मेरा कोई नहीं था। मुझे कोई शरण नहीं था। ऐसा वैराग्य सम्यग्दृष्टि मुनिपने में अथवा मुनिपने के अतिरिक्त भी अपनी शुद्धि के लिये ऐसी भावना करे। समझ में आया ? जो मकान हवा-पानी के लिये बनाया हो, उस मकान में हाय... हाय... अग्नि लगे। निकलना किस प्रकार ? समझ में आया ? स्वयं ने बनाया हुआ दरवाजा पक्का बन्द हो गया हो, वह खुले नहीं।

मुमुक्षु : भूकम्प होवे तो पूरा गिर जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा गिर जाए। स्वयं सहित। हाय... हाय! यह ? यह क्या, यह तो नाशवान चीज़ है। यह तो ऐसा ही होता है वहाँ। ऐसे प्रसंग हुए हों अपने को-पर को, उसे याद कर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

रोगोत्पत्ति,... यह तो भूतकाल की बात की। अब मरणकालादिक... मरण तो कुछ आया न हो। परन्तु मरण आवे, तब क्या होगा, इसका विचार पहले से कर, ऐसा कहते हैं। धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा की शुद्धि के कारण से उस मरण का विचार पहले से करे। आहाहा! देह छूटेगी तब क्या होगा? समझ में आया? उस समय मेरा कोई नहीं। श्वास सगा नहीं। श्वास नहीं लिया जा सकेगा। डॉक्टर खड़े होंगे बड़े इंजेक्शन लेकर। पैसावाला होवे तो। गरीब होवे तो न खड़े हों। समझ में आया? कोई मेरा नहीं। उस मरण का विचार पहले से कर, ऐसा कहते हैं। जीते-जी मरण का विचार कर। मरण के समय तो अवसर फिर आये, तब वहाँ कहाँ समय रहेगा। मरणकालादिक... अर्थात् ऐसा कोई लड़का मर गया हो और फिर ऐसा लगे कि आहाहा! पैसा दो-पाँच लाख गये हों न, अरे रे! आहाहा! कुटुम्ब में से कोई शरण नहीं देता, पैसा नहीं देता, सब कहते थे कि हम तुम्हारे हैं, हों! परन्तु नुकसान जाए, तब कोई देने नहीं आता। फिर २५-२५ हजार, ५०-५० हजार तो हमारे... कौन दे वहाँ? ऐई! भोगीभाई! ऐसे प्रसंग का बारम्बार विचार करे, ऐसा कहते हैं। वैराग्य बढ़ावे।

मरणकालादिक जानना। देखो! उस समय में जैसे भाव हों... ऐसा कहते हैं। उस काल में, दीक्षा के काल में, रोग उत्पत्ति के काल में, मरण समय के काल में जो भाव हों, वैसे ही संसार को असार जानकर... आहाहा! एक विकल्प हो दया, दान, व्रत, भक्ति का, वह भी मेरा नहीं। वह कहीं दूसरे समय में रखने से रहता नहीं। तो कौन सी चीज़ मेरी है इसमें? समझ में आया? और नयी अवस्था हो, वह पहले नहीं थी और उसका संयोग हो। अवस्था, लो न निर्मल। पहली अवस्था थी उसका वियोग हो, नयी अवस्था-पर्याय का संयोग हो, वस्तु तो ध्रुव त्रिकाल हूँ। समझ में आया? बाहर की चीज़ की तो कहाँ लगाना? कहते हैं। एक समय की ज्ञानपर्याय का उत्पाद, दूसरे समय में उसका व्यय, तीसरे समय में नयी पर्याय का सम्बन्ध—संयोग, पुरानी पर्याय का वियोग। आहाहा! समझ में आया? ऐसे प्रसंग को, दीक्षा के समय के प्रसंग को, रोग के प्रसंग को, ऐसी कोई शरण न हो, वैसे प्रसंग को विचार। आहाहा! समझ में आया?

कलकत्ता की बात थी। नहीं एक बार? बहुत वर्ष की बात है। शाम को दस-बारह लोग नाव में घूमने निकले। उसमें एक लड़का आठ वर्ष का बाहर पैर निकालकर

बैठा। दूसरा कुटुम्ब पूरा था। उसमें बड़ा मगरमच्छ आया। उसने लड़के का पैर पकड़ा। नाविक को खबर पड़ी। पैर पकड़ा है, मगरमच्छ बड़ा है। खींचने से साथ में सब जाएगा। उसके माँ-बाप को कहता है कि लड़के को अन्दर डाल दो या मैं डाल देता हूँ। आहाहा! देखो! यह संसार। एक हाथ ... एक ओर पैर उसकी ओर सिर लड़के का। डाल दो लड़के को। अभी खींचने से साथ में सब नाव समाप्त हो जाएगी। मगरमच्छ बड़ा है। पैर पकड़ा, वह छोड़ेगा नहीं। यह माता-पिता ने उठाकर उसमें डाला। अरे रे! कौन था? सुन न अब। लड़का चिल्लाता था, रोता था, अरे.. माँ! अरे... माँ! माँ ने डाला उसमें। लो, यह संसार! समझ में आया? ऐसे प्रसंगों का बारम्बार विचार कर, ऐसा कहते हैं। वैराग्य के। होंश का सडका का न करे। पाँच लाख मिले थे और फिर लड्डू खाने बैठे थे और फिर इकट्ठे हुए थे। अब होली क्या है वहाँ? सुन न! वह तो सब राग के रुदन हैं। ऐसे प्रसंग को याद करते हैं। आहाहा!

तुम्हारे नहीं था प्रवीण? तुम थे तब? वे दो व्यक्ति नहीं? खीमचन्द थे। मगनभाई थे न। वे दो लड़के, नहीं? हैजा निकला रास्ते में। दो जवान लड़के, हों! २०-२०, २२ वर्ष के। बीच में हैजा निकला। कितने लोग साथ में होंगे? लाईन चली जाए ऐसे की ऐसे। रास्ता जंगल। खाने-पीने के चावल, दाल या पानी। ... नहीं तो मर जाएगा बीच में। उसमें दो महिलायें ... चल सके नहीं। माँ-बाप रह सके नहीं। कहाँ रहना? मर जाए। माँ-बाप कहे, भाई! बेटा! क्या करें? रोते-रोते पानी का कलश रख गये दो व्यक्ति पास में जंगल में रखकर चले गये। अरे.. माँ! अरे... माँ! अरे... बापू! मेरा क्या होगा? क्या होगा बापू? क्योंकि वे खड़े रहे परन्तु पीछे कोई नहीं। चारों ओर जंगल। २५-५० कोस का कहाँ कोई सामने देखनेवाला नहीं मिलता। छह-छह कोस तक चले और खाये ... आहाहा! मगनभाई थे या नहीं तब साथ में? क्या कहलाता है वह? वे नहीं थे। आहाहा! उसने रखे चलने लगे। बापू! मुझे छोड़कर जाते हो। मुझे दुःख है। ... वहाँ सब पिण्डली चढ़ते हैं। भाई! क्या करें? भाई! तुझे छोड़कर न जायें तो हम भी मर जानेवाले हैं। दूसरा उपाय नहीं है, भाई! वे रोते-बिलखते चले जाते हैं, ऐसे सामने देखते-देखते छोड़कर चले जाते हैं। परन्तु तू कौन उसका? सुन न! आहाहा! जहाँ किंचित् अनुकूलता मिले, वहाँ मानो मैं हो गया चौड़ा। आहाहा! धूल भी नहीं, सुन न!

मरते हुए स्त्री ऐसे देखे। अर..र..र..! हाय-हाय। पाँच वर्ष का विवाहित। लड़का हुआ नहीं। देवर और जेठ सब कठोर व्यक्ति हैं। बाद में मुझे रखेंगे या पैसे देंगे खाने के? याद करके रोवे। ऐसे देखे वहाँ... आहाहा! इस देह में अब कुछ नहीं। खड़ी टग-टग देखे-रोवे। बापू! ऐसे प्रसंग के विचार कर न! तुझे वैराग्य करना हो तो ऐसे विचार कर, भाई! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, आत्मा का प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट करने के बाद की यह सब बात है। समझ में आया? आत्मा का चैतन्यस्वरूप, भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध का कन्द आत्मा, उसकी शरण जिसने ली है और दूसरी शरण जिसने छोड़ी है, तब उसे सम्यग्दर्शन की अनुभवदशा पहली होती है। उसके पश्चात् उसे आगे बढ़ने के लिये ऐसे वैराग्य के विचार करे। सम्यग्दर्शन न हो तो पहले सम्यग्दर्शन का प्रयत्न करना। समझ में आया? पहले उसका प्रयत्न और उसका पहला प्रयोग करना। मैं अखण्ड आनन्दस्वरूप हूँ, उस ओर झुकने का और विकल्प से विमुख होने का पहले में पहला प्रयत्न तो यह है। समझ में आया? उसके बाद ऐसे मुनि हो।

मुनि अर्थात्? यह अभी के जो मुनि हैं, वे मुनि कोई है ही नहीं। समझ में आया? यह तो भाव अन्दर में आनन्दकन्द में झूलता हो। जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ आती हो। वर्तमान पर्याय में, जैसे समुद्र में से किनारे पर ज्वार आवे, वैसे सम्यग्दृष्टि को चारित्र की उग्रता होने पर उसकी वर्तमान पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार आता है। समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई! अतीन्द्रिय आनन्द से पर्याय भर जाती है, ऐसा कहते हैं। इस जीव को कैसा वैराग्य करना? इसे भी अभी पूर्ण केवलज्ञान न हो, तब तक ऐसे वैराग्य की विचारणा की धारा बारम्बार करना कि जिससे कहीं अटके नहीं। यह ... आहाहा!

असार जानकर... उस समय में जैसे भाव हों, वैसे ही संसार को असार जानकर विशुद्ध सम्यग्दर्शनसहित होकर... जिसे देव-गुरु-शास्त्र की भी सच्ची श्रद्धा हो, वह भी विकल्प और राग है। उससे भी भिन्न पड़कर सम्यग्दर्शन (प्रगट करे), ऐसा कहना चाहते हैं। समझ में आया? विशुद्ध सम्यग्दर्शनसहित होकर... अर्थात् होता हुआ। उत्तम बोधि जिससे केवलज्ञान उत्पन्न होता है... आहाहा! स्वरूप में पूर्ण शुद्धि

और आनन्द पड़ा है, उसका जहाँ अन्तर भान होने पर उसे विवेक हो जाता है। विकल्प और राग से भिन्न और भगवान स्वभाव से अभिन्न, ऐसा अन्दर में एक अन्दर सम्यग्दर्शन में हो, उसे ऐसे दीक्षाकाल आदि की भावना करने से केवलज्ञान उपजता है। लो! यह करने से केवलज्ञान उपजता है। कोई महाव्रत पालने से और अमुक पालने से (केवलज्ञान नहीं होता)। वह तो सब विकल्प-राग है। समझ में आया? आहाहा! भारी काम, भाई!

उसमें इस दुनिया का रस। उसमें कोई पाँच-पचास लाख मिले और शरीर ठीक हो, पुत्र ठीक हो। बस! मैं... बस मैं! हमारे मजा है। नरक का कीड़ा है। मजा कैसा तुझे? मजा तो आत्मा में है। उसका तो तुझे भान नहीं। समझ में आया? देखो! आचार्य ने दीक्षाकालादि की भावना ... आहाहा! उस समय का वैराग्य और उस समय की पर से उदासीनता। रोग के समय पर से उदास। आहाहा! ऐसा रोग!

एक महिला का नहीं कहा था? 'लाठी' में एक महिला का दो वर्ष की विवाहित। पुरानी मर गयी और नयी विवाहित और उसमें शीतला निकली पूरे शरीर में। दाने-दाने में कीड़े। वह रजाई में ऐसे फिरे, वहाँ यहाँ से कीड़ों का ढेर पड़े, ऐसे फिरे वहाँ यहाँ से। माँ! ऐसा कहती थी। माँ! मैंने ऐसे पाप इस भव में नहीं किये। रजाई में नीचे गर्मी की दाह लगे। कीड़े पड़े। जवान महिला, हों! वधाळा-वधाळा का डेलो है न? लाठीवाले नहीं? ...का डेलो नहीं? उसमें उस ओर सुखलाल रहता है। सुखलाल रहता था। वहाँ एक था। बहुत वर्ष की बात है। ऐसी पीड़ा थी। माँ! मैंने ऐसे पाप इस भव में नहीं किये, हों! यह पाप कहाँ से आये? मुझसे करवट बदलूँ तो कीड़े। कानजीभाई को खबर होगी। ... के डेला में, नहीं? चम्पक-चम्पक था न? दामनगर। उस चम्पक की बहू। उसे हुआ था। आहाहा! फिर वह रोवे। देखा न जाए। कीड़े चारों ओर। मरी गयी। दवा क्या करे? बापू! शरीर ऐसा है। शरीर का उत्साह। 'होंशीडा मत होंश न करिये।' यह उत्साह न करिये, भाई! शरीर ठीक हो, पैसा (ठीक हो), उसका उत्साह न करिये। वह जहर का सोजा है। आहाहा! ऐसे प्रसंगों को विचार कर वैराग्य को बढ़ा। कहो, मनसुखभाई! श्वास चढ़ता हो, फिर उस समय रात्रि में बारह बजे बराबर ठीक सा। (स्त्री) खड़ी-खड़ी देखे। आहाहा! तुम्हें क्या होता है? बोलने की शक्ति न हो। श्वास घूँटता हो, बोला न जाता हो। ऐई! जयन्तीभाई! क्या कोई है वहाँ? दबाये तो? प्रेमचन्दभाई

कहते थे। नहीं तुम्हारे? वह नहीं? वे ब्राह्मण मास्टर थे। बगल में। तुम्हारी बगल में वे तो इनकी ओर रहते थे। मास्टर नहीं वह? वाडीलाल के पास रहते थे वे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वे। उनकी एक बारह-तेरह वर्ष की लड़की थी। उसे कुत्ते ने काट खाया। क्या कहलाता है वह? हड़का। तुम्हारे बहुत सम्बन्ध था। प्रेमचन्दभाई को बहुत सम्बन्ध था। उस लड़की को हड़कवा आया। प्रेमचन्दभाई बैठे थे। काका! ... मास्टर की लड़की है। परषोत्तम के घर में। बहिन! क्या करें तुझे? हवा डाले तो सुहावे नहीं। पानी नजर पड़े, सुहावे नहीं। पूरे शरीर में हडकवा लगा था। ऐई! भाई! तुम दूर रहना, हों! ऐसा कहे। मुझसे ऐसे ... भर जाएगा। आहाहा!

एक महिला तो मुझे ... राणपुर में। वह नहीं वे? वजो अन्ध नहीं था? वह वजो अन्ध। कोर उगमणा पा मैं। एक था। यह हरगोविन्दभाई नहीं? यह हरगोविन्दभाई। इनकी ओर पूर्व में। शाम को आहार लेने गये। एक महिला वृद्ध थी परन्तु उसे हडकवा लगा था। हडकवा। महाराज! दूर रहना। मुझे मांगलिक सुनाओ। दर्शन का बहुत भाव था। मुझे मांगलिक सुनाओ। महाराज! दूर रहना, हों! मुझसे बटका भरा जाए। आहाहा! दशा देखो दशा! देखो! इस शरीर की अवस्था और देखो यह आत्मा झपट्टे डाले पर में कहीं। आहाहा! मांगलिक सुनाते हुए भी (बोलती थी), महाराज! दूर रहना, हों! जरा। थी तो बहुत बड़ी ५०-६० वर्ष की वृद्ध महिला। ऐसे प्रसंग, भाई! तुझे अनन्त बार आये हैं। और यह भव भी देह छूटेगी, तब कहीं आत्मा इस प्रकार से निकलेगा नहीं एकदम। अन्दर राग और प्रेम है न? पैर तड़पेंगे, आँखें ऐसी होंगी। समझ में आया? ऐसे प्रसंगों का विचार करके, हे जीव! वैराग्य को बढ़ा, ऐसा कहते हैं। लो! यह दीक्षाकालादि लेकर ऐसा कहते हैं कि ऐसे प्रसंग हों... कालादि शब्द है न? सब प्रसंग ऐसे हों, उनका विचार कर। भूल न जा। जरा ठीक (हो), वहाँ भूल गया। हो गया, लो।

ऐसे भाव के आत्मा के भानसहित ऐसे वैराग्य की वृद्धि करने से बोधि उत्तम बोधि जिससे केवलज्ञान उत्पन्न होता है... केवलज्ञान की धारा बहे। आहाहा! मुनि की मुख्य बात है न अन्दर। उसके लिए दीक्षाकालादिक की निरन्तर भावना करना योग्य है, लो! ऐसा उपदेश है। मुनि को भी (ऐसा उपदेश है)। ध्यानी-ज्ञानी मुनि है,

हों! उनकी बात है। आत्मा के आनन्द की दशा विशेष प्रगटी है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद उग्ररूप से मुनि को आता है। उन्हें मुनि कहते हैं। यह वस्त्र बदले और हुए, वे साधु-बाधु नहीं है। समझ में आया? ऐसों को भी ऐसा वैराग्य बढ़ाकर केवलज्ञान पावे, ऐसा कहते हैं।



गाथा-१११

आगे भावलिंग शुद्ध करके द्रव्यलिंग सेवन का उपदेश करते हैं -

सेवहि चउविहलिंगं अब्भंतरलिंगसुद्धिमावण्णो ।

बाहिरलिंगमकज्जं होइ फुडं भावरहियाणं ॥१११॥

सेवस्व चतुर्विधलिंगं अभ्यंतरलिंगशुद्धिमापन्नः ।

बाह्यलिंगमकार्यं भवति स्फुटं भावरहितानाम् ॥१११॥

कर प्राप्त अंतर्लिंग शुद्धि भजो चतुधा लिंग को।

इस भाव शुद्धि के बिना सब व्यर्थ बाहर लिंग हों ॥१११॥

अर्थ - हे मुनिवर! तू अभ्यन्तरलिंग की शुद्धि अर्थात् शुद्धता को प्राप्त होकर चार प्रकार के बाह्यलिंग का सेवन कर, क्योंकि जो भावरहित होते हैं उनके प्रगटपने बाह्यलिंग अकार्य है अर्थात् कार्यकारी नहीं है।

भावार्थ - जो भाव की शुद्धता से रहित हैं, जिनके अपनी आत्मा का यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण नहीं है, उनके बाह्यलिंग कुछ कार्यकारी नहीं है, कारण पाकर तत्काल बिगड़ जाते हैं, इसलिए यह उपदेश है, पहले भाव की शुद्धता करके द्रव्यलिंग धारण करो।

यह द्रव्यलिंग चार प्रकार का कहा है, उसकी सूचना इस प्रकार है - १. मस्तक के, २. दाढी के, ३. मूछों के केशों का लोंच करना तीन चिह्न तो ये और ४. नीचे के केश रखना अथवा १. वस्त्र का त्याग, २. केशों का लोंच करना, ३. शरीर का स्नानादि

से संस्कार न करना, ४. प्रतिलेखन मयूरपिच्छिका रखना, ऐसे भी चार प्रकार का बाह्य लिंग कहा है। ऐसे सब बाह्य वस्त्रादिक से रहित नग्न रहना, ऐसा नग्नरूप भावविशुद्धि बिना हँसी का स्थान है और कुछ उत्तम फल भी नहीं है ॥१११॥

गाथा-१११ पर प्रवचन

१११ गाथा ।

आगे भावलिंग शुद्ध करके द्रव्यलिंग सेवन का उपदेश करते हैं -

सेवहि चउविहलिंगं अब्भंतरलिंगसुद्धिमावण्णो ।

बाहिरलिंगमकज्जं होइ फुडं भावरहियाणं ॥१११॥

अर्थ - हे मुनिवर! यहाँ द्रव्यलिंग तो नग्नपना ही होता है। साधु को बाह्य नग्नपना ही होता है। वस्त्रसहित हो, वह मुनि तीन काल में नहीं बन सकता। समझ में आया? वस्त्र-पात्र रखे और मुनि माने, मनावे, वह तो मिथ्यादृष्टि निगोदगामी है। समझ में आया? उसकी यह बात नहीं है। यह तो अन्तर मुनि हुए हैं, ज्ञान-ध्यान में। शरीर भी नग्नदशा से रहा है। रहा है। हुआ है वह। समझ में आया? ऐसे मुनि को कहते हैं कि हे मुनिवर! तू अभ्यन्तरलिंग की शुद्धि अर्थात् शुद्धता को प्राप्त होकर... यह पुण्य-पाप के भाव वे तो मलिन और अशुद्ध हैं। आहाहा! उनसे चैतन्य शुद्धस्वभाव का, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, भण्डार उसकी सन्मुखता की शुद्धि को बढ़ा अर्थात् उसके सन्मुख जाने की वृद्धि कर। पर से विमुख हो। समझ में आया? उत्कृष्ट बात लेनी है न यहाँ तो एकदम! अभ्यन्तरलिंग की शुद्धि अर्थात् शुद्धता को प्राप्त होकर चार प्रकार के बाह्यलिंग का सेवन कर,... ऐसा आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति-चारित्र (जिसे प्रगट हुए हैं), ऐसे जीव को नग्नपना होता है, केश का लोंच होता है, ऐसा बताते हैं। जो भावरहित होते हैं, उनके प्रगटपने बाह्यलिंग अकार्य है... जिसे आत्मा का सम्यक् शुद्ध चैतन्यमूर्ति का अनुभव नहीं, जिसे अन्तर में भावशुद्धि और चारित्र नहीं, उसके बाह्य लिंग नग्नपना, पंच महाव्रत की क्रिया, वह सब अकार्यकारी हैं। समझ में आया? अर्थात् कार्यकारी नहीं है। आहाहा!

भावार्थ – जो भाव की शुद्धता से रहित हैं,... भाव का अर्थ पहला सम्यग्दर्शन। जिसे आत्मा पूर्णानन्द प्रभु सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने, तीर्थकरदेव ने जो आत्मा, आत्मारूप से देखा वह तो राग और पुण्य के परिणाम से रहित देखा है। ऐसे आत्मा को स्वयं अन्तर में देखे और देखकर श्रद्धा-अनुभव में ले, उसे प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह सम्यग्दर्शन कोई देव-गुरु-शास्त्र दे नहीं देते।

मुमुक्षु : समझाते तो हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझाते हैं, वह भी सब कहने की बात है। यह समझे तो समझाया ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। ऐसी बातें भी भारी कठिन, भाई! कौन समझावे? वाणी वाणी के कारण से निकलती है। समझनेवाला अपने स्वलक्ष्य का आश्रय करे तो समझे। बाकी जब तक सुनने का ज्ञान है उसे, सुनने का लक्ष्य है, वह ज्ञान कहीं सम्यग्ज्ञान नहीं है। समझ में आया? सुनता है कि भगवान ऐसा कहते हैं, मुनि ऐसा कहते हैं, ज्ञानी ऐसा कहते हैं। ऐसा जो लक्ष्य है, उसे शुभ विकल्प है और राग है। उसमें जो ज्ञान का ख्याल आता है, वह तो परसत्तावलम्बी ज्ञान है। वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया? उसे कहा, ज्ञानियों ने कहा कि भाई! तेरा आश्रय तू ले। इतना उसे ख्याल में आया। बस! उस ख्याल को भी भूलकर... आहाहा! भगवान चैतन्य सहजानन्द की मूर्ति प्रभु सहजात्मस्वरूप, स्वाभाविक वस्तु त्रिकाल ज्ञायकभाव का आश्रय लेकर ज्ञान हो, उसे ज्ञान कहा जाता है। बाकी यह पठन-बठन शास्त्र का, वह भी ज्ञान नहीं है। आहाहा! शान्तिभाई! मार्ग ऐसा है।

कहते हैं, अपनी आत्मा का यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण नहीं है,... जिसे अपने स्वरूप का आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा का, स्वसन्मुख का स्वसंवेदन ज्ञान नहीं है, स्वसन्मुख की सम्यग्दर्शन की प्रतीति नहीं है, स्वसन्मुख में आचरण-स्थिरता, ऐसा चारित्र नहीं है। उनके बाह्यलिंग कुछ कार्यकारी नहीं है,... उसका नग्नपना और उसके पंच महाव्रत के विकल्प, वे सब रण में शोर मचाने जैसे हैं, निरर्थक हैं। आहाहा! समझ में आया? यह पंच महाव्रत के विकल्प, वह राग है। अहिंसा, सत्य, वह कहीं धर्म नहीं है। वह तो अन्दर सम्यग्दर्शन बिना जहाँ व्रत-व्रत ले और यह ले वहाँ (माने मुनिपना)। व्रत कैसे वहाँ? मिथ्यादृष्टि को व्रत कैसे? कहाँ से आया? पंच महाव्रत

लिये, भाई! इसमें दीक्षाएँ लीं। फिर इकट्ठे होकर अनुमोदन करे। घर का लड़का न दे परन्तु किसी का हो उसमें तो पैसा खर्च करे और फिर दीक्षा-बीक्षा कराकर। मिथ्यात्व कराया है। सुन न! समझ में आया? बहुत ऊँची बातें हैं यह सब। ऐई! शान्तिभाई! वहाँ नहीं मिलती, हों! वहाँ धनबाद में यह (नहीं मिलती)। आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा अपना पवित्रधाम प्रभु, उसका सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और उसका अन्तर आचरण, ऐसी शुद्धता के पवित्रता के परिणाम बिना जो कुछ बाह्यलिंग आदि हैं, कुछ कार्यकारी नहीं है, ... जरा भी आत्मा को लाभदायक नहीं है। नुकसानदायक है, कहते हैं। समझ में आया? नग्नपना धारण करे, पंच महाव्रत के विकल्प आवे तो कुछ लाभ हो, किंचित् लाभ हो। धूल भी लाभ नहीं होगा, सुन न! गेरलाभ ही है वह तो सब। आहाहा! समझ में आया? आत्मा की सेवा करना न आवे और पर की सेवा का भाव, वह तो राग है। साक्षात् तीर्थकर की समवसरण में सेवा अनन्त बार की। वह तो राग है। और कल्पवृक्ष के फूल से भगवान की पूजा की, लो, अनन्त बार। 'भवे भवे पूजियो...' आता है न? परमात्मप्रकाश (में)। देखो! भवोभव। अनन्त भव में अनन्त बार समवसरण में भगवान की, तीर्थकरदेव की पूजा की। यह क्या? वह तो शुभभाव है, वह कहीं धर्म नहीं है। ऐसे भगवान की वाणी सुनी, दिव्यध्वनि की आवाज कान में पड़ी। भगवान की ॐ ध्वनि। वह क्या है? वह तो वाणी है, पर है। पर कान में पड़ने से उसका लक्ष्य और राग होता है। शुभभाव है, वह कहीं धर्म नहीं है। अरे! भारी कठिन बात। समझ में आया? ऐसे आत्मा के सम्यग्दर्शन... है न? भाषा कैसी है, देखो!

अपनी आत्मा का यथार्थ श्रद्धान, ... ऐसा शब्द है न? भगवान की आत्मा की श्रद्धा नहीं। वह तो—भगवान तो पर हैं। उनकी श्रद्धा तो राग है। परद्रव्यानुसारी वह तो विकल्प-राग है। समझ में आया? अपनी आत्मा का... भाव की शुद्धता से रहित हैं, ... अर्थात् कि अपनी आत्मा का यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण (जिनके) नहीं है, उनके बाह्यलिंग कुछ कार्यकारी नहीं है, कारण पाकर तत्काल बिगड़ जाते हैं, ... शुद्धता का, आनन्द का अनुभव तो नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं। इसलिए वह बिगड़े बिना रहेगा नहीं। कहीं न कहीं भर पड़ेगा वह। समझ में आया? यह पहले दृष्टान्त आ गये

थे अपने, नहीं? मोक्षपाहुड़ नहीं, भावपाहुड़ में। दीपायन, ऋषि दीपायन। भावपाहुड़ में पहले आ गया है। दीपायन।

भगवान ने कहा था कि यह द्वारिकानगरी दीपायन के कारण से जलेगी। भगवान नेमिनाथ के समय में। बलभद्र के मामा थे। उन्होंने... यह? भागे। अन्यत्र जाऊँ तो बचेगी। अन्यत्र गया, बारह वर्ष रहा। थोड़ा सा बाकी होगा, वहाँ बारह वर्ष हो गये। आया वापस यहाँ। मिथ्यादृष्टि था। भगवान की वाणी की श्रद्धा भी नहीं थी। भगवान ऐसा कहते हैं कि बारह वर्ष में इसके जलेगी। वह कहीं बदले ऐसा है? आहाहा! बैठा वहाँ। आकर रहा। राजकुमार निकले और शराब-बराब गाँव में से डलवायी थी, वह वहाँ इकट्टी हुई एक तालाब में। उसमें से पानी पीया, प्यास लगी थी। सब फटे एक-एक। अरे! यह अपने द्वारिका का जलानेवाला। पत्थर मारे। ऐसा क्रोध चढ़ा (कि) जला दूँ। फिर श्रीकृष्ण-बलदेव को खबर पड़ी कि यह तो क्रोधायमान हो गये। क्रोध बहुत किया। साहेब! क्या करते हो? यह आपको शोभा नहीं देता। ऐसा नहीं होता। तुम दो बचोगे, बाकी नहीं बचेंगे। जाओ। आहाहा! देखो न! भान बिना ऐसे क्रोध में चढ़ गये। सम्यग्दर्शन और आत्मा की शुद्धता के भान बिना ऐसे दीक्षा पालकर दूसरे रास्ते चढ़ गया।

दो अँगुलियाँ ऐसे ऊँची कीं। मरने की तैयारी थी, अन्तिम स्थिति थी। मार बहुत पड़ी थी पत्थर की। तुम दो बचोगे, बाकी नहीं। आहाहा! देखो तो यह स्थिति। वे श्रीकृष्ण और वासुदेव योद्धा खड़े हैं। वह नगरी सुलगती है। नौ योजन की लम्बी, बारह योजन की चौड़ी। अन्दर राजकुमार सुलगते हैं। पुकार-पुकार। ऐ कृष्ण! ऐ बलदेव! कौन देखे सामने? बापू! रानियाँ सुलगे, कुँवर सुलगे। हाथी सुलगे, घोड़ा सुलगे। छह महीने तक द्वारिका सुलगी, छह महीने तक (सुलगी)। दोनों चल निकले। वासुदेव और बलदेव चल निकले। अरे! भाई! अब कहाँ जायेंगे? अरे! परन्तु तुम दुनिया के आधार, अब तुम्हें आधार चाहिए? हजारों राजा जहाँ शोर मचाते उससे। निकल गये, जंगल में गये। जंगल में मृत्यु हुई। आहाहा! धर्मात्मा समकिति तीर्थकर होनेवाले। समझ में आया? ऐसे प्रसंग बनते हैं, भाई! तू ऐसे प्रसंग को याद कर और वैराग्य कर। समझ में आया?

कारण पाकर तत्काल बिगड़ जाते हैं, इसलिए यह उपदेश है, पहले भाव की शुद्धता करके द्रव्यलिंग धारण करो। प्रथम सम्यग्दर्शन को प्राप्त करके पश्चात् नग्नपना साधारण करना। आत्मा के सम्यक् बिना नग्न होना नहीं। हैरान होगा, दुःखी होगा। आहाहा! समझ में आया? है न पहला। देखो न! वह भी है, जैसा हो गया है न वह? इसलिए यह उपदेश है, पहले भाव की शुद्धता करके द्रव्यलिंग धारण करो। आत्मा का अनुभव राग से, मन से भिन्न अनुभव करके सम्यग्दर्शन के पश्चात् मुनिपने की क्रियाएँ धारण करना। पश्चात् नग्नपना होता है, ऐसा कहते हैं।

यह द्रव्यलिंग चार प्रकार का कहा है, उसकी सूचना इस प्रकार है - १. मस्तक के, २. दाढी के, ३. मूछों के केशों का लोंच करना... इन तीन का लोंच। एक बोल। यह तीन बोल हुए। तीन चिह्न तो ये और ४. नीचे के केश रखना... ये चार हुए। समझ में आया? अथवा १. वस्त्र का त्याग,... मुनि हो, उसे तो वस्त्र का धागा भी नहीं हो सकता। मुनि को एक लंगोटी भी नहीं रहती। (रहे) तो वह तब तक मुनि नहीं। आहाहा! १. वस्त्र का त्याग, २. केशों का लोंच करना, ३. शरीर का स्नानादि से संस्कार न करना,... लो! शरीर का स्नानादि करके संस्कार नहीं करना, प्रतिलेखन मयूरपिच्छिका रखना, ऐसे भी चार प्रकार... दूसरे चार लिये। पहले वे केश सम्बन्धी के और यह चार। ऐसे भी चार प्रकार का बाह्य लिंग कहा है। देखा! प्रतिलेखन में भी मयूरपिच्छी, हों! यह ऊन की नहीं। सब ही उल्टा। सम्प्रदाय निकला तो सब उल्टा। मोरपिच्छी के बदले ऊन, नग्न के बदले कपड़े।

एक व्यक्ति ने तो लिखा है न कि अर्धफालक में से वकरेलो विकार। मन्दिरमार्गी साधु है एक, चम्पकसागर। पहले अर्धफालक थे, दिगम्बर में से जो निकले पहले श्वेताम्बर, तब आधा टुकड़ा ही रखते थे। उसमें से विक्रित विकार १११ नम्बर लिखे हैं। १११ उपकरण हैं अब उनके पास। है मन्दिरमार्गी साधु, हों! यहाँ आया था, कहीं था नहीं यहाँ? मूल तो नग्नमुनि दिगम्बर ही अनादि के थे। श्वेताम्बर पन्थ था ही नहीं कभी। स्थानकवासी तो था ही कब गन्ध भी वह? श्वेताम्बर पन्थ भगवान के पश्चात् छह सौ वर्ष में निकला है। यह स्थानकवासी श्वेताम्बर में से अभी निकले हैं, पाँच सौ वर्ष पहले और फिर यह तुलसी स्थानकवासी में से निकले अभी। यह ... अभी है न?

अर्ध वस्त्र में से १११ उपकरण। अभी भगवान जानें कहाँ तक जायेंगे? ऐसा करके लिखा है। मिले थे हमें। जयपुर गये थे न तो आये थे। उसने कहा कि महाराज आये हैं तो आये थे। ... गाँव में ... मस्तिष्क में यह आया लगा कि कुछ अन्तर है यह सब। श्रद्धा स्पष्ट थी नहीं। उसमें रहना और फिर निभना। कठिन काम। वाड़ा छोड़ना (अर्थात्) सिर घूम जाए। जिसमें जन्मा, उसमें पला, उसमें से निकलना...

ऐसे सब बाह्य वस्त्रादिक से रहित नग्न रहना, ... सब बाह्य वस्त्रादिक से रहित नग्न रहना, ऐसा नग्नरूप भावविशुद्धि बिना हँसी का स्थान है... अकेले नग्न हो जाए, भान-सम्यग्दर्शन न हो, वे तो सब हास्य के स्थान हैं। और कुछ उत्तम फल भी नहीं है। आहाहा! लो!



गाथा-११२

आगे कहते हैं कि भाव बिगड़ने के कारण चार संज्ञा हैं, उनसे संसार भ्रमण होता है, यह दिखाते हैं -

आहारभयपरिग्रहमैथुणसण्णाहि मोहिओ सि तुमं।

भमिओ संसारवणे अणाइकालं अणप्पवसो ॥११२॥

आहारभयपरिग्रहमैथुनसंज्ञाभिः मोहितः असि त्वम्।

भ्रमितः संसारवने अनादिकालं अनात्मवशः ॥११२॥

आहार भय मैथुन परिग्रह वासना से मुग्ध हो।

संसार-वन में अनादि से भ्रमे तुम परतन्त्र हो ॥११२॥

अर्थ - हे मुने! तूने आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इन चार संज्ञाओं से मोहित होकर अनादिकाल से पराधीन होकर संसाररूप वन में भ्रमण किया।

भावार्थ - 'संज्ञा' नाम वांछा के जागते रहने (अर्थात् बने रहने) का है सो आहार की वांछा होना, भय होना, मैथुन की वांछा होना और परिग्रह की वांछा प्राणी के निरन्तर बनी रहती है, यह जन्मान्तर में चली जाती है, जन्म लेते ही तत्काल प्रगट

होती है। इसी के निमित्त से कर्मों का बंध कर संसारवन में भ्रमण करता है, इसलिए मुनियों का यह उपदेश है कि अब इन संज्ञाओं का अभाव करो ॥११२॥

गाथा-११२ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि भाव बिगड़ने के कारण चार संज्ञा हैं, उनसे संसार भ्रमण होता है, यह दिखाते हैं -

आहारभयपरिग्रहमेहुणसण्णाहि मोहिओ सि तुमं ।

भमिओ संसारवणे अणाइकालं अणप्पवसो ॥११२॥

अर्थ - हे मुने! आहार की संज्ञा। आहार की ओर का बारम्बार झुकाव। ऐसा आहार हो, ऐसा चाहिए, ऐसा चाहिए। अरे! क्या है परन्तु यह? अमृत की डकार का समुद्र भगवान आत्मा को यह ऐसी संज्ञा, वहाँ का झुकाव? उसके ... झुकाव ऐसा बताते हैं, हों! अन्दर लेंगे। मैथुन की वांछा होना और परिग्रह की वांछा... ऐसा है न अन्दर। वांछा अर्थात् उस ओर का झुकाव, ऐसा। आहार, भय,... की संज्ञा। प्रतिकूलता आ पड़ेगी, क्या होगा? रोग आयेगा, मरण आयेगा, सर्प काटेगा, बिच्छू काटेगा, शत्रु मारेंगे। क्या होगा? ऐसा भय। उस भय की दिशा की ओर बारम्बार झुकाव। कहते हैं, तू उसमें मोहित होकर मर गया। आहाहा! समझ में आया?

मैथुनसंज्ञा। विषय-भोग। मैथुन, परिग्रह... अन्दर भाव। बारम्बार उसमें रस रहा करे। विषय-भोग की वासना रमने में बारम्बार वृत्ति का झुकाव रहा करे, वह तो महा पाप है, कहते हैं। जिसे आत्मा की ओर का झुकाव हो, उसे ऐसी संज्ञा में उत्कृष्ट एक ओर का झुकाव नहीं होता। समझ में आया? मन्द हो, बहुत मन्द हो, चारित्रदोष हो। यहाँ तो कहते हैं कि उस सम्बन्धी की एकता तुझे हो गयी अन्दर। आत्मा का आनन्द भूलकर विषय की मैथुनसंज्ञा में लीन हो गया। रस पड़ा, तुझे वहाँ रस पड़ा। जहर है, वहाँ रस पड़ा है। समझ में आया? और परिग्रह संज्ञा। लाख हो तो पाँच लाख और पाँच लाख हो तो दस लाख और दस लाख हो तो करोड़ और करोड़ हो तो पाँच करोड़, पाँच करोड़ हो तो दस करोड़, चालीस करोड़ हुए, देखो न! आहाहा! हैरान...

हैरान। संज्ञा, परिग्रह संज्ञा। लो! लोगों को लगे कैसा परन्तु यह।

इन चार संज्ञाओं से मोहित होकर... ऐसा शब्द है न यहाँ? उसमें मोह तुझे लगा, उसकी ओर का अकेला झुकाव। अनादि काल से पराधीन होकर... आहाहा! आनन्दमूर्ति भगवान का तो तुझे प्रेम और रस नहीं आया और ऐसे विषय के भोग में तुझे रस आया, भाई! अनादि काल से भटका है। आहाहा! समझ में आया? अकेला शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, वह नहीं, हों! आहाहा! यह तो राग के साथ एकता भी मैथुन है। समझ में आया? उसकी ओर का बारम्बार झुकाव। ब्रह्मानन्द भगवान आत्मा को भूलकर ऐसे विषयरस में लगा, मोह के कारण मर गया, कहते हैं।

अनादि काल से पराधीन होकर संसाररूप वन में भ्रमण किया। संसार में... वन बड़ा संसार का। आहाहा! पगदंडी नहीं, कहाँ रास्ता? वन में चढ़ा, रास्ता कहाँ? यह कहाँ जाना? आहाहा! ऐसा भवभ्रमण। चौरासी की अटवी में कहाँ जाना और कहाँ निकलना, उसका कुछ रास्ता नहीं मिलता। ऐसे में ऐसी चार संज्ञा द्वारा गृद्धि होकर ऐसी चार गति में भटका। अब तो छोड़, ऐसा कहते हैं। ऐसा उपदेश करते हैं। भावार्थ आयेगा। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१३६, गाथा-११२ से ११४, मंगलवार, कार्तिक शुक्ल १२, दिनांक १०-११-१९७०

११२ गाथा। अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़ की, उसका भावार्थ। अर्थ हो गया।

भावार्थ - 'संज्ञा'... नहीं करना, ऐसा यहाँ कथन है। अर्थात्? 'संज्ञा' नाम वांछा के जागते रहने (अर्थात् बने रहने) का... परसन्मुख की जागृति रहने का भाव संज्ञा कहा जाता है। अपना आत्मा शुद्ध स्वभाव... भाव अधिकार है न? अर्थात् शुद्धभाव की ओर चेत न रखकर, अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य है, उस दिशा की ओर चेत न रखकर, जागृत न रहकर चार प्रकार की संज्ञा में जागृत रहना, वह पर दिशा की ओर का झुकाव, वह चार गति में परिभ्रमण का कारण है। समझ में आया?

सो आहार की वांछा होना,... आहार की ओर की दिशा, उसका झुकाव।

आहार की संज्ञा, उसका ढलाव और उस ओर झुकाव। भगवान आत्मा अनाहारी शुद्ध स्वरूप, उस दिशा की ओर ढलना चाहिए, हित के लिये। उसके बदले ऐसे दिशा की ओर ढला है। कहते हैं कि उस दिशा को बदल, तेरी दिशा बदल, उसका फल चार गति है। समझ में आया? **आहार की वांछा होना, भय होना,...** भय की दिशा। पर की ओर, पर की ओर भय... भय... भय... भय। वह दिशाफेर तेरी दृष्टि है, कहते हैं। भगवान आत्मा निर्मल चैतन्य शुद्ध है, उसकी दिशा की ओर ढलना चाहिए कि जो संसार के नाश का उपाय है। उसके बदले संसार की उत्पत्ति का उपाय खड़ा करता है, (यह) भय की ओर दिशा (है वहाँ)। दिशा बदल, उसकी दशा संसार, उसकी उत्पत्ति चार गति। समझ में आया?

मैथुन की वांछा होना... विषय की वासना में दिशा में रस, विषय की वासना में रस की दिशा में अन्तर है कहे। भगवान आत्मा ब्रह्मानन्दस्वरूप, ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप आत्मा है, अतीन्द्रिय आनन्द का रस आत्मा है। उसकी दिशा की ओर, दशा की ओर न झुककर अनादि से मैथुन के परिणाम के रस की दिशा में ढला, उसका फल संसार है। समझ में आया? जाना हो पूर्व में और जाए दौड़कर पश्चिम में, वह दिशा में अन्तर है। इसी प्रकार आत्मा चैतन्य आनन्दस्वरूप की सन्मुख की दिशा करना चाहिए तो उसे जन्म-मरण मिटे और धर्म हो। परन्तु उस स्वभाव-सन्मुख की दिशा की दशा छोड़कर उस विषय के रस के प्रेम में रसीला होकर उस दिशा की ओर ढला है। उसका फल तो चार गति भटकने का है। समझ में आया?

‘मोहितः’ है न इसमें? उसकी ओर में मोहित कहा है। उस ओर ढला है। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है। वह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मिठास का पर्वत है। समझ में आया? जैसे आईसक्रीम चूसते हैं न मिठास में? उसी प्रकार भगवान आत्मा वह तो आनन्द की आईसक्रीम है। आहाहा! उसकी ओर का चूसना छोड़कर अनादि का विषय के रस को चूसता है। तेरी दिशा की दशा में अन्तर है, भाई! तू दूसरे रास्ते चढ़ गया है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा कहते हैं। देखो न! भाषा वांछा कर-करके उस ओर ढला है न मोह? झुका है न उस ओर? सावधान (वहाँ है)। धर्मीजीव को....

यहाँ भाव अधिकार है इसलिए। ... भगवान आत्मा सिद्धसमान शुद्ध चैतन्यदल

पिण्ड, उसके सन्मुख की दिशा लेनी चाहिए। तो उसे सुख हो, धर्म हो और परिणाम में उसकी मुक्ति हो। ऐसा न करके अनादि से आत्मा के आनन्द के रस को भूलकर विषय का रस जो पर दिशा की ओर ढला हुआ मोह का भाव... आहाहा! तेरी दशा फिर गयी है, ऐसा कहते हैं, लो! तेरी दिशा फिर गयी है। दिशाफेर हो गया, भाई! भगवान आत्मा के सन्मुख दिशा की ओर जाना चाहिए, उसके बदले इस मैथुन के रस के रास्ते चढ़ गया। तेरे स्वरूप की शान्ति का वहाँ घात होता है। समझ में आया? वहाँ आनन्द का रस लुटता है। उस रास्ते के रस का मोह छोड़, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और परिग्रह की वांछा... यह पैसा... पैसा... पैसा-धूल प्राप्त करने का भाव। इसकी ओर दिशा। निर्ग्रन्थ भगवान आत्मा का स्वरूप है, निर्ग्रन्थस्वरूप आत्मा का है। ग्रन्थ के राग और परिग्रहरहित स्वरूप है, उसकी ओर का झुकाव, मोह अर्थात् ऐसी सावधानी है, ऐसे (स्व सन्मुख) सावधानी (कर)। मूल तो ऐसी दो बातें करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा मनुष्य का देह अनन्त काल में प्राप्त होता है, हों! यह निगोद और नरक में से निकलकर डुबकी में से ऊपर आया है अभी तेरा सत्। उसमें यह उसके उस रस में वापस जुड़ जा, भाई! तेरा क्या होगा? ऐसा कहते हैं। जाना था पूरब और मुट्टी बाँधकर दौड़ने लगा पश्चिम में। भाई! मार्ग से दूर पड़ जाता है। आहाहा! समझ में आया?

तब (कोई कहे), सम्यग्दृष्टि है, वह भी विषय को तो लेता है न? नहीं, नहीं। भाई! तुझे खबर नहीं। सम्यग्दृष्टि धर्मी ने तो अन्तर आत्मा के आनन्द का रस चखा है और रस की ओर उसकी चेत और जागृति है। वह विषय की वासना का विकल्प आवे परन्तु वह जहर जैसा देखता है। जहर देखता है। आहाहा! धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि उस विषय की विकल्पदशा को काला नाग देखता है। आहाहा! समझ में आया? उसी प्रकार धर्मी की दशा, उसकी दिशा स्वसन्मुख है। समझ में आया? गजब बात, भाई! धर्मी जीव की दिशा स्वरूप सन्मुख है। चैतन्य का आनन्द रस है, उसके ऊपर उसकी दिशा है। यह वासना हो सही, परन्तु उसका उसे रस नहीं है। समझ में आया? काले नाग की तरह जहर टपके रक्त में और जैसे दुःख लगे; वैसा धर्मी जीव को आत्मा के रस के सन्मुख विषय वासना वह सर्प का जहर है, ऐसा लगता है। समझ में आया? यह

धर्म और अधर्म की दिशा के दशाफेर की बात करते हैं। आहाहा! बात तो बहुत संक्षिप्त है परन्तु बात तो दो दिशा के फेर की बात है। आहाहा!

परिग्रह। देखो न! सवेरे-शाम दुकान में बैठा हो और परिग्रह की लालसा, दिशा बदलना, वह तेरी दशा बदल गयी, भाई! आहाहा! यह परिग्रह की ममता और परिग्रह की संज्ञा की गृद्धि इस संयोग से तुझे छूटने नहीं दे। जहाँ-जहाँ संयोग होगा, वहाँ तेरा अवतार होगा। समझ में आया? पोपटभाई! भारी बात भाई यह! संज्ञा में ऐसा निकाला होगा! ऐई! शान्तिभाई! ऐसा बाहर जहाँ लाख-लाख, दो-दो लाख पैदा हों। उसे लाख-दो लाख का क्या होगा? उसे तो उसके लड़के को तो बहुत लाख पैदा होते हैं। तेरी दिशा बदल गयी, बापू! ऐसा कहते हैं।... शब्द प्रयोग किया। वह मोह। मोह शब्द है न? मोह में ऐसे (पर)दिशा है। निर्मोह में ऐसे (स्व)दशा होती है। बस! बात ऐसी है। आहाहा! मिथ्यात्वरूपी मोह में तेरा झुकाव चार संज्ञा की ओर झुक गया है, कहते हैं। समझ में आया?

धर्मी, जिसे आत्मा का हित करना है, वह तो चैतन्य आनन्द का धाम महासरोवर प्रभु, उसकी सन्मुखता उसे कभी नहीं जाती। राग की विमुखता और स्वभाव की सन्मुखता कभी नहीं जाती। समझ में आया? भले छह खण्ड के राज में चक्रवर्ती समकित्ती हो, परन्तु राज और राग के प्रति विमुखता है और स्वभाव आनन्दकन्द की उसमें रुचि से सन्मुखता है। वह मोक्ष के मार्ग में है। समझ में आया?

परिग्रह की वांछा प्राणी के निरन्तर बनी रहती है,... उस ओर निरन्तर चेत रहता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पैसा कमाऊँ, पैसा करूँ, ऐसा करूँ, दुकान में बैठा हो, आठ पहर तो नहीं बैठे। चार पहर बैठे। आठ पहर तो कहाँ से बैठे? रात्रि में सोने तो जाता होगा न वापस। सवेरे से बैठा हो छह बजे से। ऐई... शाम के। ऐई! कहाँ गया? मनसुख? हमारे वहाँ दुकान थी न, दुकान? सवेरे छह बजे उठे। रात के नौ, साढ़े नौ, दस (बजे) सोवे। बड़ा मजदूर देख लो। आहाहा! यह तेरे पिता की बात चलती है। ऐसा कहा मैंने, हों! उस समय। ऐ... परन्तु इस गाँव में साधु आवे, सुनने का मौका न मिले। उसमें मुँह पूरे दिन देखा न हो। रात्रि में आवे साढ़े आठ। आये रातडिया श्रावक, ऐसा बोले। आहाहा! व्यवहार सुनने का अवसर-समय नहीं मिले। दिन में तो धमाल...

धमाल... धमाल... धमाल... आहाहा! क्या है परन्तु तेरा? क्या तेरी दिशा बदल गयी है? ऐसा कहते हैं।

भगवान आत्मा के स्वभाव की सन्मुख की रुचि की दिशा और दशा चाहिए। तूने यह क्या दशा खड़ी की है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! हसमुखभाई! बराबर होगा न? दुकान में रस कितना पड़ता है? ग्राहक आवे, पैसा जाए। पैसा जाए। पैसा जाए और ठिकाने आवे, ऐसा कहना था और जाए ऐसा बोला गया। उगाही है न इसको? इसके लड़के की डाले न लाखों की बाहर। आहाहा! ... चक्कर / सिरफोड़ी शुरु होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : सब वसूल हो जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाता है, कहते हैं यहाँ। परिग्रह की व्याख्या है न? तेरा भाव-स्वभाव आनन्द और शान्ति है, वह परिग्रह की रुचि के झुकाव के इतने मोह में तेरी शान्ति के पैसे की लक्ष्मी लुटाई है और प्रसन्न होता है। अरे! यह किस प्रकार से? समझ में आया? यह परिग्रह की व्याख्या है। शान्तिभाई! भगवानजीभाई नहीं। यहाँ जमीन मिल गयी थी, रामजीभाई कहते थे। क्या कहाँ? थाणा में। सस्ती मिल गयी है कुछ इसे। किसी की।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वसूल किया ठीक। अभी भगवानजीभाई गये थे। पन्द्रह लाख का थाणा में है न उनका बड़ा कारखाना। ऐसे तो बहुत पैसे हैं उनके पास। इससे अधिक। परन्तु एक है नैरोबी में और एक है यहाँ और एक है यहाँ। थोड़े पैसे में जमीन बहुत मिल जाए तो मनुष्य को रस आवे या नहीं?

मुमुक्षु : अपनी होशियारी कितनी!

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी होशियार नहीं वहाँ। वह तो पूर्व के पुण्य का योग इसलिए गोटी बैठ जाती है वहाँ। मूढ मानता है कि मैंने ध्यान बराबर रखा, इसलिए मुझे यह मिल गयी। दो दिन पहले यदि नहीं जाता तो वह जमीन दूसरे को चली जाती। मोही, मूढ और अज्ञानी है। यह मोही शब्द तो यहाँ प्रयोग किया है, देखो न! 'मोहित: असि' मोहित हुआ, उलझ गया, पर मैं सावधान हुआ। मूल तो ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : मोहित और भ्रमित दो शब्द हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है न। पश्चात् 'भ्रमितः' दूसरे पद में। 'मोहितः असि त्वम्। भ्रमितः संसारवने' यह तो बाद में ऐसा हुआ तो तुझे संसार का... यह इसका फल वर्णन किया है। समझ में आया? 'मोहितः असि त्वम्।' भगवान आत्मा शान्ति का सागर प्रभु, उसके सन्मुख की दिशा छोड़कर तेरी दिशाएँ सब आहार, भय, मैथुन और परिग्रह में गयी 'मोहितः असि त्वम्।' मोहित है, मूढ है। उसके फलरूप से 'भ्रमितः संसारवने' गहन संसार चौरासी के अवतार कहीं पार नहीं होता। एकेन्द्रिय-कीड़ी, मकोड़ा, ढोर, मनुष्य... आहाहा! अपार संसार में भ्रमेगा, भाई! समझ में आया?

प्राणी के निरन्तर बनी रहती है,... निरन्तर जागृत भाव उस ओर रहा है। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह। आहाहा! **निरन्तर बनी रहती है,...** है न? यह जन्मान्तर में चली जाती है,... कहते हैं कि इस संज्ञा की गृद्धि दूसरे भव में भी चली जाती है। यह जहर की गरल की लार साथ लेकर चार गति में भटकता है। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर आनन्दमूर्ति प्रभु... आहाहा! निजनिधान आत्मा का अनन्त परमात्म-स्वरूप अन्दर आनन्द लक्ष्मी पड़ी है, उसके सन्मुख देखने को निवृत्त नहीं होता। निवृत्त ही नहीं उसके सन्मुख देखे, ऐसा कहते हैं। शान्तिभाई! आहाहा! शान्तिभाई ने तो छोड़ दिया है। तेरह सौ मासिक वेतन था। भाई ब्रह्मचारी है। बालब्रह्मचारी। मासिक तेरह सौ का वेतन प्लेन में। छोड़ दिया। अब नौकरी-बौकरी नहीं करना। यह सब होली है। निवृत्ति ली।

मुमुक्षु : अकेले के अकेले...

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला ही है न। दोकला कब था? इसे तो इसकी माँ वृद्धा में भी है। बहाना निकालना हो तो बहुत हैं। पन्द्रह सौ का मासिक वेतन-डेढ़ हजार। अब नौकरी करना नहीं। अब दीक्षा लेनी है? कहे, नहीं। दूसरी नौकरी करनी है? कहे, नहीं। तब क्या है? हमारे सोनगढ़ जाने की इच्छा है। परन्तु भाई! करने जैसा यह है। वर्ष चले जाते हैं, जिन्दगी जाती है। आहाहा! बापू! भगवान चैतन्य चिन्तामणि रत्न। उसे चिन्तवन करने का समय न मिले और इस जहर के चिन्तवन का समय। भाई! तेरी जिन्दगी की दिशायें कहाँ घूमती हैं? आहाहा! भाव शुद्ध अधिकार है न? यह सब

अशुद्धभाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आँखें बन्द करके चला जाएगा, भाई ! कहाँ जाएगा पता नहीं लगेगा। इस आँधी में तिनके का टुकड़ा उड़कर कहाँ गिरेगा ? इसी प्रकार पर के मोहित प्राणी जिसकी दिशा मूढ़ हो गयी है। स्वभावसन्मुख क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं। वह चौरासी के अवतार... यहाँ कहाँ न ?

‘संसारवणे’ अनादि काल अनात्मवश। देखो ! अनात्मवश कहाँ न ? परवश हुआ वह। राग के आधीन हो गया। आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा के आधीन हो गया। वह दुःख है, संज्ञा, वह दुःख है। दुःख के आधीन हो गया। भगवान आनन्दस्वरूप आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय है, उसका सम्यग्दर्शन किये बिना, स्व के स्वाधीन हुए बिना, पर के आधीन हो गया है। सम्यग्दृष्टि जीव स्वाधीन हुआ है। जिसने अपना आनन्द पाया है। आहाहा ! गृहस्थाश्रम में हो, परन्तु समकिति जो धर्मी कहलाता है, उसने तो आत्मा का आनन्द अन्दर है, उसका स्वाद लिया है। आहाहा ! और वह आनन्द का स्वाद लेता है। उसकी यह चार ओर की संज्ञा की ओर का झुकाव नहीं है। अस्थिरता आवे, वह कहीं वास्तविक झुकाव नहीं है। समझ में आया ? आहाहा !

जन्मान्तर में चली जाती है, ... क्या चली जाए ? यह चार संज्ञा। आहार संज्ञा का रस, भय का, मैथुन का, परिग्रह का। चला जाए चार गति में। आहाहा ! वहाँ कोई गोशाला नहीं कि इसे पूछे कि इस दुःख में कहाँ आया ? आहाहा ! जन्म लेते ही तत्काल प्रगट होती है। लो ! जहाँ जन्म ले कि पूर्व की संज्ञा जो गृद्धि, पर में मोह की दिशावाली दशा, याद आवे, उसे वह आवे। भगवान आत्मा पड़ा रहा। समझ में आया ? तुरन्त ही बालक हो, वहाँ दूध पीने लगे। सिखाया है किसी ने ? कि यह चूसना माता का। उसे तो गृद्धि अनादि की है, वह लेकर आया है, वह सीधे जागृत हुई, एकदम। आहाहा ! माता का दूध पीना परन्तु आत्मा का आनन्द पीना तो चूक गया। समझ में आया ? धर्म-अधर्म में अन्तर है, दिशा फेर है। धर्मी की दृष्टि आत्मा का स्वभाव शुद्ध आनन्द के ऊपर है। इसलिए उसे चार संज्ञा का रस नहीं है। रस उड़ गया है। अज्ञानी का आत्मरस उड़ गया है और चार संज्ञा के रस में घिर गया है। आहाहा ! कुछ भी मैथुन, परिग्रह संज्ञा में सुखबुद्धि रहती है, वही आत्मा के आनन्द को लूटने की बुद्धि है। उत्साह रहे न, उत्साह ! देखो न, दिवाली पर लिखते हैं या नहीं ? अभयकुमार की

बुद्धि होओ, बाहुबली का बल होओ। किसके साथ लड़ना है तुझे ? क्या है ? आहाहा ! बाहुबली का बल होओ, शालिभद्र की ऋद्धि होओ, अभयकुमार की बुद्धि होओ। बनियों ने ठीक रचा है सब सरीखा।

मुमुक्षु : बुद्धि तो दे न व्यापारी।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिना बुद्धि बिना के सब कमा खाते थे। ऐई! मनसुख! इसे खबर नहीं इसके पिता की और सबकी ? दो-दो लाख रुपये कमाते। बुद्धि का क्या काम है वहाँ ? वह तो पूर्व के पुण्य के परमाणु पड़े हों, वे पाप के काल में दिखते हैं। यह मानता है कि मैं चतुर और व्यवस्था की, इसलिए मुझे यह हुआ। मूढ का सरदार है। यह सब ऐसे होंगे यह ? मल्लूकचन्दभाई ! कोई कहता था कि न्यालभाई बहुत सुने न तब तो उसे समझ में आ जाए। ऐसा और कोई कहता था। परन्तु सुनने की निवृत्ति कहाँ है उसे ? यह कोई कहता था, हों ! कोई ऐसा कहे। न्यालभाई यदि पन्द्रह दिन ऐसा सुने तो उसकी दो करोड़ की पूँजी है, उसका रस थोड़ा कम हो जाए।

मुमुक्षु : लड़के ही उसके पिता को यहाँ से वहाँ ले जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : पिता को ले जाए, वह तो ठीक, उसमें कोई उसके पिता को सन्तोष हुआ नहीं। वह तो सब समझाना। ... भाव की बात है, ऐसा कहा था। बहुत सरस बात की है।

मुमुक्षु : वह तो सोना...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... भाई ने ऐसा कहा था। ... ठीक बात की। बात भी ऐसी है। किसी का भाव कोई कुछ कर देता है ? आहाहा ! अरे ! भगवान ! तू किस रास्ते चढ़ गया ? लोग नहीं कहते कि ऐ.. ! किस रास्ते चढ़ गया ? इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि तू किस रास्ते चढ़ गया ? आहार संज्ञा, मैथुन, (भय), परिग्रह चार संज्ञा के रास्ते, वह तो तू पाप के रास्ते चढ़ गया। आहाहा ! समझ में आया ? भारी बात है। शब्द ऐसे इसकी शैली के हैं न इसमें।

‘मोहितः असि त्वम् ।’ चार में ‘भ्रमितः संसारवने अनादिकालं अनात्मवशः’ यह मिथ्यादृष्टि की बात ली, भाई ! समकित्ती चार संज्ञा के वश नहीं। उसे वृत्ति आती है,

उसे जानता है। अपने को जानता है, उसका जाननेवाला है। अज्ञानी उसके वश हो गया है। आहाहा! समझ में आया? तत्काल प्रगट होती है। इसी के निमित्त से कर्मों का बंध करे... लो! जन्में, वहाँ वापस पूर्व की गृद्धि। वह आता है न? लक्ष्मण का, भाई! रावण ने लक्ष्मण को शक्ति मारी थी। वे तो सब बड़े पुरुष थे न। मोक्षगामी पुरुष हैं, हों! वे सब। रावण भी मोक्षगामी है। रावण तीर्थकर होनेवाला है। लक्ष्मण तीर्थकर होनेवाले हैं। राम मोक्ष गये हैं। रावण ने ऐसी ऊँची शक्ति मारी कि मूर्छा आ गयी। राम उलझन में, राजा उलझन में। आहाहा! यह शक्ति यदि सवरे तक रही तो देह छूट जाएगी। परन्तु अन्दर आस्था अवश्य कि वासुदेव, प्रतिवासुदेव को मारने के बाद ही उसका राज होता है। इतना और विश्वास तो अन्दर था परन्तु कितनों को ऐसा हो गया। मूर्छा हो गयी। मुझे दूसरा कहना है।

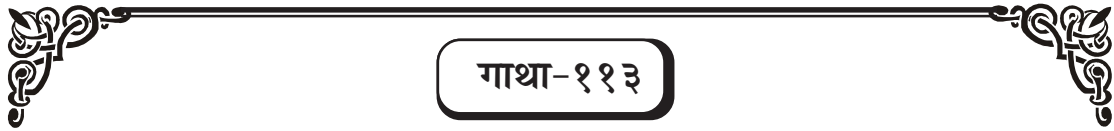
उसमें किसी ने कहा कि परन्तु अब इसका उपाय? मूर्छा हाय... हाय। अब क्या? वासुदेव तो वे थे तीन खण्ड के अधिपति मुख्य। रावण ... नहीं था। रावण जीवित। रावण यदि हो तो इसे भारी हो। कोई उपाय? महिला ने जल छिड़का। एक ब्रह्मचारी महिला थी। मुझे ऐसा कहना है कि सोते, उसमें एकदम क्या बोले? कहाँ गया रावण? यह पहला शब्द। भाई! पहला शब्द यह निकला। मूर्छा थी। वह तो था न अन्दर? जहाँ मूर्च्छा खाकर ऐसे उठा वहाँ कहे, कहाँ गया रावण? यह यहाँ कहते हैं। वह है न अन्दर? समझ में आया या नहीं? यह डाली काटते नहीं? यह डाली क्या कहलाती है? गरमर और डाली। ... डालियाँ नहीं आती? ऐसे काटे। छुरी को लकड़ी की पाली हो, उल्टी। पाली उल्टी रखकर ऐसा करे। अधिक होवे तो नींद आ जाए। जागे वहाँ हो गया। क्योंकि वह काम करते-करते सो गया है। और जरा मेहनत भी पड़े। वह... ... दूसरा क्या कहलाये? डालियाँ-डालियाँ।

मुमुक्षु : होशियार व्यक्ति का...

पूज्य गुरुदेवश्री : होशियार और कठोर बहुत हो। इसलिए वह छुरी बहुत अच्छी यदि हो और उल्टी लकड़ी हो और वह पाली, यह पहले ऐसे देखे हुए की बात है, हों! अब तो कहाँ कौन करता है डाली का। यह तो पहले अपने बनियों में होता था। अपना वह... करता हो जहाँ पाँच-छह घण्टे हो उसे ... होवे तो डाली मण। अभी अध मण

हुआ हो वहाँ सो जाए। और जागे वहाँ हो गया... ऐसा है, हों! ऐसा सब देखा हुआ है। आहाहा! बोरियाँ काटे न बोरियाँ? बोरियों में डालियाँ डाले और ऐसे-ऐसे करे। ...

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि चार संज्ञा की गृद्धि हुई, जहाँ जन्मा, तत्काल लाओ यह। लाओ विषय, लाओ पैसे। इन सबका भणकार। इसी के निमित्त से कर्मों का बंध कर... वापस उस भाव से बन्धन होता है। संसारवन में भ्रमण करता है, इसलिए मुनियों का यह उपदेश है कि अब इन संज्ञाओं का अभाव करो। मुनि को लक्ष्य कर बात है, परन्तु सबको बात लागू पड़ती है। अरे! भगवान! परसन्मुख की संज्ञा की गृद्धि की रुचि तो छोड़। और भगवान आत्मा आनन्द का धाम है, उसकी रुचि कर। तो तेरा अन्त आयेगा, नहीं तो अन्त नहीं आयेगा। यह बाहर का सफेद दिखाव, हँसते दिखाये और काले को रोते मरेगा। समझ में आया? और ऐसी जगह अवतरित होगा। छोड़, छोड़, भाई! आत्मा का प्रेम कर, आत्मा के आनन्द की रुचि कर। परन्तु यह रुचि छोड़। आहाहा!



गाथा-११३

आगे कहते हैं कि बाह्य उत्तरगुण की प्रवृत्ति भी भाव शुद्ध करके करना -

बाहिरसयणत्तावणतरुमूलाईणि उत्तरगुणाणि ।

पालहि भावविशुद्धो पूयालाहं ण ईहंतो ॥११३॥

बहिःशयनातापनतरुमूलादीन् उत्तरगुणान् ।

पालय भावविशुद्धः पूजालाभं न ईहमानः ॥११३॥

तरु-मूल आतापन बहिः शयनादि उत्तर गुणों को।

पालो विशुद्धि भाव-युत नहिं लाभ पूजा चाह हो ॥११३॥

अर्थ - हे मुनिवर! तू भाव से विशुद्ध होकर पूजालाभादिक को नहीं चाहते हुए बाह्यशयन, आतापन, वृक्षमूलयोग धारण करना इत्यादि उत्तरगुणों का पालन कर।

भावार्थ - शीतकाल में बाहर खुले मैदान में सोना-बैठना, ग्रीष्मकाल में पर्वत

के शिखर पर सूर्यसन्मुख आतापनयोग धरना, वर्षाकाल में वृक्ष के नीचे योग धरना जहाँ बूँदे वृक्ष पर गिरने के बाद एकत्र होकर शरीर पर गिरें। इसमें कुछ प्रासुक का भी संकल्प है और बाधा बहुत है इनको आदि लेकर यह उत्तरगुण हैं, इनका पालन भी भाव शुद्ध करके करना। भावशुद्धि बिना करे तो तत्काल बिगड़े और फल कुछ नहीं है, इसलिए भाव शुद्ध करके करने का उपदेश है। ऐसा न जानना कि इसको बाह्य में करने का निषेध करते हैं। इनको भी करना और भाव भी शुद्ध करना यह आशय है। केवल पूजालाभादि के लिए अपना बड़प्पन दिखाने के लिए करे तो कुछ फल (लाभ) की प्राप्ति नहीं है ॥११३॥

गाथा-११३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि बाह्य उत्तरगुण की प्रवृत्ति भी भाव शुद्ध करके करना - मुनि को लक्ष्यकर मुख्य बात है न जरा ?

बाहिरसयणत्तावणतरुमूलाईणि उत्तरगुणाणि ।

पालहि भावविशुद्धो पूयालाहं ण ईहंतो ॥११३॥

अर्थ - हे मुनिवर! तू भाव से विशुद्ध होकर... शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान की श्रद्धा-ज्ञान से शुद्ध होकर... मूल तो सम्यग्दर्शन की बात है भावशुद्ध की। समझ में आया? द्रव्यलिंग धारण किया हो, नग्नमुनि (हुआ हो), परन्तु तूने भाव धारण नहीं किया हो अन्दर में। चैतन्य शुद्धस्वरूप भगवान के पक्ष में गया नहीं और राग का पक्ष अन्दर से छोड़ा नहीं, वह तो दुश्मन के पक्ष में गया है, भाई! समझ में आया? इसलिए कहते हैं, भगवान आत्मा सिद्ध समान तेरा अन्तर स्वरूप है। वह सिद्ध होता है कहाँ से? कहीं बाहर से होता है? वह सिद्ध स्वरूप है, उसमें से एन्लार्ज होता है। आहाहा! विश्वास रहना चाहिए न कि मैं तो एक परमात्मा हूँ। आहाहा! ऐसे परमात्मा को कहते हैं, विशुद्ध भाव प्रगट करके। विशुद्ध शब्द से यहाँ (आशय है) पवित्र। विशुद्ध शब्द से यहाँ शुभ नहीं। समझ में आया? विशेष शुद्धि। सम्यग्दर्शन में शुद्धि तो होती है, परन्तु मुनि को विशेष शुद्धि होती है। भावमुनि, हों! यह सब वस्त्र पहनकर बैठे, वे कोई

साधु-बाधु हैं नहीं। यह तो स्पष्ट बात है। परन्तु नग्नमुनि जो द्रव्यलिंगी हो, जिसने स्त्री-कुटुम्ब, परिवार छोड़ दिया है, परन्तु अन्दर में शुद्धस्वभाव भगवान् आत्मा की दृष्टि और रुचि हुई नहीं, वे सब द्रव्यलिंगी साधु नहीं; परन्तु भावलिंगी नहीं, द्रव्यलिंगी हैं।

उसे कहते हैं कि हे भाई! भाव से विशुद्ध होकर... चैतन्य के आनन्द के रस का प्रेमी होकर विशुद्ध होता हुआ पूजा-लाभादिक को नहीं चाहते हुए... दुनिया की पूजा और लाभ को न चाहता हो। दुनिया मान दे, वह कहीं गिरवी रखा जाए ऐसा है? मरते हुए कहे, हमारी बड़ी इज्जत थी, इसलिए अब हम दुर्गति में नहीं जायेंगे। ऐसा है? विस्तार बड़े हों देश में, गाँव में इज्जत के। वे कहीं गिरवी रखे जायें ऐसा है? कहते हैं, पूजा-लाभ की इच्छा छोड़ दे। हमें लोग माने, हमें कुछ लाभ मिले बाहर का। समझ में आया? ६० वर्ष में लड़का हो तो पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, ऐसा अज्ञानी कहता है। कहो, पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। ठीक ऐई..! रतन शब्द प्रयोग करते हैं न सब? ... रत्न। सब रत्न अर्थात् ऊँचा। प्रत्येक शब्द को रत्न कहा जाता है। उदत ऊँचा हो पानी, उदत रत्न कहा जाता है। पृथ्वी ऊँची हो, उसे हीरा रत्न कहा जाता है। यह सब चीज़ है न! मनुष्यपना ऊँचा मिले, उसे मनुष्यरत्न कहा जाता है। समझ में आया? यह चैतन्यहीरा। आहाहा! इसकी जिसे अन्तर श्रद्धा और भान, आनन्द का भान हुआ है। कहते हैं कि भाई! दुनिया की इज्जत और पूजा की इच्छा क्या हो? पूज्यपना तो तेरा आत्मस्वभाव है। और आत्मा का लाभ हुआ, वह तुझे लाभ है। बाहर की पूजा और लाभ, वह कहीं तेरी चीज़ नहीं है। कहो, समझ में आया?

पूजा-लाभादिक को नहीं चाहते हुए बाह्यशयन, आतापन,... मुनि हैं न? मुनि तो ऐसे होते हैं कि जिन्हें वस्त्र का धागा नहीं होता। मुनि भगवान् के मार्ग के, वीतरागमार्ग के मुनि उन्हें कहते हैं। वे जंगल में बसते हैं, वन में बसते हैं और बाह्यशयन, आतापन, वृक्षमूलयोग धारण करना इत्यादि उत्तरगुणों का पालन कर। परन्तु शुद्ध सम्यग्दर्शन के भानसहित, ऐसा कहते हैं। आत्मा का-शुद्ध का भान नहीं और यह सब करे तो भी उसे कुछ धर्म का लाभ है नहीं।

भावार्थ - शीतकाल में बाहर खुले मैदान में सोना- आहाहा! मुनि अर्थात्? नग्न दिगम्बर और अन्दर आत्मा के आनन्द के स्वादी। समझ में आया? वे शीतकाल में

खुल्ले में सर्दी में बैठते हैं। अन्तर आत्मा के आनन्द को चूसते हो, उसे सर्दी-बर्दी नहीं लगती। आहाहा! उसे मुनि कहते हैं। ऐई! प्रकाशदासजी! यह तो वस्त्र के बड़े ढेर और क्या कहलाये? गर्म कम्बल दो सौ-दो सौ रुपये की, पाँच सौ-पाँच सौ रुपये की। साधु धूल भी साधु नहीं। सुन न! पुण्य भी तेरा अच्छा नहीं, धर्म तो नहीं परन्तु (पुण्य भी अच्छा नहीं)। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं, आत्मा के आनन्द के अतीन्द्रिय अनुभव का स्वादिया आत्मा, वह मुनि होकर कहता है सर्दी। जहाँ बर्फ खुला पड़ता हो, जहाँ आड़ न हो, वहाँ खड़ा रहे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक में आता है न कुछ? भाई! आज के यह मुनि क्या? हिरण जैसे। गाँव के आस-पास आते हैं। ऐसा आया था एक जगह।

मुमुक्षु : आत्मानुशासन।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आत्मानुशासन (गाथा १९७ में आया है) जिस प्रकार हिरण गाँव के आस-पास आता है। मुनि तो वन में होते हैं। ऐसा पाठ है। वन में हों वे यहाँ बाहर आवे अन्दर गाँव में? लोग नहीं कहते? कुत्ते खींचे गाँव तक, सियाल खींचे सीम तक। मुनि तो सीम में रहते थे। मुनि का मार्ग वीतराग का तो सब वन में रहते थे, यह मार्ग था। यह तो सब फेरफार-फेरफार। श्रद्धा में अन्तर, आचरण में अन्तर, सब अन्तर। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा के स्वादी जीव विशेष आत्मा की उग्रता प्रगट करने के के लिये चारित्र जिसने स्वरूप की रमणता प्रगट की है, उसे कहते हैं कि ऐसा चौड़ा मकान खुली जगह हो वहाँ बैठना। आहाहा! यहाँ तो वस्त्र तीन-तीन ओढ़कर सोवे और दरवाजा बन्द करे और आठ घण्टे सोना। और हम साधु। भाई! साधु बापू! उसे नहीं कहा जाता। समझ में आया? आहाहा! सच्ची सन्तदशा किसे कहना, इसे पहिचान कराते हैं।

ग्रीष्मकाल में पर्वत के शिखर पर सूर्यसन्मुख आतापनयोग धरना,... आहाहा! जिसे आत्मा की शान्ति अन्दर जगी है, उस शान्ति में लवलीन बैठा, वह धूप में बैठा हो वहाँ शिखर पर। अन्दर आनन्द की लहर उठती है, उसे मुनि कहा जाता है। उसे जैन परमेश्वर वीतराग कहते हैं, वे मुनि ऐसे होते हैं। समझ में आया? आहाहा! पहले श्रद्धा का भान कराया। ... परसन्मुख का रसवाला, वह मिथ्यादृष्टि है और यह रसवाला, वह

सम्यग्दृष्टि, ऐसा। फिर तदुपरान्त मुनिपना समकित के ऊपर कैसा होता है, मुनि की दशा (वह कहते हैं)। समझ में आया ?

वर्षाकाल में वृक्ष के नीचे योग धरना... वर्षाकाल में वृक्ष के नीचे बैठे। भाई! बात सुनते हुए लोगों को ऐसा हो जाए। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव का कहा हुआ मार्ग यह है। इससे विपरीत सब किया है, वह सब मिथ्याश्रद्धा को पोषण करनेवाले हैं। समझ में आया ? कहते हैं कि **जहाँ बूँदे वृक्ष पर गिरने के बाद एकत्र होकर शरीर पर गिरें।** ऊपर हो न। वृक्ष के नीचे बैठे। पानी... ऐसे गिरे तो... तेजी से पड़े न? ऐसे पृथक् हो तो एक-एक बूँद गिरे ऐसे। परन्तु वृक्ष के ऊपर पानी पड़े इसलिए ऐसे तेजी से पड़े। इकट्ठा होकर ऊपर गिरे। पत्तों के ऊपर पानी इकट्ठा होकर धड़ाधड़ तड़-तड़-तड़। एकदम-एकदम गिरता हुआ। मुनि ध्यान में-आनन्द में बैठे हों। आहाहा! समझ में आया ? बात सुनते हुए लोगों को ऐसा होता है कि ऐसा मार्ग होगा! परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव का-मुनि का तो यह मार्ग है। बाकी सब उल्टा कर दिया है। यह वस्त्र रखना, पात्र रखना, उपाश्रय में रहना, मन्दिर बाँधकर रहना, यह सब मुनिमार्ग नहीं है। वीतराग के मार्ग का मुनिमार्ग नहीं है। आहाहा!

कहते हैं कि **शरीर पर गिरें। इसमें कुछ प्रासुक का भी संकल्प है...** क्योंकि उन पत्तों को स्पर्श कर गिरे न, इसलिए कदाचित् अचेत (प्रासुक) भी पानी हो जाए। मुनि तो जंगल में ही रहते थे। यह श्वेताम्बर जहाँ निकले भगवान के बाद पाँच सौ वर्ष में, तब से यह सब बिगाड़ घुस गया है। समझ में आया ? भगवान के पास छह सौ वर्ष तक तो अनादि सनातन सन्त का दिगम्बर मार्ग था, वह चलता था। उसमें छह सौ वर्ष में दुष्काल पड़ा, उसमें श्वेताम्बर पन्थ निकला। उसमें से फिर यह स्थानकवासी तो अभी पाँच सौ वर्ष पहले श्वेताम्बर निकले हैं। यह वीतराग का मार्ग नहीं है, ऐसा कहते हैं। ऐई! शान्तिभाई! शंकरभाई को बैठना कठिन पड़े वहाँ। मकान करा गये परन्तु फिर सौंपा, हो गया लो। कहो, समझ में आया इसमें ? मकान में तो वे कर गये थे न ? भाई शंकर रख गये थे। शान्तिभाई नहीं थे।

यहाँ कहते हैं कि... आहाहा! मार्ग तो मार्ग परन्तु। मुनि अर्थात् परमेश्वरपद, परमेष्ठीपद। जिसे गणधर नमस्कार करे। णमो लोए सव्वसाहूणं। आहाहा! ऐसे मुनि, वे

आत्मा के स्वभाव के सन्मुख होकर, पर की सन्मुखता छोड़कर और ऐसे तीन काल में भिन्न-भिन्न प्रकार से (ध्यान धरे) । शीत काल में चौड़े खुले में रहना, गर्मी में पर्वत के शिखर पर रहना । ये सब उत्तरगुण है । परन्तु ये उत्तरगुण सम्यग्दर्शन और आत्मा की शुद्धिसहित होना चाहिए, ऐसा कहते हैं । सम्यग्दर्शन और आत्मा का भान न हो और ऐसे सब करे तो वह सब बिना एक के शून्य हैं । समझ में आया ?

प्रासुक का भी संकल्प है और बाधा बहुत है... बाधा बहुत । पानी गिरे सिर में ? ऊपर से आवे तो धड़ाक... धड़ाक... धड़ाक गिरता हो । इनको आदि लेकर यह उत्तरगुण हैं, इनका पालन भी भाव शुद्ध करके करना । परन्तु आत्मा आनन्दस्वरूप का अनुभव करके शुद्धता प्रगट शक्ति में से प्रगट व्यक्तता करके इन उत्तरगुणों को पालना । आत्मा के सम्यक् अनुभव के भान बिना उत्तरगुण ऐसे हो ... वे सब भटकने के रास्ते हैं । आहाहा ! वीतराग परमात्मा तीर्थकरदेव का कहा हुआ मार्ग तो यह है । समझ में आया ? कायर का तो कलेजा काँपे, ऐसा है ।

‘वचनामृत वीतराग के...’ श्रीमद् में आता है न ? ‘परम शान्तरस मूल, औषध जो भवरोग के किन्तु कायर को प्रतिकूल’ ऐसा मार्ग ! ऐसा मार्ग ! यह तो उत्सर्ग मार्ग होगा । परन्तु ऐसा मार्ग सबको होगा कहीं ? यहाँ तो परमेश्वर कहते हैं कि अनादि-अनन्त तीर्थकर के मार्ग में सन्त नग्न और अनुभवी होकर ऐसी दशा में रहते थे, ऐसा अनादि का मार्ग है । यह कहीं नया नहीं है । यह दूसरे फिरके (मत) सब निकले, वे नये-कल्पित हैं । समझ में आया ? ऐसे आत्मा के भान बिना अकेले नग्न हो तो भी उसकी कुछ कीमत नहीं है, कहते हैं । शरीर की दशा, वह तो जड़ की दशा है । वह तो मिट्टी है । अन्तरदशा और दिशा जिसने नहीं बदली । पुण्य और पाप के भाव का भी प्रेम छोड़कर पवित्र भगवान आत्मा की जिसे दृष्टि-रुचि का प्रेम हुआ है, ऐसी शुद्ध भावनासहित ऐसे उत्तरगुण लेना, ऐसा कहते हैं । ओहोहो ! कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी अनादि तीर्थकर की वाणी, भगवान की वाणी, यह वाणी । कहो, समझ में आया ?

भावशुद्धि बिना करे तो तत्काल बिगड़े... आहाहा ! जहाँ आत्मा की सन्मुख का सम्यग्दर्शन और आत्मा के आनन्द का स्वाद नहीं, सम्यग्दर्शन बिना, वह तो बिगड़े, बिगड़े और बिगड़े । ...ऐसे होवे तो सहन न हो, क्रोध आवे, ऐसा हो, वैसा हो, आहाहा ।

गजब काम, भाई! भावशुद्धि बिना करे तो तत्काल बिगड़े और फल कुछ नहीं है, ... सच्चा फल कुछ नहीं, हों! फल सही परन्तु भटकने का। धर्म का फल नहीं। आहाहा! इसलिए भाव शुद्ध करके करने का उपदेश है। चैतन्य भगवान को पुण्य-पाप के विकल्प से भी उदासीन होकर भगवान चिदानन्दस्वभाव का अनुभव करके यह करना, इसके बिना तेरा निरर्थक जाएगा। समझ में आया? ऐसा न जानना कि इसको बाह्य में करने का निषेध करते हैं। परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान और अनुभवसहित ऐसा करना। ऐसा। इनको भी करना और भाव भी शुद्ध करना... उत्तरगुण हों, ऐसा कहते हैं। यह आशय है। केवल पूजालाभादि के लिए अपना बड़प्पन दिखाने के लिए करे... अपनी अधिकाई दिखावे, हम त्यागी हैं, हम मुनि हैं, धूप में बैठते हैं, ऐसा करते हैं, वैसा करते हैं, ऐसा सहन करते हैं, इतने अपवास करते हैं। वह तो केवल पूजा-लाभ के लिये हैं।

बड़प्पन दिखाने के लिए करे तो कुछ फल (लाभ) की प्राप्ति नहीं है। कुछ फल नहीं मिलता। आत्मा का फल नहीं मिलता, ऐसा कहते हैं। भटकने का मिले, वह फल कहलाये? वह तो अनादि से भटकता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... सब खबर है न। सब हमने तो देखा है न एक-एक। नजर से देखा सब एक-एक। यहाँ से ... ले। धूप न लगे। पतरा नीचे तपे। फिर बाहर जहाँ आवे पतासा बाँटा। प्रसन्न हो बैठकर। हमारी उपस्थिति में हमने सब देखा है। सब देखा, बहुत देखा। यहाँ ५७ वर्ष हुए। बहुत प्रकार देखे हैं। आहाहा!

गाथा-११४

आगे तत्त्व की भावना करने का उपदेश करते हैं -

भावहि पढमं तच्चं बिदियं तदियं चउत्थ पंचमयं ।

तियरणसुद्धो अप्पं अणाइणिहणं तिवग्गहरं ॥११४॥

भावय प्रथमं तत्त्वं द्वितीयं तृतीयं चतुर्थं पंचमकम् ।
 त्रिकरणशुद्धः आत्मानं अनादिनिधनं त्रिवर्गहरम् ॥११४॥
 भाओ प्रथम तत्त्व दूसरा तीजा चतुर्थ रु पाँचवाँ।
 त्रि-करण शुद्धि-युक्त शाश्वत त्रि वर्ग-हर आत्मा ॥११४॥

अर्थ - हे मुने ! तू प्रथम तो जीवतत्त्व का चिन्तन कर, द्वितीय अजीवतत्त्व का चिन्तन कर, तृतीय आस्रव तत्त्व का चिन्तन कर, चतुर्थ बन्धतत्त्व का चिन्तन कर, पंचम संवरतत्त्व का चिन्तन कर और त्रिकरण अर्थात् मन-वचन-काय, कृत कारित अनुमोदना से शुद्ध होकर आत्मस्वरूप का चिन्तन कर जो आत्मा अनादिनिधन है और त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ तथा काम इनको हरनेवाला है।

भावार्थ - प्रथम 'जीवतत्त्व' की भावना तो 'सामान्य जीव' दर्शन-ज्ञानमयी चेतना स्वरूप है, उसकी भावना करना। पीछे ऐसा मैं हूँ - इस प्रकार आत्मतत्त्व की भावना करना। दूसरा 'अजीव-तत्त्व' सो सामान्य अचेतन जड़ है, यह पाँच भेदरूप पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इनका विचार करना। पीछे भावना करना कि ये हैं; वह मैं नहीं हूँ।

तीसरा 'आस्रवतत्त्व' है वह जीव-पुद्गल के संयोग जनित भाव हैं, इनमें अनादि कर्मसम्बन्ध से जीव के भाव (भाव आस्रव) तो राग-द्वेष-मोह हैं और अजीव पुद्गल के भावकर्म के उदयरूप मिथ्यात्व, अविरत, कषाय और योग द्रव्यास्रव हैं। इनकी भावना करना कि ये (असद्भूत व्यवहारनय अपेक्षा) मुझे होते हैं (अशुद्ध निश्चयनय से) राग-द्वेष-मोह भाव मेरे हैं, इनसे कर्मों का बन्ध होता है, उससे संसार होता है, इसलिए इनका कर्ता न होना (स्व में अपने ज्ञाता रहना।)

चौथा 'बन्धतत्त्व' है, वह मैं राग-द्वेष-मोहरूप परिणमन करता हूँ, वह तो मेरी चेतना का विभाव है, इससे जो कर्म बँधते हैं, वे कर्म पुद्गल हैं, कर्म पुद्गल ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार होकर बँधता है, वे स्वभाव-प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूप चार प्रकार होकर बँधते हैं, वे मेरे विभाव तथा पुद्गल कर्म सब हेय हैं, संसार के कारण हैं, मुझे राग-द्वेष-मोहरूप नहीं होना है, इस प्रकार भावना करना।

पाँचवाँ 'संवरतत्त्व' है वह राग-द्वेष-मोहरूप जीव के विभाव हैं, उनका न होना

और दर्शन-ज्ञानरूप चेतनाभाव स्थिर होना, यह 'संवर' है, वह अपना भाव है और इसी से पुद्गलकर्मजनित भ्रमण मिटता है।

इस प्रकार इन पाँच तत्त्वों की भावना करने में आत्मतत्त्व की भावना प्रधान है, उससे कर्म की निर्जरा होकर मोक्ष होता है। आत्मा का भाव अनुक्रम से शुद्ध होना यह तो 'निर्जरा तत्त्व' हुआ और कर्मों का अभाव होना यह 'मोक्षतत्त्व' हुआ। इस प्रकार सात तत्त्वों की भावना करना। इसलिए आत्मतत्त्व का विशेषण किया कि आत्मतत्त्व कैसा है - धर्म, अर्थ, काम - इस त्रिवर्ग का अभाव करता है। इसकी भावना से त्रिवर्ग से भिन्न चौथा पुरुषार्थ 'मोक्ष' है, वह होता है।

यह आत्मा ज्ञान-दर्शनमयी चेतनास्वरूप अनादिनिधन है, इसका आदि भी नहीं और निधन (नाश) भी नहीं है। 'भावना' नाम बार-बार अभ्यास करना; चिन्तन करने का है वह मन-वचन-काय से आप करना तथा दूसरे को कराना और करनेवाले को भला जानना - ऐसे त्रिकरण शुद्ध करके भावना करना। माया-मिथ्या-निदान शल्य नहीं रखना, ख्याति, लाभ, पूजा का आशय न रखना। इस प्रकार से तत्त्व की भावना करने से भाव शुद्ध होते हैं।

स्त्री आदि पदार्थों के विषय में भेदज्ञानी का विचार

इसका उदाहरण इस प्रकार है कि जब स्त्री आदि इन्द्रियगोचर हों (दिखाई दें), तब उनके विषय में तत्त्व विचार करना कि यह स्त्री है वह क्या है? जीवनामक तत्त्व की एक पर्याय है, इसका शरीर है वह तो पुद्गलतत्त्व की पर्याय है, यह हावभाव चेष्टा करती है, वह इस जीव के विकार हुआ है यह आस्रवतत्त्व है और बाह्य-चेष्टा पुद्गल की है, इस विकार से इस स्त्री की आत्मा के कर्म का बन्ध होता है। यह विकार इसके न हो तो 'आस्रव' 'बन्ध' इसके न हो। कदाचित् मैं भी इसको देखकर विकाररूप परिणमन करूँ तो मेरे भी 'आस्रव', 'बन्ध' हो। इसलिए मुझे विकाररूप न होना यह 'संवरतत्त्व' है। बन सके तो कुछ उपदेश देकर इसका विकार दूर करूँ (ऐसा विकल्प राग है) वह राग भी करने योग्य नहीं है-स्व सन्मुख ज्ञातापने में धैर्य रखना योग्य है, इस प्रकार तत्त्व की भावना से अपना भाव अशुद्ध नहीं होता है, इसलिए जो दृष्टिगोचर पदार्थ हों उनमें इस प्रकार तत्त्व की भावना रखना, यह तत्त्व की भावना का उपदेश है॥११४॥

गाथा-११४ पर प्रवचन

आगे तत्त्व की भावना करने का उपदेश करते हैं – भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि दूसरी भावना छोड़कर तत्त्व की भावना कर। उसके दो प्रकार कहेंगे।

भावहि पढमं तच्चं बिदियं तदियं चउत्थ पंचमयं।

तियरणसुद्धो अप्पं अणाइणिहणं तिवग्गहरं॥११४॥

पहले सात तत्त्व की व्यवहार से भावना करना, ऐसा कहते हैं।

अर्थ – हे मुने ! तू प्रथम तो जीवतत्त्व का चिन्तन कर,... अर्थ में जरा ज्ञान-दर्शन को निश्चय लेंगे। परन्तु वास्तव में सात तत्त्व है न, वह व्यवहार है। निश्चय है, वह दूसरे गीत में है। ‘तियरणसुद्धो अप्पं अणाइणिहणं तिवग्गहरं’ वह निश्चय है। यह व्यवहार है। परन्तु तो भी व्यवहार में वस्तु तो ऐसा जाने न पहले ? समझ में आया ? आचार्य की शैली देखो ! प्रथम तो जीवतत्त्व का चिन्तन कर,... यह लेंगे अर्थ में। ज्ञान और दर्शन का धरनेवाला आत्मा है, उसकी भावना और पश्चात् आत्मा की भावना।

पश्चात् द्वितीय अजीवतत्त्व... धर्मास्ति, अधर्मास्ति, परमाणु, जड़ सब अजीव हैं। उनका ज्ञान करके छोड़नेयोग्य है, ऐसा जान। तृतीय आस्रवतत्त्व का चिन्तन कर,... तीसरा पुण्य और पाप के भाव, वे आस्रवतत्त्व हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव वह पुण्यास्रव है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, वह पापास्रव है। दोनों हेय हैं। ऐसी भावना कर। समझ में आया ? चतुर्थ बन्धतत्त्व का चिन्तन कर,... राग होता है शुभ, उसमें अटकता है, वह बन्धतत्त्व है। वह आत्मा का स्वभाव नहीं। उसका विचार कर। बन्धतत्त्व का जानना तो करना पड़े न ? और पंचम संवरतत्त्व का चिन्तन कर... इन पुण्य-पाप के विकल्पों को रोककर आत्मा के शुद्ध आनन्द की शान्ति की उत्पत्ति होना, उसे परमात्मा संवर कहते हैं। यह लोग हाथ जोड़कर बैठे पाँच आस्रव के, वह कहीं संवर-फंवर नहीं है। आहाहा ! गजब ! पुण्य और पाप के विकल्प-राग रुके और आत्मा के आनन्द की शान्ति की उग्रता उत्पन्न हो, उसे यहाँ शुद्धि की उत्पत्ति हो, उसको संवर कहते हैं।

त्रिकरण अर्थात् मन-वचन-काय, कृत कारित अनुमोदना से शुद्ध होकर आत्मस्वरूप का चिन्तन कर... लो! यह फिर उसमें आ गया निर्जरा आदि। अब यह निश्चय आया। मन-वचन-काय, कृत कारित अनुमोदना से शुद्ध होकर आत्मस्वरूप का चिन्तन कर... लो! यह निश्चय अकेला आया। अकेला आत्मा अखण्ड आनन्दमूर्ति, स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... वीतराग जिसका स्वभाव अनादि पड़ा है, ऐसे स्वभाव की भावना कर। लो, यह निश्चय यथार्थ।

कैसा है आत्मा? अनादिनिधन है... वह तो अनादि-अनन्त प्रभु आत्मा है। कुछ नया हुआ नहीं। नाश हो, ऐसा नहीं। नया होता नहीं, नाश होता नहीं। है, है और है। आहाहा! नित्य है, नित्य। अनादि अर्थात् आदि नहीं, अनिधन अर्थात् अन्त नहीं। अनादि-अनन्त भगवान आत्मा अनादि... अनादि... अनादि... अनादि का है और अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त काल ऐसा का ऐसा रहेगा। और कैसा है?

त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ तथा काम इनको हरनेवाला है। भाषा देखो! कैसा है आत्मा? कि अनादि-अनन्त है, ध्रुव शुद्ध है। जिसका आश्रय करने से वह आत्मा ऐसा है कि पुण्य, लक्ष्मी और काम, इन तीन का नाश करनेवाला है। समझ में आया? आत्मा पुण्य को उत्पन्न करनेवाला नहीं, ऐसा कहते हैं। पुण्य-पाप और भोग तथा लक्ष्मी, इन सबका नाश करनेवाला आत्मा है। पैसे बिना के हो जाना? पैसे बिना का कर दे, ऐसा आत्मा तो है। समझ में आया? ऐसा आत्मा भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर, तीर्थकर त्रिलोकनाथ भगवान ने कहा और देखा और है। ऐसा आत्मा अन्दर जिसने श्रद्धा-ज्ञान में लिया, वह आत्मा धर्म अर्थात् पुण्य, अर्थ अर्थात् पैसा, काम अर्थात् भोग इनको हरनेवाला है। वह इनका रखनेवाला नहीं। समझ में आया? भोग का, पुण्य का और पैसे का रखनेवाला नहीं। पैसे की ममता, भोग की ममता, पुण्य का भाव, इन तीन का व्यय करनेवाला है, ऐसा कहते हैं। उत्पन्न करनेवाला वह नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ तथा काम इनको हरनेवाला है। ऐसे आत्मा का ज्ञान करके, श्रद्धा करके उसकी एकाग्रतारूपी भावना कर। यह मोक्ष का मार्ग भगवान ने कहा है। समझ में आया? इसे भगवान ने धर्म और मोक्ष का मार्ग कहा है। भगवान

सच्चिदानन्द प्रभु सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा ऐसा, हों! अज्ञानी वीतराग के अतिरिक्त जो आत्मा की बातें करते हैं, उन्होंने तो आत्मा कैसा है, यह देखा नहीं। उसकी बात नहीं। तीर्थकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा, अरिहन्त परमात्मा ने जो आत्मा देखा, ऐसा आत्मा ज्ञात हुआ, ऐसा आत्मा अन्दर में जानकर उसकी भावना करना कि जिससे आत्मा पुण्य-अर्थ का नाश करनेवाला है। आहाहा! उत्पन्न करनेवाला नहीं परन्तु नाश करनेवाला है। आहाहा! आता है न समयसार में? ... भूतार्थ। वह तो उसमें है परन्तु वह आते हैं न १६वीं गाथा के कलश। १६वीं गाथा के। नाम आते नहीं। कैसा आत्मा है? कि इसका नाश करनेवाला है। ध्वंस करनेवाला है। ध्वंसी, ऐसा आता है। १६वें में आता है। नहीं? १६वीं-१६वीं। हों! 'सर्वभावान्तरध्वंसि' १८वाँ कलश है। 'सर्वभावान्तरध्वंसि' वह तो आत्मा के शुद्ध भाव के अतिरिक्त भाव का नाश करनेवाला है। रखनेवाला, रक्षण करनेवाला नहीं। उसे आत्मा कहते हैं और ऐसे आत्मा की श्रद्धा अन्तर्मुहूर्त हो, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। बाकी ... भक्ति उसकी सच्ची है नहीं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१३७, गाथा-११४, बुधवार, कार्तिक शुक्ल १३, दिनांक ११-११-१९७०

११४ गाथा, भावपाहुड़। उसका भावार्थ। भावार्थ है न? उसमें है, इसमें नहीं है। हिन्दी में है। प्रथम लो, पहले अर्थ लो।

अर्थ - हे मुने! मुनि को प्रधान करके यह कथन है। तू प्रथम तो जीवतत्त्व का चिन्तन कर, ... प्रथम ही साधन शब्द है। जीवतत्त्व क्या है, उसकी भावना पहले तू कर। द्वितीय अजीवतत्त्व का चिन्तन कर, तृतीय आस्रवतत्त्व का चिन्तन कर, चतुर्थ बन्धतत्त्व का चिन्तन कर, पंचम संवरतत्त्व का चिन्तन कर और त्रिकरण अर्थात् मन वचन काय, कृत कारित अनुमोदना से शुद्ध होकर... अर्थात् सम्यग्दर्शन प्रगट करके, ऐसा कहते हैं। आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति अखण्ड अनादि-अनन्त, ऐसा जो आत्मा है, उसकी अन्तर अनुभव दृष्टि करके। भावपाहुड़ है न? शुद्धभाव प्रगट करके। पुण्य-पाप

का भाव तो आस्रव, विकारी अशुद्धभाव है। उससे रहित अपना आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द, उस ओर के झुकाव से, सन्मुखता से जो शुद्धभाव, पवित्रभाव वीतरागी पर्याय प्रगट हो, उसका नाम यहाँ शुद्ध भाव कहते हैं। लो, यह धर्म की शुरुआत की बात करते हैं।

शरीर, वाणी तो अजीव है और पुण्य-पाप का भाव है, वह तो अशुद्ध है। आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव ध्रुव नित्यानन्द की दृष्टि करके, दृष्टि का प्रचार, प्रसार ध्रुव में लगाकर शुद्धभाव सम्यग्दर्शन प्रगट करना, वह पहले में पहली चीज़ है। समझ में आया? त्रिकरण शुद्ध करके। मन, वचन और काया। कृत, कारित और अनुमोदन से शुद्ध होकर आत्मा को भा। परमात्मा अपना निज स्वरूप शुद्ध आनन्द और ज्ञान चैतन्यपिण्ड है, उसकी श्रद्धा करके, उसकी एकाग्रता करना, वह आत्मा की भावना कहने में आती है। कैसा है आत्मा? भगवान आत्मा अन्दर कैसी चीज़ है?

अनादिनिधन है... है, उसकी आदि नहीं; है, उसका अन्त नहीं। अनादि-अनिधन। आदि नहीं। है, उसकी आदि क्या? और न हो, उसकी उत्पत्ति क्या? न हो, उसकी उत्पत्ति क्या और है, उसकी उत्पत्ति क्या? समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य ध्रुव अनादि-अनन्त कैसा है? त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ तथा काम इनको हरनेवाला है। उसमें मूल पाठ है। भगवान आत्मा तो ऐसा है कि धर्म अर्थात् पुण्य, अर्थ अर्थात् लक्ष्मी, काम अर्थात् भोग—तीनों का नाश करनेवाला उसका स्वभाव है। तीनों को रखने का, उत्पन्न करने का, रक्षण करने का उसका स्वभाव है नहीं।

मुमुक्षु : धर्म अर्थात् पुण्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य। धर्म शब्द का अर्थ यहाँ पुण्य है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। अनादि से उसने अपनी चैतन्यनिधि चैतन्यनिधान अखण्ड आनन्द और ज्ञान का पिण्ड प्रभु चैतन्य है। है, वस्तु है न? वस्तु है तो उसकी शक्तियाँ वस्तु में रही है न? वस्तु में बसनेवाली शक्तियाँ ज्ञान, दर्शन, आनन्द उसकी शक्ति है। कोई पुण्य-पाप, राग-द्वेष उसका स्वभाव-शक्ति नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं, कैसा है भगवान आत्मा? अनादि-अनन्त है और वर्तमान स्वभाव उसका ऐसा है कि वह तो पुण्य, लक्ष्मी और भोग का अभाव करनेवाला स्वभाव है।

पुण्य की उत्पत्ति करनेवाला उसका स्वभाव नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय शुभ उपयोग, राग की उत्पत्ति करनेवाला नहीं। तो फिर व्यवहार से निश्चय हो, ऐसा अन्तर में है नहीं, ऐसा कहते हैं। गोदिकाजी! समझ में आया? मूल पाठ है न? 'अणाइणिहणं तिवग्गहरं।' मूल पाठ। त्रिवर्ग हरं। पुण्य, लक्ष्मी और भोग तीनों विकार, पाप। लक्ष्मी की ममता और भोग की ममता, वह तो पाप है और धर्म अर्थात् पुण्य है। ये पुण्य और पाप की जो वृत्तियाँ विकल्प है, उसका आत्मस्वभाव हरनेवाला है। ऐसा कहना भी व्यवहार है। समझ में आया? पुण्य को और पाप को उत्पन्न करे, ऐसा कोई आत्मा का स्वभाव है ही नहीं। समझ में आया? द्रव्यस्वभाव नहीं, गुणस्वभाव नहीं। तो पर्याय में राग उत्पन्न करे... दो भाव आये—पाप और पुण्य। अर्थ और काम, वह पाप और धर्म, वह पुण्य। तो शुभ और अशुभभाव आत्मा वस्तु है ऐसी चीज़, उसका स्वभाव पुण्य-पाप को उत्पन्न करे, रक्षा करे—ऐसा स्वभाव है नहीं। परन्तु टाले, ऐसा स्वभाव व्यवहार से कहने में आता है। क्यों? कि वस्तु का स्वभाव शुद्ध आनन्द है, उसमें एकाग्र होता है तो पुण्य-पाप की उत्पत्ति नहीं होती है, उसको हरनेवाला है, ऐसा व्यवहार से कहने में आया है। न्याय समझते हो? लॉजिक से-न्याय से बात है। स्पष्टीकरण होता है या नहीं?

मुमुक्षु : अधिक स्पष्टीकरण चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक? देखो! इतने शब्द में है। 'अणाइणिहणं तिवग्गहरं।' भगवान् अप्पं। अप्पं अर्थात् आत्मा। त्रिकरण शुद्ध। मन, वचन, काया से, करना, करवाना और अनुमोदन से वह त्रिकाल पर से भिन्न शुद्ध स्वरूप है। वह शुद्ध घन, चैतन्यघन वस्तुस्वभाव (है)। यह वस्तुस्वभाव दृष्टि में लेने से, वस्तु तो वस्तु है, जब तक दृष्टि राग, पुण्य-पाप पर है, तब वस्तु स्वभाव की अस्तित्ता, सत्ता का स्वीकार दृष्टि में नहीं है। पाटनीजी! आहाहा! जब तक पुण्य और पाप और परवस्तु पर दृष्टि, लक्ष्य, स्वीकार, आस्था है, तब तक आत्मा कैसा है, उसकी आस्था उसे नहीं है।

मुमुक्षु : क्या कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा? इतना तो बनिये समझे या नहीं? बनिया है या नहीं? ऐई..!

कहते हैं, दो तत्त्व हैं। एक ओर पुण्य-पापतत्त्व और दूसरी अजीवतत्त्व और तीसरा आत्मतत्त्व। समझ में आया? एक ओर अजीवतत्त्व। जीव के अलावा सब जीव और अजीव यह जीव नहीं। इस अपेक्षा से सब अजीवतत्त्व। और पुण्य और पाप के दोनों भाव आस्रवतत्त्व है। अब, वह दो और तीसरा आत्मतत्त्व। आत्मतत्त्व जब तक अपना स्वरूप पूर्ण आनन्द और ज्ञायक है, ऐसा दृष्टि में सत्ता का स्वीकार नहीं है, तब तक पुण्य-पाप और अजीव मैं हूँ, ऐसा स्वीकार है, वह मिथ्यादृष्टिपना है। कहो, समझ में आया? इसमें कोई संस्कृत व्याकरण के पहाड़े सीखने की बात है? यह तत्त्व तो इतना सरल है। समझ में आया?

कहते हैं, पुण्य और पाप आस्रवभाव है। चाहे तो वह पंच महाव्रत का विकल्प हो, वह आस्रवतत्त्व है। और कर्म, शरीर, वाणी आदि सब अजीवतत्त्व है। तो कहते हैं कि अजीवतत्त्व और आस्रवतत्त्व पर जब तक दृष्टि है, तब तक उसकी आत्मा की भावना नहीं है। जिसको अपना मानते हैं, उसको उसकी भावना रहती है। बराबर है? जिसको अपना मानता है, उसकी अपनी भावना उत्पन्न करने का, रखने का, वृद्धि करने का भाव रहता है। तो कहते हैं कि जब आत्मा ज्ञायक चिदानन्द शुद्ध भगवान् ध्रुव है, है, है। है वर्तमान है, भूतकाल है, भविष्य है। है तो वह चीज़ वस्तु है। तो उसका कोई स्वभाव है या नहीं? कि स्वभाव अविनाशी है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता ऐसा त्रिकाली स्वभाव अविनाशी है। ऐसा अविनाशी स्वभाववान्, उसकी दृष्टि करके जो स्वभाव आत्मा की प्रतीति और स्वीकार हुआ कि आत्मा ऐसा है कि पुण्य-पाप और अजीव को उत्पन्न करे या रक्षा करे, ऐसा उसमें है नहीं।

दूसरी बात वह कही कि व्यवहाररत्नत्रय का शुभ विकल्प है, वह आत्मा उत्पन्न करे, ऐसा आत्मा है ही नहीं। तो शुभ विकल्प आत्मा की निश्चयश्रद्धा उत्पन्न करे, ऐसा तो है नहीं। क्या कहा, समझ में आया? पाटनीजी! ऐसा कठिन मार्ग, भाई! कहते हैं, भगवान् आत्मा... यहाँ कहा न? आत्मा की भावना करना। भावना जब तक नहीं है, तब तक पर की भावना तो है। क्योंकि जहाँ लक्ष्य है, जहाँ दृष्टि है, जहाँ पर की सत्ता का स्वीकार दृष्टि में है, तब तो उसकी उत्पत्ति करने में पर्याय में मिथ्यात्वभाव से उत्पत्ति करते हैं। समझ में आया? परन्तु जहाँ आत्मतत्त्व की भावना हुई तो आत्मा तो ज्ञायक

चिदानन्द शुद्ध चैतन्य ध्रुव अनादि-अनन्त, है—ऐसा स्वभाव का स्वीकार हुआ तो वस्तु का स्वभाव ऐसा है कि शुभ-अशुभ परिणाम को उत्पन्न करे, ऐसा स्वभाव नहीं है। अथवा उत्पन्न करे और कर्म का बन्ध करे, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। समझ में आया ? और उसका स्वभाव व्यवहार से कहते हैं... वास्तव में तो आत्मा का स्वभाव राग का परमार्थ से नाश करना, वह उसका स्वभाव नहीं है। समयसार ३४वीं गाथा आती है न ? ३४ गाथा में है। परमार्थ से भगवान आत्मा आस्रवरूप तो नहीं, कर्मरूप तो नहीं, राग को उत्पन्न करे, ऐसा तो स्वभाव नहीं, परन्तु स्वभाव राग का नाश करे, ऐसा परमार्थ स्वभाव उसका नहीं। परन्तु यहाँ व्यवहार से समझाना है। समझ में आया ? क्योंकि राग का नाश करे तो उसकी दृष्टि पर्याय पर जाती है। समझ में आया ? परन्तु राग की उत्पत्ति जिसमें नहीं है, ऐसा स्वभाव की दृष्टि हुई तो राग की उत्पत्ति नहीं होती है, उसको राग को हरनेवाला आत्मा है, ऐसा कहने में आया है। बराबर है ? लॉजिक से तो यह बात है। ऐसे ... माने ऐसे नहीं है। वीतराग तत्त्व ऐसा स्पष्ट है। समझ में आया ? युक्ति, लॉजिक, न्याय, अनुभव और आगम। सबसे सिद्ध हो, ऐसी यह बात है।

कहते हैं, त्रिवर्ग अर्थात् धर्म,... पुण्य अर्थ तथा काम इनको हरनेवाला है। यहाँ भाषा ऐसी आयी है, भाई! उसमें ऐसा कहा, नहीं, परमार्थ से भगवान आत्मा विकार का नाश कर्ता कहना, वह नाममात्र है, वस्तु में वह नहीं है। नाश करे, नाश करे, नाश करे, नाश करे करे... करे... करे उसमें रुक जाएगा। समझ में आया ? जयन्तीभाई! वहाँ हीरे-माणिक में कुछ नहीं है। है वहाँ कुछ ? यह हीरा माणिक है। बाकी तो धूल है वहाँ। दो-पाँच लाख पैदा हो, दस लाख पैदा हो, धूल भी नहीं है। पैदा किसको हो ? सुन न! यहाँ तो तेरा आत्मा अनन्त ज्ञान, आनन्द की लक्ष्मी का भण्डार है। आहाहा! भण्डार जिसमें (भरा है)। ऐसे स्वभाव की भावना करने से अर्थात्... स्पष्ट हिन्दी नहीं आती, थोड़ी-थोड़ी आती है। ऐसा जो आत्मा है, ज्ञानानन्द शुद्ध, कहते हैं कि वह तो पुण्य-पाप का नाश करनेवाला है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का उत्पन्न करनेवाला तो नहीं, परन्तु व्यवहाररत्नत्रय से आत्मा में सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं। बराबर है ? गोदिकाजी! यह एक शब्द का अर्थ चलता है। 'अप्यं अणाङ्णिहणं तिवग्गहरं।' है ? समझ में आया ? यह तो अध्यात्म शास्त्र है। थोड़े शब्द में बहुत भर दिया है। गागर में सागर है। ओहो!

कहते हैं, अरे! तेरी चीज़ क्या है, उस ओर तेरी नजर कभी गयी नहीं। और तेरे में है नहीं, तेरी है नहीं, उसमें तेरी नजर अनादि काल से घूमती है। राग और द्वेष, पुण्य और पाप, शरीर और ये धूल और धाणी, ये पैसे, हीरा, माणिक लो न। आहाहा! वह तेरे में है नहीं, उसमें तू नहीं है। बराबर है? और तेरे में है नहीं, उसकी उत्पत्ति करनेवाला तू है ही नहीं। परन्तु तेरे में नहीं, ऐसी चीज़ है। तो कहते हैं कि आत्मा स्वभाव की जहाँ दृष्टि करता है, वहाँ विकार की उत्पत्ति नहीं होती है तो उसको आत्मा हरनेवाला है, ऐसा कहने में आता है। हुकमचन्दजी! आहाहा! ऐसा मार्ग। स्पष्ट... स्पष्ट। उसमें कहीं सन्देह को स्थान नहीं है। ऐसी चीज़ अनादि से ख्याल में ली नहीं। बाहर में 'भटकत भटकत द्वार द्वार लोकन के कूकर आशाधारी' कुत्ता जैसे होता है न? कुत्ता। होता है न दस बजे भोजन की होती है न? क्या कहते हैं? कुत्ताजाली। कुत्ताजाली लकड़ी की रखते हैं न? वहाँ ऊपर मारं के रोटी दीजिए। दस बजे भोजन का समय हो तब। इस प्रकार ये जहाँ-तहाँ राग से लाभ होगा, पुण्य से लाभ होगा, पाप से लाभ होगा, अनुकूलता होगी तो लाभ होगा। कुत्ते जैसा, कहते हैं कि 'भटकत द्वार द्वार लोकन के'। गोदिकाजी! 'भटकत द्वार द्वार लोकन के कूकर आशाधारी, आत्म अनुभवरस के रसिया, उतरे न कबहू खुमारी, आशा औरन की क्या कीजे? ज्ञान सुधारस पीजे, आशा औरन की क्या कीजे?' यह बात चलती है। आहाहा!

कहते हैं, अहो! धर्म, अर्थ तथा काम इनको हरनेवाला है। इतनी व्याख्या चलती है। आहाहा! भगवान आत्मा उसको कहें, आत्मा उसको कहें और आत्मा ऐसा है कि पुण्य और पाप, शरीर, वाणी, मन, कर्म तो अजीवतत्त्व, एक समय में भी उसकी पर्याय में नहीं है, परन्तु उसकी एक समय की पर्याय में जो पुण्य-पाप आदि है, उसकी भी उत्पत्ति करनेवाला वस्तुस्वभाव नहीं। अज्ञानभाव उत्पन्न करता है। समझ में आता है? समझ में आया? समझाय छे काँई? हमारी गुजराती भाषा है।

कहते हैं, ओहोहो! शुभभाव की उत्पत्ति करनेवाला नहीं, गजब बात है! जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे वह भाव उत्पन्न करनेवाला आत्मा द्रव्यस्वभाव नहीं। अपराध की उत्पत्ति करे, वह आत्मा नहीं। अपराध की उत्पत्ति करे... यद्यपि समकिति है तीर्थकरगोत्र वाला तो उसकी दृष्टि द्रव्यस्वभाव पर है। राग उत्पन्न होता है, वह मेरा

स्वभाव नहीं, उसको हेय जानकर अपने स्वभाव में रहता है। जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भी अपराध है, गुनाह है। आता है या नहीं? पुरुषार्थसिद्धि उपाय, अमृतचन्द्राचार्य। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में पाठ है, जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे वह अपराध है, शुभउपयोग का अपराध है। आहाहा! भगवान! तेरा स्वरूप तो निरपराध सच्चिदानन्द प्रभु है। समझ में आया?

कहते हैं, ओहो! आचार्य ने थोड़े में बहुत भर दिया है, कहा है, हों! जीवतत्त्व ऐसा है, आत्मतत्त्व ऐसा है कि जिसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीर्य, स्वच्छता, प्रभुता इत्यादि अविनाशी शक्तियों का भण्डार आत्मा है। अविनाशी भगवान, उसका अविनाशी स्वभाव वह राग की उत्पत्ति करनेवाला, व्यवहार की उत्पत्ति करनेवाला तो नहीं, परन्तु व्यवहार का नाश करनेवाला है, ऐसा कहते हैं, वह भी अपेक्षा से कहने में आता है। यह राग और मैं उसका नाश करूँ, ऐसा है वहाँ? मैं ज्ञायक आत्मा शुद्ध चिदानन्द हूँ, ऐसी दृष्टि रखते हैं तो राग की उत्पत्ति नहीं होती है, तो राग का हरनेवाला है, ऐसा कहने में आया है। लॉजिक से-न्याय से बराबर है? समझ में आया? देखो! इसमें तो सब तकरार निकल जाती है।

पुण्य-व्यवहार मेरा है, ऐसा माने वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि आत्मतत्त्व नहीं। ऐसा आया है न? व्यवहार का तो नाश करनेवाला है। तो व्यवहार उसका हो तो उसका नाश क्यों होवे? समझ में आया? हैं! यह पुण्य में से निकाला, धर्म में से। धर्म पुरुषार्थ का अर्थ पुण्य है। आहाहा! पुण्य कहो या व्यवहार कहो। अपना स्वभाव नहीं, वह व्यवहार; अपना स्वभाव, वह निश्चय। स्व निश्चय, पर व्यवहार। पुण्य पर है तो व्यवहार हो गया। पुण्य का ज्ञान और आनन्द अपना है, वह तो निश्चय हुआ, अपने में है। समझ में आया? कितनी बात करते हैं!

कहते हैं, भावना की, तत्त्व की बात कही। फिर कहा, अनादि-निधन प्रभु कैसा है? उसका अर्थ अनादि-निधन शुद्ध स्वभाव है, उसकी जिसको दृष्टि हुई, सम्यग्दृष्टि है, उसकी दृष्टि स्वभाव पर हुई, तो विभाव की उत्पत्ति नहीं होती है, उसका नाश करता है, ऐसा उपचार से कहने में आया है। व्यवहार निश्चय को उत्पन्न करे, ऐसी तो बात है नहीं। क्योंकि निश्चय स्वभाव ऐसा है कि व्यवहार की उत्पत्ति न करे, परन्तु व्यवहार

का नाश करे, ऐसा स्वभाव है तो व्यवहार की उत्पत्ति करे, ऐसा नहीं, तो व्यवहार से निश्चय की उत्पत्ति हो, ऐसा भी नहीं है। बराबर है या नहीं? आहाहा! यह तो सिद्धान्त शास्त्र है। न्याय से, लॉजिक से, अनुभव से यह हुआ है। ऐसे ही ऐसे ... कर दे, रक्षा कर दे, ऐसी बात करे ऐसी कल्पित-कपोल बात नहीं है। अनादि सिद्धान्त सत् स्वरूप है भगवान आत्मा, उसका क्या स्वभाव है और उसकी क्या स्थिति है, वह वर्णन करते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, धर्म अर्थात् पुण्य; अर्थ अर्थात् पाप—लक्ष्मी कमाने का भाव। ये कमाने का भाव। बाबूजी! पन्ना... पन्ना। पन्ना पाप नहीं। पन्ना तो अजीब पुद्गल है, परन्तु उसका लक्ष्य करते हैं कि ये। वह पाप है। समझ में आया? आहाहा! भगवान! तूने तेरी चीज़ कभी सुनी नहीं। सुनी नहीं, ऐसा कहते हैं न? श्रुत परिचित अनुभूता। आता है न? कभी सुना नहीं। भगवान! क्या है? तेरी चीज़ कैसी है? कैसा स्वभाव है? यह बात तूने कभी सुनी नहीं। सुनी नहीं तो परिचय में आयी नहीं, परिचय में आयी नहीं तो अनुभव हुआ नहीं। उल्टी बात सुनी। आहाहा! कहते हैं, बहुत सिद्धान्त इसमें आ गये, हों! फिर से लिया वह ठीक किया। भावार्थ से लेना था। ये तो कल हो गया था। आहाहा!

शुद्ध चैतन्य भगवान जिसकी सत्ता में, मौजूदगी में, मौजूद तत्त्व है तो उसकी मौजूदगी में ज्ञान, आनन्द, शुद्धता पड़ी है। वह शुद्धता की एकाग्रता, वह शुद्धता की भावना है। और शुद्धता की भावना करने से भगवान आत्मा उदयभाव संसार की उत्पत्ति जो उदयभाव है, उसकी तो उत्पत्ति करता नहीं, परन्तु उदयभाव की उत्पत्ति स्वभाव के आश्रय में पड़ा है, ध्रुव भगवान की दृष्टि जहाँ अन्दर हुई तो पर्याय में विभाव की उत्पत्ति, संसार की उत्पत्ति, उदय (भाव की) उत्पत्ति न हुई तो उस उदय का तो नाश करनेवाला है, ऐसा कहने में आया। ओहोहो! समझ में आया? उदयभाव उसका है, वह तो नहीं; उदयभाव उत्पन्न करे, ऐसा नहीं; उदयभाव को नाश करता है, ऐसा भी व्यवहार से कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया? लो, वह अर्थ हो गया।

भावार्थ - प्रथम 'जीवतत्त्व' की भावना तो... हिन्दी में से। थोड़े रखे थे। सबको देना है न। हिन्दीवाले आये हैं, इसलिए यहाँ रखे थे। प्रथम जीवतत्त्व, मुख्य बात तो जीवतत्त्व की बात है। उसकी भावना का क्या स्वरूप है? 'सामान्य जीव' दर्शन—

ज्ञानमयी चेतना स्वरूप है, ... भगवान आत्मा सामान्य में विशेषपना रहित, सामान्यपने देखो तो वह शुद्ध दर्शन-ज्ञानमयी दृष्टा-ज्ञाता चेतनामय स्वरूप है। उसका पुण्य-पाप का स्वरूप नहीं, शरीरस्वरूप नहीं, कर्मस्वरूप नहीं, विकारस्वरूप नहीं। समझ में आया ? सामान्य जीव दर्शन-ज्ञान दृष्टापना और ज्ञातापना, ऐसी चेतना। चेतना एकरूप हो गयी। दृष्टा-ज्ञाता चेतनास्वरूप है। भगवान का स्वरूप, उसका रूप दृष्टा और ज्ञाता ऐसा उसका स्वरूप है। **उसकी भावना करना।** पहले तो मैं ज्ञान और दर्शन हूँ, ऐसी भावना करना। गुण की बात करते हैं। मैं पुण्य हूँ, पाप हूँ, लक्ष्मी हूँ, स्त्री, पुत्र और कुटुम्बवाला हूँ, तीन काल में नहीं है। समझ में आया ? पच्चीस, पचास वर्ष पहले यह चीज़ थी ? ये बँगला आपके पास था ? पचास वर्ष पहले था ? नहीं था। पच्चीस साल बाद रहेगा ? नहीं रहेगा। बीच में आपका कहाँ-से हो गया ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ है ? लाईए, कहाँ है ? पहले यह चीज़ नहीं थी, दूसरी चीज़ थी।

मुमुक्षु : पहले नहीं था, बाद में नहीं है, आज है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं है, वही कहते हैं। पहले नहीं था, बाद में नहीं रहेगा, वर्तमान में उसका नहीं है। मान बैठा है उठावगीर। समझ में आया ? जयन्तीभाई ! पहले मीठालालजी थे ? बँगला, दुकान था ? यह शरीर था ? राजकुमार था ? पचास-पचपन वर्ष पहले कोई नहीं था। दस-बीस वर्ष के बाद कोई नहीं रहेगा। तो बीच में उसकी परिणति करके, वह पदार्थ उसके पास करीब क्षेत्र में आया तो उसका कहाँ से हो गया ?

मुमुक्षु : मेहनत से प्राप्त किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी मेहनत नहीं की। मेहनत किसको कहें ? विकल्प किया, वह तो विकार है। लक्ष्मी तो अजीव है। अजीव आया, उसके पास कहाँ आया है ? वह तो अजीव अजीव में है और आस्रव में भी अजीव नहीं तो आस्रव जीव में नहीं। समझ में आया ?

यहाँ तो पहले कहते हैं, त्रिवर्ग का कहा न, वह बाद में लेंगे। पहले जीवतत्त्व

की भावना में सामान्यपने (कहते हैं), मैं तो ज्ञान-दर्शन स्वभाव हूँ। ज्ञान-दर्शन स्वभाव की भावना करना। पुण्य-पाप, विकल्प और संयोग की भावना नहीं करके, उसकी ओर एकाग्रता झुकाव नहीं होकर स्वभाव की ओर झुकाव करके, मैं तो ज्ञान-दर्शन हूँ, (ऐसी भावना करनी)। गुणी आत्मा उसका गुण अविनाशी दर्शन, ज्ञान चेतनास्वरूप की भावना-उसमें एकाग्र होना। वह जीवतत्त्व की भावना।

अब, अभेद कर देते हैं। **पीछे ऐसा मैं हूँ - इस प्रकार आत्मतत्त्व की भावना करना।** पहले तो ज्ञान, दर्शन भाव लिया-स्वभाव लिया, स्वभाव। मैं तो ज्ञान-दर्शन स्वभाव हूँ, ऐसी भावना करना। पीछे मैं आत्मतत्त्व हूँ। कैसा? ऐसा मैं हूँ, यह ज्ञान-दर्शन मैं ही हूँ। ऐसे आत्मतत्त्व की भावना करनी। आहाहा! भारी कठिन साधारण प्राणी को, कायर प्राणी को तो यह वचन ऐसे लगे... ये क्या कहते हैं? भगवान! तेरे घर की बात है, भाई! तेरे घर की बात है। तुझे तेरी खबर नहीं।

एक बार कहा था न? जयपुर में। 'अब हम कबहू न निजघर आये।' जयपुर में किसी ने गाया था। 'परघर भ्रमत अनेक नाम धराये, अब हम कबहू न निजघर आये, कबहू न निजघर आये, अब हम कबहू न निजघर आये, परघर भ्रमत...' पुण्य और पाप और उसके फल। 'अनेक नाम धराये'। मैं पुण्यवन्त, मैं पापी, मैं शरीरवन्त, मैं अजीव, मैं ऐसा, मैं वैसा। अरे! भगवान! तेरा वेश नहीं, उसको अपना वेश मानकर तू चार गति में परघर में भ्रमण किया। तेरी निज चीज़ घर की अविनाशी क्या चीज़ है, उस निधान पर तेरी नजर कभी गयी नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, ज्ञान-दर्शन की भावना करनी। अर्थात् पुण्य-पाप और अजीव की भावना नहीं करनी, ऐसा उसमें आ गया न? वह बाद में लेंगे।

मुमुक्षु : उसका अर्थ करनी।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। करनी का अर्थ हेय है इतना। उसकी भावना करनी, उसका अर्थ कि वह हेय है, ऐसी भावना करनी। ऐसे हैं। समझ में आया? समझाणु काँई? वह हमारी भाषा है। थोड़ी तो आ जाए न अन्दर।

कहते हैं, भगवान आत्मा वस्तु अस्ति मौजूद चीज़, उसमें ज्ञान, दर्शन मेरा भाव

है। पुण्य-पाप, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह मेरा भाव नहीं। समझ में आया ? देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति की श्रद्धा का राग मेरा भाव नहीं। आहाहा! कहाँ जाना है और कहाँ से हटना है, उसकी खबर नहीं और ऐसे ही चलने लगा। चलो, करो, करो। परन्तु क्या करे ? तुम क्या हो ? और कहाँ से हटना है और कहाँ जाना है ? है ? बात सच्ची है। खबर नहीं। भगवान! तेरी चीज़ में तो प्रभु! प्रभुता भरी है न! ज्ञान, दर्शन की तेरी प्रभुता है। विकल्प और राग से तेरी प्रभुता नहीं। आहाहा! लक्ष्मीवाला हूँ, मैं पुत्रवाला हूँ, मैं पुत्रीवाला हूँ... अरे! भगवान! कहाँ से लाया ? वह तेरे में है नहीं और कहाँ से लाया ? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**अनंत काल से भटक रहा विना भान भगवान,
सेव्या नहि गुरु संत को छोड़ा नहि अभिमान।**

वस्तु अन्तर की चीज़ क्या है ? समझने में कभी अभिमान छोड़ा नहीं और स्वरूप की ओर का लक्ष्य करने का अवसर लिया नहीं, ऐसा कहते हैं। दुःखी... दुःखी... दुःखी प्राणी है। अपने ज्ञान, दर्शन के स्वभाव की भावना बिना वह प्राणी दुःखी है। अरबोंपति हो, करोड़ोंपति हो, वह अपने आनन्दस्वभाव को भूलकर पर के ओर की विकल्प की वासना उत्पन्न करता है, वह दुःख है। दुःखी है। पागल उसे सुखी कहते हैं। पागल कहते हैं, ये पैसेवाले सुखी हैं। धूल में भी सुखी नहीं हैं। कौन कहता है सुखी है ? तेरी जाति पागल को पागल सुखी कहता है। तेरी जाति पागल की है। पागल का अस्पताल।

भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा वीतरागदेव तीर्थकर सौ इन्द्र के समक्ष समवसरण में ऐसा फरमाते थे। समझ में आया ? साक्षात् सीमन्धर भगवान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ तीर्थकर विराजते हैं। उनकी वाणी में यह आया। उसे यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा है, ऐसा कहते हैं।

कहते हैं, पहले उसकी भावना करना। उसकी अर्थात् ? मैं तो चेतन, चेतनास्वरूप हूँ। मैं चेतन अर्थात् आत्मा, चेतनास्वरूप हूँ। उस ओर झुककर अपने इतने अस्तित्व का स्वीकार करना। बहुत सूक्ष्म बात। और **पीछे ऐसा मैं हूँ...** ऐसा स्वरूप हूँ, वह तो ठीक, लेकिन वह मैं ही हूँ। आहाहा! ऐसा मैं हूँ। ऐसे 'आत्मतत्त्व की भावना करना।'

बहुत सुन्दर बात! ऐसा भगवान आत्मतत्त्व, आत्मतत्त्व वस्तु स्वभाव की भावना। मैं तो स्वभाववान हूँ। चेतनास्वरूप ही मैं हूँ। समझ में आया? गुण-गुणी का भेद भी निकालकर चेतनास्वरूप, चेतन उसस्वरूप ही है अनादि से। ऐसी अन्तर्दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन बिना, ऐसे स्वभाव का सन्मुख होकर स्वीकार किये बिना जितना कायक्लेश, व्रत, नियम, तप आदि करे, सब संसार में भटकने की चीज़ है। समझ में आया? ऐसे आत्मतत्त्व की भावना करना।

अब, दूसरा तत्त्व। पहले पाठ आया न? 'भावहि पढमं तच्चं'। पहला तत्त्व वह। द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम। दूसरा 'अजीव-तत्त्व' सो सामान्य अचेतन जड़ है, यह पाँच भेदरूप पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल है, ... मन का रजकण, वाणी का रजकण, देह का रजकण, वह सब पुद्गल जड़ अजीव है। मेरे में है नहीं, मेरा है नहीं, उसमें मैं हूँ नहीं। पाँच भेद में पुद्गल एक परमाणु रजकण से लेकर बड़ा स्कन्ध। शरीर, वाणी, मन, कर्म, लक्ष्मी, मकान, आबरू आदि पुद्गल है। प्रशंसा की आवाज उठती है कि बड़ा है, बड़ा है। अभिनन्दन देते हैं, लो! वह सब तो परमाणु है। आवाज उठती है, वह तो जड़ की अवस्था है, परमाणु की अवस्था है। वह तो पुद्गल है। मेरे में है नहीं। आहाहा! मैं पुद्गल में आता नहीं। प्रशंसा होती है, उसमें आत्मा जाता है? किसकी प्रशंसा कौन करे? भगवान भगवान तू अपनी प्रशंसा करे। दूसरा कौन करे? दूसरा उसे दिखता नहीं तो क्या दूसरा करे? समझ में आया?

कहते हैं कि वह पुद्गल जड़ अजीवतत्त्व है। आहाहा! वह मुझे हेय है। धर्म। धर्मास्तिकाय है न? अधर्मास्ति, आकाश और काल। पाँच। इनका विचार करना। पीछे भावना करना कि ये हैं; वह मैं नहीं हूँ। देखो! लक्ष्य में तो लेना, ज्ञान करना कि वह मैं नहीं हूँ। आहाहा! मन का परमाणु, वाणी का परमाणु, देह का परमाणु रजकण, वह मैं नहीं।

तीसरा 'आस्रवतत्त्व' है, वह जीव-पुद्गल के संयोगजनित भाव हैं, ... इसका अर्थ सिद्ध करना है इसलिए (ऐसा कहा)। निश्चय से तो अपनी पर्याय में आत्मा करता है। परन्तु वह स्वभाविक भाव नहीं है। पर के लक्ष्य से उत्पन्न होता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, वह आस्रवतत्त्व है। वह जीव और पुद्गल के

संयोगजनित भाव है। जिस भाव से तीर्थकरगोत्र गँधे, वह भाव भी संयोगजनित आस्रवभाव है। समझ में आया ? जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भाव भी आस्रव है। धर्म से विरुद्ध भाव है। ऐसा आस्रवतत्त्व जो जीव, पुद्गल के संयोगजनित, हों! संयोग ने उत्पन्न किये, ऐसा नहीं। परन्तु स्वभाव में नहीं है और पुण्य-पाप का भाव संयोगी चीज़ के लक्ष्य से उत्पन्न होता है तो संयोगजनित कहने में आया है। स्वभावजनित नहीं है। ऐसा। समझ में आया ?

इनमें अनादि कर्मसम्बन्ध से जीव के भाव (भाव आस्रव) तो राग-द्वेष-मोह हैं... अब आस्रव के दो भेद करते हैं। आस्रव के दो भेद करते हैं, एक भावास्रव, एक द्रव्यास्रव, दो। अनादि कर्मसम्बन्ध से जीव के भाव... कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में होनेवाला भाव राग-द्वेष और मोह, राग-द्वेष और मिथ्यात्व भाव है। और अजीव पुद्गल के भावकर्म के उदयरूप मिथ्यात्व, अविरत, कषाय और योग द्रव्यास्रव हैं। जड़ का-जड़ परमाणु का जो उदय है, वह अजीव है। आत्मा में उसके सम्बन्ध से राग-द्वेष, मिथ्यात्व-मोहभाव होता है, वह भावआस्रव है और जड़ द्रव्यआस्रव है। इस भाव आस्रव से भावना करना कि वे मेरे हेय है। उसकी भावना करनी कि वह मेरे लिये हेय है। राग-द्वेष और मोह भी हेय है। हेय चाहिए। वह गलत है। समझ में आया ? वह तो बाद में आगे लेंगे इस अपेक्षा से लेंगे। मेरे विभाव ऐसा शब्द आगे आता है। ऐसे ले सकते हैं। आगे आयेगा। मेरे विभाव है, ऐसा पाठ आयेगा। चार-पाँच पंक्ति के बाद। मेरे है, उसका अर्थ कि उसकी पर्याय में है परन्तु हेय है मूल। समझ में आया ? परमाणु है, वह तो भिन्न है। राग-द्वेष, मोह है, वह उसकी पर्याय में है, होते हैं, हेय है। होते हैं, हेय है। आहाहा! ऐसा समय मिले कब ? संसार का समय बचपन खेल में खोया, जवानी स्त्री मोह्या, वृद्धपना देखकर रोया। उसके तीनों गये।

मुसलमान में रोजा होते हैं न ? रोजा। रोजा में गाते थे। पालेज में सुना था। पालेज में क्लोहरा बहुत हैं। ... बचपन खेल में खोया। पन्द्रह-बीस वर्ष खेल में गया। खाना-पीना, गेंद से खेला। फिर जवान हुआ। पहले गेंद से खेला। गेंद में से फिर दगा किया। माया, कपट, कुटिल, संसार की विचक्षणता करे। जवानी स्त्री में मोहित हुआ। बुढ़ापा देखकर रोया। आहाहा! अब बैठा नहीं जाता। सहारा लेकर... समझे ? टेका

बिना बैठ सकता नहीं। आँख में पानी आता है, कान से सुनाई नहीं देता, आँख में कच्चा दिखता है। दाँत गिर गये, अब क्या करना? अरे! भगवान! जब करना था, तब तो किया नहीं।

आता है न? जब तक रोग उत्पन्न नहीं हो, वृद्धावस्था नहीं है, तब तक तेरा काम कर ले। पीछे नहीं होगा। पीछे नहीं होगा तो तुझे लगेगा, हाय... हाय..! अष्टपाहुड़ में है। ... अष्टपाहुड़ में मोक्षपाहुड़ में है। शरीर की इन्द्रियाँ जीर्ण हो नहीं, जरावस्था न हो,दारिद्र्य, रोग न हो, तब तक अपना काम कर ले, भैया! वह तो जड़ की दशा बदलेगी तो तुझे फिर हाय... हाय (होगा)।

मुमुक्षु : छहढाला में भी है 'जबलों न रोग जरा गहे....'

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है, छहढाला में आता है। ये तो अपने आचार्य का आधार लिया। मोक्षपाहुड़ में। दशवैकालिक में श्वेताम्बर में आता है। श्वेताम्बर में दशवैकालिक शास्त्र है न? उसमें आता है। उस वक्त तो छह हजार श्लोक कण्ठस्थ किये थे न! श्वेताम्बर में। 'जरा जाव न पिडेइ, वाही जाव न वट्टई, जाविदया न हायंति, ताव धम्मं समायरे' जब तक शरीर में जीर्णता (नहीं आती), जरा नहीं है, तब तक आत्मा का कर ले, भाई! 'वाही जाव न वट्टई' व्याधि। शरीर में रोग की उत्पत्ति नहीं हो, (तब तक कर ले)। एक शरीर में पाँच करोड़ अड़सठ लाख, निन्यावें हजार, पाँच सौ चौरासी रोग हैं।

मुमुक्षु : इतना तो डॉक्टर कहते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टर को भान कब था? कुन्दकुन्दाचार्य महाराज अष्टपाहुड़ में—भावपाहुड़ में कहते हैं। इसमें आ गया। पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यावे हजार पाँच सौ चौरासी। एक अंगुल में छियानवें रोग। एक अंगुल में छियानवें रोग हैं। ऐसा सारा शरीर है। इसमें है, भावपाहुड़ में आ गया है। कौन-सी (गाथा में है)? भावपाहुड़ में है। गाथा-३७। 'एक्केक्केगुलिवाही छणणवदी होंति जाण मणुयाणं' ३७। तीस और सात। है न? गाथा-३७। 'इस मनुष्य के शरीर में एक-एक अंगुल में छियानवें-छियानवें रोग होते हैं, तब कहो अवशेष समस्त शरीर में कितने रोग कहें।' तीन और सात। भगवती आराधना में उसकी संख्या है।

कहते हैं, शरीरादि अजीव को हेय जानकर अपने स्वरूप की भावना कर। समझ में आया ? इनकी भावना करना... क्या भावना करनी ? कि मेरे लिये हेय है। राग-द्वेष-मोह भाव मेरे हैं, इनसे कर्मों का बंध होता है,... वह तो जितना राग, द्वेष और मोह है उतना तो बन्ध होगा, उसमें आत्मा का थोड़ा-सा भी लाभ नहीं है। आहाहा ! चाहे तो शुभराग हो या अशुभ हो, बन्ध का कारण है, ऐसा कहते हैं। ऐसा विचार करना। इनसे कर्मों का बंध होता है, उससे संसार होता है, इसलिए इनका कर्ता न होना... भाषा देखो ! रागरूप परिणमना नहीं। मैं तो ज्ञानानन्दस्वभाव हूँ, ऐसी दृष्टि करके आनन्दरूप परिणमन करना। राग-द्वेष का परिणमन नहीं करना। वह अपनी चीज़ नहीं। आहाहा ! और ज्ञाता-दृष्टा रहना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? विकल्प होता है, हो। जैसे परद्रव्य है, वैसे वह परद्रव्य है। अपने स्वभाव में उसका स्पर्श है नहीं। उसका कर्ता नहीं होना। आस्रव का कर्ता होना तो मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया ? ऐसी आस्रवतत्त्व की भावना करना। इत्यादि लेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-१३८, गाथा-११४, गुरुवार, कार्तिक शुक्ल १४, दिनांक १२-११-१९७०

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। ११४वीं गाथा चलती है। यहाँ आया है, देखो ! राग-द्वेष-मोह भाव मेरे हैं, इनसे कर्मों का बंध होता है, उससे संसार होता है, इसलिए इनका कर्ता न होना... है ऊपर ? क्या कहते हैं ? जो आत्मा है, वह तो शुद्ध चैतन्य का आनन्दघन है। उसमें जो कर्म का निमित्त के संग से जो पुण्य-पाप का भाव राग-द्वेष मोह उत्पन्न होता है, वह भावबन्ध है और नये बन्ध का कारण है। समझ में आया ? इस कारण से वह हेय है। ऊपर से पाँचवीं लाईन है। आया ? क्या कहा ? देखो ! कर्ता न होना। उसका कर्ता न होना उसका अर्थ कि आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव है, उस पर दृष्टि रखकर ज्ञाता-दृष्टा रहना, उसका नाम धर्म कहने में आता है। आहाहा ! राग और द्वेष करना और उसका फल भोगना, वह तो संसार है। समझ में आया ? ऐसी भावना करनी,

ऐसा कहते हैं न? राग-द्वेष भाव और मोहभाव है, वह मिथ्यात्व आदि भावबन्ध नये द्रव्यबन्ध का कारण है। अपनी दृष्टि में उसको हेय समझकर अपना आत्मा आनन्द ज्ञायकस्वरूप को उपादेय करके, उसका अनुभव शान्ति का वेदन करना, उसका नाम संवर, निर्जरा और धर्म कहने में आता है।

कल तप का था न? भाई! कल शब्द नहीं था। फिर आज निकला। यहाँ कोई पुस्तक पड़ी थी। तप तेज आता है न? तप का तेज कहा था न कल? उस तप से मुक्ति होती है। तप से निर्जरा होती है। कौन-सा तप? ये अनशन, ऊनोदरी, लंघन वह नहीं। तप की व्याख्या करते हैं। यहाँ पड़ा था, किसी ने रखा था। अभी देखा। किसी ने रखा होगा। कल बात हुई थी न। आगे निश्चयतप वीर्य शक्ति का स्वरूप कहते हैं। वास्तविक तप जो निर्जरा का कारण है और निर्जरा मोक्ष का कारण है, वह क्या चीज़ है? आगे निश्चयतप वीर्य शक्ति का स्वरूप कहते हैं। तप कहिये तेज। कल आया था न? कल हाथ नहीं आया था। तप कहिये तेज। तेज कहिये अपनी ... अपनी तेजस्वी। चिदानन्द ज्ञानानन्द का तेज, तेजस्वी। अनन्त गुण चेतना की, अनन्त गुण चेतना की प्रवाह का प्रकाश। अनन्त ज्ञानानन्द चैतन्यस्वभाव, उसका पर्याय में प्रकाश, प्रवाह... प्रवाह... प्रवाह... ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम का प्रवाह प्रकाश होना ताके निष्पन्न ... की सामर्थ्य। उसका नाम निश्चय तप वीर्य शक्ति कहने में आता है। तपवीर्य। समझ में आया?

ज्ञानचेतना का प्रकाश। अब एक-एक का खुलासा करते हैं। भगवान ज्ञानस्वरूप है। तो उस ज्ञानचेतना का प्रकाश स्वसंवेदन। ज्ञान का वेदन और राग और द्वेष, पुण्य-पाप का वेदन छोड़ना। वह नास्ति से है। अपना ज्ञानस्वभाव त्रिकाली है, उसका स्वसंवेदन, स्व अपना सं अर्थात् प्रत्यक्ष, ज्ञान का वेदन अन्तर एकाग्रता होना, उसका नाम तप तेज कहने में आता है। भगवानजीभाई! आहा! बहुत सरस। कहो, समझ में आया? ज्ञानचेतना का प्रकाश स्वसंवेदन। और स्वपरप्रकाश। देखो! उसका नाम तप। कठिन व्याख्या, भाई! प्रतपन इति तपः। जैसे सुवर्ण में गेरु लगाने से सुवर्ण शोभित ओपित होता है। ओपित दिखता है न? तेज... तेज। ऐसे भगवान आत्मा अपना ज्ञान और आनन्द जो ध्रुव स्वभाव है, उसमें एकाग्र होकर ज्ञाता-दृष्टा और आनन्द की पर्याय का तेज, प्रभा, प्रकाश होना, उसका नाम परमात्मा तप कहते हैं। आहाहा! यह तो कहे,

उपवास किया, अनशन किया, ऊनोदरी की तो हो गया तप। वह तो लंघन है। लंघन... लंघन। उसे लंघन कहते हैं।

आता है न? उपवास। यह तो अपवास है। उप-वास। आत्मा ज्ञाता-दृष्टा का भान, आनन्द का धाम, उसके उप अर्थात् समीप बसना अर्थात् लीन होना, उसका नाम तप और उपवास कहते हैं। अपने स्वभाव की समीपता छोड़कर पुण्य-पाप के विकल्प में बसना, उसका नाम अपवास कहते हैं। घाशीलालजी! यह संस्कृत शब्द है। अपवास है। शुभ विकल्प में रहना, मैंने आहार छोड़ दिया, ऐसा किया, वैसा किया—ऐसे शुभ विकल्प में रहना, वह अप-वास है।

उप-वास। चिदानन्द भगवान् आनन्द का धाम दृष्टि में लेकर उसमें लीन होना, उसका नाम वास्तव में तप उपवास कहने में आता है। वह तप निर्जरा का कारण है। ये लंघन अपवास करे, वह निर्जरा का कारण है, धूल भी नहीं है। भान नहीं है। ऐई! प्रकाशदासजी! अपवास किये अष्टमी और चतुर्दशी को तो हो गया तप, वह निर्जरा। निर्जरा वह धर्म और धर्म मुक्ति का कारण है। धूल में भी नहीं है। तुझे तप की खबर नहीं। समझ में आया? लो!

निजप्रभा भार विकासमण्डित तेज। निजप्रभा भार—प्रकाश का भार बढ़ गया, तेज। अन्तर्दृष्टि करने से स्वभाव में एकाग्र होने से चैतन्य के प्रकाश का भार बढ़ गया। बोझा अर्थात् उग्रता शक्ति की व्यक्तता प्रगट हुई। भाषा भी समझे नहीं। समझ में आया? निजप्रभा भार विकासमण्डित तेज। भगवान् चिदानन्दस्वरूप, जिसमें ज्ञान, आनन्द अपरिमित अनन्त अपार बेहद स्वभाव (भरा है), उसमें एकाग्र होने से शक्ति में से ज्ञान और आनन्द का-प्रभा का भार, बोझ बढ़ गया। जहाँ राग रहे नहीं, विकल्प रहे नहीं, ऐसी निर्विकल्प दशा की प्राप्ति, उसका नाम भगवान् तप और निर्जरा कहते हैं। आहाहा! एक भी तत्त्व की खबर नहीं और माने कि हम धर्मी हो गये, कर लिया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं है। धूल में अर्थात्? लोकोत्तर पुण्य भी नहीं बँधेगा। पापानुबन्धी पुण्य बँधेगा। तत्त्व क्या चीज़ है, पर्याय क्या है, गुण क्या है, शक्ति क्या है, शक्तिवान् कितना बड़ा माहात्म्यवाला तत्त्व है, ऐसी खबर बिना लंघन करते हैं और मानते हैं कि हमें तप हो गया। कहते हैं कि भगवान् उसको तप कहते नहीं।

इसी प्रकार दर्शन निराकार उपयोग। सर्वदर्शी सामान्य चेतना का प्रभाव भार, प्रकाश का तेज। पहले ज्ञान का कहा, फिर दर्शन उपयोग शक्ति त्रिकाल है न? उसमें से शुद्धता दर्शन उपयोग की परिणति की निर्मलता, रागरहितता, शुद्धतासहितता ऐसे दर्शन उपयोग की परिणति, उसको प्राभाभार प्रकाश का तेज (कहते हैं)। आहाहा! कठिन व्याख्या। यह चिद्विलास है। दीपचन्दजी है न? दीपचन्दजी। अनुभवप्रकाश, आत्मावलोकन, चिद्विलास उन्होंने बनाया है। समझ में आया? ऐसे अनन्त गुण का तेजपुंज का प्रभाभार। अनन्त गुण का प्रकाश का भार। विकसित होती शक्ति की व्यक्तता। प्रकाश का तेज। ऐसे द्रव्य का तेज। वह द्रव्य का तेज है। अपने द्रव्य का तेज अन्दर में भरा है। ऐसे द्रव्य, गुण, पर्याय का प्रभाभार प्रकाश तप कहिए। लो, उसे भगवान के मार्ग में, सर्वज्ञ के पन्थ में तप कहने में आता है। पाटनीजी! यह तप की व्याख्या।

मुमुक्षु : तपसा निर्जरा...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त की बात है। तपसा निर्जरा। ऐसा तप हो तो बाह्य में किस तरफ से लक्ष्य छोड़ा था, आहार से, ऊनोदरी से, उसकी व्याख्या है। वस्तुस्थिति वह नहीं है। समझ में आया? वह प्रश्न पहले आया था न? गजराजजी के बड़े भाई, कौन? तोलाराम। यहाँ (संवत्) २००९ की साल में आये थे न? स्पेशियल (ट्रेन) लेकर। जाना था न? बाहुबली यात्रा। स्टेशन में वह था। बहुत लोग थे। एक आदमी ने तोलारामजी को पूछा, सेठ! महाराज को पूछो। तपसा निर्जरा कहते हैं न तत्त्वार्थसूत्र में? तपसा निर्जरा। आता है या नहीं? तपसा च निर्जरा। देखो! तत्त्वार्थसूत्र में आता है। पूछो, महाराज को पूछो कि तप से निर्जरा होती है या नहीं?

भगवान! तपसा निर्जरा की व्याख्या वह है, अपना चैतन्यप्रकाश का नूर, पूर प्रकाश की पर्याय में प्रकाशित उग्रपने प्रगट होता है, उसको तप कहते हैं। उस वक्त निमित्त का क्या लक्ष्य था और छूट गया, उसको व्यवहार तप कहते हैं। निश्चयतप वास्तविक तप तो यह है। कहो, भीखाभाई! उसका अर्थ यह है। तत्त्वार्थसूत्र व्यवहार का ग्रन्थ है। पर्याय से बताया तो। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग, ऐसा लिखा है न? सब पर्याय की बात है। अन्दर भिन्न चैतन्य है। द्रव्यस्वरूप जो भगवान आत्मा, वह

सात तत्त्व और नव तत्त्व की पर्याय से भेदरूप नहीं है, ऐसा अभिन्न तत्त्व। ऐसा भगवान आत्मा का अनुभव करना, दृष्टि लगाकर स्थिर रहना, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! क्या हो? दुनिया को मिला नहीं और मिला है, वह उल्टा मिला है।

मुमुक्षु : सत्य वचन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य वचन है? तो अब तक ये सब क्या किया? अनन्त काल से सबको हुआ है न। एक ही कहाँ (बात है)। सबको अनन्त काल से हुआ है न? आहाहा! भगवान आत्मा रजकण से तो पार, पुण्य-पाप के विकल्प से पार और एक समय की पर्याय भी जिसमें नहीं है, समझ में आया? ध्रुव स्वरूप है, जिसमें एक समय की निर्मल पर्याय भी नहीं है। समझ में आया? ध्रुव है न? ध्रुव। ऐसा नित्यानन्द भगवान। उसमें कर्म, शरीर और वह तो नहीं, पुण्य-पाप का विकल्प तो नहीं, परन्तु पुण्य-पाप को जानने की जो वर्तमान पर्याय है, वह पर्याय भी त्रिकाल ध्रुव में नहीं। ऐसे ध्रुव भगवान को ध्येय में लेकर पर्याय में उसको विषय बनाकर, ध्येय बनाकर, विषय बनाकर उसमें लीन होना, वही दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, बाकी सब बातें हैं। समझ में आया? यह तो कल आया था न? तप का तेज कहीं है तो सही, चिद्विलास में निकला।

यहाँ कहते हैं, देखो! चेतना... क्या कहते हैं? रागद्वेषमोहरूप परिणमन करता हूँ, वह तो मेरी चेतना का विभाव है,... बन्धतत्त्व। है? बन्धतत्त्व। वत तो राग-द्वेष का कर्ता नहीं होना, वह आस्रव में गया। अब, चौथा 'बन्धतत्त्व' है, वह मैं रागद्वेषमोहरूप परिणमन करता हूँ, वह तो मेरी चेतना का विभाव है,... विकार है, दोष है। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणामरूप परिणमना वह विभाव है, धर्म का उल्टा रूप है। आहाहा! चिद्विलास। कल आपको अन्दर कहा था न? चिद्विलास। समझ में आया? मेरी चेतना का विभाव है,... ओहो! मैं तो ज्ञाता-दृष्टा ऐसा त्रिकाली अविनाशी मेरा स्वभाव है, उसमें वह पुण्य और पाप का विकल्प, राग-द्वेष-मोह है, वह तो उसका विभाविक विकारी भाव है। वह स्वभाव के साथ विकार तन्मय है नहीं, परन्तु तन्मय मानना, वही मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? शान्तिभाई!

इसमें किसे कहना संथारा? आहाहा! अभी तो तत्त्व की खबर नहीं है कि मैं आनन्दमूर्ति हूँ। एक देह के रजकण के परिणमन में मेरा बिल्कुल अधिकार नहीं। वह

स्वतन्त्र परमाणु का परिणमन अपना स्व अस्तित्व रखता है, तो अपने अस्तित्व से उसमें परिणमन होता है, अपने से बिल्कुल नहीं। आहार छोड़ता हूँ, आहार ग्रहण करता हूँ, वह बुद्धि मिथ्यात्व है। आहाहा! क्योंकि आहार तो अजीवतत्त्व है। अजीवतत्त्व को छोड़ता हूँ तो अजीवतत्त्व क्या तेरे में था कि छोड़ता हूँ? समझ में आया? वह तो छूटा ही पड़ा है। अजीवतत्त्व अपने में अजीव द्रव्य, गुण, पर्याय से अजीवतत्त्व रहा है। तेरी पर्याय में तो आया नहीं। और तुम कहते हो कि मैं छोड़ता हूँ। क्या है? वह तो स्वामी हो गया। जड़ का स्वामी होकर छोड़ता हूँ। तो अजीव का स्वामी तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। आहाहा! कठिन बात। ऐई! रसिकभाई! वहाँ सब सुना था या नहीं? कलकत्ता। राजगृही में नहीं सुना था? कहो, समझ में आया? आहा! मार्ग वीतराग का कहीं है और दुनिया कहीं और चलती है। और मानते हैं कि हम जैनधर्म को मानते हैं। जैनधर्म तो वीतरागभाव है। आत्मा का त्रिकाली स्वभाव वीतरागभाव है। त्रिकाली, हों! त्रिकाली वीतरागभाव स्वभाव है। वीतरागभाव का अर्थ अकषाय स्वभावभाव है। ऐसा जो वीतरागबिम्ब प्रभु ध्रुव है, उसमें एकाग्र होकर वीतरागता की पर्याय प्रगट हो, वह जैनधर्म है। समझ में आया? द्रव्य की खबर नहीं, पर्याय की खबर नहीं। विकार में एकाकार होकर तन्मय रहे और माने कि हम तप और निर्जरा करते हैं। मिथ्यात्व का पोषण करते हैं। पण्डितजी! आहा!

कहते हैं, वह तो चेतना का विभाव है। विकल्प उठता है कि मैं आहार छोड़ूँ। मैंने आहार छोड़ दिया। ऐसे छोड़ दिया, वह मान्यता मिथ्यात्व है और छोड़ दिया, ऐसा विकल्प है, वह राग है। समझ में आया? वह तो चेतना का विकार है, अधर्म है। इससे जो कर्म बँधते हैं, वे पुद्गल हैं, ... उससे नय कर्म बँधे, वह पुद्गल है। कर्म पुद्गल हैं, कर्म पुद्गल ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार होकर बँधता है, ... कर्म तो जड़ है। राग, द्वेष, मोह चेतना का विभाव परिणाम है और कर्म जो बँधते हैं, वह तो जड़ की पर्याय है। समझ में आया? ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार होकर बँधता है, वे स्वभाव-प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूप चार प्रकार होकर बँधते हैं, ... स्वभाव (अर्थात्) कर्म प्रकृति का स्वभाव—कर्म का। वे मेरे विभाव तथा पुद्गल कर्म सब हेय हैं, ... शुभ-अशुभ विकल्प उठना, वृत्ति उठना और उससे नया कर्म रजकण बँधे,

सब मेरी चीज़ से तो भिन्न है, हेय है। उपादेय तो मेरा ज्ञानानन्द भगवान पूर्णानन्द पूर्ण इदं, पूर्ण मेरा स्वरूप त्रिकाली है, वही मुझे आदरणीय अर्थात् उपादेय है। कठिन काम जगत को। कोई कहे कि इतनी बड़ी ऊँची बात! ऊँची नहीं है, अभी तो सम्यग्दर्शन की पहली बात है। समझ में आया? आहाहा!

वे मेरे विभाव तथा पुद्गल कर्म सब हेय हैं, ... क्यों? संसार के कारण हैं, ... आहाहा! शुभ और अशुभ विकल्प जो राग है, वह स्वयं संसार है। क्योंकि उदयभाव है, वह संसार है। समझ में आया? अब संसार है, दूसरी रीति से संसार का कारण है, ऐसा कहा। भटकने का कारण है। नाश करने का कारण वह है नहीं। मुझे राग-द्वेष-मोहरूप नहीं होना है, ... देखो! संसार के कारण हैं, मुझे राग-द्वेष-मोहरूप नहीं होना है, इस प्रकार भावना करना। राग-द्वेष-मोहरूप नहीं परिणमना है, ऐसी भावना करने का अर्थ? वह तो नास्ति से हुआ। मेरा स्वभाव आनन्द का धाम, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द, रसकुण्ड, रसकन्द और रसकुण्ड है। जिसमें से रस निकलता है, ऐसा मेरा अतीन्द्रिय आनन्द रसकन्द और रसकुण्ड, उसमें एकाग्रता होना... समझ में आया? और उसमें लीन होना, वह मेरा स्वभाव है, वह मेरा धर्म है, लो! ऐसी भावना करनी। आहाहा!

शरीर के प्रत्येक रजकण से भिन्न मानना कठिन पड़े। ये सब अवयव-बवयव जड़ की पर्याय है, मिट्टी की है। पुद्गल है, पुद्गल। जड़ अजीवतत्त्व है। और वह अजीव होकर रहा है। शरीर की पर्याय, कर्म की पर्याय, वह तो अजीव होकर रही है। या जीव की होकर रही है? अजीव होकर रही है। यह अँगुली, नाखून, आँख वह तो अजीव होकर रही है। जीव का द्रव्य होकर नहीं, जीव का गुण होकर नहीं, जीव की पर्याय होकर रही नहीं। उसको अपना अपनाना कि मैं हूँ तो चलते हैं, मैं हूँ तो बोला जाता है, सब जड़ का स्वामीपना मिथ्यात्वभाव है। गोदिकाजी! ऐसा मार्ग है। ओहो! आहा!

भगवान! तेरी माहात्म्य की चीज़ तो अन्दर ज्ञान, आनन्द और शान्ति वह माहात्म्य की चीज़ है। पुण्य-पाप के विकल्प वह माहात्म्य की चीज़ नहीं है। वह तो हीनता, आत्मा का तिरस्कार करनेवाला है। लो, वह आया। १९वीं गाथा में आया था न?

समयसार १९वीं गाथा। तिरस्कारणीय। पुण्य-पाप का भाव आत्मा का तिरस्कार करते हैं कि हम हैं, तुम नहीं। ज्ञानी आत्मा पुण्य-पाप का तिरस्कार करते हैं कि तुम नहीं, मैं हूँ। समयसार में १९वीं गाथा है। समझ में आया? आहाहा! बहुत थोड़े में बहुत बड़ी बात है। अनादि से वह दृष्टि में अपनी चैतन्य की चीज़ क्या है, उसकी नजर की नहीं, उसका माहात्म्य लाया नहीं। माहात्म्य लाया नहीं तो आया नहीं। माहात्म्य पुण्य और पाप का विकल्प और देह का माहात्म्य। जिसका माहात्म्य करता है, उसका संयोग छूटेगा नहीं। जिसका माहात्म्य करता है, उसका संयोग छूटेगा नहीं, चार गति में रहेगा। और उस संयोग का माहात्म्य छूटकर अपना भगवान पूर्णानन्द प्रभु, जिसमें तो अनन्त-अनन्त सिद्धपद पड़ा है, अनन्त सिद्धपद आत्मा में (पड़ा है), हों! (उसका माहात्म्य किया नहीं)। सिद्ध तो पर्याय है। सिद्ध तो पर्याय है। गुण-द्रव्य नहीं। संसार विकारी पर्याय है। मोक्षमार्ग अविकारी अपूर्ण पर्याय है। मोक्ष अविकारी पूर्ण पर्याय है। तीनों पर्याय है। सिद्ध की पर्याय तो नयी-नयी उत्पन्न होती है और अनन्त काल रहती है। ऐसी अनन्त-अनन्त सिद्धपर्याय आत्मा के अन्तर गुण में पड़ी हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भगवान अनन्त सिद्धस्वरूप प्रभु, उसकी भावना करनी, ऐसा कहते हैं। समझ में आता है?

वे मेरे विभाव तथा पुद्गल कर्म सब हेय हैं, संसार के कारण हैं, मुझे राग-द्वेष-मोहरूप नहीं होना है, इसप्रकार भावना करना। पाँचवाँ 'संवरतत्त्व' है, वह राग-द्वेष-मोहरूप जीव के विभाव हैं, उनका न होना... उनका न होना। होना, वह आस्रव और नहीं होना, वह संवर। बात तो बहुत अच्छी, सरल है परन्तु लोगों ने ऐसी क्लिष्ट कर दी है कि आत्मा को पकड़ना और पर को छोड़ना कठिन पड़ता है। कहते हैं, पाँचवाँ 'संवरतत्त्व' है, वह राग-द्वेष-मोहरूप जीव के विभाव हैं, उनका न होना... कब न हो? कि अपना पूर्ण आनन्द और पूर्ण शुद्ध स्वभाव, जिसमें आस्रव और बन्धभाव का अभाव है, ऐसा अबन्धस्वभावी आत्मा, उसमें अन्तर एकाग्र होने से आस्रव का नहीं होना, संवर का होना। समझ में आया? यहाँ तो शास्त्र के लिये बात की है न? इसलिए वह तो व्यवहार है। उसमें से तत्त्व की भावना करनी, निश्चय बाद में लेंगे। समझ में आया? भेद से बात की है न।

वास्तव में तो जीव की एक समय की पर्याय और संवर, निर्जरा, मोक्ष, वह सब पर्याय है। निश्चय से अन्तःतत्त्व में तो वह पर्याय है ही नहीं। समझ में आया ? वह तो बहिरतत्त्व है। संवर, निर्जरा, मोक्ष की एक पर्याय है, तो बाह्य है। बाह्य अर्थात् व्यक्त हुई है। वह अन्तर ध्रुव में नहीं है। समझ में आया ? बहिर व्यक्त हो गयी है पर्याय। तो उसको बहिरतत्त्व कहते हैं। क्योंकि वह तो एक समय का अंश है। सिद्ध की पर्याय भी एक समय की है। तो वह भी अन्तःतत्त्व के सामर्थ्य की अपेक्षा से उसको भी बहिरतत्त्व कहते हैं। समझ में आया ? यहाँ तो भेद से कथन किया है। फिर अभेद का कथन अन्त में लेंगे। त्रिवर्ग में आ गया न ? त्रिवर्गहरणं। अन्त में आया न ? 'अणाइणिहणं तिवग्गहरं।' ११४वीं गाथा।

कहते हैं, और दर्शन-ज्ञानरूप चेतनाभाव स्थिर होना, यह 'संवर' है, ... अस्ति-नास्ति की। राग-द्वेष के विकल्प का नहीं होना और अपनी शुद्धता की स्थिरता की, शान्ति की, वीतरागता का वेदन होना, उसका नाम संवर कहने में आता है। आहाहा! लोग बैठे जाए, संवर, पच्चक्खाण करने पाँच आस्रव सेवनेवाले पच्चक्खाण। लो, हमें संवर हो गया। धूल में भी नहीं है संवर। ... क्या बैठे ? तुम बैठे कहाँ हो ? पुण्य-पाप के विकल्प में बैठे हो और यहाँ बैठे हो, ऐसा कहते हो। समझ में आया ? बाबूजी ! क्या है ? ऐसा मार्ग कठिन पड़े, हों !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... उसकी घर की चीज़ है। वह कोई बाहर से लाना है ? किसी के पास माँगना है ? चीज़ है। चीज़ है, उसके समीप जाना, बस, वह बात है। विकल्प करके चीज़ से दूर-दूर भटकते हैं। अन्तर समीप आना, वह चीज़ है। समझ में आया ?

कहते हैं, संवर। दर्शन-ज्ञानरूप चेतनाभाव। जानना-देखनारूप चेतनाभाव त्रिकाली शक्ति, वह भाव स्थिर होना। उसमें लीनता करना। ज्ञान-दर्शन स्वभाव, ऐसा स्वभाववान आत्मा, उसमें लीनता करना, स्थिरता करना, उसको संवर, मोक्ष का मार्ग कहते हैं। आहाहा! वह अपना भाव है... देखो! संवर तो अपना भाव है। तो भाव से बन्ध कैसे हो ? ऐसा कहते हैं। पुण्य-पाप का विकल्प है, वह तो विभाव है, उससे तो बन्ध हो, नये बन्ध में निमित्त हो, परन्तु जो अपना स्वभावभाव है, वह बन्ध का कारण कैसे हो ?

भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव और उसमें एकाग्र होकर ज्ञाता-दृष्टा चेतन का निर्मल परिणाम प्रगट किया, वह तो अपना भाव है, अपनी निर्मल पर्याय है। उससे नया कर्म क्यों बँधे? समझ में आया? ऐसे तत्त्व की भावना, विचारणा लेनी, ऐसा कहते हैं। वास्तविक तत्त्व का स्वरूप ऐसा है। इसी से पुद्गलकर्मजनित भ्रमण मिटता है। देखो! इसी से पुद्गलकर्मजनित भ्रमण मिटता है। ज्ञाता-दृष्टा स्वरूप में लीन होने से भ्रमणा का भाव नहीं उत्पन्न होता है तो भ्रमणा मिट जाती है। बाह्य तो ऐसी स्थिति है। आहाहा!

इस प्रकार इन पाँच तत्त्वों की भावना करने में... देखो, अब। आत्मतत्त्व की भावना प्रधान है,... अब आया। पाँच कहा, उसमें भी आत्मा की मुख्य बात प्रधान है। पर्याय की भावना नहीं करनी। पहले विचार में लेना कि ऐसी चीज़ है, ऐसी चीज़ है। परन्तु आत्मतत्त्व की भावना करनी। वस्तु आत्मा त्रिकाल ध्रुव ज्ञायकभाव से परिपूर्ण भरी है। परिपूर्ण ईश्वर आत्मा है।

कल किसी का एक प्रश्न आया है, भाई! कहाँ का? आगरा का। ३० वर्ष का कोई दिगम्बर जैन है। बताया था। वैष्णव का मुझे परिचय हो गया है और आपका एक एक आत्मधर्म पढ़ा तो मुझे खलबली मच गयी कि ओहो! यह तो एक-एक आत्मा स्वतन्त्र कहते हैं और वह तो कहते हैं ईश्वर में मिल जाए, उसका नाम मोक्ष, ऐसा कहते हैं। कल पत्र आया है। इसमें है। ये रहा। ३० वर्ष से मैं दिगम्बर जैन हूँ। ३० वर्ष की उम्र। परन्तु मेरा परिचय वैष्णव का था। वह कहते हैं, कि आत्मा का ईश्वर में मिल जाना, वह मोक्ष। आपका पढ़ा तो ऐसा कहा, आत्मा अपने स्वरूप से परमेश्वर स्वयं हैं। वह किसी से मिलता नहीं। ऐसा पढ़कर मुझे खलबली मच गयी। बहुत लिखा है। लोगों को जैन में रहने पर भी उसकी खबर नहीं। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं है। मानते हैं। दिगम्बर धर्म कोई सम्प्रदाय नहीं है। समझ में आया? श्वेताम्बर जो निकले हैं, वह तो तत्त्व से विरुद्ध होकर निकला है। श्वेताम्बर और स्थानकवासी। वह भी दिगम्बर लोगों को मालूम नहीं है। जय भगवान! यह भी सच्चा और यह भी सच्चा।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य कौन है, उसकी भी कहाँ खबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य कौन है? वह तो परमेश्वर के पुत्र हैं। धवल में चला है। गणधर सर्वज्ञ का पुत्र है। धवल में चला है। ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य

सर्वज्ञ के केडायत। सर्वज्ञ परमात्मा का केडायत। केडायत समझते हो? मार्ग पर चलनेवाले, उनके रास्ते पर चलनेवाले। सर्वज्ञ का पेट खोलकर रख दिया। छद्मस्थ थे, परन्तु उनकी शक्ति अल्पकाल में केवलज्ञान लेंगे। समझ में आया? ऐसा क्या कहते हैं, वह खबर नहीं। अपना भी सच्चा और उसका भी सच्चा, उसका भी सच्चा। सब सच्चा। समन्वय करो। एकता आयेगी। धूल में एकता आयेगी? दूधपाक में खारा नमक डालना, एकता आ गयी। मीठा समझे? क्या कहते हैं उसे? नमक... नमक। दूधपाक होता है न? दूधपाक। हमारे में दूधपाक कहते हैं। समझे? आप लोगों में खीर कहते हैं। हमारे खीर उसे कहते हैं, एक सेर दूध में नवटांक चावल (डाले), उसका नाम खीर। और एक सेर दूध में एक रुपये भर चावल, उसको कढ़ना, उसका नाम दूधपाक। यहाँ दो प्रकार चलते हैं। एक सेर दूध में एक नवटांक... नवटांक समझे? पाँच रुपये भर का चावल डालना। तो उसमें चावल बहुत हो गया न? तो बहुत कढ़ते नहीं तो उसको खीर कहते हैं। और एक सेर दूध में एक रुपया भर चावल (डालकर) कढ़ते हैं, वह दूधपाक। वह दूधपाक हुआ बाद में नमक डालना इतना। समन्वय हो जाए। दूध फट जाएगा और तेरा दूधपाक नहीं रहेगा। समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भैया!

ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागदेव ने जो आत्मा का स्वरूप कहा, उससे सब जाति दूसरी विपरीत... विपरीत... विपरीत। समझ में आया? ऐसी चीज़ कहीं है नहीं। तत्त्व ही ऐसा है। जैसा है, वैसा कहा है। काशीलालजी! ऐसा है, भगवान! क्या करे? दुनिया से अनमेल हो जाता है। भगवान! मार्ग तो तेरा ऐसा है। सब भगवान है न! सब आत्मा भगवान है! पर्याय में भूल है, तिरस्कार करनेयोग्य है नहीं, विरोध करनेयोग्य है नहीं, द्वेष करनेयोग्य नहीं। कोई आत्मा के प्रति कोई द्वेष नहीं। ... विपरीत हो, उसे समझ लेना। समझ में आया? मार्ग तो यह एक है। समझ में आया?

कहते हैं, आत्मतत्त्व की भावना प्रधान है, ... यहाँ तो कहा। ऐसा कहा न? पाटनीजी! संवर की, निर्जरा की, आस्रव की, ... अकेली आत्मतत्त्व की भावना प्रधान है। वह तो गौण भेद की बात कही है। आहाहा! प्रधान है। भेद की भावना गौण है। आत्मतत्त्व अखण्ड आनन्द प्रभु चैतन्यतत्त्व का अन्तर अनुभव करना, दृष्टि करनी, वह मुख्य है। समझ में आया? उससे कर्म की निर्जरा होकर... देखो! उससे कर्म की

निर्जरा होती है। लो, यह तप और यह निर्जरा। आहाहा! उससे कर्म की निर्जरा होकर मोक्ष होता है। लो। तब मोक्ष होता है। आत्मा का भाव... एक यह शब्द रह गया है। आत्मा का भाव अनुक्रम से शुद्ध होना, यह तो 'निर्जरा तत्त्व' हुआ... अशुद्ध की निर्जरा और मोक्ष की व्याख्या करते हैं।

भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य ईश्वर परमेश्वर अपना स्वरूप, उसमें एकाग्रता होना, अल्प शुद्धता होना, उसका नाम निर्जरातत्त्व। क्रम, क्रम से शुद्धता होनी, वह निर्जरातत्त्व। समझ में आया? और (सर्व) कर्मों का अभाव होना यह 'मोक्षतत्त्व' हुआ। शुद्धि की उत्पत्ति होना, वह संवरतत्त्व। शुद्धि की अनुक्रम से वृद्धि होना, वह निर्जरातत्त्व। शुद्धि की पूर्णता होना, मोक्षतत्त्व। बहुत सरल भाषा में तत्त्व है। सादी भाषा में है, ऐसा कोई क्लिष्ट नहीं है। क्लिष्ट लोगों ने कर दिया है।

आत्मा अपने निज स्वरूप में पुण्य-पाप के विकल्प का लक्ष्य, रुचि, आश्रय छोड़ करके अपना निजानन्द भगवान में शुद्धता का प्रगट करना, वह तो संवर। और शुद्धता शक्ति में से थोड़ी प्रगट हुई, उसमें से शुद्धता की अनुक्रम से वृद्धि करना, वह निर्जरा। और शुद्धि की पूर्णता पर्याय में करना, उसका नाम मोक्ष। द्रव्य शुद्ध तो त्रिकाल है। समझ में आया? मार्ग तो तेरा ऐसा है, भगवान! परन्तु उसने कभी लक्ष्य नहीं किया। एकान्त हो जाता है। अरे! तुझे मालूम नहीं है और एकान्त कहाँ से हो गया? जैन में एकान्त है, एकान्त है, मिथ्यात्व है। सुन तो सही, भगवान! तेरे स्वभाव में एक अन्त अर्थात् एकान्त स्वभाव सन्मुख नहीं होगा तो कभी शुद्धि होगी नहीं। समझ में आया? गोदिकाजी! ऐसा भाव है, हों! वहाँ जयपुर में तो लोग ऐसा सूक्ष्म सुन सकेंगे?

मुमुक्षु : तैयारी हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : तैयारी हो गयी लो। यहाँ तो सूक्ष्म आये न।...

यहाँ कहते हैं, ओहो! शुद्ध आत्मा का भाव। पहले भाव कहा न? अपना भाव आया न? संवर सो अपना भाव है, ऐसा ऊपर आया। अन्दर आया न? ऊपर तीसरी पंक्ति में आया। संवर है, वहाँ अपना भाव है... उस भाव का अनुक्रम से होना। आत्मा का भाव शुद्ध अनुक्रम से होना, वह तो निर्जरातत्त्व हुआ। समझ में आया? तीन बात

करते हैं। भगवान आत्मा अपना शुद्ध स्वभाव में एकाग्रता होना, आत्मतत्त्व की भावना करके, वह भाव संवर। शुद्धभाव प्रगट हुआ। क्योंकि त्रिकाली शुद्ध है और पुण्य-पाप तो अशुद्ध है। उससे हटकर, जो त्रिकाली है, उसमें जुड़ान करके जो शक्ति में से व्यक्तता संवर की प्रगट हुई, वह भाव, वह शुद्ध। और उस भाव में अनुक्रम से शुद्धि की वृद्धि एकाग्र होकर होना, उसका नाम निर्जरा होना। उसकी पूर्ण एकाग्रता होना, पूर्ण शुद्धि प्रगट होना, वह मोक्ष। भैया! मार्ग तो ऐसा है, भगवान! आहाहा!

तीन लोक का नाथ कहाँ डोलता है और कहाँ जा रहा है, उसकी उसे खबर नहीं। समझ में आया? वीतरागमूर्ति चैतन्यकन्द अनाकुल आनन्द का भगवान धरनेवाला, ऐसा वह तत्त्व है। ऐसे तत्त्व की दृष्टि का पता नहीं और मात्र राग और पर की क्रिया निमित्त की अथवा वर्तमान एक समय की पर्याय पर नजर। भगवान पूरा आनन्दकन्द जो है, उसका तो अनादर हुआ। समझ में आया? ये यहाँ अन्तर आत्मा स्वभाव का सागर प्रभु, शुद्ध स्वभाव का सागर, उसमें एकाग्र होकर राग-द्वेष, पुण्य-पाप का अभाव (अर्थात्) उत्पन्न नहीं होना, उसके स्थान में सम्यग्दर्शन और वीतरागी पर्याय का उत्पन्न होना, वह चेतना का भाव है। उस भाव में स्वभाव की शुद्धता में एकाग्र होकर शुद्धता की वृद्धि होना, वह निर्जरा है। पूर्ण एकाग्र होकर पूर्ण शुद्धि प्रगट होना, उसका नाम मुक्ति है। उसमें कोई पुण्यभाव का परिणाम कारण है और सहायक है, ऐसा है नहीं। आहाहा! क्या हो? पुकार... पुकार कहाँ करना? मार्ग तो तेरा ऐसा है, भगवान! आज मान, पीछे मान परन्तु यह मानने पर तेरा छुटकारा है। बन्धन से छूटना हो तो रास्ता तो तेरा प्रभु ऐसा है। समझ में आया?

इस प्रकार सात तत्त्वों की भावना करना। इसलिए आत्मतत्त्व का विशेषण किया... भेद करके कहा। अब आत्मतत्त्व कैसा है... अब आत्मतत्त्व कैसा है। एकदम निश्चय लेते हैं। अभेद करते हैं। धर्म, अर्थ, काम - इस त्रिवर्ग का अभाव करता है। भगवान आत्मा तो... आया न? पहले आया न? त्रिवर्ग। अपवर्ग। समयसार। पहली गाथा में है न? मूल पाठ में है और टीका में लिया है। गति प्राप्त कहा न? 'वंदितु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते' अमृतचन्द्राचार्यदेव ने टीका में उसमें से निकाला है न। कौन सी गति? त्रिवर्ग से पार मोक्षगति। अपवर्ग जिसकी संज्ञा है। टीका

में ऐसे आता है न ? त्रिवर्ग जिसकी संज्ञा है, त्रिवर्ग जिसकी संज्ञा है। त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम। पुण्य और पाप। तीन में से संक्षेप करो तो धर्म अर्थात् पुण्य, अर्थ और भोग का भाव, वह पाप। तीन में से दो हो गया। पुण्य और पाप। दो में से एक करना हो तो वह भावबन्ध है। समझ में आया ? भावबन्ध को यहाँ त्रिवर्ग कहते हैं। त्रिवर्ग है, उससे मोक्ष अपवर्ग है। त्रिवर्ग से अभावरूप मोक्ष है। मोक्ष अपवर्ग है, अपवर्ग है। वर्ग रहित है। दया, दान, पुण्यभाव, लक्ष्मी कमाने का भाव, भोग का भाव, वह त्रिवर्ग तीन हुआ। पुण्य और पाप का अभाव अपवर्ग हुआ। अपवर्ग अर्थात् मोक्ष। समझ में आया ? वह पहली गाथा में आया है। समयसार है न ? समयसार।

गतिप्राप्त है न ? कैसी है गति ? मुक्ति। अपवर्ग किसका नाम है। पाठ है न ? 'अपवर्गसंज्ञिकां गतिमापन्नान् भगवतः' संस्कृत है। 'अपवर्गसंज्ञिकां गतिमापन्नान् भगवतः'। परमात्मा सिद्ध तो अपवर्ग गति को प्राप्त हुए हैं। अपवर्ग किसको कहते हैं ? कि त्रिवर्ग का जिसमें अभाव है, उसका नाम अपवर्ग। धर्म, अर्थ और काम त्रिवर्ग कहलाते हैं... धर्म अर्थात् पुण्य। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण, वाँचन, मनन का विकल्प सब पुण्यभाव है। अर्थ-पैसा। पैसा तो जड़ है। वह नहीं, उसकी ममता और कामभोग की ममता। यह त्रिवर्ग कहलाते हैं। मोक्षगति इस वर्ग में नहीं है, इसलिए उसे अपवर्ग कही है।' समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म। सूक्ष्म नहीं है, भगवान! तेरे घर की बात है। परन्तु उसने घर का माहात्म्य सुना ही नहीं। घर की चीज़ क्या है ?

'परघर भ्रमत नाम अनेक धराये।' जयपुर में कोई गाता था न ? 'अब हम कबहू न निजघर आये, परघर भ्रमत नाम अनेक धराये।' परघर भ्रमत। पुण्य और पाप का भाव तो परघर है। निजघर हो तो हमेशा रहेगा। ये तो हमेशा रहनेवाली चीज़ नहीं है। ऐसा भगवान आत्मा, अकेला ज्ञान का पिण्ड, चैतन्यबिम्ब वीतरागी मूर्ति। चारित्र की अपेक्षा वीतरागी मूर्ति। ज्ञान की अपेक्षा चैतन्यपिण्ड, दर्शन की अपेक्षा दर्शन का पिण्ड, वीर्य की अपेक्षा वीर्य-बल का पिण्ड। आनन्द की अपेक्षा आनन्द का कन्द। ऐसा भगवान तेरा आत्मा प्रभु! उसके सामने तूने कभी देखा नहीं। उसके सन्मुख कभी देखा नहीं। आहाहा! बाहर भटकते-भटकते तेरा किनारा आया नहीं, भगवान! आहाहा! दुनिया-

दुनिया की जाने। दुनिया कैसे कहती है और कैसे मानती है, उसकी जिम्मेदारी उसको है। तेरा स्वभाव तो ऐसा है, भगवान! ऐसी बात है।

कहते हैं, धर्म, अर्थ, काम – इस त्रिवर्ग का अभाव करता है। इसकी भावना से त्रिवर्ग से भिन्न... देखो! किसकी भावना? आत्मा की। आत्मा की भावना से त्रिवर्ग से भिन्न चौथा पुरुषार्थ 'मोक्ष' है, वह होता है। पुण्य की भावना करने से पुण्य करो, विशेष करो, विशेष करो... उस पुण्य से तो संसार होगा। आहाहा! लोग चिल्लाते हैं, हों! व्यवहाररत्नत्रय साधन तो है या नहीं? व्यवहाररत्नत्रय पहले आता है या नहीं? पीछे निश्चय होता है या नहीं? बिल्कुल नहीं। भगवान! तुझे क्या कहना है? पहले मैल आये, फिर निर्मल होता है, ऐसा कहना है?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु मैल तो अनादि काल से हुआ है, वह सुना नहीं? पण्डितजी! निगोद में क्षण में साता बाँधते हैं और क्षण में असाता बाँधते हैं। निगोद, नित्यनिगोद। और अनित्य निगोद। शास्त्र में लिखा है, क्षण में साता बाँधती है, क्षण में असाता बाँधती है। तो साता किस भाव से बाँधती है? पापभाव से बाँधती है? तो शुभभाव तो अनन्त बार निगोद में भी हुआ है। वह कहाँ नयी चीज़ है? अनादि निगोद पड़ा है। नित्यनिगोद, जिसने कभी निगोद में से निकलकर पृथ्वी एकेन्द्रिय नहीं हुआ, त्रस नहीं हुआ, मनुष्य नहीं हुआ, कितने तो होंगे भी नहीं। ऐसी चीज़ में भी परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव कहते हैं, वह प्राणी भी एक क्षण में साता बाँधता है, दूसरे क्षण में असाता, तीसरे क्षण में साता, चौथे क्षण में असाता। तो शुभ और अशुभ उसे क्षण-क्षण में आता है। एक क्षण में शुभ तो दूसरे क्षण में अशुभ, तीसरे क्षण में शुभ तो चौथे क्षण में अशुभ। ऐसे धारावाही शुभ-अशुभ परिणाम की कर्मधारा एकेन्द्रिय को भी परिणाम की धारा बहती है। वह कोई नयी चीज़ नहीं है। आहाहा! अनादि से हुआ तो क्या उसमें से क्या आत्मा को लाभ है? संसार बड़ा है।

यहाँ तो कहते हैं, उस त्रिवर्ग से भिन्न चौथा पुरुषार्थ मोक्ष है। पुण्य का पुरुषार्थ नहीं, पाप का पुरुषार्थ नहीं, उससे आत्मा का पुरुषार्थ भिन्न है। आहाहा! शान्तिभाई! वहाँ ऐसा सब कहाँ मिलता है? कभी-कभी आठ-दस दिन आये। हो गया, जाओ! यह

मार्ग तो दूसरी जाति का है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा, जिनकी वाणी में ऐसा स्वरूप आया। आहाहा! जितना जाना, उतना तो वाणी में नहीं आया। जितना वाणी में आया, उतना गणधर झेल सके नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है। तीन लोक का नाथ अमृत का सागर तुम हो न! भगवान! यह पुण्य-पाप तो जहर है। आहाहा!

कहते हैं, चौथा पुरुषार्थ मोक्ष है। तीन पुरुषार्थ से कोई मोक्ष-बोझ होता नहीं। कहो, बराबर है? तीन पुरुषार्थ करते... करते... करते... निश्चय मोक्ष का पुरुषार्थ होगा, ऐसा कहते हैं। अरे.. भाई! वह तो कथन क्या आये? वह तो व्यवहार का कथन है। वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। भगवान! तू तो अनन्त आनन्द, ज्ञान, दर्शन का भगवान तुम तो हो न! पुण्यवान हो तुम? पुण्यवान हो तुम? पापवान हो? शरीरवान हो? लक्ष्मीवान हो? धनपति हो? नरपति हो? धनपति है आत्मा? धनपति-जड़ का पति। नरपति है वह? नर-मनुष्य का पति है? जड़ मनुष्य का पति है? नृपति-राजा। धूल में भी नहीं है। सुन न! वह तो आनन्द का पति है। अनन्त आनन्द चतुष्टय का पति-स्वामी है। तेरी दृष्टि में उसका माहात्म्य आता नहीं। इस कारण से तेरा संसार चल रहा है। आहाहा! चाहे तो अरबोंपति हो, करोड़ोंपति राजा हो, सब अज्ञान में पड़े हैं। दुःखी... दुःखी... दुःखी बेचारे। दुःखी है, हों! शास्त्र में वरांका कहते हैं। ऐ... पाटनीजी! वरांका... वरांका। गरीब आदमी बेचारा। रांक है। अपना चैतन्य भगवान का पुरुषार्थ चौथा देखा नहीं और यह पुरुषार्थ करके मानते हैं कि हम बड़े हैं। वरांका है, रांक है। ऐई! गोदिकाजी! दस-दस लाख के संगमरमर के बँगले सोया हो तो कहते हैं, भिखारी है, रांक है। सोने का कड़ा, लोहा... आहाहा! धूल भी नहीं है, सुन न अब! दुःख के रास्ते में तेरा झूला चल रहा है। दुःख का झूला है। दुःख के झूले में झूल रहे हो, भगवान! तेरा आनन्द का झूलना तो अन्दर में दूसरी चीज़ है। आहाहा!

कहते हैं, यह आत्मा ज्ञान-दर्शनमयी चेतनास्वरूप अनादिनिधन है,... वह तो अनादिनिधन ज्ञान-दर्शनमय, हों! ज्ञान-दर्शनवाला भी नहीं; ज्ञान-दर्शनमय। ज्ञान-दर्शनमयी चेतनास्वरूप अनादिनिधन है, इसका आदि भी नहीं और निधन (नाश) भी नहीं है। 'भावना' नाम बारबार अभ्यास करना; चिन्तन करने का है। वह मन-वचन-काय से आप करना तथा दूसरे को कराना... जीओ और जीने दो, ऐसे नहीं।

यह करना और यह करवाना। करनेवाले को भला जानना – ऐसे त्रिकरण शुद्ध करके भावना करना। माया-मिथ्या-निदान शल्य नहीं रखना, ... माया अर्थात् कपट और मिथ्या-मिथ्याश्रद्धा, और निदान। क्रिया का कुछ फल मुझे मिले, ऐसा नहीं रखना। ख्याति, लाभ, पूजा का आशय न रखना। इस प्रकार से तत्त्व की भावना करने से भाव शुद्ध होते हैं। लो। ऐसे भगवान आत्मा की तत्त्व की भावना करने से आत्मा शुद्ध होता है। उसका दृष्टान्त देंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-१३९, गाथा-११४ से ११७, शनिवार, कार्तिक कृष्ण १, दिनांक १४-११-१९७०

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। सात तत्त्व का विचार करना, वह प्रथम व्यवहार प्रवृत्ति बताते हैं। निश्चय में तो आत्मतत्त्व है, उसकी भावना करना। जिसे धर्म करना हो, उसे निश्चय से तो यह आत्मा अभेद अनन्त गुण का पिण्ड वस्तु है, उसकी एकाग्रता, उसकी भावना, उससे सम्यग्दर्शन होता है। इसके बिना धर्म की शुरुआत चैतन्य के आश्रय बिना नहीं होती। परन्तु कहते हैं कि निश्चय से तो यह बराबर है। आत्मा अखण्ड सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो देखा, जाना, वैसा कहा। ऐसा आत्मा अन्दर पूर्ण आनन्द और पूर्ण शुद्ध है, उसका आश्रय करके, उसकी विचारणा अर्थात् एकाग्रता करना, वह तो मुख्य चीज़ है। व्यवहार से सात तत्त्व की विचारणा करना भेद से। यह कहते हैं। व्यवहार से।

जीव है, वह ज्ञान-दर्शन से भरपूर तत्त्व है, उसकी भावना करना और या ज्ञान-दर्शन स्वरूप मैं हूँ, उसकी भावना करना। आ गया है न यह? आ गया है? शुरुआत में आ गया है। यह शरीरादि ये पाँच अजीवतत्त्व हैं, वे हेय हैं, ऐसी भावना-विचारणा करना। और आत्मा में पुण्य-पाप के भाव हों, वे कर्म के निमित्त के संयोग से हुआ विकार है, वह बन्ध का कारण है, उसे हेय जानकर उसे छोड़ने का विचार करना। समझ में आया? और पुण्य-पाप के भाव, राग-द्वेष, मोहभाव, वह बन्धतत्त्व है-भावबन्ध है। उसे भी अबन्धतत्त्व के विचार द्वारा उसे छोड़ने का विचार करना। संवर। यह शुभ, अशुभ, दया, दान, व्रत आदि के भाव, वे आस्रव हैं। उन्हें छोड़कर स्वभाव

का आश्रय लेकर जितनी निर्विकारी दशा प्रगट हो, वह शुद्धि उत्पन्न हो, उसे संवर कहते हैं। और उस शुद्धि की वृद्धि अन्तर में हो, उसे निर्जरातत्त्व कहते हैं। उस शुद्धि की पूर्णता हो, उसे मोक्षतत्त्व कहते हैं। कहो, संक्षिप्त में नव तत्त्व की यह विचारणा सच्ची है। ऐसी विचारणा इसने यथार्थरूप से अनन्त काल में कभी की नहीं। समझ में आया? अन्त में अपने तो यहाँ यह आया है।

इन सात का विचार करके यहाँ दृष्टान्त देते हैं। इसका उदाहरण इस प्रकार है कि जब स्त्री आदि इन्द्रियगोचर हों (दिखाई दें),... स्त्री आदि आत्मा है, उसका शरीर जड़ है। वह इन्द्रियगम्य हो, तब ऐसा विचार करना। तत्त्व विचार करना कि यह स्त्री है, वह क्या है? यह स्त्री है क्या? कि जीवनामक तत्त्व की एक पर्याय है,... अन्दर आत्मा जीव जो है, उसकी-जीव की एक स्त्रीपर्याय है। वस्तु नहीं। वस्तु तो त्रिकाल ज्ञायकभाव है। परन्तु स्त्री उसकी एक उदयभाव की पर्याय है। ऐसा उसका विचार करना। इसका शरीर है, वह तो पुद्गलतत्त्व की पर्याय है,... शरीर जो यह मिट्टी है, वह तो जड़ है। वह पुद्गल की अवस्था है, ऐसा विचार करना। यह तो एक दृष्टान्त दिया। किसी भी तत्त्व को इन्द्रियगम्य देखकर उसका इस प्रकार विचार करना।

यह हावभाव चेष्टा करती है,... स्त्री का आत्मा विकल्प करता है, वह भी इस शरीर में हावभाव शरीर की चेष्टा जो हावभाव की है, वह जड़ की है। अन्दर का विकल्प जो विकार है, वह चैतन्य का किया हुआ विकारभाव है। वह इस जीव के विकार हुआ है, यह आस्रवतत्त्व है... भगवान आत्मा अपना आनन्दस्वभाव भूलकर इस विकार के भाव स्त्री करती है, वह आस्रव है, बन्ध का कारण है। ऐसा धर्मी जीव को सात तत्त्व का इन्द्रियगम्य कोई विषय दिखायी दे, उसका ऐसा विचार करना। वह जीव का विकार और आस्रवतत्त्व है। आस्रव अर्थात् बन्ध का कारण। बाह्य-चेष्टा पुद्गल की (पर्याय) है,... यह जड़। हाव, भाव, शरीर की चेष्टा, वह तो जड़ की—इस शरीर की अवस्था है, वह अजीव है—ऐसा विचार करना।

और, इस विकार से इस स्त्री की आत्मा के कर्म का बन्ध होता है। दो बातें ली हैं। जो स्त्री विकार के विकल्प करती है, वह बन्ध है, और स्त्री की आत्मा के कर्म का बन्ध होता है। ऐसा। उस विकार से और उसके आत्मा को कर्म का बन्ध होता है।

जीव है, वह तो ज्ञान-आनन्द है। उसे भूलकर पाप के भाव, हाव-भाव हुए, वे तो आस्रव हैं, बन्ध का कारण है। इस विकार से इस स्त्री की आत्मा के... ऐसा। इस विकार से बन्धन होता है और इस स्त्री के आत्मा को बन्धन होता है। यह विकार इसके न हो तो 'आस्रव' 'बन्ध' इसके न हो। देखो! यदि यह विकार, वासना, विषय वासना न करे और आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें एकाग्र हो तो इसे संवर हो। यह संवर हो। बाहर की क्रिया से कहीं संवर-बंवर नहीं होता। समझ में आया? विकार इसके न हो तो 'आस्रव' 'बन्ध' इसके न हो। लो! जो विकार है, वह आस्रव का कारण है और बन्ध का कारण है। वह न हो तो आस्रव-बन्ध न हो। अर्थात् संवर और निर्जरा हो, ऐसा। आत्मा पूर्ण स्वरूप शुद्ध आनन्द है, उसमें यदि आस्रव और बन्ध न हो तो उसका आश्रय करने से उसे संवर और निर्जरा हो। समझ में आया? यह तो एक दृष्टान्त लिया।

और, कदाचित् मैं भी इसको देखकर विकाररूप परिणमन करूँ तो मेरे भी 'आस्रव', 'बन्ध' हो। इसलिए मुझे विकाररूप न होना, यह 'संवरतत्त्व' है। पुण्य-पाप के भाव, वह विकार, उस विकाररूप न होना और आत्मा के शुद्ध स्वभावरूप परिणमना, इसका नाम संवरतत्त्व कहा जाता है। कहो, समझ में आया? इसका नाम धर्म। संवरतत्त्व है।

बन सके तो कुछ उपदेश देकर इसका विकार दूर करूँ (ऐसा विकल्प राग है)... इस प्रकार तत्त्व की भावना से अपना भाव अशुद्ध नहीं होता है,... तत्त्व की विचारणा से अशुद्ध भाव न हो। इसलिए जो दृष्टिगोचर पदार्थ हों, उनमें इस प्रकार तत्त्व की भावना रखना, यह तत्त्व की भावना का उपदेश है। कहो, समझ में आया? स्त्री का तो एक दृष्टान्त दिया। इस प्रकार कोई भी तत्त्व को लेना।

गाथा-११५

आगे कहते हैं कि ऐसे तत्त्व की भावना जब तक नहीं है, तब तक मोक्ष नहीं है-

जाव ण भावइ तच्चं जाव ण चिंतेइ चिंतणीयाइं ।

ताव ण पावइ जीवो जरमरणविवज्जियं ठाणं ॥११५॥

यावन्न भावयति तत्त्वं यावन्न चिंतयति चिंतनीयानि ।

तावन्न प्राप्नोति जीवः जरामरणविवर्जितं स्थानम् ॥११५॥

जब तक न भाता तत्त्व जब तक चिंतनीय न सोचता।

तब तक नहीं पाता जरा-मृत्यु-रहित शिवमय दशा ॥११५॥

अर्थ - हे मुने! जबतक यह जीवादि तत्त्वों को नहीं भाता है और चिन्तन करने योग्य का चिन्तन नहीं करता है तबतक जरा और मरण से रहित मोक्ष स्थान को नहीं पाता है।

भावार्थ - तत्त्व की भावना तो पहिले कही वह चिन्तन करने योग्य धर्मशुक्लध्यान विषयभूत जो ध्येय वस्तु अपने शुद्ध दर्शनज्ञानमयी चेतनाभाव और ऐसा ही अरहन्त सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप उसका चिन्तन जबतक इस आत्मा के न हो तबतक संसार से निवृत्त होना नहीं है, इसलिए तत्त्व की भावना और शुद्धस्वरूप के ध्यान का उपाय निरन्तर रखना - यह उपदेश है ॥११५॥

गाथा-११५ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि ऐसे तत्त्व की भावना जब तक नहीं है, तब तक मोक्ष नहीं है - अब एक ११५। भगवान ने कहे हुए ये सात तत्त्व भी इस प्रकार से सात तत्त्व। अज्ञानी तो कुछ की कुछ कल्पना करता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह भाव आस्रव है। उसके बदले वह अज्ञानी धर्म मानता है।

मुमुक्षु : धर्म तो ठीक परन्तु करते.. करते...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे करते करते... लहसुन खाते-खाते कस्तूरी का डकार आवे, ऐसा मानता है। इसी प्रकार यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव, वे शुभभाव हैं। शुभ, वह पुण्य है; वह धर्म नहीं। भारी कठिन। और उसे करते-करते भी राग और बन्ध ही होता है। वह पुण्य करते-करते धर्म कभी तीन काल में नहीं होता। वीतराग का मार्ग ऐसा है। दुनिया अभी कुछ मार्ग में चढ़ गयी है और मान बैठी है कि यह धर्म। समझ में आया? परजीव की दया के भाव, अहिंसा, सत्य के भाव, व्रत के भाव, वह सब शुभ पुण्य है; धर्म नहीं। कुछ खबर नहीं होती। समझ में आया? ऐसा विचार करते हुए सात तत्त्व की भावना करने से उसे अनुक्रम से मोक्ष होता है। ऐसी भावना न करे तो मोक्ष नहीं होता। ११५।

जाव ण भावइ तच्चं जाव ण चिंतेइ चिंतणीयाइं।

ताव ण पावइ जीवो जरमरणविवज्जियं ठाणं।।११५।।

अर्थ - हे मुने! मुनि को लक्ष्य कर मुख्य बात है। जबतक यह जीवादि तत्त्वों को नहीं भाता है... जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। उसका स्वरूप जब तक यथार्थ न जाने और यथार्थ जाने बिना उसकी भावना न करे और चिन्तन करनेयोग्य का चिन्तन नहीं करता है... यह चिन्तवन करनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? संसार के भाव चिन्तवन करे व्यापार-धन्धा, वह तो सब पाप के भाव हैं। समझ में आया? और दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वे सब पुण्य के भाव हैं। ऐसे उन्हें बराबर पाप, पुण्य आस्रव, यह दो होकर आस्रव है। आस्रव है, वह बन्ध का कारण है। ऐसे तत्त्व की वास्तविक भावना जब तक न करे, चिन्तवनयोग्य तो यह है, कहते हैं। आहाहा! तबतक जरा और मरण से रहित... जरा—शरीर की जीर्णता और मरण—शरीर की स्थिति का पूरा होना। ऐसे रहित मोक्ष स्थान को नहीं पाता है। जरा-मरणरहित ऐसा जो मोक्ष, सात तत्त्व का भगवान ने कहा हुआ ऐसा। चिन्तवन और चिन्तवनयोग्य को चिन्तवन करे नहीं, तब तक वह जन्म-मरण से मुक्त नहीं होता। कहो, समझ में आया?

भावार्थ - तत्त्व की भावना तो पहिले कही वह चिन्तन करने योग्य... है।

देखो! धर्मशुक्लध्यान विषयभूत... अब आया सार। क्या कहते हैं? धर्मध्यान और शुक्लध्यान, वह आत्मा की संवर-निर्जरा की पर्याय अवस्था हालत है। तो उसके विषयभूत कौन? धर्मध्यान की पर्याय का विषय कौन? ध्येय कौन? कि आत्मा। आहाहा! समझ में आया? समझ में आता है? दो दिन से तो हिन्दी था न? कल तो गया हिन्दी। कल भी हिन्दी था। तीन दिन से हिन्दी (चलता है), नहीं? कहो, समझ में आया? क्या कहते हैं?

धर्मध्यान। धर्मध्यान अर्थात् आत्मा की पवित्रदशा। शुक्लध्यान अर्थात् उग्र-ऊँची पवित्रदशा। उसका ध्येय कौन? किसके ध्येय से धर्म होगा? कि जो ध्येय वस्तु अपने शुद्ध दर्शनज्ञानमयी... आत्मा। आहाहा! देखो! अपने शुद्ध दर्शनज्ञानमयी चेतनाभाव... आहाहा! पहले वहाँ कहा था। ज्ञान-दर्शनचेतना भाव की भावना करना अथवा यह चेतना, वह मैं हूँ, ऐसी भावना करना। आहाहा! यह सब दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव उठें, वह मैं नहीं। वे तो आस्रवतत्त्व हैं। समझ में आया? संवर और धर्म की पर्याय का ध्येय भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप शुद्ध चेतनामय आत्मा, वह संवर धर्म के भाव का ध्येय—विषय, धर्म के भाव का विषय अर्थात् शरण वह ध्येय आत्मा है। आत्मा की खबर न हो और धर्म हो गया इसे, लो। समझ में आया?

जो झुकाव अनादि का पर के ऊपर है, उसके पर के झुकाव में तो इसे पुण्य और पाप के भाव होते हैं। उसमें कहीं धर्म नहीं होता। चाहे तो पर की दया पालन का हो, भक्ति करने का हो, नामस्मरण भगवान का नाम (लेता हो), वे सब आस्रवतत्त्व पुण्य-पाप के उत्पन्न करनेवाले हैं। समझ में आया? स्त्री-कुटुम्ब का, धन्धे का आश्रय करके विचार करे, वह सब पाप है। देव-गुरु-शास्त्र की ओर का विचार करे, वह सब पुण्य है। उस पुण्य-पाप से रहित चेतनामय भगवान आत्मा, उसे पर-सन्मुख का जो विषय-झुकाव है, उसे छोड़कर स्वचैतन्य के आनन्दधाम को विषय बनाकर एकाग्र होना, इसका नाम धर्मध्यान है। गजब भाई! समझ में आया? कहो, यह पंच महाव्रत और धर्मध्यान है या नहीं? नहीं?

मुमुक्षु : आपने तो यह बात की। हम तो उल्टे रास्ते चढ़ गये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : रास्ते चढ़ गये थे। बात तो सच्ची। आहाहा!

मुमुक्षु : भूल हुई, उसे स्वीकार तो करना चाहिए न!

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु की खबर नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं। भगवान तो चेतना दर्शन-ज्ञान, दृष्टा-ज्ञातामय चेतनाभावस्वभावस्वरूप आत्मा है। समझ में आया? आया न ऊपर? धर्मध्यान और शुक्लध्यान विषयभूत जो ध्येय... विषयभूत जो ध्येय, ऐसा। वस्तु अपने शुद्ध दर्शन... भगवान तीर्थकर का आत्मा भी और तीर्थकर की प्रतिमा भी शुद्धभाव का विषय नहीं है। धर्मध्यान की दशा का वह विषय नहीं है। ऐसा कहते हैं। परजीव की दया पालने का भाव, वह तो परविषय है। भगवान की भक्ति का भाव, उसमें परविषय भगवान आते हैं वे तो। यहाँ तो जिसे धर्मध्यान, धर्मदशा प्रगट करनी है, ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के जो परिणाम, उनका विषय तो ध्रुव चैतन्य दर्शन—दृष्टा-ज्ञातामय अभेद चेतनाभाव, वह मैं हूँ। उसकी एकाग्रता करना, इसका नाम धर्मध्यान है। आहाहा! कहो, समझ में आया? ऐसा कितनों ने तो सुना भी नहीं होगा। जय नारायण! बाहर से करो, व्रत करो, दया करो और अपवास करो। यहाँ कहते हैं कि वह सब मन्दराग की क्रिया है। शान्तिभाई! आहाहा! देखो न!

यहाँ तो कहते हैं कि धर्मध्यान का विषय भगवान का आत्मा नहीं, यह आत्मा है। धर्मध्यान का ध्येय भगवान तीर्थकर नहीं। धर्मध्यान का ध्येय भगवान की मूर्ति और शत्रुंजय तथा सम्मेदशिखर नहीं। धर्मध्यान का ध्येय पर को नहीं मारना, पर को बचाना, पर को दुःख न दूँ, दया पालन करूँ, यह धर्मध्यान का ध्येय नहीं है। आहाहा! पोपटभाई! लो, ऐसा मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? धर्म अर्थात् आत्मा की सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् शान्ति-चारित्र, ऐसा जो धर्म, उस धर्म का विषय, उसकी दिशा द्रव्य दिशा है। शुद्ध चेतना ज्ञानमात्र आत्मा, वह उसकी दिशा, वह उसका विषय, वह उसका ध्येय। तब धर्मध्यान प्रगट होता है। पर के ध्येय के लक्ष्य से धर्मध्यान प्रगट नहीं होता। समझ में आया? भावना करना... लो।

शुद्ध दर्शनज्ञानमयी चेतनाभाव और ऐसा ही अरहन्त-सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप... यह शुभभाव। ऐसा ही अरहन्त-सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप उसका चिन्तन...

ऐसा। अरिहन्त परमेश्वर का स्वरूप भी ऐसा है, ऐसा चिन्तवन करना, वह शुभ प्रवृत्ति का विकल्प है। समझ में आया? जब तक इस आत्मा के न हो... उसका चिन्तन जब तक इस आत्मा के न हो... अरहन्त सिद्ध परमेश्वरी का स्वरूप उसका चिन्तन जब तक इस आत्मा के न हो... ऐसा, आत्मा का चिन्तवन जब तक नहीं, ऐसा कहते हैं। दूसरे प्रकार से कहें तो अरिहन्त और सिद्ध का स्वरूप है, वैसा ही मेरा स्वरूप है। अभी भी अरिहन्त और सिद्ध का स्वरूप है, वैसा मेरा स्वरूप है, ऐसा विचार अथवा अरिहन्त और सिद्ध का स्वरूप है, उसका विचार, वह विकल्प। समझ में आया? भेद से बात है। आत्मा का विचार, वह भेद से है। अकेला विचार अभेद से है। गजब भेद और अभेद ऐसा सब। कहो, समझ में आया इसमें?

तीन लोक के नाथ तीर्थकरदेव परमेश्वर उसे धर्मध्यान-धर्म कहते हैं कि जिस धर्म की मोक्षमार्ग की जो पर्याय—अवस्था, उसका विषय तो चेतनामय आत्मा है। आहाहा! कहो, भीखाभाई! वाणी भी नहीं, ऐसा कहते हैं। कहते थे न कल? यह वाणी पर लक्ष्य जाता है और ऐसा होता है। कहो, समझ में आया? आहाहा! यह आत्मा के नहीं। क्या कहते हैं? जब तक इस आत्मा के न हो... अपना आत्मा भगवान् शुद्ध चेतना। चेतना अर्थात् ज्ञान और दर्शन का भण्डार। उसमें कोई दया, दान, व्रत के विकल्प नहीं इसके आत्मा में—वस्तु में नहीं है। वह तो विकार है। आहाहा! पंच महाव्रत का विकल्प नहीं आत्मा में, ऐसा कहते हैं। यह पाँच महाव्रत लेकर अणुव्रत का आन्दोलन करो। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसे ही चलती है न यह दुनिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे ही चलती है दुनिया। क्या करे? पन्थ की खबर नहीं होती और कुपन्थ में चले और माने कि पन्थ में हैं, जैनपन्थ में—जैनमार्ग में हैं। जैनमार्ग किसे कहना, उसकी इसे खबर नहीं। जैनपन्थ कहो या जैनमार्ग (कहो), वह तो वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य, वह जैनपन्थ और वह जैनमार्ग। दया, दान और व्रत के परिणाम, वे जैनमार्ग नहीं और जैनपन्थ भी नहीं। जैन अर्थात् राग को जीता हुआ भाव, वह जैन। राग से जीता जाए, वह तो अजिन है। मगनभाई! वे मारे, मगनभाई

कहे। वे वहाँ खुल्ला करने जाए। बात तो सच्ची है। ऐसा देख ... यहाँ तो सोनगढ़ अर्थात् क्या? सुनना हो वह सुनो। यहाँ कहाँ वाड़ा है हमारे। वाड़ा में जाए तो (ऐसा कहे), नहीं। ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। मरो तब ऐसा नहीं तब। आहाहा! समझ में आया? 'भावमरण में क्यों अहो चकचूर हैं।' नहीं आता? श्रीमद् में आता है। 'क्षण क्षण भयंकर भावमरण में क्यों अहो चकचूर है।' १६ वर्ष में कहते हैं। शान्तिभाई! परन्तु इसका अर्थ क्या? लम्बा अर्थ है।

मुमुक्षु : समझाओ न साहेब!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह देव-गुरु-शास्त्र के प्रति का राग, भक्ति का राग, वह मुझे लाभ करेगा, यह भावमरण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मिथ्यात्व से उसका आत्मजीवन नाश होता है। मार्ग तो यह है। माने, न माने, संख्या थोड़ी-बहुत, उसके साथ सत्य को सम्बन्ध नहीं है। वीतराग परमेश्वर का मार्ग तो इस मार्ग की पर्याय है धर्म की। मार्ग अर्थात् धर्म की पर्याय है। जैनशासन अर्थात्? जैनशासन अर्थात् वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी स्थिरता, वह जैनशासन। उसका विषय-ध्येय क्या? ध्येय आत्मा। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

जब तक भगवान आत्मा का शुद्ध चैतन्यभाव का ध्यान में लक्ष्य में लेकर उसकी ओर एकाग्र न हो और अरिहन्त और सिद्ध के स्वरूप जैसा ही मेरा स्वरूप है, ऐसा जानकर एकाग्र न हो अथवा अरिहन्त और सिद्ध के स्वरूप का विकल्प-विचार निश्चय के भानसहित न करे, तब तक उसे संसार से निवृत्त होना नहीं है, ... इस संसार के भटकने से नहीं छूटता। नरक और निगोद के भव अनन्त-अनन्त सिर पर चढ़े हैं, कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? ऐसे जन्म-मरण संसार से निवृत्ति नहीं होगी। संसार शब्द से भटकना अथवा उदयभाव, विकारी उदयभाव, उसके कारण से चार गति में भटकता है। पुण्य-पाप का भाव दोनों संसार है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह कहे, सामायिक करते हैं, प्रौषध करते हैं, प्रतिक्रमण करते हैं। तो यह प्रतिक्रमण, सामायिक सम्यग्दर्शन बिना आया कहाँ से तुझे? अभी आत्मा कौन है, उसका तो भान नहीं। कहाँ से सामायिक आ गयी तेरे घर में? समझ में आया? वह तो सब विकल्प है,

राग है, पुण्य है। भगवान आत्मा इस पुण्य और पाप के राग से रहित दृष्टि करके और शुद्ध चेतनामय दृष्टि करे, तब उसकी भावना में एकाग्र होने से शुद्धता प्रगट हो। वह शुद्धता हो, वह धर्म है। पुण्य-पाप के परिणाम, वे धर्म नहीं हैं। भारी कठिन काम, भाई! यह बात सही परन्तु फिर इसका साधन? और ऐसा कहे वापस।

अगास में गये थे न, अगास में? दोपहर में व्याख्यान सुना। ऐसी बात तो सूक्ष्म पड़े। ऐसा कि ऐसी बात यहाँ चलती नहीं। वे बोले थे न लालजीभाई। वे बोले थे, सूक्ष्म बात है। रात्रि में एक मारवाड़ी आया था। (वह कहे), यह बात सच्ची परन्तु इसका साधन? वह साधन स्वरूप में एकाग्र होना, वह साधन है। साधन-फाधन यह भक्ति करना, पूजा करना, सामायिक करना, प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करना, अपवास करना, (वह साधन नहीं है)।

मुमुक्षु : एकाग्र होने का साधन क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में एकाग्र होना, वह साधन है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह स्वयं ही साधन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह साधन स्वयं है। साधकपना वह साधक, वह साधकदशा है।

मुमुक्षु : एकाग्र हो... उपाय क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपाय क्या? यह। अभी इसे साधन बाहर से लाना होगा कहीं से?

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, शुद्ध आनन्द के धाम में एकाग्र होना, वह उसका साधन और वह साधक है। आहाहा! देखो न! क्षण में चले जाए, देखो न! पाँच दिन में दो गये यहाँ सभा में से। क्षुल्लक गये और वह ... मारवाड़ी थे न बेचारे। आते थे। तीन महीने से यहाँ थे, हों! एक मिनट में।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, बैठे और गिर गये। ऊपर चढ़कर... ऊपर चढ़ गये ऊपर। फिर वह ... है वहाँ। सीढ़ियाँ... है न थोड़ा, फिर छोटी दहरी है। चले वे। पाँच

बजे तो चढ़े। ऊपर चलकर। छह बजे देह छूट गयी। ... बोले थे कुछ, क्या कहा ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : फूट पाप का घड़ा, ऐसा बोले। हिंगळाने हडे शुं छे ? यहाँ तो पुण्य और पाप दोनों राग और विकार है। आहाहा! यह भगवान का जाप करते-करते चढ़े। णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहंताण... राग है, वह तो विकल्प है। कठिन बात है, बापू! जैनधर्म अर्थात् वीतराग परमेश्वर केवली। 'केवली पण्णतो धम्मो शरणं।' आता है या नहीं? मगनभाई! मांगलिक में। अरिहन्ता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहु मंगलं, केवली पण्णतो धम्मो। यह केवली पण्णतो। केवली परमात्मा ने शुद्ध उपयोग को शुद्धभावरूपी जो धर्म कहा, उसे भगवान का शासन धर्म कहता है और उस धर्म के ध्येय के विषय को आत्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

जहाँ अन्तर स्वभाव में पूर्णानन्द पड़ा है, उस अन्तर्मुख धर्म की पर्याय का झुकाव अन्तर द्रव्य में जाए, उसे विषय बनावे। विषय कुरु, आता है न? विषय कुरु आता है, उसमें कलश टीका—परम अध्यात्म तरंगिणी (में) तीन जगह आता है। विषय कुरु। भगवान! तेरी चीज़ कोई है या नहीं महाप्रभु चैतन्यबिम्ब, उसे विषय कुरु। उसके लक्ष्य में जा, उसे ध्येय बना। उसके ध्येय से प्रगट हुई पर्याय को जैनशासन और धर्म कहते हैं। समझ में आया ?

इसलिए तत्त्व की भावना और शुद्धस्वरूप के ध्यान का उपाय... दोनों लिया है न? सात तत्त्व की भावना, यह भेद चीज़ है। और शुद्धस्वरूप के ध्यान का उपाय... यह अभेद चीज़ है। **निरन्तर रखना...** भगवान आत्मा पूर्ण निर्मल शुद्ध स्वभाव की ओर का ध्यान, उसकी ओर का उपाय, लो, यह उपाय। **निरन्तर रखना...** यह धर्म का उपाय है। चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द का आश्रय लेना, यह धर्म का उपाय है। आहाहा! यह उपदेश है। यह भगवान का उपदेश है। ऐसा परमात्मा तीर्थकरदेव का उपदेश है। कहो, समझ में आया ?

गाथा-११६

आगे कहते हैं कि पाप-पुण्य और बन्ध-मोक्ष का कारण परिणाम ही है -

पावं हवइ असेसं पुण्णमसेसं च हवइ परिणामा ।

परिणामादो बंधो मुक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥११६॥

पापं भवति अशेषं पुण्यमशेषं च भवति परिणामात् ।

परिणामाद् बंधः मोक्षः जिनशासने दृष्टः ॥११६॥

नित पाप पुण्य सकल स्वयं के भाव से होता सदा।

परिणाम से ही बंध-मुक्ति जैन-शासन में कहा ॥११६॥

अर्थ - पाप-पुण्य, बन्ध-मोक्ष का कारण परिणाम ही को कहा है। जीव के मिथ्यात्व, विषय-कषाय, अशुभलेश्यारूप तीव्र परिणाम होते हैं, उनसे तो पापास्रव का बन्ध होता है। परमेष्ठी की भक्ति, जीवों पर दया इत्यादिक मन्द कषाय शुभलेश्यारूप परिणाम होते हैं, इससे पुण्यास्रव का बन्ध होता है। शुद्धपरिणामरहित विभावरूप परिणाम से बन्ध होता है। शुद्धभाव के सन्मुख रहना, उसके अनुकूल शुभ परिणाम रखना, अशुभ परिणाम सर्वथा दूर करना, यह उपदेश है ॥११६॥

गाथा-११६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि पाप-पुण्य और बन्ध-मोक्ष का कारण परिणाम ही है -

पावं हवइ असेसं पुण्णमसेसं च हवइ परिणामा ।

परिणामादो बंधो मुक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥११६॥

लो! जैनशासन परमेश्वर तीर्थकरदेव भगवान के शासन में परिणाम से पाप, परिणाम से पुण्य, परिणाम से बन्ध और परिणाम से मोक्ष (कहा है)।

अर्थ - पाप-पुण्य, बन्ध-मोक्ष का कारण... चार आये न चार? पाप-पुण्य, बन्ध और मोक्ष। उसका कारण परिणाम को कहा। चार परिणाम है। हिंसा के, झूठ के,

चोरी के परिणाम, विषय के, क्रोध के ये परिणाम पाप हैं। दया के, दान के, भक्ति के परिणाम, ये पुण्य हैं और दोनों परिणाम बन्ध का कारण है। यह परिणाम बन्ध का कारण है। देह की क्रिया आदि बन्ध का कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह पुण्य। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-वासना के परिणाम, वे पाप। पुण्य और पाप दोनों बन्ध का कारण, वह परिणाम और पुण्य-पापरहित आत्मा के स्वभाव के आश्रय से हुए शुद्धि के परिणाम मोक्ष का कारण। समझ में आया ?

जीव के मिथ्यात्व, विषय-कषाय, अशुभलेश्यारूप तीव्र परिणाम होते हैं, उनसे तो पापास्रव का बन्ध होता है। लो! जिसे यह पुण्य परिणाम है, वह धर्म है; पापपरिणाम में मजा है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव (वर्तता है), वह बन्ध का कारण है। समझ में आया ? जो कुछ शुभभाव (होते हैं), वह धर्म है अथवा शुभ—दया, दान, व्रत के परिणाम वे धर्म हैं, यह मान्यता मिथ्यात्व है। वह मिथ्यात्व महा अशुभ पापबन्ध का कारण है। दर्शनमोहनीय के पाप का कारण है। आहाहा! जीव के मिथ्यात्व,... लो! मिथ्यात्व अर्थात् यह। देह की क्रिया मैं कर सकता हूँ, दूसरे का भला-बुरा मैं कर सकता हूँ, दूसरे प्राणी की दया मैं पाल सकता हूँ, दूसरे प्राणी को मैं घात कर सकता हूँ, यह सब मिथ्यात्वभाव है। और पापभाव में ठीक पड़ता है, ऐसा भाव मिथ्यात्व और पुण्यभाव धर्म का कारण है, यह मान्यता मिथ्यात्व है। समझ में आया ? यह अशुभभाव है। लो! यह मिथ्यात्व अशुभभाव है, ऐसा कहते हैं। चले गये वे ? नवलचन्दभाई गये हैं अभी, नहीं ? उस साधु के साथ बात हुई थी। अशुभ से तो बचे हैं। तुम सब धर्म की बात करते हो परन्तु हम अशुभ से तो बचे हैं ? अशुभ तो मिथ्यात्व है। नवलचन्दभाई गये लगते हैं। गये हैं। उनके बड़ा केस चलता है न। बड़ा केस चलता है पन्द्रह लाख का। पन्द्रह लाख का केस किया है। तुमको पूछा होगा, नहीं ? कुछ कहते तो अवश्य थे। यहाँ कहते थे। बोलते थे। केस चलता है। हाय... हाय। (टैक्स वाले का) छापा हो वहाँ... लक्ष्य जाए, इसलिए प्रेम तो हो न ? नहीं ? पाप का। ऐई! भीखाभाई! ५०-५० हजार पैदा हों, लाख-लाख, दो-दो लाख ... की आमदनी हो। पाप का सडका आवे सडका अन्दर से और उसमें मिठास लगे, वह मिथ्यात्व का पाप है, महापाप। छह काय

के कसाईखाने के पाप की अपेक्षा भी मिथ्यात्व का पाप बड़ा पाप है। समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं, मिथ्यात्व, पाप इन्द्रिय के विषय और कषाय और अशुभलेश्यारूप तीव्र परिणाम होते हैं, उनसे तो पापास्रव का बन्ध होता है। देखो! मिथ्यात्व से तो पाप के आस्रव का बन्ध होता है। पुण्य का भी नहीं और धर्म तो बिल्कुल नहीं। आहाहा! और, परमेष्ठी की भक्ति,... पंच परमेष्ठी। अरिहन्त, सिद्ध भगवान, आचार्य, उपाध्याय, मुनि। पाँच का नाम स्मरण करना, णमो अरिहन्ताणं जाप करना, उनकी भक्ति करना, वह पुण्य है। उससे पुण्य का आस्रव आवे। उससे धर्म (होता) नहीं।

जीवों पर दया... देखो! छह काय जीव की दया पालने के भाव, वह पुण्य है, संवर-धर्म नहीं। गजब बात। समझ में आया ? यह परमेष्ठी की भक्ति। खुल्ला तो रखा है, इसमें कुछ गुप्त नहीं रखा। पाठ में ही है सब। देखो! परमेष्ठी की भक्ति,... पाँच परमेष्ठी की भक्ति। वे कहते हैं कि हम तो गुरु की भक्ति करेंगे। करते-करते हमें निर्जरा होगी। ऐई! समझ में आया ? मंजीरा बजाये भगवान को नमूँ हे महाराज! धुन लगाओ बराबर। ऐसी धुन लगाओ कि निर्जरा हो। धूल में भी नहीं होगी, सुन न! शान्तिभाई! भूल जाते हैं अपन। बस, अकेले गुरु को, भगवान को लक्ष्य में लो।

मुमुक्षु : अपने आपको भूल जाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूल जाओ। अपना भगवान भूलकर भगवान तीर्थकर और गुरु को याद करके उसमें तन्मय हो जाओ। एक तो कहता है कि उससे धर्म होगा, यह माननेवाला मिथ्यात्व है और उसके ऊपर लक्ष्य है, इतना शुभभाव है। मिथ्यात्वसहित पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया ? यह पढ़ते हैं न ? क्या कहलाता है ? नवकारवाली। नवकारवाली नहीं वह आनुपूर्वी। णमो अरिहन्ताणं, णमो लोए सव्व साहूणं, णमो सिद्धाणं। आड़े-टेढ़े पढ़े, लक्ष्य वहाँ रहे, इसलिए हो गयी निर्जरा। धर्म हो गया। धूल भी धर्म नहीं, सुन न! वह तो राग है, विकल्प है, वृत्ति है। वह तो पर के ऊपर लक्ष्य है। यह परमेष्ठी की भक्ति, वह जीव की दया, ठीक! एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव की दया। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस। यह कन्दमूल नहीं खाना, वनस्पति नहीं खाना, ऐसा भाव, वह तो दया का शुभभाव है, पुण्य है; धर्म

नहीं। कहो, समझ में आया? पहले आये थे कभी? पहले-पहले आये हो? ऐसा मार्ग है। ... कहो, समझ में आया?

क्या कहा? इत्यादिक मन्द कषाय शुभलेश्यारूप परिणाम होते हैं, ... लो! वह तो मन्द कषाय है। शुभभाव है, कषाय है। पंच परमेष्ठी की भक्ति भी मन्दराग, कषाय है। दया के भाव भी राग मन्द कषाय है। भारी बात! यह सब (कहे) दया, वह धर्म है, दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान, यह तो कहनेवाले को तो व्यवहार कहना है। उसे कहाँ खबर है? आहाहा! देखो! परमेष्ठी की भक्ति, जीवों पर दया इत्यादिक मन्द कषाय... राग-कषाय का मन्द भाव है। वह कहीं धर्म—संवर-निर्जरा नहीं है। शुभलेश्यारूप परिणाम होते हैं, ... तीन—तेजो, पद्म और शुक्ल। इससे पुण्यास्रव का बन्ध होता है। उससे पुण्य बँधता है। बन्धन हो, वह तो भटकने का कारण है। यहाँ तो यह कहते हैं। समझ में आया? और शुद्धपरिणामरहित विभावरूप परिणाम से बन्ध होता है। बन्ध कहना है न? पाप के आस्रव, पुण्यास्रव को बन्ध कहते हैं।

शुद्धपरिणामरहित विभावरूप परिणाम से बन्ध होता है। परिणाम से बन्ध सिद्ध करना है न? परिणाम से पाप, परिणाम से पुण्य, परिणाम से बन्ध। शुद्ध परिणामरहित, दया, दान के व्रत के परिणाम, वे शुद्ध परिणामरहित, बन्ध का कारण है। शुद्धपरिणामरहित विभावरूप परिणाम से बन्ध होता है। स्पष्ट बात है। शुद्धभाव के सन्मुख रहना, ... भगवान आत्मा पवित्र, शुद्ध चैतन्य आनन्दघन के सन्मुख रहना, उसके अनुकूल शुभ परिणाम रखना, ... उसके अनुकूल शुभपरिणाम हों, ऐसा कहते हैं। चिन्तवन में हो। अशुभ परिणाम सर्वथा दूर करना, ... शुभ भी है छोड़नेयोग्य। परन्तु वह आता है। सन्मुख परिणामसहित ऐसे शुभभाव होते हैं। परन्तु शुभभाव है पुण्य का कारण, आस्रव। शुभ परिणाम रखना। ऐसा कहा न अन्दर? रखना अर्थात् होते हैं। अशुभ न रहे। अशुभ परिणाम सर्वथा दूर करना, ... लो! पहला कथंचित् दूर करना और यह सर्वथा दूर करना। यह उपदेश है। यह भावपाहुड़ की बात है। किस भाव से बन्ध और किस भाव से मोक्ष तथा किस भाव से आस्रव और किस भाव से संवर? उसका अधिकार है। समझ में आया?

गाथा-११७

आगे पुण्य-पाप का बन्ध जैसे भावों से होता है, उनको कहते हैं। पहिले पापबन्ध के परिणाम कहते हैं -

मिच्छत्त तह कसायासंजमजोगेहिं असुहलेसेहिं ।
 बंधइ असुहं कम्मं जिणवयणपरम्मुहो जीवो ॥११७॥
 मिथ्यात्वं तथा कषायासंयमयोगैः अशुभलेश्यैः ।
 बध्नाति अशुभं कर्म जिनवचनपराङ्मुखः जीवः ॥११७॥
 जो जिन-वचन से पराङ्मुख है अशुभ लेश्या योग से।
 मिथ्यात्व अविरति कषायों से जीव अशुभ करम बँधे ॥११७॥

अर्थ - मिथ्यात्व, कषाय, असंयम और योग जिनमें अशुभ लेश्या पाई जाती है इस प्रकार के भावों से यह जीव जिनवचन से पराङ्मुख होता है-अशुभकर्म को बांधता है, वह पाप ही बांधता है।

भावार्थ - 'मिथ्यात्वभाव' तत्त्वार्थ का श्रद्धानरहित परिणाम है। 'कषाय' क्रोधादिक हैं। 'असंयम' परद्रव्य के ग्रहणरूप है, त्यागरूप भाव नहीं, इस प्रकार इन्द्रियों के विषयों से प्रीति और जीवों की विराधनासहित भाव हैं। 'योग' मन-वचन-काय के निमित्त से आत्मप्रदेशों का चलना है। ये भाव जब तीव्र कषाय सहित कृष्ण, नील, कापोत अशुभ लेश्यारूप हों तब इस जीव के पापकर्म का बन्ध होता है। पापबन्ध करनेवाला जीव कैसा है ? उसके जिनवचन की श्रद्धा नहीं है। इस विशेषण का आशय यह है कि अन्यमत के श्रद्धानी के जो कदाचित् शुभलेश्या के निमित्त से पुण्य का भी बन्ध हो तो उसको पाप ही में गिनते हैं। जो जिन-आज्ञा में प्रवर्तता है उसके कदाचित् पाप भी बँधे तो वह पुण्यजीवों की ही पंक्ति में गिना जाता है, मिथ्यादृष्टि को पापी जीवों में माना है और सम्यग्दृष्टि को पुण्यवान् जीवों में माना है। इस प्रकार पापबन्ध के कारण कहे ॥११७॥

गाथा-११७ पर प्रवचन

आगे पुण्य-पाप का बन्ध जैसे भावों से होता है, उनको कहते हैं। पहिले पापबन्ध के परिणाम कहते हैं - पहले कहा न? पापबन्ध का कारण, पुण्यबन्ध का कारण। पहिले पापबन्ध के परिणाम कहते हैं -

मिच्छत्त तह कसायासंजमजोगेहिं असुहलेसेहिं ।

बंधइ असुहं कम्मं जिणवयणपरम्मुहो जीवो ॥११७॥

यहाँ मिथ्यादृष्टि की बात ली है। वीतराग वचन की, वीतराग की श्रद्धा—जिसे आत्मा वीतरागस्वरूप है, ऐसी श्रद्धा नहीं, वह जिनवचन से विरोध में है। ‘जिणवयणपरम्मुहो’ उसे कदाचित् पुण्य परिणाम हो तो भी उसे पाप में गिनने में आता है, ऐसा सिद्ध करना है यहाँ। समझ में आया? ‘जिणवयणपरम्मुहो’ जिनवचन अर्थात्? जिनवचन तो वाणी जड़ है। जिनवचन का भाव जो है, उस भाव से पराङ्मुख है। सम्यग्दर्शन, वह जिनवचन का भाव है।

वीतराग परमात्मा सम्यग्दर्शन को जैनशासन कहते हैं। सम्यग्दर्शनसहित ... तो उस सम्यग्दर्शन से पराङ्मुख है, ऐसा कहते हैं। अर्थात् स्वभाव से विमुख है और विभाव के सन्मुख है, ऐसे मिथ्यादृष्टि के भाव सब पापाचरण का कारण है। समझ में आया? यह व्रत और दया के भाव भी उसे पाप में जाते हैं, ऐसा कहते हैं। देखो, नीचे आयेगा। मिथ्यादृष्टि को पापी जीवों में माना है... पुण्यजीवों की ही पंक्ति में गिना जाता है,... देखो! नीचे है। जो जिन-आज्ञा में प्रवर्तता है, उसके कदाचित् पाप भी बंधे तो वह पुण्यजीवों की ही पंक्ति में गिना जाता है, मिथ्यादृष्टि को पापी जीवों में माना है और सम्यग्दृष्टि को पुण्यवान् जीवों में माना है। अन्त में है। यहाँ सिद्ध यह करना है। आहाहा!

जिसकी दृष्टि में ही मिथ्यात्व है, पुण्य—दया, दान, व्रत से धर्म माने, भगवान की भक्ति से निर्जरा माने। लो! ‘आस्रव चाल घटे संवर वधे...’ ... आता है। ऐई! धूल भी बड़े नहीं, सुन न! कहते हैं। आहाहा! तुझे खबर नहीं। भगवान आत्मा धर्म के

परिणाम को विषय करने का हो तो वह आत्मा है और परविषय के लक्ष्य में जाए, वह तो सब पुण्य-पाप के परिणाम हैं। यहाँ तो कहते हैं कि यह पुण्य के परिणाम को धर्म माने, पाप के भाव में ठीक लगे, ठीक लगे, वह सब मिथ्यात्वभाव है। विषयसुख में ठीक लगे और पाँच-पचास लाख पैसा (रुपये) मिले, वहाँ हमको बादशाही है—ऐसा माने, (वह) मूढ़ है, कहते हैं, मिथ्यात्वी है। आहाहा!

मुमुक्षु : मिथ्यात्वी परन्तु पैसेवाला तो सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसेवाला कहाँ है ? मिथ्यात्ववाला है। मिथ्यात्व का 'वाळा' (एक प्रकार का रोग) लगा है। वह वाळा नहीं होता ? जीव-जीव। पैर में वाळा निकलता है। ऐसा पानी होता है न ? वाळा निकले। अपने एक लड़का है, उसे वाळा निकला है। बोर्डिंग में नहीं ? उस ओर। वाळा निकलता है। यह मिथ्यात्ववाला है। मिथ्यात्व का वाळा निकला है इसे। आहाहा! वीतराग मार्ग को समझने की अभी दरकार नहीं की और ऐसे का ऐसे बिना भान के हाँक रखा। और कहनेवाले ऐसे मिले इसे झुकानेवाले। रोती थी और पीहरवाले मिले, ऐसा कहते हैं न अपने ? एक तो रोती थी, उसमें पीहरवाला उसका भाई या माँ मिले। कैसे बहिन ? रखे सरखाई की फिर। अरे ! मुझे ऐसा किया, अरे ! मुझे ऐसा कहा। मेरी सासु ने मुझे ऐसा किया। भीखाभाई !

यहाँ कहते हैं कि एक तो मानो इसे पुण्य में धर्म सुहाता हो, आगे की कोई खबर नहीं हो। उसमें कहनेवाले मिले कि उसमें धर्म होगा। करो, सामायिक करो, प्रौषध करो। धूल भी नहीं धर्म, सुन न ! तेरी सामायिक, वह असामायिक है। मिथ्यात्वभाव पड़ा है, वहाँ अभी सामायिक कैसी ? प्रौषध कैसे ? प्रतिक्रमण कैसे ? धर्म कैसा ? संवर कैसा ? पोपटभाई ! इसका वह एक व्यक्ति तो कहे, उसमें जीव पड़ गया। लो ! ऐसा कहता था। बहुत पैसा हो गया न ? इसका साला। बोटद में... निकाली होगी। पैसे भी तब तो नहीं थे इतने अधिक। चालीस करोड़ थे। अब दो अरब चालीस करोड़। इनके साले के पास में हैं। दो अरब चालीस करोड़। गये होंगे वहाँ। उनके भगतडा जीव घुस गया इसमें ? आहाहा ! पावर फट जाए न पैसे का। गोवा में है न, शान्तिलाल खुशाल। वे इनके बहनोई हैं। धूल में नहीं अब, सुन न ! पैसे में क्या ? धूल के ... कंकड़ बहुत

पड़े हैं। गिनना है न? वहाँ कहाँ घुस गये हैं तेरे पास? यहाँ कहते हैं कि आत्मा, उसकी हूँफ चढ़ जाए ऐसे पैसे की, इज्जत की, कीर्ति की। सोजा-सोजा (सोजिश)। ऐसा मिथ्यात्वभाव। कहते हैं, उसमें हमें मजा पड़ता है। आहाहा! पैसा है, इसलिए हमें मजा पड़ता है। शरीर निरोगी है तो हमें मजा पड़ता है।

मुमुक्षु : परन्तु पैसे तो मीठे लगे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा जड़ मीठा लगता होगा? धूल? वह तो धूल है। पैसा तो धूल-अजीव है। वह मीठा लगता होगा?

मुमुक्षु : कड़वा लगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कड़वा नहीं लगता और मीठा नहीं लगता। मानता है, मुझे ठीक है, ऐसी राग की मिठास को वेदता है। देखा! यह ... रहा। दो गाथा इसकी है।

जिनवचन से पराङ्मुख जीव। आहाहा! जिनवचन वीतरागभाव के पोषक होते हैं। राग के पोषक, वे जिनवचन नहीं। समझ में आया?

अर्थ - मिथ्यात्व, कषाय, असंयम और योग जिनमें अशुभ लेश्या पाई जाती है इस प्रकार के भावों से यह जीव जिनवचन से पराङ्मुख होता है-अशुभकर्म को बांधता है, ... लो! आहाहा! यहाँ तो ऐसा आया न भाई? कि मिथ्यादृष्टिवाला अशुभकर्म को बाँधे, ऐसा कहते हैं। शुभ को डाला अशुभ में। यह डाला। देखो न! पाठ की ... जिसे मिथ्यात्वभाव है, उसका पुण्य भी पाप के ही बन्ध में जाता है। वह पापी मिथ्यात्व है, उसके परिणाम पाप में जाते हैं। पुण्य के परिणाम पाप में जाते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? और सम्यग्दृष्टि के पाप के परिणाम भी पुण्यजीव में गिने जाते हैं। रास्ते चढ़ा है न अन्दर में? उसके जो पाप के परिणाम थोड़े हों, वह भी पुण्यवन्त गिनने में आते हैं। ऐसी बात है। गोम्मटसार है, उसमें है। उसका अर्थ ही आया न, देखो न। आहाहा! समझ में आया? मिथ्यात्व जहाँ महापाप, सप्त व्यसन से भी बड़ा पाप। उस पाप की खबर नहीं होती और यह दया, व्रत, ... हिंसा, झूठ, चोरी, पाप। दया, दान यह धर्म। तब पुण्य कहाँ रहा फिर? समझ में आया?

मुमुक्षु : थोड़ा सा पुण्य होगा ऐसा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी पुण्य नहीं।

यहाँ तो जिनवचन के पराङ्मुखवाले अशुभकर्म को बाँधे, ऐसा सिद्धान्त है। हो गया। समाप्त। पाठ ऐसा बोलता है, देखो! समझ में आया? अशुभकर्म को बाँधता है, ... कैसा जीव अशुभकर्म बाँधे? जिनवचन से पराङ्मुख होता है—अशुभकर्म को बाँधता है, वह पाप ही बाँधता है। लो! जिसे वीतराग श्रद्धा की खबर नहीं। आत्मा का ध्येय बनाकर वीतरागता—सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, उसकी उसे खबर नहीं। ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव जिनवचन से पराङ्मुख हैं। वीतराग ने आत्मा के आश्रय से धर्म हुआ, ऐसा कहे, तब यह कहे कि राग से धर्म होता है। यह जिनवचन से उल्टे चलनेवाले हैं। आहाहा! जाना हो पूर्व में और दौड़कर मुट्टी बाँधकर पश्चिम में जाए। आहाहा! कितनी स्पष्टता है, प्रकाशदासजी! इतनी तो स्पष्टता, निर्मलता... आहाहा!

इसे मिथ्यात्व पाप का पापपना तो भासित ही नहीं होता। किसी की हिंसा करे, झूठ बोले, ... वह इसे पाप लगता है। परन्तु वह (मिथ्यात्व) महापाप है, उस पाप की तो इसे हीनता की, तुच्छता की कुछ खबर नहीं। इसलिए यहाँ आचार्य कहते हैं, जिनवचन से पराङ्मुख होता है... वीतराग की वाणी में वीतराग ऐसा आत्मा त्रिकाली, उसके आश्रय से धर्म होता है, ऐसी वीतराग की पोषक वाणी है। उससे जो विरोध है। राग और दया, दान और व्रत से धर्म माननेवाले, वे मिथ्यादृष्टि जिनवचन से विरुद्ध अकेले पाप को बाँधते हैं। उनके दया, दान के परिणाम भी पाप को बाँधे, ऐसा कहते हैं। उसे मिथ्यात्व का बड़ा पाप साथ में है न? आहाहा! विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१४०, गाथा-११७ से ११८, रविवार, कार्तिक कृष्ण २, दिनांक १५-११-१९७०

यह अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। ११७ गाथा का भावार्थ। पहले अर्थ करते हैं। इस भावपाहुड़ में मिथ्यात्वसहित का भाव है, वही वास्तव में बन्ध का कारण है। यह सिद्ध करना है।

अर्थ - मिथ्यात्व, कषाय, असंयम और योग जिनमें अशुभलेश्या पायी जाती है... जिसमें कृष्ण, नील और कापोत तथा सत्तावन प्रकार के आस्रवसहित जो जीव है। इस प्रकार भावों से यह जीव जिनवचन से पराङ्मुख होता है-अशुभकर्म को बाँधता है... कैसा जीव अशुभकर्म को बाँधता है? यह जीव जिनवचन से पराङ्मुख होता है-अशुभकर्म को बाँधता है, वह पाप ही बाँधता है? उसका योगफल यहाँ लिया है। जिनवचन अर्थात् वीतरागी भाव। आत्मा वीतरागस्वभाव शुद्ध चैतन्य, उससे जिसकी विरुद्ध मान्यता है, जिनवचन तो वाणी है। जिनवचन से भी जिनभाव (कहना है)। आत्मा में राग और द्वेष और पुण्य-पाप के भाव, वे मेरे और उसमें मेरा हित है, यह जिनवचन से विरुद्ध है। समझ में आया? जिनवचन वीतरागभाव का पोषक है। जिनवचन है, वह वीतरागभाव का पोषक है अर्थात् आत्मा शुद्ध चैतन्य की जहाँ दृष्टि नहीं, वहाँ राग और पुण्य से पोषक जिसकी दृष्टि है, उसे यहाँ जिनवचन से विरुद्ध मिथ्यादृष्टि कहा गया है।

पाठ में इतना लिया है कि अशुभलेश्यावाला। परन्तु वास्तव में तो यहाँ योगफल ऐसा लिया कि वह पाप बाँधता है। चाहे तो मिथ्यादृष्टि को शुभ-अशुभभाव हो तो भी उसे पापी गिनने में आता है। पाप की पंक्ति में (रखने में आया है)। आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध रागादि और पर आदि के प्रेम की रुचि में जिसे वीतरागभाव से अथवा जिनवचन से विरुद्ध श्रद्धा है, चाहे तो वह पुण्य का कण छोटे में छोटा हो, उससे भी आत्मभाव को लाभ हो, ऐसी जो मान्यता, वह जिनवचन से विरुद्ध मान्यता है। उस मान्यतावाला चाहे तो अशुभलेश्यावाला हो। पाठ में अशुभलेश्या मुख्यरूप से लेनी है। योगफल में पाप बाँधता है, ऐसा लिया। समझ में आया?

जिसकी दृष्टि अखण्ड ज्ञायकभाव चैतन्य अभेदस्वरूप, ऐसी दृष्टि का जहाँ विरोध है। राग, रंग और भेद को मानता है, यह और वह याद आया। आता है न? राग,

रंग और भेद को मानता है। अराग, अरूपी और अभेद दृष्टि को मानता नहीं। ऐई! वह गायन आया था न? भाई लाये थे न? ज्ञानानन्दस्वभावी। हुकमचन्दजी लाये थे। भाई ने अच्छा बनाया है। राग, रंग और भेद से भिन्न। राग, रंग और भेद से अभिन्न (माननेवाला), वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? रंग आदि अजीव सब चीजें। रागादि आस्रव और भेद एक समय की पर्यायादि भेद या गुण-गुणी भेद, उनसे अभेद माने, वह जिनवचन से पराङ्मुख है। पश्चात् जिनवचन से विपरीत नहीं, यह गाथा ११८ में आयेगा। दोनों में मिथ्यादृष्टि जीव पाप ही बाँधता है और वह पापी है, पाप की पंक्ति में गिनने में आता है। सम्यग्दृष्टि जीव धर्मी है, उसे कदाचित् अशुभभाव हो तो भी उसे तो पुण्य की पंक्ति में ही गिनने में आया है। आहाहा! क्योंकि जिसकी शुद्धि... जो वस्तु है चैतन्य भगवान, उसकी जिसे अविपरीत दृष्टि प्रगटी है। भेद, राग और अजीव आदि की रुचि छूट गयी है। पूर्ण आनन्दस्वभाव की अन्तर्दृष्टि हुई है, उसे पुण्य पंक्ति में जीव में बन्ध की अपेक्षा से, हों! दृष्टि की अपेक्षा से तो अबन्ध है। भाई! परन्तु यहाँ अस्थिरता, स्थिरता की प्रधानता से कथन है। समझ में आया? समकिति पुण्य बाँधता है, ऐसा लेना है न यहाँ? 'बंधइ सुहं कम्मं' मिथ्यादृष्टि 'बंधइ असुहं कम्मं' दो गाथायें हैं पूरी।

अर्थात् कि आत्मा मिथ्यात्व (से) जिनवचन से पराङ्मुख होता है-अशुभकर्म को बाँधता है, वह पाप ही बाँधता है। एक ही सिद्धान्त लिया। अपना स्वभाव चैतन्य अभेद, शुद्ध ज्ञायक आनन्द का धाम, उससे विपरीत मान्यता। मैं राग-पुण्यवाला हूँ, पुण्य से मुझे धर्म होता है, लाभ होता है, अजीव के सहारे से शरीरादि की क्रिया अनुकूल हो तो मुझे लाभ होता है, ऐसी जो मिथ्यात्व बुद्धि, वह जिनवचन से पराङ्मुख है। वह पाप ही बाँधता है, यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? इसकी व्याख्या। भावार्थ।

पाठ में वास्तव में तो सब आस्रव लिये हैं और अशुभ लेश्या आया था। अशुभलेश्या की मुख्यता से वहाँ ... क्योंकि मिथ्यादृष्टि को अशुभलेश्या की ही मुख्यता है। शुभभाव होवे तो वह अशुभलेश्या की उसे मुख्यता है। सम्यग्दृष्टि को अशुभभाव होवे तो उसे शुभभाव की मुख्यता है। बन्धन की अपेक्षा से, हों! स्वभाव की अपेक्षा से तो अबन्ध है। आहाहा! समझ में आया? स्वभाव की दृष्टि विरुद्ध है, उसे तो शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के हों तो भी उसे पाप की पंक्ति की श्रेणी में गिनने में आया

है। क्योंकि वहाँ मिथ्यात्व का तीव्र पाप और बड़ा महापाप है। और सम्यग्दृष्टि को... पाठ इतना लेंगे। 'बंधइ सुहं कम्मं' ऐसा शब्द है न? बन्ध की अपेक्षा से बात है। अबन्ध दृष्टि की अपेक्षा से तो अबन्ध है। वस्तु ज्ञायक चिदानन्द आत्मा, उस वस्तु का स्वरूप यह है। यह कहीं जिनवचन कहते हैं, इसलिए (नहीं), यह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। जिनस्वभाव, वीतरागी स्वभाव का पिण्ड, उसकी जिसे अविपरीत अर्थात् सम्यग्दृष्टि है, उसे दृष्टि की अपेक्षा से तो राग से, पुण्य से, पाप से मुक्त गिनने में आया है। परन्तु यहाँ जरा अस्थिरता का भाव साथ में लेकर और समकिति को तो पुण्य ही बाँधता है। बाँधने के भाव शुभ हों। विशुद्धभाव है, जितने विशुद्धभाव हैं, शुद्धि का भाव जो है, वह तो एकदम संवर और निर्जरा और अबन्ध परिणामी चीज़ है। परन्तु साथ में जो समकिति को शुभभाव हो या अशुभ हो परन्तु वह तो पुण्य की श्रेणी में ही गिनने में आया है। क्योंकि सम्यग्दर्शन के माहात्म्य में कदाचित् अशुभभाव किसी समय हो। परन्तु वह आयुष्य अशुभभाव के काल में नहीं बाँधेगा। समझ में आया? और मिथ्यादृष्टि तो शुभभाव के समय भी मिथ्यात्व साथ में है, इसलिए पाप ही बाँधता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! सम्यक् का माहात्म्य और मिथ्यात्व की तुच्छता। महापाप मिथ्यात्व और सम्यग्दर्शन का माहात्म्य, दो का इसमें वर्णन है। समझ में आया?

भावार्थ - मिथ्यात्वभाव तत्त्वार्थ का श्रद्धानरहित परिणाम है। वास्तविक ज्ञायक आत्मा, उससे विपरीत मान्यता, वास्तविक संवर पर्याय से विपरीत मान्यता, वास्तविक आस्रवभाव, उससे विपरीत मान्यता कि आस्रव आदि मुझे लाभदायक होते हैं। ऐसी तत्त्वार्थश्रद्धानरहित परिणाम मिथ्यात्व है। उसके पाँच भेद हैं। एकान्त मिथ्यात्व आदि। यहाँ तो सामान्य बात की है। उसके अन्तर्भेद पाँच हैं।

कषाय क्रोधादिक हैं। उसकी व्याख्या करते हैं। पाँच में सामान्य की। असंयम परद्रव्य के ग्रहणरूप है, त्यागरूप भाव नहीं,... अभी चारित्रदोष में असंयम जो है, वह परद्रव्य को ग्रहण करने का रागभाव... परद्रव्य कहाँ ग्रहना है? परन्तु परद्रव्य की आसक्ति का भाव और उस आसक्ति का त्यागरूप भाव नहीं, उसे यहाँ असंयम में गिनने में आता है। समझ में आया? **इस प्रकार इन्द्रियों के विषयों से प्रीति...** पाँच इन्द्रिय के विषय में प्रेम मिथ्यादृष्टि को होता है। समझ में आया? अणीन्द्रिय भगवान आत्मा का जिसे

अतीन्द्रिय आनन्द का प्रेम अन्दर जागृत नहीं हुआ, इसलिए उसे इन्द्रिय के विषय में गहराई में मिठास वर्तती है। आहाहा! समझ में आया? कुछ भी शरीर की सुविधा, पाँच इन्द्रिय के विषयों की अनुकूलता, उसमें वीर्य का उल्लसित हो जाना, उसका नाम मिथ्यादृष्टि का इन्द्रिय के प्रति प्रीति का भाव उसे बताता है। आहाहा! समझ में आया?

पाँच इन्द्रिय के विषय तो शब्द, रूप, रस, गन्ध है। उसमें दूसरे भी शुभभाव भगवान की वाणी आदि, वह भी वास्तव में तो इन्द्रिय का विषय है। उसमें प्रीति हो जाना, आत्मा की प्रीति छोड़कर, वह मिथ्यात्व के इन्द्रिय के विषय के प्रेम का सूचक है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा अणीन्द्रिय आनन्दरस, उसकी जिसे रुचि नहीं, उसे पाँच इन्द्रिय के विषय का प्रेम अन्दर में परम्परा से काम करता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसे राग का रस है, राग का प्रेम है, उसे भगवान आत्मा के आनन्द का प्रेम नहीं। ऐसे इन्द्रिय के प्रेम का भाव मिथ्यादृष्टि को होता है, ऐसा कहते हैं। चन्दुभाई! भारी कठिन।

कहते हैं कि इन्द्रियों के विषयों से प्रीति... असंयम की व्याख्या का विस्तार करते हैं। और जीवों की विराधना... छह काय के जीव की विराधना और पाँच इन्द्रिय तथा मन का प्रेम। वह सब मिथ्यादृष्टि का असंयमभाव है। समझ में आया? यह असंयम की व्याख्या है, भाई! व्याख्या में असंयम में दो प्रकार लिये। एक परद्रव्य के ग्रहणरूप राग और उस राग के त्याग का अभाव। राग का त्याग चाहिए, उसका अभाव। राग का अभाव नहीं परन्तु राग के त्याग का अभाव। उसे असंयम कहते हैं। और पाँच इन्द्रिय के विषयों में प्रेम को असंयम कहते हैं। और छह काय की हिंसा का प्रेम और भाव उसे भी असंयम कहा जाता है। समझ में आया? विराधना।

योग मन-वचन-काय के निमित्त से आत्मप्रदेशों का चलना है। यह मूल पाठ का अर्थ है। मिथ्यात्व का अर्थ किया, कषाय का किया, असंयम का किया। अब योग का। योग की व्याख्या करते हैं। आत्मा के प्रदेश का कम्पन होना। मन-वचन-काया के पुद्गल जो जड़ हैं, उनके निमित्त के सम्बन्ध में नैमित्तिक आत्मा के प्रदेश का कम्पन हो, उसे योग कहा जाता है। यह मिथ्यादृष्टि को योग होता है, ज्ञानी को योग नहीं होता। आहाहा! एकपने की बुद्धि है न? मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, योग यह सब विकार है।

उसमें अज्ञानी को एकत्वबुद्धि है, ऐसा यहाँ सूचित करना है। समझ में आया ? लोगों को भारी सूक्ष्म लगे।

यहाँ तो भगवान आत्मा जिनवचन से विरुद्धवाला कैसा होता है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया ? ऐसे भगवान को मानता हो कि यह भगवान सच्चे। परन्तु अन्दर में राग और योग का प्रेम और विषय का प्रेम है, वह भगवान को मानता नहीं। वह जिनवचन से विरुद्ध माननेवाला है। समझ में आया ? आहाहा !

मन-वचन-काय के निमित्त से आत्मप्रदेशों का चलना है। निमित्त से चलना अर्थात् क्या ? मन-वचन और काया तो जड़ है। जड़ की पर्याय का अस्तित्व है। परन्तु उसके सम्बन्ध में आत्मा के प्रदेश में कम्पन होना, वह होता है अपने से, परन्तु उसमें जड़ का निमित्त है, इसलिए निमित्त से कम्पन अर्थात् कम्पन उसका स्वभाव नहीं। कम्पन होना वह उसका (आत्मा का) स्वभाव नहीं, इसलिए मन, वचन और काया के निमित्त से नैमित्तिक जो योग का कम्पन (होता है), उसे योग कहा जाता है। आहाहा ! यह व्याख्या की मिथ्यात्व, कषाय, असंयम और योग। इसकी व्याख्या की। इसका नाम मिथ्यात्व, अत्रत और असंयम कहा जाता है।

अशुभलेश्या... लो! ये भाव जब तीव्र कषाय सहित कृष्ण, नील, कापोत अशुभ लेश्यारूप हों... 'असुहलेसेहिं' है न ? अशुभ लेश्याभाव, ऐसा कहते हैं। 'लेसेहिं' ऐसा शब्द है। अशुभलेश्यावाला यह होता है। परन्तु यह तो शुभलेश्यावाला हो तो भी पाप बाँधता है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। प्रधानरूप से यह बात ली है। समझ में आया ? **अशुभ लेश्यारूप हों, तब इस जीव के पापकर्म का बन्ध होता है।** तब वह पाप बाँधता है। मिथ्यात्व का पाप है, उसके साथ सब पाप ही बाँधता है। आहाहा !

पापबन्ध करनेवाला जीव कैसा है ? उसके जिनवचन की श्रद्धा नहीं है। उसे वीतरागभाव आत्मा और वीतरागी पर्याय आत्मा की, उसकी श्रद्धा नहीं है। समझ में आया ? चाहे तो बाहर से दया, दान, व्रत, और साधुपना पालता हो। पंच महाव्रत और अट्टाईस मूलगुण पालता हो परन्तु वह राग में एकाकार है, स्वभाव में एकाकार नहीं। वह जिनवचन से पराङ्मुख है। उसे जिनवचन की श्रद्धा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

समन्तभद्राचार्य एक बार भक्ति में कहते हैं, प्रभु की भक्ति में, कि हे नाथ !

आपको अभव्य जीव वन्दन नहीं करता। आपको नहीं मानता। नहीं मानता अभव्य साधु हो तो भगवान-भगवान सब करे? नहीं... नहीं। तब? अभव्य की ज्ञान परिणति राग में उसकी रुचि पड़ी है। आहाहा! चाहे तो भक्ति का राग हो, चाहे तो क्रिया का राग हो या चाहे तो गुण-गुणी के भेद का राग हो। परन्तु राग में रुचिवाला प्रभु! आपको नहीं नमता। आप वीतराग हो। समझ में आया? जयन्तीभाई! क्या कहा यह? बाहर से तो भगवान! हे महाराज! हे प्रभु! तारणतरण... आता है या नहीं? नमोत्थुणं में नहीं आता? 'तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोअगाणं सव्वूणं सव्वदरिसीणं' तब भगवान को चरणवन्दन नहीं करता होगा ऐसे? नहीं... नहीं। उसे तो राग की रुचि है, राग को नमता है। चन्दुभाई! ऐसा लिया है। समन्तभद्राचार्य की चौबीस तीर्थकर की स्तुति में है। स्वयंभूस्तोत्र। स्वयंभूस्तोत्र। अभव्य का तो दृष्टान्त लिया है परन्तु दूसरे प्रकार से कहें तो भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप में से हटकर राग के प्रेम में आया, उसे जिनवचन की श्रद्धा नहीं है। वह जिनवर को नमता नहीं है। वह राग को नमनेवाला जिनवर को नमता नहीं है। आहाहा! समझ में आया? जगत को बात भारी कठिन लगे। राग तो होता है दसवें गुणस्थान तक। होवे तो क्या हुआ? पूरी दुनिया होती है। लोकालोक होता है अर्थात्? कहीं आत्मा में घुस गया? लोकालोक है। जगत पूरा है। समझ में आया? राग है तो राग राग में हो। उसमें क्या? परन्तु उसमें नहीं, उसे रागवाला मानना। ऐसा रागवाला—राग की रुचि के प्रेमवाला, प्रभु! वह आपको नहीं नमता। समझ में आया?

अपने वह विवाह में नहीं आता? विवाह में आता है, सुना है? 'मोटाना छोरू नहीं नमे।' महिलायें गाती हों, सुना हो किसी दिन अपने। सब विवाह करने जाये न वहाँ? कुँवरजीभाई का सुना था अपने। खुशालभाई के समय बहुत लक्ष्य न हो,। कुँवरजीभाई का विवाह हुआ था न दूसरा? तब हम वहाँ गढडा के उपाश्रय में थे। बीच के। उनकी बारात आयी। उसमें यह बोलते थे। 'नहीं नमे रे नहीं नमे, मोटाना छोरू नहीं नमे।' ऐसा आता है या नहीं? ऐई!

इसी प्रकार भगवान आत्मा अखण्डानन्द वीतरागभाव, वह राग को नहीं नमता। और राग को नमे, वह आत्मा में नहीं नमता। समझ में आया? आहाहा! भगवानजीभाई! यह तो कोई शब्द सुना हो न लोगों का। अपने कहाँ वहाँ बहुत ... आहाहा! क्या है,

कहा यह ? इसी प्रकार तीन लोक का नाथ चैतन्य भगवान चाहे तो तीर्थकरगोत्र का भाव आवे, तो उसे वह नहीं नमता, आदर नहीं देता। आहाहा! अमरचन्दभाई! आहाहा! लोग तो ऐसा कहे, आहाहा! तीर्थकरपना! तीर्थकर सोलह भावना! वह तीर्थकर होगा। अर्थात् इस भाव से केवली होगा ? इस भाव तो बन्ध पड़ा और बन्ध से तो दो भव हुए। एक स्वर्ग में जाएगा और वापस एक मनुष्यभव होगा। कहो, लालचन्दभाई!

मुमुक्षु : मोक्षपना निश्चित हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चित नहीं हुआ। उससे निश्चित हुआ है ? यह किसने कहा ? उसे तो तीसरे भव में मोक्ष होगा, ऐसी पुरुषार्थ की जागृति है। परन्तु दो भव होंगे न बीच में ? इस भव में केवल (ज्ञान) नहीं ले सकेगा। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : बीच में अन्तराय आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव में आ गया न ? कहना यह है। इसलिए विघ्न हुआ, भाई! आहाहा! यह तो कोई बात! वीतराग के घर की। शुभभाव अपराध किया है, भाई! अपराध के कारण दो भव होंगे। इस भव में केवल (ज्ञान) नहीं ले सकेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : शुभभाव का प्रभाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... आया है। अमृतचन्द्राचार्य में पुरुषार्थसिद्धि उपाय में कहा है कि महाराज! सम्यक् आत्मा का ज्ञान-भान हुआ, पश्चात् उसे बन्ध किस प्रकार ? यह तीर्थकर प्रकृति का बन्ध करे, आहारकशरीर का बन्ध करे, सर्वार्थसिद्धि के आयुष्य का बन्ध करे, यह क्या ? यह शुभोपयोग का अपराध है। है न इसमें ? पुरुषार्थसिद्धि उपाय है। कितना ? देखो ! यह रहा, लो ! २२० आया पृष्ठ फिराते हुए। इस लोक में रत्नत्रयरूप धर्म निर्वाण का ही कारण होता है,...

रत्नत्रयमहि हेतुर्निर्वाणस्यैव भवति नान्यस्य ।

आस्रवति यत्तु पुण्यं शुभोपयोगोऽयमपराधः ॥२२० ॥

यह तीर्थकरगोत्र का भाव बाँधने का, वह भी अपराध है। उसमें प्रश्न में ऐसा पूछा है, देखो ! समझ में आया ? कि यह सब बाँधते हैं न ? 'सति सम्यक्त्व चरित्रे तीर्थकराहार बंधकौ भवन' आत्मा का सम्यक् अनुभव है और जो जीव तीर्थकर तथा

आहारकशरीर, मुनि को आहारकशरीर होता है, भगवान से प्रश्न पूछने जाए। लो! ऐसा आहारकशरीर बँधे। प्रभु! यह क्या है? कि यह योग कषायो—यह योग और कषायभाव है। यह कहीं रत्नत्रयस्वरूप नहीं है। आहाहा! समझ में आया? और यह **अन्यगति का नहीं**,... ऐसा कहते हैं। निर्वाण का ही कारण रत्नत्रय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा के वीतरागी परिणाम तो किसी गति के बन्ध के कारण है ही नहीं। तीर्थकरपने के बन्ध का कारण ही रत्नत्रय नहीं है। तब? देखो! अस्ति-नास्ति की।

इस लोक में रत्नत्रयरूप धर्म निर्वाण का ही कारण होता है, अन्यगति का नहीं,... देवगति का कारण भी नहीं। कौन? रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणाम। धर्म का परिणाम मोक्ष का कारण होता है। चार गति का एक भी इसके अतिरिक्त किसी गति का कारण नहीं। देवगति का कारण भी नहीं। आहाहा! सर्वार्थसिद्धि के आयुष्य का भी वह कारण नहीं। तब? तीर्थकर का (कारण) कौन होगा? शुभउपयोग। जो रत्नत्रय में पुण्य का आस्रव होता है, वह अपराध शुभोपयोग का है। आहाहा! ऐसी वाणी वीतराग की और वीतराग की वाणी तो वीतरागभाव को पोषण करनेवाली होती है। कहीं भी राग की पुष्टि दे कि उससे होगा... आहाहा! वह वीतराग वाणी नहीं है। यह तो शुभोपयोग का ही अपराध है... देखो! सब शुभकषाय और शुभयोग से ही होता है, अर्थात् यह शुभोपयोग का ही अपराध, वह भी रत्नत्रय का नहीं। यह अपराध रत्नत्रय का नहीं। दर्शन-ज्ञान-चारित्र का नहीं, शुभोपयोग का अपराध है। आहाहा! गजब।

कहते हैं कि इस विशेषण का आशय यह है कि अन्यमत के श्रद्धान के... ऐसा। अन्यमत के श्रद्धानी के... अर्थात् वीतरागभाव से विरुद्ध सब अन्यमत के श्रद्धानी। मोक्षमार्गप्रकाशक में डाला है या नहीं? टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में डाला है। सब अन्यमत में डाला है। अन्यमत के श्रद्धानी के जो कदाचित् शुभलेश्या के निमित्त से... उसे शुभलेश्या हो। तेजा, पद्म, शुक्ल। उससे कदाचित्... कदाचित् ऐसा कहा है। पुण्य का भी बंध हो तो उसका पाप ही में गिनते हैं। देखो! अर्थकार ने अधिक स्पष्ट किया है। पाठ में 'असुहलेसेहिं बंधइ असुहं कम्मं' इसमें अधिक डाला। भले उसे शुभलेश्या हो। तेजो, पद्म, शुक्ल परिणाम हो, पंच महाव्रत के, अट्टाईस मूलगुण के परिणाम मिथ्यादृष्टि को हो। शुभलेश्या के निमित्त से पुण्य का भी बंध हो तो उसको

पाप ही में गिनते हैं। समझ में आया ? योगसार में आया है। 'पाप पाप को सब कहे, परन्तु अनुभवीजन पुण्य को पाप कहे।' समझ में आया ? देखो ! शुभलेश्या के निमित्त से पुण्य का भी बंध हो... मिथ्यादृष्टि जैनी है, जिसे वीतरागवाणी का स्वरूप जो आत्मा और आत्मा की वीतरागी पर्याय का भान नहीं, उसे पाप में गिनते हैं, कहते हैं, लो ! यह पंच महाव्रत पाले तो भी पाप में गिनते हैं। ऐई ! प्रकाशदासजी ! है इसमें ? है ? आहाहा ! कहो, समझ में आया ? उसको पाप ही में गिनते हैं। आहाहा !

जो जिन आज्ञा में प्रवर्तता है... इसमें से निकाला इन्होंने। दूसरी गाथा आती है उसमें, ११८। वीतराग की आज्ञा अर्थात् कि रागरहित भगवान आत्मा, आस्रवरहित आत्मा का जिसे भान वर्तता है, दर्शन वर्तता है, उसे जिन आज्ञा में वर्तनेवाला कहते हैं। वह जिन आज्ञा में प्रवर्तता है। उसके कदाचित् पाप भी बँधे... लो ! उसे कदाचित् आर्तध्यान, रौद्रध्यान भी आवे। चौथे (गुणस्थान) तक, पाँचवें तक रौद्रध्यान है। चौथे-पाँचवें में। मुनि को छठवें आर्तध्यान है। कहते हैं, वह जिन आज्ञा में प्रवर्तता है, उसके कदाचित् पाप भी बँधे तो वह पुण्यजीवों की ही पंक्ति में गिना जाता है,... यह तो पाप-पुण्य की अपेक्षा से, हों ! धर्म की बात तो पूरी अलग रह गयी। आहाहा ! समझ में आया ? जिसे आत्मा शुद्ध चैतन्य भगवान का अनभव आनन्द का स्वाद आया है। आहाहा ! वह जिनाज्ञा में प्रवर्तता है, ऐसा कहते हैं। उसे इन्द्र के सुख भी जहर जैसे दिखते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

उस जीव को पुण्यजीवों की ही पंक्ति में गिना जाता है,... देखो ! है तो पवित्र की पंक्ति में। परन्तु यह उस बन्धभाव की अपेक्षा से। निश्चय से देखें तो सम्यग्दृष्टि को बन्ध है ही नहीं। मिथ्यादृष्टि को जरा भी अबन्ध नहीं। तब समकृति को जरा भी बन्ध नहीं, एक न्याय से। परन्तु जहाँ उसके परिणाम की अपेक्षा से लेने जाए, स्थिरता-अस्थिरता की अपेक्षा से अस्थिरता के परिणाम में मिथ्यादृष्टि को शुभभाव आओ, तो भी उसे पाप पंक्ति की गिनती में गिनने में आता है। और सम्यग्दृष्टि को पाप के परिणाम आये हों कदाचित्... आहाहा ! तो भी उसे क्या गिना ? क्या है उसमें ? गुजराती कहाँ गया तुम्हारा ? यह रहा, ठीक ! गुजराती एक ही शब्द है। गुजराती-हिन्दी में अन्तर नहीं है।

जिन आज्ञा में प्रवर्तता है, उसके कदाचित् पाप भी बँधे... आर्तध्यान, रौद्रध्यान

आ जाए... तो वह पुण्यजीवों की ही पंक्ति में गिना जाता है,... गोम्मटसार की बात है यह। गोम्मटसार में ऐसा कहा है। उसमें आ गया है, अष्टपाहुड़ में। अष्टपाहुड़ क्या, मोक्षमार्गप्रकाशक में। मोक्षमार्गप्रकाशक में आया है। समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन का माहात्म्य और मिथ्यादृष्टि की नीचता। आहाहा! सात व्यसन का सेवन करनेवाले से भी मिथ्यादृष्टि बड़ा पापी है, ऐसा कहा। इस पाप की कुछ खबर नहीं होती। पाप तो यह हिंसा करता हो या क्रोध करे, मान करे, यह करे तो कहे पाप (करता है).... परन्तु यह महामिथ्यात्व जो अनन्त संसार का कारण, उसे तो इसकी गिनती में आता नहीं। और यह गिनती में भगवान तीन लोक का नाथ ही गिनती में नहीं आता। समझ में आया?

मिथ्यादृष्टि को पापी जीवों में माना है... विशेष करते हैं। सम्यग्दृष्टि को पुण्यवान जीवों में माना है। आहाहा! शैली देखो न! एक ओर कहे, सम्यग्दृष्टि को बन्ध जरा भी नहीं। बन्ध अधिकार में आता है न? भाई! अपेक्षा से जो है, वह समझना। यह समिति का अधिकार आता है न। ज्ञान (कराया कि) इसे जरा बन्ध नहीं। दृष्टि की अपेक्षा से तो अबन्धस्वरूपी भगवान की परिणति हुई, वहाँ तो अबन्ध परिणाम ही इसके हैं। बन्धभाव इसका है नहीं। बन्धन से मुक्त है। सम्यग्दृष्टि व्यवहार से मुक्त है। दया, दान और व्रत के परिणाम से भी सम्यग्दृष्टि मुक्त है। रागसहित है, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु जरा अस्थिरता का राग गिनकर उसके फलरूप से भले कहते हैं, पाप के परिणाम हों। परन्तु मूल पाप के परिणाम मिथ्यात्व के छिद गये हैं, इसलिए उसे पापी नहीं गिनकर उसे पुण्यवन्त गिनने में आया है। आहाहा!

छह खण्ड का चक्रवर्ती भरत समकिति। छियानवें हजार स्त्रियों का भोग। समझ में आया? और छियानवें करोड़ सैनिक। छियानवें करोड़ सैनिक और छियानवें करोड़ गाँव। अड़तालीस हजार पाटन, बहत्तर हजार नगर। उस ओर की वृत्ति की लगनी जरा अशुभ है तो भी उसे पुण्यवन्त की श्रेणी में गिनने में आया है, कहते हैं। आहाहा! वह पुण्यवन्त प्राणी की गिनती में आया है। और नौवें ग्रैवेयक जानेवाला दिगम्बर मुनि अट्टाईस मूलगुण का पालनेवाला, पंच महाव्रत निरतिचार पालनेवाला, हों! परन्तु उसे राग के रस का प्रेम है, भगवान आत्मा का रस नहीं; इसलिए उसे पाप की श्रेणी में (गिनने में आया है)। नग्न, बेचारा नग्न, वस्त्र नहीं, जंगल में रहे। कपड़े नहीं, मकान

नहीं, खाने को घर की ताजा रसोई नहीं। ताजा रसोई नहीं। खाने बैठे तब ताजा पहले बनावे न तुम्हारे ? गर्म-गर्म फुलका डाले ऐसे तवे में से सीधे। उसे है वहाँ ? उसे जो कुछ मिले उसे बेचारे के हाथ में (खाना पड़े)। आहाहा! देखो न!

कहते हैं कि वह साधु ऐसा, तो भी पाप की श्रेणी में उसे गिनने में आया है। भगवान! क्योंकि भगवान ऐसा आत्मा, उसका तो उसे भान नहीं, उसकी श्रद्धा नहीं, ज्ञान नहीं, इसलिए पापी गिनने में आया। ऐई! प्रकाशदासजी! कभी सुना नहीं होगा अभी तक में। आहाहा! भगवान! तेरे विरुद्ध तूने किया। अब तुझे पुण्यवन्त कैसे कहना ? और तेरे आत्मा से अविरुद्ध हुआ, उसे पापी कैसे कहना ? कहते हैं। ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया ?

पवित्रनाथ चैतन्य भगवान अन्तर पूर्ण सागर प्रभु, लो! समझ में आया ? वह बेचारे क्षुल्लक नहीं थे यहाँ ? वे गुजर गये। यहाँ से जाकर तुरन्त गुजर गये। अपने चार महीने रहते नहीं ? वह दूसरे गये और तीसरे बारह बजे कुछ बैठे धूप में और गिर गये। ऐसा अखबार में आया था। गिर गये। पसली टूट गयी। क्या कहलाता है ? हेमरेज। ऐई! डॉक्टर! तुम्हारा कहलाता है। हुआ खून... बेहोश। वे दूसरी तारीख में बेहोश हुए, आठवीं तारीख में गुजर गये। वहाँ तक बेहोश रहे। अपने प्रभुभाई की तरह। बेहोश हो गये। आहाहा! बेचारे गुजर गये हैं। यहाँ चातुर्मास किया। कल न ? आज तो दूसरे हैं न ? पूनम के दिन। अपने यहाँ खुशालसिंह गुजर गये। मारवाड़ी यहाँ रहते थे। तीन महीने से थे। वहाँ से आये हुए। क्या कहलाता है अपने ? ... अपने... .. से आये हुए। अब वे यात्रा करने गये पूनम के दिन। चलकर गये ऊपर। एक घण्टे चले। वह ... आया और बैठ गये। खुशालसिंह मारवाड़ी थे।

यह देह भिन्न, चैतन्य भिन्न। जगत और जीव तीनों काल भिन्न। जगत और जगत राग से लेकर पूरी दुनिया जगत में गिनने में आती है। भगवान जगत से तीनों काल भिन्न है। जगत और जीव दोनों की एकता तीन काल में नहीं है। मानी है। आहाहा! समझ में आया ? यह कहते हैं कि जिसने राग और जगत को अपना माना, वह प्राणी शुभलेश्या करे तो भी उसे पापजीव में गिनने में आया। सम्यग्दृष्टि को पाप परिणाम हों, तो भी पुण्यजीव में गिना है। इस प्रकार पापबन्ध के कारण कहे। लो। आहाहा!

गाथा-११८

आगे इससे उलटा जीव है वह पुण्य बांधता है ऐसा कहते हैं -

तद्विवरीओ बंधइ सुहकम्मं भावसुद्धिमावण्णो ।
दुविहपयारं बंधइ संखेपेणेव वज्जरियं ॥११८॥

तद्विपरीतः बध्नाति शुभकर्म भावशुद्धिमापन्नः ।
द्विविधप्रकारं बध्नाति संक्षेपेणैव कथितम् ॥११८॥

विपरीत उससे भाव शुद्धि-प्राप्त बाँधे शुभ करम।
यों द्विधा बाँधें कर्म को संक्षेप से यह जिन-कथित ॥११८॥

अर्थ - उस पूर्वोक्त जिनवचन का श्रद्धानी मिथ्यात्वरहित सम्यग्दृष्टि जीव शुभकर्म को बाँधता है जिसने कि भावों में विशुद्धि प्राप्त की है। ऐसे दोनों प्रकार के जीव शुभाशुभ कर्म को बाँधते हैं, यह संक्षेप में जिनभगवान् ने कहा है।

भावार्थ - पहिले कहा था कि जिनवचन से पराङ्मुख मिथ्यात्व सहित जीव है, उससे विपरीत जिन आज्ञा का श्रद्धानी सम्यग्दृष्टि जीव विशुद्ध भाव को प्राप्त होकर शुभकर्म को बाँधता है, क्योंकि इसके सम्यक्त्व के माहात्म्य से ऐसे उज्ज्वल भाव हैं, जिनसे मिथ्यात्व के साथ बँधनेवाली पापप्रकृतियों का अभाव है। कदाचित् किंचित् कोई पाप प्रकृति बँधती है तो उनका अनुभाग मंद होता है, कुछ तीव्र पापफल का दाता नहीं होता। इसलिए सम्यग्दृष्टि शुभकर्म ही को बाँधनेवाला है, इस प्रकार शुभ-अशुभ कर्म के बंध का संक्षेप से विधान सर्वज्ञदेव ने कहा है, वह जानना चाहिए ॥११८॥

गाथा-११८ पर प्रवचन

आगे इससे उल्टा... अब यह दो गाथा ही उल्टी डाली। उल्टा जीव है, वह पुण्य बाँधता है,... वह पुण्य बाँधता है, ऐसा कहना है न यहाँ? बन्धन की अपेक्षा से बात लेनी है न! एक ओर कहे, सम्यग्दृष्टि को बन्ध नहीं। सम्यग्दृष्टि व्यवहार से मुक्त है।

व्यवहार से मुक्त है, पश्चात् व्यवहार का फल उसे कहाँ आया? अपेक्षा समझनी चाहिए। अस्थिरता के परिणाम में अभी जरा निर्बलता है, इसलिए उसे अशुभभाव आने पर भी उस भाव को शुभलेश्यावाला गिनने में आया है। समझ में आया?

तव्विवरीओ बंधइ सुहकम्मं भावसुद्धिमावण्णो ।

दुविहपयारं बंधइ संखेपेणेव वज्जरियं ॥११८॥

‘तव्विवरीओ’ इसलिए जो ऊपर कहा, उससे विपरीत। ‘बंधइ सुहकम्मं’ लो! समकित्ती बाँधे कर्म को। ऐसा शब्द है। अपेक्षा जाननी चाहिए न। ३२० (गाथा समयसार) में तो यह आया। उदय, बन्ध और निर्जरा को, मोक्ष को जाने। ज्ञानी उदय को अपना माने नहीं, उदय को घाते नहीं, बन्ध को करे नहीं, मोक्ष को जाने। उदय को जाने, निर्जरा को जाने। उदय को घाते नहीं, उदय को करे नहीं, उदय को घाते नहीं। किस अपेक्षा से है बात? यह तो वापस एक आयेगा अन्दर। ११९ गाथा में। हे मुनि! आठ कर्म से वेष्टित है, ऐसा विचार करना। इसके बाद। आठ कर्म से... किस अपेक्षा से कथन जानना चातिहए न? हैं! उसे जानकर स्वयं उसका नाश कर। क्षय कर आत्मा का आश्रय (लेकर), यह बताना है। है ऐसा? ११९ में है। देखो!

हे मुनिवर! तू ऐसी भावना कर कि मैं ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से वेष्टित हूँ,... ले! एक ओर कहे कि कर्म, शरीर और रागवाला माने, क्योंकि राग और कर्मरहित है, असमाहित है, उसे ‘युक्त इव, प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्’ भाई! (पुरुषार्थसिद्धि उपाय, गाथा-१४)। आहाहा! यहाँ तो पुरुषार्थ कराने और अन्तर में जा... अन्तर में जा। देखो! पर्याय में इतना निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है न? पर्याय में निमित्त और व्यवहार का ज्ञान करे। प्रश्रार्थ है, देखो! दो बातें लेकर मिथ्यादृष्टि समकित्ती की... ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से वेष्टित हूँ... परन्तु यह जानकर करना क्या? ‘डहिऊण इण्हं पयडमि अणंतणाणाइगुणचत्तिं’ चेतना अनन्त गुण का धनी भगवान उसमें स्थिर हो। और उसे दहन—कर्म को जला डाल। कर्म जड़ को जलाना? यह तो स्पष्ट ज्ञानावरणी कर्म शब्द पड़ा है।

मुमुक्षु : स्पष्ट लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट लिखा है परन्तु किस अपेक्षा से ? किस नय का कथन है, यह जाने नहीं। समझ में आया ? किस अपेक्षा से कहा है ? यह तो एक निमित्त-निमित्त सम्बन्ध पर्याय का, दृष्टि अबन्धस्वभाव पर होने पर भी, अबन्धस्वभाव पर दृष्टि होने पर भी, पर्याय में जरा निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है, उसका ज्ञान करके मैं व्यवहार से उसमें हूँ, ऐसा करके, स्वभाव का आश्रय लेकर उसे जला। अर्थात् ? अशुद्धता टलने से वह टल जाता है। अशुद्धता टालनी है, वह तो नहीं तो पर को जलाना, वह भी नहीं। परन्तु कथन क्या होगा ? शास्त्रभाषा तो इसकी भाषा से बात करनी हो न, वह तो संक्षिप्त या लम्बी किस प्रकार करना ? समझ में आया ?

वास्तव में तो एक ओर ऐसा कहना कि अशुद्धता का परिणाम का त्याग कर्ता भी आत्मा वास्तव में नहीं है। अमरचन्दभाई ! आहाहा ! ३४वीं गाथा। अशुद्धता मिथ्यात्व और राग-द्वेष का परमार्थ से भगवान आत्मा उसका नाशकर्ता नाममात्र है, परमार्थ से है नहीं। आहाहा ! और एक ओर ऐसा कहे कि हे मुनि ! ले ! समकित्ती को बन्ध नहीं, ऐसा कहा, व्यवहार से मुक्त कहते हो। कोई अपेक्षा है न ? छठवें गुणस्थान में भी आठ कर्म पड़े हैं। निमित्त-निमित्त सम्बन्ध का व्यवहार है। है हेय, परन्तु ज्ञेयरूप से मैं यह है ऐसा जानता हूँ। ऐई ! चन्दुभाई ! आहाहा ! स्याद्वाद की कथनी किस अपेक्षा कहाँ ... है, ऐसा जानना चाहिए न। ... इतना सम्बन्ध है स्पष्ट। अब जला। अर्थात् ? उन्हें जलाने जाए कर्म को ? अशुद्धता होती है, उसे टालना है। अशुद्धता टालने जाए तो दृष्टि पर्याय के ऊपर चली जाती है। कथन क्या हो ? जिस शैली का कथन हो नय का, उस अनुसार चले। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, 'तद्विवरीओ बंधइ सुहकम्मं भावसुद्धिमावण्णो।' उसमें शब्द यह नहीं था। भावशुद्धि। क्योंकि वह तो अज्ञानी था। यहाँ भावशुद्धि ... ऐसा कहते हैं। 'दुविहपयारं बंधइ संखेवेणेव वज्जरियं' अर्थात् कि वह अशुभ बाँधे, यह शुभ बाँधे। ऐसा भाई ! समकित्ती दो प्रकार से, ऐसा नहीं। परन्तु पहले कहा, अशुभ बाँधे मिथ्यादृष्टि; यह शुभ बाँधे। ऐसे दो प्रकार से बन्ध की बात की। समझ में आया ?

अर्थ - उस पूर्वोक्त जिनवचन का श्रद्धानी... भगवान की वाणी श्रद्धानी उसे

कहते हैं कि जिसे राग की रुचि छूट गयी है और वीतराग चैतन्य भगवान की जिसे श्रद्धा, विश्वास, अनुभव करके प्रतीति हो गयी है। आहाहा! उस वस्तु को ज्ञान में ज्ञेय बनाकर उसे प्रतीति हुई है, ऐसा कहते हैं। भावभासन बिना किसकी प्रतीति? समझ में आया? भारी सूक्ष्म। ऐसा यह जैनधर्म का? यात्रा करना। लो, यह पूर्णिमा की यात्रा कितनी करने गये हजारों लोग। बारह महीने में एक भटक आना। कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को। और यह कन्दमूल नहीं खाना और रात्रिभोजन नहीं करना। हो गया सीधा धर्म। ऐसा आडा-टेड़ा कर-करके... भगवान! ऐसा नहीं है, भाई! लाख यात्रा क्या अनन्त यात्रा कर न सम्मेदशिखर की और शत्रुंजय की। वहाँ कहाँ धर्म था? वह तो पुण्यभाव, शुभभाव है। समझ में आया? तब कहे कि उसमें निषेध आता है। निषेध अर्थात्? दृष्टि में तो उसका निषेध ही है। उसका-राग का आदर करे, यहाँ तो कहते हैं न कि तत्त्व की विपरीत श्रद्धावाला तो मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टि से विपरीत श्रद्धावाला सम्यग्दृष्टि है। समझ में आया?

जिनवचन का श्रद्धानी मिथ्यात्वरहित सम्यग्दृष्टि जीव... लो! बहुत संक्षिप्त व्याख्या। जिनवचन के श्रद्धानी का अर्थ यह। वे कहे, हम तो भगवान को मानते हैं। ... हे भगवान! हे वीतराग देव! आपने कहा, वह सच्चा। तू कुछ जानता है इसमें? कि मुझे कुछ खबर नहीं। क्या भगवान ने कहा और किसका निषेध किया, इसकी मुझे खबर नहीं। अपने तो भगवान सच्चे। यह गुरु कहते हैं, वह सच्चा। अपने तिर जाना, जाओ। गुरु की वाणी। कहाँ गये, भीखाभाई! भीखाभाई कहाँ गये? दूर बैठे हैं। कहो, समझ में आया? ऐसा यहाँ नहीं चलता, कहते हैं। अपने तो गुरु की कृपा से, कृपा नहीं परन्तु वाणी से, अपने वाणी मानना और तिर जायेंगे। भगवान की वाणी, भगवान सच्चे, भगवान के शास्त्र सच्चे। भगवान सच्चे, परन्तु तेरे सच्चे कहाँ हुए? आहाहा!

मुमुक्षु : आज्ञा समकित है न वह तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : आज्ञा समकित की व्याख्या क्या? आज्ञा में राग से रहित स्वरूप है, ऐसा माना, उसे आज्ञा समकित कहते हैं। 'आणाअे धम्मो आणाअे तवो।' समझ में आया? आनन्दघनजी में आता है। '... इस आगम से ... मन ... वह आगम ...

मनडुं दुराराध्य तें वश आण्युं, ते आगमथी मति आणुं... आनन्दघन प्रभु... 'आनन्दघन अपना ... 'आनन्दघन प्रभु मारूँ आणुं तो साचु करीने रे जाणुं। ओ कुंथुजिन मनडुं किमही न बाजे। किमही न बाजे रे कुंथु जिन, मनडुं किमही न बाजे। आगम-आगम... ' आगम पढता हो, हाथ में आगम हो। परन्तु 'आगम-आगम धरने हाथे नावे...' परन्तु यह मन मेरा घूमा ही करता है ऐसे से ऐसे। समझ में आया ?

प्रभु! इस आगम से तो जानता हूँ कि आपने मन को आराधा। दुराराध्य साधा। परन्तु मुझे जब बैठे तब सच्चा कहलाये कि यह साधा कहलाये। समझ में आया ? आपने साधा, यह भी मुझे जब बैठे कि रागरहित चैतन्य है, उसे साधा। तब आपने दुराराध्य मुझे साधा, यह बात व्यवहार से मुझे लागू पड़ी। अमरचन्दभाई! आहाहा! लो! आनन्दघनजी जैसे ऐसा कहते हैं, लो!

यहाँ तो इतना कि जिनवचन का श्रद्धानी मिथ्यात्वरहित... अर्थात् कोई संक्षिप्त कर दे कि अपने तो भगवान के वचन की श्रद्धा है और इसलिए मिथ्यादृष्टि (नहीं) हैं, इसका अर्थ यह है। जिनवचन की श्रद्धावाला अर्थात् कि जिनवचन के वीतरागभावी आत्मा, उसकी श्रद्धा वीतरागी पर्याय, वह जिनवचन की श्रद्धावाला कहा जाता है। समझ में आया ? उसमें आता है। नहीं ? जिनवचन में। उभयनय विरोधध्वंसिनी। जिनवचन में रमता है, नहीं आता ? जिनवचन में रमता है। जिनवचन में रमता होगा ? वाणी में ?

मुमुक्षु : लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा है परन्तु उसका अर्थ क्या ? जिनवचन में रमे, वह मिथ्यात्व का नाश करे। ज्ञान में रमे, वह मिथ्यात्व का नाश करे। आहाहा! उसका अर्थ जिनवचन में कहा हुआ वीतरागी भगवान आत्मा, अनन्त अमृत का सागर जिसमें उछलता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर जिसमें छलाछल भरपूर प्रभु आत्मा। ऐसा मेरा प्रभु, उसे मैंने दृष्टि में लेकर, अनुभव करके प्रतीति की, उसे जिनवचन में रमा—ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

यहाँ तो वीतराग त्रिलोकनाथ की श्रद्धा करने जाए तो 'परदव्वादो दुग्गइ' ऐसा मोक्ष अधिकार (प्राभृत) में कहा है। क्या कहा ? 'सदव्वा हु सुग्गइ परदव्वादो दुग्गइ'

इतने शब्द हैं। मोक्षपाहुड़, १६वीं गाथा। मोक्ष अधिकार। है न इसके बाद मोक्ष अधिकार, क्या कहलाता है वह? मोक्षपाहुड़। १६वीं-१६वीं। देखो! १६वीं है न? १६वीं है, देखो!

परदव्वादो दुग्गइ सदव्वा हु सुग्गइ होइ।

इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरह इयरम्मि ॥१६ ॥

बहुत संक्षिप्त। आत्मा अपने आनन्दकन्दरूपी द्रव्य में रति और एकाग्र हो, वह सुगति। और 'परदव्वादो' जो तीन लोक के नाथ और उनकी वाणी की ओर लक्ष्य करना, वह राग भी दुर्गति है। आत्मा की गति नहीं, वह दुर्गति। आहाहा! समझ में आया? 'इय णाऊण' ऐसा जानकर 'सदव्वे कुणह रई' ज्ञानानन्द भगवान में प्रेम कर अर्थात् एकाग्र हो। और 'विरह इयरम्मि' आत्मा के अतिरिक्त जितने दूसरे पदार्थ हैं, उनसे विरक्त विरम-विरम। विमुख हो। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं कि उसे जिनवचन की श्रद्धा कहा गया है। एक व्यक्ति कहता है, भाई! यह दिगम्बर में जन्मे, वे सब भेदज्ञानी तो है ही। कहो, क्योंकि शरीर और आत्मा भिन्न मानते हैं। अरे! भाई! तथा एक ओर कहे कि पुण्य से धर्म होता है। शरीर की क्रिया-जीवित शरीर से भी धर्म होता है, ऐसा तो माने और फिर कहता है, हम भेदज्ञानी हैं। अरे! भाई।

मुमुक्षु : भेदज्ञान का दूसरा अर्थ करते होंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टा अर्थ करते हैं। एक पण्डित ऐसा कहता है। जितने दिगम्बर में जन्मे, वे सब भेदज्ञानी। ... अब अपने चारित्र पालना। हमारे कहते (संवत्) १९८० में। कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा। मूलचन्दजी थे। २८वाँ अध्ययन पढ़ा, इसलिए भूसाडियो वाळवा अन्त में मांडी सब। ८० की बात है, हों! २६ और २०=४६ वर्ष हुए। देखो भाई! अपने को भगवान की श्रद्धा मिली है, आड़ी-टेड़ी मानना नहीं कुछ। ऐसा कहते। अपने को तो भगवान की श्रद्धा मिली है, अपन चारित्र पालते हैं। फिर समकित की तो दिक्कत नहीं। जैसा गणधर को समकित, वैसा अपने को समकित है। आहाहा! ऐई! कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा की रात्रि में, ८० के वर्ष। लो! ८१ हुआ। ८० वाँ चातुर्मास पूरा हुआ न? ८१ की कार्तिक। आहाहा! ऐसा नहीं। उसे जिनवचन की श्रद्धा नहीं कहते।

वीतरागी भाव आत्मा, वीतरागी भाव की श्रद्धा, वीतरागी पर्याय, सम्यग्दर्शन

वीतरागी पर्याय है और द्रव्य भी वीतरागी स्वरूप है। जिन कोई सम्प्रदाय नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। उसे अन्दर में राग से विमुख होकर, व्यवहार से विमुख होकर, स्व से सन्मुख होकर और प्रतीति में, अनुभव में लेना, उसे यहाँ जिनवचन की श्रद्धा कहा जाता है। ऐई! शान्तिभाई! ऐसा सब बहुत सूक्ष्म। परन्तु ठीक इस बार आये तो ठीक में सब। दोपहर का अधिकार चलता है शक्ति का।

यहाँ कहते हैं, वह शुभकर्म को बाँधता है... यहाँ यह कहना है। सम्यग्दृष्टि जीव शुभकर्म को बाँधता है... पाप के परिणाम आये हों तो उसे गिनने में नहीं आते। कैसा है जीव? भावों में विशुद्धि प्राप्त की है। सम्यग्दृष्टि भाव की शुद्धि अर्थात् विशेष शुद्धि और तदुपरान्त शुभभाव विकल्प। ऐसे दोनों प्रकार के जीव शुभाशुभ कर्म को बाँधते हैं, यह संक्षेप से जिनभगवान ने कहा है। दो प्रकार कौन? मिथ्यादृष्टि अशुभ बाँधे और सम्यग्दृष्टि शुभ बाँधे, ऐसा। वह गाथा ले ली साथ में। ऐसा संक्षेप कहने में आता है। संक्षेप से जिनभगवान ने कहा है। वीतरागदेव ने संक्षेप में यह बात की है। भावार्थ आयेगा। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१४१, गाथा-११८ -११९, सोमवार, कार्तिक शुक्ल ३, दिनांक १६-११-१९७०

११८ गाथा है न? ११८। गाथा का पाठ है इसमें। अर्थ तो दूसरे प्रकार का है।

तच्चिवरीओ बंधइ सुहकम्मं भावसुद्धिमावण्णो ।

दुविहपयारं बंधइ संखेपेणेव वज्जरियं ॥११८॥

क्या कहते हैं? अर्थ - उस पूर्वोक्त जिनवचन का श्रद्धानी मिथ्यात्वरहित सम्यग्दृष्टि जीव... है। क्या कहा? पहले कहा था, उससे यह विरुद्ध है। जिसे वीतराग वचन की श्रद्धा नहीं, वह मिथ्यादृष्टि है। अर्थात् क्या? वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी ने जो वाणी कही, उस वाणी में इस आत्मा का स्वरूप पुण्य-पाप के रागरहित, शरीररहित और पूर्णानन्द पूर्णस्वरूप आत्मा, परमेश्वर वीतरागदेव ने जो

कहा, ऐसा आत्मा पूर्ण आनन्द का धाम अनन्त गुण का एकरूप है, उसकी जिसे श्रद्धा नहीं, उसे जिनवचन की श्रद्धा नहीं।

जो कोई शरीर की यह जो क्रियाएँ हैं, उसमें से आत्मा को धर्म होता है, ऐसा माने; अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति के पुण्य के परिणाम हों, उसे धर्म माने, वह जिनवचन के अश्रद्धानी हैं। समझ में आया ? क्योंकि भगवान ने ऐसा कहा नहीं। प्रकाशदासजी ! भगवान ने ऐसा कहा नहीं। भगवान ने तो ऐसा कहा है कि जो कुछ आत्मा में पुण्य और पाप के भाव, शुभ-अशुभ, दया-दान, व्रत, भक्ति, काम-क्रोध आदि के भाव हों, वे सब विकारी हैं, दुःखरूप हैं, बन्ध का कारण है। उसे जो ऐसा माने कि मुझे धर्म होता है, वह जिनवचन के अश्रद्धानी हैं। वीतरागवाणी के कहे हुए भाव की वह श्रद्धा नहीं करता। सूक्ष्म बात।

मुमुक्षु : उसे धर्म न माने और उससे भला होता है, ऐसा माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : भला होता है, ऐसा माने वह तो वह का वही है।

जो कोई आत्मा, भगवान परमेश्वर केवली ने कहा... 'केवली पण्णतो धम्मो शरणं' आता है न मांगलिक में ? किसे खबर यह ? अंक बोल जाए, पहाड़े बोल जाए। यह 'केवली पण्णतो धम्मो' तो भगवान की वाणी में ऐसा आया कि पुण्य और पाप के भाव जो हैं, उनसे भिन्न, देह की, जड़ की इन क्रियाओं से भी भिन्न और आत्मा में एक समय की पर्याय, अवस्था से भी भिन्न भगवान है, उसकी जो श्रद्धा अन्तर्मुख होकर करे, उसे जिनवचन की श्रद्धा की कही जाती है। आहाहा ! समझ में आया ? देखो ! इसमें है या नहीं ? पहली गाथा यह आयी। ११७ में। मिथ्यादृष्टि जिनवचन से पराङ्मुख है। अर्थात् क्या ? भगवान सच्चे हैं, तीर्थकरदेव सच्चे हैं, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : भगवान ने कहा, वह सच्चा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भगवान ने क्या कहा है ? भगवान ने कहा है क्या ? परमात्मा केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने तो वीतरागभाव में धर्म कहा है। उन्होंने राग और दया, दान, व्रत के परिणाम में भगवान ने धर्म नहीं कहा। ऐई ! भगवानभाई ! यह तुम्हारे बड़ा परिवार, वह लम्बा सब। यह सब भिन्न। करो, व्रत पालो, अहिंसा,

सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य वह धर्म। उसे जिनवचन की श्रद्धा नहीं है। क्योंकि वह तो राग है, पुण्य है, विकल्प है, वृत्ति है, वासना है। उसे जो धर्म माने, वह वीतराग के वचन की अश्रद्धावाला है। उसे भगवान की वाणी की और भगवान के भाव की श्रद्धा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह ऊपर कहा न? यह ११७ में कहा।

अब यहाँ (कहते हैं), **जिनवचन का श्रद्धानी मिथ्यात्वरहित सम्यग्दृष्टि जीव...** है। धर्मी जीव वीतराग की आज्ञा को माननेवाला, वचन के भाव को स्वीकार करनेवाला अर्थात् कि भगवान ने आत्मा पूर्ण आनन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति कहा है। आत्मा, उसमें उसे कहीं भी पुण्य-पाप के भाव में सुखबुद्धि रहे, हितबुद्धि रहे, वह वीतराग की वाणी के श्रद्धानी नहीं हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? ऐसे वीतराग-वीतराग करे, क्या काम आवे वीतराग? वीतराग क्या कहते हैं, इसकी तो खबर नहीं होती। हमारे भगवान सच्चे। देव अरिहन्त, गुरु निर्ग्रन्थ, केवली ने प्ररूपित धर्म शरण। परन्तु क्या कहते हैं, इसकी खबर है तुझे?

मुमुक्षु : परन्तु शरण है न? शरण है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरण नहीं। उन्होंने—भगवान ने तो शरण उसे कहा, अपना आत्मा आनन्द और वीतरागस्वभाव से भरपूर है, उसकी शरण ले, ऐसा कहा है। तब हमारा शरण है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। समझ में आया?

यहाँ तो शब्द ऐसा है, देखो! **जिनवचन का श्रद्धानी...** भगवान की वाणी सच्ची, ऐसा जिनवचन का श्रद्धानी? अन्तर में जिसकी रुचि पुण्य और पाप के, दया-दान के भाव में से रुचि हट गयी है कि यह धर्म नहीं। ऐसी वीतराग की आज्ञा परमात्मा की है, ऐसा जब वह श्रद्धा करे, तब उसे पुण्य-पाप के भाव में प्रेम, रुचि हटकर और अकेला आत्मा आनन्दमूर्ति है, उसकी दृष्टि हो, तब उसे जिनवचन की श्रद्धावाला सम्यग्दृष्टि धर्मी कहा जाता है। मगनभाई! आहाहा! समझ में आया?

उस पूर्वोक्त जिनवचन का श्रद्धानी... यह ... वाणी सच्ची। परन्तु वाणी में क्या कहा है यह? वाणी में परमात्मा ने ऐसा कहा... त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव, इन्द्र-अर्धलोक का स्वामी सौधर्म का इन्द्र और ईशान का इन्द्र, ऐसे अर्ध-अर्ध लोक के स्वामी के

समीप में भगवान की वाणी निकली समवसरण में-धर्मसभा में और गणधर तथा सन्तों के समुदाय की टोली में यह वाणी-दिव्यध्वनि निकली कि भाई! प्रभु! तू परिपूर्ण आत्मा है। मेरी जाति का ही तू है। मेरे में और तेरे स्वभाव में कुछ अन्तर नहीं है। आहाहा! तू परमात्मा होने के योग्य है। आहाहा! ऐसा वीतराग ने कहा। तू राग में रहने और अल्पज्ञ रहने के योग्य नहीं है। आहाहा! ऐसी वाणी का भाव जिसे अन्दर में (भासित हुआ कि) मैं आत्मा सर्वज्ञस्वभावी हूँ। तीन काल-तीन लोक को जानने के ज्ञानवाला हूँ। मैं अल्पज्ञ नहीं, राग नहीं, पुण्य नहीं, निमित्त नहीं। आहाहा! ऐसी जिसे अन्तर में वीतराग ने कहे हुए भाव जिसे अन्तर में समझ में आये और प्रगट हुए हैं, उसे जिनवचन की श्रद्धावाला सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

वैसे तो पंच महाव्रत पालन करता हो, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य (अपरिग्रह)। वह तो राग है, विकल्प है; आत्मा का धर्म नहीं। वीतराग में उसे धर्म नहीं कहा। तथापि उसे धर्म माने, वह जिनवचन की अश्रद्धावाले मिथ्यादृष्टि जैन के साधु नाम धरानेवाले हों तो भी वे मिथ्यादृष्टि अज्ञानी वीतराग की वाणी के विपरीत श्रद्धावाले हैं। प्रकाशदासजी! भारी कठिन, यह प्रकाश का स्वरूप भी भारी कठिन! शान्तिभाई!

जिनवचन का श्रद्धानी... आहाहा! भगवान ने तो वीतरागभाव का वर्णन किया-समझाया। भगवान! तू तो वीतरागस्वभावी हो न, प्रभु! और वीतराग स्वभाववाला तेरा तत्त्व है, उसकी श्रद्धा करने से तो वीतरागी पर्याय प्रगट होगी। उसे भगवान ने सम्यग्दर्शन और धर्म कहा है। ऐसा माने, उसे जिनवचन की श्रद्धा है। आहाहा! काम बहुत (कठिन)। अभी उथल-पुथल हो गया है। समझ में आया? वह **जीव शुभकर्म को बाँधता है...** क्या कहते हैं? जिसे पुण्य परिणाम दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव जो राग है, उसे वह धर्म मानता है, उसे वीतराग वचन की श्रद्धा नहीं है, इसलिए वह अकेले पाप को बाँधता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शान्तिभाई! है या नहीं पुस्तक? पुस्तक है? कहाँ? लेकर आये हो? ठीक! वहाँ से लेकर आये हो? ठीक! कहो, समझ में आया इसमें? बापू! वीतराग का मार्ग बहुत अपूर्व है। यह बात अन्यत्र कहीं नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त किसी मत में यह बात नहीं है। अभी तो जैनवाडा के नाम

से चले, वे जैन नहीं। आहाहा! समझ में आया? पोपटभाई! यह सब जैन के सेठिया कहलाते हैं। देखो! आहाहा! ऐई! मगनभाई!

उसे कहते हैं कि भगवान तीन लोक के नाथ परमात्मा तीर्थकर के गुणगान गाना, उनका नाम स्मरण लेना—णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, ऐसा जो नाम स्मरण लेना, वह भी एक शुभराग है। अरे! भगवान! क्योंकि वह परद्रव्य के ओर की लक्ष्यवाली वृत्ति विकारी है। उसे कोई धर्म माने तो उसे वीतराग के वचन की श्रद्धावाला नहीं कहते। आहाहा! समझ में आया? और उसे-अज्ञानी को तो... आहाहा! भले कहते हैं कि वह पंच महाव्रत के परिणाम हो, दया-दान-भक्ति के परिणाम हो, परन्तु उन परिणाम को अपने धर्म के कारण से, धर्म का कारण है, ऐसा मानता है, इसलिए वह जिनवचन का अश्रद्धानी मिथ्यादृष्टि है। भले उसे शुभलेश्या आदि हो तो भी अकेले पाप को बाँधता है। समझ में आया? आहाहा! यह तो अशुभलेश्या डाली, परन्तु साथ में योगफल तो यह लिया है। वह पाप बाँधता है, इसका अर्थ कि शुभभाव हो तो भी वह पाप बाँधता है। आहाहा! जिसकी श्रद्धा में ही पूरी विपरीतता-ऊँधाई है। वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ ने तो वीतरागभाव से धर्म कहा है। उसके बदले अज्ञानी रागभाव से धर्म अथवा पुण्य करते, राग करते-करते धर्म होगा, ऐसा माननेवाले वीतरागभाव को नहीं मानते, अर्थात् कि वीतराग की वाणी के कहे हुए भाव को नहीं समझते। वह अश्रद्धानी हैं। आहाहा! भारी बात डाली भावपाहुड़ में। देखो यह।

मुमुक्षु : आपने ... अन्दर बात ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसमें क्या कहा देखो! कथन नहीं किया? वह पापी पाप पंक्ति में जानेवाले हैं।

जिसकी दृष्टि में भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति आनन्द का धाम, भगवान के ज्ञान में आया, यह आत्मा निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य, उसकी जिसे अन्तरदृष्टि सन्मुख होकर हुई नहीं, उसे राग की सन्मुख दया, दान, व्रत के सन्मुख में दृष्टि है, वह जिनवचन का अश्रद्धानी मिथ्यादृष्टि है। और उसे अशुभलेश्या और ५७ प्रकार के आस्रव आते हैं। मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, योग ये सब समय-समय में ५७ प्रकार के आस्रव आते हैं

और अशुभकर्म बँधता है। आहाहा! भारी बात, भाई! समझ में आया? और भगवान की आज्ञा का श्रद्धानी अर्थात् कि सम्यग्दृष्टि अर्थात् कि राग में-पुण्य में धर्म का कारण और धर्म नहीं माननेवाला अर्थात् कि भगवान आत्मा आनन्द का धाम, उससे धर्म होता है, ऐसा माननेवाला... नवनीतभाई! ऐसी बात है। आहाहा!

ऐसे तो सब भगवान सच्चे-भगवान सच्चे ... सब बोले, शोर मचाये। भगवान, हे भगवान! तुम सच्चे, हे प्रभु, सीमन्धर भगवान की आज्ञा लेते हैं न सामायिक में? सीमन्धर भगवान विराजते हैं न महाविदेह में? तीर्थकररूप से विराजते हैं। उनकी आज्ञा ले सामायिक में। जय भगवान! भगवान कहते हैं कि परन्तु तू मेरी आज्ञा तो मानता नहीं और किसकी आज्ञा ली तूने? हैं! यह सामायिक में नहीं लेते? इस ईशान कोने में भगवान विराजते हैं न वहाँ? महाविदेहक्षेत्र में परमात्मा त्रिलोकनाथ सीमन्धर प्रभु, बीस विहरमान में पहले तीर्थकर भगवान विराजते हैं, पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है, और विशाल बारह सभा में भगवान की वाणी निकलती है। अभी निकलती है। भगवान महाविदेह में विराजते हैं। यह भरतक्षेत्र है। वह महाविदेह की आज्ञा जो भगवान की ऐसे-ऐसे करे। परन्तु माने क्या? कि हम सामायिक और प्रौषध करते हैं, वह हमारा धर्म। परन्तु सामायिक, प्रौषध था कब तुझे? वह तो क्रियाकाण्ड का राग था। वह तो विकल्प है। सामायिक करूँ। सामायिक किसे कहना?

पुण्य-पाप के रागरहित चीज आत्मा है, ऐसे आत्मा की दृष्टि करके स्वरूप में स्थिर होना, उसे भगवान ने सामायिक कहा है। अब उस सामायिक का तो भान नहीं। हैं! भान नहीं? सामायिक-बामायिक की है या नहीं थोड़ी? तब वहाँ सम्प्रदाय में। यह सब सेठिया-बेठिया सबने सामायिक की हुई हो। हमने भी सब की थी पहले। खोटी सामायिक। पालेज में दुकान में बहुत की थी। सामायिक और प्रौषध... प्रौषध तो नहीं परन्तु अपवास। अपवास करते थे। पर्यूषण के आठ दिन होवे और चार अपवास करें। फिर निवृत्त होकर शाम को गायें। हो गया धर्म, लो!

मुमुक्षु : परन्तु तब होता हो, आज नहीं होता होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं होता। कुछ सब भान बिना के इकट्ठे हों सब।

गांडाभाई और लोग सब इकट्ठे हों। सुनावें यह प्रतिक्रमण मुख्याग्र किया हुआ। फिर यह 'देखो रे देखो जैनों कैसे व्रतधारी।' यह गाये, इसलिए वे प्रसन्न हो जायें। व्रतधारी अर्थात् विकल्पधारी, रागधारी। तू किसकी महिमा करता है? समझ में आया?

मुमुक्षु : ... जमात होवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : जमात हो। आहाहा! प्रभु! तेरा मार्ग ऐसा है। तेरा मार्ग अर्थात् प्रभु का मार्ग और तेरा दोनों एक ही है।

मुमुक्षु : ... देते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो दे लोगों को। जो माना हुआ हो, होवे क्या? यह तो अपूर्व अलौकिक मार्ग वीतराग का है। जो अनन्त काल में किया नहीं, उसने एक सेकेण्ड के लिये। नौवें ग्रैवेयक में जैन साधु होकर अनन्त बार गया। दिगम्बर साधु, हों! यह वस्त्रवाले तो भगवान ने साधु गिने ही नहीं और कहे भी नहीं। वे तो द्रव्यलिंगी भी नहीं। आहाहा! यह तो एक वस्त्र का ताना नहीं, हजारों रानियाँ छोड़कर, चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे, परन्तु दृष्टि में मिथ्यात्वभाव है। वह पंच महाव्रत के परिणाम, यह मेरा धर्म है, ऐसा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे जिनवचन की श्रद्धा नहीं है। आहाहा! भारी काम, भाई!

इसलिए ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव को, यह छठवें गुणस्थान की बाहर की शुक्ललेश्या और शुभभाव की क्रिया करे तो भी वह मिथ्यादृष्टि है; इसलिए अकेला पाप ही बाँधता है। और समकृति जीव शुभकर्म को बाँधता है। देखो! है? सम्यग्दृष्टि राग, पुण्य के विकल्परहित मेरी चीज़ है। वह मेरा आत्मा शान्ति-शान्ति अतीन्द्रिय आनन्द का धाम है। मेरा आनन्द मेरे पास है। मेरा आनन्द कहीं बाहर से नहीं आता। पैसे से नहीं, शरीर से नहीं, स्त्री से नहीं, इज्जत से नहीं, पुण्य-पाप के भाव से नहीं। ऐसी जिसकी अन्तर में सम्यग्दृष्टि धर्म का धारक ऐसा भगवान आत्मा की दृष्टि हुई है, वह कहते हैं कि जिनवचन की श्रद्धावाला है, उसे पुण्य ही बाँधता है। उस प्राणी को पुण्य की श्रेणी में डाला है। आहाहा! पाप के भाव आर्तध्यान कितना ही होने पर भी वह प्राणी पुण्यवन्त है, ऐसा कहते हैं। ऐई! धरमचन्दभाई! आहाहा! वह पुण्यवन्त प्राणी है।

बाहर में गरीब हो, अरे! सातवें नरक का नारकी हो। सातवाँ नरक नीचे रव-रव नरक। परन्तु जिसे आत्मा का भान हुआ है, वह राग और विकल्प के जहर से मेरा अमृतसागर भिन्न है, ऐसा जिसे भान हुआ है। खाने को चावल का दाना नहीं, पीने को पानी की बूँद नहीं, सोने को स्थल नहीं, पहनने को कपड़ा नहीं और रोग का पार नहीं। जन्मे तब से सोलह-सोलह रोग। ओहोहो! परन्तु जिसे आत्मा का सम्यग्दर्शन हुआ, तो कहते हैं कि वह पुण्यवन्त है। ऐई! आहाहा! और मिथ्यादृष्टि जीव भगवान के समवसरण में बैठा हो। समझ में आया? तीर्थकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी निकलती हो और समवसरण में बैठा हो। परन्तु जो राग और पुण्य को धर्म माने, भगवान की वाणी सुनते हैं, उसमें मुझे धर्म होता है, ऐसा माननेवाला, कहते हैं कि वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! गजब बात, भाई! ऐसा मार्ग वीतराग का है। लोगों को बाहर से सब बातें मानना है। अन्तर तत्त्व वस्तु क्या है, भगवान का, वह तो मानना नहीं। और फिर जैन कहलाना है। हम जैन हैं। बापू! जैन कहना किसे? भाई!

जैन तो वस्तु का स्वभाव है। ज्ञान चैतन्य पिण्ड आनन्दस्वरूप ऐसा जिसने भान करके मिथ्यात्व को जीता है, मिथ्यात्व का नाश किया है, उसे जैन कहा जाता है। आहाहा! थैली में ऊपर लिखे शक्कर, अन्दर भरा हो चिरायता। वह चिरायता कहीं मीठा हो जाएगा, थैली में शक्कर नाम दे इसलिए? इसी प्रकार ऊपर (लिखे), हम जैन, अन्दर में मान्यता मिथ्यात्व। जैन की नहीं। जैन की अर्थात् वीतरागभाव की श्रद्धा नहीं, राग से धर्म होता है, पुण्य से धर्म होता है, पुण्य करते-करते होता है और ये सब अन्तर के चिरायता जैसे मिथ्यात्व की कड़वाहट से भरे हैं। कहो, भीखाभाई! बराबर होगा यह? आहाहा!

कहते हैं कि समकित्ती जीव अर्थात् कि जिनवचन की श्रद्धावाला अर्थात् कि वीतरागभाव से धर्म माननेवाला; राग का विकल्प है, उससे धर्म माननेवाला नहीं, उसे तो पुण्य बँधता है इतना। पवित्रता तो है परन्तु उसे पुण्यवन्त प्राणी को पुण्य की श्रेणी में डाला है। आहाहा! समझ में आया? समकित्ती है, उसे छियानवें हजार रानियाँ हों। भरत चक्रवर्ती आदि समकित्ती हैं। उन्हें उनके भोग का विकल्प भी हो। समझ में आया? परन्तु योगफल तो कहते हैं कि वे पुण्यवन्त प्राणी हैं, ऐसा उन्हें कहते हैं।

क्योंकि उनके ऐसे भाव के समय भी उन्हें भविष्य का आयुष्य नहीं बाँधेगा। यह तो मोक्षगामी हैं। भरत चक्रवर्ती तो उस भव में मोक्ष पधारे हैं। उस भव में मोक्ष गये हैं। परन्तु दूसरे कोई सम्यग्दृष्टि हो, राग की रुचि नष्ट हो गयी है। पुण्य-पाप के प्रेम का जिसने नाश-प्रलय कर डाला है।

भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव से भरपूर, उसका जिसे प्रेम जगकर, जागकर देखा, ओहो! यह आत्मा तो पवित्र और शुद्ध आनन्दकन्द है। उसके पुण्य-पाप के परिणाम और शरीर, वाणी, कर्म-फर्म है नहीं। ऐसा जिसे भान है, उसे कहते हैं कि आर्तध्यान, रौद्रध्यान के भाव भी हों, अशुभलेश्यायें भी कदाचित् चौथे आदिक में हों, तथापि उसे पुण्य की श्रेणी में डाला है। समझ में आया ?

कैसा है जीव ? भावों में विशुद्धि प्राप्त की है। अन्दर तो यह लिखा भावों में विशुद्धि प्राप्त की है। ऐसे दोनों प्रकार के जीव शुभाशुभ कर्म को बाँधते हैं,... उसमें लिखा है। परन्तु विशुद्धि के दो अर्थ हैं। एक तो स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान है, वह शुद्ध है और उसके साथ शुभविकल्प जो आता है, उसे भी विशुद्ध कहा जाता है। आहाहा! श्रेणिक राजा नरक में गये। यह तो पहले नरक का आयुष्य बाँध गया, पश्चात् सम्यग्दर्शन पाये और तीर्थकरगोत्र बाँधा। परन्तु वर्तमान चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में पहले नरक में है। वहाँ समय-समय में तीर्थकरगोत्र बाँधते हैं। और उन्हें आत्मा का अनुभव है। आहाहा! समझ में आया ? वे अनुभवी निकलकर तीर्थकर होंगे, ऐसा कहते हैं। आगामी चौबीसी में पहले तीर्थकर श्रेणिक राजा का जीव होनेवाला है। जैसे भगवान महावीर चौबीस में थे, वे आगामी चौबीसी में पहला तीर्थकर श्रेणिक राजा का जीव अभी नरक में है। चौरासी हजार-हजार वर्ष की मुदत-स्थिति है। सम्यक्त्व नहीं था, तब महासन्त-सच्चे मुनि, धर्मात्मा की उन्होंने असातना की थी तो सातवें नरक का आयुष्य बाँधा। परन्तु जहाँ आत्मा का भान किया तो वह स्थिति टूटकर चौरासी हजार वर्ष की रह गयी। समझ में आया ? और ऐसे नरक की आयु बाँधने पर भी शुभभाव ऐसा आया कि जिसमें तीर्थकर नामकर्म भगवान के समवसरण में बाँधा। आहाहा! और वहाँ से नरक में गये। परन्तु वहाँ से निकलकर रानी के गर्भ में आने से पहले, छह-छह महीने पूर्व तो इन्द्र जिनकी सेवा करेगा, उनकी माता की। माता! तीन लोक का नाथ

तीर्थकर का जीव आपके गर्भ में आनेवाला है। आहाहा! देखो! यह सम्यग्दर्शन और पुण्य के परिणाम का यह फल। समझ में आया? साफ-सूफ करने आते हैं। साफ-सूफ करने इन्द्र आते हैं। आहाहा! और ऐसा पुण्य बँधा हुआ है। अभी नरक में हैं।

जब रानी के गर्भ में आयेंगे तब इन्द्र आकर कहेंगे, नमो रत्नकूखधारिणी हे माता! ऐसा तीर्थकर का आत्मा जिसने गर्भ में रखा, जनेता तू भी एक धन्य है। समझ में आया? तू माता जगत की, तीर्थकर की नहीं। तू तो जगत की माता जगदम्बा। यह जगदम्बा, हों! वह अम्बा-बम्बाजी कहे, सब फोगट—मुक्त की भ्रमणाएँ करके मर जानेवाले हैं। समझ में आया? अम्बाजी को माने, शिकोतर को माने, सुरधन को माने। पाप बाँधे और पुण्य घट जाए, ऐसे वे लोग हैं। आहाहा! यह अम्बा। जगत अम्बा। देखो! सीताजी को ऐसा कहा, जगत अम्बा। माता! आहाहा! जिसकी ब्रह्मचर्य की परीक्षाएँ अग्नि में हुई और सहज पुण्य का योग और देव निकले और उन्होंने पानी किया। अग्नि का पानी। गोकुल पूरा जगत अम्बा... जगत अम्बा... (पुकार करने लगा)। वह जगत अम्बा थी। समझ में आया? आहाहा!

उसे कहते हैं, सम्यग्दृष्टि के धर्मभाव में जो कोई ऐसा शुभभाव हो, उसका उसे पुण्य बँध जाए। अशुभ हो, तब आयुष्य नहीं बाँधे, इसलिए उस प्राणी को हम पुण्य श्रेणी में डालते हैं। ऐसे दोनों प्रकार के जीव शुभाशुभकर्म को बाँधते हैं,... ऐसे दोनों प्रकार के... अर्थात्? मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी, आत्मा के वीतरागभाव की श्रद्धारहित, राग की श्रद्धावाले अकेला पाप बाँधते हैं और समकृति आत्मा के भानवाले, अशुभभाव होने पर भी अकेला पुण्य बाँधते हैं। दोनों प्रकार के जीव शुभाशुभकर्म को बाँधते हैं,... कहो, समझ में आया? कौन दो प्रकार? मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि। दोनों शुभाशुभकर्म बाँधते हैं। मिथ्यादृष्टि अशुभ को बाँधता है, सम्यग्दृष्टि शुभ को बाँधता है। योगफल किया दोनों गाथाओं का।

यह संक्षेप में जिनभगवान ने कहा है। वीतराग परमात्मा ने तीर्थकरदेव त्रिलोकनाथ ने संक्षेप में यह कथन किया है। थोड़ा लिखा बहुत जानना, ऐसा आता है न अपने पत्र लिखते हैं तब? हैं! इसलिए कहते हैं, संक्षेप में कहा। परमात्मा तीर्थकरदेव ने, वीतरागदेव ने दिव्यध्वनि में संक्षेप से यह बात की है। कहो, शान्तिभाई! यह मार्ग बहुत

कठिन है। बाहर की बातों में ऐसे उलझ जाए न। बाहर का त्याग देखे, खोटा। समकित के त्यागी। और बाहर के व्रत और संधारा अकेले मिथ्यात्व के पोषक हैं। उसे अच्छा माननेवाले भी मिथ्यात्व के पोषक हैं। अकेला पाप बाँधनेवाले हैं। सुनने को भी निवृत्त नहीं होते, यह सत्य क्या है। समझ में आया ?

भावार्थ - पहले कहा था कि जिनवचन से पराङ्मुख मिथ्यात्वसहित जीव है,... जिनवचन से पराङ्मुख, वीतरागभाव से उल्टा, रागभाव को धर्म माननेवाला। जिनवचन से पराङ्मुख मिथ्यात्व सहित जीव है, उससे विपरीत जिनआज्ञा का श्रद्धानी सम्यग्दृष्टि जीव... समझ में आया ? उससे विपरीत जिनआज्ञा का श्रद्धानी सम्यग्दृष्टि जीव... यहाँ पूछो न पूछना हो तो फिर। लिखना है ? क्या पूछना है ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थकर होंगे। अभी कहा न। नरक में श्रेणिक राजा वहाँ से निकलकर... यहाँ से तीर्थकरपना बाँधकर गये हैं, समकित लेकर गये हैं। वहाँ तीर्थकरपना नहीं बाँधता। वहाँ समकित होता है। आत्मा का भान होता है। तीर्थकरगोत्र वहाँ नहीं बाँधते। नया, हों ! यहाँ का बाँधा हुआ हो तो वहाँ बाँधा करते हैं। अभी समय-समय में तीर्थकरपने की प्रकृति नरक में पड़े, वे बाँधते हैं। परन्तु वहाँ मिथ्यादृष्टि जाता है, सम्यग्दृष्टि भी जाता है पहले नरक में।

मुमुक्षु : यहाँ से गोत्र बाँधकर गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाँधकर गये हैं। वहाँ नहीं बाँधते-नया नहीं बाँधते। तीर्थकरगोत्र तो भगवान के समीप या श्रुतकेवली के समीप ही बाँधता है। अन्यत्र नहीं बाँधता। समकित होने पर भी आत्मा का भान है कि मैं तो रागरहित निष्क्रिय, राग की क्रियारहित आत्मा वीतरागस्वरूप हूँ। ऐसे भानवाला जीव भी तीर्थकर के समवसरण में, केवली के समवसरण में उसे तीर्थकरपने के भाव आवे, वहाँ बाँधे। यह श्रेणिक राजा ने समवसरण में भगवान के समवसरण में तीर्थकरगोत्र बाँधा।

मुमुक्षु : महावीर भगवान के।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, महावीर भगवान के समवसरण में। परन्तु गये हैं नरक में,

आयुष्य बँध गया। जिसका लड्डू किया हो—घी, गुड़ और आटा। उसका लड्डू बनाया हो तो उसमें से घी निकालकर अब पूड़ी नहीं होती। उसमें से आटा निकालकर रोटी नहीं होती। वह तो लड्डू खाना ही पड़ता है। इसी प्रकार जिसे आयुष्य बँध गया, वह तो वहाँ जाएगा ही। स्थिति घटे। समझ में आया ? लड्डू बनाया हो तो थोड़ा घी डालना हो, उसमें बीच में तो डाले। या दो-चार दिन सूखना होवे तो सुखावे। परन्तु उस लड्डू में से घी निकालकर पूड़ी हो, आटा निकालकर रोटी हो, ऐसा नहीं होता। आहाहा! आयुष्य बँध गया, इसलिए नरक में तो गये। स्थिति घट गयी। तैतीस सागर की स्थिति किसे कहें और चौरासी हजार, वह तो कुछ गिनती नहीं। ओहोहो!

जहाँ आत्मा के अन्तर का भान आया, जहाँ चैतन्य जागकर देखा कि मैं तो आनन्द का धाम हूँ। अकेला पवित्र हूँ, ऐसा सम्यग्दर्शन हुआ, (वहाँ) उड़ा दिया सब, कर्म की स्थिति थोड़ी रह गयी। समझ में आया ? वहाँ से निकलेंगे तब इन्द्र आकर उनकी माँ की सेवा करेंगे, छह महीने पहले। कहो। आहाहा! पन्द्रह महीने तक तो रत्न की वृष्टि होगी। छह महीने पहले और नौ महीने माता के उदर में (रहेंगे तब तक) रत्न की वृष्टि (करेंगे)। वे यहाँ रजकण होंगे, वे रत्नरूप होंगे। आहाहा! वे जब तीर्थकर होंगे... इन्होंने कुछ दूसरा किया नहीं। सम्यग्दर्शन आत्मा का अनुभव (किया है)। रागरहित मेरी चीज़ है, ऐसा अनुभव और भान किया। चारित्र-बारित्र नहीं था। वे निकलकर तीर्थकर होंगे। यहाँ के रजकण जो हैं, यहाँ भरे हैं न ? वे रत्नरूप होकर नीचे माता-पिता के आँगन में गिरेंगे। कुदरत ही जहाँ उसकी बदल गयी सब। आहाहा! समझ में आया ? पाप लेकर मिथ्यादृष्टि आया हो तो उसके घर में दीवार गिरे उसके ऊपर, उसके ऊपर पत्थर पड़े। आहाहा! यह तो धर्म का भान और पुण्य के परिणाम से बँधा हुआ कर्म है। आहाहा! समझ में आया ? पन्द्रह महीने तक (रत्नों की वर्षा होगी) ! ओहोहो!

कहते हैं कि वह सम्यग्दृष्टि तो पुण्यवन्त प्राणी है। जहाँ जाएगा, वहाँ उसके पुण्य की वृद्धि होकर, फिर छोड़कर वीतराग हो जानेवाले हैं। आहाहा! मिथ्यादृष्टि कदाचित् स्वर्ग में जाए। यह महाव्रत की क्रिया हो दया, दान, व्रत की, ऐसा कोई शुभभाव हो तो स्वर्ग में जाए। परन्तु है पापी। वहाँ से फिर अनुक्रम से एकेन्द्रिय में जानेवाला है। पृथ्वी में, जल में या वनस्पति में अवतरित होनेवाला है वह देव।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब मिथ्यादृष्टि पापी ही है। आहाहा! समझ में आया ?

शुभकर्म को बाँधता है, ... लो ! विशुद्धभाव को प्राप्त होकर शुभकर्म को बाँधता है, ... सम्यग्दृष्टि। क्योंकि इसके सम्यक्त्व के माहात्म्य से... देखो ! आहाहा ! समकित का माहात्म्य क्या है, उसकी जगत को खबर नहीं। यह व्रत पालन किये, दया पालन की, स्त्री-पुत्र छोड़े, दुकान छोड़ी, धन्धा छोड़ा, इसका माहात्म्य। धूल भी छोड़ा नहीं, सुन न ! जिसने मिथ्यात्व छोड़ा नहीं, उसने कुछ नहीं छोड़ा। और मिथ्यात्व छोड़ा उसने सभी दुनिया सारी, रागादि मुझमें नहीं। सबको छोड़ दिया है। आहाहा ! समझ में आया ?

इसके सम्यक्त्व के माहात्म्य से ऐसे उज्ज्वल भाव हैं... देखो ! सम्यग्दृष्टि को तो बहुत उज्ज्वल भाव होते हैं। अशुभभाव हों, उस समय भी वह अशुभभाव, वह बहुत मन्दता का होता है। जिसे अनन्तानुबन्धी टल गयी है, इसलिए बहुत ही मन्द अशुभ होता है। आहाहा ! समझ में आया ? जिसे मिथ्यात्व के साथ बाँधनेवाली पापप्रकृतियों का अभाव है। सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व के साथ जो प्रकृति बाँधती है, उसका तो उसे अभाव है। कदाचित् किंचित् कोई पापप्रकृति बाँधती है... सम्यग्दृष्टि को कोई परिणाम ऐसे होते हैं। वासना-विषय का राग हो। कोई ऐसा प्रकार आ जाए। होता है। संसार है। जब तक अन्दर में चारित्र नहीं, तब तक ऐसा भाव होता है। यह भाषा क्या प्रयोग की है ? कदाचित् किंचित्... ऐसा। हैं ! आहाहा ! जिसकी कोई कीमत नहीं, जिसे अन्दर में ऐसी चीज़ कोई थोड़ी आ जाए तो उसे पाप प्रकृति बाँधती है। तो उसका अनुभाग मन्द होता है... और उसका रस बहुत मन्द पड़ता है। कर्म का रस बहुत मन्द पड़ता है। तीव्र नहीं होता। कुछ तीव्र पापफल का दाता नहीं होता। तीव्र पापफल का दाता नहीं। अस्ति-नास्ति की। सम्यग्दृष्टि को पाप के परिणाम हों तो भी तीव्र रस पड़े, ऐसे उसके परिणाम नहीं होते।

जिसे आनन्दरस का स्वाद है... आहाहा ! सम्यग्दृष्टि अर्थात् कि चैतन्य के आनन्द का जो स्वामी है और रस का भान है (कि), यह अतीन्द्रिय आनन्द। आहाहा ! जिसके समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तिनके-कचरे जैसे लगें। आहाहा ! समझ में

आया ? इस प्रकार का धर्म कैसा होगा ? ऐई ! रजनीकान्तभाई ! यह वीतराग का धर्म होगा ऐसा ? वहाँ वाडा में तो कहीं सुना नहीं था । दया वह सुख की बेलड़ी, दया वह सुख की खान - ऐसा सुना था । खबर नहीं ? वहाँ वह तुम्हारे डाला है । पर की दया का भाव तो राग है । धर्म कब था ? कहते हैं । तुम्हारे है उस वण्डा में है । वण्डा । घड़ी के पास है । तब था । यह तो बहुत वर्ष हो गये । दया वह सुख की बेलड़ी, दया वह सुख की खान । यह लाठीवालों ने डाला है । लक्ष्मीचन्दभाई ने । प्रेमचन्द लक्ष्मीचन्द (ने) उसमें डाला । 'दया वह सुख की खान । अनन्त जीव मुक्ति गये दया तणा प्रमाण ।' परन्तु कौन सी दया ? समझ में आया ? यह तो आत्मा की दया जिसने खायी (की) है । आहाहा ! अरे ! भगवान ! मैं राग नहीं, मैं पुण्य नहीं, मैं पुण्य का स्वामी नहीं । मैं तो मेरे शुद्ध आनन्दकन्द स्वभाव का स्वामी हूँ । ऐसी जिसे दृष्टि हुई है, उसने जीव की-अपनी दया की है । आहाहा ! समझ में आया ? देखो ! बाद में गावे । व्याख्यान पूरा हो न, फिर थोड़ा गाये । बस, हो गया मानो धर्म हो गया, लो ! कहनेवाले को धर्म हुआ और सुननेवाले को हो गया । धूल भी नहीं, सुन न ! धर्म तो अपूर्व चीज़ है । अनन्त काल में एक सेकेण्डमात्र भी जिसने धर्म नहीं किया और उसने दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के परिणाम तो अनन्त बार किये । वह कहीं धर्म नहीं है ।

आत्मा अन्दर चिदानन्द प्रभु, कहते हैं कि उसका जिसे भान है । वह थोड़ा सा पापभाव आवे तो तीव्र पापफल का दाता नहीं होता । उसका अनुभाग तीव्र फल का दाता नहीं है । इसलिए सम्यग्दृष्टि शुभकर्म ही को बाँधनेवाला है... लो ! देखा ! इस प्रकार शुभ-अशुभकर्म के बन्ध का संक्षेप से विधान... संक्षेप से विधान... अर्थात् उसकी विधि । सर्वज्ञदेव ने कहा है, ... परमात्मा सर्वज्ञ केवली परमात्मा ने यह बात की है । आहाहा ! पाठ है न ? 'संखेवेणेव वज्जरियं' 'वज्जरियं' अर्थात् कहा । भगवान केवली परमात्मा तीर्थकरदेव ने समवसरण में संक्षेप में यह बात की थी । कहो, समझ में आया इसमें ?

गाथा-११९

आगे कहते हैं कि हे मुने ! तू ऐसी भावना कर -

णाणावरणादीहिं य अट्टहिं कम्मेहिं वेढिओ य अहं ।

डहिऊण इण्हिं पयडमि अणंतणाणाइगुणचित्तां ॥११९॥

ज्ञानावरणादिभिः च अष्टभिः कर्मभिः वेष्टितश्च अहं ।

दग्ध्वा इदानीं प्रकटयामि अनन्तज्ञानादिगुणचेतनां ॥११९॥

वेष्टित हूँ ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों से सदा ।

अब जला प्रगटाऊँ अमित ज्ञानादि गुण-युत चेतना ॥११९॥

अर्थ - हे मुनिवर! तू ऐसी भावना कर कि मैं ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से वेष्टित हूँ, इसलिए इनको भस्म करके अनन्तज्ञानादि गुण निजस्वरूप चेतना को प्रगट करूँ ।

भावार्थ - अपने को कर्मों से वेष्टित माने और उनसे अनन्त ज्ञानादि गुण आच्छादित माने, तब उन कर्मों के नाश करने का विचार करे, इसलिए कर्मों के बन्ध की और उनके अभाव की भावना करने का उपदेश है । कर्मों का अभाव शुद्धस्वरूप के ध्यान से होता है, उसी के करने का उपदेश है ।

कर्म आठ हैं - १. ज्ञानावरण, २. दर्शनावरण, ३. मोहनीय, ४. अन्तराय - ये चार घातिया कर्म हैं, इनकी प्रकृति सैंतालीस हैं, केवलज्ञानावरण से अनन्त ज्ञान आच्छादित है, केवलदर्शनावरण से अनन्त दर्शन आच्छादित है, मोहनीय से अनन्त सुख प्रगट नहीं होता है और अन्तराय से अनन्त वीर्य प्रगट नहीं होता है, इसलिए इनका नाश करो । चार अघातिकर्म हैं, इनसे अव्याबाध, अगुरुलघु, सूक्ष्मता और अवगाहना ये गुण (इन गुणों की निर्मल पर्याय) प्रगट नहीं होते हैं, इन अघातिकर्मों की प्रकृति एक सौ एक है । घातिकर्मों का नाश होने पर अघातिकर्मों का स्वयमेव अभाव हो जाता है, इस प्रकार जानना चाहिए ॥११९॥

गाथा-११९ पर प्रवचन

अब ११९। आगे कहते हैं कि हे मुने! तू ऐसी भावना कर - लो!

गाणावरणादीहिं य अट्टहिं कम्मेहिं वेढिओ य अहं।

डहिऊण इण्हिं पयडमि अणंतणाणाइगुणचित्तां ॥११९॥

देखो! भाषा देखो! एक ओर ऐसा कहे कि कर्म और कर्म के निमित्त से हुआ विकाररहित आत्मा है। उसे सहित माने, वह मिथ्यात्व और भव का बीज है। वजुभाई! भगवान आत्मा तो कर्म से रहित है और कर्म के निमित्त से हुए दया, दान, व्रत, भक्ति के शुभाशुभपरिणाम से भी आत्मा रहित है। उसे सहित माने, वही मिथ्यात्व और भव का बीज है। तब यहाँ कहते हैं कि आठ कर्मसहित मैं हूँ, ऐसा जान। किस अपेक्षा से कथन है? निमित्त-निमित्त सम्बन्ध में ऐसा इतना भाव है, ऐसा वह ज्ञान करता है। समझ में आया? यदि निमित्त-निमित्त सम्बन्ध छूट गया हो, तब तो अकेला सिद्ध भगवान हो जाए। क्या कहा? समझ में आया? वीतराग की वाणी के वचन!

यहाँ तो आत्मा है तो ऐसा ही। परन्तु जब तक पूर्ण निमित्त-नैमित्तिक—कर्म, निमित्त और नैमित्तिक विकार, ऐसा सम्बन्ध पूरा छूटा नहीं, तब तक वह केवली नहीं है, वीतराग नहीं है; इसलिए यह है, ऐसा उसे ज्ञान में, लक्ष्य में करना। बस, इतनी बात। परन्तु है करके होना क्या है उसमें? 'डहिऊण इण्हिं पयडमि' उस प्रकृति का नाश कर, इसके लिये जानना है। रखने के लिये नहीं, सम्बन्ध करने के लिये नहीं। सम्बन्ध तोड़ने के लिये जानना है, ऐसा कहते हैं। जयचन्दभाई! आहाहा! ... बेचारे साधारण लोगों को... 'अणंतणाणाइगुणचित्तां' लो!

अर्थ - हे मुनिवर! मुख्य मुनि को लक्ष्य कर बात है न? तू ऐसी भावना कर कि मैं ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से वेष्टित हूँ, ... आठ कर्म मेरे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध में है। मेरी पर्याय में अभी निर्बलता है और उतना निमित्तपना आठों कर्मों का वहाँ है। इतना सम्बन्ध है, वह व्यवहार है, उसे जानना चाहिए। नहीं है, ऐसा नहीं है। इतनी बात। यदि बिल्कुल निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध न हो, तब तो केवली हो। समझ में

आया? अरे! भाई! समझण करना और उसके सभी पहलुओं को उज्ज्वल करना, भारी काम।

मुमुक्षु : भगवान की वाणी का प्रभाव ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही प्रभाव है आत्मा का। आहाहा!

कहते हैं, ज्ञानावरणादि.... ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी इत्यादि आठ कर्म। वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र, अन्तराय। इन आठ कर्मों से वेष्टित हूँ,.... वेष्टित अर्थात् निमित्तरूप से पड़े हैं, ऐसा। निमित्तरूप से पड़े हैं। क्योंकि यदि निमित्त न हो तो नैमित्तिक संसार की अवस्था मुझमें होगी नहीं। इतनी बात। समझ में आया? 'अहं' शब्द प्रयोग किया है न? मैं। मैं ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से वेष्टित हूँ,.... ठीक! लिपटा हुआ हूँ। अर्थात्? भान तो है, मैं ज्ञायक चिदानन्द हूँ। परन्तु वीतरागस्वरूप हूँ, ऐसा भान है, तीन कषाय का अभाव हुआ है परन्तु अभी तक आठ कर्म का निमित्तपना और निमित्त के सम्बन्ध की अपनी निर्बलता, ऐसा भाव है। बस, इतनी बात। यह मेरी पर्याय की निर्बलता का यह अंश है। उसे जानना किसलिए?

इनको भस्म करके... कर्म को भस्म करके, ठीक! जड़ का स्वामी है आत्मा? जड़ को नाश कर सकता है? व्यवहार के कथन ऐसे शास्त्र में आते हैं। उन्हें समझना चाहिए। नहीं तो कर्म तो जड़ है। जड़ को आत्मा छूता है? जड़ को बदल सकता है? जड़ को बदल सकता है? जड़ का नाश कर सकता है? वह तो जड़ परमाणु है—मिट्टी है, आठ कर्म। परन्तु मेरे स्वभाव की उग्रता के पुरुषार्थ द्वारा जब पूर्ण प्राप्त होऊँ, अर्थात् कर्म की अवस्था भी बदलकर दूसरी अकर्म अवस्था हो, उसे जला डाला—ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? परमाणु का नाश होता होगा? परमाणु की पर्याय नाश होकर दूसरी पर्याय नहीं होगी? वह तो कर्म की अवस्था निमित्तरूप है, उसे मैं मेरे शुद्ध स्वभाव के पूर्ण आदर के समक्ष मैं सर्वज्ञ परमात्मा मैं स्वयं हूँ, अर्थात् वह परमाणु की पर्याय अकर्मरूप होने के योग्य ही वहाँ होती है, उसे इसने जलाया और टाला, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! निमित्त-निमित्त सम्बन्ध का ज्ञान कराया। समझ में आया? ऐसा सब समझने के लिये सिरपच्ची करने से कहीं एकदम सरल कुछ होगा या नहीं

करने का ? इसकी घर की चीज़ हो वह सरल होती है । अन्यत्र तो सरल हो राख । वह भगवान का नाम स्मरण कर लूँ, चौबीस घण्टे भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... (करो) । आत्मा में आत्मा का नाम नहीं । उसमें लिखा है आत्मा का नाम ? यह आत्मा का नाम लिखा है ? यह ज्ञान है, ऐसा गुण में नाम है ?

वस्तु स्वयं अखण्डानन्द प्रभु पूर्ण स्वभाव ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका स्पर्श, उसे छूना, उसका अनुभव, उसके कर्म के नाश के कारण से कर्म नाश होते हैं । उसे आत्मा नाश करता है, (ऐसा कहा जाता है) । पाठ तो ऐसा है न ? 'डहिऊण इण्हं पयडमि' उन्हें जलाकर, ऐसा है न ? इनको भस्म करके... देखो ! भाषा ऐसी है, ऐई ! ... भाई ! करो चर्चा कहते हैं हमारे साथ । इनको भस्म... पाठ में है न ? 'डहिऊण इण्हं' इसका अर्थ ... भाई ! निर्बलता की मेरी पर्याय है इतनी ... उग्र पुरुषार्थ करके, मुनि है, स्वरूप में उग्ररूप से स्थिर होकर केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न होने से वह कर्म की पर्याय कर्मरूप रहेगी नहीं । उसे जला डाला, उसे भस्म किया, ऐसा कहा जाता है ।

मुमुक्षु : जीव ने भस्म किया ।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव ने भस्म किया । गजब बात, भाई ! किस नय के कथन हैं, यह समझे नहीं (और कहे कि), यह लिखा इसमें । लोग कहते हैं कि णमो अरिहन्ताणं नहीं । और ऐसा कहे । अरि कि अरि तो दुश्मन है ? भगवान को कोई दुश्मन होगा ? नाम निक्षेप से दुश्मन ... लिखा है न ? पढ़ा नहीं ? यह तो एक जरा... वे तो अरहन्त तीन लोक के उत्तम पुरुषों द्वारा पूजनीक हैं । उत्तम पुरुषों द्वारा पूजनीक हैं तो उनके ... तीन लोक के ... आहाहा ! समझ में आया ?

अनन्त ज्ञानादि गुण जिनस्वरूप चेतना को प्रगट करूँ । लो ! अनन्त ज्ञानादि गुण जिनस्वरूप... भान तो है । परन्तु वस्तु का परिपूर्ण आश्रय लेकर अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त बल, अनन्त शान्ति इस प्रकार से प्रगट करूँ । ऐसा चेतना को प्रगट करूँ । यह चेतना । चेतना जो शक्तिरूप से जो है अभी अर्थात् कि उसे पर्यायरूप से परिणम कर पूर्ण कर दूँ । आहाहा !

भावार्थ - अपने को कर्मों से वेष्टित माने और उनसे अनन्त ज्ञानादि गुण

आच्छादित माने, तब उन कर्मों के नाश करने का विचार करे,... लो! दोष को देखे तो दोष को टाल सके, ऐसा कहते हैं। भाई! व्यवहार के कथन ऐसे होते हैं। समझे न? ... आहाहा! यहाँ तो भाषा तो ऐसी है, देखो! वाँचे वह समझे हो न। आहाहा! **कर्मों से वेष्टित माने और उनसे अनन्त ज्ञानादि गुण आच्छादित माने...** उससे आच्छादित माने। देखो! जड़ से आत्मा की पर्याय ढँकती होगी? जड़ का और आत्मा की पर्याय के बीच तो अत्यन्त अभाव है। अत्यन्त अभाववाली चीज़ दूसरे को नुकसान करती होगी? वह इसे नुकसान करे, यह उसे जलावे। देखो! पारस्परिक वहाँ देखो!

मुमुक्षु : एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर सकता है इसमें आया। ऐसा नहीं, सुन न, भाई! यह सब व्यवहार के शास्त्र की रचना के व्यवहारनय के कथन ऐसे शास्त्र में रचे जाते हैं। किस प्रकार करना?

अनन्त ज्ञानादि गुण आच्छादित... अपना आत्मस्वभाव उग्र हो अर्थात् अशुद्धता नाश हो, तो निमित्तरूप से भी पर्याय वैसी नहीं होती। ऐसी लम्बी-लम्बी बात करे? और वह निमित्त को नाश करे और कर्म का नाश करे। किसे करे? वह तो निमित्त सम्बन्ध टूट जाता है, उसे नाश करता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! शास्त्र शास्त्रभाषा से बात करे। व्यवहारनय की, हों! उसे न समझे तो फँस जाए उसमें। आहाहा! **तब उन कर्मों के नाश करने का विचार करे, इसलिए कर्मों के बन्ध की और उनके अभाव की भावना करने का उपदेश है।** लो! कर्म के बन्ध की भावना। भावना नाम अर्थात् जानना। **और उनके अभाव की भावना करने का उपदेश है।** अभाव। भगवान में कर्म का अभाव है। अभावअभाव एक शक्ति आत्मा में है। लो! एक अभावशक्ति है। कर्म का उसमें तीनों काल अभाव है। अभावभाव और वह अभाव है, इस प्रकार ही अभाव परिणमन चालू है। कर्म का भाव बिल्कुल आत्मा में नहीं है, लो! आहाहा! अभावअभावशक्ति आती है न? ४७ शक्ति में।

भगवान आत्मा में एक शक्ति ऐसी है कि पर्याय में कर्म का अभाव है। ऐसा उसका गुण है। और ऐसा का ऐसा अभावरूप से भविष्य में भी रहा करे। समझ में

आया ? ऐसी अभावअभाव नाम की शक्ति है। उस शक्ति का धारक भगवान आत्मा है। उस शक्तिवान को जहाँ दृष्टि में लिया अर्थात् उसकी पर्याय में कर्म के अभावरूप ही परिणमन होता है। और इस प्रकार ही चालू रहा करे। कर्म के अभावरूप का परिणमन कायम चालू रहा करे। उसे अभावअभाव नाम की शक्ति (कहते हैं)। आयेगा अभी अपने। जब आयेगा, तब अधिक आयेगा।

कर्मों का अभाव शुद्धस्वरूप के ध्यान से होता है,... लो ! कर्म का नाश करना, ऐसा नहीं, कहते हैं। वह तो शुद्ध स्वरूप के ध्यान से कर्म का अभाव हो जाता है। **उसी के करने का उपदेश है। लो ! विशेष कहेंगे।** (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-१४२, गाथा-११९ -१२०, मंगलवार, कार्तिक कृष्ण ४, दिनांक १७-११-१९७०

.... मुनि हो ... आत्मा द्रव्यस्वभाव से अभेद है, निर्लेप है, अबन्ध है। ऐसी दृष्टि होने पर भी पर्याय में जितनी निर्बलता है, विपरीतता है, उसका निमित्त कर्म है, ऐसा इसे ज्ञान करना चाहिए, जानना चाहिए। यह जाने तो ऐसा माने। मानने का अर्थ यहाँ जानने की बात है। समझ में आया ? चैतन्य का भान सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है, ऐसी सम्यग्दृष्टि होने पर भी और मुनि हुआ स्वरूप में चारित्र है-रमणता, परन्तु अभी उसे पूर्णता नहीं है, इसलिए उसकी अपूर्णता में, अशुद्धि में निमित्त कर्म है—ऐसा इसे जानना चाहिए। व्यवहार ज्ञान करने की बात है। समझ में आया ? यह स्वयं एक आत्मा कर्म और राग से रहित है। वह तो त्रिकाली वस्तु की बात हुई। समझ में आया ? आत्मद्रव्य जो वस्तु है, चैतन्य अनाकुल आनन्द का भाव भगवान आत्मा, उस चीज की अपेक्षा से तो उसमें राग, पुण्य और कर्म का सम्बन्ध नहीं है। परन्तु पर्याय की दृष्टि देखने से पर्याय में—अवस्था में अनन्त ज्ञानादिगुण आच्छादित माने... अभी बेहद केवलज्ञान हुआ नहीं; इसलिए पर्याय में ज्ञानावरणी का निमित्त है, उससे पर्याय ढँकी हुई है, ऐसा व्यवहार से माने। वास्तव में तो अपना परुषार्थ निर्बल है, इसलिए पूर्ण केवलज्ञान प्रगट नहीं होता।

परन्तु पुरुषार्थ की निर्बलता में, हीनदशा में कर्म का निमित्त है। मगनभाई! गजब बातें! ऐसा जानकर... अनन्त ज्ञानादि गुण आच्छादित माने... पूर्ण केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्ण आनन्द और पूर्ण वीर्य, ऐसी दशा प्रगट होना चाहिए। उस दशा में अपूर्णता है, इसलिए पूर्ण दशा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध में उसने ढाँकी है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। समझ में आया ?

तब उन कर्मों के नाश करने का विचार करे,... लो! अर्थात् कि वह जाने तो विचारे, यह कुछ नया नहीं इसे। परन्तु जानने में ऐसी अल्पता है तो स्वभाव का आश्रय करके अल्पज्ञ टलकर सर्वज्ञ होना। भारी सूक्ष्म बात, भाई! समझ में आया ? वीतराग का मार्ग पर्याय-पर्याय में जितनी अशुद्धता है, वह भी इसे ख्याल में रखकर स्वभाव का आश्रय लेकर टालना चाहिए, ऐसा कहना चाहते हैं। समझ में आया ? भाव है न! पूर्ण केवलज्ञान और केवलदर्शन नहीं, तो इसका अर्थ हुआ कि अपूर्ण ज्ञान है, उसमें पूर्ण आच्छादित है, यह निमित्त के कथन हैं। विवाद उठाना हो तो शब्द-शब्द में विवाद उठावे।

नाश करने का विचार करे, इसलिए कर्मों के बन्ध की... कर्म का सम्बन्ध निमित्त-निमित्त का ज्ञान करके और उनके अभाव की भावना करने का... स्वभाव-सन्मुख आश्रय करके उसे टालना। देखो! और उनके अभाव की भावना करने का उपदेश है। कर्मों का अभाव शुद्धस्वरूप के ध्यान से होता है,... लो! ३०९ पृष्ठ है कुछ इसमें। कर्मों का अभाव शुद्धस्वरूप के ध्यान से होता है,... यह मुद्दा। भगवान आत्मा चैतन्य शुद्ध है, ध्रुव है, निर्मल है, परम आनन्द है। उसका अन्तर ध्यान करने से कर्म टलेंगे। कहो, समझ में आया ? इतने अपवास करने से कर्म टलते हैं, ऐसा नहीं है। वह तो बाह्य की क्रिया है।

अन्तर शुद्धस्वरूप चैतन्य भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा आत्मा कहा, वैसा आत्मा अनुभव में लेकर, उसकी एकाग्रता करना, वह कर्म के अभाव करने का उपाय है। कहो, समझ में आया ? कितने ही कहते हैं न ? भाई! यह कर्म तो अपने को चिपके हैं। जैसे तपेला को, बर्तन को जंग होती है जंग, तो काथी और रेती, भोगावानी रेती और काथी लगावे तो जंग टले। यह बर्तन को जंग होती है न ? तो जंग कहीं ऐसे के ऐसे

टले ? उसे कहते हैं कि रेत, भोगावानी यह लींबड़ी और बढवाण की, वह ले जाते हैं। अन्तिम घिसने के लिये... यहाँ पहले रहते। ... बाँधकाम के पत्थर में। और काथी हो, काथी। घिसे तो निकले। इसी प्रकार कर्म बँधे हुए हों तो अपवास करे तो टले। ऐसा अज्ञानी मानता है। ...लालजी! कहते हैं या नहीं? ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। कर्म चिपके हैं ... तो उसे अपवास करो दो-चार-पाँच-दस-पच्चीस-पचास अपवास (करो) तो उससे कर्म घटे। भगवान कहते हैं, ऐसा नहीं है।

आत्मा का स्वरूप शुद्ध पवित्र स्वरूप है, उसके समीप में एकाग्र होना, वह कर्म टालने का उपाय है। आहाहा! समझ में आया? है, पुस्तक दी है? ... **कर्मों का अभाव शुद्धस्वरूप के ध्यान से होता है,...** है? ऊपर चौथी लाईन है। एक ही सिद्धान्त। कर्म का सम्बन्ध है, उसका असम्बन्ध करने के लिये शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि करके उसमें लीनता होना, यह एक ही उपाय कर्म के अभाव का है। तो फिर यह अपवास और महाव्रत पाले तो कितना होगा? ... होगा? वह तो राग है, विकल्प है, भावकर्म है, भावबन्ध है। उसे टालना है, उसे रखना नहीं। उसे टालने का उपाय, जिसमें राग नहीं—ऐसा शुद्ध स्वभाव आत्मा का, उसका ध्यान, उसका विषय चैतन्य को शुद्ध को बनाकर अन्तर ध्यान करना, अन्तर्मुख होना, वही बहिर्मुख कर्म के नाश का उपाय है। आहाहा! समझ में आया? **उसी के करने का उपदेश है। ध्यान से होता है, उसी के करने का उपदेश है।** यह उपदेश है भगवान का। आहाहा! भारी कठिन पड़े लोगों को।

कर्म आठ हैं—१- ज्ञानावरण, २- दर्शनावरण, ३- मोहनीय, ४- अन्तराय ये चार घातियाकर्म हैं, इनकी प्रकृति सैंतालीस हैं,... ४७।४ और ७। इनमें केवलज्ञानावरण से अनन्त ज्ञान आच्छादित है, ... लो! केवलज्ञान ज्ञानावरण से अनन्त ज्ञान निमित्त के सम्बन्ध में ढँका हुआ दिखता है, कहते हैं। केवलज्ञान अल्पज्ञ प्राणी को नहीं। तो उस केवलज्ञान में केवलज्ञानावरणी निमित्त है। वह परद्रव्य उसे आच्छादित करता है, ऐसा नहीं है। परन्तु परद्रव्य का इतना आसक्त भाव है, वह उसे केवलज्ञान होने नहीं देता। समझ में आया? भारी काम। शास्त्र के अर्थ समझने में भी बड़ी मुश्किल।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, केवलज्ञान नहीं है, उतना अपना दोष-निर्बलता है

न? परसन्मुख की इतनी परिणति मलिन है। उस परिणति को टालने के लिये शुद्धस्वरूप का ध्यान करने से वह टलती है और केवलज्ञान होता है। समझ में आया? अन्तर स्वरूप भगवान आत्मा के मार्ग की बात है। जिसे उसकी खबर ही नहीं, उसे तो मार्ग कैसा और कहाँ जाना, इसकी खबर नहीं पड़ती। केवलज्ञान पर्याय है। उसकी शक्ति में है परन्तु प्रगट होने में अपने पुरुषार्थ की कमी है, उसमें निमित्तपना केवलज्ञानावरणी प्रकृति का है। इसलिए उससे आच्छादित हुआ, ऐसा कहने में आता है।

केवलदर्शनावरण से अनन्त दर्शन आच्छादित है,... लो! ऐसा निकले, इसलिए वे लोग कहे कि देखो! कर्म के कारण ढँक गया है। तुम कहते हो कि कर्म के कारण नहीं, अपनी भूल के कारण (ढँका हुआ है)। परन्तु वह भूल और कर्म निमित्त दोनों एक गिनकर उससे ढँका है, ऐसा कहने में आया है। क्या करे भाई? आहाहा! समझ में आया? **मोहनीय से अनन्त सुख प्रगट नहीं होता है...** देखो! यह कहा। समकित और चारित्र ऐसा नहीं लिया। सम्यग्दर्शन और चारित्र है, वह सुखस्वरूप है। उस सुख को प्रगट न होने दे, ऐसा मोहनीय कर्म का निमित्त है। अपना उल्टा पुरुषार्थ है अशुद्ध उपादान और निमित्त है कर्म। देखो! इसमें मोहनीय से समकित और चारित्र ढँका, ऐसा नहीं कहा। इसका अर्थ यह कि सुख में सम्यग्दर्शन और चारित्र दोनों ढँक गये हैं। सम्यग्दर्शन होने पर सुख की पर्याय प्रगट होती है। चारित्र होने पर अधिक प्रगट होती है और पूर्ण होने पर अनन्त होती है। समझ में आया? सुख कहीं बाहर में नहीं है और सुख कहीं बाहर से नहीं आता।

मोहनीय से अनन्त सुख प्रगट नहीं होता है... भाषा तो ऐसी है। निमित्त है, निमित्त। निमित्त बतलाता है कि नैमित्तिक में कुछ कचास और अपूर्णता है। तब वह निमित्त कहा जाता है। और **अन्तराय से अनन्त वीर्य प्रगट नहीं होता है,...** लो! आत्मा का अनन्त बल है, परन्तु पर्याय में, हीनदशा में, वीर्य की हीनदशा में अन्तराय का निमित्त है। इसलिए बल अनन्त प्रगट नहीं होता। **इसलिए इनका नाश करो।** लो! चार घाति का नाश करना, ऐसा।

और **चार अघातिकर्म हैं इनसे अव्याबाध,...** अव्याबाध आत्मा में गुण वेदनीय से रुक गया है। अगुरुलघु, सूक्ष्मता और अवगाहना... यह नाम (कर्म से) लिया वहाँ।

ये गुण (की निर्मल पर्याय) प्रगट नहीं होते हैं,.... अघाति के चार। इन अघातिकर्मों की प्रकृति एक सौ एक हैं। ४७ घाति की, १०१ अघाति की। (कुल) १४८ प्रकृति आठ कर्म की है। घातिकर्मों का नाश होने पर अघातिकर्मों का स्वयमेव अभाव हो जाता है,.... ऐसा शब्द समझाना है, तो क्या समझावे? अपने पुरुषार्थ से केवलज्ञान और केवलदर्शनादि अनन्त सुख प्रगट हुआ, इसलिए अब कहते हैं कि घातिकर्म का नाश हुआ और अब अघातिकर्म के नाश के लिये प्रयत्न कुछ होता नहीं। स्वयमेव अभाव हो जाता है,.... ऐसा। यह तो चार घाति टले, उसे तो अघाति टले बिना रहते नहीं। केवली भगवान को चार कर्म बाकी हैं। अरिहन्त भगवान, सीमन्धर भगवान विराजते हैं। उन्हें चार कर्म बाकी और चार कर्म छिद गये हैं। सिद्ध होने पर आठों कर्मों का नाश होता है, ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए। समझ में आया ? यह अघाति कर्म का स्वयमेव अभाव होता है। ऐसा।



गाथा-१२०

आगे इन कर्मों का नाश होने के लिए अनेक प्रकार का उपदेश है, उसको संक्षेप से कहते हैं -

शीलसहस्रद्वारस चउरासीगुणगणाण लक्खाइं।

भावहि अणुदिणु णिहिलं असप्पलावेण किं बहुणा ॥१२०॥

शीलसहस्राष्टादश चतुरशीतिगुणगणानां लक्षाणि।

भावय अनुदिनं निखिलं असत्प्रलापेन किं बहुना ॥१२०॥

हैं शील अष्टादश सहस्र गुण-गण चुरासी लाख हैं।

भाओ निरंतर सभी को क्या लाभ असत्प्रलाप से? ॥१२०॥

अर्थ - शील अठारह हजार भेदरूप है और उत्तरगुण चौरासी लाख हैं। आचार्य कहते हैं कि हे मुने! बहुत झूठे प्रलापरूप निरर्थक वचनों से क्या? इन शीलियों को और

उत्तरगुणों को सबको तू निरन्तर भा, इनकी भावना-चिन्तन-अभ्यास निरन्तर रख, जैसे इनकी प्राप्ति हो वैसे ही कर।

भावार्थ - 'आत्मा-जीव' नामक वस्तु अनन्तधर्मस्वरूप है। संक्षेप से इसकी दो परिणति है, एक स्वाभाविक और एक विभावरूप। इनमें स्वाभाविक तो शुद्धदर्शनज्ञानमयी चेतनापरिणाम है और विभावपरिणाम कर्म के निमित्त से है। ये प्रधानरूप से तो मोहकर्म के निमित्त से हुए हैं। संक्षेप से मिथ्यात्व राग-द्वेष हैं, इनके विस्तार से अनेक भेद हैं। अन्य कर्मों के उदय से विभाव होते हैं, उनमें पौरुष प्रधान नहीं है, इसलिए उपदेश अपेक्षा वे गौण हैं, इस प्रकार ये शील और उत्तरगुण स्वभाव-विभाव परिणति के भेद से भेदरूप करके कहे हैं।

शील की प्ररूपणा दो प्रकार की है - एक तो स्वद्रव्य-परद्रव्य के विभाग की अपेक्षा है और दूसरे स्त्री के संसर्ग की अपेक्षा है। परद्रव्य का संसर्ग, मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से न करना। इनको आपस में गुणा करने से नौ भेद होते हैं। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये चार संज्ञा हैं, इनसे परद्रव्य का संसर्ग होता है, उसका न होना, ऐसे नौ भेदों को चार संज्ञाओं से गुणा करने पर छत्तीस होते हैं। पाँच इन्द्रियों के निमित्त से विषयों का संसर्ग होता है, उनकी प्रवृत्ति के अभावरूप पाँच इन्द्रियों से छत्तीस को गुणा करने पर एक सौ अस्सी होते हैं। पृथ्वी, अप, तेज, वायु, प्रत्येक, साधारण ये तो एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ऐसे दशभेदरूप जीवों का संसर्ग, इनकी हिंसारूप प्रवर्तने से परिणाम विभावरूप होते हैं। सो न करना, ऐसे एक सौ अस्सी भेदों को दस से गुणा करने पर अठारह सौ होते हैं। क्रोधादिक कषाय और असंयम परिणाम से परद्रव्य सम्बन्धी विभावपरिणाम होते हैं, उनके अभावरूप दसलक्षण धर्म है, उनसे गुणा करने से अठारह हजार होते हैं। ऐसे परद्रव्य के संसर्गरूप कुशील के अभावरूप शील के अठारह हजार भेद हैं। इनके पालने से परम ब्रह्मचर्य होता है, ब्रह्म (आत्मा) में प्रवर्तने और रमने को 'ब्रह्मचर्य' कहते हैं।

स्त्री के संसर्ग की अपेक्षा इस प्रकार है - स्त्री दो प्रकार की है, अचेतन स्त्री काष्ठ, पाषाण, लेप (चित्राम) ये तीन, इनका मन और काय दो से संसर्ग होता है, यहाँ वचन नहीं है, इसलिए दो से गुणा करने पर छह होते हैं। कृत, कारित, अनुमोदना से गुणा करने पर अठारह होते हैं। पाँच इन्द्रियों से गुणा करने पर नब्बे होते हैं। द्रव्य-भावना से गुणा करने पर एक सौ अस्सी होते हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ - इन चार

शयनासन का ग्रहण, ५. भूषण का मण्डन, ६. गीतवादित्र का प्रसंग, ७. धन का संप्रयोजन, ८. कुशील का संसर्ग, ९. राजसेवा, १०. रात्रिसंचरण - ये दस 'शील-विराधना' हैं। इनके आलोचना के दस दोष हैं, गुरुओं के पास लगे हुए दोषों की आलोचना करे सो सरल होकर न करे कुछ शल्य रखे, उसके दस भेद किये हैं, इनसे गुणा करने पर आठ लाख चालीस हजार होते हैं। आलोचना को आदि देकर प्रायश्चित्त के दस भेद हैं, इनसे गुणा करने पर चौरासी लाख होते हैं। सो सब दोषों के भेद हैं, इनके अभाव से गुण होते हैं। इनकी भावना रखे, चिन्तन और अभ्यास रखे, इनकी सम्पूर्ण प्राप्ति होने का उपाय रखे, इस प्रकार इनकी भावना का उपदेश है।

आचार्य कहते हैं कि बार-बार बहुत वचन के प्रलाप से तो कुछ साध्य नहीं है, जो कुछ आत्मा के भाव की प्रवृत्ति के व्यवहार के भेद हैं, उनकी 'गुण' संज्ञा है, उनकी भावना रखना। यहाँ इतना और जानना कि गुणस्थान चौदह कहे हैं, उस परिपाटी से गुणदोषों का विचार है। मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र - इन तीनों में तो विभावपरिणति ही है, इनमें तो गुण का विचार ही नहीं है। अविरत, देशविरत आदि में शीलगुण का एकदेश आता है। अविरत में मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी कषाय के अभावरूप गुण का एकदेश सम्यक्त्व और तीव्र रागद्वेष का अभावरूप गुण आता है और देशविरत में कुछ व्रत का एकदेश आता है। प्रमत्त में महाव्रतरूप सामायिक चारित्र का एकदेश आता है, क्योंकि पापसम्बन्धी राग-द्वेष तो वहाँ नहीं है, परन्तु धर्मसम्बन्धी राग है और 'सामायिक' राग-द्वेष के अभाव का नाम है, इसीलिए सामायिक का एकदेश ही कहा है।

यहाँ स्वरूप के सन्मुख होने में क्रियाकाण्ड के सम्बन्ध से प्रमाद है, इसलिए 'प्रमत्त' नाम दिया है। अप्रमत्त में स्वरूप साधने में तो प्रमाद नहीं है, परन्तु कुछ स्वरूप के साधने का राग व्यक्त है, इसलिए यहाँ भी सामायिक का एकदेश ही कहा है। अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण में राग व्यक्त नहीं है, अव्यक्तकषाय का सद्भाव है, इसलिए सामायिक चारित्र की पूर्णता कही। सूक्ष्मसाम्पराय में अव्यक्त कषाय भी सूक्ष्म रह गई, इसलिए इसका नाम 'सूक्ष्मसाम्पराय' रखा। उपशान्तमोह क्षीणमोह में कषाय का अभाव ही है, इसलिए जैसा आत्मा का मोहविकाररहित शुद्ध स्वरूप था उसका अनुभव हुआ, इसलिए 'यथाख्यात चारित्र' नाम रखा।

ऐसे मोहकर्म के अभाव की अपेक्षा तो यहाँ उत्तरगुणों की पूर्णता कही जाती है, परन्तु आत्मा का स्वरूप अनन्तज्ञानादि स्वरूप है सो घाकिर्म के नाश होने पर अनन्तज्ञानादि

प्रगट होते हैं, तब 'सयोगकेवली' कहते हैं। इसमें भी कुछ योगों की प्रवृत्ति है, इसलिए 'अयोगकेवली' चौदहवाँ गुणस्थान है। इसमें योगों की प्रवृत्ति मिट कर आत्मा अवस्थित हो जाती है, तब चौरासी लाख उत्तरगुणों की पूर्णता कही जाती है। ऐसे गुणस्थानों की अपेक्षा उत्तरगुणों की प्रवृत्ति विचारने योग्य है। ये बाह्य अपेक्षा भेद हैं, अन्तरंग अपेक्षा विचार करें तो संख्यात, असंख्यात, अनन्त भेद होते हैं, इसप्रकार जानना चाहिए ॥१२०॥

गाथा-१२० पर प्रवचन

आगे इन कर्मों का नाश होने के लिये अनेक प्रकार का उपदेश कहते हैं,... लो! बहुत विस्तार किया है। उसको संक्षेप से कहते हैं।

शीलसहस्सट्टारस चउरासीगुणगणाण लक्खाइं।

भावहि अणुदिणु णिहिलं असप्पलावेण किं बहुणा ॥१२०॥

कहते हैं कि तुझे अधिक क्या कहें भाई? संक्षिप्त में इतना कहते हैं कि अठारह हजार शील के भेद हैं। आत्मा का शुद्धस्वरूप ऐसा ब्रह्मचर्य के शील के अठारह हजार भेद हैं। समझ में आया? शील अर्थात् ब्रह्मचर्य। अशील का अर्थात् अनाचार का अभाव। पूर्ण शील आत्मस्वभाव, ऐसे शील के अठारह हजार भेद हैं। देखो! यह शील के अठारह हजार भेद कहे। उत्तरगुण चौरासी लाख हैं। उत्तरगुण के भेद चौरासी लाख हैं। आहाहा! आचार्य कहते हैं कि हे मुने! बहुत झूठे प्रलापरूप निरर्थक वचनों से क्या? बहुत लम्बी बात करके क्या काम है, भाई! तेरा आत्मा अनन्त आनन्द का, शील का पिण्ड है। उसे साध। उसके यह सब भेद कहे गये हैं। समझ में आया?

बहुत झूठे प्रलापरूप निरर्थक वचनों से क्या? इन शीलों को और उत्तरगुणों को सबको तू निरन्तर भा,... भावना कर। पूर्ण आत्मा का स्वभाव प्रगट पूर्ण होने की भावना कर। और उत्तरगुण प्रगट पूर्ण होने की भी भावना कर। अर्थात् अन्तर्मुख होने की एकाग्रता का प्रयत्न कर। इनकी भावना-चिन्तवन-अभ्यास निरन्तर रख, दूसरा चिन्तवन करने की अपेक्षा यह चिन्तवन करना, ऐसा कहते हैं। जैसे इनकी प्राप्ति हो वैसे ही कर। भगवान आत्मा में अठारह हजार शील स्वभाव पड़ा है। चौरासी लाख

उत्तरगुण पड़े हैं, उनकी प्राप्ति हो वैसे प्रयत्न कर। लो! समझ में आया? तब यह कमाने का प्रयत्न कब करना? दुःखी होने का रास्ता है यह तो। और वह भी पूर्व का पुण्य हो तत्प्रमाण मिलता है। मिले अर्थात् ममता। ऐसा। उसके पास कहाँ आता है? ममता। मुझे इतने हुए, इतने पैसे हुए। समझ में आया? कहो, शान्तिभाई! कहते हैं कि मकान और पैसा आत्मा को नहीं मिलता। सच्ची बात होगी? वह तो जड़ है। जमीन जड़।

मुमुक्षु : ... काम आता है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ धूल भी काम नहीं आते। ममता के दुःख में निमित्त है। वह तो दुःख में निमित्त है। निमित्त, हों! उससे दुःख नहीं। दुःख में निमित्त है। आहाहा!

कहते हैं, अरे! मुनि! धर्मात्मा! तुझमें ऐसे गुण पड़े हैं, सब शक्तियाँ, हों! उनकी भावना कर और चौरासी लाख उत्तरगुण प्रगट कर और अठारह हजार शीलस्वभाव, पूर्ण स्वभाव चौदहवें गुणस्थान में प्रगट हो, ऐसी भावना कर। आहाहा!

भावार्थ - आत्मा-जीव नामक वस्तु अनन्त धर्मस्वरूप है। उसमें अनन्त धर्म हैं। स्वभाव की शक्तियाँ अनन्त हैं। स्वभाव उसका अनन्त है। **संक्षेप से इसकी दो परिणति हैं,...** धर्म तो अनन्त है परन्तु संक्षिप्त में अब इसमें कहना है। तब अनन्त धर्म का स्वरूप किस प्रकार कहना एक साथ? नहीं कहा जा सकता। इसलिए संक्षिप्त में दो परिणति-पर्याय। इस आत्मा में अनन्त गुण और अनन्त धर्म है, उसकी पर्याय अर्थात् परिणति अर्थात् अवस्था दो प्रकार से है—एक स्वभावरूप, एक विभावरूप। एक शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा पवित्र की परिणति अर्थात् पर्याय, एक विकारी विभाव पर्याय।

इनमें स्वाभाविक तो शुद्धदर्शनज्ञानमयी चेतनापरिणाम है... स्वाभाविक तो शुद्ध दर्शनज्ञानमय, आत्मा जानने-देखने के परिणाम प्रगट करे, वह शुद्ध चेतनामय परिणाम स्वाभाविक है। **स्वाभाविक तो शुद्धदर्शनज्ञानमयी चेतनापरिणाम...** जानने-देखने के भाव शुद्ध पवित्र वस्तु के स्वभाव का आश्रय करके और जो परिणाम प्रगट हों, वह शुद्ध दर्शनज्ञानमयी चेतनापरिणाम है। वह स्वाभाविक है। वह आनन्ददायक है। सुखरूप है।

विभावपरिणाम कर्म के निमित्त से हैं। जितना विकार हो विभाव, वह तो कर्म

का निमित्त है उसमें। ये प्रधानरूप से तो मोहकर्म के निमित्त से हुए हैं। संक्षेप से मिथ्यात्व राग-द्वेष हैं, ... लो! वास्तविक विभाव तो मोहकर्म के निमित्त से हुआ। निमित्त से हुआ न? इसका अर्थ क्या? पाठ में है इसमें, देखो! मोहकर्म के निमित्त से हुए हैं। यहाँ कहते हैं कि निमित्त से होता नहीं। तब निमित्त है, उसका अर्थ क्या? नैमित्तिक करनेवाला स्वयं विपरीतता करता है, तब यह निमित्त है, ऐसा कहा गया है। समझ में आया? भारी समझने में विवाद उठे सब। करे, वह करने का विवाद एक ओर पड़ा रहा। और आचार से हो... आचार से हो... लो! दर्शन और ज्ञान की बातें करते हैं। परन्तु चारित्र और व्यवहारचारित्र की बात भी नहीं करते। परन्तु यह उसमें आ गया, भाई! सम्यग्दर्शन और ज्ञान की श्रद्धा-ज्ञान में चारित्र करना चाहिए, चारित्र रमना चाहिए, यह तो बात उसमें आ जाती है। परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना चारित्र हो सकता है, (ऐसा) तीन काल में नहीं। समझ में आया? यह आया न कल लेख में बहुत आया था।

अभी श्रावक के आचार छोड़नेयोग्य नहीं। आचार अर्थात् विकल्प-राग। उसे छोड़नेयोग्य न माने, तब तक आत्मा की दृष्टि सम्यक् नहीं होती। रागादि विकल्प है, वह तो सब आचार। वह छोड़नेयोग्य है, ऐसा न माने, आदरणीय है (ऐसा माने), वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! फिर यह भाव सर्वथा छूटे कब? कि शुद्धोपयोग हो तब। परन्तु पहले भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप चिदानन्द है। वह आदरणीय है, आश्रय करनेयोग्य है, उससे सम्यग्दर्शन होता है। शुभाशुभ विकल्प छोड़नेयोग्य है, ऐसी हेयबुद्धि हुए बिना आत्मा के स्वभाव की उपादेयबुद्धि नहीं होती। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें। सम्प्रदाय में अच्छा लगाने को यह सम्प्रदाय... ठीक माने और अपने यह भी कुछ ठीक है, ऐसे दोनों इकट्ठे रखना। एक म्यान में दो नहीं रहती। यह परिणाम जितने दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा परिणाम पुण्य है, उसे जब तक हेय न माने, तब तक आत्मा की प्रीति और रुचि उसे नहीं होती। क्योंकि प्रीति तो वहाँ सब लुट गयी है। आहाहा! समझ में आया? शुभभाव की जहाँ रुचि है, उसे शुद्धभाव की रुचि नहीं होती। फिर भले शुभभाव हो परन्तु रुचि नहीं है। और अज्ञानी को तो उस शुभभाव की रुचि है, रुचि है, इसलिए मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? बहुत चर्चा अब तो बाहर आ गयी। अब बातें ऐसी खुलकर बाहर आ गयी हैं। लम्बा करने जाए तो सब हो। संक्षिप्त में समा जाए

ऐसे का ऐसा सोनगढ़ में रह जाए फिर। यह तो बाहर आ गया हिन्दुस्तान में। सर्वत्र पहुँच गया। समझनेवाले निकलते हैं। दोनों निकले बाहर आवे। मार्ग तो वीतराग का ऐसा है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव यह कहते हैं कि व्रत के परिणाम भी राग हैं, वे छोड़नेयोग्य हैं। ऐसी दृष्टि न करे, तब तक उसकी दृष्टि वहाँ से हटेगी नहीं। और हटे बिना आत्मा की ओर रुचि होगी नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

मोहकर्म के निमित्त से हुए हैं। संक्षेप से मिथ्यात्व राग-द्वेष हैं,... देखो! स्पष्ट बात है इसमें। इनके विस्तार से अनेक भेद हैं। मूल तो तीन। मिथ्यात्व और राग-द्वेष। विपरीत मान्यता और राग और द्वेष। इसका विस्तार अनेक है। अन्य कर्मों के उदय से विभाव होते हैं... दूसरा कर्म। उनमें पौरुष प्रधान नहीं है, इसलिए उपदेश-अपेक्षा वे गौण हैं;... पुरुषार्थ यह करे तो उसमें सब आ जाता है। सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ करे तो उसमें मिथ्यात्व टल जाता है। स्वरूप में स्थिरता का पुरुषार्थ करे तो राग-द्वेष टल जाते हैं अर्थात् ज्ञान, दर्शन और आनन्द प्रगट हो जाते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

ऐसा कहे, ज्ञानावरणी वह निमित्त है, उसका निमित्त है इसका पुरुषार्थ क्या करना, कहते हैं। यह तो इस ओर पुरुषार्थ स्वभाव का जहाँ हुआ तो उसमें यह पुरुषार्थ आ गया। केवलज्ञान ... समझ में आया ? नया पुरुषार्थ अलग करना नहीं पड़ता, ऐसा कहते हैं। केवलज्ञान को प्रगट करने के लिये दूसरा नया पुरुषार्थ करना नहीं पड़ता। जो चारित्र की रमणता का पुरुषार्थ करता है, उसमें केवलज्ञान प्रगट होने की दशा वह है। समझ में आया ? समझना... समझना... समझना।

क्या कहा यह ? यहाँ गौण कहा, पुरुषार्थ को गौण कहा। देखो! उनमें पौरुष प्रधान नहीं है,... ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय का नाश करने के पुरुषार्थ की मुख्यता नहीं। मुख्यता तो यहाँ स्वभाव की दृष्टि और स्वभाव में स्थिर होना, यह पुरुषार्थ है। आहाहा! यह स्वभाव चैतन्य भगवान का पुरुषार्थ, समकित का और चारित्र का होने पर उसमें केवलज्ञान और केवलदर्शन और अनन्तवीर्य प्रगट हो जाएगा। उसमें अलग पुरुषार्थ करने की वहाँ आवश्यकता नहीं है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो समकित और चारित्र दो का पुरुषार्थ करना है पहले। ऐसा। और केवलज्ञानावरणी को नाश करने का

पुरुषार्थ अलग, ऐसा नहीं है, वह तो इसमें आ जाता है। समझ में आया? तब केवलज्ञानावरणी को नाश करने का पुरुषार्थ नहीं करना न? साथ में आ गया, भाई! अन्दर भगवान आत्मा ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप महाप्रभु चैतन्य भगवान की अन्तर्दृष्टि करके जहाँ स्थिर होता है, वह सब आ गया। वह दर्शन और चारित्र का ही पुरुषार्थ, पुरुषार्थ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसे केवलज्ञान को अलग... वह गौण है, उसमें पुरुषार्थ आ जाता है, उसमें करने की आवश्यकता नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं? समझ में आया?

उसे तो करने का भगवान आत्मा के ओर की स्वरूप की एकाग्रता। यह एकाग्रता दो प्रकार की। समकित की एकाग्रता और चारित्र की एकाग्रता। बस, इसे यह करने का है। यह करने में केवलज्ञान-केवलदर्शन का प्रगट करने का पुरुषार्थ इसमें आ जाता है। समझ में आया? आहाहा! व्यापार के कारण निवृत्त न हो। घण्टे-दो घण्टे आवे, तब ऐसी सूक्ष्म बातें आवे। ऐई! छगनलालजी! वहाँ तुम्हारे पैसा पैदा होते हों लाख, दो लाख। आहाहा! हूँफ चढ़े, हूँफ। वह तो पाप की हूँफ है। आत्मा को हीन करने की दशा है। यह तो पुष्टि करने की दशा है। समझ में आया?

चना पानी में डूबे और चौड़ा हो, वह वास्तव में कठिन नहीं, वह तो पोचा होकर चौड़ा होता है। यह तो... है? यह चना पानी में (डूबकर) ऐसा चौड़ा हो तो क्या जाड़ा हुआ है? उतना कस बढ़ा है उसमें? वह तो कठिन था, वह पोचा होकर बड़ा हुआ है। यह ऐसा नहीं है। यह कठिन होता है। आहाहा! कहते हैं कि भगवान आत्मा में शक्तिरूप जो आनन्द और ज्ञान पड़ा है, उसमें एकाग्र होने से वह पर्याय में चौड़ा होता है, मजबूत-मजबूत दृढ़ पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया?

पौरुष प्रधान नहीं है, इसलिए उपदेश-अपेक्षा वे गौण हैं;... उपदेश क्या करना उसका? केवलज्ञानावरणी का नाश करना, केवलदर्शनावरणी का नाश करो, अनन्त वीर्य प्रगटे उसके अन्तराय का नाश करो, ऐसा कहे। यह पुरुषार्थ करे, वही वस्तु है। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी प्रतीति अनुभव में सम्यग्दर्शन (हो) और उसके स्वरूप में स्थिर होना, वही पुरुषार्थ है। उसे केवलज्ञानावरणी टालने के लिये दूसरा पुरुषार्थ

नया उसके सामने देखकर करना, ऐसा है नहीं। आहाहा! सामने तो यहाँ देखने का है, कहते हैं। हैं! जहाँ भरा हुआ बर्तन है, वहाँ खाने के लिये नजर डालनी है। खाली बर्तन में नजर डालते होंगे खाने के लिये? इस प्रकार भरा हुआ बर्तन तो भगवान् द्रव्य है। जिसमें अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञानादि पड़े हैं। आहाहा! भरा हुआ बर्तन समझते हो या नहीं? भरेलुं भाणुं समझे छो? यह गुजराती भाषा है। थाली-थाली में माल भरा हो न मैसूर-मैसूर? गुलाबजामुन घी में तले हुए थाली में पड़े हुए हों। ... ऐसे करके सग चढ़ाया हो। हलवाई की दुकान में देखा है न! ऐसे सग चढ़ावे। आहाहा! भरा बर्तन कहलाये। इसी प्रकार आत्मा भरा बर्तन है। उसमें अनन्त आनन्द की खुराक भरी है। अनन्त शान्ति है, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, अनन्त ज्ञान-दर्शन ऐसी अनन्त-अनन्त की बातें अनन्त जान। अनन्त की बातें अनन्त जाने, अनन्त की बातें अल्प न जाने। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, इस प्रकार ये शील और उत्तरगुण स्वभाव-विभाव परिणति के भेद से भेदरूप करके कहे हैं। लो! वहाँ शील अठारह हजार, उत्तरगुण चौरासी (लाख)। वह स्वभाव-विभाव परिणति के भेद से भेदरूप करके कहे हैं। क्या कहते हैं? स्वभाव के भेद इतने हैं, इतने ही वापस विभाव के भेद हैं, उसमें से हटने के, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? शील और उत्तरगुण का स्वभाव, उतने विभाव हैं। इतने भेद विभाव के हैं, उनसे हटकर स्वभाव प्रगटे, इतने भेद उसमें गिनने में आते हैं। आहाहा! अच्छा लिखा है परन्तु, हों! पण्डित जयचन्द्रजी ने। पहले के पण्डित गृहस्थाश्रम में भी बात का मिलान करके फिर ऐसा लिखा है। शील के और उत्तरगुण के स्वभाव के भेद हैं अठारह हजार। किसके? शील के। इतने ही विभाव के हैं, ऐसा कहते हैं। परन्तु इतने विभाव से हटा, तब अठारह हजार शील प्रगट हुआ। चौरासी लाख उत्तरगुण प्रगट हुए, इतने चौरासी लाख अन्दर विभाव थे। उनसे विमुख हुआ, तब चौरासी लाख उत्तरगुण प्रगट हुए। समझ में आया इसमें?

शील की प्ररूपणा दो प्रकार की हैं... शील अर्थात् आत्मा का स्वभाव, शुद्ध पूर्ण जो अठारह हजार शीलांगरथ धारा। आता है? प्रतिक्रमण में आता है। तुम्हारे

दरियापरी को नहीं आता। प्रतिक्रमण है न? प्रतिक्रमण। पाँचवाँ प्रतिक्रमण नहीं? पाँचवाँ श्रमणसूत्र। अठारह हजार शीलांगरथ धारा ऐई! शान्तिभाई! किया है या नहीं प्रतिक्रमण? अठारह हजार शील... धारा, पंच महाव्रतधारा, अखेय आया चहिता ते सव्वेसिरसा मणसा मथ्थअेणं वंदामि। अर्थ समझे नहीं कुछ। हाँक रखे गाड़ी। बैल जोड़े हैं या नहीं? हाँक न!

यहाँ तो कहते हैं, शील अर्थात् आत्मा का निर्मल स्वभाव। संक्षेप में, हों! ऐसे तो अनन्त हैं, ऐसा तो पहले कह गये हैं। स्वभाव अनन्त धर्म है और प्रगट होता है, वह अनन्त स्वभाव प्रगट होता है पर्याय। परन्तु उसे संक्षेप में समझाने के लिये अठारह हजार शीलांग के रथ के भेद किये। जितने अठारह हजार शील के स्वभाव हैं, उतने ही विभाव थे। तो विभाव से हटकर इतने शील स्वभाव प्रगट हों। संक्षेप में। विस्तार में तो अनन्त-अनन्त धर्म है। इतनी सब बात किस प्रकार हो? कहते हैं। समझ में आया? गजब भाई! अष्टपाहुड़ वाँचने में भी कठिन पड़े।

कहते हैं कि शील जो अठारह हजार, भगवान आत्मा के संक्षेप में स्वभाव की व्याख्या की, उसके दो प्रकार हैं। एक स्वद्रव्य-परद्रव्य के विभाग की अपेक्षा है... यह तो स्वद्रव्य और परद्रव्य का बँटवारा पृथक् करने की अपेक्षा, और दूसरे स्त्री के संसर्ग की अपेक्षा है। परद्रव्य का संसर्ग मन, वचन, काय से होते हैं। देखो! विभाव समझाते हैं न? उसका अभाव हुआ, वह शील है। ऐसा कहते हैं। परद्रव्य का संसर्ग। भगवान आत्मा को परद्रव्य का संसर्ग। परिचय, सम्बन्ध। मन-वचन-काया से हो। मन से परद्रव्य का सम्बन्ध, वाणी से और काया से। कृत, कारित, अनुमोदना से न करना। करना, कराना और अनुमोदन करना। मन-वचन और काया यह न करना। यह नहीं करना। यहाँ शील का गुण का वर्णन है न? यह होना, वह विभाव है और न होना, वह स्वभाव है। क्या कहा? परद्रव्य का संसर्ग मन, वचन, काय से और कृत, कारित, अनुमोदना... यह दोष है। यह न करना, वह स्वभाव है। इसमें तो इतने भेद हैं न। इनको आपस में गुणा करने से नौ भेद होते हैं। मन-वचन और काया; करना, कराना और अनुमोदन करना।

और, आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये चार संज्ञा हैं,... दोष का वर्णन करके दोषरहित के स्वभाव का वर्णन करते हैं। अठारह हजार शीलांग रथ की व्याख्या है। पूरा रथ अठारह हजार शील से भरा हुआ चलता है, ऐसा कहते हैं। आता है या नहीं तुम्हारे? किया था न पाँचवाँ प्रतिक्रमण? पाँचवाँ प्रतिक्रमण नहीं, पाँचवाँ श्रमणसूत्र अठारह हजार शीलांग रथ धार। चौरासी लाख नहीं आया था। आता है, हैं! दरियापुरी का एक प्रतिक्रमण पाँचवाँ साधु को होता है। साधु को होता है। श्वेताम्बर के उन साधु को होता है, श्रावक को नहीं होता। श्रमणसूत्र के....

कहते हैं कि चार संज्ञा—आहारसंज्ञा / गृद्धि; भय की गृद्धि, मैथुन की और परिग्रह की। यह चार संज्ञा। इनसे परद्रव्य का संसर्ग होता है... आहार के कारण से, संज्ञा, परिग्रह, मैथुन और भय। परद्रव्य का संसर्ग होता है, वह दोष है। उसका न होना, ऐसे नौ भेदों को चार संज्ञाओं से गुणा करने पर छत्तीस होते हैं। यह छत्तीस शील के स्वभाव कहे गये हैं। छत्तीस दोष के भाव न करना और यह भाव करना, ... समझ में आया?

और पाँच इन्द्रियों के निमित्त से विषयों का संसर्ग होता है,... यह पाँच इन्द्रिय से परद्रव्य का संसर्ग होता है। समझ में आया? यह संसर्ग छोड़ना और आत्मा का परिचय करना। स्वद्रव्य का संसर्ग करना, परद्रव्य का संसर्ग छोड़ना। पाँच इन्द्रियों से छत्तीस को गुणा करने पर एक सौ अस्सी होते हैं। उनकी प्रवृत्ति के अभावरूप... ऐसा। पाँच इन्द्रिय के निमित्त से परद्रव्य का संसर्ग हो, वह दोषरूप है। उसे छोड़कर स्वद्रव्य का संसर्ग करना। उसके १८० भेद हुए। और पृथ्वी... है न पृथ्वी जीव एकेन्द्रिय? इच्छामि पडिक्कमणा आता है एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीइन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया, अभीहया, वतीया, लेशीया आता है या नहीं? ...लालजी! किये हैं या नहीं सामायिक के नाम? भूल जाए, फिर धन्धे के कारण। एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, पृथ्वीकाय, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति एकेन्द्रिय है। पृथ्वी, सचेत पृथ्वी, हों! अन्दर। अप,... पानी, तेज,... अग्नि। हवा और प्रत्येक, साधारण,... लो! प्रत्येक और साधारण। प्रत्येक अर्थात् असाधारण और साधारण दो।

ये तो एकेन्द्रिय और दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, ऐसे दश भेदरूप जीवों का संसर्ग, ... लो! ऐसे दस भेद में परजीव का संसर्ग, इनकी हिंसारूप प्रवर्तने से परिणाम विभावरूप होते हैं... उसमें हिंसारूप प्रवर्तने से। इतने जीव एकेन्द्रिय आदि। सो न करना, ... इसका नाम शील। उसे न करना, इसका नाम शीलस्वभाव। यहाँ अकेला ब्रह्मचर्य नहीं। यह तो पूरा आत्मा का शीलस्वभाव पूरा। स्वद्रव्य का पूर्ण परिचय, उसका नाम अठारह हजार शीलांगरथ धारा। परद्रव्य का पूरे परिचय का अभाव। आहाहा! ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त (कहीं नहीं है)। परमात्मा, केवलज्ञानी तीर्थकरदेव, उन्हें त्रिकाल ज्ञान है, उन्होंने ऐसा अस्ति का स्वरूप, नास्ति-अस्ति का स्वरूप कहा है। विभाव के भेद इतने, इनसे हटकर इतने स्वभाव के भेद पर्याय में। आहाहा!

ऐसे एक सौ अस्सी भेदों को दस से गुणा करने पर अठारह सौ होते हैं। है न? पृथ्वी, पानी। और क्रोधादिक कषाय और असंयम परिणाम से परद्रव्य सम्बन्धी विभाव परिणाम होते हैं। ये क्रोधादि कषाय और असंयम से परद्रव्य का संसर्ग वह विभाव परिणाम हो। उनके अभावरूप दसलक्षण धर्म है, ... लो! क्रोधादि का अभाव, वह दशलक्षण धर्म। उनसे गुणा करने से अठारह हजार होते हैं। आहाहा! कहते हैं कि है तो अनन्त धर्म पर्याय में, परन्तु अनन्त धर्म को कहना किस प्रकार? इसलिए संक्षेप में अठारह हजार शील कहे गये हैं। स्वद्रव्य और परद्रव्य की विभाजन की अपेक्षा से। परद्रव्य का परिचय, वह विभाव, परद्रव्य का परिचय छोड़कर स्व में आना, वह स्वभाव। इस अपेक्षा से भेद पहले पड़े अठारह हजार...

ऐसे परद्रव्य के संसर्गरूप कुशील... यह सब कुशील है। आहाहा! अभावरूप शील के अठारह हजार भेद हैं। इनके पालने से परम ब्रह्मचर्य होता है, ... उसका पालन परम ब्रह्मचर्य। ब्रह्म (आत्मा) में प्रवर्तने और रमने को 'ब्रह्मचर्य' कहते हैं। यह अठारह हजार भेद को ब्रह्मचर्य कहा। आहाहा! ब्रह्मानन्द भगवान आत्मा इस परद्रव्य के संसर्ग से छूटकर अपने परिचय में एकाग्रता में आवे, उसके संक्षेप में इतने भेद कहे। इन भेदों की भावना से, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह करे तो निवृत्त कहाँ हो पाप करने से दूसरे परिणाम में। दुकान के धन्धे के कारण यह निवृत्त नहीं होता तो यह करे तो दुकान का धन्धा, उसे याद आता नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहो, फूलचन्दभाई!

ऐसा कुछ विचार करे। यह तो मुनि की मुख्यता से मुनि की बात है, हों! ऐसे भेद विचार करे तो कहते हैं ऐसे अशुभ विकल्प आने का प्रसंग ही नहीं रहता। आहाहा! इतने भेद परद्रव्य की ओर जाने के, उतने ही भेद वहाँ से छूटकर स्वसन्मुख आने के। आहाहा! ...हैं! ऊपर आया था न? स्वद्रव्य-परद्रव्य विभाव की अपेक्षा से... यह भाग यहाँ पूरा किया। अठारह हजार। ब्रह्म (आत्मा) में प्रवर्तने और रमने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। लो!

अब स्त्री के संसर्ग की अपेक्षा इस प्रकार है—स्त्री दो प्रकार की है, अचेतन स्त्री—काष्ठ, पाषाण, लेप (चित्रामणनी)... तब वे ले गये न अरिहन्त में? ऐई! वे कहते हैं अभी तो नाम अरि। ऐसा अरिपना... श्रावक ऐसा कि प्रतिमाधारी हो और यदि वस्त्र में स्त्री का चित्राम हो... स्थाप नहीं सके। क्योंकि स्थापना स्त्री है, अमुक है, अमुक है। ... कागज रास्ते में भटकते हों। स्त्री दो प्रकार की। एक अचेतन अर्थात् लकड़ी की, पत्थर की और चित्राम की। ये तीन, इनका मन और काय... वचन का वहाँ कोई काम नहीं। मन और काय दो से संसर्ग होता है, ... दो से उसका संसर्ग (होता है)। मन में और काया से संसर्ग होता है। यहाँ वचन नहीं है, इसलिए दो से गुणा करने पर छह होते हैं। लो! समझ में आया? तीन है न तीन? तीन को दो से गुणा करने से छह होते हैं। काय, पाषाण और चित्राम। उन्हें मन, काया से गुणा करने से छह होते हैं। उन्हें कृत, कारित, अनुमोदना से गुणा करने पर अठारह होते हैं। लो! द्रव्य और भाव अन्दर गुणा करने पर एक सौ अस्सी होते हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ - इन चार कषायों से गुणा करने पर सात सौ बीस होते हैं। चेतन स्त्री... अब चेतन। यह अचेतन की व्याख्या की।

चेतन स्त्री देवी, मनुष्यिणी, तिर्यचणी... नारकी में तो स्त्री होती नहीं। चेतन स्त्री, देवी, मनुष्यिणी, तिर्यचणी ऐसे तीन, इन तीनों को मन, वचन, काय से गुणा करने पर नौ होते हैं। इनको कृत, कारित, अनुमोदना से गुणा करने पर सत्ताईस होता है। इनको पाँच इन्द्रियों से गुणा करने पर एक सौ पैंतीस होते हैं। इनको द्रव्य और भाव इन दो से गुणा करने पर दो सौ सत्तर होते हैं। इनको चार संज्ञा से गुणा करने पर एक हजार अस्सी होते हैं। इनको अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण,

संज्वलन क्रोध मान, माया, लोभ-इन सोलह कषायों से गुणा करने पर सत्रह हजार दो सौ अस्सी होते हैं। ऐसे अचेतन स्त्री के सात सौ बीस मिलाने पर अठारह हजार होते हैं। लो! एक को अठारह हजार हुए। स्वद्रव्य-परद्रव्य के विभाव की अपेक्षा से और स्त्री के संसर्ग की अपेक्षा से। आहाहा! संक्षिप्त में परद्रव्य के अनेक प्रकार के परिचय से राग उत्पन्न होता है, वह अशील है और उससे हटकर स्वद्रव्य के संसर्ग में आना, उसका नाम शील है। अकेला ब्रह्मचर्य, ऐसा नहीं। ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसका चरण यह ... उसे यहाँ शील कहा गया है। आहाहा! वीतराग की वाणी। समझ में आया ?

ऐसे स्त्री के संसर्ग से विकार परिणाम होते हैं, सो कुशील है, इनके अभावरूप परिणाम शील है... लो! स्वभाव और विभाव कहा था न दो ? इसकी भी ब्रह्मचर्य संज्ञा है। लो! यह अठारह हजार शीलांगरथ के दो भाग किये। एक परद्रव्य के संसर्ग का और स्वद्रव्य के संसर्ग का। यह विभाव के भेद वहाँ से ... और एक स्त्री का। अचेतन स्त्री, उसके भेद और सचेतन स्त्री के भेद। ऐसा करके उसके भी अठारह हजार भेद कहे। आहाहा! सब ऐसा अस्तित्व है, ऐसा सिद्ध करते हैं। ऐसे विभाव के भेदों का भी अस्तित्व है। कोई एक ही आत्मा कहकर एक ही आत्मा कूटस्थ और ऐसा है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? और अचेतन पदार्थ भी हैं-अचेतन स्त्री। लकड़ी, पत्थर ऐसी वस्तु अस्ति है। ऐसा सब सिद्ध करते हैं और परद्रव्य के इतने सब अस्तित्व के जितने संसर्ग मन, वचन, काया, इन्द्रियादि से हो, वे सब भेद हैं। और उनका अभाव, उतना स्वभाव का भेद है, ऐसा कहते हैं। अरे! याद कितना रहे यह ? समझ में आया ? यह बात तो मात्र अठारह हजार शीलांगरथ की की। अठारह हजार शीलांगरथ धरा। आता है या नहीं ? पाँचवें श्रमणसूत्र में। मुनि कैसे होते हैं ? कि अठारह हजार शीलांगरथ के धारक। ऐसे अठारह हजार भेद के रथ को-चक्र को चलानेवाले अन्दर में। आहाहा! यह सब निवृत्ति बिना कुछ समझ में आये ऐसा नहीं है। वीरचन्दभाई ! इसमें नैरोबी में समझ में आये ? उसमें क्या बाहर में... आहाहा! यह भेद किये क्या ? विभाव क्या ? स्वभाव क्या ? स्वद्रव्य के विभाग में क्या ? स्त्री में क्या ? ओहोहो ! सब अस्तित्व सिद्ध करके एक द्रव्य भगवान आत्मा अनन्त परपदार्थ की विभाव परिणति का वर्णन इतना न हो, इसलिए संक्षेप में अठारह हजार का वर्णन किया है।

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का समुद्र धर्मस्वभाववाला है। उसके अनन्त-अनन्त परपदार्थ के परिचय का जो संसर्ग है, वह सब परद्रव्यानुसारी विभाव और विकल्प है। उन सब विभावों से हटकर स्वभाव इतने भेदवाले हटकर इतने में आना। अनन्तरूप से समझाना कठिन, इसलिए इतना समझाया। समझ में आया ?

अब चौरासी लाख उत्तरगुण ऐसे हैं... मूलगुण तो अमुक हैं। अट्टाईस मूलगुण आदि कहे न? ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि। यह उत्तरगुण है। आत्मा के विभावपरिणामों के बाह्य कारणों की अपेक्षा भेद होते हैं। देखो! अन्तर में तो अकेला वीतरागभाव प्रगट करना, वह उत्तरगुण है। परन्तु आत्मा के विभावपरिणामों के बाह्यकारणों की अपेक्षा भेद होते हैं। इतने सब भेद क्यों पड़े, ऐसा कहते हैं? बाह्य कारण की अपेक्षा से।

उनके अभावरूप ये गुणों के भेद हैं। उन विभावों के भेदों की गणना संक्षेप से ऐसे है -... पहले विभाव का कथन करे। क्योंकि उसके अभावरूप गुण के भेद हैं। ऐसा। विभाव का-विकार का वर्णन करते हैं, उसके अभावरूप इतने आत्मा के उत्तरगुण के प्रकार हैं। आहाहा! है तो अनन्त-अनन्त गुण और अनन्त-अनन्त पर्यायें। स्वद्रव्य के संसर्ग से, परिचय से एकाग्र स्थिति हो, इतना सब वर्णन भाषा में केवली को भी नहीं आता। यह संक्षेप करके चौरासी लाख उत्तरगुण की व्याख्या, चौरासी लाख! आहाहा! चौरासी लाख योनि के अवतार को टालने का उपाय। कहो, समझ में आया? और चौरासी लाख अवतार है और चौरासी लाख गुण है—पर्याय। ऐसा प्रगट हो, उसे फिर अवतार नहीं होता। उसकी व्याख्या करेंगे... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१४३, गाथा-१२० से १२२, बुधवार, कार्तिक कृष्ण ५, दिनांक १८-११-१९७०

भावपाहुड़, १२० गाथा के चौरासी लाख उत्तरगुण नहीं आये ? लम्बी-लम्बी बात है। परन्तु अब समझना तो पड़े न ? आत्मा का स्वभाव आनन्द है, उसमें दुःख के निमित्तों में कितने प्रकार के विभाव उत्पन्न होते हैं और उसका अभाव करना, यह बात है। समझ में आया ?

चौरासी लाख उत्तरगुण ऐसे हैं जो आत्मा के विभावपरिणामों के बाह्यकारणों की अपेक्षा भेद होते हैं। आत्मा तो आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति है। उसे बाह्य कारण के निमित्त से विभाव के भेद, दोष के भेद, दुःख के भेद कितने उत्पन्न होते हैं, उसका वर्णन करके उनका अभाव करना, यह आत्मा का उत्तरगुण कहा जाता है। विभावपरिणामों के बाह्यकारणों की अपेक्षा भेद होते हैं। इनके अभावरूप से ये गुणों के भेद हैं। लो ! चौरासी लाख है न ? उन विभावों के भेदों की गणना संक्षेप से ऐसे है— १- हिंसा, २- अनृत, ३- स्तेय, ४- मैथुन, ५- परिग्रह, ६- क्रोध, ७- मान, ८- माया, ९- लोभ, १०- भय, ११- जुगुप्सा, १२- अरति, १३- शोक, १४- मनोदुष्टत्व, १५- वचनदुष्टत्व, १६- कायदुष्टत्व, १७- मिथ्यात्व, १८- प्रमाद, १९- पैशून्य, २०- अज्ञान, २१- इन्द्रिय का अनुग्रह ऐसे इक्कीस दोष हैं। समझ में आया ? विस्तार से समझाना है न इसलिए।

इनको अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार-इन चारों से गुणा करने पर चौरासी होते हैं। पृथ्वी-अप्-तेज-वायु प्रत्येक वनस्पति और साधारण वनस्पति ये... यह छह। और स्थावर एकेन्द्रिय जीव छह और विकल तीन, पंचेन्द्रिय एक ऐसे जीवों के दस भेद, इनका परस्पर आरम्भ से घात होता है, इनको परस्पर गुणा करने पर सौ (१००) होते हैं। इनसे चौरासी को गुणा करने पर चौरासी सौ होते हैं, इनको दस 'शील-विराधने' से गुणा करने पर... दस प्रकार के शील की विराधना, उससे गुणा करने से चौरासी हजार होते हैं। इन दस के नाम ये हैं— १- स्त्रीसंसर्ग, ... भगवान आत्मा के आनन्द का संसर्ग छोड़कर, स्त्री का संसर्ग करना, वह दोष है। समझ में आया ?

२- **पुष्टरसभोजन**,... अपने शरीर में पुष्टता हो, ऐसे रस का भोजन करने का भाव भी वह विभाव, दोषितभाव है। ३- **गन्धमाल्य का ग्रहण**,... उत्कृष्ट सुगन्धी फूल और उसकी मालायें ग्रहण करना, वह भी विभाविकभाव है। ४- **सुन्दर शयनासन का ग्रहण**,... सोने का और बैठने का सुन्दर पलंग आदि, वह भी दोष का कारण है।

मुमुक्षु : ... आनन्द आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द आता है ? यह दृष्टान्त दिया है एक शास्त्र में। उसका दिया है उसमें कि श्मशान में फूला हुआ मुर्दा, फूला हुआ मुर्दा, वह काला कौआ उसमें मजा मानता है। भाई ! फूला हुआ मुर्दा। श्मशान में ऐसे-तैसे पड़ा हो, फूलकर ऐसा मुर्दा हुआ हो। वह काला कौआ वहाँ मजा मानता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मेरा, पड़ा है या नहीं उसमें ? इसी प्रकार अज्ञानी अन्तर में पड़े हुए अपने आनन्द के स्वरूप की जिसे रुचि नहीं, आनन्द के स्वाद की जिसे कीमत नहीं, वह सब फूले हुए शरीर, अवयव वे सब फूले हुए मुर्दे हैं। उसमें प्रेम करता है, वह काला कौआ है, अज्ञानी है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? काला कौआ है। और श्मशान में नर का पिंजर हो हड्डियों का, श्मशान में मरा पड़ा हुआ। पिंजर हड्डियाँ, कीड़े पड़े हों, दुर्गन्धित हो, उसमें कौआ चोंच डालता है। उसमें हे सत्पुरुषों ! उसमें प्रेम करे नहीं। यह बात ऐसी है, भाई ! इसी प्रकार शरीर है, वह तो हड्डियों का पिंजर है यह तो सब। ओहोहो !

मनुष्य का सड़ा हुआ शरीर पड़ा हो। हड्डियाँ, हड्डियों का माँस, हड्डियों का मावा। उसमें कौआ चोंच मारे, उसी प्रकार इस सड़े हुए शरीर में अज्ञानी आत्मा के आनन्द के प्रेम बिना उसे आनन्द के प्रेम की खबर नहीं। समझ में आया ? उसमें चोंचें मारे। आलिंगन करे। क्या है भाई ? समझ में आया ? सम्यग्दर्शन बिना आत्मा के आनन्द के स्वाद की जिसे खबर नहीं, वह बाहर में ऐसे पदार्थ की प्रीति में हवा में झकझोर खाता है। आहाहा ! समझ में आया ? मिथ्यात्व का भाव है और राग की वहाँ हवा है। वह अग्नि सुलगती है। कहते हैं, पर के विषय के सुख की बुद्धि में। समझ में आया ?

धर्मी को तो आत्मा के आनन्द की रुचि है, इसलिए पर में उसे कहीं रुचि का प्रेम नहीं आता। आसक्ति का आवे, उसका प्रेम नहीं। आहाहा! ऐसे चौरासी उत्तरगुण का वर्णन यहाँ करते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

५- भूषण का मण्डन,... गहने यहाँ लटकते यहाँ और यहाँ और यहाँ। आहाहा! मुर्दे को शृंगारता है। यह शरीर के अवयव अच्छे लगें, फूला हुआ मुर्दा है। अरे! कहते हैं ५- भूषण का मण्डन,... गहने ऐसे पहनना यहाँ कड़ा और यह और यह। वह भी राग का व्यभिचार है। आहाहा! कठिन काम, बापू! यहाँ तो जिसे आत्मा का आनन्द नहीं आया, उसे पर में आनन्दबुद्धि, सुखबुद्धि होती है, उसका अभाव कराने को बात की है। आहाहा! समझ में आया ?

६- गीतवादित्र का प्रसंग,... गीत और वाजिंत्र बजते हों और जवान स्त्रियाँ कोमल अंगवाली ऐसे साथ में बोलती हो। मनुष्य वहाँ गृद्धित हो जाता है, एकाकार हो जाता है। समझ में आया ? इस दोष में यह है। ७- धन का सम्प्रयोजन,... लक्ष्मी के प्रयोजन के लिये झपट्टे-झपट्टे मारे। यह बड़ा दोष है।

मुमुक्षु : आवश्यकता जितनी ही बात है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवश्यकता किसकी थी ? बैठा है तुम्हारा चिरंजीवी पीछे। कहो, समझ में आया ? ऐसी यहाँ आवश्यकता जितना करना या नहीं ? परन्तु आवश्यकता किसकी ? आत्मा के आनन्द की या बाहर की ? ऐसा कहते हैं। रुचि हो गयी रुचि। ऐसा कहते हैं। आसक्ति अलग वस्तु है। रुचि हो गयी। आवश्यकता जितना तो हमारे राग करना, यह तो राग की रुचि है। वह तो मिथ्यादृष्टि जीव है। आहाहा! पोपटभाई! बहुत काम ऐसा। वीतराग के मार्ग की शैली! ओहोहो! भगवान तो आनन्द के स्वभाव के भण्डार से भरपूर है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। उसकी रुचि छोड़कर ऐसे भाव की रुचि करे, वह व्यभिचार है। उसका अभाव करना, वह उत्तरगुण है। समझ में आया ? विस्तार से कहा है न ?

८- कुशील का संसर्ग,... कुशील पुरुषों की स्त्रियों का संसर्ग करना। क्योंकि उसकी व्यभिचारी वृत्ति में व्यभिचार के ही सब प्रसंग होते हैं। उसमें दोष है, कहते हैं।

भगवान! तुझमें क्या कमी है? कि तू दूसरे के संसर्ग में जाकर सुख मानने जाता है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

९- राजसेवा,... लो, ठीक! बड़े राजाओं की सेवा में इसे मक्खन लेना पड़े। आहाहा! यह भी एक दोष है। बड़े राजा, अमलदार अधिकारी बड़े दस-दस हजार, पन्द्रह हजार और लाख-लाख के वेतनवाले हों न बड़े? इसे इसकी चाह में उसे दबाना पड़े, सेवा कहलाये उस प्रकार की। दोष है।

भगवान! तू तीन लोक का नाथ है। तेरी सेवा कर न! ऐसे गुलाम बेचारे भिखारी। उसे बड़ा मानकर उसे साहेब... साहेब... साहेब... ऐसा करता है न? ऐई! हैं! आहाहा! भाई! साहेब तो चैतन्य है। उसके अतिरिक्त तेरे दूसरा कोई साहेब है नहीं। आहाहा! ऐसा कहता है राजा साहेब, अन्नदाता, अन्नदाता। धूल का भी अन्नदाता नहीं। नरक का भविद्र नारकी है। भविष्य में जानेवाले ऐसे भविद्र नारकी हैं अभी। आहाहा! ऐसे पैसेवाले ... स्वर्ण के बड़े हीरा-माणिक के मकान हों, लो न और राजा, सुन्दर शरीर, स्त्री। आहाहा! कहते हैं ऐसे की सेवा अर्थात् अनुकूलता करने का भाव, वह व्यभिचार है। आहाहा! समझ में आया?

१०- रात्रिसंचरण... रात्रि में जहाँ-तहाँ भ्रमण करना, यह बड़ा दोष है। अन्धेरे में दोष करने का भाव उत्पन्न होता है, ऐसा कहते हैं। कोई देखता न हो, ऐसे अन्धेरे में अनेक प्रकार के, स्त्री के, पुरुष के, जानवर के, संसर्ग करने का भाव अन्धेरे में हो जाता है। इसलिए रात्रि का संचरण दोषकारी है, ऐसा यहाँ बताते हैं। ऐई! आहाहा! समझ में आया? ये दस शील-विराधना है। यह दस आत्मा के शान्तिस्वभाव की विराधना दस प्रकार की है।

और इनके आलोचना के दस दोष हैं - गुरुओं के पास लगे हुए दोषों की आलोचना करे, सो सरल होकर न करे कुछ शल्य रखे, उनके दस भेद किये हैं,... दस भेद हैं। अकम्प आदि। इनसे गुणा करने पर आठ लाख चालीस हजार होते हैं। आलोचना को आदि देकर प्रायश्चित्त के दस भेद हैं... है न? आलोचना, प्रायश्चित्त आदि दस भेद हैं। प्रायश्चित्त के दस भेद हैं। उस आलोचना के दस भेद हैं। गुरु के पास

कहते दस दोष लगावे वे और यह प्रायश्चित्त लेने के दस प्रकार हैं। इसे गुणा करने पर चौरासी लाख होते हैं। सो सब दोषों के भेद हैं, ... यह सब दोष के प्रकार हैं, भाई! आहाहा! इनके अभाव से गुण होते हैं। इनकी भावना रखे चिन्तन और अभ्यास रखे, इनकी सम्पूर्ण प्राप्ति होने का उपाय रखे; इस प्रकार इनकी भावना का उपदेश है। लो!

आचार्य कहते हैं कि बारबार बहुत वचन के प्रलाप से तो कुछ साध्य नहीं हैं, ... बहुत क्या कहना? भाई! समझ में आया? जो कुछ आत्मा के भाव की प्रवृत्ति के व्यवहार के भेद हैं, उनकी गुण संज्ञा है, ... यह चौरासी लाख है न? गुणसंज्ञा आत्मा के गुण के स्वभाव के प्रकार, उन्हें यहाँ चौरासी लाख उत्तरगुण कहे गये हैं। आत्मा का स्वभाव आनन्दमूर्ति शान्त अविकारी वीतराग, उसके स्वभाव की एकाग्रता के जितने पर्याय के भेद, उन्हें गुण कहा जाता है। है तो सब पर्याय। समझ में आया? आहाहा! एक-एक वीतराग के वचन, साधारण हों या बड़े, वे सब समझनेयोग्य हैं, कहते हैं। आहाहा!

भाई! तू परमानन्द का पर्वत प्रभु महाचैतन्यरत्न से भरपूर। उस भगवान की भेंट और भगवान का परिचय छोड़कर, ऐसे पामर के-राग के परिचय में जाता है, भाई! बड़ा दोष है। उस दोष का अभाव, वह सब गुण के भेद हैं। समझ में आया? अरे! पल-पल चला जा रहा है, महाकीमती। ऐसा मनुष्य का एक-एक पल चला जा रहा है। उस पल में करने का तेरे आत्मा की भावना की बात है। यहाँ यह कहते हैं। यह पल गया, वह आयेगा नहीं। यह पल दूसरे में लगाना। आहाहा! काल जाता है। देह छूटने के समीप में काल जाता है। समझ में आया? ऐसे मुर्दा पड़ा होगा। आहाहा! लो! आतमराम चला अन्यत्र। जो भाव किये, वह लेकर चला है। वहाँ कोई साथ या संगी, सहाय या गोशाला है वहाँ कोई? इसलिए कहते हैं कि भगवान! बहुत क्या कहना? आत्मा के भाव की प्रवृत्ति, भाव की प्रवृत्ति स्वभाव की शुद्धता की, उसके व्यवहार के भेद हैं। वह पर्याय के भेद हुए न सब? उसे गुण संज्ञा कही। व्यवहार के भेद का अर्थ रागादि नहीं। यहाँ उसका व्यवहार अर्थात् भेद, प्रकार, ऐसा। उसे गुण कहा है।

उनकी भावना रखना। यहाँ इतना और जानना कि गुणस्थान चौदह कहे हैं, उस परिपाटी से गुण-दोषों का विचार है। चौरासी लाख पूरे चौदहवें में होते हैं, ऐसा

सिद्ध करना है। मिथ्यात्व सासादन मिश्र इन तीनों में तो विभावपरिणति ही है, इनमें तो गुण का विचार ही नहीं है। मिथ्यात्व में गुण का विचार क्या हो? जिसने अवगुण ही देखा है, राग देखा है, द्वेष देखा है, जिसने गुण का पिण्ड भगवान देखा ही नहीं। समझ में आया? महा अतीन्द्रिय आनन्द का साहेबा चैतन्य के मन्दिर में तो जिसने प्रवेश किया नहीं। वह भगवान आत्मा का मन्दिर कैसा है? वह कैसा शोभता होगा? ऐसे गुण के भान बिना जिसकी इन्द्रियसुख में बुद्धि है। बाहर के संसर्ग के परिणामों में जिसकी बुद्धि और रुचि है, कहते हैं ऐसे मिथ्यात्वी, ऐसे सासादन और मिश्र में तो गुण की संज्ञा, कुछ है नहीं। गुण का विचार ही कहाँ है? गुण देखे ही नहीं तो गुण का विचार कहाँ से होगा उसे? अकेले अवगुण देखे हैं। आहाहा! राग का रस और द्वेष की आकुलता, वह उसने देखी है। उसकी चिन्तवना हो। उसमें यह चिन्तवना होगी नहीं। जिसने हीरा देखा नहीं, उससे कहे कि हीरा का विचार करना। ऐसे पासा हैं, ऐसे उसमें गुण हैं, उसका ऐसा तेज है। परन्तु देखे बिना? इसी प्रकार मिथ्यात्व में जिसकी रुचि इन्द्रिय की सुखबुद्धि में पड़ी है, उसने आत्मा में सुख है, यह देखा नहीं। हैं! वह किसकी चिन्तवना करे?

इन तीन में तो कहते हैं कि अकेली विभावपरिणति ही है, ऐसा। वहाँ तो गुण का विचार नहीं। क्योंकि गुणस्वरूप आत्मा का तो भान नहीं। फिर कहते हैं, भले महाव्रत पालता हो तो भी उसे गुण का भान तो है नहीं। वह तो राग की भावना करता है। राग की विचारणा और गुण की विचारणा ऐसी हुई या नहीं इसमें? जैन दिगम्बर साधु हुआ। अट्टाईस मूलगुण पालता हो, पंच महाव्रत पालता हो तो भी उसे गुण का तो भान है नहीं। इसलिए वह विचार किसका करे? वह तो राग का ही विचार करे। भले ऐसा माने कि मैं आत्मा का विचार करता हूँ। वह राग और पुण्य-पाप के विकल्प में ही फँसा है। समझ में आया? मिथ्यात्व में तो... आहाहा! दिगम्बर साधु हो, मिथ्यात्वी है न यहाँ? पंच महाव्रत के भाव पाले, परन्तु विकल्प। है मिथ्यात्वी। क्योंकि राग को धर्म मानता है परन्तु आत्मा का धर्म आनन्दस्वरूप है अन्दर, उस आनन्दस्वरूप का साधन कहीं बाहर से नहीं आता। अन्तर से ही आत्मा डोलकर अपने आनन्द को प्रगट करता है। ऐसे आनन्द के गुण को जिसने देखा नहीं। देखा नहीं अर्थात् प्रतीति नहीं, ऐसा दिगम्बर साधु

दो-दो महीने का संथारा करनेवाला, तो भी वह मिथ्यादृष्टि है। उसे आत्मा के गुण का विचार नहीं होता। आहाहा! कहो, भीखाभाई! भारी बात की।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वंचित ही है। आत्मा का भान कहाँ है? नौवें ग्रैवेयक में गया, दिगम्बर साधु अट्टाईस मूलगुण, लाखों-करोड़ों वर्षों तक (पालन किये)। रुचि तो राग में पड़ी है। राग, वह मेरा कर्तव्य है, राग मेरा धर्म है, राग मुझे करना, वह मेरा दायित्व है। मिथ्यात्व है। कठिन काम है प्रकाशचन्दजी! लो, चन्दजी आया। दास की अपेक्षा चन्द अच्छा। कहो, समझ में आया? आहाहा! प्रकाशचन्द आत्मा है। दास-बास नहीं। आहाहा!

भगवान आनन्द का धाम है न! अकेले शान्तरस के स्वभाव का पिण्ड प्रभु है। उसमें आकुलता के राग का जिसे प्रेम है, वह मिथ्यादृष्टि गुण का विचार नहीं कर सकता। आहाहा! भारी बात की। समझ में आया? क्योंकि जहाँ उस पुण्य के परिणाम में रुचि और सुखबुद्धि पड़ी है, इसलिए तो अन्तर में सुखबुद्धि करने को नहीं जाता। इसलिए उसे मिथ्यात्व की अग्नि जलहलती है। उसमें उसे आसक्ति के परिणाम की हवा बहती है। वह जलहल अग्नि सुलगती है। आहाहा! वा वहाँ वा, ऐसा नहीं कहते? एक तो अग्नि से मकान सुलगा हो और उसमें हवा निकली हो। निमन्त्रण देकर बुलावे आसपास के मकान में सबको। हैं!

ऐसा कहते हैं कि एक तो मिथ्यात्व की अग्नि है गहरी कठिन। और उसमें राग के रस की आसक्ति का प्रेम। वह तो सुलगा है। मिथ्यात्वी बाहर के पंच महाव्रत पाले तो वह अग्नि से सुलगता है, कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात। उसे गुण का विचार नहीं, हों! कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र इन तीनों में तो विभावपरिणति ही है,... समझ में आया या नहीं? नौवें ग्रैवेयक में जैन दिगम्बर साधु (होकर गया)। यह वस्त्र-पात्रवाले तो द्रव्यलिंगी भी नहीं। वह तो द्रव्यलिंगी अच्छा निरतिचार पक्का (पालता हो)। कहते हैं कि परन्तु उसे मिथ्यात्व है न! उसे गुण का विचार नहीं, हों! आहाहा! जिसने जो घर देखा नहीं, उसकी भावना किस प्रकार करे? उसने तो राग देखा है। यह शरीर और

हड्डियाँ यह सब देखा है। इसलिए कहते हैं, मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र इन तीनों में तो विभावपरिणति ही है, ... अकेली विकारी... विकारी... विकारी... परिणति दशा ही है। अकेली विकारी दशा जहाँ है, वहाँ आगे गुण का विचार कहाँ आया? उसे गुण का विचार किस प्रकार आवे? आहाहा! शान्ति से समझना चाहे तो यह बात है। ऐसे का ऐसा वाद और विवाद करना चाहे और ऐसे है, वैसे है, अमुक है, अमुक है (उससे) पार पड़े, ऐसा नहीं। ऐसी बात है। आहाहा!

और अविरत, देशविरत आदि में शीलगुण का एकदेश आता है। लो! सम्यग्दृष्टि हुआ। आत्मा के आनन्द के स्वाद का आनन्दमूर्ति का भान हो गया है। भगवान तो आनन्द की मूर्ति आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द के सागर में झूलता है, वह भगवान है। आहाहा! तेरा प्रभु तेरे में डोले। आया था न वह? बोलता नहीं था वह? 'तेरा प्रभु तेरे में डोले।' ऐसा भगवान वाणी में वीर ऐसा बोले। वीर परमात्मा ऐसा बोले कि तेरा प्रभु तेरे में डोले। आया था अपने नहीं वह? आया था न एक? वहाँ भी आया था हिम्मतनगर में। समझ में आया?

कहते हैं कि ऐसा जहाँ आत्मा का सम्यग्दर्शन हुआ या पाँचवाँ गुणस्थान हो, वहाँ तो उसे आत्मा का भान है, आत्मा के गुण को पहिचाना है, जाना है। वहाँ एकदेश हो। यह चौरासी में से सब न हो, ऐसा कहते हैं। एक गुण का एक भाग हो। चौरासी के पूर्ण तो चौदहवें गुणस्थान के अन्त में होते हैं, ऐसा कहते हैं। अब यहाँ से शुरुआत करते हैं। समझ में आया? आहाहा! तब कहे, यह समकिती भी विषय तो लेता है न? बापू! आर्य मनुष्य के मुँह में कोई माँस का टुकड़ा डाले, उसका वह स्वाद लेने में रुकता होगा? समझ में आया? खरगोश के ताजे माँस का टुकड़ा लेकर ऐसे मुँह में डाले। आर्य मनुष्य, जिसे माँस के प्रति की रुचि स्वप्न में नहीं, उसे माँस का टुकड़ा मुँह में डाले तो वह रस लेने के लिये मुँह में टुकड़ा पड़ा है, ऐसा होगा? उसी प्रकार धर्मी को यह राग का भाग आवे परन्तु माँस का टुकड़ा है। उसका स्वाद उसे नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? 'हरि का मारग है शूरो का, कायर का नहीं काम।' ऐई! कायर का उसमें काम नहीं है, कहते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि अकेली भगवान की भक्ति करे, गुरु की भक्ति करे, और

पंच महाव्रत पाले, उसमें पड़ा हुआ परन्तु अकेला विभाव में पड़ा है, ऐसा कहते हैं। हैं? उसे धर्म क्या है, इसकी खबर नहीं है। आहाहा! ऐसे को गुण का विचार नहीं होता, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। भाई! आहाहा! भगवान, गुरु और शास्त्र की भक्ति, वह राग है। उस राग में पड़ा है और उसमें लीन है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे गुण का विचार नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? कान्तिभाई! ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा! वीर के पन्थ में तो वीर चल सकता है। वहाँ कायर का काम नहीं। सुनकर धूज उठे, अर र र! पंच महाव्रत पाले, भगवान की भक्ति करे और मंजीरा बजावे सवेरे से शाम तक पूरी रात। यह क्या कहलाता है? जागरण किया। जागरण किया या अन्धकार किया, यह तुझे खबर नहीं। उस राग की क्रिया में अपना स्वरूप मानकर उससे मुझे कल्याण होगा, ऐसा मानता हुआ अन्धकार को मानता है। उजाले को नहीं मानता। समझ में आया? यहाँ तो जरा... से बात है कि चौथे और पहले की बात को अन्तर कितना किया है? भले एकदेश है परन्तु है तो गुण को देखा हुआ और गुण का भान है। इसलिए एक अंश भी चौथे गुणस्थान में चौरासी लाख गुण में से प्रगट हुआ है, कहते हैं, ऐसा। समझ में आया? दृष्टि में पूर्ण लिया है परन्तु प्रगट हुए हैं गुण (अर्थात्) पर्याय थोड़े।

एकदेश सम्यक्त्व और तीव्र राग-द्वेष का अभावरूप गुण आता है... देखो! है न? अविरत में मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी कषाय के अभावरूप गुण का एकदेश सम्यक्त्व... ऐसा, मिथ्यात्व का अभाव वह एकदेश समकित। अनन्तानुबन्धी का अभाव, वह एकदेश राग-द्वेष का अभावरूप... तीव्र इतने गुण उसे सम्यग्दर्शन में आते हैं। क्या कहा? मिथ्यात्व का अभाव (हुआ), वहाँ सम्यग्दर्शन की पर्याय (प्रगट हुई) वह गुण है। अनन्तानुबन्धी तीव्र कषाय का अभाव, उतनी शान्तरस की पर्याय प्रगट हुई, उतना गुण है। आहाहा! और देशविरत में कुछ व्रत का एकदेश आता है। पाँचवें गुणस्थान में किंचित् शान्ति का अंश विशेष है। दूसरी कषाय घटी है न? इसलिए किंचित् वहाँ एकदेश आता है।

प्रमत्त में महाव्रतरूप सामायिक चारित्र का एकदेश आता है... साधु छठवें गुणस्थान में आत्मा के आनन्द की झलक अनुभव करनेवाले। उसे महाव्रतरूप सामायिक

चारित्र का एकदेश आता है। क्योंकि पापसम्बन्धी राग-द्वेष तो वहाँ नहीं है, परन्तु धर्मसम्बन्धी राग है और सामायिक राग-द्वेष के अभाव का नाम है, इसलिए सामायिक का एकदेश ही कहा है। उसे सामायिक का एक भाग, ऐसा कहते हैं। वह छठवें में भी समकित का एकदेश कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे राग प्रमत्त का बाकी है न?

यहाँ स्वरूप के सन्मुख होने में क्रियाकाण्ड के सम्बन्ध से प्रमाद है,... देखो! स्वरूप के सन्मुख के विषय में क्रियाकाण्ड के सम्बन्ध का प्रमाद है। पन्द्रह प्रमाद है न भाग? इसलिए प्रमत्त नाम दिया है। और अप्रमत्त में सातवाँ गुणस्थान, यह चौरासी लाख गुण का थोड़ा अंश बढ़ते... बढ़ते... बढ़ते... बढ़ते... बढ़ता है, ऐसा कहते हैं। स्वरूप साधने में तो प्रमाद नहीं है,... उसमें था न? स्वरूप के सन्मुख होने में क्रियाकाण्ड के सम्बन्ध से प्रमाद है,... ऐसा। विकल्प इतना वहाँ होता है। और अप्रमत्त में स्वरूप साधने में तो प्रमाद नहीं है, परन्तु कुछ स्वरूप के साधने का राग व्यक्त है,... ऐसा कहा, देखो! वह छठवें में है न, इसलिए सातवें में वहाँ तक गया है। इसलिए कुछ राग ऐसे करूँ... ऐसे करूँ... यह भाग अभी वहाँ तक सातवें तक रह गया है, ऐसा कहते हैं। क्षपक श्रेणी नहीं न, शुक्लध्यान नहीं, इसलिए वहाँ तक उसे उस जाति का गिना है।

इसलिए यहाँ भी सामायिक का एकदेश ही कहा है। इस सातवें गुणस्थान में चारित्रसहित समकितसहित चारित्र परन्तु उसे एकदेश सामायिक का एकदेश भाग समता का एकदेश कहते हैं। उसे पूर्ण समता नहीं। आहाहा! और, अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण में राग व्यक्त नहीं है,... प्रगट नहीं है। शुक्ल हो गया न? शुक्लध्यान। अव्यक्तकषाय का सद्भाव है,... शुक्ल की अपेक्षा से गिना वहाँ। वह धर्मध्यान था न? इसलिए सामायिक चारित्र की पूर्णता कही। अभी वहाँ भी सामायिक और पूर्णता नहीं है आठवें, नवमें।

सूक्ष्मसाम्पराय में अव्यक्त कषाय भी सूक्ष्म रह गयी, इसलिए इसका नाम सूक्ष्मसाम्पराय रखा। चारित्र। उपशान्तमोह क्षीणमोह में कषाय का अभाव ही है, इसलिए जैसा आत्मा का मोह-विकाररहित शुद्ध स्वरूप था उसका अनुभव हुआ, इसलिए यथाख्यातिचारित्र नाम रखा। ऐसे मोहकर्म के अभाव की अपेक्षा तो यहाँ ही उत्तरगुणों की पूर्णता कही जाती है,... मोह के अभाव की अपेक्षा से। परन्तु आत्मा का

स्वरूप अनन्त ज्ञानादि स्वरूप है, सो घातिकर्म के नाश होने पर अनन्त ज्ञानादि प्रगट होते हैं, तब सयोगकेवली कहते हैं। इनमें भी कुछ योगों की प्रवृत्ति हैं, इसलिए अयोगकेवली चौदहवाँ गुणस्थान है। इसमें योगों की प्रवृत्ति मिटकर आत्मा अवस्थित हो जाती है तब चौरासी लाख उत्तरगुणों की पूर्णता कही जाती है। आहाहा! ठेठ चौथे से वहाँ तक लिया। देखो! इतने ऐसे प्रकार, विभाव के प्रकार, गुण के प्रकार, पर्याय के इतने भेद, यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं यह बात नहीं होती। इसे कहाँ देखना? सर्वज्ञ ने तो एक-एक पर्याय के अविभाग प्रतिच्छेद और सब देखा। यह बात करते हैं। अन्यत्र बिना भान आत्मा जानो ऐसा होता है और आत्मा का होता है। यह बिना भान (बात करते हैं)। उसे आत्मा कैसा और क्या पर्याय का कुछ भान नहीं। प्रकाशदासजी! आता है या नहीं? उस कबीर-बबीर में आता है। क्या कहलाता है वहाँ? तब सुना था। किसमें? 'गोरडका'। 'गोरडका' गये थे तब भुरोभाई नहीं वह? रतिभाई नहीं आते अहमदाबादवाले? उनके पिता। ... वे और एक व्यक्ति आया था कोई गाँव का। कबीर का भगत होगा। बड़ी लगायी थी। ...

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ बोलती थी। ... घर नहीं। यहाँ रात्रि में नहीं आये। उसने पूरा गाया था। परन्तु उसमें मूल तत्त्व की खबर नहीं होती। तत्त्व बिना के गीत। वैराग्य की बातें। आत्मा ऐसा और आत्मा ऐसा, ऐसा आवे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे बेचारे को... कल्पित सही परन्तु उस प्रकार की हद में... मर्यादा इतनी आगे नहीं गयी अन्दर। यह... महिमा की। पूरा विस्तार भाव में।

मुमुक्षु : अनुमान भी नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुमान नहीं होता कुछ, सच्चा ज्ञान तो है नहीं। परन्तु यह तो कल्पना में उस प्रकार की विचारधारा आती है न? अन्यमति में आता है न निरंजन निराकार, अनुभवी हुए। आता है, नहीं? 'दादु दुनिया बावरी...' यह 'दादु' का नहीं कहा था? 'दादु कहे दुंद फाटी, अवली चाली सेर, भटकवुं हतुं मटी गयुं अने वस्तु

जड़ी घेर।' वहाँ कहाँ जड़ी है, उसे खबर है? परन्तु उसे इतना लगा कि आत्मा कुछ ऐसा है और ऐसा है। ऐसा बिना भान के अज्ञानभाव से (माना)।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा आता है। हमारे गुजरात में तो ऐसे बहुत ... आचार्य और सब अनुभव हो गया है निरंजन ऐसा अर्थ करे। एक गरासिया था। हम गये थे न! कहाँ? मोरबी जाते हुए निकले थे। मेघवली, मेघवदर। इसकी ओर नहीं? वांकानेर से मोरबी जाते हुए एक गाँव आता है न गरासिया का? वहाँ बाहर। था और सब आये थे, बहिनें भी आयी थीं। कौन सा वर्ष? (संवत्) १९९० के वर्ष। मेघवदर। वह गरासिया था और अपने उतरे थे। तुम नहीं थे तब। आये थे। ९० के वर्ष की बात है। मोरबी जाना था तब। वह ऐसा बहुत कहता था। बाबा नहीं था, गरासिया था। गरासिया सब सौंप दिया धर्मादे। वहाँ स्थान है। नहीं? मोरबी की उस ओर नहीं? गरासिया का एक बड़ा स्थान है। वह क्या कहलाता है? मेघवदर, वह कहता हूँ। मेघवदर गाँव है न, मोरबी जाते हुए उस ओर। वहाँ से फिर टंकारे गये थे। मेघवदर-मेघवदर। खबर है, मेघवदर नाम आया था। वह गरासिया है। रात्रि में सुनने बैठे, बराबर सुने। वापस उसके गायन में जोड़ा हुआ कि हमें साक्षात्कार हुआ है। परन्तु भान कुछ नहीं होता। क्या कहलाये? रामदेवपीर। रामदेवपीर का फोटो अन्दर था। तुम तब कहाँ थे? ९० में-९०में। मेघवदर, नहीं? उस गरासिया के साथ। राम बापू राम। रामपीर... रामपीर कहते हैं वे। रामदेवपीर। वह फोटो था अन्दर देखा। नरम व्यक्ति सही। सुनने बैठे तो बराबर सुने। आहाहा! अरे!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चीज़ है, वह पूरी चीज़ ही गुप्त है। सर्वज्ञ की परम्परा के अतिरिक्त यह मार्ग कहीं मिले, ऐसा नहीं है।

यहाँ कहते हैं। देखो न! यह बात तो एक-एक न्याय में यह सर्वज्ञ ने कैसा देखा? पर्याय के भेद कितने देखे? विभाव के भेद कितने देखे? उसका अभाव करना और वह सब बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं होती।

ऐसे गुणस्थानों की अपेक्षा उत्तरगुणों की प्रवृत्ति विचारने योग्य है। लो! ये बाह्य अपेक्षा भेद हैं, अन्तरंग अपेक्षा विचार करें तो संख्यात, असंख्यात, अनन्त भेद होते हैं,... अनन्त भेद है धर्म की पर्याय के। परन्तु संक्षिप्त में—संक्षेप में कहना हो तो ऐसा ... इस प्रकार जानना चाहिए। लो!

गाथा-१२१

आगे भेदों के विकल्प से रहित होकर ध्यान करने का उपदेश करते हैं -

झायहि धम्मं सुक्कं अट्ट रउदं च झाण मुत्तूण ।

रुदट्ट झाइयाइं इमेण जीवेण चिरकालं ॥१२१॥

ध्याय धर्म्यं शुक्लं आर्त्तं रौद्रं च ध्यानं मुक्त्वा ।

रौद्रार्त्ते ध्याते अनेन जीवेन चिरकालम् ॥१२१॥

चिर-काल ध्याए जीव ने ये आर्त्त रौद्र ध्यान ही।

यों छोड़ आर्त्त रु रुद्र अब ध्याओ धर्म अरु शुक्ल ही ॥१२१॥

अर्थ - हे मुने! तू आर्त्त-रौद्रध्यान को छोड़ और धर्म-शुक्लध्यान हैं, उन्हें ही कर, क्योंकि रौद्र और आर्त्तध्यान तो इस जीव ने अनादि काल से बहुत समय तक किये हैं।

भावार्थ - आर्त्त-रौद्रध्यान अशुभ है, संसार के कारण हैं। ये दोनों ध्यान तो जीव के बिना उपदेश ही अनादि से पाये जाते हैं, इसलिए इनको छोड़ने का उपदेश है। धर्म-शुक्लध्यान स्वर्ग-मोक्ष के कारण हैं। इनको कभी नहीं ध्याये, इसलिए इनके ध्यान करने का उपदेश है। ध्यान का स्वरूप 'एकाग्रचिन्तानिरोध' कहा है। धर्मध्यान में तो धर्मानुराग का सद्भाव है सो धर्म के मोक्षमार्ग के कारण में रागसहित एकाग्रचिन्तानिरोध होता है, इसलिए शुभराग के निमित्त से पुण्यबन्ध भी होता है और विशुद्ध भाव के निमित्त से पापकर्म की निर्जरा भी होती है। शुक्लध्यान में आठवाँ, नौवाँ, दसवाँ गुणस्थान में तो अव्यक्त राग है। वहाँ अनुभव-अपेक्षा उपयोग उज्वल है, इसलिए 'शुक्ल' नाम रखा है और इससे ऊपर के गुणस्थानों में राग-कषाय का अभाव ही है,

इसलिए सर्वथा ही उपयोग उज्ज्वल है, वहाँ शुक्लध्यान युक्त ही है। इतनी और विशेषता है कि उपयोग के एकाग्रनारूप ध्यान की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की कही है। उस अपेक्षा से तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान में ध्यान का उपचार है और योगक्रिया के स्थंभन की अपेक्षा ध्यान कहा है। यह शुक्लध्यान कर्म की निर्जरा करके जीव को मोक्ष प्राप्त कराता है, ऐसे ध्यान का उपदेश जानना ॥१२१॥

गाथा-१२१ पर प्रवचन

१२१। आगे भेदों के विकल्प से रहित होकर ध्यान करने का उपदेश करते हैं-

झायहि धम्मं सुक्कं अट्ट रउदं च झाण मुत्तूण ।

रुदट्ट झाइयाइं इमेण जीवेण चिरकालं ॥१२१॥

अर्थ - हे मुनि! तू आर्त-रौद्रध्यान को छोड़ और धर्म-शुक्लध्यान हैं, उन्हें ही कर, ... धर्म शब्द पड़ा रहा है वहाँ। क्योंकि रौद्र और आर्तध्यान तो इस जीव ने अनादि काल से बहुत समय तक किये हैं। अनन्त काल से आर्त और रौद्रध्यान ध्याता आया है। आहाहा! आत्मा के आनन्द के ध्यान की एकाग्रता के अतिरिक्त जितनी राग की एकाग्रता, वह सब आर्तध्यान है। ऐसा आर्तध्यान तो अनन्त काल से किया है। बहुत समय तक किये हैं।

भावार्थ - आर्त-रौद्रध्यान अशुभ है, ... वह तो अशुभ है। संसार के कारण हैं, ये दोनों ध्यान तो जीव के बिना उपदेश ही अनादि से पाये जाते हैं... दो शब्द छप गया है। दोनों ध्यान जीव को बिना उपदेश के अपने आप आर्त और रौद्रध्यान तो उसे उपदेश देना पड़ता नहीं। वह तो अनादि से सीखकर ही बैठा है। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ दो शब्द है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न दोय। कहा। ये दोनों ध्यान तो... ऐसा। दो ध्यान चाहिए वहाँ। दोय ध्यान नहीं।

दोनों ध्यान तो जीव के बिना उपदेश ही अनादि से पाये जाते हैं... दो की यहाँ

बात की है न पाठ में ? गलत छप गया है। दोनों चाहिए। कहा था, यह पहले कहा था शुरुआत करते हुए। इसलिए... दोष ध्यान शब्द नहीं होता उसे। दो ध्यान चाहिए। दोय ध्यान मिलान बिना का, ठिकाने बिना का है। इस य का ष हो गया है। जीव के बिना उपदेश ही अनादि से पाये जाते हैं, इसलिए इनको छोड़ने का उपदेश है। लो! धर्म-शुक्लध्यान स्वर्ग-मोक्ष के कारण हैं। ऐसा। धर्मध्यान में जितनी शुद्धि आत्मा के आश्रय से है, वह तो मोक्ष का कारण है। विकल्प बाकी है, वह स्वर्ग का कारण है। शुक्लध्यान तो मोक्ष का ही कारण है।

इनको कभी नहीं ध्याया,... देखो! दो ध्यान को कभी ध्यान किया नहीं। इनको कभी नहीं ध्याया, इसलिए इनका ध्यान करने का उपदेश है। आहाहा! अब स्पष्टीकरण करते हैं। ध्यान का स्वरूप एकाग्रचिन्तानिरोध कहा है... एकाग्रचिन्तानिरोधो। चिन्तानिरोधो ध्यान, ऐसा नहीं। एकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानम्। एक अस्तित्व पूरा परमात्मा स्वयं है, उसकी दृष्टि में लेकर एकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानम्। सांख्य आदि में चिन्तानिरोधो ध्यानम् ऐसा कहा है। नास्ति से बात है। परन्तु अस्ति क्या? एकाग्र, वह अस्ति है; चिन्तानिरोधो, वह नास्ति है। समझ में आया? भगवान पूर्णानन्द प्रभु को दृष्टि में लेकर उसका ध्यान करना, उसमें चिन्ता का निरोध होता है। दूसरे विकल्प का अभाव होता है। उसे यहाँ धर्मध्यान कहा जाता है। दोनों की व्याख्या है।

धर्मध्यान में तो धर्मानुराग का सद्भाव है... ऐसा कहते हैं। स्वभाव की एकाग्रता है परन्तु अभी राग का भाग साथ में है, ऐसा। धर्मानुराग का सद्भाव है, सो धर्म के-मोक्षमार्ग के कारण में रागसहित एकाग्रचिन्तानिरोध होता है,... ऐसा। राग का भाग बाकी है और स्वरूप में एकाग्रता है। उसे धर्मध्यान कहा जाता है। अकेला राग है, वह धर्मध्यान नहीं, ऐसा कहते हैं। अभी कहते हैं न यह? शुभभाव, वही धर्मध्यान है। नहीं।

कहते हैं, मोक्षमार्ग के कारण में रागसहित एकाग्रचिन्तानिरोध होता है, इसलिए शुभराग के निमित्त से पुण्यबन्ध भी होता है और विशुद्ध भाव के निमित्त से पापकर्म की निर्जरा भी होती है। समझ में आया? वहाँ पुण्य बँधता है। पुण्य का रस है न, पड़ता

है न शुभभाव का। और शुक्लध्यान में आठवें, नौवें, दसवें गुणस्थान में तो अव्यक्तराग है। वहाँ अनुभव अपेक्षा उपयोग उज्ज्वल है, ... शुक्ल कहा न शुक्ल ? अनुभव अपेक्षा से उज्ज्वल है। जितनी एकाग्रता है, उतनी तो संवर-निर्जरा है। और जितना राग है, उसमें पुण्य बँधता है धर्मध्यान में। और पाप की कितनी ही निर्जरा होती है। परन्तु एकाग्रता हुई, वह धर्मध्यान तो है। वह तो साथ में राग है, उसे व्यवहार धर्मध्यान कहा जाता है। व्यवहार धर्मध्यान कहे, वह बन्ध का कारण है। ऐसा। अकेला शुभोपयोग, वह धर्मध्यान है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? ऐसा लिया न 'मोक्षमार्ग के कारण में...' ऐसा है न ? रागसहित एकाग्रचिन्तानिरोध होता है, ... रागसहित एकाग्र चिन्ता, द्रव्य में एकाग्रता तो है।

शुभराग के निमित्त से पुण्यबन्ध भी होता है और विशुद्ध भाव के निमित्त से पापकर्म की निर्जरा भी होती है। यहाँ आगे अनुभव अपेक्षा उपयोग उज्ज्वल है, ... आठवें, नौवें, दसवें में। इसलिए शुक्ल नाम रखा है... उज्ज्वल शुक्ल अर्थात् उज्ज्वल। इतने सब भेद लोगों को कहीं याद नहीं रहे। यह तो विचारने के प्रकार सब आते हैं न समझने के लिये। दुनिया के भेद-प्रभेद कैसे समझे दुनिया के ? गुणस्थानों में राग-कषाय का अभाव ही है, इसलिए सर्वथा ही उपयोग उज्ज्वल है, वहाँ शुक्लध्यान युक्त ही है। इतनी और विशेषता है कि उपयोग के एकाग्रपनारूप ध्यान की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की कही है। उस अपेक्षा से तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान में ध्यान का उपचार है... अन्तर्मुहूर्त की स्थिति कही और ध्यान तो निरन्तर वहाँ है। वह उपचार से कहा जाता है। वास्तविक तो स्थिरता-रमणता ही अन्दर पूर्ण है। वहाँ तो ऐसा लिया है न प्रवचनसार में। स्थिरता ली है, अकेली ध्यान की। यहाँ उपचार किया। नहीं तो वास्तविक ध्यान जम गया है अन्दर, परन्तु वह अन्तर्मुहूर्त की स्थिति बहुत है न ? इस अपेक्षा से। ऐसा। वहाँ तो जम गया सदा, करोड़ पूर्व या अक्षर के अनन्तवें भाग में अब अन्तर्मुहूर्त की स्थिति कही तो क्या करना ? ... ध्यान कहा। सब जानने की बात है थोड़ी-थोड़ी।

और योगक्रिया के स्थम्भन की अपेक्षा ध्यान कहा है। योग रुक जाता है न थोड़ा-थोड़ा-थोड़ा ? योग। यह शुक्लध्यान कर्म की निर्जरा करके जीव को मोक्ष प्राप्त कराता है, ... लो ! ऐसे ध्यान का उपदेश जानना।

गाथा-१२२

आगे कहते हैं कि यह ध्यान भावलिंगी मुनियों को मोक्ष करता है -

जे के वि दव्वसवणा इंदियसुहआउला ण छिंदंति ।

छिंदंति भावसवणा झाणकुढारेहिं भवरुक्खं ॥१२२॥

ये केऽपि द्रव्यश्रमणा इन्द्रियसुखाकुलाः न छिंदन्ति ।

छिन्दन्ति भावश्रमणाः ध्यानकुठारैः भववृक्षम् ॥१२२॥

यह भव-तरु नहीं छेदते इन्द्रिय सुखाकुल द्रव्य-मुनि।

निज ध्यान रूप कुठार से भव-तरु छेदें भाव-मुनि ॥१२२॥

अर्थ - कई द्रव्यलिंगी श्रमण हैं, वे तो इन्द्रियसुख में व्याकुल हैं, उनके यह धर्म-शुक्लध्यान नहीं होता है। वे तो संसाररूपी वृक्ष को काटने में समर्थ नहीं हैं और जो भावलिंगी श्रमण हैं, वे ध्यानरूपी कुल्हाड़े से संसाररूपी वृक्ष को काटते हैं।

भावार्थ - जो मुनि द्रव्यलिंग तो धारण करते हैं, परन्तु उनको परमार्थ सुख का अनुभव नहीं हुआ है, इसलिए इसलोक में व परलोक में इन्द्रियों के सुख ही को चाहते हैं, तपश्चरणादिक भी इसी अभिलाषा से करते हैं, उनके धर्म-शुक्लध्यान कैसे हो? अर्थात् नहीं होता है। जिनने परमार्थ सुख का आस्वाद लिया, उनको इन्द्रिय सुख, दुःख ही है ऐसा स्पष्ट भासित हुआ है, अतः परमार्थ सुख का उपाय धर्म-शुक्ल ध्यान है, उसको करके वे संसार का अभाव करते हैं, इसलिए भावलिंगी होकर ध्यान का अभ्यास करना चाहिए ॥१२२॥

गाथा-१२२ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि यह ध्यान भावलिंगी मुनियों को मोक्ष करता है -

जे के वि दव्वसवणा इंदियसुहआउला ण छिंदंति ।

छिंदंति भावसवणा झाणकुढारेहिं भवरुक्खं ॥१२२॥

देखो! अब आया यहाँ। आहाहा!

अर्थ - कई द्रव्यलिंगी श्रमण है,... साधु हुए। द्रव्यलिंगी, हजारों रानियाँ छोड़कर। जंगल में रहे। वे तो इन्द्रियसुख में व्याकुल हैं,... क्योंकि मिथ्यात्वभाव है, वहाँ इन्द्रियसुख में प्रीति है। आहाहा!

मुमुक्षु : इन्द्रियसुख में प्रीति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है। अतीन्द्रिय सुख की दृष्टि हुई नहीं।

सम्यग्दर्शन अर्थात्? अतीन्द्रिय सुख की रुचि का परिणामन, इसका नाम सम्यग्दर्शन। समझ में आया? यह तो वहाँ द्रव्यलिंग में देखो! वहाँ तक बात ली है। दिगम्बर साधु अट्टाईस मूलगुण पाले, पंच महाव्रत पाले, शरीर से ब्रह्मचर्य बराबर पाले। परन्तु है इन्द्रियसुख में बुद्धि। ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि अतीन्द्रिय आनन्द का धाम भगवान, उसका तो भान नहीं। इसलिए उसे इन्द्रियसुख में व्याकुल है। आकुलता है न उसे? पंच महाव्रत के परिणाम, वे आकुलता है। और उससे इन्द्रियसुख में प्रेम है, उसे राग का ही प्रेम है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जिससे इन्द्रियों का सुख मिले, ऐसा जो भाव, वह भाव स्वयं ही इन्द्रिय के सुखबुद्धिवाला है, ऐसा कहते हैं। अतीन्द्रिय आत्मा भगवान की रुचि का अभाव है।

अज्ञानी का उत्साह राग में वर्तता है, ऐसा कहते हैं। चाहे तो पंच महाव्रत पालता हो। राग में वर्तता है, इसलिए इन्द्रियसुख में बुद्धि वर्तती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का साहेबा भगवान, उसका तो उसे भान और अनुभव हुआ नहीं। आहाहा! गाथा बहुत सरस है, हों! यह द्रव्यश्रमण लेकर इन्द्रियसुख में आकुलता को उसके कारण से ... उनके यह धर्म-शुक्लध्यान नहीं होता है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! उनके यह धर्म-शुक्लध्यान नहीं होता है। वे तो संसाररूपी वृक्ष को काटने में समर्थ नहीं है,... लो! 'आउला ण छिंदंति' उसमें लिया न? 'झाणकुढारेहिं भवरुक्खं छिंदंति' तो यह नहीं 'छिंदंति' ऐसा। 'न छिंदंति'। न छिंदंति क्या कहा? कि जिसे आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का भान नहीं हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का सम्यग्दर्शन नहीं हुआ, उसे इन्द्रिय के विषय में आकुलताबुद्धि वर्तती है। इसलिए वह भव को छेद नहीं

सकेगा। क्योंकि भव को छेदने का कारण तो स्वभाव का भाव है। स्वभाव के भाव की तो खबर नहीं, इसलिए भव को छेद नहीं सकेगा। आहाहा!

संसाररूपी वृक्ष को काटने में समर्थ नहीं है, और जो भावलिंगी श्रमण हैं, वे ध्यानरूपी कुल्हाड़े से संसाररूपी वृक्ष को काटते हैं। भावश्रमण को तो सम्यग्दर्शन है। यहाँ वजन यह लेना है। सम्यग्दर्शन में आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का प्रेम, रुचि और स्वाद आया है। इससे अतीन्द्रिय आनन्द के परिणमन में या अतीन्द्रिय आनन्द की वृद्धि करने में वह संसार को छेदता है। आकुलता छिदती है। बहुत संक्षिप्त भाषा में न्याय दिया। जिसे अतीन्द्रिय आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय आत्मा, विकल्प से और राग से पार, ऐसे अतीन्द्रिय आत्मा का जिसे अन्तर अनुभव सम्यग्दर्शन नहीं, वह आकुलतावाला इन्द्रियसुख की बुद्धिवाला, वह स्वयं संसार है, इसलिए उसे छेद नहीं सकता। समझ में आया? और भावलिंगी साधु को अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया है। सम्यग्दर्शन में अनुभव हुआ है कि मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द, अकेला अकषाय स्वभाव, परम शुद्ध पवित्रधाम, वह मैं हूँ। ऐसा सम्यग्दर्शन में भान होने से वह आत्मा के आश्रय से, पर के आश्रय से होती आकुलता को छेदकर पूर्ण अनाकुलता को प्रगट करेगा। समझ में आया?....

ध्यानरूपी कुल्हाड़े से... आनन्द के ध्यान में वह कुल्हाड़ा संसार का नाश करने का है, कहते हैं। ध्यानरूपी कुल्हाड़ा संसार के नाश का, उदयभाव के नाश का कुल्हाड़ा है। इतने अपवास कर डाले, ऐसा कर डाले, इसलिए कर्म की निर्जरा होगी और संसार घटेगा, ऐसा है नहीं। विशेष कहेंगे.... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१४४, गाथा-१२२ से १२४, गुरुवार, कार्तिक कृष्ण ६, दिनांक १९-११-१९७०

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। १२२ गाथा का भावार्थ।

भावार्थ : जो मुनि द्रव्यलिंग तो धारण करते हैं, परन्तु उनको परमार्थ-सुख का अनुभव नहीं हुआ है, इसलिए इसलोक-परलोक में इन्द्रियों के सुख ही को चाहते हैं,... क्या कहते हैं? मुनि हो, पंच महाव्रत धारण करे, द्रव्यलिंग नग्न हो या श्रावक बारह व्रत धारे, परन्तु जिसे परमार्थ सुख का अनुभव नहीं, आत्मा में आनन्द है, ऐसा जहाँ अन्दर सम्यग्दर्शन में अनुभव नहीं, उसे पर में सुखबुद्धि हुआ करती है। जिसे अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा ऐसे आनन्द का जिसे अनुभव नहीं, अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में यह सुखस्वरूप है, ऐसा समकित नहीं; अतीन्द्रिय आनन्द को ज्ञेय बनाकर अतीन्द्रिय आनन्द का ज्ञान नहीं, वह फिर पंच महाव्रत धारण करे, साधु हो, बारह व्रत धारण करे परन्तु सब विषय के अभिलाष की सुखबुद्धि टली नहीं। समझ में आया ?

परन्तु उनको परमार्थ-सुख का अनुभव नहीं हुआ है,... मूल यहाँ सम्यग्दर्शन की बात करनी है। सम्यग्दर्शन अर्थात् कि आत्मा परम आनन्द अतीन्द्रियस्वरूप है, उसका अनुभव, उसका भान होकर प्रतीति—सम्यग्दर्शन जिसे नहीं है, उसे कहते हैं कि इसलिए इसलोक-परलोक में इन्द्रियों के सुख ही को चाहते हैं,... जो चीज़ जानी नहीं, उसकी चाहना कहाँ से होगी? पुण्य-पाप के भाव और उसके फल, वे तो दुःखरूप हैं। उनकी इसे चाहना है। यहाँ मुद्दे की रकम की बात करते हैं। जिसने भगवान आत्मा-स्व का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन और आत्मा के आनन्द का अनुभव जाना नहीं, देखा नहीं, माना नहीं, वह फिर महाव्रत पालन करे तो भी उसकी इन्द्रिय विषय में सुख की बुद्धि है। महाव्रत के परिणाम ठीक हैं, उसका अर्थ ही इन्द्रिय विषय में सुखबुद्धि है।

मुमुक्षु : त्यागा तो भी नहीं त्यागा।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्यागा है ही नहीं, त्यागा ही नहीं। आहाहा! जिसे अन्तर में शुभभाव में प्रेम रहता है, पंच महाव्रत के परिणाम भी राग है, दुःख है, ऐसा जिसे भान

नहीं और आत्मा के आनन्द में सुख है, ऐसी जिसे सम्यग्दृष्टि नहीं, उसे तो वह पंच महाव्रत के परिणाम जो इन्द्रिय है, वह वास्तव में इन्द्रिय का विषय है। समझ में आया ? वह मन का विषय है, वह इन्द्रिय है। उसमें जिसे हितबुद्धि है, उसे इन्द्रिय के सुख की ही अभिलाषा है। भारी सूक्ष्म ! समझ में आया ? धर्म का पहला मूलरूप ही जहाँ प्रगट नहीं हुआ, अन्तर्मुख चैतन्य भगवान पूर्ण शुद्ध और अनाकुल आनन्दस्वरूप का अनुभव नहीं, इसलिए उसे राग का अनुभव है। राग का अनुभव, वह दुःखरूप विषय का ही अनुभव है। उसकी चाहना, उसे बढ़ाऊँ, राग की वृद्धि करूँ, राग में एकाकार होऊँ, उसे इन्द्रिय के विषय के सुख की ही अभिलाषा है। बहुत सूक्ष्म ! समझ में आया ?

इसलोक-परलोक में इन्द्रियों के सुख ही को चाहते हैं,... आहाहा ! भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का धन है आत्मा। ऐसे आत्मा का जिसे अन्तर ज्ञान, सुख का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, आत्मा के अनुभव की प्रतीति जिसे नहीं, वे सब प्राणी चाहे तो साधु हो या श्रावक हो, पंच महाव्रत पाले या बारह व्रत पालो, परन्तु उसकी इन्द्रिय के विषय में सुखबुद्धि है। भारी कठिन काम। ओहोहो !

मुमुक्षु : यह भाव मिला ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी रुचि ही वहाँ पड़ी है। आहाहा !

इन्द्रिय अर्थात् ? चाहे तो शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श, इसमें कुछ भी मजा / ठीक है, ऐसा माना है, इसलिए उसने आत्मा में आनन्द है, यह नहीं माना। समझ में आया ? स्वभाव के स्पर्श बिना आनन्द के कण की जागृति हुई नहीं, इसलिए उसे जागृति राग की, पुण्य की, दया, दान, व्रतादि की है। वह तो इन्द्रिय का विषय है, इसलिए इसमें उसका हितपना है, हितपना मानता है, उस इन्द्रिय के विषय को ही चाहता है। क्या कहा, प्रकाशदासजी ! भारी कठिन काम। यहाँ एक ओर पंच महाव्रत पाले वह धर्म, (उससे) चारित्र होगा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मानते हैं।

भगवान ! तू कौन है ? महाव्रत के परिणाम तो तेरे स्वभाव से विरुद्ध भाव हैं,

रागभाव है। तेरा स्वरूप तो वीतराग परमानन्द की मूर्ति है। समझ में आया? बहुत संक्षिप्त में कितना (भरा है)! इन्द्रियसुख ऐसा तो है। द्रव्यश्रमण है, इन्द्रियसुख में आकुलतावाला है, कहते हैं। अरे! पंच महाव्रत पालन करे, हजारों रानियाँ छोड़े, जंगल में रहे, परन्तु उसकी भावना उस राग पर है, इसलिए इन्द्रिय के विषय की सुखबुद्धि उसे टली नहीं है। समझ में आया? बराबर होगा यह? परन्तु यह बाहर में स्त्री सेवन करे नहीं, पैसा रखे नहीं, नग्न घूमे, जंगल में रहे।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! तेरे स्वरूप का स्वाद तुझे नहीं आया, इसलिए पर का स्वाद तेरा टलता नहीं। समझ में आया? आहाहा! आचार्यों ने मर्म, मर्म में बात की है। मर्म में छेद डाला है। आहाहा! देखो न, भाई! ऐसे पंच महाव्रत, अट्टाईस मूलगुण आदि वह तो शुभराग हैं। राग है, वह तो इन्द्रिय के विषय को देनेवाला है। और उसकी इच्छा है, उसे इन्द्रिय के विषय की ही इच्छा है। यह लोक और परलोक। समझ में आया? गजब भाई! यहाँ पहुँचना, जाना। पुण्य-पाप के भाव, उसमें हितबुद्धि, वह इन्द्रिय के विषय में उसकी सुखबुद्धि है, ऐसा कहते हैं। लो, यह शुभभाव। मलूकचन्दभाई! शुभभाव तो आया है या नहीं?

यहाँ तो कहते हैं... आहाहा! भगवान! इस शुभराग का प्रेम है न तुझे? वह तुझे इन्द्रिय के विषय का ही प्रेम है। आहाहा! बात, वह बात वीतराग की। समझ में आया? तब (कोई कहे), यह समकित होता है और फिर स्त्रियों से विवाह करे और छियानवें हजार स्त्री तीर्थकर को थीं। बापू! नहीं थी। तुझे खबर नहीं। जिसमें आत्मा के आनन्द की दृष्टि हुई है, उसे ऐसा विकल्प जरा होता है परन्तु उस विकल्प की रुचि और उसमें सुखबुद्धि नहीं। आहाहा! उसकी राग में सुखबुद्धि टल गयी है। पूरे संसार के प्रति रुचि टल गयी है। आहाहा! समझ में आया? और आत्मा आनन्दस्वरूप है, वहाँ दृष्टि जम गयी है। इसलिए उसे इन्द्रिय के विषय में सुख की अभिलाषा है, ऐसा नहीं कहा जाता। आहाहा! मगनभाई! बहुत कठिन। वाह प्रभु! तेरी महिमा तुझे सूझती नहीं तो दूसरे की महिमा तुझे हटती नहीं, ऐसा कहते हैं। शान्तिभाई! क्या कहा? तुझे तेरी महिमा सूझती नहीं तो पर की महिमा तुझे हटती नहीं। आहाहा! यह तो अभी पहले धर्म की शुरुआत

की बात है, हों! जिसने धर्म शुरु ही नहीं किया, चैतन्यस्वभाव की सूझ पड़ी नहीं, आत्मा भगवान ज्ञान की मूर्ति है, ऐसी सूझबूझ जिसे अन्दर में से आयी नहीं, उसकी सूझबूझ सब पुण्य के परिणाम में अर्पित हो गयी है। आहाहा! इसलिए वह राग वर्तमान और राग के फल सब इन्द्रिय के विषय हैं। अतीन्द्रिय भगवान उसका विषय नहीं है। आहाहा!

समयसार की ३१वीं गाथा में कहा न? 'जो इंदिये जिणित्ता' जिसने खण्ड-खण्ड ज्ञान के भाव का भावेन्द्रिय का अंश है, उसकी भी जिसने रुचि छोड़ी है। और जिसने द्रव्य इन्द्रियाँ यह जड़ है, उसकी भी रुचि छोड़ी है और जिसने इन्द्रियों के विषय—शब्द, रूप, रस, गन्ध, शब्द (स्पर्श) की भी जिसने रुचि छोड़ी है और आत्मा के आनन्द की रुचि हुई है, उसने इन्द्रियों को जीता, ऐसा कहा जाता है। यह तो कहते हैं कि राग में, पुण्य में प्रेम है, वह तो इन्द्रियों से जीता गया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसे विषय लेता न हो शरीर से, परन्तु वह अन्दर में राग का व्यभिचार सेवन करता है। आहाहा! जिस स्वभाव में राग नहीं, ऐसे राग के साथ एकताबुद्धि करता है, उसे पाँच इन्द्रिय के विषय के सुख की इच्छा और चाहना है। आहाहा!

भगवान अणीन्द्रिय आनन्दस्वरूप जाना और देखा नहीं, इसलिए उसकी भावना किसकी होगी? जो चीज़ देखी नहीं, उसकी भावना कैसी होगी? समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भीखाभाई! यह यहाँ कायर का काम नहीं, कहते हैं। आहाहा! बाहर से यह किया, छोड़ा, सामायिक की, प्रतिक्रमण किया, यह प्रौषध किये। ऐई! चन्द्रकान्तजी! कहते हैं कि तुझे राग का भाग जो होता है, उसकी तुझे रुचि और प्रेम है। तूने उस पहलू को देखा है। रागरहित अतीन्द्रिय आनन्द का पहलू तूने देखा नहीं। जिस पहलू में चढ़ा है, उसमें इन्द्रिय के विषयों की ही अभिलाषा है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह तो ऐसा भारी मार्ग है, कहते हैं। पहले से ऐसा होगा? पहले कुछ दूसरा रास्ता होगा या नहीं? आहाहा! कहते हैं कि जिसे तू पहला कषाय की मन्दता कहे, वह तो इन्द्रिय के विषय को देनेवाला और इन्द्रिय का ही विषय है, मन का विषय है। ज्ञान ने आत्मा को विषय नहीं किया। इस ज्ञान ने राग को विषय बनाया, वह तो इन्द्रिय का विषय है। आहाहा!

मुमुक्षु : ... अभिलाषा ।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब अभिलाषा पड़ी है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! गजब प्रभु तेरा...

वीतराग के भाव और वीतराग के कथन जगत में सुनना दुर्लभ पड़ता है। समझना तो कहीं मुश्किल। ऐसी वस्तु है। शान्तिभाई! कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! ऐसे मान लिया लो कि इसमें हम धर्म करते हैं। भक्ति करते हैं, महाव्रत पालते हैं, समिति, गुप्ति करते हैं। अशुभ से बचते हैं। देखकर बराबर चलते हैं। बापू! देखकर चला कहाँ कहलाये? आत्मा ज्ञानानन्द है, उसे देखकर उसमें रहे, एकाग्र (हो), वह देखकर चला कहलाये। यह बाहर के विकल्प में पड़ा और तू कहे कि हम समिति पालते हैं। समिति नहीं, वह असमिति है। समझ में आया? कठिन बात। यह लोगों को खटकती है न कि शुभ आचार इसमें नाश हो जाएगा। अरे! प्रभु! क्या कहते हैं? भाई! आहाहा! और शुद्ध की दृष्टिवाले को जो शुभभाव हो, वैसा शुभभाव अज्ञानी को होता ही नहीं। सुन न! पापी प्राणी है। मिथ्यादृष्टि को उसके पुण्य को भी पाप गिना है।

मुमुक्षु : ईर्यासमिति...

पूज्य गुरुदेवश्री : ईर्यासमिति। देखकर चलना, वह तो विकल्प है। वह विकल्प आवे परन्तु किसे? कि जिसे अन्तर्दृष्टि में आनन्दस्वरूप का भान हुआ है। उसके विकल्प को व्यवहार कहा जाता है। अज्ञानी को तो आत्मा का स्वभाव क्या है, उसका तो भान नहीं। वह सब ईर्या, भाषा, ऐषणा—निर्दोष आहार लेना, वह सब राग है। आहाहा! गजब बात।

मुमुक्षु : राग तो है परन्तु अनन्तानुबन्धी का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का अर्थ क्या? व्यभिचार है। राग के साथ एकत्वबुद्धि है न? आहाहा! मूल में भूल है। यह बात छोड़कर फिर सब पहाड़े गिनना। एक और एक तीन हो गया हो और फिर अंक गिना करे तीन तिया नौ, नौ तिया सत्ताईस, सत्ताईस तिया इक्यासी। इसमें तो कुछ भूल दिखती नहीं। परन्तु मूल में भूल है। समझ में आया?

ऐसा कहते हैं... ओहोहो! 'छिंदंति भावसवणा ज्ञाणकुठारेहिं भवरुक्खं' आहाहा!

कहते हैं, तपश्चरणादिक भी इसी अभिलाषा से करते हैं... भाषा देखो! है? उसमें है या नहीं? क्या है? तपश्चरणादिक भी... तुम्हारे गुजराती होगा। यह तपस्या करे, अपवास करे, मास मासखमण के पारणा करे, तो भी उसकी अभिलाषा वह यहाँ की। क्योंकि राग में ही उसकी रुचि और अभिलाषा है। रागरहित चैतन्य आनन्द का वीतरागी स्वभाव की तो दृष्टि और अनुभव है नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि वह तपस्या करता है परन्तु उसमें जो भाव है न अन्दर राग का, उसकी ही उसे अभिलाषा है। वस्तु है, उसकी तो खबर नहीं। आहाहा! भारी बात, भाई!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं कि मेरी भक्ति और उसका जो तुझे हुआ राग। इस राग की यदि तुझे रुचि (है तो) तुझे विषय की अभिलाषा है। आहाहा! जादवजीभाई! ऐसा मार्ग वीतराग का है। ऐसा ही आत्मा का स्वभाव है। समझ में आया? आहाहा! यह तपश्चरणादिक... आदि अर्थात् तपस्या करे, कोई इन्द्रिय दमन करे, रस छोड़े, अनशन, ऊनोदरी, वृत्ति संक्षेप, रस परित्याग, कायक्लेश, देव-गुरु-शास्त्र का विनय करे, वह सब इसमें आ गया। परन्तु है उसमें अभिलाषायें करे। उसकी ही अभिलाषा, राग की ही अभिलाषा है। आहाहा! समझ में आया?

उनके धर्म-शुक्लध्यान कैसे हो? जिसे राग का ही रस और राग की ही रुचि है, उसे इन्द्रिय के विषय और अभिलाषा पड़ी है उसके गर्भ में। उसे आत्मा का ध्यान, रागरहित, विकल्परहित ऐसा ध्यान अर्थात् एकाग्रता कहाँ से होगी? यहाँ जहाँ राग में एकाग्रता वर्तती है, उसे यहाँ (आत्मा में) एकाग्रता कहाँ से होगी? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह प्रभु का मार्ग अलग। समझ में आया? आहाहा! शुक्लध्यान कैसे हो? अर्थात्? जो राग के प्रेम में पड़ा है, जिसने राग ही देखा है, उसकी जिसे भावना है, उसे रागरहित भगवान आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और एकाग्रता कहाँ से होगी? उसे धर्मध्यान-शुक्लध्यान नहीं हो सकता। हैं! बात तो ऐसी है, भगवान! देखो!

भगवान तीन लोक का नाथ परमात्मा आनन्द से भरपूर है। आहाहा! उस आनन्द की जिसे अन्तर्दृष्टि सम्यक्त्व हुआ नहीं और राग की रुचि में रगड़ गया है। आहाहा! भगवान तो कहते हैं कि तुझे पाँच इन्द्रिय के विषय की अभिलाषा है, हों! अणीन्द्रिय

भगवान की अन्दर श्रद्धा-ज्ञान हुए नहीं। इसलिए इसकी-राग की तुझे श्रद्धा वर्तती है। यह इन्द्रिय के अभिलाषा की श्रद्धा तुझे है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : अन्दर की श्रद्धा...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्दृष्टि हुई नहीं, वह श्रद्धा तो कृत्रिम है। देव-गुरु की श्रद्धा वह तो राग की श्रद्धा है, राग है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम वे तो राग हैं। श्रद्धा तो वहाँ पड़ी है। आहाहा! मिथ्यात्व।

यह भावपाहुड़ है। यहाँ तो गहराई से तो ऐसा कहते हैं, जितने पाँच इन्द्रिय के विषय हैं, उसे अणीन्द्रिय की रुचि छोड़कर जितनी इच्छा और अभिलाषा वर्तती है, वह सब मिथ्यादृष्टि राग की भावना करनेवाला है।....

उनके धर्म-शुक्लध्यान कैसे हो ? अर्थात् नहीं होता है। जिनने परमार्थ सुख का आस्वाद लिया... देखो अब। भगवान आत्मा के आनन्द का जिसे स्वाद आया। समकित हुआ अर्थात् स्वाद आया। समझ में आया ? वह है। नहीं, उसमें कुछ अर्थ नहीं। गुजराती में अर्थ किया है। समझ में आया ? जिनने परमार्थ सुख का आस्वाद लिया, उनको इन्द्रियसुख दुःख ही है... इन्द्रिय सुख, दुःख भासित हुआ है। आहाहा! यह पंच महाव्रत के परिणाम उसे दुःखरूप भासते हैं। भारी गजब बात है न!

मुमुक्षु : चिल्लाहट कराते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चिल्लाहट कराते हैं ? चिल्लाहट कराते हैं ? यह चिल्लाहट करता नहीं वास्तव में तो अन्दर से, गहराई से। तेरा इन्द्रिय के विषय से पार अतीन्द्रिय का धोध आनन्द अन्दर पड़ा है। अतीन्द्रिय आनन्द का धोध पड़ा है, कहते हैं। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लिया, उसे राग की रुचि छूट गयी। उसे विषय की अभिलाषा दुःखरूप भासती है। समझ में आया ? समकित छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा दिखाई दे, उसे राग भी दिखाई दे, उसे दुःख भासित होता है। मजा, उमंग, उत्साह उल्लसित वीर्य उसका वहाँ नहीं होता। उल्लसित वीर्य चैतन्य के प्रति ढल गया है। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि धर्मी के वीर्य की उल्लसितता स्वरूप सन्मुख गयी है। इसलिए उसे इन्द्रिय के सुख काला नाग जैसे निकले और दिखाई दे, वैसा उसे दुःख

लगता है। दुःख लगता है तो करे किसलिए ? भाई ! वह निर्बलता है, वह आता है, परन्तु वह दुःख भासित होता है। आहाहा ! समझ में आया ? वह दुःख का रसिक नहीं है, वह आनन्द का रसिक है। धर्मी समकिति आनन्दस्वरूप का रसिक है। उसे राग का रस नहीं है। उसे राग दुःखरूप भासित होता है। अशुभराग तो दुःख भासित होता है, शुभराग दुःखरूप भासित होता है। आहाहा ! भट्टी-भट्टी करते हैं न लोग ? भाई ने-न्यालभाई ने खुल्ला रखा, वहाँ लोग भड़क गये। गोपनरूप से बात थी थोड़ी-थोड़ी। उसे कहाँ वहाँ उपदेश करना था और अधिक लोगों में बैठना था ? उसने खुल्ला कर दिया कि शुभभाव भट्टी है। वहाँ लोग भड़के। हाय... हाय.. !

कहते हैं, उसे—ज्ञानी को तो इन्द्रिय के सुख की अभिलाषा ही नहीं है। क्योंकि उसे वह दुःखरूप भासित होते हैं। आवे, जाने। उसके सम्बन्धी का ज्ञान स्वयं अपने में रहकर करे। परन्तु उसका उसे प्रेम होता है, रस होता है, यह नहीं। रस उड़ गया। समझ में आया ? फूल का गजरा नहीं आता बड़ा ऐसा ? बड़ा-बड़ा क्या करते हैं तुम्हारे वह ? जलसा। बड़े अधिकारी को... गजरा नहीं करते वे ? फूल-फूल। और एक ऐसा-ऐसा होता है। परन्तु एक हाथ से मसल डाला तो उड़ गया रस। धर्मी ने राग के रस को मसल डाला है। उसे रस रहा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? बापू ! धर्म अलौकिक बात है ! उसका फल अलौकिक है, उसकी जाति अलौकिक है। और धर्म का शरण है। आत्मा, वह अलौकिक है। धर्म का आश्रय तो आत्मा है। आहाहा !

मुमुक्षु : धर्म...

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय तो आत्मा है। आहाहा ! समझ में आया ?

जिनने परमार्थ सुख का आस्वाद लिया, उनको इन्द्रियसुख दुःख ही है... आत्मा का अनाकुल स्वाद लिया समकित में, उसे अनाकुल के समक्ष यह आकुलता भासित होती है। इसलिए उसकी उसे रस की रुचि नहीं। आहाहा ! **अतः परमार्थ सुख का उपाय धर्म-शुक्लध्यान है...** लो ! इसलिए वास्तव में सुख का उपाय तो धर्मध्यान और शुक्लध्यान है। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में एकाग्र होना, कुछ निर्बल परिणाम से। और उग्र परिणाम से स्थिर होना, वह शुक्लध्यान है। वह सुख का उपाय तो धर्म और शुक्लध्यान

है। लो! यहाँ तो ध्यान सुख का उपाय कहा। इस धर्मध्यान में ध्यान धर्म का कारण है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ध्यान तो चारित्र का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ज्ञान-दर्शन-चारित्र तीनों ध्यान हैं। दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों ध्यान की ही पर्याय है। समझ में आया? थोड़ा भी सत्य चाहिए। बहुत और बड़ा लम्बा लपसींदर पूंछड़ा निकाले और उसमें धर्म कुछ नहीं हो, सत्य न मिले, वह क्या चीज़ है?

उसको करके वे संसार का अभाव करते हैं,... देखो! यह तो आकुलतारूपी संसार, उसे स्वभाव के आनन्द के आश्रय से उसका नाश करता है। उसका नाश करता है। उसे रखने का भाव नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म भारी वह बहुत सूक्ष्म... सूक्ष्म... सूक्ष्म... बहुत सूक्ष्म कांता, ऐसा और कहते हैं। यह सब व्यवहार आचार उड़ जाएगा इसमें से। यह जैनधर्म का मूल है, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। अरे! भगवान! बापू! तुझे (बात) नहीं जँची, भाई! अभी बाहर की पहिचान चाहिए, (वह) भी तेरी सरीखी नहीं। आहाहा! बाह्य ज्ञान भी उसका सरीखा नहीं है। बहुत लिखा। बड़ा लेख लिखा। भाई ने पढ़ा नहीं होगा। पढ़ा? बहुत सलाह दी है। तुम्हें यह सब साधु की तरह चरणवन्दन करते हैं, तो इन्हें कहो हम ऐसे नहीं हैं। न माने तो सम्प्रदाय में से छूट जाओ, आ जाओ यहाँ। बहुत बहुत-बहुत अधिक लिखा है। क्या करे? उसे लगे वह कहे न!

बौद्ध का एक दृष्टान्त नहीं दिया था? बौद्ध का एक साधु था। गृहस्थ, हों! गृहस्थ। दूसरा उसकी बहुत निन्दा करने लगा। घण्टे, दो घण्टे (हो गया, फिर पूछा), भाई! हो गया अब? मैं जाऊँ अब। अब जाऊँ। मेरे पास लेने की कुछ शक्ति नहीं है। तूने निन्दा की, मेरे पास लेने की शक्ति नहीं है। तेरी हो, उसे निकाल डाल। निकल गयी अब? तो मैं जाऊँ। वह क्या करे परन्तु? जिसमें हो वह निकाले। निकल जाए फिर सुलटा हो जाएगा। दूसरे भाव से वापस भारी होगा। सन्धि चला ही करती है वहाँ अन्दर कुछ न कुछ। आहाहा!

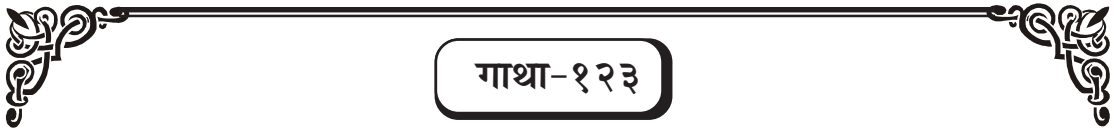
संसार का अभाव करते हैं, इसलिए भावलिंगी होकर ध्यान का अभ्यास

करना चाहिए। सम्यग्दृष्टि प्रगट करके पश्चात् चारित्र लेना और फिर उसमें ध्यान करना, ऐसा कहते हैं। तू सम्यग्दर्शन बिना अकेला द्रव्यलिंग धारण करेगा, वह भी नग्नमुनि, हों! द्रव्यलिंग। आहाहा! वस्त्र-पात्रवाला द्रव्यलिंग भी नहीं और भावलिंग भी नहीं और मिथ्यादृष्टि।

मुमुक्षु : जो कुछ न करता हो, उसकी अपेक्षा कुछ तो अच्छे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा सही जहर पीने का। जहर पीता है अकेला। अच्छा किसे कहना? जहर रगड़ता है। समझ में आया?

यह तो भावपाहुड़ की बात है। भाव, शुद्धभाव जिसने प्रगट किया, उसे धर्म होता है। जिसे शुभभाव में प्रेम है, उसे इन्द्रिय के विषय का प्रेम टला नहीं है।



गाथा-१२३

आगे इस ही अर्थ को दृष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं -

जह दीवो गब्भहरे मारुयबाहाविवज्जिओ जलइ ।

तह रायाणिलरहिओ झाणपईवो वि पज्जलइ ॥१२३॥

यथा दीपः गर्भगृहे मारुतबाधाविवर्जितः ज्वलति ।

तथा रागानिलरहितः ध्यानप्रदीपः अपि प्रज्वलति ॥१२३॥

ज्यों गर्भ-गृह में पवन-बाधा-बिना दीप जले सदा।

त्यों राग आदि पवन-विरहित ध्यान-दीप जले सदा ॥१२३॥

अर्थ - जैसे दीपक गर्भगृह अर्थात् जहाँ पवन का संचार नहीं है, ऐसे घर के मध्य में पवन की बाधा रहित निश्चल होकर जलता है (प्रकाश करता है), वैसे ही अन्तरंग मन में रागरूपी पवन से रहित ध्यानरूपी दीपक भी जलता है, एकाग्र होकर ठहरता है, आत्मरूप को प्रकाशित करता है।

भावार्थ - पहिले कहा था कि जो इन्द्रियसुख से व्याकुल हैं, उनके शुभध्यान नहीं होता है, उसका यह दीपक का दृष्टान्त है, जहाँ इन्द्रियों के सुख में जो राग, वह ही हुआ पवन, वह विद्यमान है, उनके ध्यानरूपी दीपक कैसे निर्बाध उद्योत करे? अर्थात् न करे और जिनके यह रागरूपी पवन बाधा न करे, उनके ध्यानरूपी दीपक निश्चल ठहरता है ॥१२३॥

गाथा-१२३ पर प्रवचन

आगे इस ही अर्थ को दृष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं-

जह दीवो गबभहरे मारुयबाहाविवज्जिओ जलइ ।

तह रायाणिलरहिओ झाणपईवो वि पज्जलइ ॥१२३॥

अर्थ : जैसे दीपक गर्भगृह अर्थात् जहाँ पवन का संचार नहीं है... कमरे में-कमरा हो चारों ओर कमरे (हो उसमें) बीच का कमरा हो, वहाँ दीपक रखा हो। क्या कहते हैं, समझ में आया? जैसे दीपक है, वह गर्भगृह। गर्भगृह किसे कहते हैं? कि चारों ओर कमरे हों और बीच में कमरा हो, उसे गर्भगृह कहते हैं। जिससे बाहर की हवा बीच में आवे नहीं, ऐसे मकान होते हैं न? जहाँ पवन का संचार नहीं है... जिस बीच के कमरे में हवा का संचार नहीं है वहाँ मध्य के घर में पवन की बाधारहित... पवन होता नहीं। वहाँ निश्चल होकर जलता है (प्रकाश करता है),... एकधारा से दीपक ऐसे हिले बिना जलता है। बीच के घर में पवन नहीं और दीपक हो, वहाँ एकधारा... पवन की झपट आवे, वहाँ ऐसे-ऐसे हो-होकर बुझ जाए। दीपक सरीखा रहे नहीं। उज्ज्वल उद्योत करे वहाँ गर्भगृह में दीपक।

वैसे ही अन्तरंग मन में रागरूपी पवन से रहित... उसको बीच के घर में पवन नहीं, इसलिए दीपक बराबर जलता है। उसी प्रकार जिसे रागरूपी पवन नहीं, उसके आत्मा की ध्यान की अग्नि जलती है। समझ में आया? जहाँ राग की पवन नहीं, विकल्प का रस नहीं। वहाँ आत्मा आनन्दमूर्ति का एकाग्रपना ऐसा ध्यान झलकता है, शोभता है, स्थिर-एकाग्र होता है, ऐसा कहते हैं। वह दीपक ऐसे और ऐसे जला करे-जला करे

पवन बिना। उसी प्रकार जिसे राग का प्रेम नहीं, राग की रुचि जिसे उड़ गयी है, ऐसे धर्मी को अपने आत्मा की ओर के ध्यान में, ध्यान स्थिर और एकाग्र होता है। आहाहा! समझ में आया ?

वैसे ही अन्तरंग मन में रागरूपी पवन से रहित... अर्थात् ? जिसे अन्तर में पुण्य के परिणाम का भी रस और प्रेम नहीं। उसे वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा की एकाग्रता बराबर जमती है। हें! वहाँ निश्चल हो सकता है। हिलता नहीं। राग में प्रेम हो तो हिल जाए। देखो! यह राग शुभ या अशुभ दोनों, हों! अकेले अशुभ की बात यहाँ नहीं है। आहाहा! जिसे महाव्रत के शुभराग का भी प्रेम है, उसे ध्यान-अग्नि जमती नहीं। क्योंकि वहाँ छुआ है, पड़ा है जीव। ऐसे एकाग्र यहाँ नहीं हो सकता। परन्तु जिसे राग का रस उड़ गया है, उसे आत्मा के ओर की एकाग्रता जमती है। ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई!

चैतन्य भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु, कहते हैं कि जिसे राग का राग टल गया है, राग का राग गया है और आत्मा की रुचि और दृष्टि हुई है, उसे आत्मा में एकाग्र होने, लीन होने में उसे मददगार है, राग का अभाव। समझ में आया ? राग की रुचि नहीं, इसलिए एकाग्र हो सकता है, ऐसा कहते हैं। यह क्या कहते हैं, वह देखा ? कि जिसे उस राग का रस है, उसे इस ओर ढलना तो हो नहीं सकेगा। शान्तिभाई! बाह्य का त्याग किया हो, परन्तु अन्दर में उस राग का तो रस और प्रेम और रुचि पड़ी है, इसलिए रागरहित आत्मा में वह एकाग्र नहीं हो सकेगा। आहाहा! भारी बात, भाई!

ध्यानरूपी दीपक भी जलता है, एकाग्र होकर ठहरता है,... देखो! एकाग्र होकर स्थिर हो। आत्मस्वरूप को प्रकाशित करता है। भगवान आत्मा चैतन्य जलहल दीपक, हीरा उसमें एकाग्र होने से राग का रस जहाँ उड़ गया है, उसकी रुचि और प्रेम नाश हुए हैं, उसे आत्मा में एकाग्रता का दीपक, ध्यान का दीपक जलता है। आहाहा! कहो, यह सब बातें अन्दर की है। समझ में आया ? आत्मस्वरूप को प्रकाशित करता है। क्योंकि जहाँ अन्तर में पुण्य और पाप के राग की रुचि छूट गयी, रस गया, रुखा हो गया, रस आया वीतरागस्वभाव में, उसे वीतरागी आत्मा के प्रति की एकाग्रता का ध्यान

हो सकता है। राग के रसवाले को एकाग्रता का ध्यान नहीं होता। यहाँ तो वहाँ तक लाये। बाहर छोड़ा, तजा परन्तु वह छोड़ा नहीं तो कुछ छोड़ा नहीं। आहाहा! गजब मार्ग, भाई! ऐसा वीतराग मार्ग! राग का रस छूटे तो आत्मा रूखा वीतरागी पर्याय में जमे, ऐसा कहते हैं। स्त्री, पुत्र तो कहीं रह गये बाहर। जिसे शुभराग का रस है, वहाँ उसकी एकाग्रता जमती है। जिसे शुभराग का रस-रुचि गयी है, उसे रागरहित आत्मा में एकाग्रता जमती है। यह धर्मध्यान है।

भावार्थ : पहिले कहा था कि जो इन्द्रियसुख से व्याकुल हैं, उनके शुभध्यान नहीं होता है,... जिसे राग का रस है, उसे शुभ-भला ध्यान नहीं होता। स्वभावसन्मुख की उसकी एकाग्रता नहीं होती। वह रस तो राग में पड़ा है। यह दीपक का दृष्टान्त है- जहाँ इन्द्रियों के सुख में जो राग वह ही हुआ पवन... इन्द्रिय के विषय का राग अर्थात् राग का राग, उसे इन्द्रिय के विषय का राग। ऐसा जहाँ पवन वह विद्यमान है, उनके ध्यानरूपी दीपक कैसे निर्बाध उद्योत करे? अर्थात् न करे, और जिनके यह रागरूपी पवन बाधा न करे, उनके ध्यानरूपी दीपक निश्चल ठहरता है। आहाहा!

जिसे शुभ-अशुभराग की रुचि है, उसे ध्यानाग्नि किस प्रकार हो? वह ध्यान तो आर्तध्यान-रौद्रध्यान हो गया वहाँ। राग में एकाग्र होने से राग की रुचि तो आर्तध्यान की दशा है। आत्मा के चैतन्यभाव प्राण वहाँ पीड़ित होते हैं। महाव्रत के राग के परिणाम का प्रेम (है, उसमें) चैतन्यप्राण पीड़ित होते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई! यह तो लोग यह कहते हैं कि परन्तु ऐसा आचार मिला है जैन का। अरे! जैनपना यह आचार, वह व्यवहार आचार जैनपना है या निश्चय आचार जैनपना है? बहुत कड़क पड़े। क्या हो? सुना हुआ नहीं था और आया कहीं बाहर से। नया जहाँ लगा वहाँ ऐई! ऐसा है। भेड़िया रेंगने लगा सब अन्दर से। जिसे जैसा लगे वैसा बोले। भाई! तेरे हित का रास्ता कोई अलग प्रकार का है। इस राग का छोटे में छोटा विकल्प का भी प्रेम है, वहाँ मिथ्यादृष्टिपना है। और उसका प्रेम छूटकर भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वभावी, आनन्दस्वभावी, शुद्धस्वभावी, पवित्रस्वभावी, सर्वज्ञस्वभावी के अन्तर में एकाग्र होना, इसका नाम धर्म की पहली दशा है। समझ में आया?

गाथा-१२४

आगे कहते हैं कि ध्यान में जो परमार्थ ध्येय शुद्ध आत्मा का स्वरूप है उस स्वरूप के आराधने में नायक (प्रधान) पंच परमेष्ठी हैं, उनका ध्यान करने का उपदेश करते हैं -

झायहि पंच वि गुरवे मंगलचउसरणलोयपरियरिए ।
 णरसुरखेयरमहिए आराहणणायगे वीरे ॥१२४॥
 ध्याय पंच अपि गुरून् मंगलचतुः शरणलोकपरिकरितान् ।
 नरसुरखेचरमहितान् आराधनानायकान् वीरान् ॥१२४॥
 जो पूज्य नर सुर खेचरों से प्रमुख आराधक सुभट ।
 हैं पंच गुरु मंगल शरण जग-प्रवर चउ का ध्यान धर ॥१२४॥

अर्थ - हे मुने ! तू पंच गुरु अर्थात् पंच परमेष्ठी का ध्यान कर । यहाँ 'अपि' शब्द शुद्धात्म स्वरूप के ध्यान को सूचित करता है । पंच परमेष्ठी कैसे हैं ? मंगल अर्थात् पाप के नाशक अथवा सुखदायक और चउशरण अर्थात् चार शरण तथा 'लोक' अर्थात् लोक के प्राणियों से अरहंत, सिद्ध, साधु, केवलीप्रणीत धर्म, ये परिकरित अर्थात् परिवारित हैं-युक्त (सहित) हैं । नर-सुर-विद्याधर सहित, पूज्य हैं, इसलिए वे 'लोकोत्तम' कहे जाते हैं, आराधना के नायक हैं, वीर हैं, कर्मों के जीतने को सुभट हैं और विशिष्ट लक्ष्मी को प्राप्त हैं तथा देते हैं । इस प्रकार पंच परम गुरु का ध्यान कर ।

भावार्थ - यहाँ पंच परमेष्ठी का ध्यान करने के लिए कहा । उस ध्यान में विघ्न को दूर करनेवाले 'चार मंगलस्वरूप' कहे, वे यही हैं, 'चार शरण' और 'लोकोत्तम' कहे हैं, वे भी इन्हीं को कहे हैं । इनके सिवाय प्राणी को अन्य शरण या रक्षा करनेवाला कोई भी नहीं है और लोक में उत्तम भी ये ही हैं । आराधना दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप ये चार हैं, इनके नायक (स्वामी) भी ये ही हैं, कर्मों को जीतनेवाले भी ये ही हैं । इसलिए ध्यान करनेवाले के लिए इनका ध्यान श्रेष्ठ है । शुद्धस्वरूप की प्राप्ति इन ही के ध्यान से होती है, इसलिए यह उपदेश है ॥१२४॥

गाथा-१२४ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि ध्यान में जो परमार्थ ध्येय शुद्ध आत्मा का स्वरूप है... परमार्थ ध्येय तो शुद्धात्मा का स्वरूप है। क्या कहते हैं? भगवान आत्मा के ध्येय में, ध्यान में ध्येय तो परमार्थ आत्मा का स्वरूप है। अर्थात् क्या कहा? जिसने वर्तमान पर्याय ध्यान की, उसका ध्येय आत्मा, उसके बिना ध्यान सच्चा नहीं हो सकता। ध्यान में जो परमार्थ ध्येय शुद्ध आत्मा का स्वरूप है... क्या कहा? शुद्ध आत्मा का स्वरूप, वह ध्यान का ध्येय है। ध्यान में तो शुद्ध भगवान आत्मा अखण्ड है, उसे पकड़ना है। गजब, भाई! ऐसा धर्म, ऐसा मार्ग! आत्मा की एकाग्रता में परमार्थ ध्येय तो शुद्ध आत्मा का स्वरूप है, ऐसा कहते हैं। एकाग्रता तो वहाँ करनी है—चैतन्य ध्रुव स्वरूप में। क्रियाकाण्ड के रसवाले को यह बात ऐसी लगती है कि यह तो सब हमारा उड़ जाता है हमारे। तेरा था कब? सुन न! यह राग तेरा है? राग की क्रिया वह तेरी है? अब, उस स्वरूप के आराधने में नायक (प्रधान) पंच परमेष्ठी हैं,... लो! कहते हैं उस स्वरूप के आराधने में नायक (प्रधान) पंच परमेष्ठी हैं, उनका ध्यान करने का उपदेश करते हैं- उनका ध्यान करना, ऐसे पंच परमेष्ठी का।

झायहि पंच वि गुरवे मंगलचउसरणलोयपरियरिए।

णरसुरखेयरमहिए आराहणणायगे वीरे ॥१२४॥

शब्द तो देखो! ओहोहो! शब्द के बाण लगते हैं। आता है न? 'गुरु ने मारे शब्द के लगे मारे बाण, जागकर देखूँ तो पहला पाया अमृत का पाया।' समझ में आया?

मुमुक्षु : सद्गुरु ने प्रेम...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। प्रेम से प्याला पिलाया। पहले प्याले में वह मुझे अमृत का स्वाद आया। दूसरे प्याले में मैं ध्यान में लीन हो गया। ऐसे चार आते हैं वे। परन्तु वह सब यह समझकर, हों! सब अकेले गीत गाते हैं, वह (नहीं)।

मुमुक्षु : गुरु के ऊपर जवाबदारी तो ही आवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पीया इसने न? तब इसे गुरु ने पिलाया, ऐसा कहने में

आता है। यह सब बातें ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : तैयार करके तो दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन दे और कौन दे और कौन ले ? इसके पास कहाँ नहीं है, वह पर में से ले ? अपने में कहाँ... थोड़ा टुकड़ा देकर दूसरे को दे, ले भाई यह। मेरे पास बढ़ गया है टुकड़ा। आहाहा! पंचवी उसमें आया नहीं था ? पणवी पंचवी गुरु नहीं आता कल्याणक में ? पंच कल्याणक में नहीं आया था ? ... पणवी। पंचवी पणवी। इसलिए यहाँ जानना कहा। वहाँ पणवी कहा, यहाँ जानना कहा। 'गुरून् मंगचतुः शरणलोकपरिकरितान्। नरसुरखेचरमहितान् आराधनानायकान् वीरान्।'

अर्थ : हे मुने! तू पंच गुरु अर्थात् पंच परमेष्ठी का ध्यान कर। यह वास्तव में ध्यान इसका अर्थात् अपना है, ऐसा कहना है। क्योंकि स्वयं ही अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय होने के योग्य स्वयं है। आत्मा ही पंच परमेष्ठीस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया ? अरिहन्तपना कहीं बाहर से नहीं आता। सिद्धपना, आचार्य, उपाध्याय, साधु वह सब आत्मा में ही है। पहले आ गया। उसका 'ध्यान कर।' देखो! फिर 'अपि' शब्द पड़ा है न ? पंचवी। इसलिए उसमें से निकाला। इसका अर्थ ? अपि शब्द शुद्धात्म स्वरूप के ध्यान को सूचित करता है। उसका लक्ष्य कर पहले कि ऐसे हैं... ऐसे हैं... ऐसे हैं... पश्चात् यहाँ जा। ऐसा मैं हूँ। है न ? 'ज्ञायहि पंच वि' अपि शब्द पड़ा है, है न उसमें। 'ज्ञायहि पंच वि' पाँच को और, ऐसा। पाँच को भी। दूसरे को भी। पंच भी, पाँच भी। यह पाँच भी ध्या। यह पाँच भी पहला आया आत्मा। अर्थात् पाँच भी ध्या, ऐसा। क्या कहा ? पाँच परमेष्ठी को भी ध्या। उसमें वजन आया पाँच परमेष्ठी को भी ध्या। अर्थात् ? आत्मा का ध्यान कर, साथ में पंच परमेष्ठी को भी ध्या, ऐसा आया। क्या कहा यह ? पंच परमेष्ठी को भी ध्या। पंच परमेष्ठी को भी ध्या। इसका अर्थ वजन पहले अन्यत्र जाता है। पहला मुख्य कहीं दूसरा है। है न ? 'ध्याय पंच अपि' है शब्द ? पाँच को भी ध्या। इसका अर्थ कि यहाँ दूसरा भी पहले ध्यान में आ जाता है। आहाहा!

शुद्ध स्वरूप भगवान आत्मा का ध्यान कर और फिर पाँच परमेष्ठी का भी। पंच परमेष्ठी भी, तब अन्दर पहले तो यह आया। समझ में आया ? भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, सच्चिदानन्द प्रभु, वीतरागस्वरूप की मूर्ति आत्मा का ध्यान कर। पाँच भी...

पाँच को भी ध्या। अर्थात् कि पहले एक को ध्या और पाँच को भी ध्या, ऐसा। ... भाई! ऐसी बात है। वहाँ मुम्बई में अन्यत्र कहीं नहीं है। भटका भटक उसरूप से करे। भजन करे और भक्ति किया करे। क्या कहलाता है तुम्हारे वह? देवलाली। देवलाली सब जाते हैं न वहाँ बहुत। सरल लगे, जन्म गँवाने का।

मुमुक्षु : वे ऐसा कहते हैं, तुम शास्त्र ही पढ़ा करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़े क्या? भाव क्या है, उसकी बात है न यहाँ। भाव क्या, यह समझने की बात है। वहाँ समझने का कहाँ आया?

मुमुक्षु : यह करते-करते मोक्ष मिले न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी मिले नहीं। राग का रस है, उसे निगोद मिले, ऐसा यहाँ कहते हैं।

यहाँ क्या कहते हैं? देखो न! यहाँ तो पंच परमेष्ठी की भक्ति में भी आत्मा लिया पहला। भक्ति का भाव आवे, वह विकल्प है और उसे समा देना विकल्प को और आत्मा का ध्यान करना, वह वास्तविक ध्यान कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ... आप सुरेन्द्रनगर पधारे तब।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भक्ति यह है, भाई! वैसी भक्ति तो अनन्त बार बाहर की की है। 'भव-भव में पूजियो', आता है परमात्मप्रकाश में। वह तो राग है। 'भवे-भवे पूजियो जिनवरने' परन्तु तूने तुझे कभी पूजा नहीं। तूने श्रद्धा में लिया नहीं। उसे जँचे क्या? परन्तु यह बड़े को पूजना। तो तू बड़ा नहीं? समझ में आया?

नहीं आता वह? कुत्ता आता था। बिल्ली को ... कुत्ता जाली में। बिल्ली आने की ... कुत्ता आया तो बिल्ली को मारा। बिल्ली चूहे को मारे। यह कुछ आता है उसमें। बहुत बड़ा हो। चूहे से बड़ी बिल्ली और बिल्ली से बड़ा कुत्ता। और कुत्ते से बड़ा कुत्ता और ... मेरा खाने के लिये। मैं उससे बड़ा। यह वार्ता आती है। कुछ आता है। दृष्टान्त आता है। ऐसा कि चूहा था, उसे बिल्ली मारती थी इसलिए एक बिल्ली रखी। वे चूहे बाधक थे। बिल्ली रखी तो बिल्ली के पीछे कुत्ता आया तो कुत्ते ने बिल्ली को मारा। यह तो कुत्ता बड़ा लगता है। कुत्ता रखा। तब वह कुत्ता आया और रोटियाँ खाने अन्दर गया।

स्वयं ने मारी लकड़ी। तब उससे बड़ा मैं लगता हूँ। आता है या नहीं? ऐसा आता है। ऐसी बहुत बातें लेखों में सुनी (पढ़ी) है। संस्कृत टीका में आता है।

ऐसा बड़े में बड़ा परमात्मा होऊँ तो मैं हूँ, कहते हैं। मुझसे बड़ा दुनिया में कोई नहीं है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु इसकी महत्ता जँचे कैसे? रंक होकर भटकता है। आहाहा! शरीर कुछ ठीक मिले वहाँ सुखी हो जाए, पैसा कुछ थोड़ा मिले, वहाँ धूल की ... रखे वहाँ प्रसन्न हो जाए। अभिमान के पूँछड़े लगावे बड़ी महिमा के। वहाँ तो ऐसा फूल जाए अन्दर में से कि आहाहा! मुझे इतनी सभा में बड़ा सिद्ध किया। हैं! दशाश्रीमाली की जाति इकट्ठी हुई हो न और फिर यह आवाज लगाये वजुभाई को अन्दर से। वजुभाई को तो कितनी लगन है जाति की। आहाहा! ऐई! फिर मानपत्र दे। वह सब जहर का मानपत्र है। मान तो भगवान सच्चिदानन्द प्रभु अपना, उसमें जिसकी दृष्टि जमी, परमात्मा होने के योग्य वह बड़ा हो गया। वह परमात्मा होगा। जिसका स्मरण लोग पीछे से करेंगे। समझ में आया? यहाँ तो जरा 'अपि' शब्द आया न, इसलिए जोर है आत्मा के ऊपर, ऐसा मेरा कहना है। है न?

शुद्धात्मस्वरूप के ध्यान को सूचित करता है। पंच परमेष्ठी कैसे हैं? यह विशेष कहेंगे, लो!
(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१४५, गाथा-१२४-१२५, शनिवार, कार्तिक शुक्ल १५, दिनांक १२-१२-१९७०

अष्टपाहुड़, १२४ गाथा। १२४। 'झायहि पंच वि गुरवे' यह गाथा है।

झायहि पंच वि गुरवे मंगलचउसरणलोयपरियरिए।

णरसुरखेयरमहिए आराहणणायगे वीरे ॥१२४॥

अर्थ : हे मुने! मुनि को लक्ष्यकर बात है। भावपाहुड़ है न? भाव अर्थात् आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप अकेला पवित्र भगवान आत्मा, उसका स्वभाव वीतरागस्वभाव है। वह वीतराग अर्थात् रागरहित, द्वेषरहित, कषायरहित उसका त्रिकाली स्वभाव है। उसे जो आराधकर पंच परमेष्ठी हुए, उन्हें पहले मंगलिकरूप से स्मरण करते हैं। निश्चय से

तो अपना स्वरूप शुद्ध है, उसे यहाँ कहते हैं। 'च' शब्द पड़ा है न अन्दर ?

कहते हैं कि हे मुने! हे आत्मा! तू पंच गुरु अर्थात् पंच परमेष्ठी... इस जगत में आत्मा का ध्यान करके जैसा ऐसा उसका पवित्र आनन्द सच्चिदानन्द शिव सुखरूप, निरुपद्रव आनन्द था, वैसी निरुपद्रव आनन्द की पूर्ण दशा जिसे प्रगट हुई अथवा उस आनन्द के साधक होने पर पूर्ण के सन्मुख है, ऐसे जीव को यहाँ पंच परमेष्ठी कहा जाता है। पंच परम इष्ट है। ऐसे कौन ? कहते हैं कि उनका ध्यान कर। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय साधु ये पंच परमेष्ठी हैं। इस आत्मा के निजपद की प्राप्ति जिन्हें हुई है। समझ में आया ? वे परम इष्ट हैं जिन्हें। अपना आत्मा परमानन्द शान्त अविकारी स्वभाव से भरपूर तत्त्व। उस तत्त्व को आराधकर, सेवन कर, एकाग्र होकर जिन्होंने पूर्णता प्राप्त की है, वे अरिहन्त और सिद्ध कहलाते हैं। जो पूर्ण प्राप्ति के सन्मुख हैं, परन्तु भावश्रमण हैं, उन्हें आचार्य, उपाध्याय और साधु कहा जाता है। यह गुणवाचक पाँच नाम हैं। उनका तू ध्यान कर-ऐसा कहते हैं। अर्थात् कि शुद्धस्वरूप है पवित्र, उसे तू लक्ष्य में ले। ऐसा ही तेरा आत्मा है, ऐसा ध्यान कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

तू पंच गुरु अर्थात् पंच परमेष्ठी—परम इष्ट का ध्यान कर। यहाँ अपि शब्द शुद्धात्म स्वरूप के ध्यान को सूचित करता है। लो! अपि शब्द पड़ा है न अन्दर ? 'पंच वि' क्या कहते हैं ? तेरा स्वभाव ही परमपवित्र और आनन्द से भरपूर तत्त्व है। तू स्वयं सहजात्मस्वरूप है। समझ में आया ? १२४ गाथा। भावपाहुड़। अपि शब्द शुद्धात्मस्वरूप के ध्यान को सूचित करता है। है ? इसमें नहीं, इसमें नहीं। उसमें है। उसमें अकेला शब्दार्थ है न ? यह मांगलिक शुरु होता है। लो, आकर मांगलिक यह आया। पंच परमेष्ठी। आहाहा!

कहते हैं कि अन्दर जो आत्मा, उसका स्वभावभाव, स्वाभाविक भाव, सहज भाव, वह तो ज्ञान, आनन्द और शान्त स्वभाव, उसका त्रिकाली सहजभाव है। ऐसा सहज स्वाभाविक भाव, उसका वर्तमान दशा में ध्यान कर। आहाहा! वस्तुरूप से परम आनन्द शीतल, शान्त, निर्दोष, पवित्र स्वभाववाला आत्मतत्त्व है। आहाहा! उसका तू ध्यान कर। अर्थात् उसकी ओर जा। स्वभावसन्मुख हो। राग, पुण्य और पाप के पक्ष में चढ़ा है, वह परिभ्रमण का कारण है। आहाहा! वह पहलू बदल डाल। अन्तर चिदानन्द सच्चिदानन्द

प्रभु आत्मा स्वयं पूर्ण आनन्द का नाथ है। उसमें उसके पहलू में एकाग्र हो जा। भारी दुष्कर। दुर्धर। आहाहा! करने का कर्तव्य तो यह है। दुष्कर अर्थात् महा पुरुषार्थ चाहिए। दुर्धर, इस भाव को धारण करना, वह महापुरुषार्थ है। इसमें। समझ में आया ?

शुद्धात्मस्वरूप, सहजात्मस्वरूप, स्वाभाविक भाववाला तत्त्व। शान्त और आनन्द ऐसा स्वभावभाव, ऐसा आत्मा, उसका ध्यान कर। चन्दुभाई! फिर इस खजूर का ध्यान कब करना तब ? वह तो पर का ध्यान करके तो हैरान हो गया। समझ में आया ? यह ध्यान तो आर्तध्यान और रौद्रध्यान है। अनन्त काल से अनादि अपनी जाति में क्या चीज़ है ? चैतन्यहीरा अन्दर पूर्णानन्द का नाथ सत्साहेब चैतन्य पूर्ण ज्ञान और आनन्द से भरपूर तत्त्व है। आहाहा! वहाँ देखना, कहते हैं। यह वस्तुस्वरूप ही ऐसा है। यह (शरीर) तो मिट्टी है। इसकी दशा में पुण्य-पाप के भाव दिखायी देते हैं, करता है, होते हैं, वह तो मैल है। वह तो कृत्रिम नये करता है, पुराने जायें, नये करे और पुराने जाए। दशा नई करे और पुरानी जाए। परन्तु नया-पुराना कुछ नहीं, ऐसा जो त्रिकाली स्वभाव, है, वह जाए नहीं और नया उसमें हो नहीं - ऐसा आत्मा का आनन्द... आनन्द... आनन्द... अतीन्द्रिय, अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर वह चैतन्यतत्त्व है। ऐसे आनन्द का सहजात्मस्वरूप परमस्वभावभाव, उसका ध्यान कर, कहते हैं। गजब बात, भाई! पंच परमेष्ठी का ध्यान कहा, वह जरा लक्ष्य में लेकर फिर तेरा ध्यान कर। ऐसा ही मैं हूँ, ऐसे।

मुमुक्षु : यह 'अपि' शब्द में से निकला ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अपि शब्द में से निकला। चैतन्यप्रकाशजी! चेतनप्रकाश। ऐसा चेतनप्रकाश है। आहाहा! ऐसा चैतन्यस्वरूप भगवान।

तेरी चीज़ को कभी तूने देखने का प्रयत्न नहीं किया। किसी को जो तुझमें नहीं, उसके सब गीत गाये, उसका ध्यान किया, उसमें होशियारी फैलाई, राग में। पर में कुछ नहीं। पर का तो कर नहीं सकता। खजूर की बोरियों का कर नहीं सकता। तब क्या करे ? राग करे। बस। ऐसा। राग करे या द्वेष करे। उसे आता नहीं, अमुक किया, अमुक। द्वेष करे और अनुकूल हो तो राग करे। राग और द्वेष के अतिरिक्त इसने कुछ नहीं किया। पर का किया नहीं, स्व का किया नहीं। बराबर है ? विकल्प करे। संकल्प-विकल्प यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ। यह संकल्प-विकल्प, वह विकार-दोष है।

इसने नहीं पर का किया। आँख की पलक भी कभी इसने फिरायी नहीं। इससे फिरती नहीं। इसने नहीं किया आत्मा के स्वभाव का ज्ञान। इसने यह किया है अनादि से। पुण्य और पाप, असंख्य प्रकार के विकारी भाव वे दुःखरूप, आकुलता, वह आकुलता की जननी यह परिणति है। विकारभाव चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो, वह आकुलतारूप है। उसके भाव को तूने किया और बहुत बार-अनन्त बार वेदन किया। अब तो कहते हैं, पंच परमेष्ठी का ध्यान कर, भाई! यह पंच परम गुरु परमात्मस्वरूप को पाये, ऐसा ही तेरा स्वभाव है।

शुद्धात्म स्वरूप के ध्यान को सूचित करता है। लो! पहला पंच परमेष्ठी का ऐसा लिया, परन्तु ऐसा ही तेरा स्वभाव है। वे हुए कहाँ से? यह पहले आ गया है अपने। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, इन पाँचों पद में आत्मा है। आत्मा के ये निजपद हैं। यह कोई बाहर की पदवी या वस्त्र बदले, नग्न हुए और आचार्य हुए, ऐसा नहीं है। अन्तर भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का धाम प्रभु, उसकी आराधना-सेवा करके जिसने आनन्द, जिसकी वर्तमान दशा में अतीन्द्रिय आनन्द जब प्रगट हुआ, उन्हें पंच परमेष्ठी कहा जाता है। समझ में आया? उनका ध्यान कर। परन्तु निवृत्त कब होना इसमें? दुनिया के धन्धे, इज्जत बड़ी, नाक बड़ा, इसका क्या करना इसमें? मनसुख नाम है न? आत्मसुख नाम है? मन का सुख अर्थात् दुःखा, कल्पना। चन्द्रकान्तभाई! आहाहा!

जिसने चैतन्यस्वभाव परिपूर्ण प्रभु, कहते हैं कि उसका गुरुगम से पहले ज्ञान करके, उसका ध्यान कर। यह कभी किया नहीं। और करना, वह महापुरुषार्थ माँगता है। आहाहा! इस विकार की ओर का झुकाव अनादि का है, उसे गुलांट खाकर निर्विकारी की ओर ले जाना, अपना शाश्वत् आनन्द स्वभाव, उस ओर दशा ले जाना, वह अलौकिक पुरुषार्थ है और वही पुरुषार्थ है। समझ में आया? गजब भाई यह।

वे पंच परमेष्ठी कैसे हैं? मंगल अर्थात् पाप के नाशक अथवा सुखदायक... लो! मंगल है न? 'पंच वि गुरवे मंगलचउसरणलोयपरियरिण्' पाठ है। कैसे हैं पंच परमेष्ठी? मंगल अर्थात् पाप के गलानेवाले। मंगल। मंग अर्थात् पाप। गल अर्थात् गलाये, वह मंगल। कहते हैं कि उसका ध्यान करने से आत्मा के आनन्द का ध्यान होता है और आनन्द के ध्यान के कारण पुण्य-पाप के भाव जो मलिन हैं, मंग अर्थात् मैल है,

पाप है, उसे वह गलाता है। समझ में आया ? गलाता अर्थात् जलाता है। आहाहा! पंच परमेष्ठी सुख का देना, पाप को गलाना। अस्ति-नास्ति की है। उन पंच परमेष्ठीस्वरूप ऐसा जो भगवान आत्मा त्रिकाली नित्यानन्द ध्रुव, उसका ध्यान करने से पर का अहंकार पुण्य-पाप का, उसे गलाता है और अन्तर में आनन्द है, उसकी दशा प्रगट पर्याय में आनन्द होता है। उत्पाद और व्यय कहा। अर्थात् क्या कहा ?

वस्तु जो आत्मा परमानन्दस्वरूप ध्रुव त्रिकाल रहनेवाला, उसकी दशा में जो विकार है और विकार वह मैं, ऐसा मिथ्यात्वभाव है, उसे आत्मा की अन्तर एकाग्रता से वह गलता है, टलता है, और एकाग्र ध्यान से आनन्द का उत्पाद होता है। समझ में आया ? चने को सेंकने से जैसे तोरापन जलता है, मिठास प्रगट होती है। चना या दालिया। यह मिठास उसमें थी। थी, वह बाहर आयी है। कहीं अग्नि से आयी नहीं। अग्नि से आवे तो कोयला और कंकड़ को सेंके तो मिठास आना चाहिए। जिसमें हो नहीं, उसमें कहाँ से आवे ? इसी प्रकार चने में वह मिठास है, उसे सेंकने से तुराश का भाग जलता है, मिठास का भाग प्रगट होता है और कायम मिठास रहती है।

इसी प्रकार आत्मा में अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्दस्वभाव कायम रहता है। नित्य है न वस्तु ? अविनाशी है न ? ऐसे नित्यानन्द का ध्यान करने से, उसकी दृष्टि लगाने से अज्ञान जो पुण्य-पाप का भाव दुःखरूप है, वह गलता है और आनन्द जो अन्दर में है, वह प्रगट होता है। उसे मांगलिक कहते हैं। यह दुनिया तो कुछ लड़के का विवाह हो तो मांगलिक हुआ। लड़का जन्मे ६० वर्ष में तो कहे, भाई! यह बाँझपना टला। धूल में नहीं। बाँझ है, सुन न! आनन्द की पर्याय उत्पन्न न हो, तब तक बाँझ है। पाँच-पाँच लड़के, आठ-आठ लड़के बड़े, ऐई! कान्तिभाई! कान्तिभाई को कहाँ लड़के हैं ? यह तो ब्रह्मचारी हैं न ? १३००-१५०० को मासिक वेतन। नौकरी छोड़ दी। शान्तिभाई के भाई कान्तिभाई। १५०० का वेतन था वहाँ प्लेन में। मुम्बई। नौकरी छोड़ दी। अब करना नहीं। पन्द्रह सौ का वेतन महीने में, हों! मासिक। छोड़ दी। धूल में भी कुछ नहीं वहाँ। ऐई! शान्तिभाई! यह रुपये वे दस लाख देखे न! पचास हजार-लाख की जमीन, उसमें से दस लाख, पन्द्रह लाख मकान के, वह मेरे। परन्तु क्या है यह ? ऐई! चन्द्रकान्तभाई! क्या होगा ? धूँ की मुट्टी है। ऐई! नटुभाई! आहाहा!

कहते हैं, एक बार आत्मा के आनन्द का ध्यान तो कर। उसे लक्ष्य में तो ले। आहाहा! वस्तु अन्दर कौन है? और कैसी है? कैसे है? उसमें क्या है? उसका लक्ष्य करके उसमें चतुर-चतुराई करके उसे प्रत्यक्ष वेदन में ले, ऐसा कहते हैं। पक्ष-लक्ष्य-दक्ष और प्रत्यक्ष। पहले कर पक्ष कि यह शुद्ध ध्रुव है। यही करनेयोग्य है। तो उसका लक्ष्य वहाँ होगा। लक्ष्य होगा तो उसका ज्ञान भी विशुद्ध होगा दक्षपना। ज्ञान होने पर उसे प्रत्यक्ष होगा। आत्मा का आनन्द उसे प्रत्यक्ष होगा। ऐसी बात है। काम भारी कठिन लगे। शब्द थोड़े और भाव बड़ा, ऐसा। यह भावपाहुड़ है और आनन्द का भाव प्रगट करना, यह भावपाहुड़ है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वज्रनाराचसंहनन होगा तब होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वज्रनाराच उसके घर में रहा। केवलज्ञान पाता है पूर्ण आनन्द और केवलज्ञान। वह अपने स्वभाव के साधन से पाता है। वज्रनाराचसंहनन का तो उसमें अभाव है। हड्डियाँ मजबूत हों, उसका तो इसमें अभाव है। इससे नहीं पाता। आहाहा!

मुमुक्षु : वह न हो तब नहीं पाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह न हो तब ही पाता है। अन्दर में नहीं, इसलिए पाता है। मनुष्यदेह, वज्रनाराचसंहनन आत्मा में नहीं है। नहीं है, इसलिए पाता है। पर के कारण क्या है? धूल। समझ में आया? गाथा है। चन्द्रकान्त! गाथा है अकेली, अर्थ नहीं। १२४, भावपाहुड़। आहाहा!

और चउशरण... कहते हैं। पहले मंगल की व्याख्या की। आत्मा ही मांगलिक है। अथवा पंच परमेष्ठी पवित्र पर्याय आत्मा की, वह मांगलिक है। परन्तु वह पंच परमेष्ठी की पर्याय का प्रगट करनेवाला आत्मा है और आत्मा में पाँचों पद पड़े हैं। कैसे जँचे? मेरे घर में सिद्ध है, मेरे घर में अरिहन्त है। समझ में आया? मेरे घर में तो पैसा है, मेरे घर में तो राग है, धूल भी नहीं, सुन न! राग और पैसेवाला जीव को मानना, वह मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : तो क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न यह। वह तो अन्तर अनन्त आनन्द का धाम सिद्ध

समान इसका स्वरूप है। पुरुषार्थसिद्धि की गाथा आयी थी, नहीं? १४वीं। पुरुषार्थसिद्धि की। वहाँ बताया था। आत्मा 'युक्त इव, प्रतिभाति' आहाहा!

भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द का जमा हुआ टुकड़ा (बर्फी) सुखधाम है। वह सुखधाम सहित है। परन्तु दया, दान के विकल्प और शरीर, कर्म से तो असहित है—सहित नहीं। कहो, यह संहननसहित नहीं। मनुष्यदेहसहित आत्मा नहीं। पैसेसहित आत्मा नहीं, रागसहित आत्मा नहीं। वह नहीं, उसे मानना, इसका नाम मिथ्यात्व है। आहाहा! भारी काम। जिस सहित नहीं, उस सहित हूँ, (ऐसा मानना) इसका नाम मिथ्यात्व है। यह सब बाहर के पैसे के ढेर होते हैं, वहाँ कठिन पड़े, हों! मनसुखभाई! लोग भी महिमा करे। लो, यह मनसुखभाई ने ऐसे पैदा किये और अमुक। इन बातों का लोगों को रस है न। बीस लाख एक वर्ष में पैदा किये। ऐसा कहते हैं। इसका भाई कहता था। अर्थात् इसका बहनोई कहता था। बहनोई नहीं, फूफा। फूफा न? प्राणभाई फूफा होते हैं, फूफा होते हैं। वे बेचारे बहुत दुःखी हो गये थे। वह लड़की... बहुत दुःखी। बुलाया था। दोनों को क्या है? भाई ने कहा... परन्तु क्या है यह? अब यह तो हुआ ही करे, उसमें तुम्हारे क्या है? ... पाँच दिन रहे। क्या दुनिया में नहीं होता? अर्थात् क्या, परन्तु उसमें तुम्हारे क्या? लड़की ने किया, उसमें तुम्हारे क्या? वह लड़की कहाँ तुम्हारी थी? वह आत्मा तुम्हारा है? बेचारे ... लोगों को। रोते, रोवे। लड़की थी। यहाँ लड़का नहीं था वह? (निज) घर छोड़कर व्यभिचारी रूप से विकार में वर्ते, उसका खेद कर। दुनिया में ... स्त्रियाँ रोवे बेचारी। चिन्तनभाई थे न राजकोट? ... उनकी लड़की। लड़की की लड़की यह। राजकोट मरण हुआ, तब हम उपस्थित थे। अन्त में मांगलिक सुनाया, देह छूट गयी। अपने पहले से जानते हैं। उसे बुलाया। क्या है अब यह? संग छोड़ना? सुनना छोड़ना? दुनिया दुनिया की जाने। इसमें शर्म क्या? आत्मा विकार में जाता है, उसकी शर्म कर। वह कलंक है।

आता है न, योगसार में नहीं आता? शर्मजनक जन्मो टले। यह जन्म, वही शर्म है। भगवान चिदानन्दमूर्ति आनन्द का अवतार, उसे इस माँस के पिण्ड, हड्डियों के साथ रहना, गधे के सड़े हुए चमड़े में मैसूर को डालना। मैसूर, मैसूर होता है न? चने के आटे का नहीं? चार सेर घी पिलावे। गधे की चमड़ी। मर गया हो और चमड़ी में

उसे लिपटाना। इसी प्रकार आनन्दमूर्ति प्रभु है, उसे इस चमड़ी-हड्डियों में लिपटाकर रखना। आहाहा! यद्यपि वह तो इनसे रहित है। मैसूर इस चमड़ी से तो रहित ही है। इसी प्रकार यह शरीर और माँस से तो आत्मा रहित है परन्तु उसे सहित मनाकर, उसमें मैं हूँ, शरीर में मैं हूँ (यह) कलंक है। प्रभु! आहाहा!

कहते हैं कि भगवान! तेरे स्वरूप में तो कोई जन्म-मरण भी नहीं और जन्म-मरण का भाव विकार भी नहीं। जो नहीं तो वह टल सकता है। है तो आनन्दमूर्ति प्रभु ज्ञानानन्द। ज्ञान और आनन्द के... कहेंगे अभी गाथा। आहाहा! बर्फ की शिला शीतल होती है। भगवान आत्मा शान्त शिला है। यह बर्फ नहीं होता? बर्फ की शिलायें बड़ी इतनी होती है, दस-दस मण की। मुम्बई में बहुत बड़ी पाट होती है। ऐसे खुल्ले ले जाते हों। ऐसे इस देह में शान्त, जिसमें विकल्प का एक अंश उत्पन्न न हो, ऐसी यह शिला चैतन्य आनन्दस्वरूप है। शान्त शीतल। आयेगा अभी दूसरी गाथा में। १२५ में। 'णाणमयविमलसीयणसलिलं' १२५ गाथा में। आहाहा! प्रभु! थोड़ा सा भी जानना परन्तु सत्य होना चाहिए। बहुत जान-जानकर बहुत जाने परन्तु मूल वस्तु को पहुँचे नहीं तो इसने कुछ किया नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया?

देखो न! यहाँ कहा न कि इसका ध्यान इसका कर। परन्तु सब सीखे न? शास्त्र में (आवे), छह द्रव्य और छह द्रव्य के गुण और उसकी पर्याय और अमुक और अमुक। यह सब जानना, इनसे रहित हूँ, इसके लिये है। समझ में आया? जड़ का जानना, वह जड़ से रहित हूँ, इसके लिये जानना है। उसके जानने के लिये प्रयोजन नहीं है। समझ में आया? विकार आत्मा में हो, उसका जानना, वह विकार के जानने के प्रयोजन के लिये नहीं; परन्तु विकार का जानना, विकाररहित के जानने के लिये है। विकाररहित मैं हूँ, इस जानने के लिये है। वजुभाई! आहाहा! इसने भी भटकाया है न। स्वयं ही अपने को भटकाया है। क्यों, प्रकाशचन्दजी! आहाहा!

कहते हैं, मंगल है, यह भगवान। आत्मा ही मंगल है। उसके आनन्द का ध्यान करने से दुःख गलता है, टलता है और आनन्द की उत्पत्ति; मंग—पवित्रता की प्राप्ति होती है। ऐसा भगवान आत्मा ही मांगलिक है। जैसे पंच परमेष्ठी को मांगलिक कहना, वह व्यवहार से पर अपेक्षित बात है। आहाहा!

और चउशरण अर्थात् चार शरण... है। चार शरण है। अर्थात् आत्मा अरिहन्त-स्वरूप है, सिद्धस्वरूप है, ऐसा जो आत्मा, वही शरण है। जीव को स्वयं को अपना आनन्द स्वभाव, वह शरण है। महा बड़ा पुरुष है न स्वयं। महा-आत्मा है। उसके सहारे जाने से तुझे शरण मिलेगी। बड़े के सहारे लड़का भी देखो न कुछ कुत्ता-बुत्ता काटे और लड़का उसके पिता से अलग हो आगे जरा और कुत्ता ऐसे काटे तो एकदम उसके पिता के पास आवे और चिपट पड़े, वह कुत्ता नहीं काटे इसलिए। ऐसा कहते हैं, भाई! महापुरुष तू चैतन्यमूर्ति आनन्द है न? वह राग से, दुःख से यदि उकताया हो तो अन्दर में जा अब। आहाहा! गजब बात, भाई! ...है, बापू!

यह चार शरण है। अर्थात् चार में भी स्वयं भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द, वह तेरा शरण है। बापू! वहाँ जा। तुझे आनन्द का स्वाद आयेगा और दुःख टलेगा और शरण सिद्धपद की प्राप्ति-परमात्मा की (प्राप्ति) तुझे होगी। ऐसा शरण भगवान आत्मा है। इतना बड़ा, महिमा जँचती नहीं इसे। आहाहा! बड़ा (कहकर) बुलावे वहाँ गलगलिया हो जाए अन्दर में कि... आहाहा! पैसावाला कहे, पुत्रवाला कहे, इज्जतवाला कहे, बड़े कुटुम्बवाला कहे तो (प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए)। जिससे रहित है, उससे सहित कहे तो वहाँ प्रसन्न हो। यह पागल देखो न पागल! कहते हैं। ऐई! चन्द्रकान्तजी! चन्दुभाई! ... आहाहा!

‘जो तारी पासे रे हरि नथी...’ प्रभु तू स्वयं ही प्रभु है साक्षात् चैतन्यमूर्ति। वह तेरा हरि। अज्ञान और राग-द्वेष को हरनेवाला-गलानेवाला ऐसा हरि तो तू स्वयं है। आहाहा! लो, यह मांगलिक पहले हुआ यह। गाथा भी ऐसी आयी। आहाहा! मनसुखभाई वापस आये हैं न! उसे वहाँ वह ले जाना है न, इसलिए जरा-जरा थोड़ा-थोड़ा रखो। नहीं तो कुछ... यह तो निश्चित हो गया है। न आवे तो अब वह बदले ऐसा नहीं है कुछ। परन्तु... लेने आना चाहिए। आहाहा! दूज तो वहाँ निश्चित हो गयी है न? वह कहीं बदले ऐसा नहीं है, चाहे जैसा हो। जूनागढ़ का... होवे तो तुम्हारी दूज बदले ऐसी नहीं है। कोई फिर मानस्तम्भ का वहाँ कहते हैं। वहाँ होवे तो? वह कुछ जाने का बदले, ऐसा है ग्यारह दिन? वह आगे-पीछे चाहे जैसे हो। कहो, समझ में आया? उसके पिताश्री को बहुत प्रेम था। गुजर गये। इन्होंने रखा था सब पीछे। समझ में आया?

यह अन्दर रखने का है। आहाहा! दुर्धर, दुष्कर, अपूर्व यदि हो तो यह आत्मा का पुरुषार्थ है, वह है। बाकी सब थोथा-थोथा है। आहाहा! शरण। अब ?

लोक अर्थात् लोक के प्राणियों से अरहन्त, सिद्ध, साधु, केवलीप्रणीत धर्म, ये परिकरित अर्थात् परिवारित हैं... लो! अर्थात् युक्त (सहित) हैं। लोक के जीव उसमें यह भगवान है, वह उत्तम है। परि कहकर उत्तम के अर्थ में यह डाला। वह उत्तम शब्द नहीं रखा। शरण, मंगल, शरण के बाद परिकरी ऐसा लिया। उत्तम है। जगत में उत्तम में उत्तम पंच परमेष्ठी का धर्म, वह उत्तम है। ऐसे आत्मा की राग और पुण्य-पापरहित स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई दशा, वह उत्तम में उत्तम और आत्मा वह धर्म के परिवारसहित है। राग के परिवार से (सहित) नहीं। समझ में आया ? परिवारित हैं-युक्त (सहित) हैं। आहाहा!

क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा पंच परमेष्ठी उत्तमसहित है, स्वभावसहित। परन्तु भगवान आत्मा उत्तम स्वभावसहित है। उसका परिकर अर्थात् उसका सब लश्कर वह सब उत्तम है। समझ में आया ? ऐसे उत्तम गुरुओं के परिवार से वेष्टित है, युक्त है। अरे! अरे! समझ में आया ? बन्दर बड़ा हो, उसके नीचे सब बन्दर होते हैं। बन्दर से परिवार ... घिरे हुए बन्दर हों सब। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, उत्तम भगवान शुद्ध चैतन्य, उसकी सब निर्मल पर्यायों परिवारसहित आत्मा है। आहाहा! यह दुनिया से दूसरी बातें हैं। आहाहा! वाडा में बातें नहीं, वाडा में से भगवान निकल गया है। ऐसा ही भगवान तेरा स्वरूप है, प्रभु! आहाहा! माहात्म्य आता नहीं, ख्याल में आये बिना इसे उत्तम है, वह भासित नहीं होता। समझ में आया ? आहाहा! तेरे स्वभाव की उत्तम दशा, इसके अतिरिक्त उत्तम जगत में क्या होगा ? भाई! आहाहा!

... लोक के प्राणियों से... सहित हैं। अर्थात् सब प्राणी वास्तव में तो पंच परमेष्ठी हो तो ही वह लोकसहित है। न हो तो झूठ। ऐसे आत्मा भी अपने आनन्द की शान्ति स्वरूप से भरपूर भगवान है। उसमें एकाग्र होने से जो आनन्द आदि का परिवार प्रगट होता है, वह वाड-वाड प्रगट होती है शान्ति की। उससे सहित आत्मा है। राग और पुण्य से सहित नहीं, ऐसा कहते हैं। यह वह आया। १४वीं गाथा। नीचे आया परिकर—सहित है। उससे रहित है। आहाहा! किससे सहित है ? यह धन्नलालजी ने

पूछा था न अभी ? पूछा था, उससे रहित अर्थात् किससे (रहित) ?

अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन। अनन्त ज्ञान अर्थात् ? जिसका स्वभाव है ज्ञान अन्तर, उसकी हद क्या ? उसकी मर्यादा क्या ? ऐसा जो अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त बल, अनन्त शान्ति अर्थात् चारित्र-वीतरागता। अनन्त-अनन्त दृष्टापना जो दर्शन, ऐसे अनन्त गुणों का उसका साम्राज्य है। आहाहा! ऐसा भी यह साम्राज्य किस प्रकार की चीज़ ? अमर्याद साम्राज्य। उस चक्रवर्ती की तो हद होती है। वह कहीं पूरे लोक का स्वामी चक्रवर्ती नहीं होता। होता है ? वह अर्धलोक का स्वामी है, लो न ऐसा कहा जाता है। परन्तु अर्ध का ? पूरा नहीं परन्तु। परन्तु पूरे का कोई होगा लो न! तो यह तो तीन काल-तीन लोक के पदार्थ को एक समय में जाननेवाला। ऐसा साम्राज्य-राज सहित भगवान विराजता है। आहाहा! समझ में आया ?

जामनगर गये थे न एक बार ? (संवत्) २०१० के वर्ष। एक दरबार दर्शन करने आये। दरबार। करोड़ का तालुका। यहाँ जामनगर। और वह कहे, मुझे दर्शन करना है। गये, पाव घण्टे बैठे। आया बेचारा, हों! बहुत आदर करके। ... पूरी वह की थी। क्या कहलाती है ? पूरी रंगोली की थी। वहाँ मैं पाँच मिनिट की रास्ते दिशा को जंगल जाता था, उसे खबर पड़ी की महाराज यहाँ जंगल आते हैं। मुझे दर्शन करना है। फिर कहा, पाव घण्टे (जा आर्येंगे)। कहा, यह साम्राज्य नहीं। रानी बहुत होशियार। बहुत करोड़ रुपये। बैठे थे, दोनों बैठे थे। पाव घण्टे व्याख्यान दिया। दिशा को जाते, हों! अभी तो मुँह नहीं धोया था। फिर बहिन गयी थी न वहाँ ? ... वहाँ से आकर। कहाँ, यह राज्य-साम्राज्य। अनन्त गुण का प्रभु आत्मा, उसका नाम साम्राज्य, उसका धनी अन्दर राजा। धूल का धनी राजा कौन कहे ? रानी बोली, हों! सत्य बात, महाराज! बात तो यह है, बापू! धूल में अब यह एक करोड़ की आमदनी हुई और जामनगर के बड़े राजा। कौन राजा कहता है ? अनन्त गुण का भण्डार भगवान तुझे खबर नहीं, प्रभु!

मुमुक्षु : ... का राज हो, वह सच्चा राज है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राज है। और यह नगर, उसके सिर पर कोई कर नहीं। नगर की व्याख्या मूल तो ऐसी है। उसके नगर में राजा को कर नहीं होता। उसे नगर कहते हैं। बड़ा नगर होता है न। नगर-नकर। सिर पर कोई कर नहीं। ऐसा ... नगर

कहे, ऐई! चन्दुभाई! अब तो सब राजा भी हो गये भिखारी। (सरकारी) पेंशन उड़ गयी, इसलिए चिल्लाहट मचाये बेचारे। होवे वह खाये। दूसरा अधिक नहीं मिलता। क्या खाना? राग खाये। तेरा आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, एक बार तो उसका भोजन कर। आहाहा! इस राग को विकार को चाटा, झूठे बर्तन तूने, भाई! झूठे बर्तन चाटे हैं। वह गधे का होता है न? गायें जूठन चाटें। इसी प्रकार पुण्य और पाप के विकार की जूठन चाटी है भगवान तूने! तेरा नाथ अन्दर चिदानन्द प्रभु आनन्दसहित है, उसका स्वाद तूने नहीं लिया। आहाहा! यह क्या होगा परन्तु ऐसी बातें? भाई! समझ में आया?

भावपाहुड़ है न! एक तो भाव त्रिकाली स्वभावभाव। वह तो त्रिकाली शुद्ध। परन्तु उसके आश्रय से प्रगट हुई वर्तमान दशा, वह भाव शुद्ध। इस भावशुद्ध का यहाँ मुख्य अधिकार है। पुण्य और पाप के भाव तो अशुद्धभाव हैं, मलिन है, मैल है। आहाहा! तब फिर कितने ही ऐसा कहते हैं कि देखो! यह तीन ज्ञान के धनी समकिति हुए। तो उन्होंने रानियाँ क्यों रखी? वे क्यों विषय-वासना में आये? उन्हें तो आत्मज्ञान हुआ, वे तो सब छोड़कर बैठ जाए। अरे! भगवान! तुझे खबर नहीं। छोड़ा है, कब अन्दर घुस गया है? रागरहित ही मैं आत्मा हूँ, ऐसा भान हुआ हो, इस बाहर सहित हूँ, ऐसा उसमें कहाँ आता है? परन्तु दुनिया की दृष्टि ऐसी है कि यह कुछ घटाये और छोड़े, तब इसने त्याग किया कहा जाता है। अन्दर में पूरे विकल्प का त्याग और आनन्द का अनुभव। आहाहा! समझ में आया? यह धर्म परिवारित है।

नर-सुर-विद्याधर सहित हैं,... कैसा है भगवान और पंच परमेष्ठी? नर अर्थात् मनुष्य, सुर अर्थात् देव, विद्याधर-मनुष्य। विद्यावाले, लब्धिवाले हों। विद्याधर सहित हैं, पूज्य हैं,... पंच परमेष्ठी, परम आत्मा की पवित्रदशा प्राप्त। वे तो जगत के विद्या के धारक से भी वे पूज्य हैं। ऐसी लोकोत्तर विद्या जिन्हें प्रगट हुई है। विद्यमान ऐसा ज्ञान, उसकी विद्यमान दशा केवलज्ञान की प्रगट हुई और केवलज्ञान प्रगट करने के साधक— आचार्य-उपाध्याय, वे भी विद्यमान तत्त्व को ही अनुभव करते हैं। समझ में आया? इससे विद्याधरों को, मनुष्यों को, देव को, वे पंच परमेष्ठी पूज्य हैं अथवा उन सबको आत्मा पूज्य है। आहाहा! ऐसा बड़ा आत्मा... कहाँ? भगवानजीभाई! ऐसा कहते। धोया हुआ मूला जैसी बहुत महिमा करते हो परन्तु गया कहाँ? ले। यह वकील। ऐई!

वकील कहीं एक प्रकार के होते हैं ? एक वकील नहीं थे ? राजकोट में थे । वे पहले । दो-पाँच लाख इकट्ठे किये हुए होंगे । वह तो पुण्य हो तो होता है । समझने जैसा था । रामजीभाई की बुद्धि अलग, हों ! वह भी कहीं रामजीभाई की बुद्धि से कुछ मिलता नहीं था । वह तो मिलता था पुण्य के कारण । परन्तु यह तो बुद्धि में अन्तर था । परन्तु वह बुद्धि भी कुबुद्धि थी । यह तो वे स्वयं कहते थे न, रामजीभाई कहते, कुबुद्धि है । जो संसार के काम में विकल्प को जोड़ना, वह ज्ञान तो कुज्ञान है । बराबर होगा ? यह ... बुद्धि कैसी होगी ? आहाहा ! बुद्धते इति बुद्धि । जो बुद्धि भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव को जाने, उस बुद्धि को बुद्धि कहा जाता है । आहाहा !

लोकोत्तम कहे जाते हैं,... पूज्य हैं, इसलिए वे लोकोत्तम कहे जाते हैं,... ऐसा करके वहाँ डाला वापस । सबमें पूज्य है अर्थात् वह बड़ा लोकोत्तम है । ऐसा । लोक में पूज्य है । और आराधना के नायक हैं,... अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, आराधना धर्म की सेवा जिसने आत्मा की सेवा की, आत्मा की सेवा की उसके वे नायक हैं । आराधना में स्वयं उत्कृष्ट हैं, इसलिए आराधना के नायक हैं । आराधना अर्थात् ? आत्मा का स्वभाव पूर्ण शीतल, शुद्ध, आनन्द में एकाग्र होना, वह उसकी सेवा, वह उसका आराधन । समयसार में आता है नहीं ? कि महाराज ! तुम कहते हो कि ज्ञान की सेवा करो, ज्ञान की सेवा करो । तो ज्ञानरहित तो कभी नहीं है । आत्मा ज्ञानस्वभाव से रहित तो कभी नहीं है । तो ज्ञान की सेवा क्या करने की कहते हो आप ? ज्ञान सदा है । भाई ! ज्ञानस्वभाव सदा होने पर भी उस ज्ञान की सेवा अर्थात् ज्ञान की ओर एकाग्रता कभी नहीं की । उसकी सेवा की ही नहीं । लोगों की सेवा करो । धूल भी कुछ करता नहीं । कौन सेवा करता था ? वाह वाह होवे तो लोक सेवा करो, लोक के काम करो, ऐसा आवे । कोई एक पलक फिरा नहीं सकता, भगवान ! विकल्प आवे, वह भी कर्तृत्वबुद्धि से रहित विकल्प परन्तु उसे जो आनेवाला हो, वह आवे । करे कौन ? आहाहा ! जगत की गति में जानेवाले को यह गति समझना बहुत कठिन । समझ में आया ?

कहते हैं, अहो ! आराधना के नायक हैं, वीर हैं, कर्मों के जीतने को सुभट हैं... भगवान आत्मा और पंच परमेष्ठी भी कर्म को जीतने के लिये सुभट हैं । लो, यह तो यहाँ आया । वह कहे, अरिहन्त में ऐसा नहीं होता । शब्द में क्या है ? अरिहन्त ऐसा कि अरि

में कर्मरूपी शत्रु को घात करे, वह शोभता नहीं, ऐसी भाषा। इसलिए अर्हत रखो। इन्द्रों को पूज्य है, ऐसा रखो। मक्खनलालजी का बड़ा लेख था। अरिहन्त और अर्हत का। बड़ा लेख। अरिहन्त, यह शोभता नहीं। अरि-दुश्मन होगा? धर्मात्मा को कोई दुश्मन होगा? नामनिक्षेप से दुश्मन भी शोभता नहीं। अब सुन न! यह क्या कहा? वीर है। कर्म को जीतने के लिये सुभट है। पर को जीतना, यह नहीं शोभता होगा, ऐसा होगा? यह तो जीतने का अर्थात् टालता है। टल जाते हैं। स्वभाव सन्मुख होने पर यह भाव उत्पन्न नहीं होता तो टल जाते हैं, उसे जीतता है, उसे घातता है, अरिहन्त घातते हैं, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! उसमें नहीं आया? परमात्मप्रकाश में नहीं आया? अरे रे! अनादि का कर्म तेरा बन्धु। कर्म अनादि के साथ में रहे हैं। दोष से। दोष किये और कर्म बँधे, वे साथ में रहे हैं। उस बन्धु का घात करनेवाला तू है। धर्मात्मा को कहते हैं। ज्ञानी ने बन्धु का घात किया। क्या कहा यह? अनादि से भाव करता है न पुण्य और पाप? उसे कर्म भी बँधता है। वह कर्म अनादि के साथ के साथ हैं। अनादि के बन्धन को तूने छेदा। बन्धु का घातक तू है। आता है या नहीं? गाथा आती है। क्या है? यह तो अलंकार है। ...भाई! परमात्मप्रकाश में है।

साथ में रहनेवाले, हाथ देनेवाले एक समय भी परमाणु ने कभी तेरा हाथ छोड़ा नहीं है। बेचारे साथ के साथ हैं। उन्हें तू घात करनेवाला, बन्धु को घात करनेवाला है, ऐसा करके गुण गाये हैं। कर्म को घात किया, वे परमात्मा हुए। कर्म का नाश किया, वह आत्मा परमात्मपद को प्राप्त हुए। यह पढ़ा नहीं होगा। ऐसा है। धवल में पाठ यह मूल है। मूल पाठ ही अरिहन्त का है। धवल की पहली गाथा। णमो अरिहन्ताणं। फिर टीका में दोनों लिया है, अरिहन्त है, अर्हत भी है। हो, ठीक है, इसमें क्या दिक्कत? आहाहा! शब्दों में अन्दर विवाद। भाव में क्या अन्तर पड़ता है, इसकी खबर नहीं होती।

विशिष्ट लक्ष्मी को प्राप्त हैं... लो! यह खास आत्मलक्ष्मी को प्राप्त है अथवा देते हैं, ऐसा लिया। ऊपर वीर है न, उसमें से निकाला। विशिष्ट लक्ष्मी को प्राप्त है परमात्मा तथा पंच परमेष्ठी, खास आत्मलक्ष्मी। अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसी लक्ष्मी को प्राप्त है। धूल की लक्ष्मी को प्राप्त तो आत्मा कभी होता नहीं। भ्रमणा में माना था। इस लक्ष्मी सहित तो अनादि से है। आनन्दस्वरूप ज्ञानलक्ष्मी है उसमें। ऐसी जिसे दशा में लक्ष्मी

प्राप्त हो गयी है अथवा उस लक्ष्मी को प्राप्त है। तथा देते हैं। वह ऐसी लक्ष्मी जो दे, उसे परमेष्ठी कहते हैं। निमित्त से कथन है न। देव का आया है न। देव दे। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों दे। पहले आ गया है। निमित्त से बात है न, उसे समझाया चारों अर्थात् उन्होंने दिया, ऐसा कहने में आया। इस प्रकार पंच परम गुरु का ध्यान कर। ऐसे पंच परमेष्ठी का ध्यान कर।

भावार्थ :- यहाँ पंच परमेष्ठी का ध्यान करने के लिये कहा। उस ध्यान में विघ्न को दूर करनेवाले चार मंगलस्वरूप कहे... लो! ध्यान में विघ्न के टालनेवाले चार मंगलस्वरूप भगवान है। और चार शरण और लोकोत्तम कहे हैं, वे भी इन्हीं को कहे हैं। वहाँ पंच परमेष्ठी को कहते हैं। इनके अतिरिक्त प्राणी को अन्य शरण या रक्षा करनेवाला कोई भी नहीं है। लोक में उत्तम भी ये ही है। आराधना दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तर ये चार हैं, इनके नायक (स्वामी) भी ये ही हैं,... सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक् इच्छानिरोध का आराधन करनेवाले भी वे ही हैं।

कर्मों को जीतनेवाला भी ये ही हैं। लो! जीतनेवाले। इसलिए ध्यान करनेवाले के लिये इनका ध्यान श्रेष्ठ है। शुद्धस्वरूप की प्राप्ति इन्हीं के ध्यान से होती है, इसलिए यह उपदेश है। लो! ऐसे पंच परमेष्ठी हैं, उनका ध्यान अर्थात् ऐसा ही मैं हूँ, ऐसी अन्दर में दृष्टि करने और ध्यान करने से आत्मा परमेष्ठी पद को प्राप्त होता है। लो!



गाथा-१२५

आगे ध्यान है वह, 'ज्ञान का एकाग्र होना' है, इसलिए ज्ञान के अनुभव करने का उपदेश करते हैं -

णाणमयविमलसीयलसलिलं पाऊण भविय भावेण ।

वाहिजरमरणवेयणडाहविमुक्का सिवा होंति ॥१२५॥

ज्ञानमयविमलशीतलसलिलं प्राप्य भव्याः भावेन ।

व्याधिजरामरणवेदनादाहविमुक्ताः शिवाः भवन्ति ॥१२५॥

निज भाव से पा ज्ञानमय निर्मल सुशीतल सलिल से।
जर मरण वेदन व्याधि दाह-विमुक्त भवि शिव-सुख लहें॥१२५॥

अर्थह- भव्यजीव ज्ञानमयी निर्मल शीतल जल को सम्यक्त्वभाव सहित पीकर और व्याधिरूप जरा-मरण की वेदना (पीड़ा) को भस्म करके मुक्त अर्थात् संसार से रहित 'शिव' अर्थात् परमानन्द सुखरूप होते हैं।

भावार्थ - जैसे निर्मल और शीतल जल के पीने से पित्त की दाहरूप व्याधि मिटकर साता होती है, वैसे ही यह ज्ञान है, वह जब रागादिक मल से रहित निर्मल और आकुलता रहित शान्तभावरूप होता है, उसकी भावना करके रुचि, श्रद्धा, प्रतीति से पीवे, इससे तन्मय हो तो जरा-मरणरूप दाह-वेदना मिट जाती है और संसार से निर्वृत्त होकर सुखरूप होता है, इसलिए भव्यजीवों को यह उपदेश है कि ज्ञान में लीन होओ ॥१२५॥

गाथा-१२५ पर प्रवचन

आगे ध्यान है वह, 'ज्ञान का एकाग्र होना' है,.... देखो, अब ध्यान की व्याख्या की। परन्तु ध्यान क्या? आत्मा चैतन्य ज्ञानमूर्ति है, उस ज्ञान में एकाग्र होना, इसका नाम ध्यान। राग में एकाग्र होना, वह अपध्यान, बुरा ध्यान। स्वभाव में एकाग्र होना, इसका नाम ध्यान। इसलिए ज्ञान के अनुभवन का उपदेश करते हैं -

गाणमयविमलसीयलसलिलं पाऊण भविय भावेण ।

वाहिजरमरणवेयणडाहविमुक्का सिवा होंति ॥१२५॥

यहाँ वजन है। 'भावेण' अपना स्वभावभाव, उससे

अर्थ :- भव्यजीव... लायक प्राणी है। मोक्ष के मार्ग के, दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त होने के योग्य हैं, वे जीव ज्ञानमयी निर्मल शीतल जल को सम्यक्त्वभाव सहित पीकर... पीयो। लो! जो आनन्दस्वरूप भगवान ज्ञान से, शीतल से भरपूर तत्त्व है, उसमें एकाग्र होकर उसे पीओ। निर्विकल्प रस पीजिये। गजब बातें। 'आशा औरन की क्या कीजे, ध्यान सुधारस पीजे, ज्ञान सुधारस पीजे।' चैतन्य स्वभाव जिसका अनादि-अनन्त

है। वस्तु अनादि-अनन्त है। ऐसे ज्ञानस्वरूप स्वभाव का अनादि-अनन्त है, उसे पीओ। उसका ध्यान करके आनन्द का स्वाद लो। आहाहा! यह तो सब ऊँची बातें हैं, ऐसा कुछ कहते हैं। परन्तु निचली श्रेणी की कोई बात? यह निचली की ही बात है। सच्चे की—निचली की यह बात है। राग करना, अमुक करना... कल उसको लगा कि व्यवहार तो खत्म हो गया। बात भी सच्ची, खोटी बात नहीं। उसने तो कुछ कहा। गाँव के लोग साधारण। ... व्यवहार और व्यवहार का अभाव अनेकान्त यह ... वह इस बार अधिक आया।

वस्तु का स्वभाव, उसमें जो शक्ति है, उसे—शक्तिवान का आदर करने से निश्चयदशा प्रगट होती है और उसमें व्यवहार का अभाव है। व्यवहार से प्रगट नहीं होता। व्यवहार का अभाव है और निश्चय की पर्याय प्राप्ति स्व से। उस व्यवहार से नहीं। व्यवहार का अभाव, इसका नाम अनेकान्त है। व्यवहार से भी प्राप्ति होती है और निश्चय से भी प्राप्त होता है, ऐसा अनेकान्त नहीं है। आहाहा! कठिन लगे। है सही, है इसलिए, है इसलिए कारण होगा? हाँ, कारण भी कहना। वह कारण उपचार है। व्यवहार है, वह त्रिकाल की अपेक्षा से उपचार है। और है रूप से वह यथार्थ है। समझ में आया? वस्तु जो त्रिकाल है, उसकी अपेक्षा से एक समय की पर्याय व्यवहार है। व्यवहार है अर्थात् कि त्रिकाल की अपेक्षा से वह उपचार है। उसकी अपेक्षा से वह है। वह उपचार नहीं, वस्तु नहीं, ऐसा नहीं। परन्तु पर्याय है, इसलिए पर्याय के आश्रय से लाभ होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

निर्मल शीतल जल को सम्यक्त्वसहित पीकर... इससे तेरा रोगादि नाश होगा। विशेष कहेंगे.... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१४६, गाथा-१२५-१२६, रविवार, मगसिर कृष्ण १, दिनांक १३-१२-१९७०

भावपाहुड़ १२५ गाथा। भावपाहुड़ में प्रधान शुद्धभाव की व्याख्या है। शुद्ध परिणाम। पुण्य-पाप के भाव, वे तो अशुद्ध हैं, वे कहीं आत्मा का मूल स्वभाव नहीं है। शुद्ध स्वभाव जैसा है, वैसा ही भाव, आत्मा का स्वभाव जो त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा ही शुद्धभाव पर्याय में प्रगटे, उसके द्वारा आत्मा का अनुभव हो, उसके द्वारा आत्मा को मुक्ति हो। यह यहाँ वर्णन करना है।

णाणमयविमलसीयलसलिलं पाऊण भविय भावेण ।

वाहिजरमरणवेयणडाहविमुक्का सिवा होंति ॥१२५॥

क्या कहते हैं ?

अर्थ :- भव्यजीव... 'भविय' शब्द है न? अन्त में शब्द है न बीच में। भव्यजीव ज्ञानमयी निर्मल शीतल जल... है। क्या कहते हैं? आत्मा ज्ञानमय शीतल स्वच्छ आनन्दमय जल है। जल-पानी। आहाहा! सम्यक्त्वभाव सहित... 'भावेण' शब्द है न? पहली लाईन का अन्तिम। समकित बाद में लिया है, ज्ञान पहले लिया है। समझ में आया? ज्ञानमयी निर्मल शीतल जल को... यहाँ तो अन्तिम गाथायें हैं न सब? चालीस गाथा बाकी है। १६५ है, इसलिए अन्दर एकदम सार ही ले लिया है।

यह आत्मा आनन्द जल शीतल स्वरूप—ठण्डा। जैसे पित्त हुआ हो और ठण्डा जल पीये तो पित्त का नाश होता है, उसी प्रकार आत्मा ज्ञानरूपी शीतलजल अमृत, उसे जो पीवे। सम्यक्त्वभाव सहित... प्रतीति सहित। समझ में आया? पीकर... उसे पीकर। निर्विकल्प रस को पीकर। ऐसा यहाँ तो कहना है। १७-१८ में यह आया न? १७-१८ गाथा। पहले ज्ञान में आत्मा जानना। समयसार। आत्मा ज्ञान में जानना। जैसा है, वैसा स्वभाव पहले ज्ञान में जानना। पश्चात् उसकी श्रद्धा करना। पश्चाम् कालभेद नहीं परन्तु शब्द ऐसा है। समझ में आया?

प्रथम में प्रथम यहाँ कहा न? 'णाणमयविमलसीयलसलिलं पाऊण' 'भविय भावेण' में समकित लिया। 'भावेण' में समकित लिया और पहला यह लिया। वहाँ भी

ऐसा लिया। १७-१८। क्योंकि जहाँ पहला जानना 'णाणम' आत्मा ज्ञात्वा। ज्ञात्वा अर्थात् अनुभव होकर ज्ञात्वा, हों! अकेला जानना, ऐसा नहीं। वहाँ है न? 'जीवराया णादव्वो' जानना। जानना अर्थात् व्यवहारज्ञान, ऐसा नहीं। अनुभूति से जानना, यह पहले में पहली बात है। समझ में आया? आत्मा को अनुभूति से जानना कि यह आत्मा। पश्चात् उसकी श्रद्धा होती है। यह जाने हुए की श्रद्धा। नहीं जाने हुए की गधे के सींग जैसी श्रद्धा है। है न? समझ में आया?

यह मुम्बई में विवाद उठा है न ज्ञान और श्रद्धा में? यह उसका स्पष्टीकरण होता है। विवाद उठा है। तीनों में। एक से दो में गये, तीसरा अब अभी सुना। समझे बिना ज्ञान का अजीर्ण हो जाए। फिर अपने को मान लिया जाए कि हमारा सत्य है, हमारा यह सत्य है। पहले हो गया था न वह? समकित को द्रव्य और पर्याय होता है। पहले यह चला। वह गया, वहाँ और दूसरा चला पर्याय का। क्षेत्रभेद नहीं होता, भावभेद होता है, यह चला है। और तीसरा चलता है अभी, ऐसा सुना है, हों! कोई कहता था। कोई कहे, ज्ञान की प्रधानता, कोई कहे समकित की प्रधानता। दोनों की प्रधानता है। और जाने बिना श्रद्धा किसकी? 'णादव्वो' है न? 'तहय' शब्द पड़ा है न? १७-१८। पुस्तक में है।

निश्चय से जैसे कोई धन का अर्थी पुरुष बहुत उद्यम से प्रथम तो राजा को जाने... जाने कहा न? यह राजा है, पश्चात् उसका ही श्रद्धा करे कि यह अवश्य राजा ही है, उसका सेवन करने से अवश्य धन की प्राप्ति होगी... उसी प्रकार मोक्षार्थी पुरुष को प्रथम तो आत्मा को जानना चाहिए,... जानना अर्थात्? अनुभव। निश्चय निर्विकल्प स्वसंवेदन से जानना। व्यवहार से (जानना) नहीं। वह जानना नहीं है। वह व्यवहार वस्तु ही कहाँ है? समझ में आया? प्रथम तो आत्मा को जानना चाहिए,... अर्थात् अनुभूति से जानना चाहिए। आहाहा! ज्ञान को अन्तर में झुकाकर यह आत्मा पूर्ण है, शुद्ध है, आनन्द है वह आत्मा, ऐसा जानने में आया। पश्चात् उसका ही श्रद्धान करना... टीका है यह। पश्चात् उसका ही श्रद्धान करना... ऐसा आता है। वस्तु ज्ञान में जाने बिना श्रद्धा किसकी? गधे के सींग की? है न? अर्थ में डाला है, नहीं? अनुभूति है न?

आत्मज्ञान उदित नहीं होता और उसके अभाव के कारण, नहीं जाने हुए का

श्रद्धान गधे के सींग की भाँति होने से,.... वस्तु है, उसे ज्ञान में—अनुभव में पहले आना चाहिए। अनुभूति से, हों! अरे! सूक्ष्म बातें हैं, भाई! समझ में आया? यह चीज़ अनुभव में आयी ज्ञान में। जाने हुए की श्रद्धा। नहीं जाने हुए की श्रद्धा क्या? समझ में आया? नहीं जाने हुए की श्रद्धा में कहा। नहीं जाने हुए का श्रद्धान गधे के सींग के समान श्रद्धान होता है। उसमें आया है। फिर आता है न? यह आत्मा जैसा जाना, वैसा ही है, ऐसी प्रतीति जिसका लक्षण, ऐसा श्रद्धान उदित होता है। पहले जानने में अनुभव में आवे। सर्व प्रकार से (भेदज्ञान में प्रवीणता से) 'यह अनुभूति है, वही मैं हूँ'... राग बिना ज्ञान के स्वभाव की अनुभूति, उस अनुभूति द्वारा ज्ञात हुआ, वह आत्मा। ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता, यह आत्मा जैसा जाना, वैसा ही है, ऐसी प्रतीति जिसका लक्षण है, ऐसा श्रद्धान उदित होता है... यहाँ ज्ञान की मुख्यता ली है। जाने बिना की श्रद्धा किसकी? श्रद्धा में कहाँ जानने का स्वभाव है? ऐई! श्रद्धा में जानने का स्वभाव नहीं है। आनन्द को जानने का स्वभाव नहीं है। जानने का स्वभाव तो ज्ञान में ही है। ज्ञान में यह आत्मा पवित्र शुद्ध पूर्ण, अनुभूति से जाने। पाठ में ही है न यह? 'एवं हि जीवराया णादव्वो' जानना। परन्तु इस जानने की व्याख्या टीका में ऐसी। स्वसंवेदन से निर्विकल्परूप से जानना, इसका नाम जानना। आहाहा! ऐई! कान्तिभाई! तुम्हारे यहाँ चलता होगा थोड़ा-थोड़ा? नहीं? समय नहीं मिलता होगा। कहो, समझ में आया?

कहते हैं, आत्मा पहले तो जानना चाहिए। पहले में पहला। प्रथम शब्द पड़ा है, हों! संस्कृत। प्रथम अनुभूति से जानना। जानने के पश्चात् उसकी श्रद्धा होती है। जाने बिना श्रद्धा होगी नहीं। वह आता है न? श्रद्धा कारण और ज्ञान कार्य। यह दीपक और प्रकाश। यह तो बाद में उसका न्याय दिया है। ... जाने हुए की श्रद्धा या जाने बिना की श्रद्धा किसकी? जाना अर्थात् अनुभव से जाना, हों! समझ में आया? देखो न! भाषा कितनी स्पष्ट ली है। प्रथम तो आत्मा को जानना, पश्चात् उसका ही श्रद्धा करना... संस्कृत है। पश्चात् उसका। पश्चात् अर्थात्? कालभेद तो नहीं परन्तु उसे ज्ञान में जानने का मुख्यपना दिया है। पश्चात् उसका श्रद्धान करना। ऐसा है न? पश्चात् श्रद्धा अर्थात्? जाना (कि) यह है, यह श्रद्धान। ऐसा। जाने बिना श्रद्धा किसकी? समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रभु! आप सुनाते हो। जाना, उसमें श्रद्धा आ गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गयी। किसने इनकार किया ? परन्तु यह जानना यह। यह श्रद्धा, ऐसा। यह। शुद्ध चैतन्य अनुभव यह वस्तु, ऐसा। आहाहा! यह तो बापू! अज्ञात मार्ग है। साधारण को ख्याल में आवे, ऐसी चीज़ है नहीं। ऐसी मार्ग की पद्धति है। कहीं न कहीं पकड़ जाए बाहर में, उसे तो हाथ भी न आवे। सच्ची श्रद्धा का ठिकाना नहीं, उसे तो अन्दर हाथ कहाँ से आये यह ? समझ में आया ?

शब्द ऐसा है, देखो! पश्चात् उसका ही श्रद्धान करना कि यही आत्मा है,... और क्या श्रद्धान किया ? कि इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा। ऐसा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप प्रभु में आचरण करने से। श्रद्धा हुई। क्या श्रद्धा की ? जानने में आत्मा आया। श्रद्धा क्या की ? कि इसमें स्थिरता से चारित्र होकर कर्म से छूटूंगा। लो, यह तो सब स्पष्टीकरण हो गया। तीनों ही आ गये। और तत्पश्चात् उसका ही आचरण करना' स्वरूप का ज्ञान, अनुभूति, उसकी श्रद्धा, उसके पश्चात् उसका आचरण। समझ में आया ? अनुभव के द्वारा उसमें लीन होना चाहिए...

मुमुक्षु : तीनों शब्दों में तो क्रम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रम है। जानने का स्वभाव ज्ञान का है न ? अनुभूति को। अनुभव में आया आत्मा, तब उसकी श्रद्धा हुई, ऐसा कहना है। भाई! लालूभाई! जाने बिना की श्रद्धा किसकी ? लो, इसकी श्रद्धा करो। खरगोश के सींग की श्रद्धा करो। यह बोर ऐसा होता है, काशी का बोर ऐसा होता है। परन्तु वस्तु ही जहाँ इसे ख्याल में नहीं, आया ज्ञान। किस प्रकार बैठे विश्वास ? समझ में आया ? इसलिए ऐसा कहा है। पाठ ऐसा ही है न। 'जीवराजो ज्ञातव्यस्तथैव श्रद्ध तव्यः' 'तथैव श्रद्ध तव्यः' जाने हुए की श्रद्धा होती है। जाने बिना की श्रद्धा नहीं होती। जाने हुए को मुख्य लिया, प्रधानता दी। यहाँ तो दर्शन का प्रधानपना तो अमुक कारण से दिया है। श्रद्धा में, श्रद्धा का विश्वास हो। प्रतीति (हो)। परन्तु प्रतीति कब आवे इसे ? इसका ज्ञान हुआ है, तब आती है। समझ में आया ? आहाहा! उसमें बहुत स्पष्ट है। १७-१८ (गाथा समयसार) में।

यहाँ यह शब्द है, देखो! भव्यजीव... 'भव्य' शब्द है न पहली लाईन का अन्तिम दूसरा। उस ज्ञानमयी निर्मल शीतल जल को... निर्मल शीतल जल। शान्त अकषाय स्वभाव ऐसा शीतल जल। उसे 'भावेण' शब्द है न ? 'भावेण' अर्थात् भक्ति

है। भक्ति अर्थात् सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन सम्यक्त्वभाव सहित पीकर... आत्मा के आनन्द को, जल को, शीतल शान्त जल को सम्यक्त्वभाव सहित पीकर... लो! उसका और पीना। आहाहा! पीना अर्थात् अनुभव करना। निर्विकल्प रस पीजिये। पुण्य-पाप के विकल्प हैं, उन्हें वेदता है, वह जहर को पीता है।

आत्मा के स्वभाव का शीतलपना, शान्तपना, अरागीपना, निर्दोषपना को पीवे अर्थात् एकाग्र होकर अनुभव करे। इसका नाम पीना, ऐसा कहा जाता है। देखो! यह तो मक्खन की बात है, भाई! समझ में आया? आहाहा! क्या करे पीकर? अर्थात् पर्याय उत्पन्न हुई। त्रिकाली आनन्द का वेदन होकर। नाश क्या होता है? व्याधिस्वरूप जरा-मरण की वेदना (पीड़ा) को भस्म करके... राग और द्वेष जो व्याधि, पुण्य और पाप जो व्याधि, यह जरा-मरण की व्याधि। जरा-मरण तो निमित्त से है परन्तु उसमें व्याधि जो दुःख है, वह उसकी जाति है। वेदना (पीड़ा) को भस्म करके... लो, दाह है न? 'व्याधिजरामरणवेदनादाह' दाह अर्थात् भस्म। परमाणु को भस्म करते होंगे? यहाँ आत्मा के आनन्द का वेदन हुआ, इसलिए दुःख की पर्याय उत्पन्न नहीं होती, उसने दुःख को जलाया, ऐसा कहा जाता है। सीधा शब्द करने जाए तो जलाया अर्थात् क्या यह जलाने गया? राग है, इसे जलाता है; पीड़ा है, उसे टालता है। समझ में आया?

व्याधिस्वरूप जरा-मरण की वेदना (पीड़ा)... विकार की एकता की पीड़ा, वह स्वभाव की एकता से नाश हो, ऐसा कहना है। समझ में आया? वेदना (पीड़ा) को भस्म करके मुक्त अर्थात् संसार से रहित... लो! 'डाहविमुक्का' है न? 'सिवा होंति' शिव होता है। शिव अर्थात् परमानन्द सुखरूप होते हैं। लो, शिव की व्याख्या। निरुपद्रव, कल्याणमूर्ति अर्थात् परमानन्द सुखरूप होना, इसका नाम मोक्ष। परमानन्द की पूर्ण दशारूप सुखरूप दशा होना, इसका नाम मोक्ष। मोक्ष शब्द में आनन्द होना, ऐसा नहीं आवे ऐसा। मोक्ष में तो छूटना आता है। परन्तु इसका अर्थ यह। नास्ति से दुःख से मुक्त होना और (अस्ति से) आनन्द की प्राप्ति होना, इस प्रकार से मोक्ष की व्याख्या की।

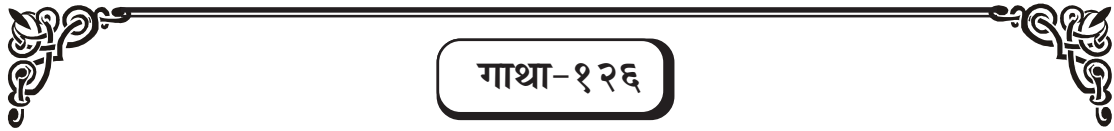
भावार्थ :- जैसे निर्मल और शीतल... निर्मल और शीतल। अकेला शीतल परन्तु निर्मल। शीतल जल के पीने से पित्त की दाहरूप व्याधि मिटकर साता होती है,... ओहोहो! साता होती है; वैसे ही यह ज्ञान है, वह जब रागादिक मल से रहित...

ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, वह रागादि मल से रहित है। रागादिक मल से रहित निर्मल और आकुलता रहित शान्तभावरूप होता है, ... लो! जैसा इसका स्वभाव शान्त है, अनाकुल है, ऐसी एकाग्रता करने से अनाकुल शान्तमय दशा होती है। उसकी भावना कर... उसकी एकाग्रता कर, रुचि, श्रद्धा, प्रतीति से पीवे, ... लो! उसमें आया था न यह? सम्यक्भाव से सहित पीवे। जरा इसका स्पष्टीकरण किया। 'भावेण' था न? 'सलिलं पाऊण भविय भावेण' समकितसहित, ऐसा। रुचि, श्रद्धा, प्रतीति से पीवे, ... ज्ञान के स्वरूप को जानकर प्रतीति से पीवे। अनुभव में-वेदन में ले। आहाहा! ऐसी भारी बात, लो! यह करने का है इसे, मोक्ष करने की क्रिया हो तो। क्योंकि जो वस्तु है, उसका स्वभाव है, उस स्वभाव में शक्तिरूप से जो स्वभाव है, उसे व्यक्तरूप स्वभाव द्वारा उसकी मुक्ति होती है। विभाव और निमित्त से मुक्ति-बुक्ति नहीं होती।

इसमें तन्मय हो... पीने की व्याख्या की। और पीना अर्थात् क्या? ऐसा। आनन्दस्वरूप जल चैतन्य, ज्ञान में तन्मय हो। ज्ञानस्वरूपी भगवान निर्मल, शान्त में एकाग्र हो। तन्मय अर्थात् तत् स्वरूप ऐकाकार। तो जरा-मरणरूप दाह-वेदना मिट जाती है... लो। जरा अवस्था, मरण, दाह, वेदना मिट जाए। संसार से निवृत्त होकर... लो, विकारी पर्याय से छूट जाए। सुखरूप होता है, ... आनन्द की पर्याय से प्राप्त हो। क्या यह व्याख्या की! तब हमें करना क्या परन्तु इसमें? करने का यह। पूर्ण स्वरूप भगवान निर्विकल्प रस का कन्द है यह तो। इसकी दृष्टि करके उसमें एकाग्र होकर उसका वेदन करना, यह धार्मिक किया है। धर्म की यह धर्मक्रिया है। इस क्रिया से दुःख मिटकर सुख होता है। सुख होता कहो या मोक्ष होता है कहो। समझ में आया?

इसलिए भव्य जीवों को यह उपदेश है कि ज्ञान में लीन होओ। ज्ञान में लीन होओ। भगवान तो ज्ञानमूर्ति आत्मा है। उसका दूसरा कोई उपाय होगा या नहीं परन्तु इसके लिये जाने का कुछ? यह तो ... बात है। लोग ऐसी बात करते हैं। बात ही यह है। पहले कहो या बाद में कहो। आहाहा! जिसे धर्म प्रगट करना हो, (उसे तो यह करना है)। वस्तु का स्वभाव है, वह तो धर्म है। वस्तु का स्वभाव वह धर्म। वह तो है। अब प्रगट करना हो। आनन्द, शान्त, ज्ञान, स्वच्छता इत्यादि निर्दोष स्वभाव तो है। प्रगट करना अर्थात्? कि उसमें एकाग्र होना हो तो धर्म प्रगट होगा। और उस धर्म का फल

आनन्द की प्राप्ति और दुःख का नाश। लो! बहुत संक्षिप्त बात आयी। तो पुस्तक देखना न पड़े, ऐसा कहते हैं। कहो, प्रकाशदासजी! तो पुस्तक देखना न पड़े। बहुत पढ़ा हुआ हो तो यह हो, ऐसा भी नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान का ऐसा उपदेश है कि ज्ञान में लीन हो, भाई! राग में और पुण्य में और विकल्प में जो लीन है, वह संसार है, वह मिथ्यात्व है। जो उसमें नहीं, उसमें लीन है, वह मिथ्यात्व है। जो उसमें है, उसमें लीन है, वह सम्यक् मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया ?



गाथा-१२६

आगे कहते हैं कि इस ध्यानरूप अग्नि से संसार के बीज आठों कर्म एकबार दग्ध हो जाने पर पीछे फिर संसार नहीं होता है, यह बीज भावमुनि के दग्ध हो जाता है -

जह बीयम्मि य दड्ढे ण वि रोहइ अंकुरो य महिवीढे ।

तह कम्मबीयदड्ढे भवंकुरो भावसवणाणं ॥१२६॥

यथा बीजे च दग्धे नापि रोहति अंकुरश्च महीपीठे ।

तथा कर्मबीजदग्धे भवांकुरः भावश्रमणानाम् ॥१२६॥

ज्यों बीज होता दग्ध तो अंकुर न भूतल पर उगें।

नहिं भाव-श्रमणों के भवांकुर कर्म बीज सुदग्ध में ॥१२६॥

अर्थ - जैसे पृथ्वी तल पर बीज के जल जाने पर उसका अंकुर फिर नहीं उगता है, वैसे ही भावलिङ्गी श्रमण के संसार का कर्मरूपी बीज दग्ध होता है, इसलिए संसाररूप अंकुर फिर नहीं होता है।

भावार्थ - संसार के बीज 'ज्ञानावरणादि' कर्म हैं। ये कर्म भावश्रमण के ध्यानरूप अग्नि से भस्म हो जाते हैं, इसलिए फिर संसाररूप अंकुर किससे हो ? इसलिए भावश्रमण होकर धर्मशुक्ल-ध्यान से कर्मों का नाश करना योग्य है, यह उपदेश है। कोई सर्वथा एकान्ती अन्यथा कहे कि कर्म अनादि है, उसका अन्त भी नहीं है, उसका भी यह निषेध है। बीज अनादि है, वह एक बार दग्ध हो जाने पर पीछे फिर नहीं उगता है, उसी तरह इसे जानना ॥१२६॥

गाथा-१२६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि इस ध्यानरूप अग्नि से संसार के बीज आठों कर्म एकबार दग्ध हो जाने पर पीछे फिर संसार नहीं होता है,... मुक्ति कही न? या फिर से उसे अवतार सही? मोक्ष में से आते हैं न, अवतार धारण करके। राक्षस का जोर बढ़ जाए, भक्तों को कष्ट पड़े। भगवान भी वहाँ से अवतरित होते हैं। ऐसा होगा? क्या अवतारे? वीतरागी पर्याय अवतारे, समय-समय जन्म दे। अवतार को दे। अवतार है कहाँ अब अन्दर? यह बीज भाव मुनि के दग्ध हो जाता है-ऐसा शब्द है न? शब्द पड़ा है। दग्ध। जलता है, ऐसा।

जह बीयम्मि य दड्ढे ण वि रोहइ अंकुरो य महिवीढे ।

तह कम्मबीयदड्ढे भवंकुरो भावसवणाणं ॥१२६॥

‘दड्ढे’ शब्द है न? ‘भावसवणाणं’ इतना वजन है। द्रव्यलिंगी साधु हो, उसे यह वस्तु नहीं होती। पंच महाव्रत पाले, क्रियाकाण्ड करे, वह सब मिथ्यादृष्टि है। कहाँ गया पाँच महाव्रत का चारित्र?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... दिया?

अर्थ :- जैसे पृथ्वीतल पर... ‘महिवीढे’ ऐसा शब्द है न? ‘महिवीढे’ ‘महिवीढे’ अर्थात् पृथ्वी के तल पर, ऐसा शब्द किया है। है न? ‘महि’ अर्थात् पृथ्वी। ‘वीढे’ पृथ्वी के स्थल में, ऐसा। बीज के जल जाने पर... बीज जलते हुए। उसका अंकुर फिर नहीं उगता है,... अंकुर फिर से नहीं होते। जले को क्या हो? वैसे ही भावलिंगी श्रमण के... उत्कृष्ट बात ली है न? श्रमण, जिसे ज्ञान-दर्शन-चारित्र तीन की प्राप्ति हुई है। स्वरूप का ज्ञान, स्वरूप की श्रद्धा और स्वरूप की स्थिरता-आचरण। तीन जिसे एक साथ प्रगट हुए हैं। इसलिए उस भावलिंगी श्रमण के संसार का कर्मरूपी बीज दग्ध होता है,... लो! उसे संसाररूपी कर्म नहीं रहता। इसलिए संसाररूप अंकुर फिर नहीं होता है। इसलिए उसे संसाररूपी अंकुर फिर से नहीं होता है।

भावार्थ :- संसार के बीज ज्ञानावरणादि कर्म हैं। व्यवहार की बात करे क्या ? कर्म, वह संसार का बीज है, ऐसा यहाँ कहा है। वास्तव में संसार का बीज तो मिथ्यात्व है। परन्तु उस मिथ्यात्व का निमित्त है, इसलिए इसे बीज कहा। पाठ ऐसा है सही न, क्या करे ? 'बीयदड्डे भवंकुरो' 'कम्मबीयदड्डे भवंकुरो' ऐसा है न ? पाठ ही यह है। कर्मरूपी बीज को जलाने से। भाषा... इसका अर्थ यह है कि कर्म और कर्म के निमित्त से होता अज्ञान और राग सब कर्म ही है। समझ में आया ? तब कर्म को जलाना, यह भी... उन अरिहन्त में आया या नहीं ? कर्म को हनना, यह ज्ञानी को शोभता नहीं, ऐसा (लोग) कहते हैं। तो फिर यह जलाना वह ?

मुमुक्षु : भेद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद है ? ठीक।

अरिहन्त की बड़ी व्याख्या आयी है। बड़ा लेख आया है। ऐसा कि अरिहन्त में तो कर्म का दुश्मनपना खड़ा होता है। वीतरागी मुनि को यह शोभे ? नामनिक्षेप से भी उनके बैरी कहना शोभे ? इसलिए अर्हताणं चाहिए। इन्द्र आदि महापुरुषों को पूज्य है, ऐसा चाहिए। अरिहन्ता की अपेक्षा अर्हता (चाहिए)। ऐसी बड़ी चर्चा चली है। यह तो अरिहन्ताणं कहो या अर्हताणं कहो। अर्हताणं में इन्द्रों के पूज्य हैं। ऐसा कि उन्हें बैरी कहना। कर्मरूपी बैरी ? वीतराग को बैरी ? यह वीतराग को शोभता नहीं, ऐसा। ऐई ! ऐसी व्यर्थ की खोटी चर्चाएँ खड़ी करती हैं और हम कुछ जानते हैं। यहाँ क्या कहते हैं ?

कर्मरूपी बीज दग्ध होता है। जला डालते हैं, ऐसा कहा। तो किसी को जला डालना यह शोभता है ? अरिहन्त की बड़ी व्याख्या आयी है। मक्खनलालजी ने बड़ा जबरदस्त लेख है। धवल में तो पहला ही श्लोक यह रखा है। णमो अरिहन्ताणं। फिर टीका में दोनों अर्थ किये हैं। अरिहन्ताणं का भी अर्थ किया है और अर्हताणं का भी अर्थ किया है। उसी टीका में। यह है दोनों। परन्तु फिर भी अरिहन्त, यह नहीं शोभता, अरि शब्द आया इसलिए, ऐसा कुछ नहीं है। चार घनघाति कर्म जलाये, टाले, कर्म बैरी है, ऐसा कहा जाता है, लो न। समझ में आया ? यहाँ यही कहा, देखो ! **कर्मरूपी बीज दग्ध होता है, इसलिए संसाररूप अंकुर फिर नहीं होता है।**

ये कर्म भावश्रमण के ध्यानरूप अग्नि से भस्म हो जाते हैं,... लो! जल जाए। भस्म हो जाए का अर्थ? कर्मरूपी अवस्था थी, वह अकर्मरूप अवस्था होती है, इसका नाम जल जाए, ऐसा कहा जाता है। अरे... अरे...! गजब व्याख्या! शब्द को पकड़े, कर्म को जलाया। कर्म अर्थात् रजकणों को आत्मा जलाता होगा? मात्र आत्मा अपने स्वभाव की श्रेणी की शुद्ध धारा में चढ़ा, इसलिए कर्म की अवस्था पलटकर परमाणु की अकर्म अवस्था हुई, यह कर्म को जलाया, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

कहते हैं कि आत्मज्ञानी मुनि, धर्म कब होता है? कि पहले आत्मा आनन्दस्वरूप है, इसका भान होकर अनुभव करे उसे। यह अनुभव उपरान्त भी चारित्र हो, उसकी विशेषता ली है। आत्मा अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का धाम है। यह शरीर तो मिट्टी-जड़ है, धूल है। उसका जाननेवाला ज्ञात हो, ऐसी चीज़ में एक नहीं हुआ। घट को जाननेवाला घट से भिन्न है। घड़ा-घड़ा। उसी प्रकार यह भी एक मिट्टी का घड़ा है। इसका जाननेवाला घड़े को जाननेवाला घड़े से भिन्न है। वह ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप है। इसकी खबर बिना वह चौरासी के अवतार में भटक रहा है।

यहाँ कहते हैं कि अपना भान होने से भावश्रमण होने पर ध्यानरूप अग्नि से भस्म हो जाते हैं,... ध्यान करने से। यह कर्मरूपी बैरी जो परमाणु जड़ है, निश्चय से बैरी अपनी पर्याय है, निमित्त से बात की है। उसमें है, चिद्विलास में। चिद्विलास। निश्चय से बैरी अपनी-अपनी पर्यायें हैं। पर बैरी नहीं होता। विकारी अवस्था, वह निश्चय से अपनी बैरी है। आहाहा! परवस्तु भिन्न है। वह भिन्न (वस्तु) इस आत्मा में आ नहीं जाती। परन्तु भिन्न है, वह मेरी है, ऐसी ममता इसे आती है। यह ममता वह महापाप है। जो चीज़ इसमें नहीं और इसमें वह आयी नहीं, जगत की स्वतन्त्र चीज़रूप से, टिककर, बदलकर अपना स्वतन्त्र (अस्तित्व) बनाये रखती है, उसे अज्ञानी ऐसा मानता है कि यह मेरी है तो इस चीज़ का तो त्याग है उसमें। समझ में आया? मेरी माने तो भी उसका त्याग है। क्योंकि वह उसमें है नहीं। एक अँगुली में दूसरी अँगुली है ही नहीं। इसी प्रकार एक तत्त्व में दूसरा यह जड़ तत्त्व है नहीं। जड़ जड़ में, चैतन्य चैतन्य में। आहाहा! यह भी लोचा पकड़कर बैठ गया अनादि से। भान नहीं होता। यह शरीर, जड़, मिट्टी परमाणु का दल है, यह रजकण का दल। कहते हैं, वह कहीं आत्मा में नहीं

है। उसका तो उसे त्याग ही है। समझ में आया? परन्तु वह मेरे हैं, ऐसी ममता का इसे त्याग नहीं है, इसलिए चार गति में भटकता है। आहाहा! तब कैसे टले? यह बात चलती है।

साधु हो। साधु अर्थात्? यह स्त्री-पुत्र छोड़कर, मुँडकर बैठे, वह साधु, ऐसे साधु हैं? अन्तर में भगवान आत्मा सच्चिदानन्द सत् सत् शाश्वत् रहनेवाली चीज़, वह ज्ञान और आनन्द ऐसा जिसका अविनाशी स्वरूप है। उसकी दशा वर्तमान में भले विकार हो। शरीर मेरा, यह मेरा—ऐसी ममता है, परन्तु वह तो उसकी क्षणिक दशा में है। त्रिकाली स्वभाव में नहीं। क्योंकि दोष, वह त्रिकाली स्वभावरूप नहीं हो सकता। दोष, वह क्षणिक विकृत अवस्था में हो सकता है। न्याय से समझ में आता है? आहाहा! यह क्षणिक अवस्था जो विकार मेरा, मैं उसका। ऐसी क्षणिक अवस्था के पीछे त्रिकाली वस्तु जो आत्मा अविनाशी, अनुत्पन्न और नाशरहित चीज़, उसमें तो पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द से भरपूर वह पदार्थ है। ऐसे आत्मा का ध्यान करने से। है न? ध्यानरूपी अग्नि। आहाहा!

जो अपना स्वभाव वस्तु, अस्ति—है आत्मा। ऐसा उसका स्वभाव ज्ञान-आनन्द है। एक बात। है, वह नित्य है। वह अस्ति है, उसका स्वभाव भी अस्ति अर्थात् है और है, वह नित्य है। कायम आत्मा और कायम उसका आनन्द और ज्ञानस्वभाव कायम है। उसमें एकाग्र होना। आहाहा! भारी बातें, भाई! जिसे जन्म-मरण के दुःख मिटाना हो और जन्म-मरण के अवतार से थका हो, उसे यह धर्म इस प्रकार से होगा, दूसरे प्रकार से नहीं होता। गजब बात, भाई! ऐई! वकील!

कहते हैं, यह प्रभु आत्मा पूर्ण ज्ञान (स्वरूप है)। क्योंकि जो वस्तु है, वह एकरूप है, अखण्ड है और उसका स्वभाव भी ज्ञान, आनन्दादि एकरूप है। पूर्ण है। उसकी वर्तमान दशा-हालत-पर्याय में हालत में भले विकार और दुःख है, वह तो संसार अनादि का है। उसका स्वभाव भी अनादि से है उसमें। वह दुःख की दशा मिटानी हो और आनन्दरूप आत्मा का स्वभाव है, ऐसा होना हो तो जहाँ आनन्द है, उसमें एकाग्र होना। आनन्द तो आत्मा में है, अन्तर में सुख है, बाहर में सुख नहीं। धूल में भी नहीं।

यह मानकर बैठा है कि यह पैसा और हजीरा और... हजीरा अर्थात् क्या ? यह मकान । दो-पाँच-दस लाख के मकान हैं । पैसे हुए ५०-५० लाख या करोड़, दो करोड़ । शरीर सफेद, रूपवान, सब मिट्टी के पिण्ड, वे तो जड़ पर हैं । वह कहाँ तू है ? वे कहाँ तुझमें हैं ? वे कहाँ तेरे कारण से यहाँ हैं ? वे तो उनके कारण से वे हैं । समझ में आया ? गजब बात, भाई ! शान्तिभाई ! ऐसा धर्म किस प्रकार का होगा ? इसने कभी सुना नहीं । इसकी जाति को जानने का प्रयत्न कभी किया नहीं । बाहर की सब चतुराई कर-करके मर गया अनन्त काल से । चौरासी के अवतार कीड़ा और कौआ, कुत्ते में अवतरित-अवतरित होकर इसका कचूमर निकल गया । ऐई ! बराबर होगा यह ? तुम कहो, उसमें ठीक लगे, और ऐसा बोलते हैं । परन्तु तुम्हारे न्याय में आता है या नहीं तुम्हें ? वह न्याय निकालते हो या नहीं वकालत में वहाँ कोर्ट में ? यह कानून ऐसा है और यह कानून ऐसा है । वहाँ तो बड़े आवाज करते होते हैं । पालिताणा में । समझ में आया ? यह कानून है इन वीतराग के, सर्वज्ञ के ।

भाई ! तू आत्मा है न, प्रभु ! तेरा आत्मा है, वह अविनाशी है न । अनुत्पन्न और नाश न हो, ऐसी चीज़ है । है, है और है । उसमें आनन्द और ज्ञान है । जहाँ तू है, वहाँ एकाग्र नहीं और जहाँ नहीं तू, वहाँ एकाग्र है । पुण्य और पाप, शरीर, वाणी और रागादि विकल्प हैं, उनमें तू नहीं है । वे तो विकार हैं । जिसमें तू नहीं, वहाँ एकाग्र है और जहाँ तू है, वहाँ से एकाग्रता तूने छोड़ दी । आहाहा ! समझ में आया ? अब जहाँ तू है, वहाँ एकाग्र हो और जिसमें तू नहीं, वहाँ से एकाग्रता छोड़ दे तो तुझे धर्म होगा और कल्याण होगा । गजब धर्म की व्याख्या, भाई ! वे कहे कि दया पालो तो धर्म होगा, दान करो तो धर्म होगा, भगवान की भक्ति करो तो धर्म होगा । वह तो सब शुभभाव है, पुण्य है; धर्म नहीं । धर्म तो अपूर्व चीज़ है । समझ में आया ? अपूर्व अर्थात् आज से पहले अनन्त काल में जो कुछ किया, वह का वह करे, वह अपूर्व नहीं है । यहाँ तो कहते हैं, यह अपूर्व है ।

भगवान आत्मा, देह का, राग का जाननेवाला, परन्तु वह राग और देहरूप नहीं होनेवाला—ऐसा जिसका अपना निज स्वरूप का स्वभाव, उस स्वभाव में एकाग्र होने से उसके जन्म-मरण टलते हैं । आनन्द की प्राप्ति होती है । यह उपाय है, बापू !

आहाहा! बाकी सब भटकने के रास्ते दुःखी हैं सब, हों! यह पैसेवाले भिखारी हैं। करोड़पति, पाँच करोड़पति, धूलपति होते हैं न बड़े-बड़े? मुझे चाहिए है पर, वही भिखारी है। मुझे नहीं चाहिए कुछ, मेरा आत्मा चाहिए, वह बादशाह है। समझ में आया ?

यहाँ तो दग्ध कर डाले, कहते हैं। आहाहा! जो विकार के, पुण्य-पाप के भाव को अनादि की इसकी दशा में बनाये रखता है, टिकाता है, रक्षा करता है। यह ६० बोल की बात सुनी? भाई, लालचन्दभाई! वहाँ दस बोल की नहीं, श्रीमद् की? ऐसी बात? आये।

मुमुक्षु : आत्मधर्म में आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया था। अभी आया होगा। यह अभी हाथ आया। यह है तो १७ वर्ष पहले। समझ में आया? अपने पुस्तक में था परन्तु उनकी १७ वर्ष की उम्र पहले के लिखे हुए बोल हैं। श्रीमद् ने। श्रीमद् राजचन्द्र, जातिस्मरण हुआ। सात वर्ष में जातिस्मरण-पूर्व भव का ज्ञान था। ऐसे बोल निकले। वहाँ अहमदाबाद देखे, हों! ओहो! कहा, यह तो... थोड़ा अर्थ किया है। उसमें आया है। नहीं? आत्मसिद्धि। है या नहीं? पुस्तक नहीं? पुस्तक यहाँ नहीं? कहाँ गयी? यहाँ रखते हैं न? वह वहाँ हाथ आया था, हों! अहमदाबाद।....

स्वद्रव्य के रक्षक शीघ्रता से होओ। देखो तो सही! शब्द देखो! १७ वर्ष पहले की बात है। १७ वर्ष की उम्र थी श्रीमद् की। श्रीमद् राजचन्द्र। ३३ वर्ष में देह छूट गया। पूर्व भव के संस्कार बहुत थे न! १७ वर्ष में (लिखा है)। पहला शब्द तो यह है। **स्वद्रव्य-अन्य द्रव्य भिन्न-भिन्न देखो।** इतनी व्याख्या करने के पश्चात् **स्वद्रव्य के रक्षक शीघ्रता से होओ।** अर्थात्? कि पहला यह कषाय मन्द करूँ, अमुक करूँ और अमुक करूँ, (ऐसा नहीं)। नवनीतभाई! ... थे? तुम नहीं थे। **स्वद्रव्य के रक्षक शीघ्रता से होओ।** यह और क्या? चैतन्य भगवान अनादि-अनन्त तत्त्व-वस्तु है, उसके रक्षक-रक्षण करनेवाले शीघ्रता से होओ। शीघ्रता करो। काल चला जाता है। ऐ... रतिभाई! पढ़ा यह? आत्मधर्म पढ़ा होगा।

मुमुक्षु : अहमदाबाद...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे थे। वे गये थे वहाँ। फतेपुर, तुम्हारी राह देखी थी लोगों ने, परन्तु नहीं आये।

रक्षक शीघ्रता से होओ। भाषा तो देखो! ओहोहो! यह वस्तु। यह जड़ भिन्न। पुण्य-पाप के भाव हों, दया, दान, व्रत, भक्ति के, वह विकार है। वह तो शुभ पुण्यभाव विकार है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, काम, क्रोध, मान, अभिमान वे सब पापभाव का विकार है। वह भाव आत्मद्रव्य नहीं, वस्तु नहीं। यहाँ तो स्वद्रव्य में स्वद्रव्य की रक्षा करो। राग की नहीं, पर्याय की नहीं, ऐसा कहा। ऐई! वास्तव में तो इससे पहले आत्मसिद्धि में कहा है कि 'जो स्वरूप समझे बिना...' का अर्थ यह द्रव्य है। समझ में आया? पहली लाईन है न?

जो स्वरूप समझे बिना, पाया दुःख अनन्त;

समझाया उन पद नमं, श्री सद्गुरु भगवन्त।

वहाँ ध्वनि तो यह है अन्दर। इस स्वद्रव्य के रक्षक शीघ्रता से होओ। 'त्वरा' शब्द बारम्बार-बहुत बार श्रीमद् स्वयं प्रयोग करते हैं।

स्वद्रव्य वस्तु जो है, शुद्ध चैतन्य अस्ति, अस्ति सत्ता, मौजूदगीवाला पदार्थ है, उसमें अनन्त-अनन्त शक्ति का सत्त्व एकरूप वस्तु, उसका रक्षक। क शब्द प्रयोग किया है न, रक्षक। रक्षा करनेवाला शीघ्रता से हो। बहुत संक्षिप्त भाषा प्रयोग की है। आहाहा! ऐई! वजुभाई! वहाँ तो हजारों लोग अहमदाबाद में थे। ... वे सब आये थे। सब जज आये थे। जज भी व्याख्यान में आते थे। छह-सात-आठ जज। अहमदाबाद के बड़े जज हैं न सब हाईकोर्ट के। अपने कनुभाई वहाँ हैं, वे भी जज हैं। कनुभाई, डाह्याभाई, मोहनभाई राजकोट के सब जज हैं। सब आते थे। वजुभाई, तुम्हारे वढवाणवाले। बड़े जज। ब्रजलाल शाह। भाई एक त्रम्बकभाई है। वे बहुत होशियार गिने जाते हैं। जज, बड़े जज। सब जज। छह-सात जज बैठते थे।

मुमुक्षु : वांकानेरवाले

पूज्य गुरुदेवश्री : वांकानेर। हाँ, वांकानेर लो। सब आये थे। एक बार आये थे।

चलो तो सही उसको कहे। दूसरे जज कहे। तुम सुनो तो सही, तुम सब जज होकर घूमते हो यह, दो-दो हजार का वेतन और तीन-तीन हजार का वेतन महीने में। डाह्या सुन तो सही परन्तु यह क्या कहते हैं वे। एक बार सुन तो सही क्या है? यह देखो भाषा कैसी प्रयोग की है, देखा! पहला रक्षक शब्द है, वहाँ से शुरू किया। भिन्न देखो और फिर रक्षक होओ। ऐसा। हैं! श्रीमद् राजचन्द्र की यह पुस्तक उस भाई ने की है। पुण्यविजय है न? मन्दिरमार्गी साधु, उसने शुद्धिकरण अच्छा किया है। किया है अच्छा, ऐसा लगे।

स्वद्रव्य के व्यापक शीघ्रता से होओ। वस्तु जो है ध्रुव चिदानन्द प्रभु, उसमें पसर-व्यापक। उसमें जा, उसमें फेल। पुण्य-पाप के विकल्प में मत फेल, भगवान! उसमें तुझे दुःख है। आहाहा! शान्तिभाई! परन्तु यह सिर घूम गया हो, उसे अन्दर यह सूझ नहीं पड़ती। नहीं वकील? **स्वद्रव्य के धारक शीघ्रता से होओ।** सर्वत्र 'क' प्रयोग किया है। 'क' में हेतु है। धारक। भगवान पूर्ण स्वरूप द्रव्य है न, उसका धारक हो, उसका धारक हो। इस राग को, पुण्य को, अमुक को धारा है, वह मेरा-मेरा यह धारा है, वह धारक रहने दे। उसमें कुछ दम नहीं है। तू तो दुःखी होने के पन्थ में पड़ा है। समझ में आया? सुखी होने के पन्थ में गति करनी हो तो स्वद्रव्य का धारक हो। श्रीमद् का आया है यह? आत्मधर्म में आया। ऐसा, सर्वत्र आ गया लगता है, पहले।

मुमुक्षु : आत्मधर्म के अन्तिम अंक में आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तिम अंक में आया। वहाँ अहमदाबाद के प्रवचन में आया था। थोड़ा-थोड़ा दिया था। धन्नालालजी वहाँ नहीं थे। नहीं? वे तो फतेपुर थे। थोड़ा कहा था।

स्वद्रव्य के रमक शीघ्रता से होओ। भगवान सच्चिदानन्द प्रभु ऐसी जो वस्तु, उसके रमनेवाले शीघ्रता से होओ। यह रमनेवाले। यह राग और पुण्य-पाप में रमता है, वह तो दुःख का धन्धा है। आहाहा! ऐई! शान्तिभाई! देखो! यह श्रीमद् में ऐसा है। पढ़ते कहाँ हैं? वह अपनी दृष्टि से पढ़कर समझ ले कि हम कुछ समझे हैं। ऐसा है नहीं? धनबाद से है। ऐसा कहते हैं कि द्रव्य वस्तु, त्रिकाली वस्तु में रमनेवाला हो। राग

में और पुण्य-पाप में रमनेवाला तो अनादि से हुआ और चौरासी में भटक मरता है, उसी और उसी में। वहाँ दुःख है, सुख कहीं है नहीं। आहाहा!

स्वद्रव्य के ग्राहक शीघ्रता से होओ। उसका ग्राहक हो—उसे पकड़। स्वद्रव्य भगवान पूर्णानन्द प्रभु का ग्राहक शीघ्रता से होओ। होओ, हों! होओ। **स्वद्रव्य की रक्षकता पर लक्ष्य रखो।** स्वद्रव्य की रक्षकता पर, यहाँ वापस शब्द बदला। रक्षकता पर, रखने के ऊपर शीघ्रता से लक्ष्य दे। वहाँ त्वरा शब्द प्रयोग नहीं किया। अब वापस बदला। **परद्रव्य की धारकता शीघ्रता से तजो।** इन पुण्य और पाप के विकल्पों को, परद्रव्य को, इसकी धारकता शीघ्रता से तजो। छोड़ उसकी बात। भगवान आत्मा परमानन्दस्वरूप है न तेरा। उससे विरुद्ध रागादि परवस्तु है, (उसे) शीघ्रता से तज। शीघ्रता से तज। वायदा नहीं, ऐसा कहते हैं। वायदा करे, वह उसका जिसका जिसे प्रेम लगा वह वायदा करे? कि अभी नहीं... अभी नहीं यह। परद्रव्य की धारकता।

परद्रव्य की रमणता शीघ्रता से तजो। आहाहा! गजब! १७ वर्ष पहले के शब्द हैं, उसमें कहते हैं, अभी सुबोध वाक्य उसका नाम। सवा सौ कहलाये। सवा सौ। उसमें १०४ से वहाँ तक है। यहाँ पुस्तक में होंगे। परन्तु अपने ... सब पुस्तक में होंगे, ऐसा धारकर कुछ पढ़ा हुआ नहीं। मैंने पढ़ा अवश्य होगा... मैं वहाँ चिह्न किया है। परन्तु ख्याल में चर्चा आकर ख्याल में रहा नहीं। चिह्न किया है, कल देखा था। चिह्न तो है मेरा उस लाल शीशपेन का। यहाँ जहाँ हाथ आया, वहाँ ख्याल अधिक आया कि, ओहो! यह तो इसमें माल भरा है अकेला। पर्याय-बर्याय नहीं, ऐसा कहते हैं। इसका धारक हो। परन्तु धारण करती है पर्याय। उसमें धारक हो। **परद्रव्य की धारकता शीघ्रता से तजो।** यह राग और पुण्य-पाप के विकल्पों का ग्रहण करनेवाला शीघ्रता से छोड़। आहाहा! फिर तो ... पहला शब्द है।

यहाँ यही कहते हैं, देखो! भगवान तेरे स्वरूप का ध्यान कर, ध्यान कर। ध्यान तो तूने किया है, संसार का। **भावश्रमण के ध्यानरूप अग्नि से भस्म हो जाते हैं, इसलिए फिर संसाररूप अंकुर किससे हो?** चने का दाना सिंकने के बाद उगे, ऐसा नहीं होता। मिठास दे, तुराश जाए, उगे नहीं। चना-चना। यह नहीं? दालिया कहते हैं न? बनिया कहे नहीं? कि यह दालिया है कुछ? कुछ मिला? पैसा-बैसा माने लोग। धूल में भी

नहीं दालिया वहाँ। सुन न! दालिया तो यहाँ पड़ा है अन्दर। चना कच्चा खाये तो तोरा लगे, बोने से उगे, अग्नि में जलाये, तुराश जाए, मिठास अन्दर में थी वह बाहर आवे। अन्दर में थी। मिठास कहीं अग्नि ने नहीं दी है। अग्नि दे तो कंकड़ सेंककर मिठास लानी चाहिए। मिठास अन्दर थी। बोया उगे नहीं जला हुआ।

इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्तर अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है अन्दर, मिठास भरी है अन्दर में। अज्ञान और राग-द्वेष के कारण तुराश लगती है। मिठास दिखती नहीं। परन्तु मिठास में एकाग्र होने पर वह अज्ञान जल जाता है, मिठास बाहर आती है। जन्म-मरण खड़े टल जाते हैं। आहाहा! गजब बात। पड़खा सरल परन्तु काम भारी कठिन। पड़खा तो सरल हो जाए। दो मिनिट में (समझ जाए)। ऐई! चन्द्रकान्तजी! आहाहा!

इसलिए भावश्रमण होकर धर्म-शुक्लध्यान से कर्मों का नाश करना योग्य है, यह उपदेश है। लो! भावश्रमण हो। अकेले साधु होकर वस्त्र बदले, बाबा होकर बुद्धि बिना के। स्त्री-पुत्र छोड़े और हो गये साधु। धूल भी नहीं, सुन न! अन्दर में आनन्दस्वरूप के भान बिना, अज्ञान टले बिना वह साधु नहीं हो सकता। 'साधति इति साधु।' आनन्दस्वरूप भगवान को अन्तर में साधे, वह साधु। कहते हैं, ऐसे भावसाधु होकर कर्म का नाश करना।

कोई सर्वथा एकान्ती अन्यथा कहे कि कर्म अनादि है, उसका अन्त भी नहीं है,... कोई कहे न भाई, कर्म तो अनादि के हैं, इसलिए उनका अन्त नहीं आता। परन्तु यह चीज़ अनादि का है चने का। उगे और बोबे, उगे और बोबे। अनादि का है। परन्तु एक बार सेंका हो तो? बीज समाप्त हो जाए। फिर कुछ उगे नहीं। इसी प्रकार अनादि के कर्म होने पर भी भान द्वारा जलाकर नाश हो जाते हैं। बीज अनादि है, वह एक बार दग्ध हो जाने पर पीछे फिर नहीं उगता है, उसी प्रकार इसे जानना। लो! चने का बीज अनादि का है और उगा करता है। परन्तु एक बार सेंक डाले तो उगे नहीं। इसी प्रकार अनादि के कर्म हों परन्तु आत्मा के भान द्वारा उन्हें सेंक डाले तो फिर से कर्म उग्र नहीं। आत्मा के आनन्द की प्राप्ति होकर मुक्ति हो। उसे फिर अवतार-फवतार हो नहीं सकता।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१२७

आगे संक्षेप से उपदेश करते हैं -

भावसवणो वि पावइ सुक्खाइं दुहाइं दव्वसवणो य ।
 इय णाउं गुणदोसे भावेण य संजुदो होह ॥१२७॥
 भावश्रमणः अपि प्राप्नोति सुखानि दुःखानि द्रव्यश्रमणश्च ।
 इति ज्ञात्वा गुणदोषान् भावेन च संयुतः भव ॥१२७॥
 पाते सदा सुख भाव-मुनि पर दुःख पाते द्रव्य-मुनि।
 यों जानकर गुण-दोष को हो भाव से संयुक्त ही ॥१२७॥

अर्थ - भावश्रमण तो सुखों को पाता है और द्रव्यश्रमण दुःखों को पाता है, इस प्रकार गुण दोषों को जानकर हे जीव! तू भाव सहित संयमी बन ।

भावार्थ - सम्यग्दर्शनसहित भावश्रमण होता है, वह संसार का अभाव करके सुखों को पाता है और मिथ्यात्वसहित द्रव्यश्रमण भेषमात्र होता है, यह संसार का अभाव नहीं कर सकता है, इसलिए दुःखों को पाता है। अतः उपदेश करते हैं कि दोनों के गुण-दोष जानकर भावसंयमी होना योग्य है, यह सब उपदेश का सार है ॥१२७॥

प्रवचन-१४७, गाथा-१२७ से १३०, सोमवार, मगसर कृष्ण २, दिनांक १४-१२-१९७०

भावपाहुड़ ।

भावसवणो वि पावइ सुक्खाइं दुहाइं दव्वसवणो य ।
 इय णाउं गुणदोसे भावेण य संजुदो होह ॥१२७॥

साधु की मुख्यता से कथन है न? मोक्ष में मुख्य अधिकार चारित्रवन्त का है। इसलिए चारित्रवन्त की व्याख्या रख दी है।

अर्थ - भावश्रमण... अर्थात् कि सम्यग्दर्शनसहित। नीचे (अर्थ) करेंगे यह। भव भ्रमण अर्थात् अकेले द्रव्यलिंगी नहीं। द्रव्यलिंगी तो दुःख पाते हैं। आत्मा का भान,

आत्मा में आनन्द है, ऐसा जहाँ अनुभव नहीं, उसे पर में सुख की इच्छा रहा करती है, वह द्रव्यश्रमण तो दुःख को पाता है। सम्यग्दृष्टि, मेरा आनन्द मुझमें है, ऐसे आनन्द के भानवाला सम्यग्दृष्टि **सुखों को पाता है...** पूर्ण सुख को प्राप्त करता है। और द्रव्यश्रमण **दुःखों को पाता है...** क्योंकि वह तो पुण्य की क्रिया में (पड़ा है)। आत्मा का शान्त आनन्द, अनाकुल स्वभाव का जहाँ अनुभव नहीं, उसे तो उस पुण्य के भाव का ही भोगवटा होता है। आकुलता का। महाव्रत पालन करे, अट्टाईस मूलगुण पाले परन्तु वह तो आकुलता-दुःख है। महाव्रत का पालना दुःख है।

मुमुक्षु : माने तो दुःख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : न हो तो सुख है ? यह कहते हैं। माने तो दुःख और न माने तो भी दुःख है।

आत्मा का स्वभाव आनन्द है, अतीन्द्रिय अमृत। वह अमृतसागर प्रभु, उसके (भान) बिना जितने परिणाम होते हैं, वे सब दुःखरूप आकुलता है। पंच महाव्रत के परिणाम... यहाँ देखो न! द्रव्यश्रमण लिया है न? **द्रव्यश्रमण दुःखों को पाता है...** इसका अर्थ क्या हुआ? कि पंच महाव्रत तो पालता है। **मुनिव्रत धार...** आया न? 'ग्रैवेयक उपजायो पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' इसका अर्थ क्या हुआ? देखो! यही कहते हैं। सम्यग्दर्शन अर्थात् राग, विकल्प से रहित परिपूर्ण आनन्द का धाम आत्मा, उसका जहाँ अनुभव नहीं, उसके आनन्द को धारा नहीं, उसके आनन्द का स्वाद आया नहीं, वे जीव पंच महाव्रत को पाले, वे दुःख को भोगते हैं। ऐई! प्रकाशदासजी! क्या बराबर हो गया? इतना अधिक अन्तर पड़ गया? पंच महाव्रत धर्म चारित्र था और पंच महाव्रत दुःख? आहाहा! है परन्तु, देखो!

द्रव्यश्रमण... अर्थात् पंच महाव्रत पालता है। द्रव्यश्रमण है न? अट्टाईस मूलगुण है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य शरीर का बराबर पाले, परन्तु वह **दुःख को पाता है...** यह पंच महाव्रतादि परिणाम, वह तो आकुलता और दुःखरूप और राग का भाग है। वह राग का दुःख वर्तमान भोगे और भविष्य में भी उस दुःख को ही भोगेगा। आहाहा! गजब काम! समझ में आया? बहुत ही संक्षिप्त बात ले ली। जिसे आत्मा के

आनन्द का अनुभव है, ऐसा जो भावश्रमण, वह वर्तमान सुखी है और पूर्ण सुख को प्राप्त करेगा। द्रव्यश्रमण पंच महाव्रत और अट्टाईस मूलगुण आदि पालता हो। देखो! अट्टाईस मूलगुण पालता हो। लो! तो वह वर्तमान दुःखी है। क्योंकि वह रागभाग है, आकुलता का। उसके फल में भी गति का दुःख है। यह भावपाहुड़ की व्याख्या है।

जिसे आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी रागादि भाग में जिसे प्रीति, रुचि उपजती है, वह दुःख की रुचिवाला है। समझ में आया? आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द, जिसके एक अंश स्वाद में इन्द्र के इन्द्रासन सड़े, सड़े हुए तृण, सड़े हुए कचरे। उकरडा को क्या कहते हैं? ढेर, कचरे का ढेर। इन्द्र के इन्द्रासन कचरे का ढेर (लगता है)। आहाहा! सम्यग्दर्शन में आत्मा का आनन्द आया है, उस आनन्द की गन्ध कहीं तीन काल-तीन लोक में अन्यत्र नहीं है। समझ में आया? इसलिए **भावश्रमण तो सुखों को पाता है और द्रव्यश्रमण दुःखों को पाता है,...** बहुत संक्षिप्त कर डाला। आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार गुणदोषों को जानकर... बहुत संक्षिप्त। इस प्रकार पुण्य और दोष को जानकर, हे जीव! तू भावसहित संयमी बन। तू सम्यग्दर्शनसहित, आत्मा के अनुभवसहित संयम और चारित्रवन्त हो, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? **‘इति ज्ञात्वा गुणदोषान् भावेन च संयुतः भव’** ऐसा है न? भगवान आत्मा ज्ञान के आनन्दवाला, उसका जो भाव, उसे पाने का शुद्धभाव, उस शुद्धभावसहित हो तो वह शुद्धभाव वर्तमान सुख का कारण है और भविष्य में भी सुख का कारण है।

भावार्थ :- सम्यग्दर्शनसहित भावश्रमण होता है,... लो, बहुत संक्षिप्त किया। तो फिर समकित्ती हो, वह साधु हो, ऐसा कहा न? परन्तु यहाँ तो साधु हो, उसे समकित होता है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? आचारांग का एक टुकड़ा है न? उसकी बहुत चर्चा चली थी। इस शब्द के साथ मिलान आया। आचारांग में एक शब्द है। ... सम्यग्दर्शन को देख, वह मुनि को देख, मुनि को देख वह सम्यग्दर्शन को देख, ऐसा आता है। श्रीमद् में आता है टुकड़ा (वाक्य)। ... जो सम्यग्दर्शन देख, उसे चारित्र देख। इसका अर्थ यह कि जहाँ चारित्र होता है, वहाँ सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा। यह सूत्र में है। और ऐसा भी कहा न? **‘आत्मज्ञान वहाँ मुनिपना हो, वे सच्चे गुरु होय।’** ऐसा उसमें

कहा। नहीं तो मुनिपना तो चारित्रसहित है। आत्मज्ञान तो चौथे गुणस्थान में होता है। विशेष है। परन्तु उसे अन्दर ऐसा कहने का आशय है कि जहाँ चारित्रवन्त सन्त हों, उन्हें सम्यग्दर्शन होता ही है। सम्यग्दर्शन बिना उन्हें चारित्र नहीं हो सकता। समझ में आया? मात्र पंच महाव्रतादि धारण करे, अट्टाईस मूलगुण धारण करे, वह सम्यग्दर्शन बिना तो उसे व्यवहारचारित्र का नाम भी नहीं दिया जाता। व्यवहारचारित्र का, हों! निश्चयचारित्र तो नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **सम्यग्दर्शनसहित भावश्रमण होता है...** सम्यग्दर्शन ही साधु है, ऐसा नहीं परन्तु सम्यग्दर्शनसहित हो, वह भावश्रमण होता है। ऐसा लिखा है न? सम्यग्दृष्टि, वह भावश्रमण है, ऐसा नहीं, परन्तु सम्यग्दर्शनसहित हो, वह भावश्रमण होता है, ऐसा। समझ में आया? **वह संसार का अभाव करके सुख को पाता है...** जहाँ वस्तु ही आत्मा परम आनन्द और अनाकुलस्वरूप है, ऐसा जहाँ भाव दृष्टि में आया, उस सुखरूप का स्वाद उसने जाना, उसे तो संसार का अभाव हो जानेवाला है। क्योंकि उसकी कहीं सुखबुद्धि है नहीं। स्वर्गादि में कहीं सुखबुद्धि है नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को भी कहीं सुखबुद्धि नहीं है। परन्तु इसे-मुनि को तो सुखबुद्धि और अस्थिरता आसक्ति भी टल गयी है। सम्यग्दृष्टि को भी सुखबुद्धि तो कहीं आत्मा के अतिरिक्त भासित नहीं होती। अट्टाईस मूलगुण में सुखबुद्धि नहीं होती तो फिर विषय में सुखबुद्धि तो धर्मी को हो नहीं सकती। राग है, दुःखरूप है - ऐसा भासित होता है। उसमें सुखपना और प्रीतिपना उपजता नहीं।

इसलिए भावश्रमण सम्यग्दर्शनसहित **वह संसार का अभाव करके सुख को पाता है...** वह संक्षिप्त भाषा थी, उसका थोड़ा इतना किया। और मिथ्यात्व... उसमें भावश्रमण था न? यह समकितसहित लिया। वह द्रव्यश्रमण है न, वह मिथ्यात्वसहित लिया। ऐसा स्पष्टीकरण किया। **मिथ्यात्वसहित द्रव्यश्रमण वेशमात्र होता है...** जिसे निर्विकल्प आत्मा का आनन्द सम्यग्दर्शन में आया नहीं और सम्यग्दर्शन नहीं, वह मिथ्यादृष्टि **द्रव्यश्रमण वेशमात्र होता है...** पंच महाव्रतादि हों, वह तो वेश है।

मुमुक्षु : द्रव्यश्रमण को भी श्रमण नाम तो मिल गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिल गया । नाम मिला । नाम श्रमण । नामनिक्षेप हुआ । नामनिक्षेप हुआ, ऐसा कहते हैं । द्रव्यश्रमण तो नाम आया अर्थात् खोटा श्रमण तो नाम आया, ऐसा । द्रव्यश्रमण का अर्थ ही खोटा श्रमण किया ।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य श्रमण कहते हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, श्रमण कहा न ? परन्तु द्रव्यश्रमण कहा न ? 'दुहाड़' देखो ! पाठ क्या है ? द्रव्यश्रमण है । आत्मा के आनन्द के अनुभव बिना के साधु द्रव्यश्रमण है । आहाहा ! जिसे इस सम्यग्दर्शन की कीमत ही नहीं जगत को कि क्या चीज़ है । और यह पाप बाहर के दूसरे पाप छूटे, माना और यह किया दया, दान, व्रत । महाप्रभु अकेला आनन्द का धाम, वह आनन्द का झरना 'णाण सलिलं' नहीं आया कल ? ज्ञानरूपी जल मीठा निर्मल आनन्द का पी और सुखी हो, भाई ! अन्यत्र कहीं सुख नहीं है । इसका नाम धर्म है । आत्मा का आनन्द, वह आत्मा का स्वभाव धर्म है । उस धर्म में एकाग्र होने से आनन्द का भान आवे, उसे प्रगट धर्म कहा जाता है । आहाहा ! समझ में आया ?

मिथ्यात्वसहित द्रव्यश्रमण वेशमात्र होता है, यह संसार का अभाव नहीं कर सकता है,... उस राग को ही स्वयं अपना स्वरूप और राग को ही धर्म मानता है, पंच महाव्रत के परिणाम को ही अज्ञानी धर्म मानता है । मिथ्यात्वसहित है । वह संसार के दुःख का अभाव नहीं करेगा । वह संसार का अभाव नहीं कर सकेगा । **इसलिए दुःखों को पाता है । अतः उपदेश करते हैं कि दोनों के गुण-दोष जानकर...** दोनों को मिलान कर अब, तुझे कहते हैं । आत्मा के आनन्द का भान है और आनन्दबुद्धि आत्मा में हुई है । उसे रागबुद्धि में आनन्दबुद्धि-सुखबुद्धि उड़ गयी है, वह सुख को पाता है । और जिसे राग में सुखबुद्धि है, आत्मा के आनन्द में सुखबुद्धि हुई नहीं है, वह दुःख को पाता है । स्पष्ट बात है । समझ में आया ? इसका अर्थ यह है कि जहाँ राग में भी सुखबुद्धि है, वह मिथ्यात्वभाव है । शुभभाव है, उसमें सुखबुद्धि है, वह मुझे लाभदायी है, यह शुभ करते-करते आत्मा को—दुःख करते-करते आत्मा को धर्म होगा । धर्म अर्थात् सुख होगा । (ऐसी मान्यता) मिथ्यात्व है, कहते हैं । **दोनों का गुण-दोष जानकर भावसंयमी होना योग्य है, यह सब उपदेश का सार है । लो ! बहुत संक्षेप किया है ।**

गाथा-१२८

आगे फिर भी इसी का उपदेश अर्थरूप संक्षेप से कहते हैं -

तित्थयरगणहराङ्गं अब्भुदयपरंपराङ्गं सोक्खाङ्गं ।
 पावंति भावसहिया संखेवि जिणेहिं वज्जरियं ॥१२८॥
 तीर्थकरगणधरादीनि अभ्युदयपरंपराणि सौख्यानि ।
 प्राप्नुवंति भावश्रमणाः संक्षेपेण जिनैः भणितम् ॥१२८॥
 सब अभ्युदय की संतति गणदेव तीर्थकरों के ।
 सुख भाव-मुनि ही प्राप्त करते जिन-वचन संक्षिप्त ये ॥१२८॥

अर्थ - जो भावसहित मुनि हैं, वे अभ्युदयसहित तीर्थकर-गणधर आदि पदवी के सुखों को पाते हैं, यह संक्षेप से कहा है ।

भावार्थ - तीर्थकर गणधर चक्रवर्ती आदि पदों के सुख बड़े अभ्युदयसहित हैं, उनको भावसहित सम्यग्दृष्टि मुनि पाते हैं । यह सब उपदेश का संक्षेप से उपदेश कहा है, इसलिए भाव-सहित मुनि होना योग्य है ॥१२८॥

गाथा-१२८ पर प्रवचन

आगे फिर भी इसी का उपदेश अर्थरूप संक्षेप से कहते हैं :-

तित्थयरगणहराङ्गं अब्भुदयपरंपराङ्गं सोक्खाङ्गं ।
 पावंति भावसहिया संखेवि जिणेहिं वज्जरियं ॥१२८॥

लो! संक्षेप में भगवान ऐसा कहते हैं कि परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव संक्षेप में ऐसा फरमाते हैं कि जो भावसहित मुनि हैं... भाव अर्थात् समकितसहित । वे अभ्युदयसहित... बाहर के अभ्युदय अर्थात् पूजा की सब सामग्री तीर्थकर की इत्यादि बाहर की । तीर्थकर-गणधर आदि पदवी के सुखों को पाते हैं,... तीर्थकर का सुख । आनन्द का सुख, हों! उस समवसरण की उसकी यह बात नहीं है । ऐसी बाहर की

ऋद्धि हो और आत्मा के आनन्द को प्राप्त हो ।

तीर्थकर-गणधर आदि पदवी... बलदेव, चक्रवर्ती, इन्द्र सबकी ऊँची पदवी । सुखों को पाते हैं... सम्यग्दृष्टि को ही ऐसी पदवी होती है । तीर्थकरपना, गणधरपना वह भी सब पदवी सम्यग्दृष्टि को होती है, ऐसा कहते हैं । इन्द्रपद भी सम्यग्दृष्टि को ही होता है । संक्षेप से कहा है । यह तीर्थकर-गणधर आदि पदवी सुखों को पाते हैं, संक्षेप से कहा है । लो ! बहुत संक्षिप्त में कहा है, कहते हैं । भाई ! आहाहा ! करने का तो तेरे आत्मा के आनन्द में प्रेम और रुचि करनी, यह करने का है । लाख शास्त्र पढ़े और वाँचन करे । करना तो यह है । पर में सुखबुद्धि है, उसे टालकर, स्व में सुखबुद्धि करना, यह अपूर्व बात है, ऐसा यहाँ कहते हैं ।

मुमुक्षु : मुनि के लिये कहा ।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि, समकित्ती सभी जीवों के लिये है । यह मुनि को लक्ष्यकर बात है मुख्यपने । सब जीवों के लिये बात है ।

कहते हैं कि यह तीर्थकर और गणधर आदि पदवी के सुख को पावे, वह 'वज्जरियं' संक्षेप में वीतराग ने कहा है, ऐसा । चौथा पद है न ? बहुत संक्षिप्त में परमात्मा की वाणी में (ऐसा आया है) । आहाहा ! राग की रुचि के पक्ष में चढ़ा है, वह स्वभाव के आनन्द की रुचि में आ जा, बस, यह करना कहते हैं । लो ! ऐई ! वजुभाई ! बहुत संक्षिप्त । अनादि से पुण्य के परिणाम, वे मुझे हितकर हैं, सुखकर हैं, कारण हैं—ऐसी उसमें सुखबुद्धि रही है । राग के भोग की बुद्धि रही है । उसे आनन्द के पक्ष में चढ़कर आनन्द के भोग की बुद्धि कर । आहाहा ! ऐसा भगवान ने संक्षेप में यह कहा है । ओहोहो ! उनके बारह अंग में यह । बारह अंग भगवान की वाणी में आये, उन बारह अंग में यह कहा है । स्वरूप का अनुभव कर और राग का अनुभव दृष्टि में छोड़ । आहाहा ! कहो, समझ में आया ?

तीर्थकर-गणधर-चक्रवर्ती... देखो ! आदि पदों के सुख बड़े अभ्युदयसहित हैं,... बाहर की सामग्री पुण्य आदि का संयोग बहुत हो । तीर्थकर का गुणगान किया है । उसमें बहुत महिमा की है । ओहोहो ! टीका : वह कहे छत्र ढले, ऐसा हो, चामर ढाले,

परन्तु उससे भगवान को क्या है ? वह तो बाहर की ऋद्धि है। उसे तो आत्मा के आनन्द का अनुभव है। बाहर में भी वह पुण्य का उदय भी साथ में है न इतना ? ऐसे पुण्य के फलसहित तीर्थकर-गणधर आदि के सुख को पावे।

उनको भावसहित सम्यग्दृष्टि मुनि पाते हैं। देखो ! उनको भावसहित सम्यग्दृष्टि मुनि पाते हैं। आहाहा ! भावसहित अर्थात् अन्तर में, ... भावपाहुड़ है न ? सम्यग्दर्शन जो भावशुद्ध, ऐसे भावसहित हो, वह शुद्धभाव है। त्रिकाली शुद्धभाव का अनुभव, उसकी प्रतीति, वह शुद्धभाव है। उस शुद्धभावसहित साधु होते हैं। वे सुख को पाते हैं। यह सब उपदेश का संक्षेप से उपदेश कहा है... लो ! ओहोहो ! बहुत संक्षिप्त में। ऐई ! प्रकाशदासजी ! क्या है ? सब फेरफार बहुत हो गया। हो, वे कहते हैं, पंच महाव्रत भगवान ने पालन किये थे, कुन्दकुन्दाचार्य ने पालन किये थे, ऐसा आता है अखबार में। तुम कहते हो कि हेय है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि है मिथ्यात्वसहित। पंच महाव्रत को पालन करे, वह तो मिथ्यात्व है। पाले किसे ? जाने। वे दुःखरूप परिणाम आते हैं ऐसे। अशुभ से बचने को उस भूमिका में होते हैं। जाने, परन्तु उन्हें ही चारित्र माने और धर्म माने (तो) ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

यह सब उपदेश का संक्षेप से उपदेश कहा है... लो ! सब उपदेश का सार... सार... सार। मक्खन लाकर रखा है मुख के सामने। मक्खन लाकर रखा मुँह के सामने। आहाहा ! प्रभु ! तू आनन्द है। अतीन्द्रिय महापदार्थ, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम। बस ! उस आनन्द की रुचि कर और उस आनन्द का अनुभव कर। राग की रुचि और राग का अनुभव छोड़। यह संक्षिप्त में बारह अंग का (सार) है। फिर चाहे जितना विस्तार करके समझाना हो। समझ में आया ? जानपना कम हो, विशेष न भी हो, आवे नहीं इसका कुछ नहीं। कहो, कान्तिभाई ! है ? बहुत संक्षिप्त। सब सिरपच्ची मिटी। यह आया, न आया। अब छोड़ न ! शान्तिभाई ! आहाहा ! चले, चले, यह सब संसार है। यह इसे करना है। जानपने में सब फेरफार हो गया। अब भाई ऐसा भी होता है, ऐसा कहते हैं।

यह आत्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है अकेला। शकरकन्द, शकरकन्द समझते हो न? यह शकरकन्द नहीं होता? वह शकरकन्द है, यह आनन्द का कन्द है। गाजर को भी कुछ कहते हैं। कन्द कहते हैं? क्या कहते हैं? भाषा है गाजर की दूसरी। गाजर नहीं होती गाजर? ऐसी भाषा आती है। कुछ दूसरी मीठी भाषा आती है। ऊँची गाजर आती है बहुत लाल। उसे कुछ दूसरी भाषा होती है। ऐसा कुछ होगा मस्तिष्क में। यह शकरकन्द, आनन्दकन्द। शकरकन्द लो! और शकरकन्द, साकरकन्द, साकरकोला। लो, यह सब साकर शब्द आये। साकरकोला नहीं? भगवान तो साकरकोला का बड़ा वृक्ष है। आहाहा!

श्रीमद् में नहीं आता? एक जगह आता है। लोगों ने तो नारियल की महिमा कर डाली परन्तु यहाँ तो पूरी अमृत की बेलड़ी है। साकर की बूँद की महिमा कर डाली। आता है। आहाहा! साकर की बूँद की महिमा कर डाली। अब यहाँ तो पूरी अमृत की बेलड़ी रसबस है, भगवान आत्मा। आहाहा! उसकी रुचि और उसका अनुभव। बस, हो गया कहते हैं। वह सुख के पन्थ में चढ़ गया। और उसे सुख पूरा तीर्थकर-गणधर आदि का मिलेगा, ऐसा कहते हैं।

इसलिए भावसहित मुनि होना योग्य है। अब आचार्य जरा हर्ष में आकर प्रशंसा करते हैं। धन्य है मुनि तुझे धन्य है! मैं भी वन्दन करता हूँ, देखो! आहाहा!



गाथा-१२९

आगे आचार्य कहते हैं कि जो भावश्रमण हैं, उनको धन्य है, उनको हमारा नमस्कार हो -

ते धण्णा ताण णमो दंसणवरणाणचरणसुद्धाणं ।

भावसहियाण णिच्चं तिविहेण पणट्टमायाणं ॥१२९॥

ते धन्याः तेभ्यः नमः दर्शनवरज्ञानचरणशुद्धेभ्यः ।

भावसहितेभ्यः नित्यं त्रिविधेन प्रणष्टमायेभ्यः ॥१२९॥

जो भाव-युत उत्कृष्ट दर्शन ज्ञान चारित्र शुद्ध हैं।

माया-विना वे धन्य त्रिविधा नित्य नमन करें उन्हें॥१२९॥

अर्थ - आचार्य कहते हैं कि जो मुनि सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ (विशिष्ट) ज्ञान और निर्दोष चारित्र इनसे शुद्ध है, इसीलिए भाव सहित हैं और प्रणष्ट हो गई है माया अर्थात् कपट परिणाम जिनके, ऐसे वे धन्य हैं। उनके लिए हमारा मन-वचन-काय से सदा नमस्कार हो।

भावार्थ - भावलिंगियों में जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र से शुद्ध है, उनके प्रति आचार्य की भक्ति उत्पन्न हुई है, इसलिए उनको धन्य कह कर नमस्कार किया है वह युक्त है, जिनके मोक्षमार्ग में अनुराग है, उनमें मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति में प्रधानता दीखती है, उनको नमस्कार करें ही करें॥१२९॥

गाथा-१२९ पर प्रवचन

आगे आचार्य कहते हैं कि जो भावश्रमण हैं, उनको धन्य है, उनको हमारा नमस्कार हों :- लो ठीक! आहाहा! जिसे कुन्दकुन्दाचार्य नमस्कार करते हैं। भावश्रमणिक कैसे श्रमण होते हैं! पहले तो उसमें आया कि णमो लोए सव्वसाहूणं। गणधर नमस्कार करते हैं। दूसरे पद में है। यह तीसरे पद में कुन्दकुन्दाचार्य हैं। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि भाई! आहाहा! बहुत से कहते हैं कि तुम मुनि को नहीं मानते। भगवान! मुनि को न माने? पंच परमेष्ठी तो परमेश्वर है। जिसे कुन्दकुन्दाचार्य नमस्कार करे। मुनि होना चाहिए न! मुनि न हो और नाम मुनि दे तो मुनि तो कुल है यहाँ सिहोर में एक नहीं? ... उसकी है। मुनि की ... है। एक भाई थे। देखे थे। पतले ... गुजर गये। उनकी ... मुनि कही। मुनि की ... सिहोर में। तो मुनि हो गये? वह तो पहिचानने की पद्धति है।

यह तो कहते हैं...

ते धण्णा ताण णमो दंसणवरणाणचरणसुद्धाणं।

भावसहियाण णिच्चं तिविहेण पणट्टमायाणं॥१२९॥

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि जो मुनि सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ... 'वर' है न अन्दर ? 'दंसणवर' जिसे सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है। और 'णाण' विशेष ज्ञान है, ऐसा। दोनों को ले लिया। 'दंसणवर' और 'णाण', ऐसा। वापस विशेष ज्ञान है। ज्ञान भी स्वसंवेदन विशेष—खास है। अकेला जानपना, वह नहीं। विशेष स्वसंवेदन ज्ञान खास है, ऐसा। 'दंसणवर' विशेष ज्ञान। यह वर का (अर्थ) विशेष ज्ञान लेना। और 'चरणसुद्धाणं' और निर्दोष चारित्र इनसे शुद्ध हैं... आहाहा! धन्य अवतार! कहते हैं, भाई! जिसने जन्मना जाना और जन्मकर मरना जाना, अभाव करके मोक्ष हुआ, उसने जन्मना जाना और जीना जाना। आहाहा! जन्मना जाना अर्थात् धर्मजन्म, हों! यह शरीर जन्म नहीं। अणगारी जाया। आता है न? अणगारी जाया आता है। अणगाररूपी जन्म हुआ। अणगार मुनिपने का जन्म हुआ। आहाहा! अणगार के पुत्र हुए, ऐसा आता है। अणगारी जाया। अणगार के पुत्र हुए। पिता के पुत्र तो होते थे बहुत बार-अनन्त बार। यह तो अणगार के पुत्र हुए, अणगारपना जिसे प्रगट हुआ, ऐसा।

अहो! मुनि कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि धन्य है! श्रेष्ठ (विशिष्ट) ज्ञान और निर्दोष चारित्र इनसे शुद्ध हैं, इसलिए भावसहित हैं... इन तीन के। इसलिए भावसहित हैं... सम्यग्दर्शन प्रधान है। खास स्वसंवेदन ज्ञान है और जिसका शुद्ध निर्मल अरागी वीतरागी चारित्र है। आहाहा! और प्रणष्ट हो गयी है माया अर्थात् कपट परिणाम जिनके ऐसे हैं... कपट के परिणाम तो प्रणष्ट—गन्ध रही नहीं, नाश कर डाले हैं। आहाहा! ऐसे सन्त सरल सम्यग्दर्शन 'वर' सम्यग्ज्ञान विशिष्ट, चारित्र जिसका शुद्ध आहाहा! धन्य अवतार! समझ में आया? ऐसा जो भाव, वह और प्रणष्ट ऐसे हैं... ऐसे हैं। अस्ति-नास्ति की। माया का नाश हुआ है और पवित्र सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जिसे प्रगट हुए हैं। धन्य है! उस जीवन को धन्य है! ऐसे पहले धन्य कहकर फिर वन्दन करते हैं। आहाहा!

धन्य हैं। इनके लिये हमारा मन-वचन-काया से सदा नमस्कार हो। 'णिच्चं' शब्द है न? 'णिच्चं' पड़ा है। नित्य। आहाहा! आचार्य भी आह्लाद में आ गये हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द जहाँ अन्दर से उछला है। जैसे समुद्र के किनारे ज्वार आवे, वैसे चारित्रवन्त को तो पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द उछलकर बाहर भभक मारता है,

छलक मारता है। आहाहा! समझ में आया? घहराता है। समुद्र घहराता (गर्जता) नहीं? बहुत जोर में आवे तो समुद्र घहराता है। आहाहा! इसी प्रकार चैतन्य समुद्र आनन्द से उमड़ता है, कहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न। हाँ। वह।

कहते हैं कि अहो! मुनि! एक तो तुझे धन्य कहते हैं और दूसरा हमारा तीन-तीन कोटि से तुझे नमस्कार, वह भी सदा नमस्कार। भाषा कितनी ली! ओहोहो! जिसे कुन्दकुन्दाचार्य धन्य कहकर त्रिकोटि से सदा नमस्कार करे, उसे कौन न माने? समझ में आया? आहाहा! ऐसा। और इन लोगों को ऐसा कि तुम हमारे मुनि को मानते नहीं। बापू! तेरी दृष्टि से तू कल्पे, वह कहीं ऐसा हो जाए? ऐसा चले? वीतराग की दृष्टि होना चाहिए, बापू! उसे अपने को अभी सुख प्रगट हुआ नहीं, सुख के पन्थ में नहीं और उसे तू जबरदस्ती ऐसा मान बैठे कि यह मुनि हैं, इसे वन्दन करो। बापू! वह स्वयं ही अपने राग का आदर करनेवाला है। अब वह आदर करनेवाले का आदर करना किस प्रकार बने? समझ में आया?

मुमुक्षु : नमस्कार।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बापू! जिसे अतीन्द्रिय आनन्द उछल गया है, प्रचुर स्वसंवेदन। आहाहा! पंच महाव्रत के विकल्प का कर्ता नहीं। जिसे ज्ञान में यह ज्ञात हो जाता है कि यह चीज है इतना। ऐसी जिसकी दशा, उस सम्यग्दर्शनसहित स्वसंवेदन का ज्ञान और स्वरूप की रमणता का चारित्र। धन्य अवतार! धन्य अवतार! सफल किया उसने अवतार। मुनि कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, देखो! आहाहा! उस मुनि को कौन न माने? उस साधु को कौन न वन्दन करे? उस साधु को कौन न सत्कार करे? भाई! आहाहा! समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य जैसे भी अन्दर से उछल गये हैं, देखो न! धन्य है। 'ते धण्णा ताण णमो' लो!

उनके लिये... हिन्दी में ऐसा आवे न? उनके लिये। णमो अरिहन्ताणं। अरिहन्त के अर्थ में नमस्कार। अर्थे अर्थात्... **हमारा मन-वचन...** है? उसे नमो। ऐसा फिर

उसमें से निकाला न हमारे। उसे नमो। अर्थात् कौन नमता है? कि हम। ऐसा निकाला। हमारा शब्द नहीं पाठ में। वह अर्थ हुआ न? 'ते धण्णा ताण णमो' 'णिच्चं तिविहेण पणडुमायाणं' अर्थात् हमारा वन्दन हो।

भावार्थ :- देखो! इस अष्टपाहुड़ में कितनी बात है! कुन्दकुन्दाचार्य का तो ग्रन्थ ही अलग प्रकार का! कोई भी। यह सब श्लोक संगमरमर में उत्कीर्ण हो जानेवाले हैं। हृदय में उत्कीर्ण करने की बात है। हैं! बात तो यह है। आहाहा! शब्द नहीं, भाव। शब्द तो जड़ हैं। आहाहा! भाई! तू कहाँ है? मैं तो आनन्द में हूँ। तो फिर इस दुःख में प्रेम कहाँ से तुझे आया? दुःख के भाव में उल्लास तुझे कैसे आता है? यदि आनन्द में हो तो। और आनन्द में नहीं तो तुझे दुःख में उल्लास आता है। तो वह तो तू दुःख में है। ऐसे को मुनि कैसे कहा जाए और उसे धन्य और वन्दन कैसे करें? वह दुःख में स्वयं है, दुःख का उपार्जन करता है, वह तो दुःखी होगा और उसका आदर कैसे किया जाए? देखो!

भावार्थ :- भावलिङ्गियों में जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र से शुद्ध हैं, उनके प्रति आचार्य को भक्ति उत्पन्न हुई है, ... आहाहा! शरीर को नहीं देखते कि उसका शरीर कैसा है? उसके विकल्प कैसे हैं, किस प्रकार के, वह नहीं। उसका दर्शन-ज्ञान और चारित्र तीन लिये हैं न? उसके महाव्रत लिये विकल्प? वन्दन तो गुण को होगा या वन्दन उस राग को होगा? न्याय समझ में आता है। उसे ऐसा कहा है कि ऐसे देखो कि हे मुनि! तेरा जो सम्यग्दर्शन वर और स्वसंवेदन खास ज्ञान, विशिष्ट ज्ञान, ऐसा लिखा है न? विशिष्ट ज्ञान। जानपने का अकेला नहीं, ज्ञान का वेदन ऐसा हुआ है और चारित्र की शुद्धता, उसे मेरा वन्दन। महाव्रत को हमारा वन्दन है? महाव्रत को तो तू भी आदरता नहीं तो मैं किसका आदर करूँ? समझ में आया? आहाहा! यह मुनि के शरीर को नहीं देखकर, ऐसा तो यहाँ आया था। उसकी वाणी को देखकर नहीं कि वाणी उसकी कैसी निकलती है। उसके पंच महाव्रत के परिणाम को नहीं देखते। आहाहा! वाह रे भगवान! ऐई! कान्तिभाई! है? आहाहा! उसका भगवान आत्मा पवित्रता में कैसे प्रगट हुआ है? बस, उसे देखकर, उसे धन्य और उसे वन्दन करते हैं। आहाहा! बापू! यह तो वीतराग के मार्ग के भाव हैं। उसमें कोई पक्षपात करके बात करे, वह कुछ बात चले नहीं, बापू!

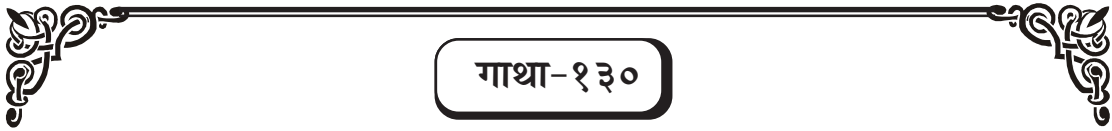
भाई! बात तो ऐसी है, भाई! आहाहा! यह तो आनन्द के रास्ते चढ़ने की बातों में दूसरा कैसे होगा अन्दर, भाई! समझ में आया? ओहोहो!

कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं), 'ते धण्णा ताण णमो' धन्य है, धन्य अवतार, धन्य जीवन तेरा! भाई! स्वयं को तो हुआ है। परन्तु ऐसे हों, वे हमारे सच्चे साधर्मी हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सब हमारे साधर्मी हैं, हों! एक होड़ से आनन्द का अनुभव करनेवाले, एक थाली से, एक मार्ग में सब हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक जाति का ही माल खानेवाले हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द की प्रतीत और अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन। इसलिए उसे कहते हैं, तुझे नमस्कार करते हैं। ... होवे तो नमस्कार न करे। अपने से छोटे साधु हों तो ऐसे नमस्कार न करे परन्तु इस प्रकार से करे। उसमें भी ... है कुछ, हों! इस साधु में। ऐसा करे। ऐसा कुछ है। व्यवहार में आता है ऐसा। ... बड़ा, हों! ऐसे चरणवन्दन न करे परन्तु ऐसा करे ऐसा कुछ है। चारित्रसार में। छोटे साधु जब चरणवन्दन करे, तब स्वयं जरा कुछ ऐसा उस मोरपिच्छी से कुछ (करे), ऐसा कुछ है, हों! बहुत याद नहीं। देखो! अभी ऐसा रिवाज है उन लोगों में।

भावलिङ्गियों में जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र से शुद्ध है, उनके प्रति आचार्य को भक्ति उत्पन्न हुई है, ... देखो! महाव्रत पालते हैं और नग्न रहते हैं, इसलिए नहीं। समझ में आया? भावलिङ्गियों में जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र से शुद्ध हैं... और कोई ऐसा कहे कि भावलिङ्ग में फिर शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकार होंगे? ऐई! परन्तु इसका अर्थ यह हुआ। अपनी ... शब्द हो उसके पीछे। भावलिङ्गी को, भावलिङ्ग में। दर्शन-ज्ञान-चारित्र से शुद्ध है... इतना। ऐसा कि भावलिङ्गी में और कोई शुद्ध है और कोई (नहीं), ऐसा नहीं है। आहाहा! भावलिङ्गियों में जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र से शुद्ध है, उनके प्रति आचार्य को भक्ति उत्पन्न हुई है, ... यह विकल्प है न? यह विकल्प भी आता है। समझ में आया?

इसलिए उनको धन्य कहकर नमस्कार किया है... देखो! शब्दार्थ भी जैसा है, वैसा अर्थ किया। धन्य कहकर नमस्कार... ऐसा। पाठ में ऐसा कहा 'धण्णा ताण णमो' पण्डित जयचन्द्रजी ने ऊपर भी बहुत अच्छा भावार्थ किया है। बहुत सरस समयसार में भी पण्डित जयचन्द्रजी ने ... पण्डित ऐसे थे गृहस्थाश्रम में, देखो, ओहोहो! कहते हैं,

उनको धन्य कहकर नमस्कार किया है, वह युक्त है, जिनके मोक्षमार्ग में अनुराग है, उनमें मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति में प्रधानता दिखती है,... देखो! जिसकी मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्विकल्प, ऐसे मार्ग में जिनकी प्रवृत्ति है, परिणति है। वे दूसरे के ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्रवृत्ति की प्रधानता देखकर, मुख्यता यह देखकर उनको नमस्कार करे ही करे। आहाहा! समझ में आया ?



गाथा-१३०

आगे कहते हैं कि जो भावश्रमण हैं, वे देवादिक की ऋद्धि देखकर मोह को प्राप्त नहीं होते हैं -

इड्ढमतुलं विउव्विय किण्णरकिंपुरिसअमरखयरेहिं ।
तेहिं वि ण जाइ मोहं जिणभावणभाविओ धीरो ॥१३०॥

ऋद्धिमतुलां विकुर्वद्धिः^१ किंनरकिंपुरुषामरखचरैः ।
तैरपि न याति मोहं जिणभावनाभावितः धीरः ॥१३०॥

जिन-भावना-भावित दृढ़ी किन्नर पुरुष सुर खगों की।
विक्रिया विस्तृत अतुल ऋद्धि देख मोहित हो नहीं॥१३०॥

अर्थ - जिनभावना (सम्यक्त्व भावना) से वासित जीव किंनर, किंपुरुष, देव, कल्पवासी देव और विद्याधर इनसे विक्रियारूप विस्तार की गई अतुल ऋद्धियों से मोह को प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव कैसा है ? धीर है, दृढबुद्धि है अर्थात् निःशंकित अंग का धारक है।

भावार्थ - जिसके जिनसम्यक्त्व दृढ़ है उसके संसार की ऋद्धि तृणवत् है, उनके तो परमार्थसुख की भावना है, विनाशीक ऋद्धि की वांछा क्यों हो ? ॥१३०॥

१. संस्कृत मुद्रित प्रति में 'विकृतां' पाठ है।

गाथा-१३० पर प्रवचन

अब १३०। आगे कहते हैं कि जो भावश्रमण हैं, वे देवादिक की ऋद्धि देखकर मोह को प्राप्त नहीं होते हैं :- लो! अब लाये। अहो! जो आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में लवलीन हो गये हैं साधु, उन्हें साधु कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द में मशगुल/लीन-लीन, जम गये हैं। उन्हें कहते हैं कि दुनिया की ऋद्धि का मोह नहीं होता।

इडिढमतुलं विउव्विय किण्णरकिंपुरिसअमरखयरेहिं।

तेहिं वि ण जाइ मोहं जिणभावणभाविओ धीरो ॥१३०॥

अर्थ :- जिनभावना (सम्यक्त्व भावना) से वासित जीव... देखो! यह जिनभावना की व्याख्या की। बहुत जगह आता है। जिनभावना अर्थात् वीतरागी भावना अर्थात् सम्यक्त्व कहते हैं। अर्थात् कि भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसकी श्रद्धा-सम्यग्दर्शन, वह वीतरागी भावना है। वीतरागस्वभाव में रहने की उसकी रुचि और भावना है। उसे राग में रहना और रागमय रुचि है नहीं। आहाहा! जिनभावना (सम्यक्त्व भावना) से वासित जीव... जिसे सम्यग्दर्शन जिनभावना की गन्ध पड़ी है। आहाहा! भगवान आत्मा जिनस्वरूप वीतरागस्वरूप है, उसका जिसे सम्यक्त्व हुआ, उसका अर्थ यह कि उसे जिनभावना प्रगट हुई। वीतराग का भाव आंशिक प्रगट हुआ और वह जिनभावना में लीन होना चाहता है, यह उसे जिनभावना कहते हैं।

मुमुक्षु : जिनभावना...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह कहा न ? इस शब्द में कुछ फेरफार हो, ऐसा नहीं है। राग की रुचि छोड़कर, जिसने राग की लीनता छोड़ी है। क्या कहना है ? इस जिनभावना के ऊपर से मस्तिष्क में क्या आया ? कि वीतरागस्वभाव है, उसकी भावना होकर श्रद्धा हुई और उस समकित को जिनभावना कहा जाता है। और समकित वीतराग की ही भावना भाता है। राग की भावना नहीं भाता। आहाहा! गजब बात है! चौथे गुणस्थान से, हों! हो राग, परन्तु उसकी भावना तो वीतरागता की है। अहो! मेरा पवित्र स्वभाव पूर्ण

वीतराग, निर्दोष अनाकुल आनन्द का धाम ऐसी जो सम्यग्दर्शन दशा, जिन वीतरागी एकाग्रता, वीतरागीस्वभाव में एकाग्रता, ऐसा सम्यग्दर्शन, वह जिनभावना। उससे वासित जो जीव है, धर्म से वासित—बसा हुआ जिसके हृदय में जो जीव है। आहाहा!

किन्नर, किंपुरुष देव; कल्पवासी देव और विद्याधर, इनसे विक्रियारूप विस्तार की गयी अतुल-ऋद्धियों से मोह को प्राप्त नहीं होता है... धूल में भी नहीं होता। आहाहा! किन्नर देव गाये ऐसे। किंपुरुष... देव सब व्यन्तर। देव; कल्पवासी देव और विद्याधर,... महा विद्यावाले होते हैं और वीणायें ऐसी ऊँची होती है ताल और ... ऐसी विक्रिया आदि ऋद्धि हो तो भी धर्मात्मा जिसे आत्मा के आनन्द का भाव प्रगट हुआ है, जिनभावना प्रगट हुई है, वीतराग में एकाग्रता हुई है, वीतराग भावना जिसके भाव में है, उसे ऐसा मोह उसके आड़े नहीं आता। सड़ा हुआ तिनका है। आहाहा! यह रूपवान शरीर और यह ऋद्धियाँ देव-देवियों की, कहते हैं कि उसमें धर्मात्मा को, सम्यग्दृष्टि को मोह नहीं आता। तो मुनि को तो कहाँ से होगा? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वह तो परीषह मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परीषह-फरीषह कुछ नहीं। जानता है। ज्ञान में जानता है कि यह है, दूसरा क्या है? आहाहा! ऐसी बातें, प्रभु! तेरे घर की बातें कोई अलौकिक हैं, भाई!

कहते हैं, इनसे विक्रियारूप विस्तार की गयी अतुल-ऋद्धियों से... वापस ऐसा। अन्तिम में अन्तिम शक्तियाँ इतनी अधिक ऋद्धिधारी हो। सुन्दर-सुन्दर स्त्रियाँ, सुन्दर देवियाँ, सुन्दर गाते, बाजे, पाँच इन्द्रिय के विषयों की सुन्दरता सब। श्रवण, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श। इतनी सुन्दरता की अतुल ऋद्धि विकसे... आहाहा! तो मोह को प्राप्त नहीं होता है... परन्तु कहीं से प्राप्त होगा? आहाहा! समझ में आया? माता का चाहे जितना रूप देखे तो कहीं पुत्र को उसके प्रति कुछ मोह आता है उस प्रकार का? आहाहा! बीस वर्ष का जवान लड़का हो और चालीस वर्ष की माँ हो। वह माँ रूपवान सुन्दर और अनेक ऋद्धि से हो। लड़का देखता है परन्तु यह मेरी स्त्री है, ऐसा मोह होता है? मेरी जनेता है और मैं पुत्र हूँ। उसी प्रकार जिसे आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का प्रेम जगा है, उसे कहते हैं कि जैसे पुत्र माँ को देखे, वैसे यह जानता है कि है। उस ऋद्धि में मोह नहीं पाते। आहाहा!

मुमुक्षु : सब पदार्थ ज्ञेयरूप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञेय है। वह तो ज्ञेय तो है ही। समझ में आया ?

क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव कैसा है ? धीर है, दृढ़बुद्धि है अर्थात् निःशंकित अंग का धारक है। निःशंक अंग का धारक। आनन्द तो मुझमें है। कहीं तीन काल-तीन लोक में अन्यत्र कहीं है नहीं। इन्द्र के इन्द्रासन, चक्रवर्ती के पद और भोगभूमि के जुगलिया के भोग, कहीं विस्मयता, अचिन्त्यता धर्मी को बाह्य में भासती नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? धीर। इसका अर्थ किया है उसमें—संस्कृत में। धीर—धी अर्थात् बुद्धि, उसे प्रेरे स्वभाव की ओर, ध्येय के प्रति धीरे, ध्येय के प्रति धी को प्रेरे, उसे धीर कहते हैं। उसमें है, भाई ! चिमनभाई ! ऐई ! चिमनभाई ! कहाँ सोये ? उसमें है उसमें धीर-धीर देखो ! क्या है पढ़ो ! यह ऐसा डाला है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। धीर-धीर का अर्थ। हाथ में नहीं आवे। धीर। धी अर्थात् बुद्धि।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। संस्कृत में है उसमें। है न संस्कृत ? संस्कृत का अर्थ हुआ है। ... ध्येय अर्थात् ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा। ध्रुवस्वरूप। ध्येय के प्रति धी—बुद्धि प्रेरे, वह धी। धीर। ध्येय में चिदानन्द भगवान आनन्द का धाम ध्रुव, उसमें जो बुद्धि को प्रेरे और जोड़े, उसका नाम धीर कहा जाता है। आहाहा ! राग और पुण्य-पाप में जोड़े, वह धीर नहीं, वह तो अधीर है, कहते हैं। समझ में आया ? धीर, इसका अर्थ इतना यहाँ किया। दृढ़ बुद्धि है। धीर अर्थात् दृढ़ बुद्धि है। वस्तु, वस्तु शुद्ध ध्रुव चैतन्य का भान (होकर) उसमें दृढ़ बुद्धि है और निःशंकित है। शंका नहीं कि यह कैसे होगा ? निःसन्देह है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ, अतीन्द्रिय आनन्द का पदार्थ निःशंक है। ऐसा आनन्द कहीं दुनिया में है नहीं। ऐसी समकित्ता को अन्दर में निःशंकता और दृढ़ता आ जाती है और बुद्धि को ध्येय में प्रेरी है। आहाहा !

भावार्थ :- जिसके जिनसम्यक्त्व दृढ़ है... जिन की व्याख्या साथ में डाली।

जिसे जिनसमकित... जिनसमकित, देखा! उसका नाम जिनसमकित। जिनभावना आया न? जिनभावना थी, उसे जिनसमकित कहा। **जिनसम्यक्त्व दृढ़ है...** जिन वीतरागी समकित है। आहाहा! **उसके संसार की ऋद्धि तृणवत् है,...** आहाहा! उसे तो संसार की चाहे जितनी ऊँची ऋद्धि दिखाई दे तो भी तृणवत् है। कहीं उसे विस्मयता नहीं लगती, कहीं अचिन्त्यता भासित नहीं होती। अपने अतिरिक्त दूसरे में कहीं अधिकपना भासित नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

कहते हैं, **विनाशीक... परमार्थसुख ही की भावना है,...** धर्मी को तो आनन्द, परमार्थ सुख अतीन्द्रिय, राग और विकल्परहित सुख है, उसकी भावना है। आहाहा! समकित जीव को तो आत्मा के सुख की भावना है। वह भावना यहाँ हो, वह बाहर में भावना रखता है, यह नहीं हो सकता। आहाहा! तब वह कहते हैं कि उन्हें छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं। जब तक राग था, तब तक उन्हें परमार्थ बुद्धि नहीं कहलाती, तब उसे अज्ञानी कहा जाता है। और ऐसा कहता है, ऐई! उसमें—अखबार में आता है न। तब तक अज्ञानी है। निर्विकल्प आनन्द में पड़े, तब ज्ञानी कहलाये। ऐसा नहीं है। अब सुन न! ऐसे लेख आवे, ऐसे लेख निकाले, उसका टीका में आता अवश्य है न। निर्विकल्प आनन्द में पड़ा हो तो ज्ञानी। विकल्प में आया और आसक्ति में आया तो वह ज्ञानी नहीं, अज्ञानी है। अरे! अज्ञानी नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं। वह तो अस्थिरता का भाग है, वहाँ उसका रस और रुचि है कहाँ? समयसार बाहर प्रसिद्ध नहीं हुआ अभी एक? उसमें यह लिखा है। तुमको दिया था न? उसमें। उसमें यह लिखा है। ऐसे बहुत अर्थ करते हैं। यहाँ का बाहर आने के बाद बचाव के लिये उसे ऐसा राग का भाव है, उसे बाहर का त्याग नहीं तो उसकी महत्ता घटा देने के लिये, बाहर का त्याग हो, उसकी महत्ता बताने के लिये (ऐसे अर्थ करते हैं)। आहाहा!

परमार्थसुख ही की भावना है, विनाशीक ऋद्धि की वांछा क्यों हो ? एक और एक दो बात। जिसे आत्मा के आनन्द की रुचि और सम्यक्त्व है, उसे बाह्य की ऋद्धि की सुख की बुद्धि, सुखबुद्धि नहीं होती, वांछा नहीं होती। इसकी अस्ति है और उसकी नास्ति है। ऐसा जिसका स्वभाव... आहाहा! लो! १३० हुई।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१३१

आगे इस ही का समर्थन है कि ऐसी ऋद्धि भी नहीं चाहता है तो अन्य सांसारिक सुख की क्या कथा? -

किं पुण गच्छइ मोहं णरसुरसुक्खाण अप्पसाराणं ।
जाणंतो पस्संतो चिंतंतो मोक्ख मुणिधवलो ॥१३१॥
किं पुनः गच्छति मोहं नरसुरसुखानां अल्पसाराणाम् ।
जानन् पश्यन् चिंतयन् मोक्षं मुनिधवलः ॥१३१॥
मुनि-प्रवर जानें देखते चिंतें सदा ही मोक्ष को।
तब नर-सुरों के अल्प-सारी सुखों से क्यों मोह हो? ॥१३१॥

अर्थ - सम्यग्दृष्टि जीव पूर्वोक्त प्रकार की ऋद्धि को भी नहीं चाहता है तो मुनिधवल अर्थात् मुनिप्रधान है, वह अन्य जो मनुष्य देवों के सुख भोगादिक जिनमें अल्प सार है, उनमें क्या मोह को प्राप्त हो ? कैसा है मुनिधवल ? मोक्ष को जानता है, उस ही की तरफ दृष्टि है, उस ही का चिन्तन करता है।

भावार्थ - जो मुनिप्रधान हैं, उनकी भावना मोक्ष के सुखों में है। वे बड़ी-बड़ी देवविद्याधरों की फैलाई हुई विक्रिया ऋद्धि में भी लालसा नहीं करते हैं तो किंचित्मात्र विनाशीक जो मनुष्य, देवों के भोगादिक के सुख हैं, उनमें वांछा कैसे करे ? अर्थात् नहीं करे ॥१३१॥

प्रवचन-१४८, गाथा-१३१ से १३३, मंगलवार, मगसर कृष्ण ३, दिनांक १५-१२-१९७०

भावपाहुड़ की १३१वीं गाथा। आगे इसी का समर्थन है कि ऐसी ऋद्धि भी नहीं चाहता है तो अन्य सांसारिक सुख की क्या कथा? यह आता है।

किं पुण गच्छइ मोहं णरसुरसुक्खाण अप्पसाराणं ।
जाणंतो पस्संतो चिंतंतो मोक्ख मुणिधवलो ॥१३१॥

कहते हैं कि जिसे धर्मदृष्टि हुई है... अर्थात्? अनादि की जो पापदृष्टि है कि पर में सुख है, पुण्य-पाप के भाव में भी मुझे ठीक पड़ता है, सुख है—ऐसी बुद्धि है, वह अधर्मबुद्धि, पापबुद्धि, मिथ्याबुद्धि है। समझ में आया? वह बुद्धि जिसे टलती है अर्थात् कि टालता है... आत्मा में सुख है। मेरा सुख आत्मा में है, सुख कहीं बाहर नहीं। ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव अर्थात् कि जैसा स्वरूप है आत्मा का सुखरूप, ऐसी जिसकी दृष्टि हुई है। समझ में आया? आत्मा में सुख है। बाह्य सुख है नहीं। अन्तर में सुख है। सुख का सागर आत्मा अतीन्द्रिय महापदार्थ है। अतीन्द्रिय आनन्द का भरपूर वह है। ऐसा जो आत्मा, जिसका उसे भान होता है अर्थात् कि धर्मी हो, अर्थात् कि जैसा आत्मा का स्वभाव है, वैसा उसे अनुभव में आवे कि यह तो सुखरूप आत्मा है। मेरी शान्ति और सुख का मैं तो भरपूर हूँ। ऐसी दृष्टि होना, उसे धर्मदृष्टि कहते हैं। हिन्दी है। है? उसमें अर्थ है हिन्दी।

अर्थ - सम्यग्दृष्टि जीव... इसकी व्याख्या चलती है। उसके सामने मिथ्यादृष्टि जीव। अर्थात् पापी प्राणी। जो कोई आत्मा में सुख है, ऐसा छोड़कर इन्द्रियों में, शरीर में, स्त्री में, इज्जत में—कीर्ति में, पैसे में, मकान में, खाने-पीने में सुख है, यह मान्यता मिथ्या-अज्ञान-मूढ़ता की मान्यता है। क्योंकि उसमें सुख है नहीं। गजब बात, भाई! यह दृष्टि मिथ्यात्व है। आहाहा! जिसमें सुख है, ऐसे आत्मा का श्रद्धा-विश्वास न आकर, उसका विश्वास उल्टे रास्ते चढ़ गया है। पाँच इन्द्रियाँ और उनके विषय और उनकी सुन्दरता, उनकी अनुकूलता। ऐसा सुन्दरता का भराव देखकर उसमें इसे ऐसा लगता है कि इनमें सुख है। परन्तु सुख के भराव से भरपूर तो भगवान आत्मा है। वे तो सुख से खाली चीज़ हैं। उस सुख में मान्यता ऐसी पर में हो गयी, इसका नाम ही मिथ्यादृष्टि, आत्मा का घात करनेवाला, सुख और सुख शान्ति का घात करनेवाला और दुःख की दशा दृष्टिवाला दुःख की दशा में है और दुःख की दशा को विशेष प्राप्त होगा। ऐसी बात है, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ऐसा यह क्या दिखता है बाहर में? लड़के हों, पैसा हो, शरीर अच्छा हो, स्त्री अच्छी हो, सुकोमल लड़के हों, स्त्री सुकोमल हो, रूपवान हो,

उसमें प्रत्यक्ष दिखता है कि इसमें कुछ ठीक है। है ? क्या होगा ? चन्द्रकान्तभाई ! धूल भी नहीं, तेरी कल्पना है, सुन न ! निश्चय को और व्यवहार कैसा था ? आहाहा !

अपना सुख बाहर में होगा ? बाहर की चीज में होगा ? बाहर की चीज़ से होगा ? तथापि यह मानता है अनादि से। इससे इसकी दृष्टि पर में चिपटी है। पुण्यभाव का प्रेम है जिसे, उसका अर्थ ही कि उसकी पर में सुखबुद्धि पड़ी है, उसे पुण्य में प्रेम है।

मुमुक्षु : जड़बुद्धि की बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़बुद्धि है। सुख है कहाँ, भाई ! आहाहा ! यह अन्धकार सब उलेचना है। अन्धकार उलेचकर प्रकाश निकले उसमें से ? इसी प्रकार अज्ञान... अज्ञान... अज्ञान... आहाहा ! अपना भगवान निजसुख का निधान, उसे छोड़कर पर में सुखबुद्धि, वही मिथ्यात्व, महापाप और दुःख के पन्थ में दौड़ गया है। समझ में आया ?

सम्यग्दृष्टि जीव... अब सुलटी बात आती है। **पूर्वोक्त प्रकार की भी ऋद्धि को नहीं चाहता है...** ऊपर कही थी। **किन्नर, किंपुरुष देव; कल्पवासी देव...** देवों की विक्रियबुद्धि इतनी अधिक होती है कि साधारण प्राणी को तो ऐसा लगे कि आहाहा ! यह क्या सुखी है ! यह तो धान का ढींगला। धान जरा ठीक हो तो रहे। नहीं तो यह.. यह... कुम्हला जाए। रोग (होकर) शरीर जीर्ण हो जाए। रूपवान लगे शरीर, कीड़े पड़े। मजबूत शरीर लगे उसे क्षय हो जाए। ऐं.. ऐं... ऐं... करते बोलना आवे नहीं, बोल सके नहीं। यह जड़ की दशायें, भाई !

कहते हैं, ऐसी देवी की ऋद्धि को भी जो सम्यग्दृष्टि नहीं चाहता। समझ में आया ? तो **मुनिधवल अर्थात् मुनिप्रधान है, वह अन्य...** सम्यग्दृष्टि चाहता नहीं। यहाँ तो यह बात है। आहाहा ! समझ में आया ? क्योंकि वह सम्यक् चैतन्यस्वरूप आनन्द है। मेरी जाति में आनन्द ही भरा हुआ है। अतीन्द्रिय आनन्दरस है। उस अतीन्द्रिय आनन्दरस का स्वरूप, वह आत्मा है। आहाहा ! ऐसी जिसे धर्मदृष्टि, हितकरदृष्टि, सिंहदृष्टि हुई है, वह जीव देवादि की ऋद्धि तो न चाहे, परन्तु मुनि धवल कहकर, मुनिप्रधान—उसमें—मुनि में मुख्य, ओहोहो ! दशा जिसकी। कल कहा था न मुनि का। ओहो ! आचार्य कहते हैं, धन्य ! उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। ओहोहो ! धन्य होकर नमस्कार (करते हैं)।

ऐसा। धन्य कहकर। धन्य अवतार तेरा, भाई! आहाहा! आत्मा के आनन्द के सरोवर को अन्दर दशा में झेलता। आहाहा! धन्य रे धन्य अवतार है न वह!

मुनि उसे कहते हैं, जो अतीन्द्रिय आनन्द के झरना झरे। जैसे पर्वत में से शीतल और ठण्डा पानी झरे और तृषा लगी हो। उसी प्रकार आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत प्रभु है। परन्तु इतना अधिक अन्तर? उस अतीन्द्रिय आनन्दरस का तत्त्व, वह आत्मा है। ऐसा जिसे प्रेम और दृष्टि और रुचि हुई, वह जीव अन्य जो मनुष्य, देवों के सुख-भोगादिक जिनमें अल्प सार है, उसमें क्या मोह को प्राप्त हो? मनुष्य और देवों के सुख। मनुष्य में क्या धूल था? चमड़ी, हड्डियाँ। समझ में आया? चमड़ी का मन्थन, माँस का मन्थन और मानता है कि हम सुखी हैं। आहाहा! उसमें मन्थन हो जाता है, उसके सुख का। जहर उत्पन्न होता है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मनुष्य के सुख और देव के सुख। फिर ऐसा लिया है न? 'णरसुरसुक्खाण'। ऐसा।

अल्प सार... यह भोगादि तो अल्प सार। कुछ माल नहीं होता। आहाहा! जहाँ यहाँ पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़ हो तो इसे बादशाही दिखती है। है भिखारी और बादशाही दिखती है। यह क्या करना इसका? बाहर का माँगता है वह भिखारी। यह लाओ... यह लाओ... यह लाओ... बड़ा भिखारी है। बहुत उल्टी बात है यह तो, चन्द्रकान्तभाई! दुनिया से उल्टी बात है यह तो सब। कहते हैं, मुनि प्रधान... सम्यग्दृष्टि भी जहाँ चाहता नहीं तो मुनि की तो बात क्या करना? आत्मा के आनन्द में झूलनेवाले अतीन्द्रिय आनन्द में, इसका नाम मुनि। आहाहा! भगवान आत्मा को चीरकर जिन्होंने उसमें से आनन्द निकाला है। एकाग्रतारूपी ध्यान करके।

कहते हैं, अन्य जो मनुष्य देवों के सुख-भोगादिक... अथवा उनकी बातें सुनना आदि उसमें रस आवे, वह अल्प सार है... अल्प सार है। आहाहा! यह दुनिया की अपेक्षा से अल्प सार कहते हैं, हों! है तो जहर वह सब। वह नहीं कुछ? आहाहा! दृष्टि बदलने से पूरा बदल जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उनमें क्या मोह को प्राप्त हो? कैसा है मुनिधवल? मोक्ष को जानता है,... रागरहित स्वरूप आत्मा का, मोक्षस्वरूप आनन्द उसे भान में है कि मेरा मुक्तस्वभाव आनन्दरूप है। समझ में आया? मोक्ष को जानता है... वह मोक्ष अर्थात् राग से पृथक् चीज़ है, उसे वह जानता है। समझ में

आया? आहाहा! है न? 'मोक्ष चिंतंतो' है न? पाठ में। 'जाणंतो पस्संतो चिंतंतो मोक्ख मुणिधवलो' जानता है न? मोक्ष अर्थात् आत्मा पुण्य-पाप के रागरहित चीज, उसमें आनन्द है। और पूर्ण मोक्ष होने पर तो पूर्ण आनन्द होता है। आहाहा! गजब बातें!

कहते हैं, मोक्ष को जानता है,... लो! 'जाणंतो पस्संतो चिंतंतो' तरफ दृष्टि... ऐसा लिया है न? मोक्ष को जानता है, उस ही की तरफ दृष्टि है,... यह 'पस्संतो' ऐसा। आहाहा! आत्मा, वस्तु, आनन्दस्वरूप राग के विकल्प से छूटकर उसे जानता हुआ, उसके ऊपर दृष्टि है। समझ में आया? है न? 'जाणंतो पस्संतो' इसकी व्याख्या की। भगवान आत्मा शरीर, कर्म से तो रहित ही है वस्तु अन्दर। सच्चिदानन्द प्रभु है। पुण्य-पाप के विकल्प से रहित उसे जानता हुआ, उसके ऊपर दृष्टि होने से। देखा! उस ही की तरफ दृष्टि है,... मुक्तस्वरूप आत्मा, उसमें दृष्टि है। और उस ही का चिन्तवन करता है। एकाग्रता। तीनों बातें ली। जानना, दृष्टि और एकाग्रता। ओहो! कैसी शैली की है! समझ में आया? धर्मीजीव की दृष्टि आत्मा के ऊपर होती है। अधर्मीजीव की दृष्टि पुण्य-पाप और उसके फल पर सुखबुद्धि में होती है।

मुमुक्षु : चिन्तवन करे अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकाग्र हो। यह कहा अभी। दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन लिये। चिन्तवन करना अर्थात् एकाग्र होता है। समझ में आया?

धर्मदृष्टि तो धर्म तो आत्मा का स्वभाव, वस्तुस्वभाव, वह धर्म। तो वस्तु का स्वभाव तो आनन्द है। अतीन्द्रिय आनाकुल आनन्द, वह वस्तु का, आत्मा का स्वभाव है। सच्चिदानन्द उसका स्वभाव है। सत् शाश्वत्, चिद् ज्ञान और आनन्द—ऐसा उसका स्वभाव है। ऐसे स्वभाव को जिसने जाना है। जानते हुए, उसके ऊपर दृष्टि है और उसमें जिसकी एकाग्रता है। वह पर के सुख को, देव के सुख को भी नहीं चाहता। तो साधारण मनुष्य आदि के असार थोथे, सड़े हुए (सुख को कैसे चाहे?) शरीर सुन्दर लगे। वह दो-चार दिन खाये नहीं। बुखार आया हो छह डिग्री का ठीक सा दो दिन आं... आं... शिथिल हो जाए आं... आं... खड़े रहने का न हो, एकदम गिर जाए। अरे! दो दिन में सब शक्ति घट गयी। भाई! बुखार तो हाथी के हाड तोड़े। वापस और ऐसी बातें करे। ऐई! मगनभाई! हें! हाथी की हड्डियाँ तोड़े, बापू! दो-तीन दिन बुखार ऐसी आयी हो

पाँच-छह डिग्री की। मूँग का पानी और यह पीना अभी। गर्म पानी पीना। क्या डालकर? बायबिडंग डालकर। यह तो अब (दवायें लेते हैं), हों! यह सब। नहीं तो पहले यह था। अब तो चाय और उकाली और यह सब देते हैं। प्रेमचन्दभाई के पिता को वह हुआ था। क्या कहलाता है लम्बा चले वह? टाईफाईड। सैंतीस दिन चला था, छत्तीस दिन। एक तो पतला शरीर था, प्रेमचन्दभाई के पिता का। बायबिडंग का पानी अकेला, हों! दूसरा कुछ नहीं। दस्त ठीक से न आवे, तब तक दूसरा लेना नहीं। वरना जोखिम है। प्रेमचन्दभाई के पिता थे न? प्रेमचन्द मगनलाल सेठ। राणपुर।

मुमुक्षु : ध्यान तो रखना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान क्या रखे? धूल? डॉक्टर कहे, मर जाएगा। यह दस्त ठीक से नहीं उतरे और यदि बीच में मूँग का पानी-बानी लिया तो दूसरी दशा हो जाएगी। लगे अच्छा शरीर। धूल भी नहीं उसमें, कहते हैं। सुन न! आहाहा! अनित्यता में नित्य का सुख उसमें कल्पित किया है। भगवान आत्मा नित्यानन्द का आनन्द वहाँ अनित्य में माना है।

कहते हैं कि धर्मी जीव जिसे आनन्द का भान है। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु आत्मा को जानता हुआ, उसके ऊपर दृष्टि रखता हुआ। दृष्टि वहाँ है, यहाँ नहीं। आहाहा! मोक्ष अर्थात् पूर्ण सुख ... पूर्ण सुख स्वयं-स्वयं ही आत्मा है। उस ही का चिन्तवन करता है। धर्मी तो आनन्द का चिन्तवन करे। आहाहा! शीतल जल चला था न अपने? सलील। शीतल सलील निर्मल आनन्दस्वरूप, उसका पान करे, वह धर्म है। वह धर्म, वह धर्म है। आहाहा! लोगों को यह व्यवहार मार डालता है अन्दर से। यह व्यवहार है।

मुमुक्षु : व्यवहार है तो सही न।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, उससे किसने इनकार किया? दुःख नहीं? परन्तु व्यवहार है, ऐसा इनकार किया? परन्तु व्यवहार, वह दुःखरूप है। व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा है? दुःख से आनन्द हो, ऐसा है? क्या है? धन्नालालजी! व्यवहार से निश्चय होता है? क्या होता है?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु नहीं। वस्तु है तो क्या है? छह द्रव्य नहीं? वस्तु हो तो क्या हुआ? वह है तो आत्मा के आनन्द की पर्याय प्रगट होती है, ऐसा है? कि आत्मा का आनन्द त्रिकाल है, इसलिए आनन्द की पर्याय प्रगट होती है, ऐसा है? न्याय से इसे तुलना तो करनी पड़ेगी न? समझ में आया? यह खोटे रास्ते चढ़ गया है न, इसे वापस हटना सुहाता नहीं और इसे मान बैठना है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप तो इंजेक्शन लगाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : लगाते हैं। लगाने दे तब न। आहाहा!

कहते हैं, जो मुनिप्रधान हैं... धर्मात्मा। उनमें भी मुख्य है, महाप्रधान, चारित्रवन्त है, मोक्ष के रास्ते-पन्थ में पड़ा, मोक्ष जिसे नजदीक है। आहाहा! उनकी भावना मोक्ष के सुखों में है। उसकी एकाग्रता तो आत्मा के सुख में है। समझ में आया या नहीं? यह तो समझ में आये ऐसा है। है तो बहुत ऊँचा, परन्तु है बहुत अच्छा। आत्मा वस्तु है न? सुख है, वह दृष्टान्त लेना। सुख शब्द है या नहीं? तो सुख शब्द है, उसका वाच्य कुछ होगा या नहीं? वाचक है न शब्द? सुख। तो उसका वाच्य, उसकी अस्ति कहीं सुख होगा या नहीं? वह सुख कहाँ होगा? यह इसे निर्णय करना पड़ेगा न?

मुमुक्षु : दो मत है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो मत ही कब थे? खोटे मत को मत कहा जाता है?

सुख है, ऐसा तो मानता है। क्योंकि माने बिना सुख को खोजे किसलिए? और खोजता है, वह उपाय भी मानता है। परन्तु कहाँ है और उपाय क्या है, इसकी खबर नहीं। आहाहा!

कहते हैं, धर्मी जीव को तो एकाग्रता मोक्ष के सुख में है। लो! बे बड़ी-बड़ी विद्याधरों की फैलाई हुई विक्रियाऋद्धि में भी लालसा नहीं करते हैं... आहाहा! जड़ की ऋद्धि, देव की ऋद्धि, ऐसा वापस, कहते हैं। मनुष्य... देव बड़े, जिसे इच्छा से आहार आवे कण्ठ में से। लो! ऐसे देव की ऋद्धि फैली हो ऐसे। हजारों देवांगनायें, हजारों देव, इन्द्र और इन्द्राणी और सिंहासन और बड़ा दिखाव, महल, मकान। आहाहा!

मुमुक्षु : आप तो ऐसी बात करते हो कि मन हो जाए ।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन होता है या उड़ जाए इसके लिये बात है ? कि ऐसा, ऐसे कि दिखाई दे । आहाहा ! आसमान से उतरे हैं हमारे ऐसे । ऐई ! चेतनजी ! प्रकाशदासजी ! कहीं से भूतड़े-भूतड़े का आया होगा और ... वे व्यन्तर के विमान और व्यन्तर के स्थान रहने के ऐसे ऊँचे कि यह चकचकाहट ! ऐसे एक-एक ऋद्धि उसकी कारीगरी । शाश्वत्, हों ! क्या है परन्तु अब ? आहाहा ! वह आसमान में रहनेवाले कहलाते हैं । आकाश में । आसमानी रंग के बँगले, आसमानी रंग की चोपडियाँ । धूल भी नहीं, भ्रमणा है । अज्ञानी की ।

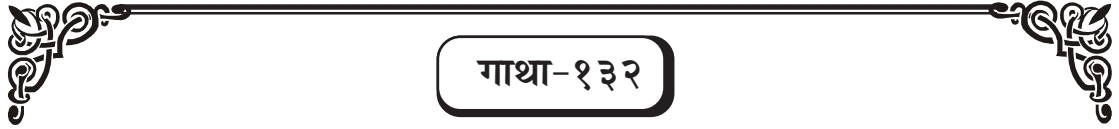
मुमुक्षु : आसमानी रंग के...

पूज्य गुरुदेवश्री : आसमानी रंग के उतरे हैं ऊपर से ।

मुमुक्षु : आसमान को रंग ही कब था ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आसमान को रंग कहाँ ? आकाश को रंग होगा ?

कहते हैं देवविद्याधरों की... मनुष्य में थे, वे लिये । नर है न नर ? सुर । ... नर की ऋद्धि विद्याधर की होती है न ? फैलाई हुई विक्रियाऋद्धि में... ऐसा शरीर सुन्दर हजारों ऐसे बनावे । ऐसे गहने-गहने, हीरा-माणिक, ऐसे बड़े मुकुट और सुगन्ध... सुगन्ध... सुगन्ध... सुगन्ध जिसके शरीर में, वह तो सब जड़ है । सुगन्ध हो या दुर्गन्ध हो, मिट्टी है । ऐसी ऋद्धि को देखकर लालसा न करे । तो किंचित्मात्र विनाशीक जो मनुष्य, देवों के भोगादिक का सुख उनमें वांछा कैसे करे ? ऐसा भी न करे, ऐसा कहते हैं । ऐसा न करे देव को विद्याधर की फैलाई हुई । तो किंचित्मात्र विनाशीक... तुरन्त नाश हो जाए । मनुष्य के, देव के भोग के सुख उनमें वांछा कैसे करे ? आहाहा ! भावपाहुड़ में देखो डाला न ! आहाहा ! यह तो शुद्धस्वभाव आनन्द की भावना करे । वह भाववाला धर्मात्मा । पर में सुख की भावना करे, वह तो मिथ्यादृष्टि अधर्मात्मा है । आत्मा तो सही, वह अधर्मात्मा । आहाहा !



गाथा-१३२

आगे उपदेश करते हैं कि जब तक जरा आदिक न आवें, तब तक अपना हित कर लो -

उत्थरह जा ण जरओ रोयणी जा ण डहइ देहउडिं ।
 इन्द्रियबलं ण वियलइ ताव तुमं कुणहि अप्पहियं ॥१३२॥
 आक्रमते यावन्न जरा रोगाग्निर्यावन्न दहति देहकुटीम् ।
 इन्द्रियबलं न विगलति तावत् त्वं कुरु आत्महितम् ॥१३२॥
 जब तक जरा आई नहीं तन-कुटी रोगानल जली।
 नहिं अक्ष-बल विगलित करो तुम आत्म-हित तब तक सही ॥१३२॥

अर्थ - हे मुने ! जब तक तेरे जरा (बुढ़ापा) न आवे तथा जब तक रोगरूपी अग्नि तेरी देहरूपी कुटी को भस्म न करे और जब तक इन्द्रियों का बल न घटे, तब तक अपना हित कर लो ।

भावार्थ - वृद्ध अवस्था में देह रोगों से जर्जरित हो जाता है, इन्द्रियाँ क्षीण हो जाती हैं, तब असमर्थ होकर इसलोक के कार्य उठना-बैठना भी नहीं कर सकता है, तब परलोकसंबंधी तपश्चरणादिक तथा ज्ञानाभ्यास और स्वरूप का अनुभवादि कार्य कैसे करे ? इसलिए यह उपदेश है कि जब तक सामर्थ्य है, तब तक अपना हितरूप कार्य कर लो ॥१३२॥

गाथा-१३२ पर प्रवचन

आगे उपदेश करते हैं कि जब तक जरा आदिक न आवें, तब तक अपना हित कर लो :- आहाहा! लो! यह श्लोक श्वेताम्बर में भी है। दसवैकालिक में। उसमें भी है, छहढाला में। छहढाला में है, भाई! भाई को कण्ठस्थ है न सब पूरा। कल वे आये थे। तुम्हारी बात की थी। कहा, उन्हें रस बहुत है। ऐसा कहकर उसको (कहा था)।

बेचारा सुनता था। इसके समधि आये थे। व्यक्ति भी नरम बहुत। खबर नहीं, आप ... लगते थे सुधरे हुए। हमारे पास तो चरण-वन्दन कर उठ-बैठ की। और बैठा। फिर से ऐसा समय लूँगा। मैंने कहा, सुनना। यहाँ मुँह देखने में क्या अकेला? सुनने में है। सुनना पहले कि क्या वस्तु है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप कहते हो कि सुनने से धर्म नहीं होता तो फिर क्या करे? आप कहते हो, शास्त्र पढ़ने से लाभ नहीं होता तो पढ़ना किसलिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! न पढ़े तो वह पढ़े बिना रहे नहीं। भाव आये बिना रहे नहीं ऐसा। किस अपेक्षा से? यह तो जब स्वरूप का अनुभव करना है, तब वह आश्रयदाता नहीं। बीच में नहीं आवे वह? सुनना आदि, श्रवण। गणधर भी श्रवण करते हैं।

मुमुक्षु : गणधर करे वह भूल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूल है परन्तु आता है न?

मुमुक्षु : परन्तु भूल उन्होंने की, हमें किसलिए करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह तो बड़ा हो गया उनसे। गणधर ने भूल की-ऐसा मानता है। यह कहते हैं बहुत। भूल की है। महावीर ने यह भूल की थी, महावीर ने यह भूल की। अरे! भगवान! क्या करे बेचारा?

ओहोहो! चैतन्य की महत्ता, चैतन्य के गुणों की अचिन्त्यता, महाचैतन्यरतन प्रभु, उसकी खबर नहीं होती, इसलिए सब जहाँ-तहाँ चढ़ गये हैं। जगत का जाननेवाला, उसकी महिमा क्या है, इसकी खबर नहीं होती। जाननेवाले को जाना नहीं और दूसरी सिरपच्ची सब (की)। ज्ञात हुआ, उसकी महत्ता। जाननेवाला कौन है, उसकी महत्ता नहीं होती, लो!

कहते हैं,

उत्थरह जा ण जरओ रोयणी जा ण डहइ देहउडिं ।

इन्दियबलं ण वियलइ ताव तुमं कुणहि अप्पहिंय ॥१३२॥

हे आत्मा! जब तक जरा न आवे, लो! अर्थ :- हे मुने! जब तक तेरे जरा

(बुढ़ापा) न आवे... 'उत्थरड़' शरीर जीर्ण हो, वृद्धावस्था हो, बोल सके नहीं, बैठ सके नहीं, सहारे बिना रहे नहीं। आहाहा! ऐसा जरा (बुढ़ापा) अवस्था न आवे तथा जब तक रोगरूपी अग्नि तेरी देहरूपी कुटी को भस्म न करे... आहाहा! पाँच करोड़ न... वह आया था न? ६८ लाख नब्बे हजार पाँच सौ चौरासी रोग शरीर में है (१०५८४) इस एक शरीर में इतने रोग हैं। पाँच करोड़।

मुमुक्षु : भले रहे परन्तु दूसरे की बात है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी बात है यह? यह एक-एक शरीर में है। आहाहा! बाहर दिखाव दे, तब खबर पड़े। यह कहते हैं न, देखो न।

रोगरूपी अग्नि तेरी देहरूपी कुटी को भस्म न करे... रोग प्रस्फुटित हुए अन्दर से। आहाहा! शरीर वेदना की मूर्ति है। आत्मा आनन्द के वेदना की मूर्ति है। यह (शरीर) दुःख की वेदना की मूर्ति, रोग की वेदना की मूर्ति। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत गाढ़ी मित्रता हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : गाढ़ी मित्रता मानी है। गाढ़ी कहाँ, बेचारा एक क्षण भी इसके पास रहता नहीं। इसकी पर्याय में एक क्षण भी आया नहीं। एक समय भी शरीर की अवस्था एक पर्याय में आयी नहीं। उसमें रहकर उसके क्षेत्र से चीज़ भिन्न रही है। आत्मा की अवस्था में यह शरीर आया है? आत्मा की अवस्था तो अरूपी है।

मुमुक्षु : ... तो बराबर है परन्तु दुःख तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख किसके कारण होता है? उसके कारण होता है? एकत्वबुद्धि के कारण दुःख होता है। स्वभाव की एकता का भान नहीं, इसलिए राग की एकता करता है। वह राग की एकता का दुःख है। दुःख दूसरा क्या है?

कहते हैं, जब तक तेरे जरा (बुढ़ापा) वृद्धपना न आवे... ऐई! जवानी के भरोसे रहना नहीं, ऐसा कहते हैं। शरीर अच्छा हो, सुन्दर हो, रोगरहित, उसके भरोसे रहना नहीं।

मुमुक्षु : यह तो कमाने के दिन हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल के भी दिन नहीं। एक व्यक्ति कहता था कि अभी तो रेल-रेल चलती है, कमाने की तो कमा लें। आहाहा! मर जाएगा परन्तु चला जाएगा।

यह सब धूलधाणी है। समझ में आया ? जरा-जरा शरीर में वृद्धावस्था। अंग-अंग ढीले पड़ें। चारों ओर से रोग फटे... आहाहा!

रोगरूपी अग्नि... है न ? 'रोयग्गी' ऐसा है। **रोगरूपी अग्नि...** 'रोयग्गी जा ण डहड़ देहउडिं' यह देह उडिं-उडिं अर्थात् यह कुटी। देहरूपी कुटी। यह रोगरूपी अग्नि न जलाये, वहाँ तेरा हित कर ले, भाई! पुरुषार्थहीनतावाले को बतलाने का कारण है। बाकी तो नारकी के जीव भी उस समय पुरुषार्थ करते हैं और आत्मभान होता है। सोल-सोल रोग होते हैं। वह रोग तो जड़ की दशा है।

मुमुक्षु : अज्ञानी का लक्ष्य वहाँ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लक्ष्य उसका अस्तित्व यहाँ पूरा है, वह अस्तित्व उसे भासता नहीं। और वह अस्तित्व नित्य है, ऐसा भासता नहीं और उस अस्तित्व में आनन्द है, ऐसा भासता नहीं। आत्मा है, ऐसा भासता नहीं, पश्चात् है, पश्चात् नित्य है, ऐसा भासता नहीं। और नित्य होने पर भी उसमें आनन्द भरा है, तीसरा। आहाहा! आत्मा समाधिस्वरूप है। समाधि अर्थात् आनन्दस्वरूप है। निर्विकल्प समाधिस्वरूप है। अस्ति, नित्य, आनन्द। इन तीन का इसे भान हो तो पर की रुचि उड़ जाए। उसकी तो खबर नहीं होती। वह क्या ? यह-यह सब देखा, धूल। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : रखता है वहाँ जमा करके—मानकर। ममता। वह पैसा नहीं रखता। पैसा कहीं इसके पास नहीं आता। अथवा पैसा और कर्म दो चीज़ है उसका तो पर्याय में त्याग है। तब है क्या ? ये मेरे, उसकी ममता का वहाँ ग्रहण है। उस चीज़ का तो त्याग है। इसमें है नहीं, इसकी पर्याय में है नहीं। और उसका त्याग करना है, ऐसा है नहीं अब। वह त्याग है, उसका त्याग भी क्या करना ? नहीं इसमें, उसे नहीं करना किस प्रकार ? यह मेरे, ऐसी ममता इसमें है। उसका त्याग, स्वभाव की दृष्टि होने पर त्याग होता है। समझ में आया ?

रोगरूपी अग्नि तेरी देहरूपी कुटी को... क्या कहलाता है यह कुटडी, झोंपड़ी-ओरडी। रूम बड़ी भाषा अंग्रेजी में। वह कोठी। क्या कहलाये ? कुटिया। काँच का करते हैं न कुटिया ? काँच का।

मुमुक्षु : वह तो गरीब बाँधे ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गरीब ही है । रंक सब कुटिया की है । दूसरा क्या है वहाँ ? आहाहा !

एक वह बाबा था न ? कोई वह आता है अन्यमति में बाबा । कमरा किया ही नहीं । दो पूले रखे तो बैठे । सवेरे ऐसे रखे, शाम को ऐसे रखे । हो गया, लो ! रात्रि में कुछ जरूरत नहीं होती । पूला में बैठे । पूला समझते हो ? घास का लम्बा होता है न बाजरे का-ज्वार का ? ऐसा चौड़ा रखे । ऐसे रखे इसलिए अपने को जितनी ऐसे आड़ आवे, इसलिए हो गया, जाओ । ऐसे रखे । कोई बाबा का नाम है ।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... होगा लो । इसने सब मुंडाया है न, इसे बहुत खबर है । बात सच्ची । यह तो याद रखे ऐसा है न । मेहनत बहुत की है । ठेठ वह ... वाले को पहुँच गया था । ... उसमें क्या, वह तो होता है । इसके बिना उसका निर्णय नहीं आता । कुन्दकुन्दाचार्य में... भक्तामर में मानतुंगाचार्य कहते हैं । मानतुंगाचार्य । हे नाथ ! अच्छा किया (कि) मैंने हरिहरादि को पहले देख लिया । अब हमारा हृदय आपके अतिरिक्त कहीं नहीं जाता । भक्तामर में आता है । मन्ये हरि हरादिक एव दृष्टा... प्रभु ! आपके अतिरिक्त देवों को मैंने पहले हरिहरादि को देख लिया । कौन है और कहाँ है ? अब प्रभु ! आपके अतिरिक्त हमारी दृष्टि कहीं जाती नहीं । ऐसा मानतुंगाचार्य कहते हैं । अच्छा हुआ कि सब देख लिया । नहीं तो... आहाहा !

तीसरा । और जब तक इन्द्रियों का बल न घटे... आहाहा ! श्वास ले सके नहीं । जीभ चल-बोल सके नहीं । हाथ ऐसे हो जाए । मेरा एक हाथ टूटा हो और फिर थोड़ा हुआ तो मेरा अच्छा होगा या नहीं यह ? यह हड्डियाँ टूट नहीं जाती ? वह हो जाता है । ऐ... वहम पड़ जाता है । मेरा साला यह ... नहीं ? अपने हिम्मतभाई को नहीं ? हिम्मतभाई नहीं वे ... भाई । उन्होंने वह किया हाथ-पैर में ऐसे । कल यह भी कहते थे ... हाथ पड़ गया था यह ... हिम्मत का भाई गिर गया है न ... टाँके लिये हैं । पैर में और हाथ में । हाथ लम्बा होता नहीं । ... जवान मनुष्य है । नहीं होता, नहीं होता, ऐसा का

ऐसा रहता है। अन्दर कोई खटक-खटक ऐसा हो गया हो तो हो गया। यह रोग और इन्द्रियाँ, रोग जब तक जलाये नहीं, जब तक इन्द्रियों का बल घटे नहीं। तब तक अपना हित कर लो। आहाहा! करने का यह है, भाई! समझ में आया ?

भावार्थ :- वृद्ध अवस्था में देह, रोगों से जर्जरित हो जाता है, ... वृद्ध दशा में देह रोग से जर्जरित जीर्ण... जीर्ण... जीर्ण... एक महिला को देखा था कहीं। बहुत वर्ष पहले, नहीं ? ... वह बेचारी वृद्ध पड़ी रही। टूट गया मकान। बाहर। एक कलश पानी का रख गया हो कोई तो पीवे। पड़ी ही रहे बस एकदम जीर्ण हो गया।

मुमुक्षु : ... मोरबी।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोरबी। हाँ वह। ... नहीं ? अर्जिका ऐसे पड़ी थी अकेली। ... कलश में जाए और ... कोई सगा नहीं, कोई प्रिय नहीं। वृद्ध हो गये। जाड़ी पछेड़ी ओढ़ी हुई। पड़ी रहे बस। वह वृद्ध-वृद्ध जीर्ण। बैठ सके नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री :जीर्ण हो गया, इसलिए यह सब झपाटे से बैठ सके नहीं। तुरन्त ही ढल गया हो। ऐसा पड़ा रहे। तृषा लगी हो तो पानी का कलश होवे तो पीवे। आहाहा! देखो! इस देह की दशा। इसे जरा मेरा मानकर इसके लिये काल गँवाना आत्मा को देह के लिये काल व्यतीत कर एक बार देह के लिये, आत्मा के लिये देह धार। आता है न श्रीमद् में ? अनन्त बार जन्म-मरण। आहाहा!

वृद्ध अवस्था में देह, रोगों से जर्जरित हो जाता है, इन्द्रियाँ क्षीण हो जाती हैं... आँख से दिखे नहीं, कान से सुनाई न दे। आहाहा! तो यह बेकार मनुष्य हो तो उसका कुछ सुने नहीं बोले तो कुछ। घर में वृद्ध एक ओर पड़ा हो। अब देखो न यह बेचारा कल्याणजी, इनका आदमी आता है। इनका आदमी आता है बहुत। बहुत शोर मचाते हैं। पानी लाओ। कोई आता नहीं। दवा करते थे वहाँ तक तो... कहो, यह सब ऐसा है। ... आता है। देखो, यह व्यक्ति नौकर रखा तो वह आता था। आहाहा! पक्षघात, इसलिए हो गया। ऐसा है। यह सब दुनिया के लिये किया। क्या उसमें मान, अभिमान, ममता। आहाहा!

उठना, बैठना। देखो आया। क्षीण हो जाती है, तब असमर्थ होकर इसलोक के कार्य उठना-बैठना भी नहीं कर सकता है... खाने-पीने को भी उठना हो, पानी पीने को भी उठना हो। बिच्छू आया हो और भागना हो, सर्प आया हो और उठना हो तो उठ नहीं सके। आहाहा! ख्याल आवे कि ऐई! सर्प आया। अभी मारेगा। भगाने की शक्ति नहीं होती। जीर्ण हो गया। है यह शरीर। आहाहा! वैराग्य कराते हैं। पर से वैराग्य कर और तेरे लिये तेरा हित कर। तेरा हित उसमें नहीं है। हित यहाँ अन्दर में है। नहीं कर सकता। उठना-बैठना भी नहीं कर सकता है... ऐसा कहते हैं। बोलना तो एक ओर रह गया।

तब परलोकसम्बन्धी तपश्चरणादिक... तो फिर इच्छानिरोध या उपवासादि तो कहाँ से कर सके? ऐसा। ज्ञानाभ्यास... किसका करे? हाथ में पुस्तक पकड़ सके नहीं, आँख काम करे नहीं। आहाहा! अवसर में किया नहीं, अवसर जाने के बाद रोवे। अरे रे! सही अवसर में किया नहीं। लो! यह हमारे आणंदजी कहता था, आणंदजी। तुझे कहा, हम कहते नहीं थे, कहा? परन्तु हमें दूसरे किसी ने नहीं कहा। दूसरा कौन कहे? मजदूरी कर न तू। पैर से लूला। हमारे नहीं थे आणंदजी? ऐसे था जरा बुद्धिवाला, हों! संसार का वह भी ऐसा कि किसी ने मुझे कहा नहीं। मैंने कहा तुमको मैंने तो कहा था या नहीं? परन्तु घर के लोगों में से किसी ने कहा नहीं। ... परन्तु वे किसलिए कहेंगे? आहाहा! ऐसे वह था जरा बुद्धिवाला, हों! लौकिक का ऐसा वाँचन करता, बाद में वाँचन करता। कुँवरजीभाई करते आवे। वे सब संसार के बलवान। चतुर हो न, वह संसार से जरा निवृत्त हो, दुकान-बुकान छोड़े, उसकी कीमत सब करे वह। यह तो नहीं कमाना आया, नहीं था बहुत होना इसलिए दुकान छोड़े, इसलिए ऐसा करे। ऐसा करके ऐसा निकाले मेरे। हाँ... हाँ... पैसा बहुत बढ़ा नहीं, ... फिर छोड़ दिया। ... ग्राहक बहुत आते न हों। ... कम कर डाली। कम देते हैं। ... लाते नहीं, ऐसा कहे न। ऐसा कहे तो इज्जत जाए। आहाहा! भाईसाब.... है न उसे। ऐई! चन्द्रकान्तभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त बार, बापू! उसमें क्या? एक बार की चर्चा अनन्त काल। आदि बिना का काल, उत्पत्ति बिना का काल। उत्पत्ति होवे तो मृत्यु हो। अनादि

ऐसा का ऐसा है। वस्तु तो है, वह है। है... है... सत्... सत्... सत्... सत् है। जहाँ दूर कौन ? जिस काल में कहो। कहीं नहीं थी ऐसा है ? आहाहा !

यह ज्ञानाभ्यास करने का समय नहीं मिले, ऐसा कहते हैं। और स्वरूप का अनुभवादि कार्य कैसे करे ? लो ! अनुभव आदि। यहाँ तो पुरुषार्थहीन मनुष्य के लिये ... बात है। इसलिए सातवें नरक के नारकी भी आत्मा के आनन्द को अन्दर वेदते हैं। आहाहा ! धन्य-धन्य ऐसे। देखो न बाहर के ? प्रतिकूलता के संयोग में भी दृष्टि बदलकर चैतन्य में लगाकर अनुभव कर लेते हैं। आहाहा ! वस्तु स्वयं है पूरा परमात्मा स्वयं अखण्डानन्द प्रभु। ऐसा अनन्त दुःख है सातवें नरक में। वर्णन किया जाए नहीं। वेदन कैसे किया गया होगा ? यह समझ में आया ? परन्तु वेदन किया न ? गया क्या ? वेदन भी कोई एक असंख्य प्रदेश में एक टुकड़ा टूटा नहीं। एक गुण का अंश गया नहीं। जैसा है, वैसा पड़ा है अन्दर। आहाहा !

मुमुक्षु : पूरा परमात्मा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा परमात्मा है पूर्ण प्रभु।

अरे ! स्वरूप का अनुभवादि... ऐसा कि सुनना, कहना, वह कहाँ यह कुछ रहता नहीं फिर। इसलिए यह उपदेश है कि जब तक सामर्थ्य है, तब तक अपना हितरूप कार्य कर लो। आहाहा ! जब तक शरीरादि इन्द्रियों में रोग आदि आया नहीं। इन्द्रियाँ शिथिल पड़ी नहीं, तब तक तेरा हित कर ले, भाई ! आहाहा ! यह कोई सब साथ में आयेंगे नहीं और ये सब देख लेंगे जरा। वापस पीछे से यह भी बोले, हों ! इनको बहुत कहते थे कि अब तो तुम निवृत्ति लो, परन्तु लेते नहीं थे। वापस ऐसी गालियाँ दे ऊपर से। आहाहा ! इनके लिये पाप किये हों। पीछे से तो कहते हम कि अब तो तुम थोड़ा करो। अब बहुत दिक्कत नहीं तो। परन्तु इनने छोड़ा नहीं तो छोड़ा नहीं, हों ! ऐसी वे बातें करते हैं। अर र ! ऐई ! चन्द्रकान्तभाई ! ऐसे के लिये ममता करके कमाना। मूरख है या नहीं ? समझ में आया ? आजीविका के लिये सब ठगों की टोली है। आहाहा ! लुटेरे इकट्ठे हो गये हैं। जब तक रक्त में कस हो और कुछ कमाता हो, तब तक अच्छा कहलाता है। आहाहा ! इसलिए जरा न आवे, रोग न आवे, इन्द्रिय का बल सामर्थ्य घटे नहीं। तब तक अपना हितरूप कार्य कर लो।

गाथा-१३३

आगे अहिंसाधर्म के उपदेश का वर्णन करते हैं -

छज्जीव छडायदणं णिच्चं मणवयणकायजोएहिं ।
 कुरु दय परिहर मुणिवर भावि अपुव्वं महासत्तं^१ ॥१३३॥
 षट्जीवान् षडायतनानां नित्यं मनोवचनकाययोगैः ।
 कुरु दयां परिहर मुनिवर भावय अपूर्वं महासत्त्वम् ॥१३३॥
 अनायतन छह तजो मन वच काय से नित दया कर ।
 षट्काय पर हे मुनि प्रवर! भाओ महा सत्त्व अपूर्व ॥१३३॥

अर्थ - हे मुनिवर ! तू छहकाय के जीवों पर दया कर और छह अनायतनों को मन, वचन, काय के योगों से छोड़ तथा अपूर्व जो पहिले न हुआ, ऐसा महासत्त्व अर्थात् सब जीवों में व्यापक (ज्ञायक) महासत्त्व चेतना भाव को भा ।

भावार्थ - अनादिकाल से जीव का स्वरूप चेतनास्वरूप न जाना, इसलिए जीवों की हिंसा की, अतः यह उपदेश है कि अब जीवात्मा का स्वरूप जानकर, छहकाय के जीवों पर दया कर । अनादि ही से आप्त, आगम, पदार्थ का और इनकी सेवा करनेवालों का स्वरूप जाना नहीं, इसलिए अनाप्त आदि छह अनायतन जो मोक्षमार्ग के स्थान नहीं हैं, उनको अच्छे समझकर सेवन किया, अतः यह उपदेश है कि अनायतन का परिहार कर । जीव के स्वरूप के उपदेशक - ये दोनों ही तूने पहिले जाने नहीं, न भावना की, इसलिए अब भावना कर, इस प्रकार उपदेश है ॥१३३॥

गाथा-१३३ पर प्रवचन

१३३। अहिंसाधर्म के उपदेश का वर्णन करते हैं :-

१. मुद्रित संस्कृत प्रति में 'महासत्त' ऐसा संबोधन पद किया है, जिसको सं. छाया 'महासत्त्व' है।
२. मु. सं. प्रति में 'षट्जीवषडायतनानां' एक पद किया है।

छज्जीव छडायदणं णिच्चं मणवयणकायजोएहिं ।

कुरु दय परिहर मुणिवर भावि अपुव्वं महासत्तं ॥१३३॥

आहाहा! अर्थ :- हे मुनिवर! अब कहते हैं। हे आत्मा! आहाहा! तू छह काय के जीवों पर दया कर... देखो! यहाँ आया, देखा! भगवान के उपदेश में छह काय के जीव आये हैं। उनकी दया पाल, उन्हें दुःख देने का भाव न कर। छह काय के जीव हैं। तू भी छह काय में से एक जीव है। आहा! छह काय जीव की दया कर। तो तेरी भी तू दया कर। जरा ऐसा कहते हैं। आहाहा! तुझे पाप न हो, दुःख न हो ऐसा कर, भाई! ऐसे दूसरे को दुःख देने का भाव न कर। आहाहा!

कहते हैं। छह काय-छह काय। समझे न? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस। छह काय के जीव हैं। एक-एक पृथ्वी के कण में असंख्य जीव हैं, भाई! आहाहा! नीम की एक डाली में असंख्य जीव है। पत्ते में असंख्य जीव हैं। हरितकाय बीच में उगती हो। कच्चा तल हो, उसमें असंख्य जीव हैं वनस्पति में। सूखा हो, तब एक जीव होता है। आहाहा! ऐसे जीव की कहते हैं कि दया कर, भाई! वह तेरी जाति का आत्मा है। इतनी तो आस्तिकता करायी है। एक ओर छह काय के जीव हैं, उनका ज्ञान तेरे जानने का काम करे, ऐसा तो तेरा ज्ञान है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि ज्ञान की दशा में छह काय के जीव हैं, उनका तुझे ज्ञान होता है, ऐसी तो तेरी ताकत है। अब छह काय की मान्यता होने के पश्चात् उन्हें नहीं मारना, दुःख नहीं देना, ऐसा दुःख देने का भाव नहीं करना। ओहोहो! मार्ग पाना महामुश्किल। ऐसा वीतराग का-सर्वज्ञ का मार्ग। निर्मल, स्पष्ट, अपूर्व, ... का करनेवाला, उनके सम्प्रदाय में जन्मे, उन्हें भी अभी कुछ विश्वास और खबर नहीं होती। जहाँ-तहाँ भटकते हैं। ओहोहो! देखो! यह कहते हैं।

और छह अनायतनों को मन, वचन, काय के योगों से छोड़... देखो! ऐसे आस-परमेश्वर, आगम-शास्त्र और पदार्थ। उनके सेवन करनेवाले, वे अनायतन हैं। उससे विरुद्धवाले आस, आगम और पदार्थ वास्तविक वीतराग ने कहा हुआ आत्म आस, वीतराग ने कहे हुए आगम और उनसे कहे हुए पदार्थ, उनके सेवन करनेवाले हैं, वे तो आयतन, उनसे विरुद्ध जो है, वे अनायतन हैं। धर्म के स्थान नहीं। ऐसे स्वरूप को जाना नहीं। अनायतन को सेवन किया। छोड़ अनायतन को, ऐसा कहते हैं। यह कुगुरु,

कुदेव और कुशास्त्र तथा उनके माननेवाले वे सब अनायतन/धर्म के स्थान नहीं हैं। अब उन्हें पहिचानने में आवे न? पहिचाने तब हो कि नहीं? इसे तो अभी खबर ही नहीं कुदेव कौन, कुदेव।

अनायतनों को... छोड़। कैसे छोड़े? मन, वचन, काय के योगों से छोड़... काया से छोड़ा मन में भी उसकी कुछ मिटास रह जाए। यह मुझे ठीक था, हों! उसका त्याग बहुत अच्छा किया। मैले कपड़े रखते, निवृत्ति थी, हिंसादि कुछ करे नहीं, ऐसा था। वे सब कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र थे। उन्हें मन, वचन, काया से छोड़, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तथा अपूर्व जो पहिले न हुआ ऐसा महासत्त्व अर्थात् सब जीवों में व्यापक (ज्ञायक) महासत्त्व (क्या कहे है चेतना भाव है) चेतना भाव को भा। तेरा भाव तो चेतना है। जानना-देखना, वह तेरा भाव है। परभाव तेरे नहीं, पुण्य-पापभाव तेरे नहीं। चेतना... चेतना... चेतना... चेतना... तू त्रिकाली चेतनाभाव तेरा, उसे भा। देखो भाषा की। यह महासत्त्व है। वह चेतनाभाव महासत्त्व, सत्त्व का महासत्त्व है। आत्मा सत्त्व है, उसका महासत्त्व चेतनाभाव है। आहाहा! समझ में आया? पाठ में है, देखो! कुन्दकुन्दाचार्य 'अपुर्वं महासत्त्वं' हे महासत्त्व! महासत्त्व अर्थात् क्या कहा? ... अर्थात् महासत्त्व ... महासत्त्व है। महासत्त्व। यह सत्त्व निकालते हैं न? क्या कहलाता है वह सब ... नहीं सत्त्व निकालते हैं। अमुक का तत्त्व और अमुक का सत्त्व। क्या कहते हैं यह? यह ... का सत्त्व, अमुक का सत्त्व। अर्क, अर्क निकालते हैं न अर्क। इसी प्रकार आत्मा का अर्क महासत्त्व चेतनाभाव है। आहाहा! मैं तो यह चेतनाभाव आनन्द का धारक, जानने-देखनेवाला मेरा महासत्त्व। उसके ऊपर दृष्टि कर और उसकी एकाग्रता कर। उसकी भावना कर। कहो, समझ में आया? लो! ऐसा तो सम्बोधन किया महासत्त्व। सम्बोधन भी हो और महासत्त्व, यह चेतनाभाव है इसका। लो, यह सार में सार शब्द आ गया। चेतन का चेतना महासत्त्व है। भगवान आत्मा का महासत्त्व, महाकस, महाअर्क, महासार चेतनाभाव है। बस वह तू है। उस चेतना की एकाग्रता कर। यह मुक्ति का कारण है और यह धर्म है, लो!

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१४९, गाथा-१३३ से १३७, बुधवार, मगसर कृष्ण ४, दिनांक १६-१२-१९७०

भावपाहुड़, १३३वीं गाथा है, इसका भावार्थ

भावार्थ :- अनादि काल से जीव का स्वरूप चेतनास्वरूप न जाना... क्या कहा ? कि यह जीव जो है, इसका स्वरूप तो चेतना-चेतना जानना-देखना, वह स्वरूप है। वह सत् का महासत्त्व वह है। उसे नहीं जाना। जाने तो दूसरे को मारने का भाव हो नहीं। विकल्प है न, वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। आत्मा का स्वरूप तो जानना-देखना है। उसे नहीं जाना। **इसलिए जीवों की हिंसा की,...** दूसरे जीव को भी चेतनास्वरूप उसका आत्मा है, ऐसा नहीं जाना और अपने को नहीं जाना और दूसरे को मारने के भाव किये। हिंसा की, ऐसा। भाव किये, वह हिंसा करने का भाव किया न ? पर की हिंसा कहाँ कर सकता है ? परन्तु भाव किया। यह हिंसा की।

अतः यह उपदेश है कि अब जीवात्मा का स्वरूप जानकर... जीव का स्वरूप ज्ञान-दर्शन है। प्रगट है न, इस अपेक्षा से ज्ञान-दर्शन कहा। बाकी तो आनन्द आदि उसका स्वभाव है। **जीवात्मा का स्वरूप...** जीवात्मा अर्थात् ? जीव कहो या आत्मा कहो। जीवात्मा अर्थात् जीवस्वरूप, ऐसा। **जानकर, छह काय के जीवों पर दया कर।** छह काय के जीव को नहीं मारना, उस ओर का झुकाव ही छोड़ना। **अनादि ही से आप्त, आगम,...** एक बात। एक बात की छह काय के जीवों को नहीं मारना। दूसरी बात।

अनादि ही से आप्त,... आप्त अर्थात् तीर्थकर अथवा हित के लिये माननेयोग्य ऐसे आप्तपुरुष। **आगम...** भगवान की वाणी और **पदार्थ...** सर्वज्ञ परमात्मा ने कहे हुए पदार्थ। **इनकी सेवा करनेवालों का स्वरूप जाना नहीं,...** ऐसे सेवन करनेवाले जो धर्मात्मा, उनका भी जिसने ज्ञान किया नहीं, **इसलिए अनाप्त आदि छह अनायतन जो मोक्षमार्ग के स्थान नहीं हैं, उनको अच्छे समझकर सेवन किया,...** कुगुरु, कुशास्त्र, कुदेव ये अनायतन हैं। धर्म के स्थान व्यवहार से नहीं हैं।

मुमुक्षु : व्यवहार से नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से धर्म नहीं। व्यवहार से तो सच्चे देव-गुरु-शास्त्र,

वे धर्म के स्थान हैं। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र वे धर्म के आयतन हैं। निश्चय से आयतन तो आत्मा है। आनन्दस्वरूप का आयतन-घर, जो धर्म प्रगट करना है, उसका घर—आयतन तो निजघर है—निज आत्मा है, वह आयतन है। देव-गुरु-शास्त्र को व्यवहार से आयतन कहा जाता है। और उसके विरुद्ध के कुगुरु, कुदेव और कुशास्त्र और उनके सेवन करनेवाले—उनके माननेवाले, ये छह हुए। उन्हें पहिचानना पड़े न? उन्हें पहिचाने बिना छोड़े कैसे और पहिचाने बिना उन्हें जाने किस प्रकार? समझ में आया?

मुमुक्षु : बहुत व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार आता है न? व्यवहार नहीं? व्यवहार अर्थात् परसन्मुख का विकल्प होता है। ऐसा विकल्प होता है, यह बताते हैं। तथापि उसका दृष्टि में निषेध है। परन्तु यहाँ कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को माननेवाले और उन्हें माने, वह तो मिथ्यात्व है—ऐसा है सिद्ध करना है। देखो! चेतनदासजी! प्रकाशदासजी! चेतन और प्रकाश एक होता है न? गुण है और यह सत्त्व है। चेतनाभाव तो महासत्त्व प्रकाश। आहाहा! तेरा स्वरूप, आत्मा का स्वरूप तो चेतना है। जानना-देखना, इसके अतिरिक्त कोई उसके स्वरूप में दूसरा नहीं है। विकल्प या शरीर या वाणी या धूलधाणी कुछ नहीं होता।

यहाँ जिसे कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा है और कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र हैं, वे धर्म के व्यवहार से भी अनावश्यक अनायतन कहे गये हैं। समझ में आया? **अनास आदि छह अनायतन जो मोक्षमार्ग के स्थान नहीं है...** ऐसा। सिद्ध करना है न। यह तो कुदेव और सुदेव का अन्तर करना है न अभी?

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य जैसे महापुरुष को व्यवहार का निषेध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निषेध है न, परन्तु निषेध होने पर भी आये बिना रहता है? वीतराग न हो, तब तक आता है। आवे, जाननेयोग्य है, यह आता है या नहीं? न आवे तो हो गये वीतराग-केवली। आवे और धर्म माने तो हो गया वह मिथ्यादृष्टि। ऐसी बात है। समझ में आया?

अनास आदि... है न? उस आस के सामने अनास, आगम के सामने अनआगम, पदार्थ का स्वरूप विपरीत, उसके माननेवाले, वे छहों अनायतन हैं। धर्म के व्यवहार से

भी स्थान निमित्त भी नहीं है, ऐसा कहते हैं। ऐसे मोक्षमार्ग का ठिकाना नहीं। वह मोक्षमार्ग के स्थान ही नहीं। आहाहा! उनको अच्छे समझकर सेवन किया,... वे भी अच्छे हैं, क्रिया करते हैं, बेचारे लोंच करते हैं, नंगे पैर चलते हैं, गर्म पानी पीते हैं। ऐसे-ऐसे तो काम करते हैं न बेचारे।

मुमुक्षु : बेचारे कहलायें ? वे तो भगवान हैं। भगवान बेचारे हों ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान तो आत्मा का स्वरूप है। वह कहाँ करते हैं वे ? करते हैं तो यह कुदेव की श्रद्धा आदि। तो भगवान कहाँ रहा पर्याय में ? स्वभाव में भगवान है। पर्याय में तो रंक होकर बैठा है। वरांका, भिखारी। आता है या नहीं ? वरांका, रंक है। जरा राग हो तो ऐसे प्रसन्न हो जाए। जरा अनुकूलता, जरा सुविधा, शरीर की कुछ अनुकूलता (हो), वहाँ तो आहाहा! यह देखो! ऐई! चन्द्रकान्तजी!

मुमुक्षु : अनुकूलता तो होती है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब अनुकूलता-प्रतिकूलता तो जड़ की है। उसमें आत्मा को क्या ? ऐसी बात है यहाँ। अन्दर ऐसा कि आहाहा! ... समधी को ... यहाँ से चले न क्या यह ? यहाँ नहीं। दायीं ओर। दायीं ओर बहुत बातें यहाँ करते हैं। आहाहा!

अरे ! शरीर की स्थिति है। कहते हैं कि उसमें अनुकूल क्या और प्रतिकूल क्या ? आज एक आया था। ... अभी बारह वर्ष का लड़का मर गया न। कमलेश नाम का लड़का था। राजकोट का था। मैं यात्रा करने आया हूँ। यात्रा की, भगवान की पूजा करके ऐसे बैठा था। दोनों अगल-बगल में। उसमें काला नाग आया। काला नाग। नीचे उतारा। मर गया। उसका श्मशान कल देखा था। देखो ! यह श्मशान। अब इस श्मशान में आग बहुत है उसे। देखो न दशा ! लिखा है इसमें, हों ! कल ... तो कहे, यह श्मशान है। बारह वर्ष का लड़का। भगवान की पूजा की। चबूतरे बैठा। वह थी, दूसरी दो बहनें थीं। उसमें काला नाग आया। ... वह तो जंगल ही है ऊपर। पोलास होगी उसमें से निकला और निकलकर हो गया। उतारा नीचे। ... उतारा। आशा हुई कि यह जियेगा। परन्तु वह तो काला नाग। पूरे शरीर में जहर चढ़ गया और मर गया। सौ वर्ष में ऐसा हुआ नहीं। पर्वत पर सर्प डंसकर मनुष्य मर जाए, ऐसा नहीं हुआ।

मुमुक्षु : सौ वर्ष में नहीं हुआ और अब हुआ सौ वर्ष पहले हुआ था।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले हुआ होगा। पहले हुआ होगा। यों ही मर जाते हैं बहुत। यह ... नहीं? वे माला गिनते थे उसमें, भगवान के उसमें। अपना अभी ही कोई मर गया नहीं? खुशालचन्द मारवाड़ी। यहाँ से गया, वहाँ चलकर गया। चढ़ते थे, वहाँ आकर... ऐसे तो बहुत मर गये।

मुमुक्षु : दादा बचाते नहीं हों?

पूज्य गुरुदेवश्री : उनकी यात्रा करने आवे, उसे न बचावे? कौन बचावे? किसका बचना भी किसका? शरीर का, आत्मा का? किसका बचना? शरीर की स्थिति वहाँ इतना काल रहने की ऐसी रही। आत्मा को भी वहाँ रहने का, शरीर का वह ... वहाँ रहने का उतना काल रहा। आहाहा! लोगों को कठिन लगता है। बारह वर्ष का जवान लड़का यात्रा करके आया और यह... यात्रा की, पूजा की और नीचे बैठा। उसमें सो गया। क्षण में भरोसा है? यह लड़के लाये थे। लड़का ... वह तो सर्प हो, वह उसका निमित्त ऐसा आवे। जिसे होना हो, वैसा निमित्त उसे आवे। इससे मर गया, वह उससे मरा है, ऐसा कुछ है? स्थिति पूरी होने की है। आहाहा! संयोगी चीज़ है, वह संयोग तो उसके काल जितना रहे। त्रिकाल रहेगा?

यहाँ कहते हैं कि मोक्ष का ठिकाना नहीं, उसे भला जाने और सेवन करे कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का, उसे भला जाने। तुम भी मार्ग में हो, तुम भी सिद्ध हो। तुम भी हो।

मुमुक्षु : सबका समन्वय करना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : समन्वय। यह भी सच्चा... यह भी सच्चा... यह भी सच्चा। जहर और अमृत का समन्वय कभी नहीं होता।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...की अपेक्षा से परन्तु एकान्त अपेक्षा से हो, उसमें कैसी अपेक्षा आयी? अपेक्षा उसे लागू पड़े, वह अपेक्षा हो। अपेक्षा लागू न पड़े, उसकी अपेक्षा कहाँ से आयी? सर्वज्ञ को माने नहीं, सर्वज्ञ की आज्ञा का धर्म क्या? केवली पण्णत्तो, उसकी खबर नहीं होती और यह बाहर के क्रियाकाण्ड तथा व्रत और तप में

धर्म माने। एकदम मूढ है, मिथ्यादृष्टि है। उसको माननेवाले मिथ्यादृष्टि हैं, उसे अच्छे माननेवाले मिथ्यादृष्टि।

मुमुक्षु : सबका एक ही काम।

पूज्य गुरुदेवश्री : बादशाही है न ...

अतः यह उपदेश है कि अनायतन का परिहार कर। देखो! छहों को छोड़। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र के माननेवाले, उनके भक्त, उनका परिचय छोड़, उनकी रुचि छोड़, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है न? 'कुरु दय' स्व की दया कर और ... का 'परिहर' अपूर्व मार्ग है, वह आयतन छोड़। जाने नहीं, ... नहीं। और जीव के स्वरूप के उपदेशक... लो, यहाँ यह लिया। सच्चे जीव के स्वरूप के उपदेशक केवली और गुरु, इन दोनों को पूर्व में जाना नहीं। जाना नहीं। उनका आत्मा ऐसा है, ऐसा जाने तब तो इसे भान हो जाए।

जीव के स्वरूप के उपदेशक ये दोनों ही तूने पहिले जाने नहीं, न भावना की, इसलिए अब भावना कर, इस प्रकार उपदेश है। लो! इसकी पहिचान कर, ऐसे बराबर जान। देव को कुदेव माने, कुदेव को देव माने.... आता है न?



गाथा-१३४

आगे कहते हैं कि जीव का तथा उपदेश करनेवालों का स्वरूप जाने बिना सब जीवों के प्राणों का आहार किया इस प्रकार दिखाते हैं -

दसविहपाणाहारो अणंतभवसायरे भमंतेण।

भोयसुहकारणटुं कदो य तिविहेण सयलजीवाणं ॥१३४॥

दशविधप्राणाहारः अनन्तभवसायरे भ्रमता।

भोगसुखकारणार्थं कृतश्च त्रिविधेन सकलजीवानां ॥१३४॥

अनंत भव-सागर भटकते भोग सुख का हेतु या।

सब जीव दशधा प्राण-युत आहार त्रिविधा तू किया ॥१३४॥

अर्थ - हे मुने ! तूने अनन्त भवसागर में भ्रमण करते हुए, सकल त्रस, स्थावर जीवों के दश प्रकार के प्राणों का आहार, भोग सुख के कारण के लिए मन, वचन, काय से किया ।

भावार्थ - अनादि काल से जिनमत के उपदेश के बिना अज्ञानी होकर तूने त्रस-स्थावर जीवों के प्राणों का आहार किया, इसलिए अब जीवों का स्वरूप जानकर जीवों की दया पाल, भोगाभिलाष छोड़, यह उपदेश है ॥१३४॥

गाथा-१३४ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जीव का तथा उपदेश करनेवाले का स्वरूप जाने बिना... देखो ! जीव का और उपदेश करनेवाले का स्वरूप । ऐसे दोनों । सब जीवों के प्राणों का आहार किया, इस प्रकार दिखाते हैं :- उपदेशक के आत्मा का स्वभाव क्या है, यह जाना नहीं और जीव का स्वरूप जाना नहीं । सब एक ही है जीव का चेतनास्वरूप है, उपदेशक का चेतनास्वरूप है । वह राग विकल्प और शरीर, वह कहीं उसका स्वरूप नहीं है ।

दसविहपाणाहारो अणंतभवसायरे भमंतेण ।

भोयसुहकारणटुं कदो य तिविहेण सयलजीवाणं ॥१३४॥

अर्थ :- हे मुने ! तूने अनन्त भवसागर में... अनन्त भवसागर भवजल । आहाहा ! चौरासी के अवतार, एक-एक भव, ऐसे अनन्त-अनन्त एक-एक योनि के भव, अनन्त काल से यह भवभ्रमण किये, ऐसे भवसागर अनन्त भवसागर । आहाहा ! यह समुद्र तो संख्यात योजन का और स्वयंभू हो तो असंख्यात योजन का, लो । यह अनन्त योजन का-अनन्त काल का । ऐसा । अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त भवसागर, अनन्त भवजल से भरपूर सागर । संसार पूरा । उसमें भ्रमण करते हुए, सकल त्रस-स्थावर जीवों के दश प्रकार के प्राणों का आहार,... तूने उसका आहार ग्रहण किया । अभी ऐसा सिद्ध नहीं करना कि आहार नहीं कर सकता । अभी तो यह आहार करने का भाव किया था, ऐसा कहना है । आहाहा ! कथन है, ऐसा आवे । नहीं तो आहार किया, एक ओर कहते हैं कि आहार कर नहीं सकता । भाई ! व्यवहार में कथन क्या आवे ?

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं कि उसका आहार...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसका अर्थ क्या, स्वयं कहते हैं कि आत्मा एक रजकण भी नहीं ले सकता और नहीं दे सकता। अब इस बात को रखकर यह बात है या दूसरी ?

मुमुक्षु : दोनों बातें सच्ची।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों बातें सच्ची कहाँ से आयी ?

मुमुक्षु : निश्चय से नहीं कर सकता, व्यवहार से कर सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से कर नहीं सकता। आहाहा! यह विवाद ही पूरे नय के दो उल्टे पड़े हैं न।

अनन्त भवसागर में भ्रमण करते हुए, सकल त्रस, स्थावर जीवों के दस प्रकार के प्राणों का... दस प्रकार के प्राण—पाँच इन्द्रिय, मन, वचन, काया, श्वास और आयुष्य। इन प्राणों को तूने मारा, इनका आहार किया। भोग-सुख के कारण के लिये... भोग के लिये और सुख के लिये, व्यर्थ की अनुकूलता के लिये। मन, वचन, काय से किया। मन-वचन और काया से ऐसे पाप किये। आहाहा!

भावार्थ :- अनादि काल से जिनमत के उपदेश के बिना... वीतराग का उपदेश मिला नहीं। अनन्त जीव हैं, ऐसा जाना नहीं। और जीव है, वह चेतनास्वभाव है—ऐसा पहिचाना नहीं। जिनमत के उपदेश के बिना... जिनमत क्यों डाला? कि वस्तु का स्वरूप ऐसा है। दुनिया ऐसा कहे, तुम्हारा जैनधर्म ही एक सच्चा? लो! यह अभी हुआ था वहाँ। जैनधर्म का तुमने एक स्थापित किया। हमारी तो तुमने सब टीकायें कीं हमें आमन्त्रण देकर। ... उपदेश है, ऐसा आवे नहीं कुछ। तत्त्व का उपदेश हो। आहाहा! वीतराग का स्वभाव आत्मा का वीतरागी स्वभाव है। उस स्वभाव को जानकर उपदेश आया है, वह जिनमत का ही उपदेश, वीतराग का ही उपदेश है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! निर्दोष स्वरूप कहो, रागरहित कहो या जिनमत कहो। आत्मा का स्वभाव जिनस्वरूप है, उपदेश में जिनमत का अर्थात् वीतरागी भावस्वरूप आता है।

जिनमत के उपदेश के बिना अज्ञानी होकर तूने त्रस, स्थावर जीवों के प्राणों का आहार किया... लो! त्रस और स्थावर जीव का प्राण आहार किया। इसलिए अब

जीवों का स्वरूप जानकर... जानना-देखना स्वरूप, वह पर को मारना, यह कैसे करे ? कहते हैं। पर को बचाना या मारना, वह जीव के स्वरूप में नहीं है। कठिन काम। चैतन्य ज्ञान-दर्शन स्वरूप है। वह क्या करे ? वह राग करे ? पर का करे ? पर तो भिन्न है। करे किस प्रकार ? अज्ञानरूप से स्वभाव के भान बिना राग करे। इसके अतिरिक्त तो दूसरा कुछ कर नहीं सकता। पर का तो अज्ञानभाव से भी कर नहीं सकता। पर की दया या पर की हिंसा तो अज्ञानभाव से भी कर नहीं सकता। अज्ञानभाव से करे तो निर्विकारी निर्दोष आनन्द को छोड़कर विकार को करे अज्ञानभाव से। बस, इतना। दुकान का धन्धा-बन्धा होशियारी से नहीं होते हों वहाँ ? चन्द्रकान्तभाई ! अभी तक किया है या नहीं सब होशियारी से ? नहीं ? ऐई ! शान्तिभाई ! क्या है तुम्हारा धन्धा ? परन्तु उसमें... होवे न। मुख्य व्यक्ति हो। आहाहा ! कुछ विक्रय कर नहीं सकता, कुछ पैसा ले नहीं सकता। अरे रे ! चेतनास्वरूप वह करे क्या ? जाने कि यह होता है, हुआ, नहीं हुआ। आहाहा !

जीवों का स्वरूप जानकर जीवों की दया पाल, भोगविलास छोड़,... लो ! मूल पाठ था न ? 'भोगसुहकारणट्टं' भोग के सुख के लिये या अनुकूलता के लिये इसने दस प्राण को घात किया, आहार किया। देखो न ! प्याज, लहसुन, आलू, शकरकन्द। कतरकर ऐसे कर-करके, घी में तलकर, तेल में तलकर धणा-जीरा डालकर खाने बैठा हो। बस, ऐसे। पूड़ी और वह आलू की चिप्स। चिप्स करते हैं न गोल चक्कर ? तेल में तले, घी में तले। फिर उसमें मिर्ची डाले, तीखा कहो, क्या कहो ? नमक, मिर्ची। मिर्ची तो न हो उसमें मरी डाले। वह डाले। एक-एक टुकड़े में अनन्त जीव हैं। भुजिया बनाते हैं, नहीं ? यह आलू के भुजिया, प्याज के भुजिया, लहसुन के भुजिया। भुजिया बनावे। भुजिया कहते हैं न ? भुजिया में यह डाले। करे राग, सेवे मिथ्याभ्रम और माने कि मैंने यह खाया और... आहाहा ! सुख के भोग के लिये कहा न ? भोग के सुखकारण से। भोगसुख-भोग का सुख। भोगने का सुख। हमें आनन्द मिला करता है। आहाहा !

ऐसे **जीवों की दया पाल, भोगविलास छोड़,...** लो ! दो बातें की। आनन्द के अनुभव के लिये पर के भोग की अभिलाषा छोड़। आहाहा ! भगवान आनन्दस्वरूप है। उसका भोग कर। तुझे शान्ति और फल में भी शान्ति। यह भोगसुख के लिये तो प्राण का घातना, अपने प्राण का भी घात हो जाना। आहाहा ! संसार में भटकना चौरासी के अवतार में।

गाथा-१३५

फिर कहते हैं कि ऐसे प्राणियों की हिंसा से संसार में भ्रमण कर दुःख पाया -

पाणिवहेहि महाजस चउरासीलक्खजोणिमज्झम्मि ।

उप्पजंत मरंतो पत्तो सि णिरंतरं दुक्खं ॥१३५॥

प्राणिवधैः महायशः! चतुरशीतिलक्षयोनिमध्ये ।

उत्पद्यमानः म्रियमाणः प्राप्तोऽसि निरंतरं दुःखम् ॥१३५॥

हे महायश! प्राणि-वध से लख चउरासी जाति में।

पाए निरन्तर विविध दुःख जन्म ले मरते हुए ॥१३५॥

अर्थ - हे मुने ! हे महायश ! तूने प्राणियों के घात से चौरासी लाख योनियों के मध्य में उत्पन्न होते हुए और मरते हुए निरन्तर दुःख पाया ।

भावार्थ - जिनमत के उपदेश के बिना, जीवों की हिंसा से यह जीव चौरासी लाख योनियों में उत्पन्न होता है और मरता है। हिंसा से कर्मबन्ध होता है, कर्मबन्ध के उदय से उत्पत्तिमरणरूप संसार होता है। इस प्रकार जन्ममरण के दुःख सहता है, इसलिए जीवों की दया का उपदेश है ॥१३५॥

गाथा-१३५ पर प्रवचन

फिर कहते हैं कि ऐसे प्राणियों की हिंसा से संसार में भ्रमण कर दुःख पाया:-
ओहोहो !

पाणिवहेहि महाजस चउरासीलक्खजोणिमज्झम्मि ।

उप्पजंत मरंतो पत्तो सि णिरंतरं दुक्खं ॥१३५॥

शब्द बहुत अच्छे ऊँचे प्रयोग करते हैं। महायश, मुनि को लक्ष्यकर बात करते हैं।

अर्थ :- हे मुने! हे महायश! तूने प्राणियों के घात से चौरासी लाख योनियों के

मध्य में उत्पन्न होते हुए और मरते हुए... उपजते-मरते लिया न? उपजना और मरना निरन्तर दुःख पाया। जन्म और मरना... जन्म और मरना... जन्म और मरना... ओहोहो! निगोद में श्वास में अठारह भव। अठारह बार जन्म और मरण एक श्वास में। ऐसा अनादि-सान्त निगोद में रहा। आहाहा! अनन्त-अनन्त काल। इसका मूल पीहर वह है। उसमें से निकलकर बाहर आया।

हे महायश! तूने प्राणियों के घात से चौरासी लाख योनियों के मध्य में उत्पन्न होते हुए और मरते हुए निरन्तर दुःख पाया। ऐसा सुनकर वह घातपना छोड़ो। यह हो गया धर्म। वापस ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। वह व्यवहार ले लेवे। परन्तु उसका निश्चय रह जाए अन्दर। देखो! छह काय के जीव को भाई! नहीं मारना, दया पालना। देखो! आया या नहीं इसमें? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं या नहीं? आहाहा! परन्तु तू आत्मा नहीं? तू चेतनास्वरूप है या नहीं? तुझे न मारने का विकल्प हो, वह तो तेरी पर्याय में हिंसा होती है। पर की दया का भाव-विकल्प है, वह भी आत्मा की हिंसा है। गजब बात है। बराबर होगा? यह तो दुनिया से अलग प्रकार है। पर की दया का भाव, वह हिंसा। आहाहा! भाई! पर की दया, वह विकल्प उठता है, वह तो राग है। पाँच महाव्रत के परिणाम, वे तो राग हैं। आत्मा की हिंसा होती है। अरे! ऐसा यह मार्ग!

चौरासी लाख योनियों के मध्य में उत्पन्न होते हुए... देखा! योनियों के मध्य में... जैसे मध्य समुद्र में पड़ा। चौरासी के मध्य में। कहीं किनारा नहीं। ऐसा। अनन्त-अनन्त भव के मध्य में मुश्किल से मनुष्यपना मिला, वहाँ फँस गया अन्यत्र। सम्हालने गया अन्यत्र। शरीर का सम्हालना, इज्जत का सम्हालना, पैसे का सम्हालना, कुटुम्ब-कबीला जो कुछ मिला हो, उसे सम्हालना। उन्हें सम्हालने में रुक गया, स्वयं रह गया। उत्पन्न होते हुए और मरते हुए निरन्तर दुःख पाया।

भावार्थ :- जिनमत के उपदेश के बिना, जीवों की हिंसा से यह जीव चौरासी लाख योनियों में उत्पन्न होता है और मरता है... लो! एक-एक अवतार, एक-एक योनि में अनन्त किये। अनन्त बार जन्मा और अनन्त बार उपजा। मिथ्यात्व के कारण। जीव की स्वयं की दया नहीं पाली। मैं चेतनस्वरूप हूँ। राग-विकल्प जो पुण्य का, दया-दान-व्रत का करना, वह भी अपराध है। निरपराधी मेरा स्वरूप है, ऐसा इसने नहीं

जाना। हिंसा से कर्मबन्ध होता है,... इस भाव में हिंसा हुई, उसमें कर्मबन्ध होता है। ऐसे बोल छापे, विरोधवाले। देखो! यह पर की दया को भी हिंसा कहते हैं। भगवान कहते हैं, पर की दया पालना। यह कहे कि (वह हिंसा है)। किस प्रकार की बात है? सुन न! दया का अर्थ? कि तुझमें आत्मज्ञानस्वरूप चैतन्य तू है। किसी भी प्राणी को मारना या बचाने का विकल्प तुझे नहीं हो सकता। ऐसा। तेरा विकल्प भी नहीं हो सकता। विकल्प, वह राग है। आहाहा! तेरी जाति को जाना नहीं, भगवान! तू कौन है। तुझमें यह पर को बचाना या मारना, ऐसी परवृत्ति अनुसार लगनी वस्तु में है नहीं। वह तो चेतनास्वरूप है। ऐसा कहा नहीं? जानना-देखना है। जाननेवाला-देखनेवाला है। आहाहा! वह पर को बचावे-मारने का भाव, वह उसका है? हैं! अपराध है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : करता है, वह कौन करता है? कौन करे? यही कहते हैं न। तब उसमें बैठे रहना क्या? ऐसा और कोई कहे। कौन बैठा रहे और कौन देखे? उस प्रकार का विकल्प आनेवाला हो, वह आता है और पर की क्रिया होनेवाली हो तो होती है। विकल्प आता है और क्रिया न हो। न तो ऐसा हो जाए। पैर फिसल जाए, जहाँ वह करने जाए। जहाँ वह जड़ की क्रिया, वह आत्मा की कहाँ थी? आहाहा! गजब।

भगवान की यात्रा करने गया और मर गया बीच में वहाँ शत्रुंजय। भगवान ने कुछ रखा नहीं वहाँ कि यह मेरी यात्रा करने आया है, इसलिए यहाँ सर्प नहीं डसना चाहिए। हैं! यात्रा करने के बाद बैठा था चबूतरे पर। आहाहा! किस भाव से गया होगा बेचारा? हैं! पालीताणा। बारह वर्ष का था। राजकोट का है, ऐसा कहते हैं। सर्प निकला। वापस डसा। वहाँ छिद्र होते हैं और जंगल है न ऊपर। कुछ छिद्र हो और सर्प पड़े हों। वहाँ आया। आहाहा! ऐसे अवतार तो अनन्त किये हैं, भाई! जहाँ नहीं, वहाँ माना है और है, वहाँ माना नहीं। स्वयं तो जाननेवाला-देखनेवाला स्वरूप है। उसे तो अपने अस्तित्व को माना नहीं और अपने में नहीं शरीर, वाणी, मन, जड़, धूल, पुण्य-पाप के भाव, वे अपने में नहीं। नहीं, उन्हें माना और है, उसे माना नहीं। ऐसा अनादि का भ्रम है। आहाहा! समझ में आया? इसकी इसे दया नहीं आयी, हों! किसकी? स्वयं

की। अरे! मैं यह भटकता हूँ चौरासी के अवतार में। कहाँ कहाँ जाऊँगा? कहाँ मरूँगा? कहाँ जन्मा? अनन्त भवसागर, उसमें मेरा क्या? उसमें मेरा क्या? और यह तेरा क्या? लो! लिया न? मैं, तू और वह। उसमें लिखा है। तू। तू जहाँ मानता है, वहाँ तू नहीं है और मैं, तू मानता है, वहाँ तू नहीं है। ... शब्द प्रयोग किया है। पण्डितजी ने कुछ लिया है।

लो! पुण्य-पाप और विकल्प है, शरीर, वाणी है, वहाँ तू नहीं। वह तो एक विकार है और शरीर वह तो अजीव है। उसमें तू नहीं। जिसमें तूने माना, वहाँ तू नहीं। और जिसमें तूने मैं माना, वहाँ भी तू नहीं। तू तो जानने-देखनेवाला आत्मा भिन्न चैतन्यतत्त्व है। आहाहा! भारी काम, भाई! आत्मा को पहिचानना—आत्मा को पहिचानना। वह आत्मा क्या चीज़ है, उसकी पहिचान होने पर उसका जगत की चीज़ का माहात्म्य घट जाता है। आहाहा! करने का यह नहीं किया और नहीं करने का कर बैठा अनादि से। और हम कुछ करते हैं और हम कुछ बढ़े। माँ-बाप नहीं छोड़ गये थे और फिर कमाकर दो-पाँच-दस लाख इकट्ठे किये, हजार, दो हजार का वेतन किया। पाँच हजार का। ... दस हजार का, लो न। आहाहा! क्या है?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे भान नहीं। उसकी वहाँ रुचि नहीं। जिसमें जिसकी रुचि, उसमें उसका पुरुषार्थ गति किये बिना रहता नहीं। जिसकी आवश्यकता जाने, उसमें उसका वीर्य-पुरुषार्थ काम किये बिना रहता नहीं। आवश्यकता मानता नहीं कि यह मुझे आवश्यक है। स्त्री, पुत्र ठीक से निभना, अपना कुटुम्ब जिस लाईन में हो, उस लाईन की विधि में न्यूनता नहीं आना चाहिए। ऐई! धनजीभाई! यह सब पुराने लोग हैं, लो! उसमें भी तेरा कुल कौन सा? तेरा कुल तो सिद्ध का कुल है, वहाँ आत्मा का कुल है। वह कुल कब था तेरा? धूल का कुल वह तो मरकर चला जाता है। वह कुल पड़ा रहता है ऐसा का ऐसा। वह कुल कहाँ तेरा था? 'अे अम कुण वट रीत...' आता है न? आनन्दधनजी। हमारे कुल की वट की रीति तो परमात्मा जो तू अन्तर मार्ग में चला, उस मार्ग में हम चलनेवाले हैं। यह हमारे कुल की वट-रीति है। इस धूल में क्या? मर गया। मरकर चला गया। आहाहा! क्षणिक में था कब? उसकी पर्याय में कहाँ आया

कुटुम्ब ? क्षणिक विकार है। कुटुम्ब तो एक पर्याय में भी आया नहीं। कुटुम्ब कुटुम्ब के स्थान में रहा। आहाहा! भ्रमणा भी भ्रमणा।

जिसके त्रिकालपने में तो विकार भी नहीं और जिसकी एक समय की पर्याय में शरीर और कर्म तथा कुटुम्ब नहीं। हैं! आहाहा! त्रिकाली भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु में तो विकार भी नहीं, दया, दान का विकल्प भी नहीं। पर्याय में है। परन्तु पर्याय में कुटुम्ब-कबीला और पैसा नहीं। आहाहा! त्रिकाल में नहीं और विकार मेरा माना और पर्याय में नहीं कुटुम्ब-कबीला, उसे मेरा माना दोनों अज्ञानी की भ्रमणा है। आहाहा! क्या कराना है परन्तु तुम्हारे ऐसा कहकर? बाबा करना है तुम्हें? बाबा अर्थात्? यह साधु हो जाए, वह कहीं सच्चा बाबा नहीं। उसे अभी अन्तर का भान नहीं, वहाँ बाबा कैसा?

यहाँ तो अन्तर में राग नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं, पुण्य नहीं, दया-दान के परिणाम नहीं। ऐसा आत्मा है। ऐसा है, उसे निवृत्तस्वरूप, राग से अभावस्वरूप, पर से अभावस्वरूप, उसकी महासत्ता का स्वीकार कर, तुझे पर की महत्ता-महिमा उड़ जाएगी। संसार रहेगा नहीं। समझ में आया? संसार अर्थात् वह रागभाव, हों! स्त्री-पुत्र कहाँ संसार (था)? वह तो उसके घर में (रहे) बेचारे। स्त्री-पुत्र कहाँ संसार है? वह तो उनके भाववाले हैं। मूल तत्त्व को जाना नहीं। इसके बिना दुनिया के लिये सब किया। समझ में आया? आहाहा! जादवजीभाई!

कहते हैं, ओहो! हिंसा से कर्मबन्ध होता है, कर्मबन्ध के उदय से उत्पत्ति-मरणरूप संसार होता है। देखो! भाषा। पाठ में है न? 'उष्पजंत मरंतो' भगवान चेतनास्वरूप है। इसके अतिरिक्त उससे दूसरी चीज़ को अपनी माना, (वह) अपनी हिंसा की और इस कारण से कर्मबन्धन हुआ। उसके कारण से कर्मबन्धन से उपजना और मरना खड़ा हुआ अनादि से। इस प्रकार जन्म-मरण के दुःख सहता है... ओहो! अनन्त काल से ऐसे जन्म-मरण के दुःख। 'उत्पद्यमानः म्रियमाणः प्राप्तोऽसि निरंतरं दुःखम्' मूल तो अन्दर दुःख एकत्वबुद्धि का है परन्तु निमित्त से कथन किया है। जरा-मरण का दुःख है। जन्म-मरण का दुःख है। समझ में आया?

गाथा-१३६

आगे उस दया ही का उपदेश करते हैं -

जीवाणमभयदाणं देहि मुणी पाणिभूयसत्ताणं ।
कल्लाणसुहणिमित्तं परंपरा तिविहसुद्धीए ॥१३६॥

जीवानामभयदानं देहि मुने प्राणिभूतसत्त्वानाम् ।
कल्याणसुखनिमित्तं परंपरया त्रिविधशुद्धया ॥१३६॥

दो सन्तति कल्याण सुख-हेतु त्रिविध शुद्धि-सहित।
इन भूत प्राणी सत्त्व जीवों को अभय का दान नित ॥१३६॥

अर्थ - हे मुने ! जीवों को और प्राणीभूत सत्त्वों को परम्परा से अपना कल्याण और सुख होने के लिए मन, वचन, काय की शुद्धता से अभयदान दे।

भावार्थ - 'जीव' पंचेन्द्रियों को कहते हैं, 'प्राणी' विकलत्रय को कहते हैं, 'भूत' वनस्पति को कहते हैं और 'सत्त्व' पृथ्वी, अप्, तेज, वायु को कहते हैं। इन सब जीवों को अपने समान जानकर अभयदान देने का उपदेश है। इससे शुभ प्रकृतियों का बंध होने से अभ्युदय का सुख होता है, परम्परा से तीर्थकरपद पाकर मोक्ष पाता है, यह उपदेश है ॥१३६॥

गाथा-१३६ पर प्रवचन

आगे उस दया ही का उपदेश करते हैं :-

जीवाणमभयदाणं देहि मुणी पाणिभूयसत्ताणं ।
कल्लाणसुहणिमित्तं परंपरा तिविहसुद्धीए ॥१३६॥

अर्थ :- हे मुने! जीवों को और प्राणीभूत सत्त्वों को अपना परम्परा से कल्याण और सुख होने के लिये मन, वचन, काय की शुद्धता से अभयदान दे। देखो! अब इसमें डालना हो तो डाले उल्टा। यहाँ तो दूसरा कहते हैं कि आत्मभान तो है, सम्यग्दर्शन

तो है। शुद्धता से अभयदान दे, ऐसा कहा है न? 'तिविहसुद्धीए' भाई! ऐसा शब्द है न? पाठ देखो! 'तिविहसुद्धीए' शुद्धि। अन्दर आत्मा पुण्य-पापरहित, विकल्परहित, ऐसा भान है। अभी उसे वीतरागता हुई नहीं, इसलिए उसमें ऐसे भाव दया के आते हैं। वह परम्परा से उनका अभाव करके अशुद्धभाव टालकर, अभी यह है, उसे टालकर परम्परा केवल (ज्ञान) लेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तब वे ऐसा कहते हैं कि आत्मा का भान भले न हो। यह दया पालने से, परम्परा से मुक्ति होगी, यह भगवान कहते हैं यहाँ तो। लो!

मुमुक्षु : यहाँ तो लिखते हैं परम्परा...

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा 'तिविहसुद्धीए' उसे परम्परा होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मन, वचन और काया से भगवान आत्मा भिन्न है, चैतन्यमूर्ति है। स्फटिक चैतन्य का स्फटिकरत्न आत्मा है। उसे मन, वचन, काया द्वारा भिन्न जाना है, उसकी दृष्टि हुई है, उसमें पूर्णता नहीं; इसलिए बीच में ऐसे भाव उसे आते हैं। अभयदान। अपने को भी अभय देता है, दूसरे को अभय दे, ऐसा एक विकल्प है। वह परम्परा अर्थात् विकल्प को छोड़कर क्रम से, अनुक्रम से निर्विकल्प होगा। जिसे आत्मा की शुद्धता का ही भान नहीं, वह पर की दया के भाव को ही धर्म मानता है। उसे परम्परा कहाँ रही? यह तो कहे, यह मेरा धर्म है, ऐसा कहता है। जिसने धर्म माना नहीं दया, दान में परन्तु स्वरूप में स्थिर नहीं हो सकता, इसलिए ऐसे भाव आते हैं। और यदि अकेली शुद्धता हो, तब तो साक्षात् मुक्ति का कारण हो। परन्तु अकेली शुद्धता नहीं है, अशुद्धता पूर्ण नहीं, शुद्धता शुरु हो गयी है और उसमें अशुद्धता इस प्रकार की आती है। व्यवहार के विकल्प की। ऐसी बात है कि....

कल्याण... देखो! परम्परा कल्याण और सुख... ... है न? 'कल्लाणसुहणिमित्तं' होने के लिये मन, वचन, काय की शुद्धता से अभयदान दे। शुद्ध-शुद्ध भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा के भाव में रहा हुआ तत्त्व, उसका भान जहाँ है, ऐसी शुद्धता की भूमिका में पर को बचाने का और अपने को बचाने का भी एक विकल्प—राग उठता है, उसे परम्परा से कल्याण और सुख का कारण होता है। लो, इस परम्परा में विवाद। इसका

अर्थ कि अभी शुद्धता तो है। अशुभ अशुद्धता से बचा है। शुभभाव है अशुद्ध, उसे फिर टालकर शुद्धता करेगा। उपयोग में; दृष्टि में तो शुद्धता ही है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : अभयदान दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : तेरे आत्मा को अभयदान दे। राग से निर्भय हो। चौरासी के अवतार में डूबते को बचा। अनन्त भवसागर में भटक रहा है। आहाहा! प्रत्यक्ष (दिखता है), मरे, यहाँ कोई सामने देखता है? ऐसे टग-टग देखा करता है। भाई की स्थिति कठिन है, हों! सब अभी ध्यान रखना, हों! रात्रि में जाग-उजागरा (जागरण) करना, ऐसा करना। व्याधि कठोर आयी है। इसका अर्थ यह कि कब निपट जाएगा। लो! ... किया क्या तब तुमने उसे? आहाहा! कौन था तेरा कि तुझे तेरा करे? वह परचीज़ वह तुझे करे, वह किस प्रकार करे? तू भिन्न, वह चीज़ भिन्न। आहाहा! भरे घर में से अकेला चला जाए। भरा घर अन्दर में से बाहर निकल गया है। उसकी खबर नहीं होती। मेरा आत्मा आनन्दस्वरूप से चेतन के महातत्त्व से भरपूर है। सर्वज्ञ पद है आत्मा। सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा, उसे राग के कण की तो आशा ... परन्तु अल्पज्ञ रहना, वह उसका स्वभाव नहीं। आहाहा! ऐसे आत्मा की दृष्टि होने पर फिर शुभभाव में ऐसा होता है। अब चार की व्याख्या करते हैं।

भावार्थ :- जीव पंचेन्द्रियों को कहते हैं,... यहाँ चार अलग नाम करना है न? 'प्राणिभूतसत्त्वानाम् जीवानाम्' ऐसे चार हैं न? 'जीवानाम प्राणिभूतसत्त्वानाम्' पंचेन्द्रिय को जीव कहते हैं। प्राणी विकलत्रय को कहते हैं,... दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय को प्राणी कहा जाता है। भूत वनस्पति को कहते हैं... बहुत काल वहाँ रहती है न। वनस्पति यह आलू, शकरकन्द, लहसुन, प्याज, यह सब अनन्त जीव उनमें हैं। अनन्त आत्मा के थोक के थोक भरे हैं। आहाहा! जिसे अँगुली छूने से अनन्त मरे। उसे काटकर पकाकर सेंके तो सब चूरा। वह इस उत्साह में खाये। कहते हैं कि छोड़। ऐसे जीवों की दया पाल, ऐसा कहते हैं। सबकी है न दया।

सत्व पृथ्वी अप... यह पृथ्वी के जीव। आहाहा! चार को भिन्न किया। भूत को वनस्पति में डाला। त्रस के दो भाग किये। त्रस के दो भाग—दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय,

चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। इस एकेन्द्रिय के दो भाग। पूरा बड़ा भाग वनस्पतिवाला। ... आहाहा! बड़ा वह ही है न? उसे भूत कहा। पंचेन्द्रिय को पृथक् पाड़कर विकलत्रय को भिन्न किया। ऐसे दो भाग किये। क्योंकि यहाँ जीव का क्षयोपशमभाव पंचेन्द्रिय में अधिक है न? ऐसा। **इन सब जीवों को अपने समान जानकर...** वे सब आत्मा हैं। ज्ञान और दर्शन के भण्डार हैं सब। तू भी ज्ञान और दर्शन का चैतन्य सत्त्व है। वह भी ज्ञान और दर्शन का सत्त्व वह आत्मा है। उसमें शरीर, वह कहीं आत्मा नहीं, वह तो जड़ है। जैसे तू तुझे राग और पर्यायबुद्धि से भिन्न देखता है, वैसे उन्हें भी ऐसा देख। ज्ञान का सत्त्व है, आनन्द का धाम है, वे सब आत्मायें (ऐसे हैं)। आहाहा! **अभयदान देने का उपदेश है। इससे शुभ प्रकृतियों का बन्ध होने से...** लो! ठीक! उसमें पुण्यबन्ध होता है। **अभ्युदय का सुख होता है,...** वह पुण्य। बाहर सामग्री मिले इन्द्रादि की, तीर्थकरादि की, गणधरादि की इत्यादि।

परम्परा से तीर्थकरपद पाकर मोक्ष पाता है,... लो! तीर्थकर हो। पहले इस प्रकार शुभभाव होता है, अशुभ से बचने को। फिर शुभ को छोड़कर शुद्ध करेगा। दृष्टि में तो अभी ही शुभ का हेयपना है। उसमें हेयपना होने पर भी अस्थिरता है, इसलिए फिर हेयपना है, ऐसी स्थिरता करके छोड़ेगा। ऐसा। **पाकर मोक्ष पाता है, यह उपदेश है।** लो! गड़बड़-गड़बड़। और अकेला फिर उतर गया बाहर की क्रिया में। दया पालना, यह करना। किसकी अपेक्षा से बात चलती है? यहाँ तो अपनी दया पाली है, रागरहित आत्मा शुद्ध चैतन्य का भान है, किसी की दया पालने की मुझमें शक्ति नहीं परन्तु मुझमें विकल्प दूसरे को नहीं मारने का आता है, वह भी प्रकृति का-बन्ध का कारण है। वह कहीं धर्मरूप नहीं। मेरी धर्मदशा पूर्ण नहीं, इसलिए ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता। समझ में आया? लो, उपदेश है। देखो! तीर्थकर रखे इसमें बड़ा। परम्परा से। यह सम्यग्दृष्टि की बात है।

मुमुक्षु : सर्वत्र सम्यग्दृष्टि...

पूज्य गुरुदेवश्री : बात दूसरे की है कहाँ? आत्मा का भान नहीं और दया, व्रत, भक्ति करे, वह तो सब मिथ्यात्व, अज्ञान में है।

गाथा-१३७

आगे यह जीव षट् अनायतन के प्रसंग से मिथ्यात्व से संसार में भ्रमण करता है उसका स्वरूप कहते हैं। पहिले मिथ्यात्व के भेदों को कहते हैं -

असियसय किरियवाई अक्किरियाणं च होइ चुलसीदी ।
 सत्तडी अण्णाणी वेणईया होंति बत्तीसा ॥१३७॥
 अशीतिशतं क्रियावादिनामक्रियमाणं च भवति चतुरशीतिः ।
 सप्तषष्टिरज्ञानिनां वैनयिकानां भवति द्वात्रिंशत् ॥१३७॥
 हैं एक सौ अस्सी क्रियावादी चुरासी अक्रिया।
 षड्षठ अज्ञानी वैनयिक बत्तीस जिनवर ने कहा ॥१३७॥

अर्थ - एक सौ अस्सी क्रियावादी हैं, चौरासी अक्रियावादियों के भेद हैं, अज्ञानी सड़सठ भेदरूप हैं और विनयवादी बत्तीस हैं।

भावार्थ - वस्तु का स्वरूप अनन्तधर्मस्वरूप सर्वज्ञ ने कहा है, वह प्रमाण और नय से सत्यार्थ सिद्ध होता है। जिनके मत में सर्वज्ञ नहीं है तथा सर्वज्ञ के स्वरूप का यथार्थरूप से निश्चय करके उसका श्रद्धान नहीं किया है ऐसे अन्यवादियों ने वस्तु का एकधर्म ग्रहण करके उसका पक्षपात किया कि हमने इस प्रकार माना है वह 'ऐसे ही है, अन्य प्रकार नहीं है।' इस प्रकार विधि-निषेध करके एक-एक धर्म के पक्षपाती हो गये उनके ये संक्षेप से तीन सौ तरेसठ भेद हो गये।

क्रियावादी - कई तो गमन करना, बैठना, खड़े रहना, खाना, पीना, सोना, उत्पन्न होना, नष्ट होना, देखना, जानना, करना, भोगना, भूलना, याद करना, प्रीति करना, हर्ष करना, विषाद करना, द्वेष करना, जीना, मरना इत्यादि क्रियायें हैं। इनको जीवादिक पदार्थों के देखकर किसी ने किसी क्रिया का पक्ष किया है और किसी ने किसी क्रिया का पक्ष किया है। ऐसे परस्पर क्रियाविवाद से भेद हुए हैं, इनके संक्षेप में एक सौ अस्सी भेद निरूपण किये हैं, विस्तार करने पर बहुत हो जाते हैं।

कई अक्रियावादी हैं, ये जीवादिक पदार्थों में क्रिया का अभाव मानकर आपस

में विवाद करते हैं। कई कहते हैं कि जीव जानता नहीं है, कई कहते हैं कि कुछ करता नहीं है, कई कहते हैं कि भोगता नहीं है, कई कहते हैं उत्पन्न नहीं होता है, कई कहते हैं नष्ट नहीं होता है, कई कहते हैं कि गमन नहीं करता है और कई कहते हैं कि ठहरता नहीं है इत्यादि क्रिया के अभाव के पक्षपात से सर्वथा एकान्ती होते हैं। इनके संक्षेप से चौरासी भेद हैं।

कई अज्ञानवादी हैं, इनमें से सर्वज्ञ का अभाव मानते हैं, कई कहते हैं जीव अस्ति है – यह कौन जाने ? कई कहते हैं जीव नास्ति है – यह कौन जाने ? कई कहते हैं, जीव नित्य है – यह कौन जाने ? कई कहते हैं जीव अनित्य है – यह कौन जाने ? इत्यादि संशय-विपर्यय-अनध्यवसाय रूप होकर विवाद करते हैं। इनके संक्षेप से सड़सठ भेद हैं। कई विनयवादी हैं, उनमें से कई कहते हैं, देवादिक के विनय से सिद्धि है, कई कहते हैं, गुरु के विनय से सिद्धि है, कई कहते हैं कि माता के विनय से सिद्धि है, कई कहते हैं कि पिता के विनय से सिद्धि है, कई कहते हैं कि राजा के विनय से सिद्धि है, कई कहते हैं कि सबके विनय से सिद्धि है, इत्यादि विवाद करते हैं। इनके संक्षेप से बत्तीस भेद हैं।

इस प्रकार सर्वथा एकान्तवादियों के तीन सौ तरेसठ भेद संक्षेप से हैं, विस्तार करने पर बहुत हो जाते हैं, इनमें कई ईश्वरवादी हैं, कई कालवादी हैं, कई स्वभाववादी हैं, कई विनयवादी हैं, कई आत्मवादी हैं। इनका स्वरूप गोम्मटसारादि ग्रन्थों से जानना, ऐसे मिथ्यात्व के भेद हैं ॥१३७॥

गाथा-१३७ पर प्रवचन

आगे यह जीव षट् अनायतन के प्रसंग से मिथ्यात्व से संसार में भ्रमण करता है... लो! कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और उनके सेवन करनेवाले। उनका प्रसंग अर्थात् परिचय, उनकी श्रद्धा, उसके कारण मिथ्यात्व से-मिथ्याश्रद्धा के कारण संसार में भ्रमता है। चार गति में भटकता है। उसका स्वरूप कहते हैं। पहले मिथ्यात्व के भेदों को कहते हैं – मिथ्यात्व की व्याख्या अब, लो! यह चार भेद आते हैं न? क्रियावादी और अक्रियावादी। मिथ्यात्व की गृहीत की बात है। गोम्मटसार में है।

असियसय किरियवाई अक्किरियाणं च होइ चुलसीदी ।

सत्तट्टी अण्णाणी वेणईया होंति बत्तीसा ॥१३७॥

अर्थ :- एक सौ अस्सी क्रियावादी हैं, ... क्रिया को धर्म माननेवाले । चौरासी अक्रियावादियों के भेद हैं, ... आत्मा में रागादि का अत्यन्त अभाव है, ऐसा मानकर वे अक्रिया अर्थात् उसका परिणमन भी नहीं मानते । आत्मा का परिणमन जो क्रिया है, उसे मानते नहीं । ऐसे अक्रियावादी । अज्ञानी सडसठ भेदरूप हैं और विनयादि बत्तीस हैं । सबको चरणवन्दन करना । अपने सबको जय नारायण करना । किसी को छोटे-छोटे नहीं मानना । यह बड़े और अच्छे । अपने सब नारायण । अभी आया था न वहाँ ? किस गाँव में ? नहीं ? फतेहपुर । फतेहपुर में पाटीदार है । ... प्रणाम माननेवाले । जामनगर में है न ? प्रणाम धर्म । ... को माननेवाले । वे लोग क्यों आते नहीं ? वे अपने को दूसरे प्रकार से माने । अपने उन्हें गृहीत मिथ्यात्व में मानते हैं । वे दूसरे प्रकार से मानते हैं । ... पाटीदार है । ... पच्चीस हजार निकाले । उनका महोत्सव करनेवाले हैं । सबको बुलाकर । ... हमारे और उन्हें मेल सही परन्तु व्यवहार धर्म में नहीं विष्णु जो पाटीदार हो वे तो आवे... परन्तु यह तो ... हमारा धर्म बहुत ऊँचा है । सबके साथ विनय करना, प्रणाम करना । किसी को हाँ, ना नहीं । यह तो ... विनय करना नहीं ? विनय ।

भावार्थ :- वस्तु स्वरूप अनन्त धर्मस्वरूप सर्वज्ञ ने कहा है, ... लो ! परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा तीर्थकरदेव, सर्वज्ञदेव जो सर्वज्ञपद प्रत्येक आत्मा का है, ऐसा पद जिसने पर्याय में प्रगट किया है, ऐसे सर्वज्ञ भगवान ने जो अनन्त धर्मस्वरूप पदार्थ कहा, वस्तुस्वरूप, वह प्रमाण और नय से सत्यार्थ सिद्ध होता है । निश्चय और व्यवहारनय से सधता है और पूरी चीज़ प्रमाण से सिद्ध होती है । कैसे द्रव्य है, कैसे पर्याय है, कैसे द्रव्य-पर्याय का पूरा रूप है, यह भगवान ने कहा, उस प्रकार से सिद्ध होता है । अज्ञानियों ने कहा, उसमें किसी से सिद्ध नहीं होता ।

वस्तु स्वरूप अनन्त धर्मस्वरूप सर्वज्ञ ने कहा है, वह प्रमाण और नय से सत्यार्थ सिद्ध होता है । बराबर सच्चा भगवान ने कहा, वह सिद्ध होता है । अज्ञानी ने कही हुई वह बात कोई सत्य/सच्ची नहीं है । जिनके मत में सर्वज्ञ नहीं है... जिसके मत

में तीन काल-तीन लोक जाने ऐसे भगवान हुए नहीं तथा सर्वज्ञ के स्वरूप का यथार्थरूप से निश्चय करके उसका श्रद्धान नहीं किया है... दूसरा बोल। क्या कहा? एक तो जिसके मत में सर्वज्ञ नहीं, वे भी विपरीत है और जिसके होते हैं, उनके स्वरूप का यथार्थरूप से निश्चय करके उसका श्रद्धान नहीं किया है... लो! जैन में सर्वज्ञ है, परन्तु उन सर्वज्ञ का स्वरूप कैसा है, वैसा न जाना। समझ में आया? पाँचवाँ अध्याय, छठवें अध्याय में गृहीत लिया वहाँ। सर्वज्ञ है ही नहीं उसके मत में। और यह सर्वज्ञ है। निश्चय-व्यवहार को माने परन्तु क्या उसका स्वरूप है, ऐसा मानता नहीं।

जिनके मत में सर्वज्ञ नहीं है तथा सर्वज्ञ के स्वरूप का यथार्थरूप से निश्चय करके... आहाहा! एक समय में तीन काल—तीन लोक जाने, ऐसी जो सर्वज्ञ की पर्याय, उसे यथार्थ निर्णय करके जाने तो उसे आत्मा का दर्शन हो। उसका श्रद्धान नहीं किया है... उसकी पहिचान (की नहीं)। ऐसे माना सर्वज्ञ है, परन्तु सर्वज्ञ कैसे होते हैं? जिन्हें एक समय की दशा में तीन काल—तीन लोक अपनी पर्याय के सामर्थ्य में ज्ञात हो जाए, ऐसे सामर्थ्य की श्रद्धा यथार्थ की, वाडा में रहते हुए भी, ऐसा कहते हैं।

ऐसे अन्यवादियों ने वस्तु का एक धर्म ग्रहण करके... पूर्ण स्वरूप जाना नहीं और पूर्ण स्वरूप के जाननेवाले हैं, ऐसी यथार्थ श्रद्धा की नहीं। इसलिए उन्हें एक धर्म ग्रहण करके उसका पक्षपात किया कि हमने इस प्रकार माना है, वह ऐसे ही है,... ऐसा। आत्मा नित्य है तो नित्य ही है। अनित्य है तो अनित्य ही है। क्रियावादी तो क्रियावादी है। अन्य प्रकार नहीं है। इस प्रकार विधि-निषेध करके... देखो! इस प्रकार विधि... ऐसा नहीं (निषेध) देखो! ऐसे ही है, अन्य प्रकार नहीं है। इस प्रकार विधि-निषेध करके एक-एक धर्म के पक्षपाती हो गये, उनके ये संक्षेप से तीन सौ त्रेसठ भेद हो गये। लो! तीन सौ त्रेसठ भेद हैं। उनकी व्याख्या करेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१५०, गाथा-१३७ से १४१, गुरुवार, मगसर कृष्ण ५, दिनांक १७-१२-१९७०

क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी। ये सब ३६३ मिथ्यादृष्टि सब पाखण्ड के बोल हैं। अनादि काल से ऐसे एकान्त पक्ष को मानकर मिथ्यात्व को सेवन कर भटकते हैं, यह बताते हैं। पहले क्रियावादी की बात (करते हैं)। **कई तो गमन करना,...** चलना-चलना। यह क्रिया ही आत्मा की है, ऐसा मानना है। एक-एक क्रिया का पक्ष करते हैं। **बैठना,...** शरीर की क्रिया को अपनी माने परन्तु अन्दर की गति है क्रिया आदि, वह भी एक-एक क्रिया का पक्ष करके अपने स्वरूप को अखण्ड-अभेद है, उसे भूलते हैं। **खड़े रहना,...** खड़े रहना। ऐसी-ऐसी क्रियाओं को एक-एक पक्ष को माननेवाले, ऐसा। **खाना, पीना, सोना, उत्पन्न होना, नष्ट होना, देखना, जानना,...** यह क्रिया। लो, यहाँ तक ले गये। देखने और जानने की क्रिया। इतना ही आत्मा है, एक-एक क्रिया को माननेवाले ऐसे ३६३ (मत हैं)। गोम्मटसार में....

देखना, जानना, करना,... कुछ करना। किये बिना कुछ आत्मा रहे? अक्रिय आत्मा हो? ऐसा करके एक ही पक्ष को करना, ऐसा मानकर। **भोगना...** कुछ भोगना। **भूलना,...** भूल जाना। **याद करना,...** याद करना। इन सब क्रियाओं में से एक-एक पक्ष को आत्मा को माने। **प्रीति करना, हर्ष करना, विषाद (खेद) करना, द्वेष करना, जीना, मरना,...** लो, पर्याय में। जन्म और मरण, वह पर्याय का है। **इत्यादिक क्रिया हैं;** इनको जीवादिक पदार्थों के देखकर... उसे जीव और अजीव आदि सबमें, हों!

किसी ने किसी क्रिया का पक्ष किया है और किसी ने किसी क्रिया का पक्ष किया है। कोई किसी का पक्ष (करके) क्रिया एकान्त मानता है। अखण्ड अभेद चैतन्यवस्तु की उसे खबर नहीं। **ऐसे परस्पर क्रियाविवाद से भेद हुए हैं,...** लो! क्रिया के भेद पड़कर यह सब विवाद खड़े हुए। परन्तु आत्मा का सर्वज्ञ ने कहा हुआ तत्त्व, ऐसा अखण्ड तत्त्व उसकी दृष्टि में आया नहीं, कथन में सुनने में आया (नहीं), सुनने में आया तो माना नहीं।

और अक्रियावादी। **ये जीवादिक पदार्थों में क्रिया का अभाव मानकर... लो!**

जीव में कुछ क्रिया ही नहीं। वह तो एकदम ध्रुव कूटस्थ है। कई कहते हैं जीव जानता नहीं है, ... ठीक! जानने की क्रिया और जीव में कैसी? लो, वह अक्रियावादी। जानने की क्रिया। जानना क्या? जानना क्रिया क्या? उसे नहीं माननेवाले। जानने की क्रिया को नहीं माननेवाले। क्रिया का अभाव मानकर आपस में विवाद करते हैं। कई कहते हैं जीव जानता नहीं है, कई कहते हैं कुछ करता नहीं है, ... उसमें परिणमन ही नहीं। शुद्धादि पर्याय का परिणमन और ऐसी कुछ क्रिया नहीं, ऐसा माने।

कई कहते हैं भोगता नहीं है, ... भोगे क्या आत्मा? लो! पर्याय में भोगना है, उसे एकान्त भोगता ही नहीं, ऐसा माने। कई कहते हैं उत्पन्न नहीं होता है, ... उपजे कौन? कई कहते हैं नष्ट नहीं होता है, ... उत्पाद-व्यय नहीं, ऐसा। कई कहते हैं गमन नहीं करता है... आत्मा में हिलना-चलना कैसा? कई कहते हैं ठहरता नहीं है इत्यादि क्रिया के अभाव के पक्षपात से सर्वथा एकान्ती होते हैं। इनके संक्षेप से चौरासी भेद हैं। लो! वे सब मिथ्यात्ववादी के भेद हैं। उन्हें जानना चाहिए और जानकर छोड़ना चाहिए।

मुमुक्षु : इतने सब जानने कब बैठे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : संक्षिप्त में समझ में आये या नहीं कि कौन है क्रियावादी, अक्रियावादी, ऐसा है। बहुत प्रकार की विपरीतताएँ घुस गयी हैं तो इतना सामने (समझना चाहिए)। समझे बिना विपरीतता (निकले नहीं)। जिसे बहुत नहीं घुसी, उसे थोड़े में सब समझ में आ जाए। बहुत विपरीतता घुस गयी हो, उसे तो बहुत प्रकार की सामने समझ बिना यह सब विपरीतता जाए नहीं।

कई अज्ञानवादी हैं, ... इसमें कुछ सूझ पड़ती नहीं इसमें कुछ। उसके चौरासी भेद हैं। इनमें कई तो सर्वज्ञ का अभाव मानते हैं, ... अज्ञानी (कहते हैं), सर्वज्ञ होते नहीं। एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसा सर्वज्ञपना होता नहीं, ऐसा मानते हैं। कई कहते हैं जीव अस्ति है... कोई कहता है जीव है, कोई कहता है नहीं। यह कौन जाने? वापस ऐसा। जीव है, ऐसा कौन जाने? कोई कहता है जीव नहीं है, ऐसा कौन जाने? अज्ञानवादी मूढ़-मूढ़। कुछ खबर नहीं पड़ती। जीव है या नहीं, यह कौन जानता है? है या नहीं, यह कौन जाने?

कई कहते हैं जीव नित्य है, यह कौन जाने ? कई कहते हैं जीव अनित्य है, यह कौन जाने ? इत्यादि संशय-विपर्यय-अनध्यवसायरूप होकर विवाद करते हैं। लो ! संशय का इसमें डाला। अक्रियवादी संशय मिथ्यात्वादि श्वेताम्बर को... टीका में। यह संशय परन्तु उसे अक्रियावादी में डाला, ऐसा। संशय परन्तु अक्रियावादी में डाला और यहाँ डाला अज्ञान में। यह संशय। उसमें ... संस्कृत टीका। यहाँ पर यहाँ डाला। इनके संक्षेप से सडसठ भेद हैं।

कई विनयवादी है, उनमें से कई कहते हैं कि देवादिक के विनय से सिद्धि है,... लो ! प्रणाम-प्रणाम। सबके चरण-वन्दन करो अपन। देवादिक के विनय से सिद्धि है,... लो, यह विनय। देव, गुरु...

मुमुक्षु : विनय, वह धर्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : विनय, वह धर्म और विनय तो मोक्ष का मार्ग है, ऐसा एकान्त से मानते हैं। पर का विनय और उसमें से धर्म मानते हैं, यह एकान्त है। वह विनयवादी है। समझ में आया ? देव-गुरु के विनय से सिद्धि है। है न ? मानते हैं। हमें तो गुरु को पकड़ना। बस, वे अपने को तार देंगे।

मुमुक्षु : ढिंग धणी को धारा फिर...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। 'ढिंग धणी माथे कियो, कोण गंजे नर खेत...' यह तो स्वयं अपना स्वभाव पूर्ण, वह ढिंग धणी है। पर ढिंग धणी, वह तो व्यवहार की बात है। परमेश्वर तो परद्रव्य है। गुरु परद्रव्य है। उनके विनय से मुक्ति हो, ऐसा तीन काल में नहीं है। गजब बात। है वहाँ फतेहपुर में यह मार्ग है। पाटीदार... ऐसा बड़ा महोत्सव हुआ, लोग जाते हैं। जामनगर में भी प्रणाम मन्दिर है। सबको चरण छूए। जय नारायण। गधे को, कुत्ते को जो हो उसे जय नारायण।...

देव, गुरु का विनय। कई कहते हैं गुरु के विनय से सिद्धि है,... लो ! हमें तो गुरु को रिझाना। गुरु का विनय करे तो अपनी मुक्ति हो जाए। धुन लगाना धुन।

मुमुक्षु : धुनी धखाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो व्यवहार की बातें हैं। ... किसकी ? ...तो आत्मा की है।

अन्तर भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द का धाम स्वयं दृष्टि देने से, कर्ता होकर अपना कल्याण होता है। उसमें परवस्तु निमित्त कही जाती है। निमित्त से, उससे सिद्धि होती है गुरु के विनय से। देखो! वे अन्तेवासी थे न? धुन लगाना धुन। ऐसी धुन लगाना गुरु के नाम से, भूल जाना स्वयं। यह भूल जाना तो हो गया, क्या रहा? वह तो भूला हुआ है। एकान्त गुरु का विनय, एकान्त पुस्तक का विनय, एकान्त प्रतिमा का विनय, एकान्त विनय। एक ही विनय से मुक्ति माने, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? लो!

कई कहते हैं माता के विनय से सिद्धि है,... लो! यह माता-जननी कहलाये। इसने सवा नौ महीने गर्भ में रखा, उसका उपकार। उसकी विनय करने से मुक्ति होती है। लो! नहीं आता? अन्यमति में? माता-पिता अन्धे थे और फिर...

मुमुक्षु : श्रवण।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रवण। काँवड़-काँवड़। काँवड़ पर अन्धे माता-पिता को (बैठाया)। एक में माँ और एक में पिता। स्वयं घुमावे, यात्रा करावे, पकावे, खिलावे, पिलावे सब। माता-पिता की सेवा करे। उसमें और माता-पिता की सेवा, वह भी एक धर्म है, ऐसा माने। उससे मुक्ति होती है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब धर्म अर्थात् नाम ... धर्म का। कुलधर्म। यह तो नाम की बातें हैं। सेवा, न इसने कहा? भगवान को गौतमस्वामी ने पूछा। उसमें आया है। ... आगरा के अमर मुनि हैं। वे ऐसा कहते हैं कि देखो! भगवान को गौतम ने पूछा, महाराज! आपकी सेवा से लाभ या लूले, पंगु, अन्ध की सेवा से लाभ? भगवान ने कहा कि मेरी आज्ञा ऐसी है कि मेरी अपेक्षा उनकी सेवा से लाभ (होगा)।

मुमुक्षु : मेरी अपेक्षा...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा न? हमारी अपेक्षा उनकी सेवा विशेष। उनकी सेवा, वह धर्म है। फिर यह टुकड़ा (वाक्य) भी रखा है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : गौतमस्वामी पूछे तो सब पूछे न? पूछनेवाले किसलिए न पूछे? यह तो ठीक परन्तु भगवान ने ऐसा जवाब दिया वापस। ऐसी बातें गप्प-गप्प। सम्प्रदाय के स्तम्भ लगे बड़े।

कई कहते हैं कि माता के विनय से सिद्धि है, कई कहते हैं कि पिता के विनय से सिद्धि है,... लो। पिता का विनय अधिक चाहिए। कई कहते हैं कि राजा के विनय से सिद्धि है,... राजा बड़ा ईश्वर का अंश कहलाता है। उसका विनय करे तो लाभ हो। ईश्वर का अंश है। धूल भी नहीं। कई कहते हैं कि सबके विनय से सिद्धि है,... लो! सबका विनय, कुत्ते का। इत्यादि विवाद करते हैं। इनके संक्षेप से बत्तीस भेद हैं। विनय के।

इस प्रकार सर्वथा एकान्तियों के तीन सौ त्रेसठ भेद संक्षेप से हैं, विस्तार करने पर बहुत हो जाते हैं, इनमें कई ईश्वरवादी हैं,... लो! कोई ईश्वर को माननेवाले हैं। यह गोम्मटसार में है। कई कालवादी है,... काल में होना हो वह होगा। एकान्त काल में माननेवाले। कई स्वभाववादी है,... एकान्त स्वभाव को ही माननेवाले। काल और पुरुषार्थ जैसा कुछ नहीं माननेवाले। कई विनयवादी हैं,... अभाववादी है। अभाव-अभाव। कई आत्मवादी हैं। आत्मा के भाव, वे आत्मवादी हैं। इनका स्वरूप गोम्मटसारादि ग्रन्थों से जानना, ऐसे मिथ्यात्व के भेद हैं। यह सब प्रकार है जगत में ऐसी मान्यतावाले।



गाथा-१३८

आगे कहते हैं कि अभव्यजीव अपनी प्रकृति को नहीं छोड़ता है, उसका मिथ्यात्व नहीं मिटता है -

ण मुयइ पयडि अभव्वो सुट्ठु वि आयण्णिऊण जिणधम्मं।

गुडदुद्धं पि पिबंता ण पण्णया णिव्विसा होंति॥१३८॥

न मुंचति प्रकृतिमभव्यः सुष्ठु अपि आकर्ण्य जिनधर्मम्।

गुडदुग्धमपि पिबंतः न पन्नगाः निर्विषाः भवंति॥१३८॥

सम्यक्तया जिन-धर्म सुन भि अभव्य प्रकृति नहिं तजे।

गुड़ दूध पीता हुआ भी ज्यों सर्प निर्विष नहिं बने॥१३८॥

अर्थ - अभव्य जीव भले प्रकार जिनधर्म को सुनकर भी अपनी प्रकृति को नहीं छोड़ता है। यहाँ दृष्टान्त है कि सर्प गुड़सहित दूध को पीते रहने पर भी विषरहित नहीं होता है।

भावार्थ - जो कारण पाकर भी नहीं छूटता है उसे 'प्रकृति' या 'स्वभाव' कहते हैं। अभव्य का यह स्वभाव है कि जिसमें अनेकान्त तत्त्वस्वरूप है - ऐसा वीतरागविज्ञानस्वरूप जिनधर्म मिथ्यात्व को मिटानेवाला है, उसका भले प्रकार स्वरूप सुनकर भी जिसका मिथ्यात्वस्वरूप भाव नहीं बदलता है, यह वस्तु का स्वरूप है, किसी का नहीं किया हुआ है। यहाँ उपदेश-अपेक्षा इस प्रकार जानना कि जो अभव्यरूप प्रकृति तो सर्वज्ञगम्य है, तो भी अभव्य की प्रकृति के समान अपनी प्रकृति न रखना, मिथ्यात्व को छोड़ना यह उपदेश है॥१३८॥

गाथा-१३८ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि अभव्य जीव अपनी प्रकृति को नहीं छोड़ता है, उसका मिथ्यात्व नहीं मिटता है :- लो!

ण मुयइ पयडि अभव्वो सुट्ठु वि आयण्णिऊण जिणधम्मं ।

गुडदुद्धं पि पिबंता ण पण्णया णिव्विसा होंति॥१३८॥

अर्थ - अभव्यजीव... होता है। अरे! गोरडुं मूँग जैसा। लाख मण पानी में बफावे परन्तु बफे नहीं। कोरडुं मूँग, जैसा जीव होता है। अभव्य बहुत थोड़े होते हैं। अभव्यजीव भले प्रकार जिनधर्म को सुनकर भी... ऐसा। 'सुट्ठु वि आयण्णिऊण' ऐसा है। 'सुष्ठु अपि आकर्ण्य' ऐसा सुनकर, ऐसा। अपनी प्रकृति (स्वभाव) को नहीं छोड़ता है। आहाहा! राग और पुण्य की क्रिया वह धर्म, ऐसी जो मान्यता अभव्य की। उसे लाख उपदेश दे तो भी वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता। क्या ऐसा वह कुछ होगा? सहारा चाहिए या नहीं? सहारे के बिना होता होगा? साधन के बिना साध्य होगा? ऐसा

माननेवाले अभव्य । यहाँ दृष्टान्त है कि सर्प गुड़सहित दूध को पीते रहने पर भी विषरहित नहीं होता है । वह शक्करवाला दूध पीवे परन्तु सर्प के मुँह में जहर है, वह कहीं अमृत नहीं होगा । दूध जहर हो जाएगा । सर्प, वह गुड़सहित दूध । गुड़ अर्थात् शाकर । विषरहित नहीं होता है । जहर... जहर.. जहर... आहाहा !

भावार्थ :- जो कारण पाकर भी नहीं छूटता है, उसे प्रकृतियाँ स्वभाव कहते हैं । ऐसा कहते हैं । कारण मिले सुनने के, समझने के तथापि प्रकृति नहीं छोड़ता, उसे प्रकृति का स्वभाव कहते हैं, ऐसा कहते हैं । अभव्य का यह स्वभाव है कि जिसमें अनेकान्त तत्त्वस्वरूप है ऐसा वीतराग-विज्ञानस्वरूप जिनधर्म मिथ्यात्व को मिटानेवाला है,... वीतराग स्वभाव । वस्तु का स्वभाव वीतराग, अनाकुल आनन्दस्वभाव । वीतराग कहो या दोषरहित कहो । ऐसा स्वभाव, उसमें रागादि नहीं, परवस्तु नहीं, पर में उसमें लाभ नहीं होता, ऐसे वीतराग-विज्ञानस्वरूप । लो ! वीतराग-विज्ञानस्वरूप आया । वीतराग-विज्ञान नाम दिया है न ? जयपुर । पाठमाला । वीतराग-विज्ञान । ऐसा वीतराग-विज्ञानस्वरूप, ऐसा कहते हैं । कैसा है ज्ञान अपना ? कि वीतराग-विज्ञानस्वरूप है । ऐसा ही वीतराग भगवान ने उपदेश किया कि तेरा वीतराग ज्ञानस्वरूप है, उसकी दृष्टि कर, ज्ञान कर, रमणता कर, यह मोक्ष का मार्ग है । ऐसा सुनने पर भी वीतरागभाव की ओर इसकी दृष्टि नहीं जाती । वीतरागी-विज्ञानस्वरूप आत्मा । समझ में आया ?

विकल्प है, उससे भिन्न ज्ञान है । वीतरागी-विज्ञान है, वह रागवाला ज्ञान नहीं । आत्मा तो वीतरागी-विज्ञान का पिण्ड है । ऐसा भगवान ने उपदेश किया । वीतराग-विज्ञान वह तेरी जाति है । उसे अनुभव, उसे वेद, उसे पकड़ । ऐसा मिथ्यात्व मेटनेवाला भगवान का धर्म है । उसका भले प्रकार स्वरूप सुनकर भी... ऐसा । सुनने को मिले, वाँचन करे, ऐसा कहते हैं, शास्त्र ऐसा कहते हैं, भगवान ऐसा कहते हैं । जिसका मिथ्यात्वस्वरूप भाव नहीं बदलता है । यह वस्तु का स्वरूप है, किसी का नहीं किया हुआ है । वह भी अभव्य का प्रकृति का स्वभाव है । वह किसी ने किया नहीं ।

यहाँ, उपदेश-अपेक्षा इस प्रकार जानना कि जो अभव्यरूप प्रकृति तो सर्वज्ञगम्य है, तो भी अभव्य की प्रकृति के समान अपनी प्रकृति न रखना,... ऐसा कहना है । यह तो दृष्टान्त दिया । अभव्य वीतरागभाव को छूने नहीं देता । कुछ न कुछ विपरीतता अन्दर

रखता है। कुछ राग चाहिए, विकल्प चाहिए, व्यवहार चाहिए। उसके बिना निश्चय होगा नहीं—ऐसी जिसकी प्रकृति है, वह बदलाता नहीं। अभव्य समान है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? **अभव्य की प्रकृति के समान अपनी प्रकृति न रखना,...** ऐसा। बन्ध अधिकार में आता है न ज्ञान की श्रद्धा नहीं करता। अभव्य मोक्ष की श्रद्धा नहीं करता। क्यों ? कि आत्मज्ञानमय मोक्ष है। अकेला ज्ञानस्वरूप ही वहाँ तो रहता है। अभी भी वह आत्मज्ञानमय अकेला आत्मा तो ज्ञानमय ही अकेला है। उसकी श्रद्धा नहीं करता। उसे यह अभूतार्थ धर्म—विकल्प जो राग दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि भाव वह झूठा धर्म, उसे वह श्रद्धता है। बन्ध अधिकार में आता है। गहरे-गहरे अन्दर से वीतराग-विज्ञानघनस्वरूप, अनादि-अनन्त आनन्दकन्द ऐसा चैतन्यतत्त्व, ऐसे अभव्य समान जीव को बैठता नहीं, ऐसा कहते हैं। कुछ चाहिए... कुछ चाहिए, राग चाहिए, विकल्प चाहिए। वह हो तो इस वीतरागपने का भान हो। कुछ क्रिया तो चाहिए या नहीं ? या क्रिया के बिना सीधे हो जाता होगा ? ऐसा वह कहता है। ऐसा माननेवाले अभव्य प्रकृति जैसे हैं, कहते हैं। आहाहा!

अकेला ज्ञानस्वभाव आत्मा। वहाँ ऐसा कहा। मोक्ष को श्रद्धता नहीं। आत्मज्ञान ... पूरा ज्ञानमय ऐसा तत्त्व, उसे जानता नहीं। राग, विकल्प, व्यवहार कुछ भी सहारा राग का हो तो ही आत्मा प्राप्त हो, ऐसा पक्ष अभव्य समान जीव को जाता नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? सर्वज्ञ जैसा है, वह तो कहते हैं। **तो भी अभव्य की प्रकृति के समान अपनी प्रकृति न रखना, मिथ्यात्व को छोड़ना यह उपदेश है।** भगवान चैतन्यमूर्ति राग की क्रिया से पार है। उसे राग की क्रिया द्वारा आत्मा, समकित प्राप्त हो, ऐसा है नहीं। उसे सूक्ष्म शल्य अन्दर से रह जाती है। गहरे-गहरे।

आया न पुरुषार्थसिद्धि उपाय में ? व्यवहार के पक्षवाले को अकेला व्यवहार माने, वह उपदेश के योग्य नहीं है, ऐसा आया न ? निश्चय का पक्ष माननेवाले उपदेश के योग्य नहीं, ऐसा उसमें नहीं आया। वह तो वास्तविक पक्ष है। लो, उसमें आया। देखा ! पुरुषार्थसिद्धि उपाय। ... व्यवहार को माननेवाले अकेले, वे तो उपदेश के योग्य नहीं। अकेला व्यवहार ही माने कि यही होता है... यही होता है... यही होता है... इससे होगा। वह देशना के योग्य नहीं है, ऐसा नहीं कहा, देखो ! निश्चय के पक्षवाले को,

देशना योग्य नहीं है, ऐसा नहीं कहा। उसे तो सत्य का पक्ष है। अखण्ड अभेद राग से रहित आत्मा का आनन्द का वेदन। कहीं आनन्द नहीं होता, राग में आनन्द नहीं मिलता। दया, दान, व्रत, तीर्थकरगोत्र जिस भाव से बाँधे, उसमें आनन्द नहीं मिलता। उससे बाह्य अभ्युदय मिले, बाह्य संयोग। परन्तु स्वभाव प्राप्ति उससे नहीं होती। ऐसा निरालम्बी निरपेक्ष राग से रहित, ऐसे आत्मा को सुनकर भी अभव्य जैसे प्रकृतिवाला अपने प्रकृति स्वभाव को नहीं छोड़ता।

वहाँ ऐसा दृष्टान्त दिया था, समयसार बन्ध अधिकार में। वहाँ अभव्य, प्रवचनसार में भी अभव्य। अभव्य स्थिर नहीं होता, ऐसा आता है न? सुख है आत्मा में आनन्द, मोक्ष में अकेला आनन्द है, उसे अभव्य नहीं मानता। दृष्टान्त में कैसा अभव्य दिया। जिसे तीन काल में मुक्ति न हो, ऐसा कड़क दृष्टान्त दिया है।



गाथा-१३९

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हैं -

मिच्छत्तच्छण्णादिद्वी दुद्धीए दुम्मएहिं दोसेहिं।
धम्मं जिणपण्णत्तं अभव्वजीवो ण रोचेदि॥१३९॥

मिथ्यात्वच्छन्नदृष्टिः दुर्धिया दुर्मतैः दोषैः।
धर्मं जिनप्रज्ञप्तं अभव्यजीवः न रोचयति॥१३९॥

दुर्बुद्धि दुर्मत दोष से मिथ्यात्व आवृत दृग रहे।
जिनवर प्ररूपित धर्म जीव अभव्य को ही नहीं रुचे॥१३९॥

अर्थ - दुर्मत जो सर्वथा एकान्ती मत, उनसे प्ररूपित अन्यमत, वे ही हुए दोष, उनके द्वारा अपनी दुर्बुद्धि से (मिथ्यात्व से) आच्छादित है बुद्धि जिसकी, ऐसा अभव्यजीव है, उसे जिनप्रणीत धर्म नहीं रुचता है, वह उसकी श्रद्धा नहीं करता है, उसमें रुचि नहीं करता है।

भावार्थ – मिथ्यात्व के उपदेश से अपनी दुर्बुद्धि द्वारा जो मिथ्यादृष्टि है, उसको जिनधर्म नहीं रुचता है, तब ज्ञात होता है कि ये अभव्यजीव के भाव हैं। यथार्थ अभव्यजीव को तो सर्वज्ञ जानते हैं, परन्तु ये अभव्यजीव के चिह्न हैं, इनसे परीक्षा द्वारा जाना जाता है ॥१३९॥

गाथा-१३९ पर प्रवचन

१३९। आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हैं :-

मिच्छत्तच्छण्णदिट्ठी दुद्धीए दुम्मएहिं दोसेहिं।
धम्मं जिणपण्णत्तं अभव्वजीवो ण रोचेदि ॥१३९॥

लो! नालायक जीव, जिन परिणति धर्म वीतराग अमृत का सागर ऐसा भगवान ने कहा हुआ धर्म, अमृतमय प्रभु को राग के जहर की बिल्कुल अपेक्षा नहीं। ऐसा जो धर्म व्यवहार की अपेक्षा निश्चय को नहीं। आहाहा! एक ओर कहा न कि निश्चय में व्यवहार का लक्ष्य न हो तो मिथ्यादृष्टि है। ऐसा कहा नहीं? एक ही नय माने और निश्चय और व्यवहार न माने तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहा है। कहा है या नहीं? व्यवहार है, इतनी बात जाने, परन्तु उससे लाभ होता है, और उससे प्राप्त होता है, ऐसा नहीं। इतनी बात है उसमें। ... आता है न वह? व्यवहार को छोड़ना नहीं। अर्थात् कि व्यवहार है, ऐसा तू मान। व्यवहार छोड़ेगा तो पर्याय नहीं, ऐसा माना। पर्याय नहीं, ऐसा नहीं है। है, परन्तु पर्याय से द्रव्य को लाभ होगा, दृष्टि से, आश्रय से—ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : दोनों को मत छोड़ो।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों को मत छोड़ो इसका अर्थ क्या? कि पर्याय, भेद, गुणस्थान है। उन्हें नहीं है, (ऐसे) ना करेगा तो तीर्थ नहीं रहेगा। तीर्थ नहीं रहेगा अर्थात्? गुणस्थान के चौदह भेद आदि, पाँचवाँ, छठवाँ नहीं रहेगा, ऐसा। निश्चय को छोड़ देगा तो पूरा तत्त्व तो वही है। उसके आश्रय से, तत्त्व के आश्रय से तो धर्म प्रगट होता है। उसका आश्रय छोड़ देगा तो धर्म रहेगा नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह व्यवहार तीर्थ और तीर्थ का फल है सब व्यवहार। सिद्ध ही पर्याय है, मोक्षमार्ग पर्याय है। व्यवहार है। व्यवहार है नहीं? है। उसे छोड़ देगा तो तीर्थ और तीर्थ के फल का नाश होगा। मोक्ष का मार्ग भी व्यवहार है। उसका फल सिद्ध भी व्यवहार है। है इतनी बात। समझ में आया? यह चर्चा तो बहुत बार आ गयी है, भाई!

जिनप्रणीत धर्म नहीं रुचता है,... वीतराग की वाणी वीतराग को पोसनेवाली। वीतराग की वाणी, वह वीतराग को पोसनेवाली, वीतराग की वाणी वह राग को पोसनेवाली नहीं। बतलानेवाली हो, तो बतलानेवाली अलग बात है। जिनवचन का अर्थ क्या? वीतराग वचन है यह तो। इसका अर्थ कि वीतरागभाव को पोषण करनेवाली है। बाहर की बात... क्रिया नहीं, तुम्हारे तो क्रिया नहीं, ऐसा कहे, लो! दिल्लीवाली बाई कहती है न? भाई! मगनभाई! यह मगनलालजी कहते थे। वह बाई दिल्ली में है, वह कहे, तुम्हारे क्रिया नहीं। कौन सी क्रिया? यह सब मानी हुई। आहाहा! क्रिया बिना का तो जीव होता नहीं, शुद्ध परिणति बिना का जीव ही नहीं होता। परन्तु यह तो राग की क्रिया हो और व्यवहार हो, वह चारित्र कहलाये। वह संयम, चारित्र, त्यागी कहलाये। आहाहा!

कहते हैं, **जिनप्रणीत धर्म...** यह वीतरागस्वभाव उसे नहीं रुचता। राग की क्रिया की प्रवृत्ति में विस्तार हो गया, विस्तार प्राप्त, उसे उससे रहित चैतन्य की क्रिया राग से रहित है, वह उसे नहीं रुचती। **उसकी श्रद्धा नहीं करता है, उसमें रुचि नहीं करता है।** लो! बहुत संक्षिप्त बात है। ज्ञानानन्दस्वरूप, शुद्ध वीतरागस्वरूप, उसे वह नहीं रुचता। किसी भी प्रकार से राग की पोषक वाणी और राग के पोषकवाले शास्त्र हों तो उसे ठीक पड़ते हैं। जिनवाणी में भी हस्तावलम्ब जानकर व्यवहार का उपदेश बहुत किया है। नहीं आया? ग्यारहवीं गाथा। जिनवाणी में यह है। लो! यह जिनवाणी है। भाई! जिनवाणी है, यह तो निमित्त का कथन है। सुन न! उसका फल तो संसार कहा है। भारी कठिन काम। जिनवाणी में कहा, उसका फल संसार! जिनवाणी में वह तो व्यवहार कहा है। पंच महाव्रत और वह सब जिनवाणी में व्यवहार कहा है। व्यवहार, इसका

फल तो संसार है। आहाहा! पंच महाव्रत और अट्टाईस मूलगुण का फल तो संसार है। अब उसे मोक्ष का कारण और मोक्ष माने।

तो फिर कैसा अभव्य जीव? **दुर्मत जो सर्वथा एकान्त मत, उनसे प्ररूपित अन्यमत, वे ही हुए दोष...** एकान्त माननेवाले। वे कहें, परन्तु निश्चय माने व्यवहार बिना तो एकान्त नहीं? परन्तु यह एकान्त, सम्यक् एकान्त है। समझ में आया? वह मिथ्यात्व एकान्त है। व्यवहार से निश्चय को लाभ हो, यह मिथ्या एकान्त है। व्यवहार की अपेक्षा बिना आत्मा की अपेक्षा से धर्म होता है, यह निश्चय सम्यक् एकान्त है। आहाहा! अटका है तो कुछ सूक्ष्म होगा, तब अटका होगा न अनन्त काल से। शास्त्र का पठन किया, क्रियाएँ की, गहरे-गहरे स्वभाव चैतन्यज्योति अक्रिय, राग से भिन्न, उसका पक्ष इसे नहीं बैठा। बाहर के व्यवहार का पक्ष बैठा। वह अभव्य दुर्मत है। सर्वथा एकान्ती। उसके कहे हुए अन्यमत, वह दोष। लो! **‘दुद्धीए’** दुर्मति और दोष ऐसा कहा। ...

उनके द्वारा अपनी दुर्बुद्धि से (मिथ्यात्व से) आच्छादित है... अर्थात् कोई कर्म के कारण से यह मिथ्याभ्रान्ति करता है, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। कर्म के कारण से उसकी ऐसी बुद्धि बिगड़ी, ऐसा नहीं है। विपरीत दृष्टि के कारण उसकी मति बिगड़ी है। देखो न! पाठ लिया है। **‘दुद्धीए दुम्मएहिं दोसेहिं। धम्मं जिणपण्णत्तं अभव्यजीवो ण रोचेदि’** ओहोहो! कहीं इसका रस लुटता है अन्यत्र। चैतन्यरस के आनन्दरस की उसे रुचि नहीं है। गहरे-गहरे कहीं बाहर में शुभभाव की क्रिया में, उसके फल में भी प्रेम अन्दर गहरे रह जाता है। वह उसके दोष के कारण से, ऐसा कहते हैं। दुर्बुद्धि। **‘दुद्धीए’** दुर्बुद्धि से, दुर्मत के कारण सर्वथा एकान्त पक्ष वह अन्यमत कहते हैं ऐसे। उस मिथ्यात्व से जिसकी बुद्धि आच्छादित है। विपरीत श्रद्धा से उसकी बुद्धि ढँक गयी है। अकेला भगवान पर से भिन्न पूर्ण चैतन्य महासत्त्व, वही आत्मा। दूसरा राग-फाग वह चैतन्य का तत्त्व नहीं और चैतन्य की क्रिया भी नहीं। ओहो! पंच महाव्रत के परिणाम, वे अचेतन हैं, जड़ हैं। परिणाम, हों! शरीर, वाणी जड़ तो सही परन्तु परिणाम अचेतन है। उस अचेतन की प्रकृति उसे रुच गयी है। उससे भिन्न चैतन्यस्वरूप की रुचि नहीं करता। कहो, समझ में आया इसमें? **दुर्बुद्धि से (मिथ्यात्व से) आच्छादित है बुद्धि जिसकी,...** लो! हिन्दी है। यह हमारे यहाँ गुजराती होता है।

भावार्थ :- मिथ्यात्व के उपदेश से... मिथ्यात्व के उपदेश से अपनी दुर्बुद्धि द्वारा जिसके... देखा! अपनी दुर्बुद्धि द्वारा जिसके... उसमें उपदेश तो भले निमित्त है, परन्तु फिर अपनी दुर्बुद्धि द्वारा जिसके मिथ्यादृष्टि है... लो! कर्म के कारण से नहीं, दर्शनमोह के कारण से नहीं।

मुमुक्षु : शास्त्र उपदेई के कारण से...

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेई, यह तो निमित्त हुआ। यह तो बात हुई।

उपदेश से अपनी दुर्बुद्धि द्वारा जिसके... वापस उपदेश में अपनी दुर्बुद्धि लगायी। उपदेश तो मिला। इसने माना। कठिन काम है। आहाहा! पूरा गुलाँट खाना। अकेला सर्वज्ञ पिण्ड प्रभु, सर्वज्ञपद ही उसका है। रागपद नहीं, अल्पज्ञ पद नहीं। वह तो सर्वज्ञपद का स्वरूप ही ऐसा है। सर्व अर्थात् सबको जानना, ऐसा अकेला ज्ञानस्वभाव है। वह ज्ञानस्वभाव राग की क्रियारहित है। अभव्य जैसी दुर्बुद्धि जीव अपनी दुर्मति एकान्त मत के कारण, एकान्त पक्ष के कारण यह बात रुचती नहीं। लो! कुन्दकुन्दाचार्य बात को कितनी स्पष्ट करते हैं। भावपाहुड़ में देखो। उसे उल्टे भाव का कारण है, कहते हैं। दूसरा कोई कारण नहीं। यह हमें उपदेश ऐसा मिला, इसलिए हम ऐसा मानते हैं। भगवानदास सेठ बारम्बार कहते हैं न! क्या करें, हमको मिला ऐसा इसलिए। ऐई! सेठ! भाई कहते हैं बहुत बार। क्या करें, हमको उल्टा उपदेश देनेवाले मिले। परन्तु माना किसने? यह यहाँ कहते हैं।

उपदेश से अपनी दुर्बुद्धि द्वारा... जाना। उसको जिनधर्म नहीं रुचता है,... आहाहा! अकेला वीतरागी मक्खन का पिण्ड प्रभु, ऐसा वीतराग, जिसे राग का लेप नहीं, राग की गन्ध नहीं। व्यवहार की जिसमें गन्ध नहीं, ऐसा चैतन्यतत्त्व, वीतरागीतत्त्व और उसे कहनेवाला वीतरागी मार्ग, वह उसे रुचता नहीं। पर्यायबुद्धि में रागबुद्धिवाले को स्वभावबुद्धि रुचती नहीं, ऐसा कहते हैं।

तब ज्ञात होता है कि ये अभव्यजीव के भाव हैं। उसे सत्य तत्त्व समझ में नहीं आता, नहीं रुचता, तब जानना कि वह अभव्य जैसा जीव लगता है। आहाहा! यथार्थ अभव्यजीव को तो सर्वज्ञ जानते हैं, परन्तु ये अभव्य जीव के चिह्न हैं, इनसे परीक्षा

द्वारा जाना जाता है। लो! यह चिह्न है, कहते हैं। भले अभव्य जीव न हो परन्तु अभव्य जैसा हो। कोई लाख बात करे परन्तु वह (माने नहीं)। क्रिया... क्रिया... क्रिया। ज्ञानस्वभाव को राग की क्रिया में लगा डालना। निर्मल है, उसे राग में लगा देना और वह क्रिया आत्मा को हितकारी मानना, (वह) अभव्य जैसे लक्षण हैं, कहते हैं। आहाहा!

अभव्य जीव के चिह्न हैं, इनसे परीक्षा द्वारा जाना जाता है। उसे यह परीक्षा करके जानना चाहिए। देखो! परीक्षा करके जानना चाहिए कि इसकी श्रद्धा क्या है? सामनेवाले के लिये नहीं। अपनी श्रद्धा में उसकी विपरीत मान्यता न आ जाए, इसके लिये उसकी विपरीत मान्यता को पहिचानना। यह व्यक्ति के लिये नहीं। अपने लिये है।

गाथा-१४०

आगे कहते हैं कि ऐसे मिथ्यात्व के निमित्त से दुर्गति का पात्र होता है -

कुच्छियधम्मम्मि रओ कुच्छियपासंडिभक्तिसंजुत्तो ।

कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छियगइभायणो होइ ॥१४०॥

कुत्सितधर्मे रतः कुत्सितपाषंडिभक्तिसंयुक्तः ।

कुत्सिततपः कुर्वन् कुत्सितगतिभाजनं भवति ॥१४०॥

कुत्सित धर्म-रत भक्ति-युत पाखंडि कुत्सित की सदा।

कुत्सित तपश्चर्या करे तो पात्र कुत्सित गति का ॥१४०॥

अर्थ - आचार्य कहते हैं कि जो कुत्सित (निंदा) मिथ्याधर्म में रत (लीन) है, जो पाखण्डी निंदाभेषियों की भक्तिसंयुक्त है, जो निंदा मिथ्याधर्म पालता है, मिथ्यादृष्टियों की भक्ति करता है और मिथ्या अज्ञानतप करता है, वह दुर्गति ही पाता है, इसलिए मिथ्यात्व छोड़ना, यह उपदेश है ॥१४०॥

गाथा-१४० पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि ऐसे मिथ्यात्व के निमित्त से दुर्गति का पात्र होता है:-
 आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा, ऐसा ही आत्मा का वीतराग सर्वज्ञस्वरूप जिसे नहीं रुचता, उससे विरुद्ध रागादि भाव रुचते हैं, उसके फलरूप से तो दुर्गति का पात्र है।
 आहाहा! मिथ्यात्व जैसा कोई रोग नहीं। मिथ्यात्व जैसी कोई भ्रान्ति नहीं। 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं।' कोई भ्रान्ति नहीं। मिथ्यात्व समान कोई जहर नहीं। जगत के जहर तो क्या एक बार मारे और न भी मारे पुण्य का उदय हो तो। यह तो महाजहर मिथ्यात्व का।
 अभव्य जीव के भावना हेतु मिथ्यात्व के निमित्त से दुर्गति का पात्र होता है :-

कुच्छियधम्ममि रओ कुच्छियपासंडिभत्तिसंजुत्तो ।

कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छियगइभायणो होइ ॥१४०॥

'कुच्छियत' गति का भाजन।

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि जो कुत्सित (निंद्य) मिथ्याधर्म में रत (लीन) है... जो कोई वीतरागमार्ग के स्वभाव से विरुद्धभाव में... कहो, प्रकाशदासजी! बहुत कठिन काम परन्तु यह। महाव्रत की क्रिया वह राग, वह जहर। 'कुच्छियत' तप, 'कुच्छियत' क्रिया। गजब बात है। जैनधर्म सुनना कठिन पड़े। आहाहा!

कहते हैं, कुत्सित (निंद्य) मिथ्याधर्म में रत (लीन) है जो पाखण्डी निंद्यभेषियों की भक्तिसंयुक्त है,... लो! पाखण्डी निन्द्य वेशी, कुलिंगी, उसकी भक्ति संयुक्त जो जीव है। और, जो निंद्य मिथ्यात्वधर्म पालता है,... लो! मिथ्यात्वधर्म—उल्टी श्रद्धा करे, मिथ्यादृष्टियों की भक्ति करता है... आहाहा! विपरीत श्रद्धावाले प्रत्यक्ष दिखाई दे कि यह सब क्रियाकाण्डी राग को धर्म माननेवाले, आत्मा के स्वभाव की इन्हीं खबर ही नहीं। ऐसों की भी भक्ति करे।

मुमुक्षु : ... कर्म बँधे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्वसहित बँधे। बड़ा मिथ्यात्व का पाप बड़ी विपरीतता वह है। उसकी भक्ति करे, उसे शुभभाव होते हैं या नहीं? ऐसा कहते हैं। परन्तु उस

शुभभाव की गिनती कहाँ आयी यहाँ ? मिथ्यात्व श्रद्धा का बड़ा पाप, उसका यहाँ वर्णन करना है न।

निंद्य मिथ्यात्वधर्म पालता है, मिथ्यादृष्टियों की भक्ति करता है और मिथ्या अज्ञानतप करता है,... लो! आहाहा! अपवास और वर्षीतप यह सब करे। आहाहा! बेचारे कैसे खड़े-खड़े तप करे लाखोंपतियों की महिला। उसे कहते हैं कि कुतप है। ऐसा करके ९० के वर्ष में। लो! राजकोट। धूल भी तप नहीं। जहाँ अभी आत्मा कौन है, उसकी श्रद्धा की खबर नहीं और वे क्रियाएँ भी कुछ लक्ष्य से होती हों, तथापि बाहर के कोई, अपने ... तो भी वह सब भाव तो शुभ है, राग है। ऐसे रागी अज्ञानी तप करे। अज्ञानतप करे। यह वर्षीतप। वह दुर्गति ही पाता है, इसलिए मिथ्यात्व छोड़ना, यह उपदेश है... दुर्गति शब्द से चार गति मिले। उसे कहीं धर्म में मुक्ति नहीं मिलती। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : दुर्गति ही है न ? दुर्गतो। स्वयं वर्तमान दुर्गति है। 'परदव्वादो दुग्गइ।'

मुमुक्षु : चारों गतियाँ दुर्गति ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चारों गतियाँ दुर्गति ही है। १६वीं गाथा में नहीं आया ? 'सदव्वादो हु सुग्गइ होइ परदव्वादो दुग्गइ।' लो!

भगवान आत्मा वीतराग की मूर्ति चैतन्यघन ज्ञानस्वरूप का आश्रय करने से सुगति अर्थात् मुक्ति की धारा बहे और मुक्ति प्राप्त हो। 'परदव्वादो दुग्गइ' चाहे तो तीन लोक के नाथ तीर्थकर हों, उनके लक्ष्य से तो राग होता है, और राग से तो दुर्गति है। अपनी सम्यक् गति नहीं है। आहाहा! लोगों को कठिन लगता है। मिथ्यात्व छोड़ना, यह उपदेश है। लो! दुर्गति है, दुर्गति। १६वीं गाथा में आ गया है, मोक्ष अधिकार (पाहुड़)। आ गया है। वाँचन हो गया है। अब बाद में वह है, इसमें।

गाथा-१४१

आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हुए ऐसे कहते हैं कि ऐसे मिथ्यात्व से मोहित जीव संसार में भ्रमण करता है -

इय मिच्छत्तावासे कुणयकुसत्थेहिं मोहिओ जीवो ।

भमिओ अणाइकालं संसारे धीर चिंतेहि ॥१४१॥

इति मिथ्यात्वावासे कुणयकुशास्त्रैः मोहितः जीवः ।

भ्रमितः अनादिकालं संसारे धीर! चिन्तय ॥१४१॥

हे धीर! सोचो जीव यह मोहित कुणय दुःशास्त्र से।

मिथ्यात्व गृह संसार में भटका अनादि काल से ॥१४१॥

अर्थ - इति अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार मिथ्यात्व का आवास (स्थान) यह मिथ्यादृष्टियों का संसार उसमें कुणय अर्थात् सर्वथा एकान्त, उस सहित कुशास्त्र उनसे मोहित (बेहोश) हुआ यह जीव अनादि काल से लगाकर संसार में भ्रमण कर रहा है, ऐसे हे धीर मुने ! तू विचार कर ।

भावार्थ - आचार्य कहते हैं कि पूर्वोक्त तीन सौ तरेसठ कुवादियों से सर्वथा एकान्तपक्षरूप कुणय द्वारा रचे हुए शास्त्रों से मोहित होकर यह जीव संसार में अनादिकाल से भ्रमण करता है सो हे धीर मुनि ! अब ऐसे कुवादियों की संगति भी मत कर, यह उपदेश है ॥१४१॥

गाथा-१४१ पर प्रवचन

आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं कि ऐसे मिथ्यात्व से मोहित जीव संसार में भ्रमण करता है :- आहाहा ! विपरीत मान्यता की उलझन में चैतन्य हाथ नहीं आया। चैतन्य महाराज महाप्रभु को जाना नहीं और ऐसे मिथ्यात्व से मोहित हुआ जीव संसार में भ्रमता है ।

इय मिच्छतावासे कुणयकुसत्थेहिं मोहिओ जीवो ।

भमिओ अणाइकालं संसारे धीर चिंतेहि ॥१४१॥

अर्थ :- इति अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार मिथ्यात्व का आवास (स्थान) यह मिथ्यादृष्टियों का संसार में... लो ! मिथ्यात्व के ऐसे ठिकाने, वह मिथ्यादृष्टि का संसार । वह कुनय सर्वथा एकान्त उन सहित कुशास्त्र, ... लो ! कुशास्त्र एकान्त से कहनेवाला तत्त्व की दृष्टि का भान नहीं होता । उन सहित कुशास्त्र, उनसे मोहित (बेहोश) हुआ... बेहोश हुआ, बेहोश हुआ । चेतना रही नहीं । जागृत कौन है, आत्मा का क्या है, उसकी चेतना रही नहीं । बेचेत । अर्थ करो तो बेचेत हो गया तो डबल चेत हो गया ?

यह जीव अनादि काल से लगाकर संसार में भ्रमण कर रहा है, ... आहाहा ! अपना स्वरूप वीतराग-राग की क्रियारहित चैतन्यतत्त्व, जिसे राग की अपेक्षा नहीं, अपना स्वभाव अपने से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है । अपना स्वभाव अपने से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है—अलिंगग्रहण का छठवाँ बोल । अपने चल गया है । फतेहपुर (में) । कुनय सर्वथा एकान्त उन सहित कुशास्त्र, उनसे मोहित (बेहोश) यह जीव अनादि काल से लगाकर... अनादि निगोद से लेकर भ्रमण कर रहा है, ऐसे हे धीर मुने ! तू विचार कर । चिन्तवन कर, ऐसा कहते हैं । धीर... धीर... धीर... धी को ध्येय में प्रेरे, वह धीर । ध्रुव भगवान आत्मा, बुद्धि को उसके घोलन में रखे, वह धीर । भारी कठिन बात । अपने तो गुरु को पकड़ना । फिर गुरु मोक्ष करा देंगे । लो ! हैं ! विमान में जाए तो अपने पकड़ रखना । कौन पकड़े ? हीराभाई ! आते थे न पहले एक यहाँ ? खोजा 'बावला' के । श्रीमद् के भगत । अपने तो बस गुरु को पकड़ना । अब उसे चिन्ता अपना मोक्ष करने की । हमारे कुछ नहीं । जाओ ! आहाहा ! ऐई ! धनजीभाई ! ऐसे जीव होते हैं । आहाहा ! भाई ! ऐसा मार्ग नहीं है, प्रभु !

कहते हैं, अरे ! धीर ! धीर हो... धीर हो... धीर हो । मिथ्यात्वी जीव को अधीर कहा है, लो ! जिसमें अपना चैतन्य ध्रुव ध्येय में—दृष्टि में नहीं । बुद्धि को, धी अर्थात् बुद्धि को ध्येय में झुकाया नहीं, उसे धीर नहीं कहते, उसे अधीर कहते हैं । आहाहा ! कषाय की मन्दता बाहर में दिखती हो, तथापि धी—बुद्धि को पूर्ण स्वरूप भगवान आत्मा में ध्येय बनाया नहीं । बुद्धि का ध्येय वह है । उसे यहाँ धीर जैसा कहा जाता है । बाकी सब अधीर

हैं। आहाहा! शान्त-शान्त (दिखाई दे) ऐसे। चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो उसकी लेश्या शुक्ल। शुक्ललेश्या। नौवें ग्रैवेयक में गया तो कहते हैं कि धीर नहीं। अधीर है, अधीर। धीर तो उसे कहते हैं (कि) अपनी पूर्ण चीज ध्रुव, उसमें धी को—बुद्धि को लगावे और ध्येय में रहे, उसे धीर कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बाकी दुनिया के उघाड़ और क्षयोपशम जानपने के, वह धीर नहीं - ऐसा कहते हैं, लो! ग्यारह अंग के, नौ पूर्व के पठन पढ़ा। वस्तु... इसलिए कहा न, उपदेश पाने पर भी अभव्य, सर्प शक्करसहित दूध को पीने पर भी वह जहर नहीं छोड़ता; उसी प्रकार प्रकृति का जहरपना वह नहीं छोड़ता। मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण उसे जुड़ना पड़ता है, वह छोड़ता नहीं - ऐसा नहीं कहा।

मुमुक्षु : यह समझ लेना।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन ... वह तो निमित्त के कथन आवे, तब ऐसा हो। वास्तविक तत्त्व हो तो यह है। अपने स्वभाव को भूला हुआ, राग और विकार की सुखबुद्धि में लिप्त हो गया, वह अपने कारण से, कहते हैं विपरीतबुद्धि खड़ी हुई है। कर्म के कारण से नहीं।

भावार्थ :- आचार्य कहे हैं कि पूर्वाक्त तीन सौ त्रेसठ कुवादियों से... यहाँ चला आता है न? ३६३ कुवादियों से सर्वथा एकान्तपक्षरूप कुनय द्वारा रचे हुए शास्त्रों से... लो! कुनय से शास्त्र रचे हुए। मोहित होकर... सरल लगे, उसमें कठिनाई बहुत न लगे, इससे उसमें झुक गया। मोहित होकर... ऐसा कहते हैं। यह जीव संसार में अनादि काल से भ्रमण करता है,... चौरासी के अवतार में डोलता है, भटकता हुआ दुःखी होता है। दुःखी होकर चार गति में डोलता है। आनन्द के धाम को देखा नहीं। आनन्द का धाम भगवान, उसकी रुचि की नहीं और राग के फल और राग की रुचि करने से चार गति में भ्रमा, भटका, रुला।

हे धीर मुनि! लो! सम्बोधन किया। अब ऐसे कुवादियों की संगति भी मत कर,... है? उसका संग न कर। उसमें स्पष्टीकरण नहीं है। उसमें तो बहुत संक्षिप्त लिखा है। ... बहुत लम्बा नहीं। ऐसे कुवादियों की संगति भी मत कर,... श्रद्धा तो नहीं परन्तु उनका संग छोड़ दे। विपरीतता घुसा डालेगा। आहाहा! अनन्त संसार में भटका देगा। इसलिए उसकी संगति छोड़। यह उपदेश है। लो! यह ... का उपदेश है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१४२

आगे कहते हैं कि पूर्वोक्त तीन सौ तरेसठ पाखण्डियों का मार्ग छोड़कर जिनमार्ग में मन लगाओ -

पासंडी तिण्णि सया तिसट्टि भेया उमग्ग मुत्तूण ।

रुंभहि मणु जिणमग्गे असप्पलावेण किं बहुणा ॥१४२॥

पाखण्डिनः त्रीणि शतानि त्रिषष्टिभेदाः उन्मार्गं मुक्त्वा ।

रुन्द्धि मनः जिनमार्गे असत्प्रलापेन किं बहुना ॥१४२॥

ये तीन सौ त्रेषठ कुपथ पांखण्डियों के भेद तज।

क्या लाभ असत्प्रलाप से ? जिन-मार्ग में अब रोक मन ॥१४२॥

अर्थ - हे जीव ! तीन सौ तरेसठ पाखण्डियों के मार्ग को छोड़कर जिनमार्ग में अपने मन को रोक (लगा) यह संक्षेप है और निरर्थक प्रलापरूप कहने से क्या ?

भावार्थ - इस प्रकार मिथ्यात्व का वर्णन किया। आचार्य कहते हैं कि बहुत निरर्थक वचनालाप से क्या ? इतना ही संक्षेप से कहते हैं कि तीन सौ तरेसठ कुवादी पाखण्डी कहे उनका मार्ग छोड़कर जिनमार्ग में मन को रोको, अन्यत्र न जाने दो। यहाँ इतना और विशेष जानना कि कालदोष से इस पंचम काल में अनेक पक्षपात से मत-मतान्तर हो गये हैं, उनको भी मिथ्या जानकर उनका प्रसंग न करो। सर्वथा एकान्त का पक्षपात छोड़कर अनेकान्तरूप जिनवचन का शरण लो ॥१४२॥

प्रवचन-१५१, गाथा-१४२ से १४७, गुरुवार, मगसर कृष्ण ५, दिनांक १८-१२-१९७०

अष्टपाहुड़, भावपाहुड़ की १४२ गाथा।

आगे कहते हैं कि पूर्वोक्त तीन सौ त्रेसठ पाखण्डियों का मार्ग छोड़कर जिनमार्ग में मन लगाओ :-

पासंडी तिण्णि सया तिसट्टि भेया उमग्ग मुत्तूण ।
रुंभहि मणु जिणमग्गे असप्पलावेण किं बहुणा ॥१४२॥

श्लोक है हिन्दी ।

अर्थ :- हे जीव! तीन सौ त्रेसठ पाखण्डियों के... कहे न ऊपर सब भेद ? मार्ग को छोड़कर... उसका मार्ग छोड़ दे । एकान्त क्रिया में माननेवाले, अक्रिया में माननेवाले, विनय में माननेवाले, अज्ञान में माननेवाले वे सब जैन सम्प्रदाय में नाम धरानेवाले हों, ऐसी श्रद्धावाले सबको छोड़ दे । जिनमार्ग में अपने मन को रोक (लगा)... वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जो वीतरागस्वभाव आत्मा का सिद्ध करके वीतरागता प्रगट करने का कहा है, उसमें मन को स्थापित कर । आत्मा वीतरागस्वरूप ही है । एकान्त वीतराग स्वरूप है । ऐसा वीतराग सर्वज्ञ ने कहा, ऐसा मार्ग अन्यत्र है नहीं । ऐसे मार्ग में मन को स्थापित कर, तेरी परिणति को वहाँ झुका । स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... ऐसी बात सर्वज्ञ के सिवाय तीन सौ त्रेसठ पाखण्ड में नहीं है ।

यह संक्षेप है और निरर्थक प्रलापरूप कहने से क्या ? बहुत क्या कहें ? कहते हैं । निरर्थक प्रलाप करके क्या काम है ? वस्तु सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने कही वैसी है, उसे जानकर उसमें स्थिर हो । दूसरा क्या कहें ? अन्यमत में श्वेताम्बर में सरलरूप से कहा हो परन्तु यह सब है नहीं । सरलपना नहीं परन्तु सब टेढ़ा और उल्टा है । आहाहा ! भारी कठिन काम ।

भावार्थ :- इस प्रकार मिथ्यात्व का वर्णन किया । उल्टी श्रद्धा का महापाप-महापाप । उसकी गिनती दुनिया को नहीं है । यह तो हिंसा करे, झूठ (बोले), बाहर चोरी, विषय, भोग, काम, क्रोध, लड़ाई आदि के यह पाप ? महापाप जो अनन्त संसार की गाँठ मिथ्यात्व, उसके जैसा कोई पाप नहीं । उसका निरूपण किया । **आचार्य कहते हैं कि बहुत निरर्थक वचनालाप से क्या ?** बहुत कहने से क्या कहें ? इतना ही संक्षेप से कहते हैं कि तीन सौ त्रेसठ कुवादी पाखण्डी कहे, उनका मार्ग छोड़कर जिनमार्ग में मन को रोको, अन्यत्र न जाने दो । वस्तु भगवान ने कही ऐसा आत्मा, वहाँ मन को स्थिर कर । दूसरे मार्ग में से मन को विमुख कर । अन्यत्र जाने न दे । कहीं होगा... कहीं होगा... यह सब वैरागी बाबा होते हैं । साधु, बाबा, नग्न जंगल में रहे, कन्दमूल खाये ।

महीने-महीने तक कुछ आहार-पानी ले नहीं ऐसे। होगा कुछ उसमें। कहीं नहीं है। वस्तु वीतरागमार्ग के अतिरिक्त कहीं नहीं है। इसलिए वीतराग मार्ग कोई पक्ष नहीं है। यह वस्तु का स्वभाव है। ऐसे स्वभाव के अतिरिक्त कहीं दूसरी बात अन्यत्र है नहीं।

जिनमार्ग में मन को रोको, अन्यत्र न जाने दो। मन को दूसरे मार्ग में कहीं होगा, ऐसा होने न दे। यहाँ इतना और विशेष जानना कि कालदोष से इस पंचम काल में अनेक पक्षपात से मत-मतान्तर हो गये हैं,... लो! काल के दोष से, निमित्त से बात करते हैं। अनेक पक्षपात से अपने मत चलाये हैं। जैन में भी उल्टे अनेक प्रकार के मत चलाये। उनको भी मिथ्या जानकर उनका प्रसंग न करो। उनका संसर्ग करना नहीं, परिचय करना नहीं।

सर्वथा एकान्त का पक्षपात छोड़कर अनेकान्तरूप जिनवचन का शरण लो। अनेकान्त का अर्थ यह कि द्रव्य, द्रव्यरूप से है; पररूप से नहीं। गुण, गुणरूप से है; दूसरे गुणरूप से नहीं। पर्याय, पर्यायरूप से है; दूसरी पर्यायरूप से नहीं। राग, रागरूप से है; वह निर्मल पर्यायरूप से नहीं। ऐसी जो अनेकान्त वस्तु की स्थिति, इस प्रकार से है। स्व से अस्ति और पर से नास्ति। ऐसा स्वरूप वीतराग में है। अन्यत्र हो नहीं सकता। कहो, समझ में आया? बाहर के क्रियाकाण्ड देखकर भरमाना नहीं, ऐसा कहते हैं। महीने-महीने के अपवास और बड़े संथारा (करे), साधु बालब्रह्मचारी होकर त्यागी हो, इसलिए उसमें कुछ होगा, ऐसे मन को जाने नहीं देना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अन्यत्र कहीं नहीं है। सर्वत्र मिथ्यात्व का पोषक है। सर्वथा एकान्त का पक्षपात छोड़कर अनेकान्तरूप जिनवचन का शरण लो।

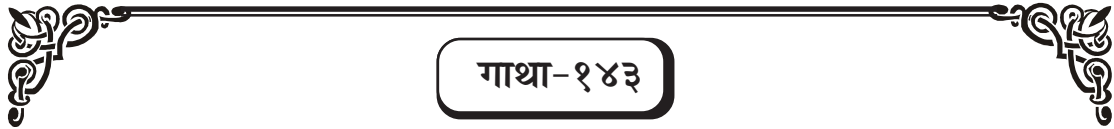
मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ हाथ आया है न यह। धन्नालालजी! यह यहाँ वाँचन हो ऐसा है, ऐसा कहते हैं। बाकी अन्यत्र भड़के ऐसा है। थोड़ा वे लड़के बोले वहाँ... क्या कहलाता है? पाखली में से ... आया। लड़कों ने जरा भाषण किया था। दिन में किया होगा परन्तु मैं नहीं था। फटके ब्राह्मण। क्या हो परन्तु मार्ग ऐसा है। जैन में भी यह सब लोंकाशा (वाले), श्वेताम्बर, स्थानकवासी आदि निकले हैं, वे सब मिथ्यादृष्टि, विपरीत श्रद्धा के पोषक हैं। यह कहते हैं, देखो! यह कहा न?

पंचम काल में अनेक पक्षपात से मत-मतान्तर हो गये हैं, उनको भी मिथ्या जानकर उनका प्रसंग न करो। समझ में आया ?

मुमुक्षु : परपदार्थ नुकसान नहीं करता और प्रसंग से इनकार किया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रसंग नहीं करना, इसका अर्थ कि वह भाव उसका प्रसंग करने से अपना भाव मिथ्यात्वरूप होता है, इसलिए ऐसा कहते हैं। तुझे उसकी रुचि हो जाएगी। उसमें कुछ लगता है, हों! यह बहुत विद्वान है, यह तो बहुत विद्वान। साधु बहुत विद्वान, ऐसा कितने ही बोलते हैं। साधु बहुत विद्वान। परन्तु क्या विद्वान? मूर्ख। श्रद्धा उल्टी की उसमें विद्वान कहाँ से आया? समझ में आया? साधु विद्वान बहुत, ऐसा कहे। ऐसी विद्वत्ता! परन्तु क्या विद्वत्ता? वस्तु जहाँ मिथ्या है, जहाँ श्रद्धा का भान नहीं, सम्यग्दर्शन से विरुद्ध गृहीत मिथ्यात्व का पोषक है, उसकी विद्वत्ता किस काम की? सुलगा रखने की है उसके आत्मा को। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! जगत से तो उल्टा है।



गाथा-१४३

आगे सम्यग्दर्शन का निरूपण करते हैं, पहिले कहते हैं कि “सम्यग्दर्शनरहित प्राणी चलता हुआ मृतक” है -

जीवविमुक्तो सबओ दंसणमुक्तो य होइ चलसबओ ।

सबओ लोयअपुज्जो लोउत्तरयम्मि चलसबओ ॥१४३॥

जीवविमुक्तः शवः दर्शनमुक्तश्च भवति चलशवः ।

शवः लोके अपूज्यः लोकोत्तरे चलशवः ॥१४३॥

जो जीव-विरहित शव वही दर्शन-रहित चल-शव समझ।

अपूज्य है शव लोक चल-शव निंद्य लोकोत्तर समझ ॥१४३॥

अर्थ - लोक में जीवरहित शरीर को ‘शव’ कहते हैं, ‘मृतक’ या ‘मुरदा’ कहते हैं, वैसे ही सम्यग्दर्शनरहित पुरुष ‘चलता हुआ मृतक’ है। मृतक तो लोक में अपूज्य है,

अग्नि से जलाया जाता है या पृथ्वी में गाड़ दिया जाता है और दर्शनरहित चलता हुआ 'मुरदा' लोकोत्तर जो मुनि-सम्यग्दृष्टि उनमें अपूज्य है, वे उसको वन्दनादि नहीं करते हैं। मुनिभेष धारण करता है तो भी उसे संघ के बाहर रखते हैं अथवा परलोक में निंद्य गति पाकर अपूज्य होता है।

भावार्थ - सम्यग्दर्शन बिना पुरुष मृतकतुल्य है ॥१४३॥

गाथा-१४३ पर प्रवचन

आगे सम्यग्दर्शन का निरूपण करते हैं, पहिले कहते हैं कि 'सम्यग्दर्शनरहित प्राणी चलता हुआ मृतक है' :- चलता मुर्दा। लो! आहाहा!

जीवविमुक्को सबओ दंसणमुक्को य होइ चलसबओ।

सबओ लोयअपुज्जो लोउत्तरयम्मि चलसबओ ॥१४३॥

अर्थ :- लोक में जीवरहित शरीर को शव कहते हैं, मृतक या मुर्दा कहते हैं, वैसे सम्यग्दर्शनरहित पुरुष चलता हुआ मृतक है। चलता हुआ मृतक है। आहाहा!

मुमुक्षु : लकड़ी लेकर चलता है न मृतक ?

पूज्य गुरुदेवश्री : लकड़ी लेकर चले या यूँ ही चले। मृतक है, कहते हैं। क्या कहा ? प्रकाशदासजी !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मुर्दा ? जीवित मुर्दा। जीवित है ? या मर गया है ? कहते हैं।

भगवान आत्मा राग से रहित, राग की क्रिया के फल से रहित स्वभाव का स्वरूप उसका भिन्न है, ऐसा जहाँ अन्दर में भान नहीं और राग से धर्म मानता है, पुण्य से धर्म मानता है, देह की क्रिया से भी आत्मा को लाभ मानता है, वे सब चलते हुए मृतक हैं। मृतककलेवर समान हैं। आहाहा! यह भावपाहुड़ में रखा। जिसे सम्यग्दर्शनरूपी स्वभावभाव चैतन्य की जागृति का भाव, चैतन्य आनन्दस्वरूप अनन्त गुण का पिण्ड एक वस्तु द्रव्य, उसकी जागृतदशा का भान सम्यग्दर्शन में (हुआ), वह जीवित जीव

है। समझ में आया? आहाहा! गजब! आचार्य की भाषा भी लोगों को जरा कड़क लगती है। जैन में भी मतान्तर में गृहीत मिथ्यादृष्टित, वे सब चलते हुए मृतक हैं। आचार्य हो या ऊँचे उपाध्याय, गणी और उपगणी को ऐसा क्या कहलाये? नाम देते हों। समझे न? ... आहाहा! ऐसी बात है।

सम्यग्दर्शनरहित पुरुष चलता हुआ मृतक है। मृतक तो लोक में अपूज्य है,... मुर्दे को कोई पूजे? जलाओ-जलाओ, जाओ झट निकालो, झट निकालो। राजा का शरीर हो, लो। जलाओ-जलाओ। झट करो, शीघ्रता करो। पोढ़ी गया हो। पोढ़ी गया है जलाओ अब। राजा मर जाए तो मर गये नहीं कहा जाता। राजा साहेब पोढ़े हैं। तब लोग समझें कि मर गये हैं, ऐसा। बड़े महाराजा हों न महाराजा? राजा साहेब पोढ़ गये हैं, इतना बाहर प्रसिद्ध करे। मर गये हों तो। पोढ़ गये समझते हो? पोढ़ गये नहीं समझते? तुम्हारी हिन्दी भाषा है। लेट गये। राजा अन्दर बीमार हो तब तक कहे बराबर। डॉक्टर आये हैं तो देख जाए। मर जाए, तब बात बाहर प्रसिद्ध करे कि राजा साहब पोढ़ गये हैं। तो लोग जाने कि मर गये हैं। आहाहा!

वह रतलाम का एक डॉक्टर आया था? वह कहता था कि हमारे दरबार को ऐसा नहीं कहा जाता। रतलाम है न, रतलाम? उसके दरबार को दस लाख का तालुका होगा, दस लाख का। परन्तु उस दरबार को ऐसा नहीं कहा जाता कि तुम्हें बुखार आया है, ऐसा नहीं कहा जाता। साहेब! आपके शत्रु को बुखार आया है तो वैद्य को बुलावें? ऐसा बोला जाता है। बुखार-बुखार। आपके दुश्मन को बुखार आया है तो वैद्य को बुलावें। आपको बुखार आया, ऐसा नहीं बोला जाता। इतने तो अभिमान के पुतले। वह डॉक्टर आया था न? मावजीभाई के मित्र। मावजीभाई के मित्र नहीं वे? रतलाम से एक डॉक्टर आया था। आया था न यहाँ? हमारे राजा को ऐसा नहीं बोला जाता। साहेब! आपको बुखार बहुत आया है, ऐसा बोला ही नहीं जाता। आहाहा! बेचारे मान में मर गये। आपके दुश्मन को बुखार आया है तो दवा लो। मर गये हुए मुर्दे हैं और उन्हें ऐसा नहीं बोलना, कहते हैं। आहाहा! ऐसे आचार्य-उपाध्याय नाम धराते हों परन्तु जहाँ आत्मा का सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसका भान नहीं, वे चलते हुए मुर्दे हैं, कहते हैं। भले लाखों लोग पूजे, दुनिया उसे माने, परमार्थ से वह अपूज्य है। आहाहा!

मृतक तो लोक में अपूज्य है, अग्नि से जलाया जाता है... अग्नि से तो उसे जला देते हैं। आहाहा! भाषा देखो न कैसी की है! या पृथ्वी में गाड़ दिया जाता है... जला (डालें अथवा) कब्र में डाले। दर्शनरहित चलता हुआ मुर्दा लोकोत्तर जो मुनि- जहाँ सम्यग्दर्शन का भान नहीं। सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा सर्वज्ञपद है, उसमें विकार नहीं, उस विकार का कर्ता नहीं, विकार उसका स्वरूप नहीं, विकारसहित नहीं। वह विकाररहित चिदानन्दस्वरूप अनादि-अनन्त ऐसी चीज़ की जहाँ दृष्टि, अनुभव सम्यक् नहीं, कहते हैं कि वे मुर्दे लोकोत्तर जो मुनि-सम्यग्दृष्टि उनमें अपूज्य है,... लोकोत्तर में धर्मात्मा, मुनि से तो अपूज्य हैं। आहाहा! जगत को कठिन लगे।

वे उसका वन्दनादि नहीं करते हैं। देखो! मुनि भी ऐसे सम्यग्दर्शनरहित हों तो मुनि भी उसका आदर नहीं करते, वन्दन नहीं करते। वन्दनादि... शब्द है न? वन्दन, आदर, स्तुति, स्तवन। ओहो! तुम तो भारी पड़े हो, तुम बहुत विद्वान हो, ऐसी स्तुति नहीं करते। मुनिवेश धारण करता है तो भी उसे संघ के बाहर रखते हैं... श्रद्धा भ्रष्ट है, उसे मुनि का वेश धारण करे तो संघ से बाहर रखे। खुल्ला पड़े ... अथवा परलोक में निन्द्य गति पाकर अपूज्य होता है। लो, दोनों प्रकार से। इस लोक में भी अपूज्य है और बाहर में बाहर लोक दूसरा परलोक, वहाँ भी नीच गति पायेगा। कोई भूतड़ा-बूतड़ा होगा, व्यन्तर होगा और हल्की गति में जाएगा। आहाहा! मिथ्यात्व के समान पाप नहीं और सम्यग्दर्शन के समान कोई धर्म की शुरुआत नहीं। समझ में आया? बाहर के क्रिया आडम्बर के आटोप में रचपच गया बेचारा। उसे बहुमान देने लगा। ओहोहो! ऐसी क्रिया, देखो! नग्नपना, सर्दी में उघाड़े रहना, धूप में रहना, चौमासे में हिम पड़े तो भी कुछ कपड़ा ओढ़ा जाता है? बापू! ऐसा।

मुमुक्षु : कपड़ा अन्दर ओढ़ा गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ओढ़ाया नहीं। ओढ़ा कुछ? भाई! यह तो... हो गया।

यहाँ तो कहते हैं, बाह्य ग्रहण-त्याग करनेवाला जीव को माना, वह मिथ्यादृष्टि मुर्दा है। आहाहा! जगत के साथ रहना और अनमेल रहना। ऐई! अतडा-अतडा समझते हो? जुड़ान नहीं रहना। आहाहा!

निन्द्य गति पाकर अपूज्य होता है। लो! सम्यग्दर्शन बिना पुरुष मृतकतुल्य है। देखो! यह कीमत। सम्यग्दर्शनसहित हुआ, तब जीवता जीव हुआ। आहाहा! क्योंकि जैसा जीव था, वैसा जाना। जैसा जीव था आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, निर्विकारी स्वरूप, राग और शरीर और कर्मरहित जैसा था, वैसा अन्दर श्रद्धा-ज्ञान में आया, वह जीवता जीव है। वह श्रद्धा-ज्ञान में न आवे और राग की क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति क्रिया के भभका में मान बैठे कि हम धर्मी हैं, वह मिथ्यादृष्टि अपूज्य है। जैन का दिगम्बर साधु नाम धरावे तो भी अपूज्य है। आहाहा! समझ में आया? वह सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन की विवेक की बात ही घट गयी है। बाहर का यह इतना त्यागता है और इतना नहीं त्यागा। इतना यह किया और इतना यह किया। इस पर धर्म का और धर्मी का माप (अज्ञानी करता है)।



गाथा-१४४

आगे सम्यक्त्व का महान्पना (माहात्म्य) कहते हैं -

जह तारयाण चंदो मयराओ मयउलाण सव्वाणं ।

अहिओ तह सम्मत्तो रिसिसावयदुविहधम्माणं ॥१४४॥

यथा तारकाणां चन्द्रः मृगराजः मृगकुलानां सर्वेषाम् ।

अधिकः तथा सम्यक्त्वं ऋषिश्रावकद्विविधधर्माणाम् ॥१४४॥

ज्यों तारकाओं में शशि मृगराज मृग-कुल सभी में।

त्यों ऋषि-श्रावक धर्म दोनों में अधिक सम्यक्त्व है ॥१४४॥

अर्थ - जैसे तारकाओं के समूह में चन्द्रमा अधिक है और मृगकुल अर्थात् पशुओं के समूह में मृगराज (सिंह) अधिक है, वैसे ही ऋषि (मुनि) और श्रावक - इन दो प्रकार के धर्मों में सम्यक्त्व है, वह अधिक है।

भावार्थ - व्यवहार धर्म की जितनी प्रवृत्तियाँ हैं, उनमें सम्यक्त्व अधिक है, इसके बिना सब संसारमार्ग बन्ध का कारण है ॥१४४॥

गाथा-१४४ पर प्रवचन

आगे सम्यक्त्व का महानपना कहते हैं :- समकित के समान कोई महागुण नहीं है। उसका माहात्म्य बड़ा है।

जह तारयाण चंदो मयराओ मयउलाण सव्वाणं ।

अहिओ तह सम्मत्तो रिसिसावयदुविहधम्माणं ॥१४४॥

भारी गाथा ।

अर्थ :- जैसे तारकाओं के समूह में चन्द्रमा अधिक है... ताराओं के समूह में चन्द्र अधिक है। और, मृगकुल अर्थात् पशुओं के समूह में मृगराज (सिंह)... 'मृगकुलानां सर्वेषाम्' पशुओं के झुण्ड में सिंह, वह बड़ा मृगराज ऊँचा है, अधिक है। वैसे ही ऋषि (मुनि) और श्रावक... यह मुनि और श्रावक दोनों के बीच दो प्रकार के धर्मों में सम्यक्त्व है, वह अधिक है। समकित बिना एक भी धर्म-बर्म नहीं हो सकता। आहाहा! समकित माना क्या? यह देव-गुरु-धर्म की हमें श्रद्धा है। देव की श्रद्धा, अरिहन्त की श्रद्धा, शास्त्र की श्रद्धा, गुरु की श्रद्धा, वह समकित है। वह समकित नहीं। वह श्रद्धा तो राग है और राग को धर्म माने तो मिथ्यात्व है। समझ में आया?

दो प्रकार के धर्मों में... श्रावक और मुनि का दोनों प्रकार का धर्म है, परन्तु उसमें समकित अधिक है। समकित बिना श्रावक भी नहीं होता और समकित बिना मुनि नहीं होता। और समकित की व्याख्या सूक्ष्म और अलौकिक। आहाहा! जहाँ एक विकल्प का भी कर्ता नहीं, व्यवहार का भी जिसके स्वभाव में अभाव है। व्यवहार को सहायक मानता नहीं, निमित्तरूप से भले जाने, परन्तु सहायक होकर उसके आत्मा को निश्चय में लाभ करता है, ऐसा नहीं मानता। अकेला ज्ञाता-दृष्टा के परिणामवाला ऐसा भगवान आत्मा, उसे व्यवहार का अभाव है, निमित्त का अभाव है। व्यवहार और निमित्त यह निश्चय में आदरणीय है नहीं। अकेला पुण्य-पाप विकल्परहित चीज वह शुद्ध आनन्द, न्यायभाववाला तत्त्व, वही उपादेय और वही आदरणीय और वही लीनता करने के योग्य है। ऐसा सम्यग्दर्शन जहाँ नहीं, वहाँ श्रावक-मुनिपना नहीं हो सकता। लो! दोनों

डाले हैं, हों! श्रावक और मुनि दोनों। ऋषि, श्रावक। देखो! ऋषि नाम दिया। मुनि को ऋषि कहा, ऋषि! वे ऋषि रहते हैं। ... वाले हरिद्वार में, वे नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे ऋषि सब अज्ञानी। उपनिषदवाले। ऋषि आते हैं। ऋषि सम्प्रदाय है। खम्भात में ऋषि सम्प्रदाय है। काम बहुत कठिन। अभी तो देव-गुरु-शास्त्र किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती, उसका ही जहाँ मिथ्यात्व पड़ा है, उसे फिर विकल्परहित समकित हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? ये सब खम्भात के। मारवाड़ के। ऋषि सम्प्रदाय।

भावार्थ :- व्यवहार धर्म की जितनी प्रवृत्तियाँ हैं... देखो! व्रत, नियम, भक्ति, पूजा और आचरण, व्यवहार ज्ञानाचरण, दर्शनाचरण, चारित्राचरण, तपाचरण, वीर्याचरण। व्यवहार के जितने आचरण हैं, उनमें सम्यक्त्व अधिक है, ... सम्यक्त्व न हो तो वे सब आचरण बड़े शून्यवाले हैं। आहाहा! काल में पढ़ना, विनय से पढ़ना, इन सब प्रवृत्ति में समकित न हो तो सब व्यर्थ है। समझ में आया? अब उसने वापस ऐसा निकाला कि समकित की खबर नहीं पड़ती। भगवान जाने। इसका अर्थ हुआ कि खबर नहीं पड़ती कि हम मिथ्यात्वी हैं। इसका अर्थ यह हुआ। चारित्र पालो, उसकी खबर पड़े। इसे समकित की खबर नहीं पड़ती। ठीक।

मुमुक्षु : पालते-पालते हो जाएगा।

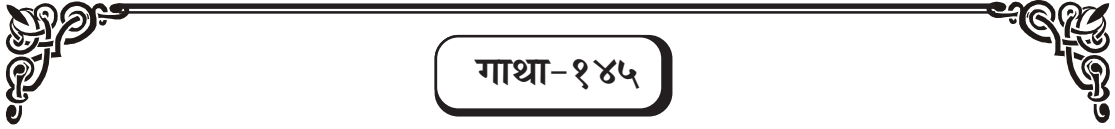
पूज्य गुरुदेवश्री : पालते-पालते राग करते-करते। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आवे।

मुमुक्षु : वह तो नहीं आती।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आती? आहाहा! मार्ग कोई अलग प्रकार है। इसमें किसी का पक्ष चले, ऐसा नहीं है, किसी की युक्ति चले, ऐसा नहीं है। ऐसा इसका मार्ग अत्यन्त भिन्न है।

कहते हैं, व्यवहार धर्म की जितनी प्रवृत्तियाँ हैं, उनमें सम्यक्त्व अधिक है,

इसके बिना सब संसारमार्ग बन्ध का कारण है। सब व्यवहार क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा। वे सब सम्यग्दर्शन बिना संसारमार्ग बन्ध का कारण है। क्या है? महाव्रत वह बन्ध का कारण है, ऐसा कहते हैं। महाव्रत तो चारित्र हो गया। आहाहा! इसके बिना सब संसारमार्ग बन्ध का कारण है। लो!



गाथा-१४५

फिर कहते हैं -

जह फणिराओ सोहड़ १फणमणिमाणिक्यकिरणविष्फुरिओ ।
 तह विमलदंसणधरो जिणभत्ती पवयणे २जीवो ॥१४५॥
 यथा फणिराजः शोभते फणमणिमाणिक्यकिरणविस्फुरितः ।
 तथा विमलदर्शनधरः जिनभक्तिः प्रवचने जीवः ॥१४५॥
 धरणेन्द्र शोभित फण-मणि-माणिक्य-किरण सुदीप्ति से।
 त्यों विमल दर्शन-धर दिपे जिन-भक्ति-युत जिन-मार्ग में ॥१४५॥

अर्थ - जैसे फणिराज (धरणेन्द्र) सो फण जो सहस्र फण उसमें लगे हुए मणियों के बीच के लाल माणिक्य उसकी किरणों से विस्फुरित (दैदीप्यमान) शोभा पाता है, वैसे ही जिनभक्तिसहित निर्मल सम्यग्दर्शन का धारक जीव इससे प्रवचन अर्थात् मोक्षमार्ग के प्ररूपण में शोभा पाता है।

भावार्थ - सम्यक्त्वसहित जीव की जिनवचन में बड़ी अधिकता है। जहाँ-तहाँ (सब जगह) शास्त्रों में सम्यक्त्व की ही प्रधानता कही है ॥१४५॥

१. मुद्रित संस्कृत प्रति में 'रेहड़' पाठ है जिसका संस्कृत छाया में 'राजते' पाठान्तर है।

२. मुद्रित सं. प्रति में 'जिणभत्तीणपवयणो' ऐसा एक पद रूप पद है, जिसकी संस्कृत "जिनभक्तिप्रवचनः" है यह पाठ यतिभंग सा मालुम होता है।

गाथा-१४५ पर प्रवचन

१४५। फिर कहते हैं :-

जह फणिराओ सोहड़ फणमणिमाणिक्यकिरणविष्फुरिओ।

तह विमलदंसणधरो जिणभत्ती पवयणे जीवो॥१४५॥

अर्थ :- जैसे फणिराज (धरणेन्द्र)... पार्श्वनाथ भगवान का उपसर्ग टालने आया था न? हजार फण किये थे। (धरणेन्द्र) है सो फण जो सहस्र फल उनमें लगे हुए मणियों के... हजार तो फण ऐसे हों। आता है न? अभी आता है। प्रतिमाओं में आता है। हजार फणी नहीं था? अभी कुछ था। जूनागढ़ के अन्दर था।

मुमुक्षु : सहस्र फणी पार्श्वनाथ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी-अभी था नहीं कुछ? देखा नहीं था?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... वहाँ पुराना मन्दिर? बाहर का। बाहर का मन्दिर। ... वहाँ था हजार फणी।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : गाँव में न हो। बस, हाँ उस गाँव में। पुराने गाँव में।

हजार फण। उसमें एक-एक मणि वापस बीच में। सहस्र फण उनमें लगे हुए मणियों के बीच जो लाल-माणिक्य... उसमें भी लालमणि, आहाहा! उनकी किरणों से विस्फुरित... भाषा देखो! उपमा देते हैं। हजार तो फण, उसमें अनेक प्रकार के मणि। मणियों के बीच जो लाल-माणिक्य... लो! माणिक्य उनकी किरणों से विस्फुरित... किरणों से स्फुरित। माणिक्य का ऐसे प्रकाश... प्रकाश... प्रकाश... अन्दर। कोई ऐसा कहे, परन्तु देव ने ऐसा कैसे किया? धरणेन्द्र ने। उसको हटाना था न। भगवान का उपसर्ग किया न उस भूत ने। क्या कहलाता है? कमठ-कमठ। उसे मारना था न? हराना था न? वहाँ जाना था न। ऐसा किसलिए किया? परन्तु वह होना हो, वैसे होता

है। बाहर के संयोग वे करने से नहीं होते। भाव आया परन्तु भाव फिर इस जाति का। ऐई! लो, बात ऐसी बहुत सूक्ष्म है।

ऐसा कि धरणेन्द्र को आकर उसको—कमठ को मारना था। हटा देना था। सब बन्ध कर देना था। वह सरल पड़े। सरल की व्याख्या क्या? वस्तु ऐसी है जरा। विकल्प ही उस जाति का आया और उस जाति का बनने का हो, वह बना। दूसरे प्रकार से बनने का होता नहीं। कमठ को निकालो, ऐसा था नहीं। समझ में आया? वीतरागमार्ग समय-समय में पर से भिन्न का विवेक करानेवाला। पर की क्रिया और राग की क्रिया से भिन्न विवेक करावे, ऐसा वीतराग का स्वरूप आत्मा का है। ऐसा कैसे किया? ऐसा क्यों किया? किया है ही कहाँ उसने? ऐई! किया नहीं उसने? धरणेन्द्र ने?

मुमुक्षु : वह तो ... करने जैसा हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब ऐसी बात है। बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! इस प्रकार का विकल्प आया, परन्तु वापस होने का ऐसा था तो ऐसा हुआ। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, माणिक्य उनकी किरणों से विस्फुरित (दैदीप्यमान) शोभा पाता है,... इन सबके मध्य में वह माणिक्य शोभता है, कहते हैं, ऐसा। वैसे ही जिनभक्तिसहित निर्मल सम्यग्दर्शन का धारक जीव... है। आहाहा! 'विमलदसंगधरो' ऐसा शब्द है न? निर्मल सम्यग्दर्शन का धारक भगवान आत्मा, कहते हैं कि भले दूसरी क्रिया न हो, चारित्र न हो, परन्तु निर्मल सम्यग्दर्शन का धारक जिनभक्तिसहित है। उसे वीतरागभाव की भक्ति है। समझ में आया? आहाहा! वह जिनभक्ति अर्थात् सम्यग्दर्शन। आहाहा!

जिनभक्तिसहित निर्मल सम्यग्दर्शन का धारक जीव प्रवचन अर्थात् मोक्षमार्ग के प्ररूपण में शोभा पाता है। लो, ऐसा लिया। 'जिनभक्ती पवयणे जीवो' ऐसा कहा न? वीतरागभाव की प्ररूपणा में वह समकित्ती शोभता है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा यह? वीतरागभाव की प्ररूपणा में समकित्ती शोभता है। क्योंकि उसकी वीतराग प्ररूपणा होती है। सम्यग्दर्शन की प्ररूपणा में वीतरागी धर्म और वीतरागभाव का प्ररूपण होता है। प्रवचन की पूरी शैली में समकित्ती को वीतरागता का ही कथन होता है। वीतरागता

प्रगट करना, वीतरागी दृष्टि करना, वीतरागता में स्थिर होना। समझ में आया? ऐसा प्रवचन तो वही कर सके, ऐसा कहते हैं? है? **प्रवचन अर्थात् मोक्षमार्ग के प्ररूपण में शोभा पाता है।** ऐसी भाषा लेनी है यहाँ। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो भगवान ने प्ररूपण किया, उसमें ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें कथन करनेवाला ही ऐसा है, ऐसा कहते हैं। देखो! 'जिणभक्ती पवयणे' जिनभक्ति प्रवचन है। लो! वह भी प्रवचन का कहनेवाला होता है। वह सब कहनेवालों में शोभता है, कहते हैं। वीतरागभाव का कहनेवाला। अन्दर वीतराग की भक्ति है और वीतरागभाव का प्ररूपण-प्रवचन है।

प्रवचन अर्थात् मोक्षमार्ग के प्ररूपण में शोभा पाता है। ऐसा। मोक्षमार्ग के प्ररूपण में यह समकित्ती शोभता है, ऐसा कहते हैं। जैसे वह हजार फण में मणि और मणि में माणेक, उसकी किरण से दैदीप्यमान है। आहाहा! समझ में आया? वीतराग की भक्तिसहित है। वीतरागभाव की श्रद्धा के भानसहित है। इसलिए **मोक्षमार्ग के प्ररूपण में शोभा पाता है।** मोक्षमार्ग की कथनशैली में वह शोभता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? राग से धर्म मनानेवाले, पुण्य से मनानेवाले, वे सब मिथ्यादृष्टियों में अथवा प्रवृत्ति करके दया, दान, व्रत की क्रियायें करके धर्म माननेवाले, उसमें यह वीतरागी भक्तिवाला समकित्ती प्ररूपणा में शोभता है। मोक्षमार्ग का कथन। कहो। आहाहा! यह उसकी धर्मकथा सच्ची हो, ऐसा कहते हैं। वह सम्यग्दृष्टि है, उसकी धर्मकथा सच्ची होती है। दूसरे की कथाओं में माल नहीं होता, भले वैराग्य की बातें करते हों कि ऐसे होओ और वैसे होओ। सम्यग्दर्शन के भानवाला जीव जिनप्रवचन की वीतरागी प्ररूपणा करने में सबमें वह शोभता है। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी के कथन में, उसकी जोड़ कोई ले सके, ऐसा है नहीं। चाहे जैसी प्ररूपणा करता हो। बाहर की... आहाहा! दुनिया को समझावे लाख लोगों को, दो लाख, पाँच लाख, अमुक। इस धर्म की कथा में वीतरागभाव का कहनेवाला और वीतराग भक्तिवाला ही। शोभता है।

मुमुक्षु : भक्ति तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : हो। लाखो आवे। उसमें क्या है? चिड़िया के नखरे बहुत होते

हैं। चिड़िया-चिड़िया। बहुत होती है। मनुष्य जाए। ऐसे मनुष्य तो लाखों (आवे)। ओहो! कण्ठ हो ऐसा और ऐसी भाषा लडावे। सामने हारमोनियम और हाथ में होवे वापस बाजा ऐसा ऐसे। बाजा होता है न? हाथ का बाजा, हाथबाजा। करताल नहीं, बाजा होता है। उस समय भाई आया नहीं था? बाजा करता था न? वह नहीं था एक पण्डित आया? सब मानो ऐसे, हों समझने जैसे। मर गया, हों! वह।

मुमुक्षु : भोगीलाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। गुजर गया, नहीं? गुजर गया। यहाँ आया था बेचारा। अरे रे!

इस गाथा में तो 'जिणभत्ती पवयणे' शब्द पड़ा है न? 'जिणभत्ती पवयणे' शब्द डाला है। जिन प्रवचन। जिनभक्ति में वीतरागभक्ति स्वयं को है और वीतरागभक्ति का कथन करता है। जिसके भाव में वीतरागता है और जिसकी प्ररूपणा में वीतरागता है, वह सब कथन विद्वानों में वह शोभता है, ऐसा कहना है। आहाहा! समझ में आया? राग से राग में एकत्व माननेवाला और राग से लाभ मनानेवाला, ऐसी प्ररूपणा में अज्ञानी में यह ज्ञानी शोभता है, कहते हैं।

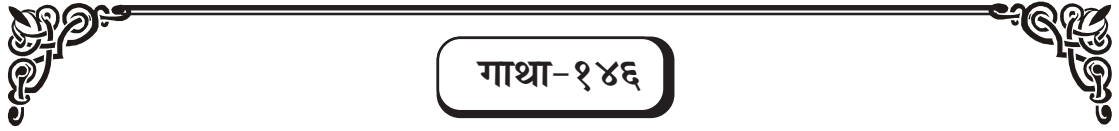
भावार्थ :- सम्यक्त्वसहित जीव की जिन-प्रवचन में बड़ी अधिकता है। जहाँ-तहाँ (सब जगह) शास्त्रों में सम्यक्त्व की ही प्रधानता कही है। लो!

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य ने...

पूज्य गुरुदेवश्री : बात ही की है न। यही की है। मूल वस्तु ही यह है न? यह तो वह वहाँ समकित में आ जाता है, वह चारित्र मुझे ऐसा पालना, वह तो सब आ जाता है। चारित्र स्वरूप में रमणता, वह तो श्रद्धा में नहीं आ जाती? वस्तु ही यह है पूरी। आहाहा! सम्यग्दर्शन की बात बिना ऐसी सब वैराग्य की बातें करे, अमुक की, अमुक की। स्त्री, पुत्र लूटनेवाले हैं, ठग है, इसलिए छोड़ो। उनके ऊपर द्वेष करो। द्वेष करो, जिससे कभी राग न हो। परन्तु इसमें क्या आया? द्वेष करना तो आया। तो दूसरे में राग पहले था, अब द्वेष किया तो वह का वह कर्ता हुआ।

यहाँ तो कहते हैं स्त्री-पुत्र छोड़ना ही नहीं। छूटे पड़े हैं, उसमें छोड़ना किसे?

आहाहा! उनके प्रति की ममता का भाव जो इसकी दशा में था, वह छोड़नेयोग्य है। यह भी वह दृष्टि रखकर छूटे नहीं। वह तो स्वभाव की दृष्टि होने पर वह छूट जाए, अर्थात् उत्पन्न नहीं होते। ऐसी बात सम्यग्दृष्टि जानता है और उसकी प्ररूपणा में ऐसी बात होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि की प्ररूपणा में सत्य होता नहीं है। गजब!



गाथा-१४६

आगे सम्यग्दर्शनसहित लिंग है, उसकी महिमा कहते हैं -

जह तारायणसहियं ससहरबिंबं खमंडले विमले ।

भाविय ऽतववयविमलं ऽजिणलिंगं दंसणविसुद्धं ॥१४६॥

यथा तारागणसहितं शशधरबिंबं खमंडले विमले ।

भावतं तपोव्रतविमलं जिनलिंगं दर्शनविशुद्धम् ॥१४६॥

ज्यों तारकाओं सहित शशि का बिम्ब निर्मल नभ दिपे।

जिन-लिंग दर्शन-शुद्ध निर्मल तप व्रतों से त्यों दिपे ॥१४६॥

अर्थ - जैसे निर्मल आकाशमंडल में ताराओं के समूहसहित चन्द्रमा का बिंब शोभा पाता है, वैसे ही जिनशासन में दर्शन से विशुद्ध और भावित किये हुए तप तथा व्रतों से निर्मल जिनलिंग है सो शोभा पाता है।

भावार्थ - जिनलिंग अर्थात् 'निर्ग्रन्थ मुनिभेष' यद्यपि तपव्रतसहित निर्मल है, तो भी सम्यग्दर्शन के बिना शोभा नहीं पाता है। इसके होने पर ही अत्यन्त शोभायमान होता है ॥१४६॥

१. मुद्रित सं. प्रति में 'तह वयविमलं' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'तथा व्रतविमलं' है।

२. इस गाथा का चतुर्थ पाद यतिभंग है। इसकी जगह 'जिणलिंग दंसणेय सुविसुद्धं' होना ठीक जँचता है।

गाथा-१४६ पर प्रवचन

आगे सम्यग्दर्शनसहित लिंग है, उसकी महिमा कहते हैं :- देखो! गीत यह गाया है न!

जह तारायणसहियं ससहरबिंबं खमंडले विमले ।
भाविय तववयविमलं जिणलिंगं दंसणविसुद्धं ॥१४६॥

नग्नपना, जिनलिंगपना और बाहर का सब यह समकित करना हो तो शोभे, नहीं तो शोभता नहीं। अब ऐसा कहते हैं कि परन्तु समकित उसमें नहीं, ऐसा कैसे (निर्णय किया)? ऐसा कहते हैं, हों! भाई! तुम्हारे-मेरे की बात रहने दे। वस्तुस्थिति क्या है ऐसा ले। वस्तुस्वरूप। जिसके शंका पड़ती है, उसे एकान्त से वह कर्ता होता है। अकेला बाहर में चेष्टा में ही प्रवर्त रहा है। अन्तर्मुख चीज क्या है, उसे उसकी कथनशैली में भी वह पद्धति नहीं आती। और यह करो... यह करो... यह करो... यह करो... आत्मावलोकन में एक गाथा आती नहीं है मुनि की? मुनि तो मुहु मुहु वीतराग। बारम्बार वीतराग को कहे। लो! मुहु मुहु वीतराग। बारम्बार। वस्तुस्थिति यह है। क्योंकि वस्तु वीतरागस्वरूप है। धर्म वीतरागी पर्याय है। उसके कथन में बारम्बार वीतरागता ही आती है। समझ में आया? यहाँ तो समकित की बात की। वहाँ मुनि की बात की है। गुरु-गुरु। गुरु के मुख में से वीतराग... वीतराग... वीतराग... वीतरागभाव... वीतरागभाव आवे। वीतराग अर्थात्? वे वीतराग सर्वज्ञ वीतराग, वे तो परद्रव्य। वीतरागी भाव, स्व का आदर, राग का छोड़ना, वही भाव आवे। व्यवहार से लाभ न हो, निश्चय से हो। व्यवहार का अनादर, निश्चय का आदर। अनादर का अर्थ एकत्व नहीं करता। अनादर का अर्थ कहीं बैर-बैर नहीं, कहीं द्वेष नहीं।

मुमुक्षु : यह तो आप जैसे ... मिले तो वह टले, ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह वस्तु ऐसी है, मोहनभाई! इसके बिना सब भटक मरने के हैं। ऐसी बात है। आहाहा! पूरा मार्ग ऐसा है। स्वयं अन्तर भगवान विराजता है। सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा स्वयं है। शक्ति सहज परमात्मस्वरूप ही है इसका। राग-भाग इसका है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

आचार्य देखो न! बहुत जोर देते हैं। निर्मल आकाशमण्डल में ताराओं के समूहसहित चन्द्रमा का बिम्ब शोभा पाता है,... चन्द्र का बिम्ब शोभता है, लो। ताराओं के समूह में। वैसे ही जिनशासन में... लो! आहाहा! दर्शन से विशुद्ध... लो! 'तारयणसहियं ससहरबिंबं खमंडले विमले। भाविय तववयविमलं जिणलिंगं दंसणविसुद्धं' जिनशासन में, आत्मा के मूल मार्ग में दर्शन से विशुद्ध... सम्यग्दर्शन से विशुद्ध भावित किये हुए तप तथा व्रतों से निर्मल जिनलिंग है... लो! सम्यग्दर्शन सहित जिसकी भावना व्रत और तप की हुई है। ऐसा। वास्तव में तो सम्यग्दर्शनसहित स्वरूप में लीन होना, वह व्रत है। उग्ररूप से इच्छा की उत्पत्ति न होना और अमृत का ओघ उत्पन्न होना, इसका नाम तप है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन के बिना नहीं हो सकता।

दर्शन से विशुद्ध और भावित किये हुए... क्या? सम्यग्दर्शन से विशुद्ध और भावित किये। 'दंसणविसुद्धं' शब्द है न? भावित किये हुए तप तथा व्रतों से निर्मल जिनलिंग है... जिनलिंग तो निर्मल, उसमें अनुभवसहित और उसमें व्रत, तप सहित ऐसा जो जिनलिंग है, उसे शोभता है। अज्ञानी को जिनलिंग शोभता नहीं, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन बिना नग्नपना धारे, अट्टाईस मूलगुण पाले, वह शोभता नहीं, कहते हैं। समझ में आया? यह तो शूरो का मार्ग है, भाई! 'हरि का मारग है शूरो का, कायर का नहीं काम वहाँ।' आहाहा! दुनिया के साथ मेल नहीं, वीतराग के साथ मेल। पूरी दुनिया राग में फँस गयी है और राग की प्रवृत्ति में सब मना लिया गया है, उसे यह वीतरागमार्ग नहीं मिलता। परन्तु शोभे यह कहते हैं। भले प्रवृत्ति में व्रत और तप के भाव हों, परन्तु जिसे सम्यग्दर्शनसहित हों, वह जिनलिंग मुनि लिंग शोभता है, नहीं तो शोभता नहीं।

(नोट - केसेट में प्रवचन नं. ४६/३४ मिनट से ५३/०४ दूसरी बार आ गया होने से यहाँ ५३/०४ से आगे है।)

भावार्थ :- जिनलिंग अर्थात् निर्ग्रन्थ मुनिवेश... लो! नग्नमुनि दिगम्बर और अट्टाईस मूलगुण—विकल्प, वह बाहर का वेश है। यद्यपि तप-व्रतसहित निर्मल है,... तप हो, व्रत हो, पंच महाव्रत हो, महीने-महीने के अपवास करता हो तो भी सम्यग्दर्शन के बिना शोभा नहीं पाता है। लो! कहो, अब मक्खनलालजी ने ऐसा लिखा था। एक

बार कहते थे। पहले के साधु की अपेक्षा अभी के साधु तप में बढ़ गये हैं। चौथे काल के साधु तप में शिथिल थे। चौथे काल के।

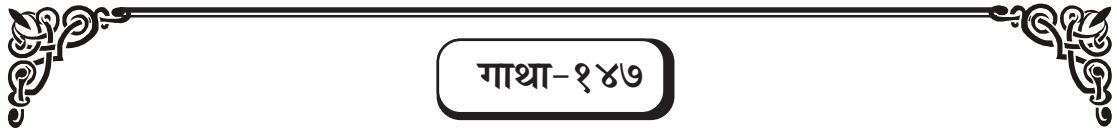
मुमुक्षु : ऐसा कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा था न! चौथे काल के साधु शिथिल थे। भगवान! क्या करता है? अखबार में आया था, अखबार में। अभी के साधु दो-दो अपवास, तीन-तीन अपवास करे, चार-चार, महीने-महीने, आठ-आठ दिन के। पहले के साधु ऐसा नहीं करते थे चौथे काल के। अरे! भगवान! किसे कहना तप? सम्यग्दर्शन बिना तेरा तप कैसा? चौथे काल के मुनि तो आत्मज्ञानी, ध्यानी, आनन्द में लीनता करनेवाले थे। आहाहा! वह तप है। तप अर्थात् मुनिव्रत, मुनिपना वह तप-दीक्षा कहलाये न? तप कल्याणक। कल्याणक अर्थात् मुनिपना। मुनिपना अर्थात् चारित्र। उसे तप कल्याणक कहते हैं। चारित्र ले, तब तप कल्याणक करते हैं न? वह चारित्र ऐसे आत्मा के अनुभव में आनन्द में लहर करता हुआ स्थिर होता है... स्थिर होता है... स्थिर होता है... समाता है। समझकर समा गये। विकल्प में से निकलकर अन्दर में स्थिर हो गये। वह और वर्तमान ... गजब किया है न! आहाहा! किसे कोई पूछनेवाला? ऋषभदेव भगवान के समय में तो साधु थे न? कितने? चार हजार। चार हजार निभ सके नहीं। वे कुछ-कुछ करने लगे। नग्न होकर वनस्पति खाये, हरितकाय। नहीं रहा जाए। वेश छोड़ दो, नहीं तो दण्ड देंगे। कहो, वह काल ऐसा और इस काल में दण्ड देंगे, (कहने के लिये) कोई आया नहीं। इसका अर्थ यह हुआ। ऐसा करोगे तो हम दण्ड देंगे। नग्न नहीं। कोई छाल के वस्त्र पहनकर फिर करो। छाल के। नग्न होकर तुम साधु नाम धराकर यह वनस्पति और कन्दमूल खाओ, नहीं रहा जाए, मुनिपना नहीं। कहो, इतना करते उसे ... अनेक उल्टी प्ररूपणा चली। खटके-खटके जगत को, सत्य को। ... क्या हो?

जिनलिंग अर्थात् निर्ग्रन्थ मुनिवेश यद्यपि तप-व्रतसहित निर्मल है,... व्रत और तप भी निर्मल है, ऐसा कहते हैं। तो भी सम्यग्दर्शन के बिना शोभा नहीं पाता है। ऐसे व्रत और तप निरतिचार करता हो शुभभाव और मुनिलिंग नग्न दिगम्बर हो, पंच महाव्रत हो तो भी सम्यग्दर्शन बिना कुछ है नहीं। क्योंकि सम्यग्दर्शन ही धर्म का मूल श्रावक और साधु में पहला है। अब पहली चीज़ जो चाहिए, वह तो नहीं होती, उसके बिना

ऊपर के सब थोथा है। आहाहा! सत्य बात कहने से सत्य की इस बात में आचार्य ने ऐसी बात की है। निन्दा की है यह? वस्तु का स्वरूप बताया है। दया है, भाई! तुझे बाहर की प्रवृत्ति में तू मान बैठा, परन्तु वस्तु नहीं। जन्म-मरण नहीं टले, बापू! नहीं टलेंगे। कोई बाहर की बात नहीं कि कोई दे देवे चढा दे। सेठिया के लड़के बराबर पास न होते हों न! फिर सेठ जाए उसके पास और बढ़ती कहकर। बढ़ती करके पास करावे। बढ़ती क्या? मार्क्स बढ़ावे। अपने तलकचन्दभाई कहते थे न हम चढ़ा देते हैं। आहाहा! इसी प्रकार अज्ञानी चढ़ावा कराकर मार डाले। तुम तो महामुनि हो, तुम आचार्य हो, तुम उपाध्याय हो, तुम महाविद्वान हो।

इसके होने पर भी अत्यन्त शोभायमान होता है। लो! यदि सम्यग्दर्शनसहित हो। आत्मा के अनुभव की-आनन्द की दशा, शुद्ध की, पवित्रता की, उस सहित हो तो वह व्रत, तप और नग्नपना, निर्ग्रन्थपना शोभता है। नहीं तो नहीं शोभता। आहाहा!



गाथा-१४७

आगे कहते हैं कि ऐसा जानकर दर्शनरत्न को धारण करो, ऐसा उपदेश करते हैं-

इय णाउं गुणदोसं दंसणरयणं धरेह भावेण ।

सारं गुणरयणाणं सोवाणं पढम मोक्खस्स ॥१४७॥

इति ज्ञात्वा गुणदोषं दर्शनरत्नं धरतभावेन ।

सारं गुणरत्नानां सोपानं प्रथमं मोक्षस्य ॥१४७॥

गुण-दोष को यों जान दर्शन रत्न धारो भाव से।

गुण रत्न का है सार शिव का है प्रथम सोपान ये ॥१४७॥

अर्थ - हे मुने ! तू 'इति' अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व के गुण और मिथ्यात्व के दोषों को जानकर सम्यक्त्वरूपी रत्न को भावपूर्वक धारण कर। यह गुणरूपी रत्नों में सार है और मोक्षरूपी मंदिर का प्रथम सोपान है अर्थात् चढ़ने के लिए पहिली सीढ़ी है।

भावार्थ – जितने भी व्यवहार मोक्षमार्ग के अंग हैं (गृहस्थ के दानपूजादिक और मुनि के महाव्रत शीलसंयमादिक) उन सबमें सार सम्यग्दर्शन है, इससे सब सफल हैं, इसलिए मिथ्यात्व को छोड़कर सम्यग्दर्शन अंगीकार करो, यह प्रधान उपदेश है ॥१४७॥

गाथा-१४७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि ऐसा जानकर दर्शनरत्न को धारण करो,... लो! ऐसा जानकर सम्यग्दर्शन रत्न है पहला। महा अमूल्य रत्न। आहाहा! धारण करो, ऐसा उपदेश करते हैं:-

इय णाउं गुणदोसं दंसणरयणं धरेह भावेण ।

सारं गुणरयणाणं सोवाणं पढम मोक्खस्स ॥१४७॥

दो दोष। मिथ्यात्व का दोष और समकित का दोष ऐसा।

अर्थ :- हे मुने! तू इति अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व के गुण और मिथ्यात्व के दोषों को... यहाँ दो ही बात है। मुनिलिंग धारकर व्रतादि करे परन्तु मिथ्यादृष्टि है। उसका कर्ता होता है। आत्मा राग से भिन्न है, उसका तो भान नहीं। ऐसे मिथ्यात्व के दोष को और समकित के गुण को। लो! मिथ्यात्व के दोषों को जानकर सम्यक्त्वरूपी रत्नों को भावपूर्वक धारण करो। अन्तर में निर्विकल्पता करके समकित को धार, ऐसा कहते हैं। लो! यहाँ तो समकित को धार, ऐसा कहते हैं।

सम्यक्त्वरूपी रत्न को भावपूर्वक धारण कर। अन्दर धारण करे। कैसा है समकित रत्न? यह गुणरूपी रत्नों में सार है... लो! इन सब गुण में सार वह है। यह कहते हैं चारित्र तो अलौकिक बात है। पाठ है, देखो न! 'सारं गुणरत्नानां' गुणों में सार में सार रत्न, वह समकित है। ऐसा कहा है। आहाहा! यह गुणरूपी रत्नों में सार है और मोक्षरूपी मन्दिर का प्रथम सोपान है... पहला सोपान है। मोक्ष के मन्दिर में चढ़ने का पहला सोपान है। उस पहले सोपान बिना सब बातें व्यर्थ हैं। यह व्रत पाले, अपवास करे, तप करे, नग्नपना, इसमें कुछ सार नहीं है। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१५२, गाथा-१४७-१४८, शनिवार, मगसर कृष्ण ७, दिनांक १९-१२-१९७०

अष्टपाहुड़। भावपाहुड़ की १४७ गाथा। टीका आ गयी है। अर्थ थोड़ा फिर से लेते हैं। कहते हैं कि हे मुने! मुनि को लक्ष्यकर बात है। परन्तु सम्यग्दर्शनरत्न, वह सब गुणों में प्रधान है। सम्यग्दर्शन बिना कोई गुण, गुण में गिना नहीं जाता। पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व के गुण और मिथ्यात्व के दोषों को... (गाथा) १४७। समकित में लाभ और मिथ्यात्व में नुकसान। उसे जानकर सम्यक्त्वरूपी रत्न को भावपूर्वक धारण कर। प्रकाशदासजी चले गये? सवेरे थे। कहते हैं, समकितरूपी रत्न। लो, यह दुनिया के रत्न, वे रत्न नहीं। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा जो आत्मतत्त्व, निर्मल शुद्ध आनन्द का धाम, अखण्ड अभेद द्रव्यस्वरूप, उसकी श्रद्धा अन्तर्मुख सम्यग्दर्शन, वह सब गुणों में प्रधान और मुख्य है। सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ व्रत, तप आदि क्रिया इसे कुछ भी लाभदायक नहीं है। बन्धन का कारण है, इसलिए भाव से उसे धार। भाव से धार अर्थात्? अन्तर के स्वभाव में सन्मुख होकर उसका अनुभव कर। आत्मा वस्तु है, महाआनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वभाव है, उसकी श्रद्धा कर। उसकी श्रद्धा कब होगी? कि उसके सन्मुख होवे तो। राग, निमित्त और अल्पज्ञता की विमुखता होकर, पूर्ण पद सर्वज्ञपद आत्मा का, उसके सन्मुख होवे तो सम्यग्दर्शन होता है। इस प्रकार भाव से धार, ऐसा। लो, यह मुद्दे की रकम की यह बात आयी।

कैसा है सम्यक्त्वरूपी रत्न? गुणरूपी रत्नों में सार है... जितने गुणरूपी रत्न कहलाते हैं, उसमें सम्यग्दर्शन (सार है)। सब गुणरूपी रत्न में समकितरूपी रत्न सार है। ओहोहो! उत्तम है। सब गुणरूपी रत्न में वह उत्तम है।

मुमुक्षु : चारित्र से भी उत्तम?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी तो पहली सम्यग्दर्शन की बात है न! चारित्र तो अलौकिक बात है। परन्तु पहले चारित्र का कारण जो वस्तु है, वह प्रगट न हो, उसके बिना चारित्र कहाँ से आया? क्रियाकाण्ड, व्रत, नियम और अनेक प्रकार के अभिग्रह धारण, ऐसे सब गुण जो शुभभाव कहलाते हैं, उनमें तो यह समकितरत्न सार है। इसके बिना तो कुछ है नहीं। कहो, समझ में आया?

कैसा है ? मोक्षरूपी मन्दिर का प्रथम सोपान है... मोक्षरूपी मन्दिर का पहला सोपान है। पहला ही सोपान यह है। अभी पहले सोपान बिना दूसरा, तीसरा आवे कहाँ से ? ऐसा कहते हैं। जिसे आत्मशान्ति, आत्मा आनन्दरूपी पूर्णता की प्राप्तिरूपी मुक्ति, उसका यह सम्यग्दर्शन पहला सोपान है। कहो, समझ में आया ? मोक्षरूपी मन्दिर का प्रथम सोपान है अर्थात् चढ़ने के लिये पहली सीढ़ी है। पहली सीढ़ी है। अब उस ओर व्याख्या है। कल इतना तो आया था।

भावार्थ :- जितने भी व्यवहार मोक्षमार्ग के अंग है,... यह डाला देखो। चारित्र की बात अलग परन्तु जितने व्यवहार मोक्षमार्ग के प्रकार हैं। (गृहस्थ के दान-पूजादिक और मुनि के महाव्रत-शीलसंयमादिक) उन सबमें सार सम्यग्दर्शन है,... लो! कहो, समझ में आया ? यहाँ तो कहते हैं कि जितने नियम दान और पूजा के भाव हैं, वे सब पुण्य बन्धन के कारण हैं। आहाहा! और मुनि के महाव्रतादि, लो! वे सब विकल्प शुभभाव। आहाहा! उन सबमें सार सम्यग्दर्शन है,... सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या ? उसकी कुछ कीमत ही नहीं। ऐसा कि यह सब अणुव्रत और महाव्रत साधु ने पालन किये और गृहस्थों ने भी पालन किये।

मुमुक्षु : वास्तविक व्रत जिसे हो, उसे सम्यग्दर्शन होता ही है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसका व्रत कैसा परन्तु ? कहाँ था व्रत ? अज्ञानभाव में व्रत कैसे ? आहाहा !

कहते हैं, व्यवहार के जितने अंग हैं, व्रत, नियम, तप और उपवास, उन सबमें गृहस्थ को दान-पूजादि मार्ग में सम्यग्दर्शन हैं। सम्यग्दर्शन बिना दान, पूजा सब अंक बिना के शून्य हैं। अणुव्रतादि भी। आहाहा! और मुनि को महाव्रत और शील-संयम आदि, लो! इन्द्रिय का दमन, कषाय की मन्दता, वे सब भाव उन सबमें सार सम्यग्दर्शन है,... आहाहा! मूल भूमि जहाँ अन्दर आत्मा के अनुभव में पक्की हुई नहीं, उसे कुछ भी कोई चीज लाभदायक है नहीं। कहो, समझ में आया ? अभी इसकी कीमत घट गयी। यह व्रत की, तप की, त्याग की (कीमत)। भगवान कहते हैं कि इसकी कीमत है तो यह कहते हैं कि उसकी कीमत है। समझ में आया ? है, इसमें है ? १४७। २७० पृष्ठ। २७० पृष्ठ। उसमें नहीं होगा। परन्तु १४७ गाथा, लो न। भावपाहुड़ की।

सबमें सार सम्यग्दर्शन है, इसमें सब सफल हैं,... व्रतादि सब चाहे जो हो, परन्तु सम्यग्दर्शन बिना वह सब निरर्थक और निष्फल है, ऐसा कहते हैं। वह चीज़ क्या, उसकी कीमत लोगों को कम हो गयी। और यह खाना, पीना और व्रत-उपवास, ऐसा कि देव, गुरु और शास्त्र ने भी अणुव्रत और महाव्रत को पाला है देव-गुरु ने और शास्त्र ने अणुव्रत और महाव्रत कहे हैं, इसलिए देव-गुरु-शास्त्र का क्या काम? अपने अणुव्रत और महाव्रत पालो। कहो! सम्प्रदायवाले ऐसा मानते हैं? लो, यह मैंने तुम्हारी भाषा कही। सवेरे तुमने कहा था। देव-गुरु-शास्त्र का क्या काम है? क्योंकि देव-गुरु ने तो वे पालन किये थे। अपने को वह पालना। हो गया। फिर प्रश्न क्या? शास्त्र ने कहा। शास्त्र ने कहा था, तत्प्रमाण अपने को पालना। परन्तु वह शास्त्र और देव-गुरु ने तूने कहा, वैसा कहा ही नहीं। आहाहा!

महाव्रत और अणुव्रत के विकल्प हैं, वे तो शुभराग हैं, और राग से, स्वरूप है, वह तो निवृत्तस्वरूप है। उसकी तो इसे खबर नहीं। निवृत्तस्वरूप है, राग से निवृत्तस्वरूप है। राग आस्रव है। आस्रव से तो अभाव-स्वभावस्वरूप है। अब उस आस्रव को पाला? जिसमें वह भाव नहीं, उसे पाला? इसका अर्थ क्या हुआ? मिथ्यादृष्टि में जोर ही ऐसा सर्वत्र है उसे। बाहर की क्रियाकाण्ड में... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने पंच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण पाले। कहाँ पाले? सुन न! आहाहा!

मुमुक्षु : धर्म पाला।

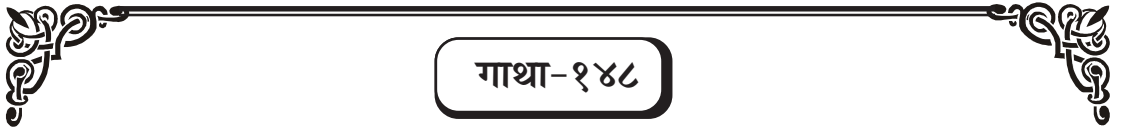
पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म, वह तो रागरहित आत्मा की सम्यग्दर्शन रत्न अपूर्व अनुभव, आत्मा के आनन्द का अनुभव, उसमें प्रतीति होना, ऐसा वह सम्यग्दर्शन है। उस सम्यग्दर्शन बिना सब व्यर्थ है। सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थकरदेव का तो यह कथन है। समझ में आया? है?

मिथ्यात्व को छोड़कर सम्यग्दर्शन अंगीकार करो, यह प्रधान उपदेश है। यह मुख्य उपदेश है। उसके बदले यह तो करो व्रत और करो अणुव्रत और करो महाव्रत और करो यह। वह तो सब विकल्प-राग है। राग तो सम्यग्दृष्टि को हेय है। धर्मी जीव को राग हेयबुद्धि से आता है। तब यह (अज्ञानी) कहता है यही करना, वह आत्मा का पालन है और चारित्र है। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा का स्वभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव है, गजब की बात है न। कुकर्म करता है। राग, वह आत्मा का स्वभाव है। समझ में आया? लोगों को मूल तत्त्व की खबर ही नहीं। यह ऊपर-ऊपर से सब चला है। लगे अच्छा। निवृत्ति नहीं मिलती। चौबीस घण्टे तो धन्धे के पाप में रुके। कितने ही घण्टे नींद में रुके। कितने ही उसमें रुके। सुनने का मिले घण्टा भर तो ऐसा वहाँ सुन आवे। अब दूसरा कुछ विचारने का होता नहीं। जो यह व्रत पालना, देखो यह रात्रिभोजन नहीं करना, यह कन्दमूल नहीं खाना, यह अमुक करना, अपवास करना, लो! दया पालन करो। आहाहा! कहो। यह तो सब क्रिया का भाग राग है। यह वीतराग स्वभाव नहीं, यह आत्मा का स्वभाव नहीं, धर्म नहीं। भारी कठिन बातें।

मिथ्यात्व को छोड़कर सम्यग्दर्शन अंगीकार करो, यह प्रधान उपदेश है। मूल उपदेश यह है, ऐसा कहते हैं। प्रधान उपदेश, ऐसा। यह मुख्य उपदेश है। समझ में आया?



गाथा-१४८

आगे कहते हैं कि सम्यग्दर्शन किसको होता है ? जो जीव, जीव पदार्थ के स्वरूप को जानकर इसकी भावना करे, इसका श्रद्धान करके अपने को जीव पदार्थ जानकर अनुभव द्वारा प्रतीति करे उसके होता है। इसलिए अब यह जीवपदार्थ कैसा है, उसका स्वरूप कहते हैं -

कत्ता भोड़ अमुत्तो सरीरमित्तो अणाइणिहणो य ।

दंसणणाणुवओगो ँणिद्धिट्ठो जिणवरिंदेहिं ॥१४८॥

कर्त्ता भोक्ता अमूर्त्तः शरीरमात्रः अनादिनिधनः च ।

दर्शनज्ञानोपयोगः ँनिर्दिष्टः जिनवरेन्द्रैः ॥१४८॥

१. पाठान्तरः - जीवो णिद्धिट्ठो । २. पाठान्तरः - जीवः निर्दिष्टः ।

कर्ता अमूर्त अनाद्यनन्त रु भोक्ता तन प्रमित यह।
दृग ज्ञान उपयोगवान आतम जिनवरो से प्ररूपित॥१४८॥

अर्थ - 'जीव' नामक पदार्थ है सो कैसा है - कर्ता है, भोक्ता है, अमूर्तिक है, शरीरप्रमाण है, अनादिनिधन है, दर्शन-ज्ञान उपयोगवाला है इस प्रकार जिनवरेन्द्र सर्वज्ञदेव वीतराग ने कहा है।

भावार्थ - यहाँ 'जीव' नामक पदार्थ के छह विशेषण कहे। इनका आशय ऐसा है कि -

१. 'कर्ता' कहा, वह निश्चयनय से तो अपने अशुद्ध भावों का अज्ञान अवस्था में आप ही कर्ता है तथा व्यवहारनय से ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मों का कर्ता है और शुद्धनय से अपने शुद्धभावों का कर्ता है।

२. 'भोक्ता' कहा, वह निश्चयनय से तो अपने ज्ञान-दर्शनमयी चेतनभाव का भोक्ता है और व्यवहार नय से पुद्गलकर्म के फल में होनेवाले सुख-दुःख आदि का भोक्ता है।

३. 'अमूर्तिक' कहा, वह निश्चय से तो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द ये पुद्गल के गुण पर्याय हैं, इनसे रहित अमूर्तिक है और व्यवहार से जब तक पुद्गलकर्म से बंधा है, तब तक 'मूर्तिक' भी कहते हैं।

४. 'शरीरपरिमाण' कहा, वह निश्चय से तो असंख्यातप्रदेशी लोकपरिमाण है, परन्तु संकोच-विस्तारशक्ति से शरीर से कुछ कम प्रदेशप्रमाण आकार में रहता है।

५. 'अनादिनिधन' कहा, वह पर्यायदृष्टि से देखने पर तो उत्पन्न होता है और नष्ट होता है, तो भी द्रव्यदृष्टि से देखा जाय तो अनादिनिधन सदा नित्य अविनाशी है।

६. 'दर्शन-ज्ञान उपयोगसहित' कहा, वह देखने जाननेरूप उपयोगस्वरूप चेतनारूप है।

इन विशेषणों में अन्यमती अन्य प्रकार सर्वथा एकान्तरूप मानते हैं उनका निषेध भी जानना चाहिए। 'कर्ता' विशेषण से तो सांख्यमती सर्वथा अकर्ता मानता है उसका निषेध है। 'भोक्ता' विशेषण से बौद्धमती क्षणिक मानकर कहता है कि कर्म को करनेवाला तो और है तथा भोगनेवाला और है, इसका निषेध है। जो जीव कर्म करता

है, उसका फल वही जीव भोगता है, इस कथन से बौद्धमती के कहने का निषेध है। 'अमूर्तिक' कहने से मीमांसक आदि इस शरीरसहित मूर्तिक ही मानते हैं, उनका निषेध है।

'शरीरप्रमाण' कहने से नैयायिक, वैशेषिक, वेदान्ती आदि सर्वथा, सर्व व्यापक मानते हैं, उनका निषेध है। 'अनादिनिधन' कहने से बौद्धमती सर्वथा क्षणस्थायी मानता है, उसका निषेध है। 'दर्शनज्ञानोपयोगमयी' कहने से सांख्यमती तो ज्ञानरहित चेतनामात्र मानता है, नैयायिक, वैशेषिक, गुणगुणी के सर्वथा भेद मानकर ज्ञान और जीव के सर्वथा भेद मानते हैं, बौद्धमत का विशेष 'विज्ञानाद्वैतवादी' ज्ञानमात्र ही मानता है और वेदान्ती ज्ञान का कुछ निरूपण ही नहीं करता है, इन सबका निषेध है।

इस प्रकार सर्वज्ञ का कहा हुआ जीव का स्वरूप जानकर अपने को ऐसा मानकर श्रद्धा, रुचि, प्रतीति करना चाहिए। जीव कहने से अजीव पदार्थ भी जाना जाता है, अजीव न हो तो जीव नाम कैसे होता, इसलिए अजीव का स्वरूप कहा है, वैसा ही उसका श्रद्धान आगम अनुसार करना। इस प्रकार अजीव पदार्थ का स्वरूप जानकर और इन दोनों के संयोग से अन्य आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष – इन भावों की प्रवृत्ति होती है। इनका आगम के अनुसार स्वरूप जानकर श्रद्धान करने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है, इस प्रकार जानना चाहिए॥१४८॥

गाथा-१४८ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि सम्यग्दर्शन किसको होता है? जो जीव, जीवपदार्थ के स्वरूप को जानकर... देखो अब। पूरे जैनदर्शन का सार एक गाथा में रखते हैं। जीव की चीज़ कैसी भगवान ने देखी, (और) भगवान ने कही। जीवपदार्थ के स्वरूप को जानकर... भगवान सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वर केवली ने जो जीव का स्वभाव कहा, उसे जानकर इसकी भावना करे,... जानकर उसकी भावना करे। जाने बिना किसकी भावना करे? समझ में आया? यह आत्मा क्या चीज़ है? उसे जानकर उसकी भावना करे। लो! इसका श्रद्धान करके... लो! पर्याय की श्रद्धा करे या यह आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य है।

अपने को जीवपदार्थ जानकर... अपने को जीवपदार्थ जानकर। आस्रव, पुण्य-पाप, शरीर-वाणी मैं नहीं। लो! महाव्रतादि के परिणाम वे जीवपदार्थ नहीं। वे तो अन्य पदार्थ हैं, आस्रव पदार्थ है। जीवपदार्थ जानकर अनुभव द्वारा प्रतीति करे... देखो! जीव पदार्थ जानकर, अनुभव करके प्रतीति करे। वे भी गये लगते हैं, कान्तिभाई गये लगते हैं। कान्तिभाई आये थे न? समझ में आया? यह हिन्दी पुस्तकें हैं परन्तु इनमें तो अकेले पाठ हैं। अर्थ तो इसमें है। क्या कहा, समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञदेव तीर्थकरदेव ने केवलज्ञान में जो जीवपदार्थ देखा, भगवान ने जो जीव वस्तु को अन्तर में देखा, वह तो अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान की मूर्ति जीव को भगवान ने देखा है, यह आगे कहेंगे, देखो! 'जिणवरिन्देहिं' जिनवर इन्द्र ने। जिनवर अर्थात् जिनवर इन्द्र। ऐसे परमात्मा जिनेन्द्रदेव, उन्होंने जीव को भगवान ने केवलज्ञान में देखा, वैसा कहा, उसकी अन्दर श्रद्धा करे। वह क्या है, इसकी तो खबर नहीं होती। राग करे, पुण्य करे, दया-दान करे वह जीव। वह जीव नहीं, वह तो राग है। आहाहा! जीव तो जाने, देखे और आनन्द में अन्तर स्वभाव से भरपूर तत्त्व, उसे जानकर फिर ऐसा कहे, देखो भाषा! अनुभव द्वारा प्रतीति करे... लो! वे कहाँ गये, सब चले गये? मुम्बई का। यह तो कहे, श्रद्धान की प्रधानता करो। भाई सुन न! दोनों प्रधान है। जब जिस समय जिस अपेक्षा से कहना हो, वह (कहा जाता है)। आहाहा! जाने बिना अनुभव किसका? और अनुभव बिना प्रतीति किसकी? ऐसा कहते हैं। जो चीज़ नजर में ही आयी नहीं, भाव अन्दर भासित नहीं हुआ, भासित हुए बिना यह वस्तु है, ऐसी प्रतीति किसकी करना? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : मुख्य कौन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों मुख्य। कहा न, क्या सुना अभी? दोनों मुख्य। यह तुम्हारा विवाद मुम्बई में पड़ा है। देखो न, यहाँ ज्ञान मुख्य आया। फिर श्रद्धा की।

मुमुक्षु : ज्ञान ही मुख्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे ही। वह जाननेवाला है या नहीं? जाने बिना श्रद्धा किसकी? श्रद्धा तो निर्विकल्प प्रतीतिरूप है, अस्तिरूप है। उसे तो खबर नहीं कि मैं

कौन हूँ? यहाँ प्रधान ज्ञान की बात है। १७-१८ (गाथा समयसार) की बात हो गयी। जाना हुआ, जीव जाना... जानना... जानना... फिर श्रद्धा करना, ऐसी बात आती है। तब किसकी? समझे बिना श्रद्धा किसकी? तब वह समझण अर्थात् व्यवहार समझण। नहीं-नहीं व्यवहार नहीं। वह समझण कब थी?

आत्मा में राग के विकल्प से रहित ज्ञान को ज्ञान द्वारा जानकर, अनुभव करके प्रतीति करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। इसकी तो कुछ खबर नहीं होती और करो व्रत और करो तप। लंघण। सब बिना एक के शून्य हैं। कहो, वाडीभाई!

मुमुक्षु : वह ऐसा कहते हैं कि हमारे करना नहीं है, इसलिए ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : करो न। मर गये कर-करके। व्रत और सब महाव्रत। क्या कह? समझ में आया? धूल में भी कुछ नहीं था। राग की क्रिया में क्या है? परन्तु वह तो राग की वृत्ति है। अभव्य भी ऐसा तो करता है। नौवें ग्रैवेयक में गया अभव्य शुक्ललेश्या। क्या चीज? चीज तो अन्दर यह। विकल्प के, राग के अंशरहित चीज है। आस्रवतत्त्व रहित चीज है, अजीव तत्त्वरहित चीज अन्दर है। भगवान ने तो उसे आत्मा कहा है। आहाहा! ऐसा आत्मा अनन्त ज्ञान-दर्शन (युक्त है)। स्पष्टीकरण करेंगे।

उसके होता है। इसलिए अब यह जीवपदार्थ कैसा है, उसका स्वरूप कहते हैं:-

कत्ता भोड़ अमुत्तो सरीरमित्तो अणाइणिहणो य।

दंसणणाणुवओगो णिद्धो जिणवरिंदेहिं॥१४८॥

जिनवरेन्द्र—भगवान ने ऐसा कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य भी साक्षी देते जाते हैं। आहाहा! कहो, यह देव का क्या काम है यहाँ? ऐई! चेतनजी! प्रकाशदासजी! यह तो देव को सामने रखते हैं। तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागदेव ने यह कहा है। वीतरागदेव बिना अपनी कल्पना से माने, वह सब अज्ञान, अनादि से अज्ञान को रगड़ता है। आहाहा! देखो! आचार्य स्वयं कहते हैं। 'णिद्धो जिणवरिन्देहिं' जिनवरेन्द्र ने ऐसा कहा है। निर्दिष्ट, कहा है कथन।

अर्थ :- जीव नामक पदार्थ है... यह वस्तु भगवान आत्मा अन्दर। यह (शरीरादि) तो मिट्टी, जड़ धूल है। वाणी जड़ धूल है। आवाज उठे, अन्दर विकल्प उठे दया, दान,

व्रत का, वह तो आस्रव और राग विकार है। वह जीवतत्त्व नहीं। जीव की खबर नहीं होती और इसे धर्म हो जाए! आहाहा! समझ में आया? जीव नामक पदार्थ है, सो कैसा है-कर्ता है,... स्पष्टीकरण करेंगे। भोक्ता है, अमूर्तिक है, शरीरप्रमाण है, अनादिनिधन है, दर्शन-ज्ञान-उपयोगवाला है, इस प्रकार जिनवरेन्द्र सर्वज्ञदेव वीतराग ने कहा है। सर्वज्ञदेव वीतराग परमात्मा ने जीव को ऐसा कहा है। अब इसे जीव की खबर नहीं होती। समझ में आया?

भावार्थ :- यहाँ जीव नामक पदार्थ के छह विशेषण कहे। छह प्रकार। इनका आशय ऐसा है कि -

१- 'कर्ता' कहा, वह निश्चयनय से तो अपने अशुद्ध (रागादि) भावों का अज्ञान अवस्था में आप ही कर्ता है... अब देखो! स्पष्टीकरण। अज्ञानी, सर्वज्ञ के अतिरिक्त जितने कल्पित करते हैं न अज्ञानी? सबका स्पष्टीकरण इसमें है। अपने अशुद्ध (रागादि) भावों का... पुण्य और पाप का, व्रत का, अव्रत का विकल्प राग। वह अपने अशुद्ध रागादि भावों का... देखा! वह पर्याय विकारी इसकी। इसकी मानी है न? उसके ऊपर है न दृष्टि? द्रव्य पर तो दृष्टि है नहीं। अशुद्ध रागादि भावों का अज्ञान अवस्था में आप ही कर्ता है... लो! आहाहा! महाव्रत के और व्रत के तथा अव्रत के विकल्प जो उठते हैं वृत्ति-राग, उसका अज्ञान अवस्था में जीव कर्ता है, कर्म कर्ता नहीं है। कोई ईश्वर कर्ता-फर्ता नहीं है। कहो, समझ में आया?

अपने अशुद्ध रागादि भावों का... अर्थात् राग, द्वेष, विषय, वासना, भ्रान्ति। इस वस्तु के स्वरूप के अज्ञान में, अज्ञान अवस्था की दशा में जीव भगवान ने ऐसा कहा, भगवान ने ऐसा कहा कि अज्ञान अर्थात् मिथ्यात्व अवस्था में यह जीव स्वयं पुण्य-पाप के राग का कर्ता है, होता है। कहो, समझ में आया? अब अज्ञान अवस्था में रागादि का कर्ता, यह शील निकाला। पकड़े बिना समझ में नहीं आवे। और इसका धर्म हो। करो सामायिक और करो प्रौषध। इसकी सामायिक-प्रौषध? जहाँ वस्तु आत्मा कौन है, इसकी तो खबर नहीं होती। उसमें स्थिरता की क्रिया तो जब जाना हो तो स्थिरता की क्रिया हो। यह तो बाहर के क्रियाकाण्ड। करने की क्रिया कब थी? रुलने की है। भटकने के हैं शुभभाव। वह तो विकल्प है। यहाँ तो आत्मा चैतन्यमूर्ति आनन्दस्वरूप

का भान होकर आनन्द में स्थिर रहे, उसका नाम सामायिक है। ऐसे पहाड़े बोले, वह सामायिक है? वह तो अभव्य भी करता है। समझ में आया?

अज्ञान अवस्था में आप ही कर्ता है... किसका? यह राग-द्वेष और पुण्य-पाप के भाव का। अज्ञान अवस्था में कर्ता है। क्योंकि वह अज्ञान में परिणमता है। **व्यवहारनय से ज्ञानावरणादि पुद्गल...** कर्म जो ज्ञानावरणादि इत्यादि तीन का निमित्त है न, इसलिए कर्ता कहा जाता है। आठ कर्म का बन्धन जड़ है, उसे व्यवहार से कर्ता अर्थात् वास्तव में कर्ता नहीं परन्तु अज्ञानभाव का कर्ता है, वह इसे निमित्त पड़ता है, इसलिए उसका व्यवहार से कर्ता कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

शुद्धनय से अपने शुद्धभावों का कर्ता है। आहाहा! धर्मदृष्टि होने पर समकित्ती जीव शुद्ध स्वभाव की दृष्टि होने पर उस शुद्ध स्वभाव का कर्ता है। समकित्ती राग का भी कर्ता नहीं, दया-दान का कर्ता नहीं, व्रत के परिणाम का कर्ता नहीं। है या नहीं इसमें? आहाहा! गाथा है यहाँ, किसी को पुस्तक चाहिए हो तो। इसमें कुछ अर्थ नहीं है? समझ में आया? यह सब संधारा करते होंगे, अपवास महीने-महीने के करते होंगे, वह कहीं शरीर की ममता छोड़े बिना करते होंगे? क्या होगा इसका उत्तर? हैं! मिथ्यात्वभाव में गहल-पागल होकर करते हैं। इसे भान कहाँ है। जैसे रण में वीर सिर रखते हैं। हमारा राज कैसे जाए? उसके लिये शरीर जाए तो दरकार नहीं करते। वह तो अज्ञान का ध्येय है। इसी प्रकार इसे मिथ्यात्व का ध्येय है। समझ में आया? इसे आत्मा की खबर नहीं। आहाहा! बीस-बीस वर्ष के युवक राजकुमार, राज्य जाता हो तो ऐसे सिर दे। वापस सिर गिरे तो रोवे नहीं, हों! वीर रोते होंगे? जाओ-जाओ, शरीर जाओ। ममता छूटी होगी उन्हें? बड़ी ममता, जोरदार ममता है। इसी प्रकार यह भी इसे हेतु तो शुभभाव का है। इसे धर्म हेतु कहाँ है? धर्म तो सूझता नहीं। शुभभाव के हेतु से सब क्रियाएँ करे, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

शुद्धनय से अपने शुद्धभावों का कर्ता है। अर्थात् क्या कहा? धर्मो जीव होने पर आत्मा शुद्ध चैतन्य है, ऐसा भान होने पर उस शुद्ध पवित्रभाव का कर्ता है। वह व्यवहाररत्नत्रय और व्रतादि का कर्ता भी वह नहीं है। है इसमें? यहाँ (तो कहे), भगवान ने महाव्रत पालन किये थे। देव ने-गुरु ने पाले थे, इसलिए अपने पालन करो।

धूल भी पाले नहीं थे। तुझे खबर नहीं है। वीतराग किसे कहना और मुनि किसे कहना ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : ... छोटे व्रत पाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोटे व्रत पाले, वे बड़े व्रत पाले। आहाहा! मार डाला। यहाँ तो कहते हैं कि व्रत का विकल्प है, उसका कर्ता है, वह अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

शुद्धनय से अपने शुद्धभावों का कर्ता है। अर्थात्? आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, वैसा ही आत्मा अन्दर जानने में-अनुभव में आया, तब उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। वह सम्यग्दृष्टि जीव राग का कर्ता नहीं, शरीर-वाणी की क्रिया का कर्ता नहीं। मात्र शुद्ध परिणाम, इस शुभक्रिया से रहित शुद्ध परिणाम का कर्ता है। कर्ता के तीन बोल हुए। शुद्धनय, अशुद्धनय और व्यवहारनय। ... ऐसा उतारा अशुद्ध व्यवहार को। कारण कि अनादि का अज्ञान भाव से राग-द्वेष का कर्ता है, वहाँ से उठाया और कर्म का कर्ता तो विकारी परिणाम करता है, वह कर्म में निमित्त होते हैं, इसलिए उसे व्यवहार से कर्ता कहा जाता है। कहो।

निश्चय सत्य वस्तु को जहाँ पहुँचा है, आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञान ऐसा भगवान ने कहा, वैसा जाना और अनुभव किया, उसे धर्मी कहते हैं और उसे समकिति कहते हैं। वह समकिति चौथे गुणस्थान से अपने शुद्ध, दया, दान, व्रत के विकल्परहित चीज अन्दर की शुद्ध (है), उसका वह कर्ता है। आहाहा! समझ में आया? गले उतरना कठिन। सुना न हो। अनादि का ऐसे का ऐसा अज्ञान रगड़ा है। इसकी यह बात इसे सुनने को नहीं मिली हो। इसलिए उसमें हो गया, ... जाए। लो, यह एक बोल हुआ-कर्ता। क्या कहा कर्ता के बोल में? याद रहा?

मुमुक्षु : तीन बोल आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन आये। परन्तु कौन से तीन? ऐसे नहीं जवाब देते हों वहाँ ... में।

मुमुक्षु : धन्धा किसका चले?

पूज्य गुरुदेवश्री : न, चले।

जिसने अशुद्ध आत्मा जाना है, वह अज्ञानी है। उस अशुद्ध आत्मा को जाननेवाला राग का कर्ता अज्ञान में है। कहो, अब तो यह बात सीधी है। जिसने अशुद्ध जाना है। शुद्ध है, उसे तो जाना नहीं, ख्याल नहीं। पुण्य और पाप के भाव, रागवाला आत्मा और राग का कर्ता अज्ञान में जाना है। वह जीव अज्ञान अवस्था में राग का कर्ता है। सेठ! बीड़ी का कर्ता नहीं है। यह तो यहाँ लाये ही नहीं इसमें। बीड़ी और मकान में।

मुमुक्षु : वह तो व्यवहार से तीन का कर्ता कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार कुछ करता नहीं। आहाहा! व्यवहार तो मात्र वह विकार करता है, वह विकार उन कर्मों को निमित्त होता है, इसलिए उसे व्यवहार से कर्ता कहा जाता है। आहाहा! व्यवहार अर्थात् नहीं है, उसे कहने का नाम व्यवहार। और धर्मी धर्म करनेवाला उसे कहते हैं, धर्मी धर्म करनेवाला उसे कहते हैं कि जो आत्मा शुद्ध है, पवित्र है, आनन्द है, ज्ञान का स्वभाव है, ऐसा जिसने अन्तर में जीव के स्वरूप को जाना है, वह जीव तो शुद्धनय से तो उसे शुद्धता के परिणाम होते हैं, उनका कर्ता कहलाता है। क्योंकि शुद्धरूप परिणमता है, इसलिए उसका कर्ता कहलाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया ?

क्या है यह ? यह तो अभी चौथे गुणस्थान की बात चलती है। सम्यग्दर्शन होने पर धर्म की पहली सीढ़ी। ऊपर कहा न? धर्म का पहला सोपान, पहली सीढ़ी, मोक्षमार्ग का पहला सोपान। ऐसा जो जीव सम्यग्दृष्टि.... आहाहा! जिसे धर्मी कहें तो, वह धर्मी धर्म शुद्धभाव का कर्ता है। वह धर्मी राग, महाव्रत-फहाव्रत के विकल्प का कर्ता नहीं, कर्म का कर्ता व्यवहार से है नहीं। व्यवहार से कर्ता नहीं। क्योंकि इस विकार का कर्ता नहीं, फिर उसका (कर्म का) कर्ता कहाँ से आया ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! बस। समझ में आया ?

और, २- भोक्ता कहा। भगवान ने आत्मा को भोक्ता कहा है। इसके दो बोल लेंगे, परन्तु तीसरा बाकी। निश्चय से तो अपने ज्ञान-दर्शनमयी चेतनाभाव का भोक्ता है... जो तीसरा बोल उसमें लिया था, वह यहाँ पहला लिया। वास्तव में तो भगवान आत्मा, आत्मा हुआ है, आत्मारूप है। इस प्रकार है, वह रहा है, हुआ है, ऐसा जो

सम्यग्दृष्टि जीव, वह अपने शुद्धभाव ज्ञान-दर्शन का भोक्ता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? वह धर्मी दाल, भात, रोटी, सब्जी का भोक्ता नहीं। उसका भोक्ता तो अज्ञानी भी नहीं। यह तो बात आ गयी। तब यह खाता है, पीता है न? आत्मा जाना हो तो खाना-पीना छोड़ दो। छूटा हुआ ही पड़ा है। कब खाया था इसने? वह तो जड़ की दशा मिट्टी है, पुद्गल है। उसका आना-जाना जड़ के कारण से है, तेरे कारण से है वहाँ? तू उसका मालिक है? ईश्वर है कोई उसका-जड़ का? जड़ का ईश्वर जड़। उसका कर्तापना उसका उसमें।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कौन माणिकचन्दजी? उसे बेचारे को खबर नहीं। सम्प्रदाय में कहाँ उसकी गिनती है? हीराजी महाराज का था बेचारे का। उनके सामने इकट्ठा कमा खाता था। हीराजी महाराज। सम्प्रदाय की दृष्टि।

कहते हैं, भगवान ने आत्मा को भोक्ता कहा। वास्तव में भोक्ता किसका? कि आत्मा अपने आनन्द और शान्ति का भोक्ता है, जानना-देखना ऐसा उसका स्वभाव, उसके साथ आनन्द और शान्ति, ऐसा उसका स्वभाव, ऐसा आत्मा प्रतीति और अनुभव में आया है, इसलिए वह धर्मी अपनी शुद्धता का भोक्ता है। आहाहा! छह खण्ड के राज में पड़ा हो। भगवान भरत और ऋषभदेव भगवान अथवा शान्तिनाथ भगवान को छियानवेँ हजार स्त्रियाँ थीं। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ चक्रवर्ती थे, तीर्थकर थे और कामदेव थे। शान्तिनाथ। समझ में आया? कहते हैं कि छियानवेँ स्त्रियाँ होने पर भी उनमें मैं नहीं, उनका वह भोक्ता कैसे हो? धर्मी स्त्री में नहीं, धर्मी राज में नहीं, धर्मी राग में नहीं है। आहाहा! गजब बातें हैं न! राग जो है न, राज का राग और दया, दान का, व्रत का, विकल्प का, भक्ति का राग, उस राग में धर्मी नहीं। धर्मी तो रागरहित आत्मा के स्वभाव में है। आहाहा! समझ में आया? भारी कठिन काम। अब ऐसा विषम संसार, भयंकर दावानल सुलगता है। उसमें से छूटने का उपाय तो कोई अलौकिक है या नहीं? आहाहा! चौरासी की योनि में कड़ाई में सुलग रहा है, जल रहा है। मिथ्यात्वभाव के कारण, इस मिथ्यात्वभाव की महा हीनता कि जो निगोद में ले जाए। आहाहा! इसकी इसे खबर ही नहीं होती। इस पाप की कीमत नहीं होती।

यहाँ कहते हैं कि धर्मी जीव उसे कहते हैं कि जिसने शुद्ध आत्मा पुण्य-पाप का रागरहित जाना है, देखा है, अनुभव किया है। ऐसे जीव को धर्मी कहते हैं और वह धर्मी शुद्ध का भोक्ता है। कहो, समझ में आया ? जिसका जो स्वामी है, वह उसका भोक्ता है। धर्मी अपने शुद्धभाव का स्वामी है, इसलिए उसका भोक्ता है। अशुद्ध का स्वामी-मालिक नहीं तो उसका भोक्ता कैसे होगा ? आहाहा ! भारी वीतरागवाणी ! जगत को... कहो, समझ में आया ?

भोगी, आत्मा भोगी है। लो, परिणमनेवाला कहा वापस। परिणमता है न ? कर्ता और भोक्ता में उसका परिणमन सिद्ध किया है। अकेला आत्मा ध्रुव कूटस्थ है, ऐसा नहीं। उसमें परिणाम होते हैं, बदलता है। वह परिणामी भाव जो है, बदलने का भाव, उसमें अज्ञानभाव से राग का कर्ता, ज्ञानभाव से शुद्ध पर्याय का कर्ता। बस, दो ही बात। कर्म तो निमित्त से बात है। ऐसा आत्मा ध्रुव होने पर भी, नित्यानन्द प्रभु होने पर भी, है तो नित्य परन्तु उसकी पर्याय में बदलना-बदलना होता है, परिणाम बदलते हैं, उस परिणाम में विकार के परिणाम की रुचि और विकार परिणामवाला मानता है, वह अज्ञान अवस्था में विकार का भोक्ता है। शान्तिभाई ! भारी काम, भाई ! और भान अवस्था में शुद्ध का कर्ता-भोक्ता है। यह छियानवें हजार स्त्री भोगे, राज भोगे, बड़े बँगले देवों ने बनाये हुए। जो गरीबों को होते नहीं। चौदह-चौदह हजार देव सेवा करे। कहते हैं कि उसे भोगता नहीं। आहाहा ! समकित्ती रत्न के सिंहासन में बैठा हो। कहो, समझ में आया ? कहते हैं, वहाँ बैठा ही नहीं। तुझे खबर नहीं। ऐई ! धर्मी सिंहासन में बैठा नहीं। धर्मी राग में बैठा नहीं तो सिंहासन में बैठा कैसे कहना उसे ? आहाहा ! धर्मी तो अपने आनन्द ज्ञानस्वभाव में बैठा है। इसलिए उसका वह कर्ता और उसका वह भोक्ता है। आहाहा ! गजब बात है। वीतराग के अतिरिक्त यह बात अन्यत्र नहीं होती। परमात्मा तीन काल का जिन्हें ज्ञान है, उनके वाड़ावालों को खबर नहीं तो भगवान को अन्यमति तो क्या जाने यह बात ? समझ में आया ? समझ में आया ?

कहते हैं, अपना चेतनाभाव-चेतनभाव का भोक्ता है। उसका भाव तो चेतन है। जानना, देखना उसका भाव है। पुण्य-पाप राग, महाव्रतादि के परिणाम, वे जीव के भाव नहीं हैं। वह तो परभाव-विकार है। आहाहा ! एक भी बात ठीक से जँचे तो सब ठीक

से जँच जाए। एक बात का ठिकाना न हो तो सबका ठिकाना नहीं होता। अनन्त काल से अपनी जाति को भूला और कहीं नहीं, वहाँ अपने भाव को माना। जो भाव क्षणिक थे, उपाधि थी, मैल था, उसे अपना माना और जाना और अनुभव किया। इस अज्ञानभाव से दशा है। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि नहीं आत्मा के आनन्द का भोक्ता, नहीं शरीर, वाणी, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति का भोक्ता। भोक्ता है विकारभाव का। इसलिए विकार में वे निमित्त हैं, इसलिए उन्हें व्यवहार से भोक्ता कहा जाता है। अर्थात् 'ऐसा नहीं', उसे कहना। निमित्त था यहाँ भोक्ता के परिणाम का। आहाहा!

लड्डू ऐसे चूरा होता है वह जड़ की दशा जड़ से होती है। परन्तु खाने में प्रेम था न राग? उस राग को भोगता है। इसलिए राग, उसे वह क्रिया होती है, उसमें निमित्त कहलाता है। इसलिए व्यवहार से भोगता है अर्थात् नहीं भोगता परन्तु निमित्तपना उसे है तो भोक्ता के राग का, इसलिए उसे व्यवहार से भोक्ता का उपचार कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! भगवान का दरबार बहुत ऊँचा है। जिनवरदेव ने, केवली ने ऐसा कहा न? सर्वज्ञ परमात्मा। आहाहा! अरे! अभी तो सर्वज्ञदेव की खबर नहीं होती। सर्वज्ञदेव कैसे होते हैं? परमात्मा को तीन काल का ज्ञान (होवे ऐसी) बातें किया करे। आहाहा! जिनके ज्ञान में तीन काल-तीन लोक ज्ञात होते हैं, ऐसे सर्वज्ञदेव ने कहा हुआ आत्मा ऐसा है। समझ में आया? **चेतनभाव का भोक्ता है...**

व्यवहारनय से पुद्गलकर्म के फल जो सुख-दुःख आदि का भोक्ता है। लो! वह निमित्त है न इसलिए। भोगता कहाँ है जड़ को? यह कैसे भोगे, दाल-भात भोगे। क्या भोगा? वह तो जड़ है। वह रूपी है और आत्मा तो अरूपी है। आत्मा में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है। और यह तो सब वर्ण, गन्धवाले, इन्हें क्या भोगे? परन्तु भोगने के भाव में विकार था, विकार को भोगता है, इसलिए विकार उसे निमित्त कहलाता है। इसलिए व्यवहार से भोगे, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ऐसा जीव है, उसकी अभी खबर नहीं होती। धर्म करनेवाला जीव और जीव कैसा, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा! और इसे धर्म हो। अनादि से जगत में अज्ञान ही घोंटा है। दो बोल हुए। कर्ता और भोक्ता। यह तो बहुत सादी भाषा है। समझ में आये ऐसा है। इसमें अशुद्ध का नहीं डाला। समझ में आया? दो बोल डाले हैं। उसमें समझाया, इसमें समझ लेना। वास्तव

में तो इस अशुद्धभाव का भोक्ता, वह व्यवहार, वह भी व्यवहार है। समझ में आया ? आहाहा! निश्चय तो स्वआश्रित भाव का भोक्ता जीव है। वह व्यवहार है तो वह असद्भूतव्यवहार है। और फिर असद्भूत उपचार है। यह असद्भूत अनुपचार।

और कैसा है ? **अमूर्तिक...** है भगवान आत्मा तो। उसे कोई रंग, रस, स्पर्श है नहीं। रंग, रस, स्पर्श तो इस मिट्टी को, जड़ को होता है, वाणी को-जड़ को होता है। आत्मा में नहीं यह रंग, रस, स्पर्श। आत्मा सफेद होगा या नहीं ? यह पहले ऐसा कहते थे कि पहले होवे लाल, फिर होवे सफेद। लाल वस्त्र पहनता है ऐसे के ऐसे बाहर में त्यागी कहलाये। खबर न हो कि आत्मा सफेद होगा या काला ? यह खबर नहीं हमें। पहले हो लाल, फिर हो सफेद। उज्ज्वल हो न, इसलिए सफेद। यह सफेद उज्ज्वल होता है, वह सफेद ? सफेद तो जड़ है। सफेद दशा तो जड़ की है। आत्मा जड़ होगा ? सफेद हो इसलिए ?

अमूर्तिक कहा, वह निश्चय से तो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द ये पुद्गल के गुण पर्याय हैं,... पुद्गल गुण की पर्याय है यह वर्ण, गन्ध, रस। इनसे रहित अमूर्तिक है... इससे तो रहित ही है। वस्तु स्वभाव देखो तो त्रिकाल अमूर्त ही है। व्यवहार से जब तक पुद्गलकर्म से बँधा है... जड़ मूर्त है और उसमें निमित्त सम्बन्ध है न बँधने का ? तब तक मूर्तिक भी कहते हैं। कर्म से बँधा है, वही व्यवहार है। कर्म तो जड़ है। आत्मा तो चैतन्य अरूपी भिन्न है। उसे यह वस्तु जड़ है मूर्त, उसके सम्बन्ध में-सम्बन्ध में है, इसलिए उसे मूर्त कहा जाता है, इतना।

और, **शरीरपरिमाण कहा,...** भगवान ने तो आत्मा को शरीरपरिमाण कहा है। लोक में व्यापक है, ऐसा वेदान्त आदि कहते हैं न ? सर्व व्यापक जीव है, ऐसा नहीं। पूरी दुनिया में एक ही आत्मा व्याप्त है, ऐसा नहीं। **शरीरपरिमाण कहा, वह निश्चय से तो असंख्यातप्रदेशी लोकपरिमाण है,...** क्या कहा यह ? आत्मा में असंख्य प्रदेश हैं। वे असंख्य प्रदेश उसका क्षेत्र है। निश्चय से असंख्य प्रदेश, लोक के जितने प्रदेश हैं, उतने प्रदेश इस जीव के हैं। प्रत्येक जीव के ऐसे। निगोद के जीव हों, आलू के लो। एक राई की (जितने) टुकड़े में अनन्त जीव आलू में हैं। शकरकन्द, आलू, क्या कहलाता है वह ? प्याज, लहसुन, बड़ी गाँठ। रतालू, सूरण-सूरण। उसकी एक टुकड़े में असंख्य तो शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव। ऐसा वीतराग भगवान ने कहा और देखा और

है। जाननेयोग्य है, हों! पालने और टालने योग्य नहीं। वे तेरापन्थी कहे, छह काय की... .. कहे छह काय के जीव की रक्षा के लिये भगवान ने प्रवचन किया। वह कहे, रक्षा के लिये नहीं। रक्षा करना, वह नहीं। छह काय के जीव हैं। मारना नहीं, इसके लिये कहा। यहाँ कहते हैं कि दोनों प्रकार से मिथ्या है।

थोड़ी चर्चा चली थी। ऐई! भगवानदासजी! तेरापन्थी और ... लीलाधरजी कहते। लीलाधरजी हमारे साथ थे। बड़ी चर्चा हुई थी। महीने-महीने चर्चा। माथापच्ची। उसके तर्क जहाँ ठीक आवे तब हमें माथापच्ची हो, हमारे तर्क ठीक आवें वहाँ उसे माथापच्ची हो। आहार लेने जायें परन्तु खाना भावे नहीं। लीलाधरजी कहते। यह चर्चा। पहली तो सपने की चर्चा थी। दस स्वप्न। आते हैं न भगवान को? केवलज्ञान ... वे कहे, सपने दोष हैं, यह कहे सपने गुण हैं। इसकी चर्चा एक महीने। एकान्त कोई समझे नहीं क्या चीज़ है। छह काय की जीव की रक्खण ऐसा शब्द आता है। प्रश्न व्याकरण में। ... यह कहे, देखो! जीव की रक्षा कही। तुम रक्षा को पाप कहते हो। वह कहे, रक्षा नहीं। नहीं मारना, इसका नाम रक्षा कही है। यहाँ भगवान कहते हैं कि नहीं मारना और मारना दोनों हमने कहा नहीं। परन्तु पर का मारना, न मारना कहीं तेरे अधिकार की बात नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, शरीर प्रमाण असंख्यात प्रदेशी लोकप्रमाण है, परन्तु संकोच-विस्तारशक्ति से... संकोच-विस्तार होता है न ऐसे? प्रदेशों का। चींटी में जाए तो प्रदेश संकुचित हो जायें। हाथी में जाए तो (विस्तार हो)। ऐसा जीव का स्वभाव है। कहो, हाथी। हजार योजन का हाथी जाए उसमें तो उसके प्रमाण आत्मा चौड़ा हो जाए और चींटी में जाए, अरे! निगोद के एक शरीर में जाए, लो न! असंख्य प्रदेश संकुचित हो जाए। प्रदेश कम नहीं होते, हों! संकुचित होते हैं। आहाहा! यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त (कहीं) नहीं है। असंख्य प्रदेश, संकोच-विस्तार।

मुमुक्षु : संकोच-विस्तार....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे संकोचना। जैसे कपड़ा चौड़ा करते हैं न? फिर ऐसे ... दे। चींटी में हो तो संकुचित होते हैं। वस्तु असंख्य प्रदेश इतने के इतने ही हैं। हाथी में जाए तो उतने।

संकोच-विस्तारशक्ति से... ऐसा है। अपनी शक्ति है, हों! वापस ऐसा कहते हैं। शरीर से कुछ कम... शरीर से किंचित् न्यून है अन्दर भगवान भिन्न है। घाटी अर्थात् कम। प्रदेशप्रमाण आकार में रहता है। शरीरप्रमाण आत्मा भिन्न आकार रहता है। शरीर के कारण नहीं। अपना आकार शरीरप्रमाण शरीर से भिन्न। पानी के कलश में जैसे पानी का आकार और कलश का आकार दोनों भिन्न-भिन्न हैं, इसी प्रकार चैतन्य-जड़ का आकार अपने कारण से शरीरप्रमाण, शरीर का आकार शरीर के कारण से। समझ में आया? यह चार बोल हुए।

५. अनादिनिधन... और अनादि-अनन्त है। वस्तुरूप से अनादि-अनन्त है। पर्यायदृष्टि से देखने पर तो उत्पन्न होता है,... अवस्था से देखें तो समय-समय के परिणाम नये-नये होते हैं, नये-नये होते हैं, पुराने जाते हैं और नये होते हैं। समय-समय में भाव बदलते हैं। पर्याय-अवस्था दृष्टि से देखें तो। वस्तुदृष्टि से देखें तो अनादि-अनन्त है। बौद्ध ने अकेली पर्याय मानी। वेदान्त ने अकेला ध्रुव माना। दोनों होकर पूरा तत्त्व है, इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया?

अनादिनिधन... अनादि-अनिधन ऐसा लेना। आदि नहीं और अन्त नहीं। निधन अर्थात् मृत्यु नहीं। अनादि-अनन्त भगवान कहा। पर्यायदृष्टि से देखने पर तो उत्पन्न होता है, नष्ट होता है, तो भी द्रव्यदृष्टि से देखा जाये तो अनादिनिधन सदा नित्य अविनाशी है। वस्तुरूप से देखें तो सदा अनादि-अनन्त, सदा नित्य, अविनाशी। इतने तीन शब्द प्रयोग किये हैं। सदा नित्य और अविनाशी। आहाहा! 'शरीर विनाशी, हूँ अविनाशी' आता है न? 'अविनाशी अटक्यो रे अनित्यना जाळमां।' पर्यायबुद्धि में, राग में और संयोग में अटका। अविनाशी, उसका स्वरूप त्रिकाल उसने देखा नहीं, जाना नहीं, सहारा लिया नहीं, तथापि है तो ऐसा का ऐसा है। न हो तो... अनादि-अनन्त... इस प्रकार से भगवान ने देखा, ऐसा आत्मा कहा। इस प्रकार से आत्मा का स्वरूप है। अज्ञानी इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से कहे, परमात्म वीतराग के अतिरिक्त और वीतराग के सम्प्रदाय में भी वीतराग ने कहा तत्प्रमाण न समझे तो भी उसकी विपरीत दृष्टि से कथन करे, वह वीतराग का कथन नहीं है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१५३, गाथा-१४८, रविवार, मगसर कृष्ण ७, दिनांक २०-१२-१९७०

भगवान् जिनेन्द्रदेव, जिन्हें एक समय में तीन काल का ज्ञान था, उन्होंने यहाँ ऐसा कहा। देखो! गाथा है। १४८। (किसी में १४३ होगी अन्यत्र कहीं)

कत्ता भोइ अमुत्तो सरीरमित्तो अणाइणिहणो य।

दंसणणाणुवओगो णिद्धिट्ठो जिणवरिंदेहिं॥१४८॥

गाथा। अब इसका अर्थ। नीचे टीका। भावार्थ लो, भावार्थ। भगवान् तीर्थकरदेव-केवलज्ञानी परमात्मा जिन्हें तीन काल का ज्ञान हुआ, उन्होंने जीव का ऐसा जाना है। जैसा जीव भगवान् ने कहा, वैसा यह जाने तो इसे धर्म हो और समकित हो। समझ में आया?

भावार्थ :- यहाँ 'जीव' नामक पदार्थ के छह विशेषण कहे। इनका आशय ऐसा है कि :-

१- कर्ता कहा, ... जीव कर्ता है। यह जीव है न स्वयं? इसका कोई कर्ता नहीं। जीव वस्तु है, इसका कोई कर्ता नहीं। परन्तु यह जीव स्वयं विकार या अविकार का कर्ता है। वस्तु स्वयं आत्मा अनन्त आनन्द और ज्ञान का धाम है। जैसे सिद्ध भगवान् हैं, वैसा आत्मा का अन्तर स्वभाव है, परन्तु अनन्त काल से इसकी उसे खबर नहीं। इसलिए कहते हैं, निश्चयनय से तो अपने अशुद्ध (रागादि) भावों का अज्ञान अवस्था में आप ही कर्ता है... अब इसकी व्याख्या। क्या कहते हैं? है? भोगीभाई! है? यह बाहर का काम करता नहीं, ऐसा कहते हैं। अब करे तो क्या करे?

अज्ञान अवस्था में भगवान् सच्चिदानन्द आत्मा है सत् शाश्वत्, अन-उत्पन्न अविनाशी ऐसा आत्मा अन्तर आनन्द और ज्ञान के स्वभाव से भरपूर होने पर भी भगवान् फरमाते हैं कि इसे अनादि से आत्मा क्या है, इसका भान नहीं। भान नहीं, इसलिए यह अज्ञान अवस्था में पुण्य-पाप के भाव, अशुद्ध रागादि है न? शुभ-अशुभ रागादि भाव, पुण्य का भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय का भाव, यह शुभ और अशुभभाव दोनों होकर अशुद्ध कहे जाते हैं। स्वयं अपने

को भूलकर अनादि से मिथ्याभ्रम में यह पुण्य-पाप के विकल्प राग होता है, उसका कर्ता होता है। सेठ! बीड़ी-बीड़ी के व्यापार का कर्ता नहीं, कहते हैं। यह बीड़ी-बीड़ी अपने आप चलती है।

भगवान कहते हैं, अज्ञान में (इस प्रकार से कर्ता होता है) और ऐसा किस प्रकार से न्याय है ? कि वस्तु स्वयं ही है आत्मा, वह है तो अविनाशी अनादि है। अब है, उसके गुण भी अविनाशी अनादि हैं। इसका उसे अनन्त काल में अनन्त संसार भटकते हुए, परिभ्रमण करते... करते... करते... चौरासी के अवतार में अज्ञानदशा में वह परिणमता है, होता है कर्ता तो इस शुभ-अशुभभाव का कर्ता होता है। अरे! यह सब है, यह वस्तु ऐसी है। कहो, समझ में आया ? आहाहा! देखो! है न शब्द ?

‘णिहट्टो जिणवरिन्देहिं’ देखो! मूल चौथा पद है। जिनवरेन्द्र त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा ने समवसरण धर्मसभा में ‘णिहट्टो’ इन्द्रों की उपस्थिति में, सन्तों की हाजिरी में भगवान ऐसा कहते थे कि हे जीव! तू वस्तु है, तत्त्व है। तो उस तत्त्व का स्वरूप, उसका मूलस्वरूप तो शुद्ध आनन्द और सच्चिदानन्द आनन्दकन्द है। अतीन्द्रिय आनन्द का रस आत्मा है। आहाहा! उसका इसे भान नहीं है, उसका इसे अज्ञान है; इसलिए इसने स्वयं की जाति को जाना नहीं, इसलिए जाति का कर्ता नहीं होता। उसकी अवस्था अशुद्ध होना, उसका कर्ता नहीं। अनादि से इसने पुण्य और पाप के भाव, एकेन्द्रिय से लेकर, हों! आलू, शकरकन्द, काई, वहाँ भी शुभ-अशुभभाव हुआ ही करते हैं। समझ में आया ? आहाहा! यह मनुष्य अनन्त बार हुआ, स्वर्ग का देव अनन्त बार हुआ, नरक का नारकी अनन्त बार हुआ, पशु अनन्त बार हुआ। कहते हैं कि किया क्या वहाँ इसने ? अपने आनन्द को भूलकर स्वयं अविकारी स्वभाव अपना वास्तविक स्वरूप, उसे भूलकर, यह पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव जो अशुद्ध मैल है, उसका यह कर्ता हुआ। आहाहा! समझ में आया ?

निश्चयनय से... ऐसा शब्द है न ? निश्चयनय अर्थात् इसकी अवस्था इसमें होती है, इस दृष्टि से देखें तो, ऐसा। अपने अशुद्ध (रागादि) भावों का... अपने में जो पुण्य और पाप का मैल भाव, शुभ और अशुभ जो अशुद्धभाव, उसका यह कर्ता (होता है)। है ? और यह कर्ता होकर मिथ्याभ्रम में चार गति में भटकता है। समझ में आया ?

चाहे तो फिर साधु नाम धराता हो, या गृहस्थ में हो, भोगी हो या त्यागी हो, परन्तु जिसे भगवान आत्मा परमेश्वर ने कहा, ऐसे आत्मा के स्वरूप की जिसे खबर नहीं, उसका भान नहीं, उसकी पहिचान नहीं, आत्मा सच्चिदानन्द शुद्ध है, उसकी जिसे अन्तर में कीमत नहीं, वे कीमत बिना के प्राणी अपने स्वभाव को भूलकर अनादि से पुण्य और पाप जो अशुद्धभाव (उसमें रच-पचते हैं)। अशुभ और शुभ को अशुद्ध कहते हैं। आहाहा! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव हो तो शुभ, परन्तु है अशुद्ध। इसी तरह हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, पाप अशुभ, वह अशुद्ध। उस अशुद्ध का कर्ता होता है। इसकी मर्यादा इतनी है। समझ में आया? कहते हैं, उछाला मारे तो अशुद्ध-पुण्य-पाप के भाव को करे, तब तक अटके। बाकी बाहर का एक रजकण भी बदल नहीं सकता। ऐसा होगा? तुमने तो बहुत अधिक किया है न वहाँ!

त्रिलोकनाथ परमात्मा, जिनकी धर्मसभा में अर्धलोक के स्वामी शकेन्द्र और अर्धलोक के स्वामी ईशानइन्द्र की उपस्थिति में भगवान की वाणी में ऐसा आया। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ भगवान के पास गये थे। समवसरण में सीमन्धर परमात्मा तीर्थकरदेव विराजते हैं। साक्षात् अभी महाविदेह में हैं, वहाँ गये थे। आठ दिन रहे थे। (वहाँ से) आकर यह बनाया है। भगवान ऐसा कहते हैं। देखो न! भाषा है न? 'णिद्दु जणवरिन्देहिं' भगवान ऐसा कहते हैं, भाई! कि तू आत्मा है। यह शरीर-वाणी-मन, यह तो जड़ है। यह तो जड़पने के अस्तिरूप से रहे हुए हैं। यह कहीं चैतन्य के होकर रहे नहीं। चैतन्य में तो आनन्द और ज्ञान से भरपूर वह तत्त्व है, तथापि उसके भान बिना, अरे! दुःखी भ्रमणावाला जीव पुण्य और पाप के परिणाम, अशुद्ध परिणाम, मलिन परिणाम वह करे और भ्रमणा से नये कर्म बाँधे और चार गति में भटके। आहाहा! समझ में आया? बात ऐसी सूक्ष्म है। भगवान वीतराग का मार्ग, मार्ग वीतराग का नहीं परन्तु वस्तु का ऐसा है। भगवान ने तो देखा, वैसा कहा है। भगवान ने कहीं कुछ किया नहीं है। जैसा मार्ग था, जैसा स्वरूप था वैसा जाना और जाना तथा वाणी द्वारा कहा।

भाई! तू आत्मा है न, नाथ! आहाहा! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त... ज्ञान और आनन्द और शान्ति के स्वभाव से भरपूर तू प्रभु है, भाई! परन्तु ऐसे अविनाशी स्वभाव की प्रतीति नहीं, ऐसे अविनाशी स्वभाव का मान नहीं, अविनाशी स्वभाव को ज्ञेय करके

ज्ञान नहीं, इसलिए अनादि अज्ञानी पुण्य और पाप के अशुद्ध भाव का कर्ता होता है। नवनीतभाई! यह तो फिर से लिया। यह सब अधिक नये लोग (आये हैं)। नये लोगों को समझ में नहीं आता। क्या कहते हैं यह? ऐसा मार्ग वीतराग का है। दुनिया को सुनने को मिला नहीं। यह तो करो, यह करो... यह करो...

यहाँ तो कहते हैं, अज्ञानरूप से, मूढ़रूप से जीव पुण्य-पाप के भाव को करे। पर की दया पाले, पर की हिंसा कर सके नहीं, ऐसा कहते हैं। भोगीभाई! भगवान की बात सूक्ष्म है। आहाहा! ऐसे की ऐसी स्थूलबुद्धि से अनादि से अज्ञान में भटका। कहते हैं कि यह कर्ता पुण्य-पाप के भाव का होता है, परन्तु पर को मार सके या बचा सके, यह क्रिया इसकी है नहीं। दूसरे को मारूँ, ऐसा भाव अशुभ, उसका कर्ता होता है। परन्तु दूसरे को मार सके, उसका कर्ता है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो कहे, पर की दया पालो। अरे! भगवान! सुन न भाई! वह तो स्वतन्त्र जीव है और उसका आयुष्य हो, तब तक शरीर में रहता है और जीता है। वह कहीं तुझसे जिया, बचाने से बचे और मारने से मरे ऐसा है नहीं। इसलिए भगवान ऐसा कहते हैं कि तू उसे बचाने का भाव कर तो दया का शुभभाव है। उस शुभभाव का कर्ता अज्ञानभाव से होता है। क्योंकि शुभ भी विकार है, परन्तु अज्ञानभाव से पर की दया पाल सके या पर को बचा सके, ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। समझ में आया?

इस प्रकार भगवान ने तो अनन्त आत्मायें देखे हैं। अनन्त परमाणु यह है, यह मिट्टी, यह देखो! आत्मा एक है और यह रजकण तो अनन्त हैं। टुकड़े करते... करते... करते... करते... अन्तिम पाईन्ट रहे, उसे परमाणु कहते हैं। ऐसे अनन्त परमाणु का यह स्कन्ध पिण्ड है पूरा यह। ऐसे रजकण की यह अवस्था ऐसे होती है। देखो! हाथ हिलता है, उसका कर्ता तो नहीं, कहते हैं। क्योंकि वह तो परमाणु है। उसकी अवस्था वे परमाणु करते हैं। गजब बात है न! हैं! यह रजकण हैं। अस्ति-तत्त्व है जड़, अजीव। और अजीव का ऐसा है, उसका ऐसा-ऐसा होता है, उस सब दशा का कर्ता परमाणु है। आत्मा अज्ञानभाव से भी (कर्ता) नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! खबर नहीं होती। वास्तविक जीव-अजीव, पुण्य-पाप तत्त्व क्या है। खिचड़ा-खिचड़ा अनादि से भटक मरे। समझ में आया? आहाहा!

प्रभु! तू कौन है? इसकी इसे खबर नहीं होती। 'मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या?' कभी विचार नहीं किया। ऐसे अज्ञानभाव से मूढ़ हुआ अज्ञानी, चाहे तो त्यागी और भोगी हो, परन्तु वह अज्ञानभाव से पुण्य और पाप के भाव करे। उसमें से मिथ्यात्वसहित नया बन्धन होता है। बन्धन होता है और फलरूप से फिर चार गति में भटकता है। आहाहा! समझ में आया? जयन्तीभाई! क्या होगा यह? 'दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान...' ऐसी बातें करते हैं न? परन्तु वह दया कौन सी? आत्मा की दया। आत्मा की दया। आत्मा पुण्य और पाप के भाव—अशुद्ध से रहित है। वह तो शुद्ध आनन्द और ज्ञानसहित है। ऐसी अन्तर श्रद्धा-ज्ञान करना, इसका नाम निज की—स्व की दया कहा जाता है। बहुत अन्तर। दुनिया से वीतरागमार्ग का बहुत अन्तर, भाई! अरे! क्या कहे? वीतराग क्या कहे, इसकी खबर नहीं होती। जैन सम्प्रदाय के वाडा में पड़े परन्तु बातें सब कर्ताबुद्धि की अन्य की। ऐई! भोगीभाई! मौके से यह गाथा आयी, हों! आहाहा!

यह कुन्दकुन्दाचार्य का श्लोक है। दो हजार वर्ष पहले की यह कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त मुनि, आत्मध्यानी, आनन्द में मस्त, आठ दिन भगवान के पास गये थे। त्रिलोकनाथ तीर्थकर के पास। सीमन्धर प्रभु विराजते हैं। वर्तमान विराजते हैं। पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है। उस समय गये थे, वे ही विराजते हैं, वह के वह भगवान। अभी तो आगामी चौबीसी में तेरहवें तीर्थकर यहाँ होंगे, तब मोक्ष जायेंगे, इतना बड़ा उनका आयुष्य है। भगवान परमात्मा वर्तमान मनुष्य देह में विराजते हैं। महाविदेह में। सुना है या नहीं, दलीचन्दभाई! यह सामायिक में आज्ञा नहीं लेते? सामायिक में आज्ञा लेते हैं न? हे भगवान! वे सीमन्धर भगवान विराजते हैं। आहाहा! सामायिक करने बैठते हैं न, तब आज्ञा ले। सामायिक तो कहाँ थी? अभी भान नहीं होता और सामायिक कहाँ से आयी?

मुमुक्षु : सीमन्धर न बोले, महावीरस्वामी बोले।

पूज्य गुरुदेवश्री : महावीरस्वामी। भले ऐसे बोले। मूल तो सीमन्धर भगवान। समझ में आया? साक्षात् विराजते हैं। केवलज्ञानी परमात्मा हैं। सदेह है, अरिहन्त पद में है। भगवान महावीर जब यहाँ थे, तब अरिहन्तपद में थे। फिर देह छूट गयी, तब अब

सिद्धपद हो गया। अशरीरी हो गये। यह भगवान अभी अरिहन्तपद में है। चार कर्म बाकी है और शरीर है, वाणी है, समवसरण है। चार कर्म टले हैं और चार कर्म बाकी हैं। चार कर्म टलेंगे। तेरहवें तीर्थकर यहाँ होंगे, तब सिद्ध होंगे। उन भगवान के मुख से वाणी आयी, वह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

निश्चय से तो तेरे पुण्य और पाप के भाव का तू कर्ता है। परन्तु इसके अतिरिक्त फुदड़ी को भी फिरा सके, आँख की पलक को ऊँची-नीची कर सके, वह तुझमें नहीं है। आहाहा! व्यवहारनय से ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मों... आठ कर्म है न? उसमें वह विकार का कर्ता होता है न अज्ञानी? वह कर्ता हुआ, इसलिए जो कर्म बँधे, उसमें वह निमित्त हुआ; इसलिए व्यवहार से कर्म का कर्ता है, ऐसा कहा जाता है। वास्तव में जड़ का कर्ता आत्मा नहीं है। समझ में आया? गजब बात, भाई! ज्ञानावरणादि आठ कर्म हैं ने वे? अज्ञान से पुण्य-पाप के भाव का कर्ता हुआ, इसलिए मिथ्यात्व से उसे आठ कर्म बँधे। अनादि के ऐसे के ऐसे हैं, ऐसा कहते हैं न। समझ में आया? वस्तु शुद्ध चिदानन्द मूर्ति को भूला और यदि भूल न हो, तब तो वर्तमान में इसे आनन्द होना चाहिए। क्योंकि यह तो आनन्द की मूर्ति आत्मा है। और वह आनन्द नहीं तो इसका अर्थ यह कि उसकी दशा में कुछ भूल है, इसलिए दुःख है। यह पुण्य और पाप के भाव, वह दुःख है। उसका यह कर्ता होता है। समझ में आया? उसके कारण कर्म जो बँधते हैं, उसे यह विकार निमित्त है, इसलिए व्यवहार से कर्ता कहा जाता है।

विशेष से, शुद्धनय से अपने शुद्धभावों का कर्ता है। यह तीन याद रहना मुश्किल है। क्या कहते हैं? जब यह आत्मा भगवान शुद्ध ज्ञानानन्द मूर्ति है, ऐसा जहाँ सम्यग्दर्शन और अनुभव होता है, जिसे धर्म प्रगटे, आत्मा आनन्दमूर्ति शुद्ध ज्ञानस्वभाव का जहाँ अन्तर पुण्य-पाप के विकल्प का कर्ता मैं नहीं, वह अशुद्ध मैल है। देह की क्रिया आदि का मैं कर्ता नहीं, वह पर है। मैं तो शुद्ध ज्ञानमूर्ति हूँ। चैतन्यज्योति चैतन्य के नूर का पूर हूँ। आहाहा! यह तो कुछ बात है। सेठ! भगवान प्रकाश की मूर्ति है। चैतन्यप्रकाश। उस चैतन्यप्रकाश का जहाँ अन्तर भान किया अर्थात् सम्यग्दर्शन किया, अर्थात् आत्मा शुद्ध ध्रुव है, उसे अनुभव में लिया, ऐसा जो धर्मी जीव, वह धर्मी क्या करता है? कहते हैं।

शुद्धनय से अपने शुद्धभावों का कर्ता है। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा के—त्रिकाली ध्रुव के आश्रय से जो प्रगट हुए, उसका वह कर्ता धर्मी है। आहाहा! तब उसे धर्मी कहते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ के ज्ञान में धर्मी उसे कहते हैं कि यह आत्मा शरीर, वाणी, मन से तो भिन्न जाने, परन्तु दया, दान, व्रत के, भक्ति के परिणाम अशुद्ध हैं, उनसे भिन्न जाने और एक समयमात्र की दशा है, उतना भी न जाने। शुद्ध ध्रुव नित्यानन्द आत्मा ऐसी जहाँ दृष्टि हुई, वह दृष्टि है अवस्था, वह दृष्टि है अवस्था, परन्तु दृष्टि का विषय है ध्रुव। ऐसा दृष्टिवन्त धर्मी अपने निर्मल दृष्टि की पर्याय का कर्ता है। आहाहा! समझ में आया? शुद्धभाव के भानवाला शुद्ध का कर्ता, अशुद्ध के भानवाला अशुद्ध का कर्ता। आहाहा! बहुत संक्षिप्त है परन्तु लोगों को सुनने को मिलता नहीं और उसमें दरकार नहीं। ऐसा का ऐसा...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : दरकार नहीं? लो, यह और ठीक कहा। आहाहा!

अरे! भगवान! अनन्त काल में प्रभु! ऐसा मनुष्य देह का अवसर मिला, उसमें यदि यह वास्तविक भगवान कहते हैं, ऐसे तत्त्व को नहीं पहिचाना, श्रद्धा नहीं की, माना नहीं (तो) तेरा अन्त कहीं नहीं आयेगा, भाई! चौरासी के अवतार में। दुनिया ऐसे गिन देगी कि ओहोहो! यह तो धर्मी है, पूजा करता है, भक्ति करता है, हमेशा यात्रा कर आता है बारह महीने में कार्तिक पूर्णिमा की शत्रुंजय या केसरियाजी... यह केसरियाजी जाता है। कहो, समझ में आया? यह तो बात है। सुना हो वह कहे न। अपने को कहाँ... कोई ऐसा कहता था, हों! कोई एक बार यात्रा कर आवे। यह तो किसी भी समय। कार्तिक महीने में तो अपने पालीताना की करते हैं। पलीताना की कार्तिक पूर्णिमा की यात्रा कर आवे एकाध। यह और केसरिया समय-समय मिले जरा दो दिन जा आवे वहाँ। वहाँ केसर चढ़ती है। परन्तु वह सब शुभभाव है, वह धर्म नहीं। आहाहा! गजब बातें हैं।

मुमुक्षु : लोग तो उसे धर्म कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया तो धर्म कहे। क्या हो? आहाहा! लड़के हैं। लड़कों बातें नहीं करना भाई वे साथ बुजुर्ग बैठे हों, उन्हें खेद होगा। भगवान! यह बात सुनने

जैसी है। निवृत्ति किसे है कि यह बातें करते हैं। किसलिए सुनना चाहिए? कहो, समझ में आया? आहाहा! प्रभु! तेरा समय मिला है, नाथ! आहाहा! एक-एक समय की कीमत क्या है इसकी? चक्रवर्ती की सम्पदा से मनुष्य के देह के एक समय की कीमत अमूल्य है। आहाहा! ऐसा मनुष्यदेह बारम्बार मिलता नहीं और मिले तब इसने गँवा दिया।

भगवान परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि तेरे शुद्ध के भान बिना तू पुण्य-पाप का कर्ता होकर भटक मरता है, भाई! और जब उसे धर्म का भान होता है अर्थात् सम्यग्दर्शन होता है अर्थात् सम्यग्दर्शन में पूरा आत्मा आनन्दकन्द ऐसा अनुभव में आता है, तब उस शुद्धभाव का कर्ता होता है। यह दया, दान और व्रत का भी ज्ञानी कर्ता नहीं है। होते हैं, आते हैं, उनका जाननेवाला रहता है। आहाहा! भारी बातें, भाई! कहो, समझ में आया इसमें? समझने योग्य है, हों! न समझ में आये, ऐसा कुछ नहीं। भाषा ऐसी कुछ कठिन नहीं। भाषा तो सादी है। परन्तु इसे जरा लक्ष्य में तो इसको लेना है या कोई समझा दे ऐसा है इसे? आहाहा!

कहते हैं, शुद्धनय से अपने शुद्धभावों का कर्ता है। गज का आंक भी सूझे नहीं, भोगीभाई! वहाँ वाँचन करने बैठे तो। यह शुद्धनय क्या और शुद्धभाव क्या, यह कहते हैं। शुद्धनय अर्थात् यह कि आत्मा पूर्ण पवित्र है, उसे जो ज्ञान जाने उस ज्ञान को शुद्धनय कहते हैं और शुद्धनय द्वारा आत्मा ज्ञात हुआ; इसलिए शुद्धरूप परिणाम जो प्रगट हुए, उसका वह कर्ता होता है। यह तो सादी भाषा में बात है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह एक बोल हुआ। कर्ता की व्याख्या हुई। अब भोक्ता। अब भोगीभाई! भोगी आया यह। भोक्ता कौन, ऐसा अब कहते हैं। भोक्ता की बात आयी।

वह निश्चयनय से तो अपने ज्ञान-दर्शनमयी चेतनाभाव का भोक्ता है... लो! आहाहा! अपना स्वभाव जानना, देखना, आनन्द और शुद्ध—ऐसा जहाँ भान हुआ, इससे वह अपने शुद्धभाव, चैतन्यभाव का कर्ता है, भोक्ता है। वह चेतनाभाव का भोक्ता है। आहाहा! धर्मी जीव अपने जानने-देखने के भाव का अनुभव-भोक्ता करनेवाला है। इस पैसे का और इज्जत का, कीर्ति का अनुभव करनेवाला तो अज्ञानी भी नहीं। परन्तु अज्ञानी मानता है कि यह सब भोगता हूँ। स्त्री को, शरीर को, पैसे को, मकान को, इज्जत को। वह तो परवस्तु है। परवस्तु को कोई परवस्तु भोग नहीं सकती। परन्तु अज्ञान में

आत्मा के भान बिना जब परवस्तु के प्रेम में इसे राग होता है, उसका यह अज्ञानी अनुभव करता है। आहाहा! वह राग का कर्ता होकर राग का भोक्ता होता है और जब तक राग को भोगे, तब तक वह मिथ्यादृष्टि है। उसे आत्मा का भान नहीं। आहाहा! गजब बातें ऐसी ये। ...भाई! देखो न! बात है बात। यह तो वीतराग का पेट है, भाई! बाहर में लोगों को फँसा डाला न, प्रवृत्ति... प्रवृत्ति... प्रवृत्ति... और उसमें धर्म। आहाहा! है? भोगीभाई! गाथा बहुत अच्छी आ गयी है। अष्टपाहुड़ है। कुन्दकुन्दाचार्य का अष्टपाहुड़ है। अपने इसमें लिखाना है यह। इसमें अपने मन्दिर में लिखवाना है। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय और अष्टपाहुड़। यह। यह भावपाहुड़ है। इसमें आठ पाठ हैं। यह तो वाँचते-वाँचते यहाँ तक आया है।

अहो! शुद्धनय से निश्चयनय से तो अपने ज्ञान-दर्शनमयी चेतना... देखो! भाषा क्या है? धर्मी उसे कहते हैं कि जो अपने ज्ञान-दर्शन के भाव को ही अपने माने। यह पुण्य और पाप के भाव को अपने माने नहीं। क्योंकि वे तो आस्रव और राग है। वह आत्मतत्त्व नहीं। आहाहा! तो शरीर और वाणी और मन को ये जड़ और मिट्टी, उसे तो आत्मा स्वयं अपना माने, वह तो मूढ़ है। आहाहा! समझ में आया? तीन खाने हैं—एक जड़ का, एक पुण्य-पाप के आस्रव का और एक स्वभाव का। अब जिसकी स्वभाव की खान के ऊपर दृष्टि पड़ी, वह स्वभाव का कर्ता और भोक्ता। और जो राग और पुण्य पर तथा पाप पर दृष्टि पड़ी है, वह पुण्य-पाप का कर्ता और पुण्य-पाप का भोक्ता। आहाहा! शरीर पर दृष्टि पड़े परन्तु शरीर का कर्ता और भोक्ता हो नहीं सकता। आहाहा! समझ में आया? अरे! यह करने का किया नहीं और न करने का करके बैठा। आहाहा! अनन्त काल में जहाँ और पाँच-दस लाख मिले, पच्चीस लाख हो, वहाँ तो मानो आहाहा! अपने खूब कमाकर आगे बढ़ गये। सोजिस बढ़ी सोजिस। मर जाएगा, सुन न!

मुमुक्षु : शरीर का कर्ता-भोक्ता नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्ता-भोक्ता नहीं। कहा न। अज्ञानभाव से भी नहीं। शरीर की पर्याय का कर्ता शरीर है। पहले दृष्टान्त दिया न अभी? यह चलता है, उसका कर्ता यह, उसकी अवस्था का भोक्ता यह। इसके क्या है? आहाहा! दोनों की जिनकी सत्ता ही भिन्न है। चैतन्य का अस्तित्व भिन्न और इस मिट्टी का अस्तित्व भिन्न। एक जगह में रहे,

परन्तु इनके अस्तित्व में आत्मा में कहाँ उसकी दशा में यह शरीर आ गया है ? शरीर तो शरीर की दशा में रहा है। कभी विचार कब किया है परन्तु ? आहाहा !

कहते हैं, निश्चय से तो अपने ज्ञान-दर्शनमयी... ऐसी भाषा। धर्मी को अपनेपन का भाव तो जानना-देखना वह अपना भाव है। धर्मी को वह पुण्य-पाप के, दया, दान, व्रत के परिणाम वह धर्मी के नहीं। वह तो मैल है। समझ में आया ? आहाहा ! अरे ! तत्त्व की बातें... 'तत्त्व रसिकजन सुणला, बहुरो जन सौ ...' भगवान की स्तुति की। चन्द्रानन भगवान है न ? बीस विहरमान। सीमन्धर भगवान में एक चन्द्रानन भगवान है। कितने में आये ? बारह में। भगवान की स्तुति देवचन्दजी ने की है। खरतर गच्छ में हुए हैं। 'भगवान तत्त्व रसिकजन सुणला प्रभु' अरे...रे.. ! भरतक्षेत्र में प्रभु तेरा विरह पड़ा। पैसा गया, माँ-बाप मर गये, बाद में विवाद उठा। भगवान आपका विरह पड़ा। केवलज्ञान का कुछ भाव नहीं मिलता। मनःपर्यय ज्ञानादि नहीं होते। गणधरों का विरह पड़ा। 'तत्त्वरसिकजन सुणल...' आत्मा शुद्ध आनन्द है और पुण्य-पाप के परिणाम की क्रिया रहित है, ऐसे तत्त्व के रसिक जीव बहुत थोड़े। 'बहुलो जन संवाद' बड़ा भाग प्रभु संवाद में-झगड़े में चढ़ गया है। हम यह करते हैं, हम दया पालते हैं, हम व्रत पालते हैं, हम भक्ति करते हैं, हमने दान दिया है, दान दिया। अब सुन न, दान क्या करते ? भोगीभाई ! यहाँ तो बात ऐसी है भाई ! दान-पैसा तो अजीव है। मैं अजीव देता हूँ इसको। मूढ है। आहाहा ! भाई ! तेरी भूल आठ पंसेरी की हो गयी। मण में आठ पंसेरी की। पूरी-पूरी।

भगवान कहते हैं, भाई ! धर्मीजीव का तो अपना ज्ञानदर्शन स्वरूप है। आहाहा ! देखो ! अपना शब्द प्रयोग किया है न। ज्ञानदर्शनमयी चेतनाभाव का भोक्ता... आहाहा ! देखो ! इसका नाम धर्म। धर्म कोई साधारण भाषा नहीं, साधारण भाव नहीं, बापू ! यह तो वीतराग का धर्म है। सर्वज्ञ परमेश्वर अनन्त केवली, लाखों केवली विराजते हैं महाविदेह में। बीस तीर्थकर विराजते हैं। समझ में आया ? उनका फरमान, उनका मार्ग इसने सुना नहीं। सुनने में आया तो रुचा नहीं। निकाल डाला। यह तो निश्चय है... यह तो निश्चय है। निश्चय अर्थात् सच्चा, सुन न ! समझ में आया ? यह तो यहाँ कहते हैं, देखो न !

निश्चयनय से... सच्ची दृष्टि से देखे तो। धर्मी अपने ज्ञान-दर्शनमयी चेतनाभाव

का भोक्ता है... यह दाल-भात का भोक्ता नहीं। स्त्री का भोक्ता जीव तीन काल में नहीं। आहाहा! परन्तु धर्मी जीव तो उस राग के, पुण्य-पाप के अशुद्धभाव का भी भोक्ता नहीं। आहाहा! अन्दर कितनी शर्ते धर्म के लिये! आहाहा! प्रभु! तुझमें तो जानना और देखना ऐसा स्वभाव भरा है न! तीन काल-तीन लोक को जाने-देखे, ऐसा स्वभाव है न! उस स्वभाव का जहाँ भान हुआ कि अपना तो जानना-देखना स्वभाव है। पुण्य-पाप के परिणाम हों, वह कहीं मेरा स्वभाव नहीं। इससे उस पुण्य-पाप का भी कर्ता और भोक्ता धर्मी नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहो, जयन्तीभाई! भारी ऐसा कठिन मार्ग! बापू! मार्ग ही यह है। कठिन कहे तो यह, सरल कहे तो यह, जैसा है वैसा यह। तुझे न समझ में आये और न बैठे, इसलिए कहीं मार्ग दूसरा हो जाएगा? आहाहा! यह क्या कहते हैं? देखो न! आचार्य स्वयं कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्य ने इसका अर्थ किया है। टीका में है। यह पण्डित जयचन्द्रजी (अर्थ) करते हैं। पण्डित जयचन्द्रजी हो गये हैं वहाँ जयपुर में। यह अर्थ किया है। पाठ में है न, देखो न! कर्ता-भोक्ता का अर्थ किया है यह।

निश्चयनय से तो अपने ज्ञान-दर्शनमयी चेतनाभाव का भोक्ता है... आहाहा! धर्मी उसे कहते हैं, धर्म हुआ उसे कहते हैं, धर्म का जाननेवाला, श्रद्धा करनेवाला, वेदन करनेवाला उसे कहते हैं कि जो चेतनाभाव जानने-देखने के भाव का वह भोक्ता है। छह खण्ड में रहे हुए भगवान शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ तीन चक्रवर्ती थे। छह खण्ड का राज था। हम तो हमारे जानने-देखने के भाव के भोक्ता हैं, प्रभु! आहाहा! उन्हें बत्तीस ग्रास का आहार। जिसका एक ग्रास छियानवें करोड़ सैनिक पचा नहीं सकें। समझ में आया? ऐसा उन्हें आहार था। चक्रवर्ती को। सोलह हजार तो देव सेवा करते। और उनके आहार में... उनकी दासी हो, दासी। वह भी ऐसी जोरदार होती है। करोड़ रुपये का हीरा हो, हीरा! मसल डाले। उसकी बनावे भस्म और उसकी भस्म डाले दूध में और पाक में। और ऐसे बत्तीस ग्रास का आहार वह चक्रवर्ती ले। कहते हैं कि नहीं, तुझे किसने कहा कि वह खाता है? आहाहा! वह तो जड़ की क्रिया को जानता है कि यह होता है। उसमें जरा विकल्प उठा है, वह विकल्प तो राग है। राग का वह वास्तव में भोक्ता नहीं। समझ में आया? आहाहा! अभी तो यह बात बैठना कठिन। मगज में-मस्तिष्क में बैठना कठिन। वह तो सीधी-सट्ट बात। छह काय की दया पालो,

व्रत करो, भक्ति करो, यह करो, वह करो फिर मरो।

उन भाई ने अपने कहा था न। न्यालभाई ने। न्यालभाई हो गये हैं न। द्रव्यदृष्टि प्रकाश। तुम्हें द्रव्यदृष्टि प्रकाश दिया है? द्रव्यदृष्टि प्रकाश एक पुस्तक। नहीं दिया? यह न्यालभाई हो गये हैं अभी। कलकत्ता। उसमें ऐसा लिखा है, 'करना, वह मरना' ऐसा लिखा। राग का शुभ या अशुभ का करना, वहाँ जीव का मरना है। शशीभाई! कहा है न? अपने द्रव्यदृष्टि प्रकाश है या नहीं? दो भाग। एक दो तो सही इन्हें। पढ़ेंगे।... अपने बहुत बार यहाँ। नहीं आये हों। इस समय बौनी करो। एक गृहस्थ है। बहुत सब लाखोंपति। कलकत्ता में अपने दिगम्बर। बहुत बड़ा व्यापार। वे (संवत्) २००२ के वर्ष में यहाँ आये। कितने वर्ष हो गये? पच्चीस। चौतीस वर्ष की उम्र थे। २००२ के वर्ष में आये। पढ़ा हुआ बहुत। बहुत मस्तिष्कवाला व्यक्ति, बहुत होशियार। उनके पत्र हैं। बहुत सरस हैं। वे आये और एक रात में आत्मज्ञान पाये। इतना पुरुषार्थ लेकर आये थे। ओहोहो! इतना कहा। देखो! देखो! इसमें है। इतना कहा। इसमें लिखा है। आहा! कितने मार्मिक मस्तरूप हैं ये शब्द। वहाँ कहा मैंने, 'ज्ञान और राग भिन्न है', इतना कहा। यह विकल्प जो है दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध का, यह विकल्प भिन्न है और चैतन्य भिन्न है। इतना सुनकर... अपने यह है न समिति का कमरा? शाम से सवेरे तक ध्यान में (बैठे)। गुजर गये, अभी गुजर गये। रात्रि में घोलन करते... करते... करते... करते... सम्यग्दर्शन निर्विकल्प का स्वाद लेकर उठ गये। एक रात्रि में, हों! इसमें है थोड़ा-थोड़ा। अब पढ़ना। इस हीरा की कीमत नहीं, ऐसी चीज़ है यह। हीरा में धूल में भी नहीं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, निश्चयनय से तो अपने ज्ञान-दर्शनमयी चेतनाभाव का भोक्ता है... पश्चात् पढ़ना निश्चिन्तता से। ठीक आज आये बराबर बौणी में। कहो, समझ में आया? उन्हें ऐसा घोलन हो गया। एक रात्रि में! आहाहा! इसमें रात्रि क्या? दो घड़ी का काम है। भगवान को भेंटने में दो घड़ी चाहिए। सेठ! अन्तर्मुहूर्त। इस प्रकार राग और पुण्य के प्रेम में पड़ा है, उसका प्रेम गुल्लाँट खाकर आत्मा में पड़े, (इसलिए) छूटा। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं। आहाहा! गजब किया है, देखो! निश्चयनय से... अर्थात् सच्ची दृष्टि से देखें तो धर्मात्मा उसे कहते हैं कि अपना जानना और देखना, वह

अपना अनादि अविनाशी स्वभाव। उसकी जो अवस्था-निर्मल दशा हो, उसे भोगे। आहाहा! समझ में आया? जादवजीभाई! गजब बातें, भाई!

व्यवहारनय से पुद्गलकर्म के फल जो सुख-दुःख आदि का भोक्ता है। ऐसा। पुण्य-पाप के भाव हुए हों, ... मिले धूल बाहर की, उसे व्यवहार से कहा जाता है कि उसको भोगता है। क्योंकि उस भोगने के भाव में वह निमित्त है न? बाकी उसे कुछ भोग नहीं सकता। इस पैसे को भोगता है, यह बगीचा, ... सब हीरा-माणिक्य। धूल, वह तो जड़ है। उसे क्या भोगे? परन्तु भोगने का भाव जो अज्ञानी का राग-द्वेष का था, उस भाव में वह निमित्त हुआ, इसलिए उसे व्यवहार से भोगने का कहा जाता है। उपचार से कहा गया है। आहाहा! अज्ञानी, हों! ज्ञानी तो पर का भोक्ता व्यवहार से भी नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

तीसरा बोल। कर्ता-भोक्ता दो बोल हुए। तीसरा, अमूर्तिक कहा, वह निश्चय से तो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द ये पुद्गल के गुण पर्याय हैं, ... देखो! स्पर्श। नीचे है न। एकदम नीचे की लाईन। नीचे की अन्तिम लाईन। १४८ अन्तिम। १४८ गाथा। गाथा है। अन्तिम लाईन एकदम नीचे। वहाँ नहीं, इस ओर। और, कैसा है भगवान आत्मा? अमूर्तिक। निश्चय से तो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द... नहीं। वह तो यह सब जड़ है। ये पुद्गल के गुण पर्याय हैं, ... कहा न वे चार गुण हैं और शब्द वह पर्याय है। इनसे रहित अमूर्तिक है... आत्मा में स्पर्श नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं। यह शब्द तो जड़ की अवस्था है, आवाज उठती है वह। आत्मा की कुछ नहीं। आत्मा में है नहीं। उससे तो आत्मा रहित है। लो! आत्मा शब्द से रहित है। तो बोले कौन? जड़। आत्मा बोले? आत्मा कहाँ...? आहाहा! समझ में आया? यह तो आवाज है, परमाणु है अन्दर। उस परमाणु की आवाज / ध्वनि उठती है। वह तो जड़ की दशा है, वह आत्मा में है नहीं। यह भाषा की पर्याय तो रूपी है। तो आत्मा रूपी हो जाए। रूपी है नहीं, वह तो अरूपी है। आहाहा! उसमें वापस भाषा का अभिमान। भाषा जड़ की, उसमें अभिमान। ऐसे बोलना, ऐसे करना। अरे! भगवान!

मुमुक्षु : पद्धतिसर बोलना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पद्धतिसर बोलना चाहिए, त्रुटक नहीं होना चाहिए। कौन

बोले ? भगवान ! आहाहा ! अरे ! वाणी जड़ की है, ऐसा कहते हैं । परन्तु आवाज उठती है न । उसमें उतरता है । आत्मा अरूपी उतरे उसमें ? आत्मा तो तीनों काल अमूर्त ही है । आहाहा ! अरे ! इसकी इसे खबर नहीं होती । और पर की... ' घर के लड़के चक्की चाटे और पड़ोसी को आटा । ' इसी प्रकार स्वयं कौन और अपना क्या है, इसकी खबर नहीं होती और इसे धर्म हो जाए, (ऐसा नहीं हो सकता) । आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं, भगवान आत्मा अमूर्तिक है । और व्यवहार से जब तक पुद्गलकर्म से बँधा है, तब तक मूर्तिक भी (उपचार से) कहते हैं । पुद्गल का सम्बन्ध है इस अपेक्षा से । वह निश्चय से तो असंख्यातप्रदेशी लोकपरिमाण है, ... लो ! निश्चय से तो, निश्चय अर्थात् सच्ची दृष्टि से देखें तो अन्दर शरीर प्रमाण है । असंख्यात प्रदेशी है । असंख्य प्रदेशी क्या ? असंख्यात प्रदेश हैं । यह परमाणु है-पॉइन्ट, वह जितने में (जगह) रोके उसे प्रदेश कहते हैं । ऐसा असंख्य प्रदेशी चौड़ा जीव है । ऐसे अनन्त आत्मायें असंख्य प्रदेशी हैं । यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त अज्ञानियों को इसका पता नहीं लगता । समझ में आया ? आहाहा ! देखो न ! अँगूठे से लेकर सिर तक चौड़ा है या नहीं ? चौड़ा है तो उसमें प्रदेश हैं, उसके अंश हैं, वे अवयव हैं । आत्मा पूरा अवयवी है और प्रदेश उसके अवयव हैं, और एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण रहे हुए हैं । वस्तु की खबर नहीं होती । वस्तु क्या है । कुछ न कुछ माने और कुछ का कुछ मानकर धर्म हुआ, ऐसा माने । आहाहा ! अनन्त काल से भ्रमणा में भूला है ।

कहते हैं कि असंख्यातप्रदेशी लोकपरिमाण है, ... लोकप्रमाण अर्थात् ? पूरा लोक है आकाशप्रदेश, इतने प्रदेश जीव के हैं, ऐसा । लोक है न चौदह ब्रह्माण्ड भगवान ने (देखा है) । धर्मास्ति, अधर्मास्ति, पूरे लोक में है । अरूपी पदार्थ अनादि-अनन्त है । उसके असंख्य प्रदेश हैं । ऐसे एक आकाश के असंख्य प्रदेश हैं । इतने एक जीव के हैं । लोक के प्रमाण में संख्या से जीव के प्रदेश हैं । समझ में आया ? परन्तु संकोच-विस्तारशक्ति से शरीर से कुछ-कम... लो, अपने यह दोपहर में आया था । संकोच-विस्तारशक्ति से शरीर से कुछ-कम प्रदेशप्रमाण आकार में रहता है । लो ! समझ में आया ? संकोच-विस्तार होता है थोड़ा । इसे देखे ! कल दोपहर में आया था न । शक्ति में आया था—नियतप्रदेश ! चींटी में हो तो संकुचित हो जाए, हाथी में हो तो चौड़ा

(हो)। वस्तु तो वह की वही है। बड़ी जाजम हो, जाजम लो न। चौड़ी बिछावे तो पूरे उसमें (हॉल) में समा जाए। फिर समेटने लगे तो थोड़े में रहे। है तो उतनी की उतनी। कहीं समेटे तो छोटी हो गयी है और चौड़ी हुई तो बड़ी हो गयी है, ऐसा है? इसी प्रकार एक-एक आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं। जो श्रीमद् में चेतनघन कहा वह। श्रीमद् ने कहा न 'शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन' यह प्रदेश का वर्णन करते हैं। आत्मा असंख्य प्रदेशी घन है। ऐसा आत्मा संकोच-विकास के कारण शरीर से कुछ-कम प्रदेशप्रमाण आकार में रहता है। लो! सिद्ध भगवान हों आत्मा, सिद्ध-सिद्ध अशरीरी-मुक्तदशा पाये, वहाँ अन्तिम शरीर के प्रमाण में आत्मा रह जाए। समझ में आया?

और अनादिनिधन... है। पाँचवाँ बोल। अनादि-अनन्त। निधन अर्थात् अन-अनादि, अ-निधन। जिसकी आदि नहीं और जिसका अन्त नहीं। है, उसकी आदि क्या? सत् का नाश होगा? सत् की उत्पत्ति होगी? आहाहा! अनादि-अनन्त। वह पर्यायदृष्टि से देखने पर तो उत्पन्न होता है,... वर्तमान अवस्था से देखो तो मनुष्यभव, देवभव, नारकी, चींटी और कौआ और ऐसे भव होते हैं। पर्यायदृष्टि से देखे, वर्तमान दृष्टि से। क्योंकि वस्तु तो अनादि-अनन्त है। कहीं वस्तु नयी नहीं होती।

पर्यायदृष्टि से देखने पर तो उत्पन्न होता है, नष्ट होता है, तो भी द्रव्यदृष्टि से देखा जाए तो अनादिनिधन सदा नित्य अविनाशी है। अनादि-अनन्त है है... है... है... है... है... अनन्त-अनन्त भव। अनन्त भव में था... था। है... है... है... है... आहाहा! समझ में आया? यह राजुल आयी है न? ... नहीं होगा। रविवार है न। आयी है। क्या कहा, समझ में आया? वस्तु से देखे तो आत्मा त्रिकाल है, परन्तु उसकी हालत से देखें तो नये-नये भव धारण करता है। बराबर है? घड़ीक में बनिया, घड़ीक में बाल, वृद्ध और युवक। 'आत्मा द्रव्ये नित्य छे पर्याये पलटाय।' आता है न? 'बालादि वय तीन का ज्ञान एक को होय।'

दर्शन-ज्ञान उपयोगसहित कहा, वह देखने-जाननेरूप उपयोगस्वरूप चेतनारूप है। लो! आहाहा! भगवान का-चेतन का रूप तो जानना-देखना उसका रूप है। उसका कोई पुण्य-पाप के विकल्प का, राग का रूप उसका है नहीं। आहाहा! समझ में आया? बाह्य दृष्टि से देखे तो रागरूप दिखता है। अन्तर्दृष्टि से देखो तो रागरूप है नहीं।

वह तो ज्ञान-दर्शनमय है। बाह्यदृष्टि से देखो तो अर्थात् बहिरात्मा पर्यायबुद्धि। समझ में आया? ऐसा आत्मा है, ऐसा जब तक नहीं जाने, तब तक चौरासी के अवतार में भटक मरेगा। साधु होकर मर गया। सब किया इसने। परन्तु यह आत्मा सर्वज्ञ ने कहा, ऐसा जानने का अनुभव किया नहीं। उस अनुभव के बिना सब क्रियायें रण में शोर मचाने जैसी हुई। समझ में आया? अरण्यरुदन।

देखने-जाननेरूप उपयोगस्वरूप चेतनारूप है। जानना और देखना, वह चेतना— ऐसा सत्त्व। सत् का सत्त्व वह वस्तु है। उस वस्तु में तो पुण्य और पाप, शरीर, वाणी, मन कुछ है नहीं। ऐसा चेतनामय आत्मा का अनुभव करना। उसकी दृष्टि करके उसमें स्थिर होना, इसका नाम भगवान धर्म कहते हैं। बाकी सब बातें ऊपर से कहते हों, वह है। समझ में आया? यह सामायिक की और प्रौषध किये। परन्तु किसकी सामायिक? आत्मा कौन है, धर्म करनेवाला कौन है, कितना, इसकी खबर नहीं होती और इसे धर्म हो जाए, (ऐसा नहीं हो सकता)। समझ में आया? आहाहा! यह छह बोल कहे, लो!

अब कहते हैं, अन्यमति आदि प्रकार अनेकान्त करके मानते हैं। इस विशेषण से सर्वज्ञ परमात्मा ने ऐसे आत्मा को कहा, इसके अतिरिक्त अज्ञानियों ने अपनी कल्पना से अनेक प्रकार से कहते हैं, उसका इसमें निषेध जानना। **सर्वथा एकान्तरूप मानते हैं, उनका निषेध भी जानना चाहिए।** क्या कहते हैं? **कर्ता विशेषण से तो सांख्यमती सर्वथा अकर्ता मानता है...** एक सांख्यमत है, जैन से अन्य। वह (जीव) कर्ता बर्ता नहीं, ऐसा कहता है। समझ में आया? अज्ञानभाव से कर्ता और अज्ञानभाव से राग का कर्ता और ज्ञानभाव से ... अकर्ता, ऐसा नहीं मानता। सांख्यमत एकदम कूटस्थ आत्मा मानता है। नित्य कूटस्थ। पर का और स्व का यह क्या? परन्तु तूने निर्णय किया, वह पर्याय है। हैं! आहाहा! तूने निर्णय किया कि मैं यह आत्मा हूँ, कूटस्थ हूँ। किसने यह निर्णय किया? निर्णय तो पर्याय में हुआ। ध्रुव में होगा? उस पर्याय को मानते नहीं, वे मिथ्यादृष्टि हैं, अज्ञानी हैं - ऐसा कहते हैं। उनका निषेध किया।

और, **भोक्ता विशेषण से बौद्धमति क्षणिक मानकर...** लो! बौद्धमतवाले जीव को क्षणिक मानते हैं। क्षणिक मानते हैं न? कर्ता दूसरा और भोक्ता दूसरा, ऐसा माननेवाले क्षणिक मानते हैं। **कर्म को करनेवाला तो और है तथा भोगनेवाला और है...**

लो! बौद्धमति ऐसा कहते हैं। एक आत्मा करे और दूसरा आत्मा भोगे। यह आत्मा नहीं भोगता। उसका यहाँ निषेध है। लो! इसका निषेध है। यह कर्ता की व्याख्या में किया।

अमूर्तिक कहने से मीमांसक आदि इस शरीरसहित मूर्तिक ही मानते हैं,... यह तो शरीरसहित ही आत्मा होता है, शरीर बिना का आत्मा कैसा? कहते हैं। आहाहा! उसका निषेध है। शरीरप्रमाण कहने से नैयायिक, वैशेषिक, वेदान्ती आदि सर्वथा, सर्व व्यापक मानते हैं, उनका निषेध है। भगवान आत्मा को शरीरप्रमाण कहा। वेदान्त सर्व व्यापक कहता है, नैयायिक यह कहते हैं वैशेषिक, वेदान्ती आदि। उनका निषेध है। ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया? यह जो कहा उसका इस प्रकार से दूसरे मत में है नहीं, उसका निषेध समझना। यह एक वीतराग कहते हैं, वह बात सत्य है। लो, विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१५४, गाथा-१४८-१४९, सोमवार, मगसर कृष्ण ८, दिनांक २१-१२-१९७०

अष्टपाहुड़ में भावपाहुड़। यहाँ आया था बीच में, देखो! और, दर्शन-ज्ञान उपयोगसहित कहा,... बीच में है। यह जीव है, वह दर्शन-ज्ञानोपयोगमय स्वरूप है। विकार या शरीरमय यह चीज़ नहीं है। दर्शन-ज्ञान उपयोगमयी कहने से सांख्यमती तो ज्ञानरहित चेतनामात्र मानता है,... चेतना है परन्तु उसमें ज्ञान है, जानना है—ऐसा है नहीं। तो वह वस्तु खोटी है। नैयायिक, वैशेषिक, गुणगुणी के सर्वथा भेद मानकर... गुणी आत्मा और गुण ज्ञान, दर्शन सर्वथा भिन्न मानता है। इसलिए यहाँ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी कहा। आत्मा जानने-देखने के उपयोगमय अभेद स्वरूप है। गुणी भिन्न और गुण भिन्न ऐसा नहीं है। समझ में आया? जानने-देखनेवाला स्वभाववान उस स्वभाव से अभेद है। जानना-देखना अलग है और जानने-देखनेवाला अलग है, ऐसा नहीं है।

गुणगुणी के सर्वथा भेद मानकर ज्ञान और जीव के सर्वथा भेद मानते हैं, बौद्धमत का विशेष विज्ञानाद्वैतवादी ज्ञानमात्र ही मानता है... बौद्ध का एक भाग है, वह विज्ञान ही अकेला मानता है। जगत में अकेला विज्ञान है। विज्ञानमय आत्मा या

ऐसा कोई नहीं। विज्ञान अकेला माने, वह भी झूठा। और वेदान्ती ज्ञान का कुछ निरूपण ही नहीं करता है,... वेदान्त तो अद्वैत मानता है न अद्वैत? ज्ञान और आत्मा, ऐसे दो भेद भी उसे तो नहीं हैं। यह अत्यन्त झूठा है। वेदान्ती ज्ञान का कुछ निरूपण ही नहीं करता है,... कोई निरूपण ही नहीं कि आत्मा है, वह जानता है, वह जानने का कुछ (कार्य करता है), परन्तु जानने का माने, तब तो पर्याय हो गयी और गुण और गुणी दो चीज़ हो गयी। दो तो मानना नहीं। वेदान्ती ज्ञान का कुछ निरूपण ही नहीं करता है, इन सबका निषेध है।

इस प्रकार सर्वज्ञ का कहा हुआ जीव का स्वरूप जानकर... है न शब्द? यह 'ज्ञ' रह गया है। है न उसमें? इस प्रकार सर्वज्ञ का कहा हुआ... सर्वज्ञ परमात्मा जिसके मत में है, उसके मत में तीन काल-तीन लोक जानने में आये और उसकी बात सत्य है। जिसका सर्वज्ञ मत ही नहीं अथवा जिसने सर्वज्ञस्वभावी जीव पद को माना ही नहीं, इसलिए सर्वज्ञ एक समय में तीन काल को जाने, ऐसी पर्याय भी उसे नहीं होती। वस्तु स्वयं सर्वज्ञस्वरूपी ही है। अर्थात् ज्ञानस्वभावी आत्मा तो ज्ञान में और अपूर्णता क्या? ज्ञान पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... सर्व पूर्ण ज्ञान। ऐसा ही उसका स्वभाव है। ऐसी दशा प्रगटे, उसे सर्वज्ञ हो। परन्तु जिसने ज्ञानस्वभाव, सर्वज्ञस्वभाव ही माना नहीं, उसे सर्वज्ञपना होता नहीं। समझ में आया? है? वहाँ सेठ? आया है या नहीं? 'ज्ञ' शब्द चाहिए, 'ज्ञ' शब्द चाहिए।

सर्वज्ञ का कहा हुआ जीव का स्वरूप जानकर... ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर ने तीन काल-तीन लोक जाने हैं, उनके कहे पदार्थ को जानकर, अपने को ऐसा मानकर... स्वयं ऐसा माने। श्रद्धा, रुचि, प्रतीति करना चाहिए। भगवान ने आत्मा को ज्ञानमय कहा है, शरीरप्रमाण कहा है, भानभाव से शुद्ध चेतना निर्मल अवस्था का करनेवाला है, अज्ञानभाव से विकार का कर्ता है। ऐसा ऐसा भगवान ने कहा है, ऐसा जानकर अपने को ऐसा मानकर... ज्ञान-दर्शनमय हूँ, जानने-देखने के भावस्वभाव हूँ। पूरी दुनिया को उदासीन से मैं तो जानूँ। जानना और देखना इसके अतिरिक्त मेरा कोई स्वभाव नहीं है। ऐसी श्रद्धा, रुचि, प्रतीति करना चाहिए।

और, जीव कहने से अजीव पदार्थ भी जाना जाता है, अजीव न हो तो जीव

नाम कैसे होता ? अजीव न हो तो यह जीव कैसे कहा ? अजीव है तो यह जीव है । ऐसे यह जीव है तो वह अजीव है । है परन्तु उसमें जीव है, ऐसा कहना है, तब एक अजीव है दूसरा । तब जीव है, ऐसा हुआ न ? दूसरा अजीव है । **इसलिए अजीव का स्वरूप कहा है, वैसा ही उसका श्रद्धान आगम- अनुसार करना ।** लो ! उसमें निज श्रद्धा करके मानना और यह तो आगम अनुसार अजीव की श्रद्धा करना, ऐसी दो बातें ली । पाँच अजीव (द्रव्य) है । धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, पुद्गल । उसे भगवान ने कहा है । आगम में तत्प्रमाण जानना । जानकर उनसे भिन्न है, इसलिए जानना । अजीव को जानने का (प्रयोजन) इतना कि उससे मैं भिन्न हूँ, मुझसे वे भिन्न हैं, इसलिए जानना ।

आगम अनुसार करना । इस प्रकार अजीव पदार्थ का स्वरूप जानकर और इन दोनों के संयोग से... दो हुआ । एक जीव का स्वरूप कहा । वह तो जानन-देखन स्वभाव । क्योंकि ज्ञान और दर्शन का भाव स्वभाव रसरूप, वही आत्मा है । ऐसा अन्तर में सन्मुख होकर जानकर, श्रद्धा, रुचि करना । और अजीव को आगम अनुसार जानना कि वह मुझसे भिन्न है । और **दोनों के संयोग से अन्य आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन भावों की प्रवृत्ति होती है ।** जीव है, उसे अजीव का संयोग है । तो उस संयोग के सद्भाव की पर्याय उसमें हो, ऐसा संयोग है और यहाँ भाव हो, वह आस्रव है । संयोग के लक्ष्य से भावबन्ध होता है और संयोग के अभाव से उसे संवर-निर्जरा और मोक्ष होता है । क्या कहा ?

जीव, ऐसा कहा कि जीव जो है, वह दर्शन-ज्ञानमय आत्मा है । देखो ! इतने में आ गया थोड़े में एक आत्मा थोड़े में वाँचने का करने का... व्याख्या थोड़े में रखी । यह आत्मा जो है, वह जानना-देखना स्वरूप, बस । वह आत्मा । उसे जानकर उसके सन्मुख होकर उसकी श्रद्धा-ज्ञान करना, वह संवर और निर्जरा है । अब वह संवर, निर्जरा और मोक्ष कैसे है ? ऐसा सिद्ध करते हैं । जीव से पाँच भिन्न अजीव हैं । उनका स्वरूप आगम अनुसार जानना और उनसे रहित हूँ, ऐसा जानने के लिये (जानना) । अब जीव और अजीव के सम्बन्ध में पाँच पर्यायें प्रगट होती हैं । अजीव के लक्ष्य से, सम्बन्ध से आस्रव और बन्ध उत्पन्न होता है । अजीव तो वह है, आस्रव और बन्ध तो । जितना स्वरूप में

एकाग्र होने पर अजीव का सम्बन्ध, अबन्ध, सम्बन्ध अभाव होता है, उतना यहाँ संवर होता है और उससे विशेष शुद्धि जितना सम्बन्ध विशेष छूटे, उतनी निर्जरा है। सर्वथा सम्बन्ध छूटे, उसे मोक्ष कहते हैं। समझ में आया? लो, यह नव तत्त्व। सात में पुण्य-पाप गये आस्रव में।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष। मोक्षतत्त्व। जीव के साथ...

मुमुक्षु : आज तो कुन्दकुन्दाचार्य की तिथि।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुन्दकुन्दाचार्य की तिथि का याद आ गया। आज कुन्दकुन्दाचार्य की आचार्य पदारोहण की तिथि है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज को आचार्य आरोहणपना आज हुआ था। आज पौष कृष्ण अष्टमी है। सिद्धान्त की शास्त्र की पौष कृष्ण अष्टमी है। अपने (गुजराती में) मगसर कृष्ण अष्टमी। ग्यारह वर्ष की उम्र में दीक्षा ली थी। ओहोहो! ग्यारह वर्ष। बहुत समर्थ! बहुत शक्ति! ३३ वर्ष दीक्षा रही, पश्चात् आचार्यपद मिला। ९५ वर्ष तक जीवित रहे। ९५ वर्ष। वह आज आचार्यपद का आरोहण दिवस है। वह आचार्यपद ऐसी योग्यता लेकर आते हैं। क्षयोपशमभाव में आते हैं। आचार्यपना। ऐसा ही उनका उघाड़ और उस जाति की मर्यादा-हद होती है उनकी, इसलिए उन्हें सहज ही सब संघ एकत्रित होकर ऐसा कहता है कि हमारे प्रमुख यह हैं। इनकी आज्ञा में हम सब चलेंगे। ये संघ के नायक हैं। ऐसा आचार्यपदपना पौष कृष्ण अष्टमी को मिला था। ओहो! उनकी वाणी, यह सब श्लोक... अकेली वीतरागता झरती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागता झरती है अर्थात्? वीतरागता ही बतलाते हैं।

आत्मा ज्ञान-दर्शनमय है, ऐसा कहकर भी पर का सम्बन्ध और राग बिना का वीतरागभाव बतलाया है। वीतरागभाव के ज्ञान में अजीव की स्थिति क्या है, ऐसी जानने में आती है, उसे अजीवतत्त्व बतलाया। आहाहा! अजीव के सम्बन्ध में राग और द्वेष और आस्रव बन्ध उत्पन्न होता है। वह वास्तविक जीव का स्वरूप नहीं है, ऐसा बतलाया

और अजीव के सम्बन्ध से छूटा, इतना यहाँ स्वभाव के साथ सम्बन्ध किया अथवा स्वभाव के साथ सम्बन्ध किया, उतना अजीव के सम्बन्ध से छूटा। उसे संवर कहते हैं। प्रवृत्ति कहते हैं न, देखो न! अन्य आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन भावों की प्रवृत्ति होती है। पर्याय की बात है न, पर्याय? जीव तो ज्ञान-दर्शन-स्वभावमय कहा। वह जीव अनादि-अनन्त। अजीव पाँच—धर्मास्ति आदि। और दोनों के सम्बन्ध से... अकेले आत्मा में ऐसी पाँच पर्यायें नहीं होतीं, इसलिए अजीव के संग से, संग से-लक्ष्य से, अपना लक्ष्य छूटकर जितना लक्ष्य पर में जाए, उतना वहाँ आस्रव और बन्धभाव उत्पन्न होता है। बन्ध सम्बन्ध हुआ न? सम्बन्ध हुआ, इसलिए बन्ध और आस्रव उत्पन्न हुआ। और जितना स्वभाव के साथ सम्बन्ध करे एकाग्र होकर, उतना अजीव का सम्बन्ध छूटे। इतना यहाँ संवर कहने में आता है। विशेष उग्ररूप से स्वभाव का सम्बन्ध करे तो विशेष अजीव का सम्बन्ध छूटे, उसे निर्जरा कहा जाता है। पूर्ण स्वभाव का सम्बन्ध करे तो पूर्ण अजीव सम्बन्ध छूटे। उसे मोक्ष कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

दोनों के संयोग से... दो के संयोग से अन्य आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष (पाँच भाव) इन भावों की... भाव अर्थात् पर्याय। पाँच पर्याय की प्रवृत्ति होती है। वह पर्याय अस्तिरूप से है, ऐसा सिद्ध करना है। जैसे जीव और अजीव दो हैं, वैसे यह पाँच पर्याय भी है। दो आस्रव और बन्ध मलिन, संवर और निर्जरा अपूर्ण शुद्ध, मोक्ष पूर्ण शुद्ध। समझ में आया? देखो! मोक्ष, वह पूर्ण शुद्ध अवस्था। संवर-निर्जरा, वह अपूर्ण शुद्ध अवस्था। आस्रव और बन्ध, यह अशुद्ध अवस्था। जब वस्तु है और वस्तु जब पर के सम्बन्ध में आती है, तब दोष उत्पन्न होता है। अर्थात् दोष की अस्ति है। अजीव की अस्ति है और जीव स्वभाव की अस्ति है, वैसे दोष की भी अस्ति है। ऐसी बात पर्याय में दोष की अस्ति और अजीव का सम्बन्ध जितना, वह स्वभाव सम्बन्ध हो, उतना अजीव सम्बन्ध छूटे, अजीव के पूर्ण सम्बन्ध के साथ राग और द्वेष और बन्ध हो, ऐसी बात वस्तु के सात, नव तत्त्व माने बिना सिद्ध नहीं होती। समझ में आया? उसकी भी खबर नहीं होती। सम्प्रदाय में पड़े हैं, हो गया। यह भगवान जाने। नव तत्त्व है। नव तत्त्व। सात तत्त्व क्या है? किस प्रकार? ऐसा ही हो और दूसरे प्रकार से न हो, ऐसा भास होना चाहिए न?

भगवान ने कहे परन्तु कैसे कहे, इतने ही कहे और दूसरे नहीं कहे। और इतने कहे में प्रयोजन क्या है? समझ में आया? ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य में है या नहीं श्लोक पहला? 'न हुए न होयेंगे नहीं।' यह लो, यह निकला, तीसरे पृष्ठ पर है। प्रस्तावना में पहले शुरुआत में ही, नीचे श्लोक है। शुरुआत में एकदम शुरुआत पहली। गाथा नहीं परन्तु पहली शुरुआत। यह गायन है न? 'जासके मुखारविन्दते...' यह तुम्हारे आया था न, दूसरे पृष्ठ पर, तीसरे पृष्ठ पर। यह पृष्ठ घुमाओ। है? देखो! इसमें तीसरे पृष्ठ पर है। ... 'जासके मुखारविन्दते प्रकाश भास वृन्द' है? 'जासके मुखारविन्दते प्रकाश भास वृन्द'। भाषा का वृन्द निकलता है इनके मुख से। निकला? 'स्याद्वाद जैन बैन इन्दु चन्द कुन्दकुन्द से।' कहो, 'स्याद्वाद जैन बैन' अपेक्षा से सर्व कथन। स्वपने है, परपने नहीं। 'इन्दु चन्द्र श्री कुन्दकुन्द से। तासके अभ्यास से विकास भेदज्ञान होत।' भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के वचन उनके अभ्यास से विकास भेदज्ञान हो। भेदज्ञान का विकास हो। एक-एक राग भिन्न, विकल्प भिन्न, द्रव्य से एक समय की पर्याय का अंश भिन्न। ऐसा भेदज्ञान जिसकी भाषा में से अभ्यास करे तो हो। आहाहा! है?

'तासके अभ्यास से विकास भेदज्ञान होत, मूढ सो लखे नहीं कुबुद्धि कुन्दकुन्द से।' कुन्दकुन्द के वचनों को मूढ कुछ जान नहीं सकता। लखे है न? लखे अर्थात् जानना। कुन्दकुन्द के वचनों को... वे बहुत कहते हैं, हमने समयसार पढ़ा। अभी आया था न एक व्यक्ति। वह और कहता था यह ... कि हमने समयसार पढ़ा है, हों! ठीक, अब पढ़ा। परन्तु क्या पढ़ा है तो? अरे! भाई! समयसार अर्थात् क्या, बापू! समझ में आया?

मुमुक्षु : वाँच-वाँचकर पुस्तक फाड़ डाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुस्तक फाड़ डाली वाँच-वाँचकर। परन्तु भाव क्या है, वह समझे बिना? एक-एक गाथा और एक-एक पद की महागम्भीरता है।

'मूढ सो लखे नहीं कुबुद्धि कुन्दकुन्द से' कुबुद्धि और मूढ दो शब्द प्रयोग किये हैं। कुन्दकुन्द के शास्त्रों के अर्थों के भाव कुबुद्धि और अज्ञानी समझ नहीं सकता। 'देत है आशीष शिष्य के इंदु चन्द जाहि।' देत वह आशीष देते हैं शिष्य को। मस्तक नमाकर। 'इंदु चन्द...' इन्दु अर्थात् क्या? चन्द्र होता है वैसे तो। इन्द्र और चन्द्र, लो! इन्द्र और चन्द्र जहाँ सिर नमा देते हैं। जिनकी वाणी में। 'मोहमार खण्डमार... से।'

मोहरूपी मार के खण्ड-खण्ड कर डाले हैं। मार्तण्ड-सूर्य कुन्दकुन्द। कुन्दकुन्दरूपी सूर्य, मार्तण्ड अर्थात् सूर्य। कुन्दकुन्दरूपी सूर्य ने मोहरूपी मार के खण्ड कर डाले हैं। मिथ्यात्व के, अज्ञान के, राग के खण्ड करके अखण्ड वस्तु बतायी।

‘विशुद्धि बुद्धि वृद्धि...’ जिसकी विशुद्धि बुद्धि ‘वृद्धि दा, प्रसिद्ध ऋद्धि ...’ विशुद्ध बुद्धि थी, वृद्धि थी, प्रसिद्ध थे, ऋद्धि थी, सिद्धि थी। ‘हुए न है न होंगे मुनिन्द्र कुन्दकुन्द से’ कविवर वृन्दावनदासजी (कृत)। ‘हुए न, है न होयेंगे मुनिन्द्र कुन्दकुन्द’। उनके जैसे तो वे हुए हैं। आचार्यपद का आरोहण है न? वैसे तो गा गये हैं कवि वृन्दावन कवि। दिगम्बर कवि। लो, अब कितने ही कहते हैं हुए न बस, उनके जैसे? परन्तु भाई! अब यह किस अपेक्षा से? सुन तो सही। उन्होंने जो इस समय के समय में काम किया है... उसकी बात हुई ऐसी... आहाहा! उनके एक-एक शब्द में कितनी बात है! समझ में आया?

यह तो बनारसीदास का कहा था न? उसमें यह शब्द है। देखो! आता है न? ‘मोक्ष ... से सम।’ यह समयसार की व्याख्या की है। बनारसीदास ने की है। नाटक समयसार की महिमा। ‘मोख चलिवेकौ सौन...’ शुकन शुकन। मोक्ष के पन्थ में चलने का शुकन है समयसार। समझ में आया? आहाहा! पहला समयसार हाथ नहीं आया, पश्चात् कहा था हमने सेठ को। ऐ सेठ! कहा, यह अशरीरी समयसार है। ... नहीं था अभी कुछ। (संवत्) १९७८ की बात है। यह अशरीरी समयसार है। समयसार का अर्थ अशरीरीपना कैसे प्राप्त हो यह बात है। पुण्य मिले और स्वर्ग मिले, धूल मिले, यह बात इसमें नहीं। देखो! ‘मोख चलिवेकौ सौन...’ मोक्ष के पन्थ में चलने के लिये शुकन, शुकन हो गये इसे। इसे मोक्षपन्थ मिलकर मोक्ष ही हो जानेवाला है। ‘करमकौ करे बौन...’ कर्म को टाल डाले। ‘जाके रस-भौन बुध लौन ज्यों घुलत है।’ कहो, समझ में आया? रस मौन। रस भवन। ज्ञानी को आनन्द के रस का भवन। ‘लौन ज्यों घुलत है।’ जैसे नमक पानी में मिल जाए, वैसे आत्मा के ज्ञान और आनन्द उसमें घुल जाते हैं। समयसार समझे उसे आत्मा आनन्दमय हो जाता है, ऐसा कहते हैं। ‘गुनको गरन्थ...’ यह गुण का तो ग्रन्थ है। ‘निरगुनकौ सुगम पंथ’, गुणरहित होने के लिये यह सुगम पन्थ है। गुणरहित अर्थात्? बाहर के गुण यह प्रकृति, रज आदि। ‘जाकौ जसु कहत सुरेश

अकुलत है ॥' जिसका यश कहते हुए सुरेश—इन्द्र भी आकुलता पाता है। ऐसी चीज़ है समयसार। समझ में आया या नहीं? यह तो हिन्दी है। सेठ! हिन्दी है

मुमुक्षु : चालू हिन्दी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो चालू ही है न परन्तु क्या है यह ?

'जाकौ जसु कहत सुरेश अकुलत है ॥' जिसका यश कहते हुए सुरेश—इन्द्र भी अकुलाते हैं। आहाहा! उसे क्या कहना? ऐसी वाणी अमृत कुन्दकुन्दाचार्य की है। है? 'याहीके जु पच्छी ते उड़त ग्यानगगनमें,' यह कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी समयसार के जो पक्षी हैं 'उड़त ग्यानगगनमें,' ज्ञान के गगन में आकाश में उड़कर चले जायें। 'याहीके विपच्छी' यह 'जगजालमें रुलत है' उसमें है? उसमें नहीं? यह तो समयसार नाटक है। 'याहीके विपच्छी जगजालमें रुलत है' समयसार के विरोधी चार गति में भटकनेवाले हैं। आहाहा!

'हाटकसौ विमल' शुद्ध सुवर्ण समान विमल है। हाटक अर्थात् सुवर्ण। सोना सोलहवान जैसे होता है। आहाहा! उनकी वाणी के भाव वीतराग के फेण से... रहे हुए हैं। वीतराग... वीतराग... वीतराग... अहो! गजब शैली! कहते हैं, कहते हैं कि सुवर्ण से विमल 'विराटकसौ विसतार' विराट बड़ा जगत का इससे भी विस्तारवाला है। 'नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है ॥' यह फाटक नहीं लगता? रेलवे का। फाटक बन्द है। यह फाटक खुल गया है, ऐसा कहते हैं। 'नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है ॥' जिसके हृदय के फाटक बन्द है, वे यह समयसार सुने तो फाटक खुल जाते हैं। अन्दर से नेत्र खुल जाते हैं। आहाहा! लो! ... आ गये दो। समझ में आया? आज आचार्य का दिन है न यह? पौष कृष्ण अष्टमी, यह पौष कृष्ण अष्टमी है। सिद्धान्त की पौष कृष्ण अष्टमी है। मगसिर कृष्ण ... शुक्ल बाद में आवे उसमें। सिद्धान्त के हिसाब से कृष्ण पहले आता है। शुक्ल बाद में आता है। यह पौष कृष्ण है, पश्चात् पौष शुक्ल आयेगा। ओहोहो!

वर्तमान में तो महाविदेहक्षेत्र में नहीं। वे तो स्वयं स्वर्ग में हैं। वैमानिक में। थे तब उनकी दशा और यह बात... ओहो! अलौकिक! इसलिए ऐसा कहा कि ऐसे इस पंचम काल में उन्होंने जो काम किया है, तीर्थकर जैसा काम किया है। पंचम काल के

तीर्थकर हैं। अमृतचन्द्राचार्यदेव ने... आहाहा! शक्ति का वर्णन देखो न गजब है! गजब!! अन्दर गहरे... गहरे... गहरे... देखो तो ऐसे अकेली द्रव्य, गुण और निर्मल वीतरागी पर्याय का ही वर्णन है। राग और निमित्त की गन्ध कहीं स्पर्शी नहीं है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा द्रव्य वस्तु, उसकी शक्तियाँ भी पूर्ण पवित्र निर्मल। ऐसी शक्ति का धारक उस द्रव्य का आश्रय ले, उसकी वैसी ही वीतराग पर्याय होती है। वह उसकी पर्याय कहलाती है। अरे! व्यवहार से भगवान! तुमको माने, वह विकल्प उसकी पर्याय है या नहीं? नहीं। भगवान को माने ऐसा जो राग, वह तेरी पर्याय नहीं। परन्तु तुमको मानता है न? मैं हूँ, वह तो तू है। तुझमें है, ऐसा तू है, वैसा मैं हूँ। मुझे मानने जा, तो विकल्प उठेगा। तुझे मानने जा तो तुझे अन्दर विकल्प टूटेगा। आहाहा! समझ में आया? विकल्प होगा, यह कहते हैं कि हमको तू मानने, सर्वज्ञ को मानने परलक्ष्य से, वह जो विकल्प उठेगा, वह तेरा स्वरूप नहीं, हों! वह तेरे द्रव्य-गुण और पर्याय का स्वरूप नहीं, हों! आहाहा! गजब बात करते हैं न! आहाहा! वह विकल्प भिन्न है, जाति भिन्न है। आहाहा! वह आत्मा नहीं। आहाहा! अकेला वीतरागभाव प्रवाहित किया है।

कहते हैं, यहाँ सात तत्त्व की बात रखी। इस श्लोक का ही अर्थ चलता है न, देखो न! कर्ता-भोक्ता का। आचार्य। यह चलता है न, कर्ता-भोक्ता मैं तो ऐसा... जिनवर ने देखा वह हम कहते हैं। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर ने इस आत्मा को ऐसा कहा है। ऐसा हम कहते हैं। भगवान ने कहा है। हम कहते हैं, ऐसा नहीं कहा वापस, देखा! 'णिद्दु ज्जिणवरिन्देहिं' आहाहा! गजब है। 'ज्जिणवरिन्देहिं' यह बात आत्मा को कर्ता-भोक्ता सहित ... अमूर्तिक अनादिनिधन दर्शन-ज्ञानमय ऐसा कहा है। आहाहा! समझ में आया? यह जीव दर्शन-ज्ञानमय है। दर्शन-ज्ञानवाला है, ऐसा नहीं कहा। वाला है, (ऐसा कहे) तो भेद पड़ गया। जिसे गुण-गुणी के भेद की भी आवश्यकता नहीं। ऐसा स्वभाव गुण-गुणी का अभेद स्वभाव वर्णन किया है। और उसके अतिरिक्त के पाँच हैं, वे अजीव हैं। और दोनों के सम्बन्ध से... यह (समयसार की) तेरहवीं गाथा में आता है न? एक को यह नव (भेद) नहीं पड़ते। अपेक्षा हो, निमित्त की अपेक्षावाला भाव, वह आस्रव, पुण्य, पाप और बन्ध। आत्मा में ज्ञानदर्शनमय होने पर भी, त्रिकाली

स्वभाव होने पर भी उसकी वर्तमान पर्याय में कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में निमित्त के सम्बन्ध से भाव होता है, वह पुण्य-पाप, आस्रव और बन्ध। तथा यहाँ स्वभाव। क्योंकि इतना स्वभाव के सम्बन्ध से छूटा है और पर का सम्बन्ध किया है। और फिर जितना स्वभाविक पर्याय ने सम्बन्ध किया... पहले पर्याय ने पर का सम्बन्ध किया था, निर्मल पर्याय ने जितना द्रव्य का सम्बन्ध किया, उतना अजीव का सम्बन्ध छूटा। उसे संवर कहते हैं। उग्ररूप से सम्बन्ध किया, उसे निर्जरा कहते हैं। इतना अजीव का सम्बन्ध छूटा। उग्ररूप से स्थिर हुआ, उसे मोक्ष कहते हैं। मोक्ष, वह स्वरूप की पूर्ण स्थिरता की रमणता को मोक्ष कहते हैं। कहो, समझ में आया? अजीव का सम्बन्ध छूटा। पश्चात् पाँच पर्याय की प्रवृत्ति में इस प्रकार से निमित्त-निमित्त सम्बन्ध होता है।

इनका आगम के अनुसार स्वरूप जानकर... इनका आगम अनुसार स्वरूप जानकर। आगम अर्थात् परमात्मा-सन्तों ने कहे हुए आगम, हों! वे आगम-आगम दूसरे कहे हुए, वे नहीं। समझ में आया? शब्द तो आगम है। ऐसा तो सब नाम पाड़ते हैं। हमारे भी आगम है। आगम तो भगवान की परम्परा से जो आयी हुई चीज़, वह आगम कहलाती है। बीच में कल्पित बनाये और नाम दिया भगवान का, वह आगम नहीं कहलाता। बहुत कठिन लगे।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ६३ नहीं, ८४। ८४ बनाये हुए हैं। ये पहले वही थे न। स्थानकवासी थे कब? श्वेताम्बर ने ८४ बनाये। यहाँ वल्लभीपुर। उसमें से ४५ रह गये। बाकी सब फेरफार हो गया। यह ४५ और पश्चात् यह स्थानकवासी निकले, उसमें से ३२ में से ३१ रखे। ३२वाँ उनका था, वह नहीं माना। क्योंकि उसमें ३२ में तो मूर्ति और पूजा बहुत सब है। ३१ रखे अपनी कल्पनावाले। जिसमें अर्थ दूसरे हो सकें ऐसे। चैत्य का अर्थ जिसमें ज्ञान भी हो सके, ऐसे ३१ रखे और यह है, वह नया बनाया। श्वेताम्बर का आवश्यक है, वह इन्होंने मान्य नहीं रखा। क्योंकि उसे मानने जाए तो मूर्तिपूजा का पार नहीं होता उसे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : निकाल डाला। ३२ में उनका बहुत बना। स्थानकवासी। मन्दिरमार्गी के जो ३२ आवश्यक हैं... परन्तु सब वाद-विवाद में झगड़े ऐसे हो गये, ऐसी खींचतान हो गयी।

यहाँ तो भगवान ने कहे हुए परमागम, उनके कहे प्रमाण जानना। श्रद्धान करने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है,... लो! इस प्रकार नव तत्त्व को सम्यग्दर्शन प्राप्ति का उपाय आगम अनुसार जानकर स्वरूप सन्मुख होकर प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की रीति है। समझ में आया ?



गाथा-१४९

आगे कहते हैं कि यह जीव 'ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी है' किन्तु अनादि पौद्गलिक कर्म के संयोग से इसके ज्ञान-दर्शन की पूर्णता नहीं होती है, इसलिए अल्प ज्ञान-दर्शन अनुभव में आता है और उमसें भी अज्ञान के निमित्त से इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप राग-द्वेष-मोह-भाव के द्वारा ज्ञान-दर्शन में कलुषतारूप सुख-दुःखादिक भाव अनुभव में आते हैं। यह जीव निजभावनारूप सम्यग्दर्शन को प्राप्त होता है तब ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य के घातक कर्मों का नाश करता है, ऐसा दिखाते हैं -

दंसणणाणावरणं मोहणियं अंतराइयं कम्मं।

णिट्ठवइ भवियजीवो सम्मं जिणभावणाजुत्तो॥१४९॥

दर्शनज्ञानावरणं मोहनीयं अन्तरायकं कर्म।

निष्ठापयति भव्यजीवाः सम्यक् जिनभावनायुक्तः॥१४९॥

हैं घाति दृग-ज्ञानावरण अरु मोहनिय अन्तराय ये।

सम्यक्तया जिन-भावना-युत भव्य जीव सु क्षय करे॥१४९॥

अर्थ - सम्यक् प्रकार जिनभावना से युक्त भव्यजीव है, वह ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय, इन चार घातिया कर्मों का निष्ठापन करता है अर्थात् सम्पूर्ण अभाव करता है।

भावार्थ – दर्शन का घातक दर्शनावरण कर्म है, ज्ञान का घातक ज्ञानावरण कर्म है, सुख का घातक मोहनीय कर्म है, वीर्य का घातक अन्तराय कर्म है। इनका नाश कौन करता है ? सम्यक् प्रकार जिनभावना भाकर अर्थात् जिन आज्ञा मानकर जीव-अजीव आदि तत्त्व का यथार्थ निश्चय कर श्रद्धावान हुआ हो वह जीव करता है। इसलिए जिन आज्ञा मान कर यथार्थ श्रद्धान करने का यह उपदेश है ॥१४८॥

गाथा-१४९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि यह जीव 'ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी है,...' है तो ज्ञान-दर्शनमय उपयोगस्वरूप इसका। किन्तु अनादि पौद्गलिक कर्म के संयोग से इसके ज्ञान-दर्शन की पूर्णता नहीं होती... देखो! वस्तु तो ऐसी है कि जहाँ ऐसी वस्तु ज्ञान-दर्शन की पूर्ण,... पूर्ण ऐसी पूर्ण वस्तु है, परन्तु उसकी वर्तमान पर्याय में, वर्तमान दशा में अनादि कर्म का संयोग है, इसलिए ज्ञान की पूर्णता वर्तमान पर्याय में नहीं है। वस्तु ज्ञान-दर्शन पूर्ण स्वभाववाली होने पर भी, आत्मा का पूर्ण ज्ञान-दर्शन स्वभाव है। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी ही उसका स्वभाव है। ऐसा होने पर भी अनादि पौद्गलिक कर्म के संयोग से... अब पुद्गल के कर्म के सम्बन्ध से उसकी पर्याय में अनादि का पर ऊपर लक्ष्य-भाव है।

ज्ञान-दर्शन की पूर्णता नहीं होती है... इसलिए उसकी ज्ञान-दर्शन में, अवस्था में-हालत में पूर्णता पर के सम्बन्ध के कारण से दिखती नहीं, है नहीं। वस्तु पूर्ण है। उसकी शक्ति और गुण पूर्ण है। परन्तु पर्याय में, हालत में... देखो न! एक वस्तु। आहाहा! देखो! यह तीन को सिद्ध करते हैं। द्रव्य से पूर्ण है, गुण से पूर्ण है। ज्ञान-दर्शनभाव से वस्तु पूर्ण है। परन्तु पर्याय में-अवस्था में-हालत में कर्म के सम्बन्ध के कारण से; सम्बन्ध किया है स्वयं ने न? अल्प ज्ञान-दर्शन अनुभव में आता है... लो! इसलिए उसकी दशा में ज्ञान की अपूर्णता है और वह अल्प ज्ञान-दर्शन का अनुभव दिखता है। पूर्ण त्रिकाल ज्ञान-दर्शन है, वह दिखता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

पर्याय में भूल है, द्रव्य-गुण अभूल और पूर्ण है। आहाहा! देखो न! ऐसा न हो (तो) भी वस्तु दूसरी प्रकार से नहीं हो सकती। ऐसी सिद्ध करते हैं। वस्तु स्वयं है, वह

तो पूर्ण अखण्ड एकरूप है। उसकी ज्ञान-दर्शन की शक्ति भी पूर्ण एकरूप अखण्ड पूर्ण है। पूर्ण कहो या सर्वज्ञ-सर्वदर्शी कहो। ऐसा उसका स्वरूप और शक्ति होने पर भी वर्तमान दशा में ज्ञान की अपूर्णता दिखती है, उसका कारण कि कर्म के सम्बन्ध के लक्ष्य से वह अपूर्णतारूप भासित होता है और वह अल्प ज्ञान-दर्शन अनुभव में भी आता है। आहाहा! ऐसा। थोड़ा ज्ञान है, ऐसा जानने में भी आता है। आहाहा! समझ में आया ?

और उसमें अज्ञान के निमित्त से... उसमें और विशेष अर्थ करते हैं। अज्ञान तो है, अपूर्ण ज्ञान तो है परन्तु अब विशेष बात राग-द्वेष-मोह उत्पन्न करता है, उसकी बात है। अज्ञान के निमित्त से... वस्तु के स्वरूप के भान बिना इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप राग-द्वेष-मोहभाव के द्वारा ज्ञान-दर्शन में कलुषतारूप सुख-दुःखादिक भाव अनुभव में आते हैं। आहाहा! क्या कहा? एक तो यह कहा कि यह आत्मा वस्तु और उसका जानने-देखने का स्वभाव, वह पूर्ण है। परन्तु वस्तु है, इसलिए उसका स्वभाव भी पूर्ण ही है। तब वर्तमान दशा में वह पूर्ण क्यों नहीं दिखता? कि वर्तमान दशा में कर्म दूसरी चीज़ विलक्षण-अपने लक्षण से भिन्न जड़ चीज़ है, उसके सम्बन्ध में गयी पर्याय, (उसके कारण से) अपूर्ण ज्ञान दिखता है और अनुभव में भी अपूर्णपना आता है। अभी पर्याय में पूर्ण है, ऐसा है नहीं। ओहोहो! और उसमें भी अज्ञान से, निमित्त से इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप राग-द्वेष-मोहभाव के द्वारा... लो! परचीज़ को इष्ट-अनिष्ट मानकर,... क्योंकि अपूर्ण ज्ञान है, वह पूर्ण त्रिकाल नहीं। इसलिए जो कुछ चीज़ उसके देखने में आवे, उसमें ठीक लगे, इष्टपना (करे), अठीक लगे उसमें अनिष्टपना (करता है)। ऐसी बुद्धिरूप से राग-द्वेष-मोहभाव के द्वारा... देखो! भाषा। कर्म के कारण से यह होता है, ऐसा यहाँ नहीं लिखा। मात्र कर्म का सम्बन्ध कहा। इससे सम्बन्ध के कारण ज्ञान अपूर्ण दिखता है और उस अपूर्ण ज्ञान में भी परवस्तु को इष्ट-अनिष्ट मानकर राग-द्वेष करता है और मोहभाव-मिथ्याभाव उत्पन्न करता है। आहाहा! जो चीज़ इसकी नहीं, उसे यह मानता है।

राग-द्वेष-मोहभाव के द्वारा ज्ञान-दर्शन में... यह जो ज्ञान-दर्शनमय है, उसमें अपूर्णता कही पहली, अब उस ज्ञान-दर्शन में इस कारण से कलुषता उत्पन्न हुई है।

समझ में आया ? बहुत स्पष्ट किया है। ज्ञान-दर्शन में जानने-देखने की वर्तमान दशा में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना की और मिथ्यात्वभाव के कारण... इष्ट-अनिष्टपना कोई चीज़ है ही नहीं। मिथ्याश्रद्धा द्वारा इष्ट-अनिष्ट मानकर, राग-द्वेष की और मिथ्यात्व की कलुषतारूप सुख-दुःखादिक भाव... देखो! सुख-दुःख अर्थात् यह सांसारिक, हों! कल्पना में सुख-दुःख की कल्पना की कलुषता में भाव अनुभव में आते हैं। समझ में आया ? लो! कैसी साबित हुई!

द्रव्य-गुण तो परिपूर्ण ज्ञान दर्शन से है। यहाँ से शुरु किया है। परन्तु पर्याय में पूर्णता क्यों नहीं ? कर्म के सम्बन्ध के लक्ष्य से पूर्णता नहीं और वह अपूर्ण है, वह तो वेदन में भी दिखता है। तब अब दूसरी बात, वह तो अपूर्णता इतना। अब सुख-दुःख होते हैं वे ? कल्पना में सुख-दुःख मानता है, उसका क्या ? इष्ट-अनिष्ट देखकर राग-द्वेष करता है और उसमें मानता है कि यह मुझे ठीक है, अठीक है। मिथ्यात्वभाव। मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष से इसके ज्ञान-दर्शन की पर्याय में, वर्तमान दशा में अपूर्णता के साथ कलुषता भी दिखती है। कहो, समझ में आया ? यह तो समझ में आये ऐसा है। बहुत सादी भाषा है। ऐई! कानजीभाई! बुद्धिवाले को पकड़ा।

वस्तु है या नहीं ? आत्मा है या नहीं ? है। है तो वह तो नित्य है या नहीं ? नित्य। दो बात। नित्य है तो उसका गुण ज्ञान-दर्शन वह भी नित्य है या नहीं ? नित्य है तो वह पूर्ण होगा या अपूर्ण ? पूर्ण। बस। अब अवस्था में अन्तर है, उसका क्या कारण ? यह बात सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? ऐसा तुम सिद्ध करते हो ? (कि) आत्मा है, वह त्रिकाल है, त्रिकाल है तो उसका ज्ञान दर्शनभाव भी त्रिकाल है। त्रिकाल है तो वह जैसी पूरी चीज़ है, वैसा गुण भी पूरा पूर्ण है। तो यह पर्याय में दिखता नहीं, इसका क्या कारण ? कर्म के सम्बन्ध के लक्ष्य से वर्तमान दशा में ज्ञान और दर्शन की हीन दशा दिखाई देती है, ऐसा अनुभव भी होता है। वह तो ज्ञान-दर्शन की हीन अवस्था की बात की। समझ में आया ? परन्तु अब यह राग-द्वेष और सुख-दुःख होते हैं, उसका क्या ? कि वह भी इष्ट-अनिष्टबुद्धि से ज्ञान में पर का इष्ट-अनिष्टपना मानकर राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव उत्पन्न करता है, इसलिए इसकी दशा में कलुषतारूप, ऐसी बात है, यह राग-द्वेष और मिथ्यात्वरूपी कलुषतारूप सुख-दुःखादिक भाव अनुभव में आते हैं।

आहाहा! समझ में आया? यह तो निवृत्त लोगों का काम है। ऐसा कहते हैं। ऐई! पोपटभाई! नहीं, यह तो सब काम करनेवाले इतने सब लोहे लाना और यह लाना, कहते हैं। निवृत्त है और निवृत्त होना हो, उसका यह काम है। हैं! किस प्रकार से सिद्ध करते हैं! देखो!

पहले सात तत्त्व सिद्ध किये। अब कहते हैं कि ज्ञान-दर्शन की पर्याय अपूर्ण कैसे? और उसमें सुख-दुःख की कल्पना कैसे? मोह इकट्ठा लिया। समझ में आया? यह पूर्ण हुआ, इसलिए फिर ज्ञान-दर्शन भी अपूर्ण, वीर्य भी अपूर्ण। शक्ति अपूर्ण दिखती है। अब अपूर्ण के साथ यह कलुषता क्या? जानने-देखने का ज्ञान परिपूर्ण होने पर भी निमित्त के संग में रुक गयी दशा अल्प ज्ञान, अल्प दर्शन और अल्प वीर्यरूप दिखती है। ऐसा ही उसका वेदन भी अल्प ज्ञान है, वह भी दिखता है। अब उसमें कलुषता है, वह क्या? कि ज्ञान-दर्शन जो है, उसकी जो वर्तमान बुद्धि है, वह परवस्तु को इष्ट-अनिष्ट मानकर राग-द्वेष करती है, और मिथ्यात्वभाव उत्पन्न करती है कि ये परिणाम मेरे और मुझे ठीक है, ऐसी कलुषतारूप इसकी दशा में सुख-दुःख का भाव वेदने में, जानने में आता है। कहो, समझ में आया? यह तो सादी भाषा में कितना रचा है! ऊपर भी कैसा सरस रचा था। यहाँ भी पण्डित जयचन्द्रजी ने रचा, लो!

मुमुक्षु : पूरा तत्त्व आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आ गया। इतनी बात। ओहोहो!

दिगम्बर सन्तों की प्रणाली कोई ऐसी है। पूरी चीज़ आयी है। उसमें यह दशा क्या? यह दशा इस कारण से तूने खड़ी की है। एक तो ज्ञान-दर्शन परिपूर्ण वस्तु होने पर भी कर्म के सम्बन्ध में ज्ञान-दर्शन और वीर्य की अवस्था यह ज्ञान-दर्शन हीन है, उसका वीर्य भी शक्ति-वीर्यशक्ति भी हीन है, यह अनुभव में देखने में आती है। परन्तु अब दूसरा? यह सुख-दुःख का मानना होता है, वह क्या? कि ज्ञान-दर्शन की बुद्धि जो पर्याय है, वह पर को देखकर ठीक-अठीक मानकर मिथ्यात्वभाव द्वारा राग-द्वेष उत्पन्न करता है। आहाहा! समझ में आया?

यह कलुषतारूप सुख-दुःख की कल्पना। पैसा, शरीर सुन्दर देखकर राग (हो)

और फिर ठीक (पना लगे), ऐसी मिथ्यात्व की कलषुतारूप सुख-दुःख की कल्पना तुझे भासित होती है। आनन्दस्वरूप है जो ज्ञान-दर्शन-वीर्य से परिपूर्ण है और आनन्द भी (पूर्ण है)। क्योंकि जो कोई परिपूर्ण वस्तु है, उसमें दुःख नहीं हो सकता। वह सुखरूप ही होता है, आनन्दरूप ही होता है, तथापि वह आनन्द क्यों नहीं दिखता? कहते हैं। जैसे ज्ञान-दर्शन परिपूर्ण है तो वह पर्याय में परिपूर्ण क्यों नहीं दिखता? तब कहते हैं, इस सम्बन्ध के कारण जितना कुसंग, उसके कारण से ज्ञान-दर्शन और वीर्य हीन दिखता है। तब कहते हैं, यह आनन्दमूर्ति ज्ञान-दर्शन जो वस्तु है, वह तो अकेली स्वाभाविक हो, वह तो सुखरूप ही होती है। स्वभाव में दुःख नहीं हो सकता। तो यह क्या है, यह सब खड़ा हुआ?

इस बुद्धि से इष्ट-अनिष्ट मानकर, जो इष्ट-अनिष्ट वस्तु नहीं है। क्योंकि ज्ञान है, वह जाननेवाला है और सामने सब चीज़ ज्ञेय है। उस ज्ञेय के भाग नहीं और ज्ञान में भी भाग नहीं। परन्तु ज्ञान में भाग किये ज्ञेय के भाग से दो भाग कि यह वस्तु ठीक, शरीर सुन्दर ठीक, पैसा ठीक, धूल ठीक, प्रतिकूलता ठीक नहीं, ऐसी बुद्धि से दो भाग किये। इसलिए सामने चीज़ के दो भाग कर दिये। सब अकेली ज्ञेय चीज़ है, उसमें दो भाग कर दिये—एक यह ठीक और यह अठीक। यह मिथ्यात्वभाव से ये दो भाग किये हैं। इसलिए इसकी पर्याय में सुख-दुःख की कल्पनारूप कलुषता भासित होती है और यह अनुभव में भी वह सुख-दुःख आते हैं। आहा! इसे आनन्द का अनुभव नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द होने पर भी उसका अनुभव नहीं। क्यों? इस कारण से। समझ में आया?

ज्ञान समान न सुख... कुछ आता है न? भाई! सुख को कारण। ज्ञान समान अन्य नहीं सुख का कारण। छहठाला में आता है। ज्ञान के समान सुख का कारण दूसरी कोई चीज़ नहीं है। तो फिर भासित क्यों नहीं होता? कहते हैं कि ज्ञान ही उल्टा विपरीत पड़ा है। वह बुद्धि इसकी इष्ट-अनिष्ट में काम करती है। इष्ट-अनिष्ट वस्तु नहीं, इष्ट-अनिष्ट ज्ञान में खण्ड होना, वह इसका स्वभाव नहीं। परन्तु खण्ड करके, भावेन्द्रिय का खण्ड करके और वस्तु ज्ञेय एकरूप होने पर भी उसके भी दो खण्ड किये। दो भाग कर दिये। आहाहा! यह इज्जत, कीर्ति, शरीर सुन्दरता, खाने-पीने का योग और ऐसी अनुकूलता,

वह ठीक। भूखे-प्यासे, सर्दी, गर्मी, मार, त्राड़, बिच्छू-सर्प का डंसना, वह अठीक। ठीक-अठीक इसकी कल्पना की है।

मुमुक्षु : वह कल्पना...

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान से। कहा न, मिथ्यात्वभाव से। एक के दो भाग करके खण्ड कर दिया। और वहाँ... किया। आहाहा! समझ में आया ?

यह कलुषतारूप सुख-दुःखादिक भाव अनुभव में आते हैं। यह जीव निजभावनारूप सम्यग्दर्शन को प्राप्त होता है... अब वह अपूर्णता ज्ञान-दर्शन और वीर्य की और कलुषता सुख-दुःख की कल्पना की, वह कब टले ? कैसे टले ? निजभावनारूप सम्यग्दर्शन को प्राप्त होता है... देखो ! सम्यग्दर्शन चीज ऐसी है कि निज की भावना करे, वह सम्यग्दर्शन। आहाहा ! जिसमें स्वरूप शुद्ध पूर्ण की भावना करे, उसमें एकाग्र हो, वह सम्यग्दर्शन। समझ में आया ? उस अपूर्ण और राग-द्वेष में जो एकाग्र है, वह मिथ्यात्वभाव है। क्या कहा ? उस अपूर्ण पर्याय का ज्ञान, अपूर्ण दर्शन और अपूर्ण वीर्य और राग-द्वेष में एकाग्रता वह तो पर्यायबुद्धि, मिथ्यात्वबुद्धि है।

अब निज भावनारूप, स्वयं जो कहा पहला ज्ञान दर्शन से पूर्ण है वह तो। समझ में आया ? ज्ञान-दर्शन से पूर्ण है। ऐसी निज वस्तु की भावना, उसकी जो अन्तर की एकाग्रता, उसरूप सम्यग्दर्शन को प्राप्त होता है... आहाहा ! गजब ! कहो, समझ में आया ? सम्यग्दर्शन की व्याख्या साथ ही कर डाली कि निज भावनारूप सम्यग्दर्शन। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या ? ऐसा वापस। और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नव तत्त्व की श्रद्धा वह है ? नहीं, नहीं; वह नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? निजभावनारूप... तो निजभाव की भावना। त्रिकाली ज्ञायकभाव की भावना अर्थात् एकाग्रता। समझ में आया ? उसरूप सम्यग्दर्शन को प्राप्त होता है, तब ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य के घातक कर्मों का नाश करता है,... देखा ! वह ज्ञान-दर्शन और मोह की बात की थी, वापस यह वीर्य डाल दिया। ऐसा जब स्वरूप है, परन्तु उस स्वरूप का निज भावना की एकाग्रतारूपी सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर क्रम से इन सबका नाश करके, अपूर्णता का नाश करके पूर्णता को प्राप्त होता है। कहो, समझ में आया ? सुख-वीर्य के घातक कर्मों का नाश करता है,...

दंसणणाणावरणं मोहणियं अंतराङ्गं कम्मं ।

णिट्ठवड् भवियजीवो सम्मं जिणभावणाजुत्तो ॥१४९॥

अर्थ :- सम्यक् प्रकार जिनभावना से युक्त भव्यजीव है... जिनभावना से । है न ? यह निजभावना, वही जिनभावना है । वस्तु जो स्वभाव परिपूर्ण अखण्ड विकल्परहित चीज अथवा एक समय की पर्यायरहित चीज, ऐसी चीज की भावना अर्थात् एकाग्रता, वही निजभावना और वही जिनभावना । समझ में आया ? जिन, निज, इतना अन्तर । 'जिनपद निजपद एकता भेदभाव नहीं कोई ।' आहाहा ! 'लक्ष थवाने तेहनो कह्या शास्त्र सुखदायी ।' **सम्यक् प्रकार जिनभावना से युक्त भव्यजीव है...** अर्थात् कि आत्मा वीतरागस्वरूप और पूर्ण ज्ञान-दर्शन और आनन्दस्वरूप, इसकी जहाँ एकाग्रता की भावना सम्यग्दर्शन हुआ, वह जिनभावना है । क्योंकि वह वीतरागी पर्याय है । वह वीतरागभाव में एकाग्रता है । वह राग और अल्पज्ञ में एकाग्रता थी, वह वीतरागभाव में एकाग्रता (हुई) ।

वह ज्ञानावरण, दर्शनावरण,... लो ! यह टलने का उपाय । इतने अपवास करना, इतने व्रत पालना, वह टालने का उपाय नहीं है । समझ में आया ? **ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय, इन चार घातियाकर्मों का निष्ठापन करता है...** अर्थात् क्षय करे । **सम्पूर्ण अभाव करता है** । लो ! इस सम्यग्दर्शन की भावना द्वारा निजभावना द्वारा, निजभावना कहो, सम्यग्दर्शनभावना कहो, जिनभावना कहो । यह स्वरूप जो शुद्ध परिपूर्ण, उसकी एकाग्रता द्वारा धर्मात्मा चार कर्म का नाश करके परिपूर्णता को प्राप्त होता है । भावार्थ लेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-१५५, गाथा-१४९ से १५१, बुधवार, मगसर कृष्ण १०, दिनांक २३-१२-१९७०

अष्टपाहुड़, १४९ गाथा, इसका भावार्थ। क्या कहते हैं यह ?

अर्थ :- सम्यक् प्रकार जिनभावना से युक्त भव्यजीव है... अर्थ लिया। जो कोई सम्यक् प्रकार से जिनभावना सहित भव्यजीव है। अर्थात्? आत्मा का जो वीतरागी त्रिकाली स्वभाव है, उसकी एकाग्रतारूपी जो भावना, उस सहित जीव है, वह चार घातिकर्म का नाश करता है। इन चार घातिया कर्मों का निष्ठापन करता है अर्थात् सम्पूर्ण अभाव करता है। अपना स्वभाव त्रिकाली आनन्द-ज्ञान और वीतरागी स्वरूप आत्मा है। उसकी भावना अर्थात् उसमें एकाग्रता, ऐसा जो सम्यग्दर्शन, उसके द्वारा चार कर्म का नाश करता है।

भावार्थ :- दर्शन का घातक दर्शनावरण कर्म है,... चार की व्याख्या। दर्शन जो उपयोग है, उसका घात में निमित्तपना दर्शनावरणी कर्म है। अपने आ गया, १४८ में। है तो ज्ञान-दर्शन स्वभाव सम्पूर्ण स्वरूप इसका, परन्तु कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध में इसकी अपूर्ण ज्ञान-दर्शन और वीर्य की दशा हो गयी है। यह उपोद्घात में से वह की वह बात है। है तो दर्शन और ज्ञान उपयोगस्वरूप सम्पूर्ण, तथापि अनादि कर्म के सम्बन्ध से हीन दशा है, उसे स्वभाव की एकाग्रता द्वारा उसका नाश कर सकता है। समझ में आया ?

ज्ञान का घातक ज्ञानावरण कर्म है,... निमित्त। सुख का घातक मोहनीय कर्म है,... देखो! सम्यग्दर्शन और चारित्र, उसका घातक मोहनीय है। सुख में उसे समाहित कर दिया है। सम्यग्दर्शन में भी सुख है और चारित्र में भी सुख है। सुख का घातक निमित्त मोहनीय कर्म है। वीर्य का घातक अन्तराय कर्म है। चार कर्म निमित्त कहे। घातक अर्थात् स्वयं हीन दशा करता है, उसमें इन्हें निमित्त कहा जाता है।

इनका नाश कौन करता है? इनके नाश के लिये सम्यक् प्रकार जिनभावना भाकर अर्थात् जिन आज्ञा मानकर... जिन आज्ञा मानी इसलिए जीव-अजीव आदि तत्त्व का यथार्थ निश्चय कर श्रद्धावान हुआ हो, वह जीव करता है। इन आठ कर्मों का नाश करता है। समझ में आया ? बहुत संक्षिप्त बात की।

मुमुक्षु : आप समझाओ ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु है न वस्तु ? उसके अन्दर स्वभाव है । ज्ञायकभाव कहो, वीतरागभाव कहो, दर्शन-ज्ञान के उपयोगरूप भाव कहो, उसकी श्रद्धा अर्थात् उसमें एकाग्रता । यह आठ कर्म अथवा चार कर्म के नाश का उपाय है । कितने अपवास करे तो हो, यह इसमें कुछ नहीं आया । वस्तु के स्वभाव में एकाग्र हो तो कर्म टले, ऐसा कहा । बहुत संक्षिप्त में । दूसरे शास्त्र में कहा हो, वे सब निमित्त के कथन हैं । तपसा निर्जरा और उपवास ।

मुमुक्षु : दोनों शास्त्र भगवान के हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों शास्त्र भगवान के, परन्तु क्या अपेक्षा और किस नय का कथन है, यह जानना चाहिए न । यह यथार्थ शक्ति का कथन ।

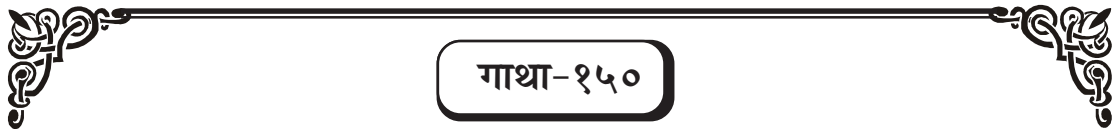
मुमुक्षु : वस्तु के स्वभाव में एकाग्र होना ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह । चैतन्य भगवान वस्तु है न ? पदार्थ है तो पदार्थ का स्वभाव है या नहीं ? स्वभाव बिना स्वभाववान होगा ? जैसे परमाणु स्वभाववान है तो रंग, गन्ध, रस, स्पर्श उसका स्वभाव है । इसी प्रकार आत्मा पदार्थ है तो उसका त्रिकाली स्वभाव ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीतराग ऐसा त्रिकाली स्वभाव है । उस स्वभाव में एकाग्रता वह सम्यग्दर्शन और वह चार कर्म के नाश का उपाय है । समझ में आया ?

जीव-अजीव आदि तत्त्व का यथार्थ निश्चय कर... अर्थात् इसका अर्थ कि जीव का ज्ञायक... है, ऐसा निश्चय हुआ, तो उसमें अजीव नहीं, ऐसा भी निश्चय हो गया । वह निश्चय कर श्रद्धावान हुआ हो... अन्तर वस्तु का अन्तर विश्वास । पूर्ण स्वरूप आत्मा का पदार्थ है तो स्वभाव उसका पूर्ण है, ऐसा भाव में भासन होकर उसका निश्चय श्रद्धावान हो, वह कर्म का नाश करे । कहो, समझ में आया ? **इसलिए जिन आज्ञा मानकर...** जिन आज्ञा का अर्थ ही यह—वीतराग की आज्ञा वीतरागभाव में—वीतरागभाव त्रिकाली में स्थिर होना, यह जिन आज्ञा । आत्मा त्रिकाली वीतरागस्वरूप है अर्थात् कि निर्दोष निराकुल आनन्दस्वरूप है । उसमें श्रद्धा करना और स्थिर होना, वह जिन आज्ञा है । समझ में आया ? ऐसे तो व्यवहार से कही न जिन आज्ञा प्रमाण यह व्रत और तप

को। वह तो व्यवहार कहा। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। वह कहीं बन्ध के नाश का उपाय नहीं है। स्व चैतन्य का आश्रय जितना ले, उतना कर्मबन्धन नाश होता है। समझ में आया? चैतन्य सच्चिदानन्द आत्मा, उसके पक्ष में जितना जाए उतना पक्ष कर्म का छूटता जाए। आहाहा! समझ में आया?

यथार्थ श्रद्धान करो, यह उपदेश है। वास्तविक आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, वैसा अनन्त शक्तिस्वरूप। दोपहर में आती है वह शक्ति। उस शक्तिस्वरूप पूरा तत्त्व, उसकी श्रद्धा अन्तर्मुख होकर, राग का लक्ष्य छोड़कर, मन का संग छोड़कर, असंग तत्त्व का संग करके... आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा असंगस्वरूप चैतन्य है, उसका संग करके एकाग्र होकर। संग करके कहो। उसका संग जितना करे, उतना कर्म खिरे। कहो, समझ में आया? यह इसकी संक्षिप्त व्याख्या। ओहोहो!



गाथा-१५०

आगे कहते हैं कि इन घातिया कर्मों का नाश होने पर 'अनन्तचतुष्टय' प्रकट होते हैं -

बलसौख्यणाणदंसण चत्तारि वि पयडा गुणा होंति ।

णट्टे घाइचउक्के लोयालयं पयासेदि ॥१५०॥

बलसौख्यज्ञानदर्शनानि चत्वारोऽपि प्रकटागुणाभवंति ।

नष्टे घातिचतुष्के लोकालोकं प्रकाशयति ॥१५०॥

इन चार घाति नाश में बल सौख्य दर्शन ज्ञान ये।

चारों प्रगट गुण हों प्रकाशक सभी लोकालोक ये॥१५०॥

अर्थ - पूर्वोक्त चार घातिया कर्मों का नाश होने पर अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख और बल (वीर्य) ये चार गुण प्रगट होते हैं। जब जीव के ये गुण की पूर्ण निर्मल दशा प्रकट होती है, तब लोकालोक को प्रकाशित करता है।

भावार्थ - घातिया कर्मों का नाश होने पर अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य ये 'अनन्त चतुष्टय' प्रकट होते हैं। अनन्त दर्शनज्ञान से छह द्रव्यों से भरे हुए इस लोक में अनन्तानन्त जीवों को, इनसे भी अनन्तानन्तगुणे पुद्गलों को तथा धर्म-अधर्म-आकाश ये तीन द्रव्य और असंख्यात कालाणु इन सब द्रव्यों की अतीत अनागत और वर्तमानकालसम्बन्धी अनन्तपर्यायों को भिन्न-भिन्न एकसमय में स्पष्ट देखता है और जानता है। अनन्तसुख से अत्यन्त तृप्तिरूप है और अनन्त शक्ति द्वारा अब किसी भी निमित्त से अवस्था पलटती (बदलती) नहीं है। ऐसे अनन्त चतुष्टयरूप जीव का निजस्वभाव प्रकट होता है, इसलिए जीव के स्वरूप का ऐसा परमार्थ से श्रद्धान करना वह ही सम्यग्दर्शन है ॥१५०॥

गाथा-१५० पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि इन घातिया कर्मों का नाश होने पर अनन्त चतुष्टय प्रकट होते हैं :- क्या कहते हैं ? शक्तिरूप से तो है, ऐसा कहते हैं। आत्मा में स्वभाव पहला कहा न ? स्वभाव में एकाग्रता। स्वभाव तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख (स्वरूप है)। ऐसी आत्मा में गुणरूप शक्ति का स्वरूप शक्तिरूप तो है। उसका नाश करे तब प्रगट होता है। किसका ? कर्म का। चार घाति का नाश होने पर अर्थात् कि यह अनन्त चतुष्टय स्वभाव का आश्रय लेने पर अपूर्णता का नाश हो, उसे आवरण का भी नाश होता है। उस शक्ति में जो अनन्त ज्ञान भरा है, उसमें एकाग्र होने पर व्यक्त अर्थात् प्रगट होता है। है, वह प्रगट होता है। आहाहा! भरोसे तो पहले बात ली। ऐसा जिसे भरोसा अन्दर में आया हो, विश्वास अर्थात् प्रतीति। भान करके प्रतीति (हुई हो), वह जीव घातिकर्म के नाश से अनन्त चतुष्टय प्रगट करता है। शक्तिरूप है, उसे प्रगटरूप करता है।

बलसोक्खणाणदंसण चत्तारि वि पयडा गुणा होंति ।

णट्टे घाइचउक्के लोयालोयं पयासेदि ॥१५०॥

देखो! शब्द यह है। 'पायडा' प्रगट।

अर्थ :- पूर्वोक्त चार घातिया कर्मों का... पूर्व में कहा न ? ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अन्तराय और मोह । नाश होने पर अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख और बल (वीर्य) ये चार गुण प्रगट होते हैं । लो ! 'पायडा' प्रगट होते हैं । शक्तिरूप से, सत्त्वरूप से, ध्रुवरूप से तो है । समझ में आया ? यह जो चार चतुष्टय कहे । अनन्त ज्ञान, अनन्त बल, अनन्त सुख और अनन्त दर्शन, वे वस्तु के स्वरूप में हैं । उसका स्वरूप ही अनन्त चतुष्टय स्वरूप सम्पन्न ही आत्मा है । परन्तु वह ध्रुवरूप से, शक्तिरूप से है । उसमें एकाग्र होने पर वह 'पायडा' अर्थात् प्रगट होते हैं । है, वैसी दशा प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं । समझ में आया ?

द्रव्य अर्थात् आत्मा, उसमें यह अनन्त चतुष्टयशक्ति गुणरूप तो है । उसमें एकाग्र होने पर पर्याय में प्रगट होती है, इसका नाम मोक्ष और इसका नाम चार कर्म का नाश किया कहा जाता है । आहाहा ! समझ में आया ? बात तो बहुत सादी । समझ में आया ? और संक्षिप्त । महाप्रभु, स्वयं अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द का स्वामी । उसमें पूर्ण आनन्द, ज्ञान, दर्शन और वीर्य—बल पूर्ण पड़ा है । उसकी एकाग्रता होने पर, उसकी सन्मुख में लीनता होने पर वह दर्शन और चारित्र्य द्वारा चार कर्म का नाश होता है । कहो, समझ में आया इसमें ? ये चार गुण प्रगट होते हैं । ऐसा कहते हैं । प्रगट होते हैं न ? पर्याय में आते हैं । वस्तु में तो थे, शक्ति में तो थे । होवे उस प्राप्त की प्राप्ति होती है । न हो, उसमें से कुछ आवे ?

जब जीव के ये गुण की पूर्ण निर्मल दशा प्रगट होती है, तब लोकालोक को प्रकाशित करता है । इतनी बात ... अधिक । इस प्रकार जब होता है तब... १५० । अन्तर है इसमें कुछ ? तुम्हारी गाथा में बहुत संक्षिप्त । तब वह लोकालोक जाने । यह जानना लोकालोक का (होता है), उसकी महिमा नहीं । उस लोकालोक सम्बन्धी का अपना ज्ञान है, वह प्रगट होकर जाने, वह उसकी महिमा है । समझ में आया ? जो सर्वज्ञपद स्वरूप था, सर्वज्ञ स्थान में ही पद आत्मा का था, उसे पर्याय में एकाकार होकर प्रगट किया । तीन काल-तीन लोक जाने । उसके साथ अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य और अनन्त दर्शन भी साथ में होते हैं ।

भावार्थ :- घातिया कर्मों का नाश होने पर अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य ये अनन्त चतुष्टय प्रकट होता है । कोई कहे परन्तु घातिकर्म का

नाश होता है, तब ऐसा होता है। परन्तु यह तो पहली बात कह गये कि अपने स्वरूप का आश्रय ले तो कर्म का नाश करे, यह तो पहले कह गये, १४९ में। ऐई! कह गये या नहीं? देखो न! 'सम्मं जिणभावणाजुत्तो' यह तो फिर संक्षिप्त भाषा की। चार कर्म का नाश हो तो अनन्त चतुष्टय प्रगटे। परन्तु यह चार कर्म का नाश हो कैसे? कि अपना अन्तर स्वभाव जो अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और अनन्त ऐसा ध्रुवस्तम्भ स्वयं है, ध्रुवस्तम्भ। उस स्तम्भ के साथ मन को जोड़े, ज्ञान की पर्याय को जोड़े, उस स्तम्भ से पर्याय को बाँधे। आहाहा! ध्रुव के स्तम्भ से वर्तमान पर्याय को बाँधे, तब चार कर्म का नाश होता है। कहो, समझ में आया? ध्रुव धणी माथे कियो। ध्रुव लिया अन्दर में। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन का धनी स्वभाव रंक होकर फिरता है। मुझे राग चाहिए, मुझे इज्जत चाहिए, मुझे कीर्ति चाहिए, मुझे सुविधा चाहिए, मुझे यह चाहिए, मुझे वह चाहिए। मर गया भिखारी होकर। अनन्त सम्पदा का नाथ, जिसकी सम्पदा कम न हो, चाहे जितनी निकालो तो, ऐसा स्वयं है। यह माँगा करता है, मुझे कोई बड़ा कहो, मुझे अच्छा कहो। यह दया, दान, व्रत के विकल्प से मेरा कल्याण होगा, ऐसा कहो, विकार से आत्मा को लाभ होगा, ऐसा कहो। अरे! भिखारी हुआ। क्या हुआ? समझ में आया? तुझमें कहाँ नहीं पड़ा अन्दर? कहा न, प्रगट पड़ा है अन्दर। पड़ा है, वह प्रगट करना है। है, वह प्रगट करना है। कहो, सेठ! यह तो सादी भाषा है। वस्तु है अन्दर। जो पर्याय प्रगट करने की है, वह अन्दर है। वह कहीं बाहर से नहीं आती। आहाहा! अन्तर्दृष्टि से जो अनन्त चतुष्टयपना ध्येय में है, उसमें एकाग्र होने पर चार कर्म का नाश होता है। चार कर्म का नाश होने पर चार चतुष्टय प्रगट होते हैं। ऐसी बात की। यह तो फिर ऐसा करे, ऐसा बोले परन्तु वस्तु तो ऐसी है या नहीं?

अनन्त दर्शन-ज्ञान से... दोनों इकट्ठे लेते हैं अब। उसमें जो अनन्त दर्शन और ज्ञान। अनन्त सुख और वीर्य बाद में बात। परन्तु अनन्त दर्शन और ज्ञान से तो... क्या जाने? छह द्रव्यों से भरे हुए इस लोक में... छह द्रव्य से भरा हुआ यह लोक है। छह द्रव्य है। सामने जीव अनन्तानन्त। छह द्रव्य में भी एक जीव ही अनन्तानन्त द्रव्य और इनसे भी अनन्तानन्तगुणे पुद्गलों को... षट् द्रव्य है। छह द्रव्य जगत के अन्दर (रही हुई) चीज़ है। उसमें जीव द्रव्य ही अनन्त हैं, उससे अनन्तगुणे पुद्गल हैं। अनन्तानन्तगुणे

पुद्गलों को तथा धर्म-अधर्म-आकाश ये तीन द्रव्य (एक-एक) और असंख्यात कालाणु... हैं। और कालाणु लोकालोक में ... हो गया है। कालाणु। असंख्यात तो कालाणु हैं। या आगे-पीछे हो गया है। कालाणु। आगे-पीछे हो गया है। कहो, समझ में आया ? लोकाणु हो गया है। लोकाणु। लोक के अणु काल, ऐसा। परन्तु ऐसा नहीं, मूल कालाणु है। कालाणु है। लोक का अणु हो गया। परन्तु लोक का अणु तो परमाणु है। यहाँ तो कालाणु लेना है।

असंख्यात कालाणु इन सब द्रव्यों की... ऐसे जितने द्रव्य कहे... आहाहा! षट् द्रव्य, उसमें जीवद्रव्य अनन्त, पुद्गल उससे अनन्तगुणे। दो हो गये। काल, धर्म और अधर्म एक और कालाणु असंख्य। इतने द्रव्य कहे। इन सब द्रव्यों की अतीत अनागत और वर्तमान काल सम्बन्धी अनन्त पर्यायों को भिन्न-भिन्न एक समय में स्पष्ट देखता है... आहाहा! सब द्रव्यों की... सर्व द्रव्यों के भूतकाल की पर्याय, भविष्य की पर्याय, वर्तमान पर्याय सम्बन्धी, अनन्त पर्याय-दशा-अवस्था भगवान के ज्ञान और दर्शन में सर्व द्रव्य को भिन्न-भिन्न एक समय में स्पष्ट देखता है और जानता है। देखे का अर्थ सामान्य है। परन्तु यह तो भिन्न-भिन्न का अर्थ समुच्चय लेना है। सब जाने और देखे, ऐसा कहना है। ओहोहो! अलग-अलग पर्याय है, ऐसा कहना है। भूत की यह पर्याय, वर्तमान की यह और भविष्य की यह। उसे भगवान का ज्ञान सब जानता है। कहो, अब इसमें बड़ा विवाद है। भगवान सब ऐसा नहीं जानते, सामान्य जानते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि जिस समय में जो पर्याय जिस द्रव्य की जहाँ होनेवाली है, उस रीति से केवली जानते हैं। आहाहा! समझ में आया ? भूत, भविष्य और वर्तमान सब जानते हैं। और कोई कहे कि भविष्य जाने तो मेरी अन्तिम पर्याय कैसी, कह दे। अन्तिम है नहीं और क्या भविष्य कहे तेरा ? मेरी पहली पर्याय कह दे, यदि भूतकाल जाना हो, सब जाना हो तो। आहाहा! भारी तत्त्व उल्टा। श्रद्धा में बड़ा (अन्तर)। मिथ्यादर्शन की तीव्र... जिसे अभी ज्ञान तीन काल एक समय की जो-जो पर्याय जहाँ-जहाँ... देखो न! सब द्रव्यों की अतीत... पर्याय। भूतकाल की अवस्थायें। जीव की, पुद्गल की, आकाश, धर्म, अधर्म और काल की। जीव की जाने या नहीं इसमें ? जीव की अतीत काल की पर्याय।

मुमुक्षु : जीव एक को न जाने तो निपट गया ।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो एक को अपने को नहीं जाना पूरा । भूत की, भविष्य की यह पर्याय होकर पूरा द्रव्य एक है । पूरा द्रव्य ही इस प्रमाण न जाने तो उसने द्रव्य को ही नहीं जाना । समझ में आया ? अपनी भी आदिरहित पर्याय और अन्तरहित पर्याय भविष्य में । भूत को, भविष्य को और वर्तमान को एक समय में ज्ञान जाने और देखे, ऐसा उसका स्वभाव शक्तिरूप था, वह एकाग्रता के ध्यान द्वारा प्रगट हुआ । समझ में आया ? देखो ! क्या लिखा है ?

सब द्रव्यों की अतीत... अर्थात् गत काल । **अनागत...** आगामी काल, वर्तमान काल सम्बन्धी **अनन्त पर्यायों को भिन्न-भिन्न एक समय में स्पष्ट देखता है और जानता है** । दो लेना है न इकट्ठा ? अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन ऐसा लेना है न दो का ? आहाहा ! अरे ! एक भाव भी यदि यथार्थ बैठे न, तो सब बैठ जाए । जिसका स्वभाव जानना, उसे न जानना यह क्या रहे ? और अन्त नहीं तो अन्त नहीं-ऐसा जाना है । अन्त नहीं, इसलिए भिन्न-भिन्न पर्याय लिखी है । तो पहली मेरी पर्याय न्यारी कौन सी थी कहो ? परन्तु पहली कब होती है ? पहली कहो तो फिर द्रव्य नहीं था । द्रव्य नहीं था तो वह पर्याय भी नहीं थी । पहली पर्याय अर्थात् उसके पहले पर्याय नहीं थी तो द्रव्य भी नहीं था—तो वस्तु नहीं थी । समझ में आया ? आहाहा !

सर्वज्ञ के मार्ग की कोई भी एक रीति सम्यक् प्रकार से समझे तो उसका सब हल हो जाए । भगवान ने मेरी पर्याय भविष्य की कैसी देखी है ? देखी है या नहीं देखी ? तो यह क्या कहते हैं यह ? भविष्य की तेरी पर्याय समय-समय की कौन सी होगी, यह भगवान के ज्ञान में आ गया है । ऐसा ही द्रव्य जीव का स्वभाव है । तीन काल-तीन लोक की पर्याय को एक समय में जाने ऐसा जीव का, ज्ञानगुण का पर्याय में स्वभाव है । समझ में आया ? ऐसे स्वभाववाली पूर्ण पर्याय यह सब न जाने तो वह पर्याय पूर्ण कहाँ हुई ? तब कहे, अतीत काल सब जाना ? पहला काल कौन सा ? परन्तु पहला नहीं, फिर क्या रहा ? अतीत... अतीत... अतीत... अतीत... ऐसे भूत... भूत... भूत... है, ऐसा जाना । बस । ऐसे भविष्य... भविष्य... भविष्य... भविष्य... भविष्य का कभी अन्त आता है ? आहाहा ! सूक्ष्म बातें । परन्तु अन्दर स्पर्श ऐसी बात है ।

एक समय में अनन्त द्रव्य की भूत, भविष्य और वर्तमान सब पर्याय को भगवान जानते और देखते हैं। इतना माने, तब उसने एक जीव को माना कहलाये। नहीं तो उसने जीव माना नहीं। आहाहा! आत्मा-आत्मा तो ऐसा सब कहे कि आत्मा ऐसा। परन्तु यह ऐसा आत्मा। अपनी भी भविष्य की पर्याय सब अनन्त है, उसे न जाने तो अपना द्रव्य ही त्रिकाली पूरा है, उसे जाना नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! इसके स्वभाव की अचिन्त्य महिमा है। साधारण लोगों को अगम्य लगे। अगम्य नहीं; गम्य हो, ऐसी बात है। समझ में आया ?

कहते हैं कि तेरा स्वभाव ही ऐसा है। अनन्त चतुष्टय शक्तिरूप सम्पन्न स्वभाव ही ऐसा है। प्रगट हो, तब वह था उसमें से बाहर आता है और वह तीन काल-तीन लोक की पर्याय को जानता है। इतना तो एक ज्ञान की और दर्शन की पर्याय का स्वभाव है। इतनी पर्याय का ऐसा स्वभाव है, ऐसा जो न जाने, उसे तो गुण भी जानने में नहीं आता और द्रव्य भी जानने में नहीं आता। आहाहा! समझ में आया ? तीन काल-तीन लोक के द्रव्य और उनकी पर्यायें। तब लोग ऐसा कहे, मेरी पर्याय अभी यह है और भविष्य में ऐसी होगी, ऐसा भगवान ने जाना हो तो फिर मेरे हाथ में तो कुछ भविष्य की पर्याय करने की रही नहीं। परन्तु ऐसा केवलज्ञान है, वह एक समय की पर्याय ऐसा जाने, वह तू निर्णय करे, तब तेरी दृष्टि द्रव्य पर जाती है और पुरुषार्थ प्रमाण फिर वहाँ आगे पर्याय जो होनेवाली वह होती है। ऐसा है।

आत्मा भगवान ने तो देखा कि इसकी पर्याय इस जगह होगी और इस प्रकार से होगी। परन्तु इसका जिसे विश्वास आया है, भगवान ने ऐसा देखा है और विश्वास आया कि उसका विश्वास द्रव्य के ऊपर ढल गया है। समझ में आया ? क्योंकि एक समय की पर्याय की श्रद्धा पर्याय द्वारा नहीं हो सकती। वह द्रव्य द्वारा पर्याय की श्रद्धा होती है। ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय का पिण्ड जो द्रव्य, उसकी श्रद्धा होने पर उसका पुरुषार्थ अन्दर में जाग उठा। भगवान ने भी ऐसा देखा कि इसे इस समय पर्याय होगी इस प्रमाण, उसने भी माना। समझ में आया ? आहाहा! भारी कठिन। बड़ी गड़बड़। केवलज्ञान को देखने की गड़बड़ बड़ी चली है अभी। हमारे तो ठेठ से, (संवत्) १९७२ से चलता है। ७२ के वर्ष से। ५५ वर्ष हुए। ऐई! पहले से विवाद। भगवान सब

जाने नहीं। यह भव न जाने। तो हो गया फिर। अमुक। अरे रे! यह क्या करता है? बापू! मूलचन्दजी थे। यह १९७२ में चर्चा हुई थी। वींछिया में। मूल तो गामडा में हुई थी। भाई को बताया था, नहीं? क्या कहलाता है वह? 'सरा' में, 'सरा' में। यह जसदण का निवास है दरबार का, वहाँ उतरे थे। उसमें आहार करने के बाद कर रहे उसमें यह शुरु हुई थी। १९७२ में। फाल्गुन शुक्ल ११, १२ या १३ होगी। ७२ में, हों! भगवान ने ऐसा देखा, ऐसा होगा। अपना पुरुषार्थ कुछ काम नहीं करता। फलाणा, ढींकणा। हम इतने संथारा करें, नव-नव वाड़ से ब्रह्मचर्य पालें, नव-नव कोटि से सन्थारा करते हैं परन्तु भव तो भगवान ने देखा, तब घटेगा। कहा, ऐसा तुम्हें किसने कहा?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तुम्हारे भी न, हाँ परन्तु तुम्हारे गाँव के थे या नहीं? और फिर तुम्हारा संघाडो कहलाये वह। और ... भाई तो उनके भगत। हीराजी महाराज के भगत कहलाये। ... आहाहा! ७२ में बात चली, हों! बड़ी। भगवान ने देखा, वैसा होगा। अपना भव-बव घटने का नहीं है। अरे! तुम यह क्या कहते हो? कहाँ से यह भाषा लाये? यह आगम की भाषा नहीं है। उस दिन कहा था, हों! ऐसे के ऐसे घोटाले चलते ही आते हैं यहाँ। शास्त्र की भाषा नहीं। मिथ्यादृष्टि की भाषा है, कहा।

जिसे भगवान की भाषा बैठे, जिसके हृदय में भगवान बैठे, वह तीन काल-तीन लोक देखे, ऐसे भगवान है। वे भगवान जिसे दृष्टि में बैठे, उसे भव-बव होते नहीं। भगवान ने भव देखे ही नहीं होते। समझ में आया? ७२ का फाल्गुन महीना। फाल्गुन आयेगा न अब? कब? कितने वर्ष होंगे? यह ५५ पूरे होंगे। ५५। दो पाँचड़े पचपन। संघवी! तब तो कितनों का जन्म भी नहीं होगा। आहाहा! ऐसी सब बातें हमारे ठेठ से चली आती हैं। ऐई! कान्तिभाई! यह क्या कहते हो? यह भाषा कहाँ से आयी?

देखो! यहाँ भगवान ने देखा, ऐसा हो, उसमें अनन्त पुरुषार्थ है। भगवान की पर्याय की जिसे प्रतीति होती है, वह तो भगवान का पुत्र हो गया। वह साधक होकर अल्पकाल में भगवान हो जानेवाला है। अब उसे न हो, यह प्रश्न कहाँ आया? कहा, यह कहाँ लगायी? हमारे हीराजी महाराज ने स्वीकार किया परन्तु वापस दूसरे दिन बेचारों को मिलान करना आवे नहीं न। हीराजी महाराज के क्रियाकाण्ड कैसे। हीरा

अटला हीर अेवा। फिर दूसरे दिन उलझ गये। पहले दिन मेरा पक्ष लिया। दूसरे दिन उलझ गये। यह सूक्ष्म बातें। ऐई! यह तो हमारे सब ५५ वर्ष से ऐसा चलता है। हीराजी महाराज उलझ गये, हों! दूसरे दिन। अरे! मूलचन्दजी! फिर रात्रि में बात हुई थी। मूलचन्दजी! तू कहता है ऐसा होवे तो भगवान ने भव देखे। भगवान ने भव्य-अभव्य देखे हैं। ऐई... मार्या! बहुत भोले व्यक्ति थे न। यह क्रिया करना और यह करना और धूल करना। चार बजे, साढ़े चार की बात है, दूसरे दिन। भगवान ने जो उपदेश... भव देखें होंगे या नहीं? भगवान ने भव्य-अभव्य देखे।

मुमुक्षु : चढ़ बैठे।

पूज्य गुरुदेवश्री : चढ़ बैठे। ... वह मानो कि मैं पुरुषार्थ की पुष्टि करता हूँ। उसका हेतु ऐसा। ऐसा नहीं। भगवान ने तो सब देखा है। भव और अभव तथा सब भव्य, अभव्य भव इतने एक-एक भव... समयसार में भी पाठ है, कहा। एक भव में मोक्ष जाएगा, दो भव में मोक्ष जाएगा, चार, छत्तीस भव में मोक्ष जाएगा, ऐसा पाठ है। परन्तु उसका जिसे केवलज्ञान की एक समय की पर्याय इतनी... ओहोहो! जिसके काल की आदि नहीं, जिसकी पर्याय की आदि नहीं, जिसकी पर्याय का अन्त नहीं। अर्थात् कि द्रव्य का आदि-अन्त नहीं। आहाहा! ऐसे अनन्त-अनन्त द्रव्य की अनन्त पर्याय जो ज्ञान जाने, उस ज्ञान की कितनी महत्ता! माहात्म्य कितनी अचिन्त्यता! वह केवलज्ञान की पर्याय जिसके ज्ञान में बैठे, पूरा हो गया। आहाहा! समझ में आया? उसे पर्याय के सामने देखना नहीं रहता, उसे द्रव्य के सामने देखना रहता है। क्योंकि वह पर्याय इतनी बड़ी निकलती कहाँ से है? द्रव्य में से निकलती है। शक्तिरूप प्रगट हुआ न उसमें 'पायडा' देखो न! उसमें शक्ति है तीन काल-तीन लोक को जानने की, ऐसी शक्ति में से प्रगट हुई। ऐसी शक्ति और शक्तिवान, उसकी जहाँ दृष्टि होती है, उसे भगवान की पर्याय बैठी। उस समकिति को भव नहीं होते। भगवान ने उसके भव देखे नहीं होते। ऐसा विवाद उठा है, ऐई! वजुभाई! क्या कहा?

मुमुक्षु : अनन्त द्रव्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त द्रव्य ... यह द्रव्य अनन्त नहीं? वस्तु। वस्तु अनन्त द्रव्य। यह द्रव्य अर्थात् आत्मा अनन्त। अनन्त परमाणु, ये सब द्रव्य कहलाते हैं।

मुमुक्षु : आपने बहुवचन लगाया नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुवचन ही है न! अनन्त है न? आत्मा अनन्त, परमाणु अनन्त, यह तो सादी भाषा है। परन्तु इसे अभ्यास नहीं। ऊपर का अभ्यास है। अभी अन्दर का नहीं। अनन्त द्रव्य अर्थात् अनन्त आत्मा, अनन्त द्रव्य अर्थात् अनन्त परमाणु, असंख्यात कालाणु, यह तो पहले आ गया। द्रव्य अर्थात् वस्तु। अनन्त द्रव्य हैं और उन अनन्त द्रव्यों में एक-एक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण हैं। उसकी यह बात चलती है। अभ्यास नहीं। पहले से थोड़ा अभ्यास चाहिए। ऊपर के अभ्यास से यह पकड़ में आये, ऐसा नहीं है। पहले थोड़ा एकडिया का अभ्यास न हो तो इसे आगे अभ्यास बैठेगा नहीं। आहाहा!

अनन्त आत्मायें, वे सब द्रव्य कहलाते हैं। द्रव्य अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय, वह तो साधारण भाषा है। लड़के को बैठे ऐसा तो। आता है या नहीं? द्रव्य किसे कहते हैं? ऐई! किसे कहते हैं? लड़कों! गुण के समूह को द्रव्य कहते हैं। उसमें क्या प्रश्न है? और गुण किसे कहते हैं? द्रव्य के सर्व भाव और सर्व हालत में रहे, उसे गुण कहते हैं। पर्याय किसे कहते हैं? गुण के विकास को पर्याय कहते हैं। हो गया, तीनों भाव तो लड़कों में आ गये, बालक को। कहो, यह सिद्धान्त प्रवेशिका में आता है। पहला प्रवेश करने के लिये अभ्यास चाहिए।

यहाँ तो कहते हैं, देखो न! इसमें आ गया न यह सब? पहले आ गया। उन सर्व द्रव्य की। सर्व द्रव्य अर्थात् अनन्त हो गये। अतीत अनागत और वर्तमान काल सम्बन्धी अनन्त पर्यायों को भिन्न-भिन्न एक समय में स्पष्ट देखता है और जानता है। पहले आ गया है, हों! पृष्ठ १३९। पहले आ गया है इसमें। पृष्ठ १३९ है, उसमें लिखा है। बोधपाहुड़ की ४१ गाथा। क्रमरूप होता समयादिक व्यवहारकाल कहलाता है। इसकी गणना से अतीत, अनागत, वर्तमान द्रव्यों की पर्यायें अनन्तानन्त हैं, इन सब द्रव्य-पर्यायों को अरहन्त का दर्शन-ज्ञान एक समय में देखता और जानता है, इसलिए अरहन्त को सर्वदर्शी-सर्वज्ञ कहते हैं। लो! है? बहुत सरस बात। सर्व द्रव्य की पर्याय का अरहन्त दर्शन-ज्ञान एक काल में देखे-जाने। भाई! यह एक भाव भी बैठना सूक्ष्म है। अन्तिम है। बोधपाहुड़ की ४१वीं गाथा। एक ओर भावार्थ से पहले। अर्थ में भावार्थ

है। परन्तु दूसरे भावार्थ के बाद है। उसमें दो भावार्थ हैं। यह कठिन है, नहीं। इस बार अभी पढ़ा नहीं। अरिहन्त का स्वरूप यह नहीं पढ़ा। समझ में आया? क्या कहा?

यहाँ तो केवलज्ञान और केवलदर्शन। आहाहा! जिसकी पर्याय में अनन्त काल पहले जो पर्याय थी, वह वर्तमान ज्ञात हो। भविष्य में अनन्त काल बाद पर्याय होगी, उस द्रव्य की वह यहाँ ज्ञात हो जाए। इसका बड़ा विवाद है न। वह अर्थ है और अमुक है और अमुक। गुणगणमणीमाला। भाषा तो देखो! ओहो! 'जीणमयगयणे साय मुणियो जीणमय गयणे।' जिनमत के गण में ऐसे मुनि पकते हैं, कहते हैं। अन्यत्र धर्मात्मा हो नहीं सकते। आहाहा! अब अभी इतनी खबर नहीं होती कि वीतरागमार्ग, वह मार्ग है और दूसरा कोई मार्ग है नहीं। दूसरे में भी कुछ है, उसमें भी कुछ बताते हैं, ध्यान का, अमुक का, ढींकणे का। धूल भी नहीं, सुन न! एक सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागदेव ने जो वस्तु का स्वरूप और धर्म कहा, उनके मार्ग में धर्मी पकते हैं। अन्यत्र कोई धर्मी हो नहीं सकता। आहाहा! फिर यह जैनधर्म अर्थात् हमारा धर्म और अमुक धर्म तुम्हारा, ऐसा यह नहीं। वस्तु-आत्मा ही स्वयं वीतरागस्वरूप है।

'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, कर्म कटे जिनवचन सों।' जिनवचन अर्थात् जिनभाव। ऐसा। भाषा वचन लेते हैं। श्रीमद् में शब्द है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म।' पुण्य-पाप आदि अन्य सब मत अन्य। उससे कोई माने, वह सब मत ही अन्य का है। 'कर्म कटे जिन वचन से' वचन शब्द से उसके भाव। वीतरागभाव से कर्म कटते हैं। भगवान ने कहा हुआ वीतरागस्वभाव, उसकी एकाग्रता द्वारा वीतरागभाव से कर्म नाश होते हैं। कर्म कटे जिनवचन सों। यह जिन का मर्म। यह वीतराग का मर्म है। आहाहा! तीन लोक के नाथ वीतराग परमेश्वर, जिसके सिर पर स्वामी नहीं, जिसकी दृष्टि में यह परमात्मा ऐसे हैं, ऐसा जिसे लक्ष्य में नहीं, उसके मत में कोई धर्म-बर्म हो नहीं सकता। ऐसा कहते हैं। देखो! यह आता है अन्तिम। समझ में आया?

... आहाहा! पवनपन्थ। आकाश में, पवनपन्थ अर्थात् आकाश। जैसे यह पवन फिरती है न? कोई रोकनेवाला है? आकाश को पवनपन्थ कहा। पवन इसके ऊपर चले। ... पवनपन्थ आकाश में तारा की पंक्ति से। देखो! तारा। लाखों, करोड़ों तारा होते

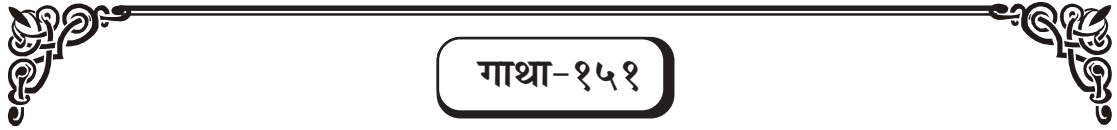
हैं। ... उन करोड़ों तारा से-परिवार से वेष्टित—पिरोया हुआ पूर्णमासी का चन्द्रमा। वह गगनपन्थ, आकाशपन्थ। जैसे पवनपन्थ में वह चन्द्रमा बहुत ताराओं से शोभता है। पूर्णिमा का चन्द्र, आहाहा! आहाहा! **वैसे जिनमतरूपी आकाश विषे...** वीतराग भगवान ने कहा हुआ जो मार्ग, ऐसा जो आत्मा का स्वभाव, ऐसे वीतरागभाव के मार्ग में गुणसमूह मणि की माला। वह गुण के समूह वह हुई मणि की माला। वहाँ मणि की माला गुण के समूह की होती है। वीतरागमार्ग के अतिरिक्त कहीं यह बात नहीं होती। आहाहा! और उसने वीतराग में जन्मा, उसे वीतराग की खबर नहीं वापस। वाड़ा में जन्मा। भगवान सच्चे। जय नारायण, जाओ। समझ में आया? देखो! आचार्य अन्तिम गाथायें डालते हुए (कहते हैं)। 'जिनवर गयणे' वीतरागमार्ग का भाव, वह आत्मा वीतरागस्वरूप, उसमें एकाग्रता होकर वीतरागदशा प्रगट हो, वह जिनमत में ही होता है। अन्यत्र ऐसा नहीं होता। समझ में आया? कहो, जयन्तीभाई! अन्यत्र कहीं नहीं होता।

अभी सब ऐसे जगे हैं न कितने ही बेचारे जैन भी वहाँ सिर फोड़ते हैं। चलो सुनने, वहाँ कुछ है। धूल भी नहीं, सुन न! जिसका एक आत्मा पूर्ण सर्वज्ञपदवाला तत्त्व है, उसकी ही इसे पर्याय में सर्वज्ञपद प्रगट होता है। ऐसा जिसे आत्मा का और आत्मा के पद की पर्याय का भान नहीं, उन सबके मार्ग में किसी प्रकार धर्म का मार्ग नहीं हो सकता। समझ में आया? क्योंकि धर्म प्रगटे, वह धर्मी पूर्ण आत्मस्वभाव हो, उसके आश्रय से प्रगट होता है। पश्चात् वह सर्वज्ञपद और सर्वज्ञ पूर्ण आनन्द पदवाला ही उसका पद है। आहाहा! अर्थात् कि जिसके मत में सर्वज्ञ नहीं, एक आत्मा तीन काल-तीन लोक को जाने—ऐसा जिसका मत नहीं, उसमें धर्म की गन्ध नहीं होती। आहाहा! आचार्य को यह कहना है, हों! अन्दर। 'जिनवर गयणे' वीतरागमार्ग के गगन में जिन्होंने-परमात्मा ने आत्मा को ऐसा कहा, ऐसा जाना, अनुभव करते हैं, उसे अनुभव और धर्म होता है। आकाश में जैसे चन्द्रमा करोड़ों ताराओं से शोभता है पूर्णिमा का चन्द्र, उसी प्रकार यह धर्मात्मा जिनमत में शोभता है। जिनमत में यह शोभता है। समझ में आया? मुनिन्द्ररूपी चन्द्रमा शोभते हैं। आहाहा! देखो न! अपनी बात भी अन्दर (कहते जाते हैं)। आचार्य हैं, आचार्य। आहाहा! जिन्हें वीतरागी किरणें प्रगट हुई हैं

और उसमें अनेक प्रकार के गुण की माला, उससे वे शोभते हैं, लो! जैसे वह ताराओं से शोभता है। कौन? चन्द्र। चन्द्र ताराओं से शोभता है, वैसे धर्मात्मा अनन्त गुण की निर्मल धारा से शोभता है। आहाहा! यह ताराओं का परिवार। समझ में आया? क्या कहते हैं। आहाहा!

भगवान् चैतन्य प्रभु पूर्ण स्वरूप, ऐसी बात जिनमत में ही होती है। ऐसे पूर्ण स्वरूप को प्राप्त किया है जिसने श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र में, ऐसे अनन्त गुणों के तारारूपी वेष्टित होकर वे मुनि चन्द्रमा समान जैनशासन में शोभते हैं। यह व्रत पालनेवाला और अमुक, ऐसा इसमें नहीं लिया। आहाहा! देखो तो सही, क्या कहते हैं? अनन्त गुण जो परमात्मा ने आत्मा में देखे, ऐसे अनन्त गुण अन्यत्र कहीं हो सकते ही नहीं। ऐसे अनन्त गुणों का रूप, उसे जिसने आश्रय करके, स्थिरता करके उन अनन्त गुणों की धारा श्रेणी में प्रगट की है, वह जिनमत में चन्द्रमा समान शोभता है। समझ में आया? रागवाले और अधिक परिवारवाले और अधिक साधु किये हों, इसलिए शोभते हैं, ऐसा नहीं है-ऐसा कहते हैं। अधिक शिष्य बनाये, इसलिए यह बड़ा है। उसके अनन्त गुणों में से धारावाही श्रेणी प्रगट की, वे मुनि चन्द्रमा समान, जैसे आकाश में चन्द्र शोभता है, वैसे शोभते हैं। ऐसे आचार्य को एकदम वीतरागभाव का अन्दर हुलास आया है, लो! समझ में आया? विशेष आयेगा...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



गाथा-१५१

आगे जिसके अनन्त चतुष्टय प्रकट होते हैं, उसको परमात्मा कहते हैं। उसके अनेक नाम हैं, उनमें से कुछ प्रकट कर कहते हैं -

गाणी सिव परमेष्ठी सव्वण्हू विण्हू चउमुहो बुद्धो ।

अप्पो वि य परमप्पो कम्मविमुक्को य होइ फुडं ॥१५१॥

ज्ञानी शिवः परमेष्ठी सर्वज्ञः विष्णुः चतुर्मुखः बुद्धः ।

आत्मा अपि च परमात्मा कर्मविमुक्तः च भवति स्फुटम् ॥१५१॥

सर्वज्ञ परमेष्ठी चतुर्मुख बुद्ध विष्णु शिव तथा।
ज्ञानी करम-प्रविमुक्त परमात्मा प्रगट यह आत्मा॥१५१॥

अर्थ - परमात्मा ज्ञानी है, शिव है, परमेष्ठी है, सर्वज्ञ है, विष्णु है, चतुर्मुखब्रह्मा है, बुद्ध है, आत्मा है, परमात्मा है और कर्मरहित है, यह स्पष्ट जानो।

भावार्थ - 'ज्ञानी' कहने से सांख्यमती ज्ञानरहित उदासीन चैतन्यमात्र मानता है, उसका निषेध है। 'शिव' है अर्थात् सब कल्याणों से परिपूर्ण है, जैसा सांख्यमती नैयायिक वैशेषिक मानते हैं, वैसा नहीं है। 'परमेष्ठी' है, सो परम (उत्कृष्ट) पद में स्थित है अथवा उत्कृष्ट इष्टत्व स्वभाव है। जैसे अन्मयती कई अपना इष्ट कुछ मान करके उसको परमेष्ठी कहते हैं; वैसे नहीं है। 'सर्वज्ञ' है अर्थात् सब लोकालोक को जानता है, अन्य कितने ही किसी एक प्रकरण सम्बन्धी सब बात जानता है उसको भी सर्वज्ञ कहते हैं, वैसा नहीं है। 'विष्णु' है अर्थात् जिसका ज्ञान सब ज्ञेयों में व्यापक है-अन्यमती वेदान्ती आदि कहते हैं कि सब पदार्थों में आप है तो ऐसा नहीं है।

'चतुर्मुख' कहने से केवली अरहन्त के समवसरण में चार मुख चारों दिशाओं में दीखते हैं, ऐसा अतिशय है, इसलिए चतुर्मुख कहते हैं - अन्यमती ब्रह्मा को चतुर्मुख कहते हैं - ऐसा ब्रह्मा कोई नहीं है। 'बुद्ध' है अर्थात् सबका ज्ञाता है-बौद्धमती क्षणिक को बुद्ध कहते हैं, वैसा नहीं है। 'आत्मा' है अपने स्वभाव में ही निरन्तर प्रवर्तता है-अन्यमती वेदान्ती सबमें प्रवर्तते हुए आत्मा को मानते हैं, वैसा नहीं है। 'परमात्मा' है अर्थात् आत्मा का पूर्णरूप 'अनन्त चतुष्टय' उसके प्रगट हो गये हैं, इसलिए परमात्मा है। कर्म जो आत्मा के स्वभाव के घातक घातियाकर्मों से रहित हो गये हैं, इसलिए 'कर्म विमुक्त' है अथवा कुछ करने योग्य काम न रहा इसलिए भी कर्मविमुक्त है। सांख्यमती, नैयायिक सदा ही कर्मरहित मानते हैं, वैसे नहीं है। ऐसे परमात्मा के सार्थक नाम हैं। अन्यमती अपने इष्ट का नाम एक ही कहते हैं, उनका सर्वथा एकान्त के अभिप्राय के द्वारा अर्थ बिगड़ता है, इसलिए यथार्थ नहीं है। अरहन्त के ये नाम नयविवक्षा से सत्यार्थ है, ऐसा जानो॥१५१॥

प्रवचन-१५६, गाथा-१५१ से १५३, गुरुवार, मगसर कृष्ण ११, दिनांक २४-१२-१९७०

अष्टपाहुड़, भावपाहुड़ की १५१ गाथा। अरिहन्त भगवान कैसे होते हैं, उनकी व्याख्या है। ऐसे बिना भान के मानना, ऐसा नहीं। अरिहन्त भगवान, उन्होंने जो अन्तर आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त बल था, वह जिन्हें वर्तमान दशा में प्रगट हुआ है। ऐसा सिद्ध किया। इस आत्मा में अरिहन्त ने जो प्रगट किया, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त बल, वह अन्दर शक्ति में आत्मा के स्वभाव में था, उसमें से प्राप्त हुआ। प्राप्त की प्राप्ति। अन्दर में शक्ति-स्वभाव था, वह एकाग्र द्वारा प्रगट हुआ। वे परमात्मा कैसे होते हैं? उनकी व्याख्या है। वे अरिहन्त परमेश्वर किसे कहना? अमुक वाडा की रीति से समझते हैं, ऐसा नहीं। उनकी वस्तुस्थिति क्या है? तो कहते हैं कि वे तो ज्ञानी थे। सांख्यमति ज्ञानरहित उदासीन मानता है, ऐसा नहीं। वे तो सर्वज्ञ... सर्वज्ञ आगे आयेगा। परन्तु वह ज्ञानी-जाननेवाले थे। भगवान किसी के कर्ता नहीं थे।

मुमुक्षु : अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी जगत को बनावे या किसी को धर्म दे या किसी को धर्म की रचना वे करें, ऐसा नहीं था। वह तो ज्ञानी थे।

मुमुक्षु : धर्म सिखावे तो सही न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सिखावे अर्थात् ? वाणी निकली, यह आगे आयेगा। वाणी निकले, उसे वह समझे उसके कारण से तो समझे। वाणी तो भगवान की निकले। कहेंगे, सकल शब्द कहकर। यहाँ परमात्मा शरीरसहित की व्याख्या है। अरिहन्त भगवान शरीरसहित होते हैं, सिद्ध भगवान शरीररहित होते हैं। फिर सिद्ध को शरीर नहीं होता। पहले णमो अरिहन्ताणं। उन्होंने चार कर्म का नाश करके चार कर्म बाकी रखे हैं। और सिद्ध भगवान को आठों ही कर्मों का नाश होकर वे तो अशरीरी हो गये हैं। परन्तु यहाँ सशरीरी अरिहन्त की व्याख्या है। क्योंकि शरीरसहित हों, वे उपदेश देते हैं। शरीररहित है, उन्हें उपदेश नहीं हो सकता। इसलिए कहते हैं कि ज्ञानी थे।

दूसरा बोल। शिव है अर्थात् सब कल्याणों से परिपूर्ण... सर्व कल्याण की दशा जिन्हें प्रगट हो गयी है। अब कोई कल्याण बाकी नहीं। अरिहन्त परमात्मा को पूर्ण आनन्द उपद्रवरहित अनन्त-अनन्त शान्ति जिन्हें प्रगट हो गयी है, इसलिए उन्हें शिव कहा जाता है। शिव अर्थात् वे शंकर शिव नहीं। यह शिव अर्थात् कल्याणस्वरूप। नमोत्थुणं में आता है। शिवमयल मरुय अर्थ तो आते नहीं हों। हाँके रखे गाड़ी ऐसे के ऐसे शब्द। 'शिव मयल मरुय, मणंत' आता है। भगवान शिव है, अचल है, अरुई है। शिव नाम अरिहन्त को शिव कहते हैं। क्योंकि उन्हें बिल्कुल दुःख का या अकल्याण का अंश नहीं रहा। पूर्ण आनन्द की प्राप्ति कल्याण की (हुई है); इसलिए उन अरिहन्त को शिव कहा जाता है। अन्यमति शिव दूसरे को कहते हैं, वह बात सत्य नहीं है। समझ में आया? दो आये थे न कल। तीसरा।

और, परमेष्ठी हैं... अरिहन्त को ... परम (उत्कृष्ट) पद में स्थित है... उत्कृष्ट अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान पूर्ण दशा में टिकता है, टिके हैं, इसलिए परमपद में स्थित, इसलिए परमेष्ठी कहते हैं। समझ में आया? दुनिया का कोई करण बनावे या करे, इसलिए परमेष्ठी हैं - ऐसा है नहीं। अथवा उत्कृष्ट इष्टत्व स्वभाव है। दो बातें लीं। स्वयं अपने पूर्ण आनन्दस्वभाव में स्थित हैं अथवा जिनका इष्ट, पूर्ण इष्ट स्वभाव प्रगट हो गया है। इष्ट स्वभाव है। पूर्ण प्रिय स्वभाव। अरिहन्त को कोई दोष रहा नहीं। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य (प्रगट हुए), उन्हें अरिहन्त और उन्हें परमात्मा कहते हैं। जगत दूसरे को अनेक प्रकार से परमात्मा कहता है, वे सच्चे नहीं। जैसे अन्यमती कई अपना इष्ट कुछ मान करके उसको परमेष्ठी कहते हैं, वैसे नहीं है। साधारण हो तो परमेष्ठी हमारे हैं, यह परमेश्वर हैं, ऐसा नहीं कहते? ऐसा नहीं है। परमेष्ठी तो परम आत्मा का पद शुद्ध आनन्द की पर्याय जिसे पूर्ण प्रगट हुई, उसमें स्थित हैं। अपना स्वभाव है इष्ट, उसमें रहे हैं, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं।

और, सर्वज्ञ है... भगवान तो सर्वज्ञ हैं। तीन काल-तीन लोक को जानते हैं। लोकालोक को एक समय में जानते हैं। भूतकाल, भविष्यकाल, वर्तमान; हुआ, होता है और होगा - सब भगवान के ज्ञान में एक समय में ज्ञात हो जाता है, ऐसे वे सर्वज्ञ हैं। अन्य कितने ही किसी एक प्रकरण सम्बन्धी सब बात जानता है, उसको भी सर्वज्ञ

कहते हैं, वैसे नहीं है। कोई थोड़ा चतुर वर्तमान देश-काल की बात जाने तो वह सर्वज्ञ है, ऐसा कहते हैं, ऐसा नहीं है। यह तो तीन काल-तीन लोक (जानने का) जिनका ज्ञानस्वभाव प्रगट हुआ है। जिन्हें राग का कण रहा नहीं, जिन्हें अल्पज्ञता रही नहीं, ऐसे सर्वज्ञ भगवान को परमात्मा कहते हैं। दूसरे कोई कर्ता परमेश्वर, ईश्वर है, ऐसा है नहीं। जगत के कर्ता कोई ईश्वर है, ऐसा कुछ है नहीं। परमात्मा तो उसे कहते हैं, जिसे पूर्ण स्वभाव प्रगट हो गया। देखो! प्रगट हो गया है, इसका अर्थ क्या हुआ? शक्ति में तो था। अन्तर आत्मा के स्वभाव में तो अनन्त आनन्द आदि है ही। द्रव्य में और गुण में तो पूर्ण है, वे पर्याय में स्थिर हुए, इष्टत्व प्रगट हुआ, उसे सर्वज्ञ और परमात्मा कहा जाता है।

और, विष्णु है... उन्हें विष्णु भी कहते हैं। क्यों? जिसका ज्ञान सब ज्ञेयों में व्यापक है :- यह विष्णु लोग कहते हैं, वह विष्णु नहीं, परन्तु अरिहन्त परमात्मा तीन काल-तीन लोक के ज्ञेय को व्यापते हैं अर्थात् जानते हैं, इसलिए इस अपेक्षा से भी उन्हें विष्णु कहा जाता है। समझ में आया? विष्णु दूसरे कहते हैं, ऐसा नहीं। अरिहन्त को ही विष्णु कहा जाता है। क्योंकि वे ज्ञान में सब ज्ञेयों को-लोकालोक को व्यापते हैं। वे लोकालोक में पसर नहीं जाते परन्तु लोकालोक को जानते हैं, इस अपेक्षा से उन्हें विष्णु कहा जाता है। देखो!

और, अन्यमती वेदान्ती आदि कहते हैं कि पदार्थों में आप है तो ऐसा नहीं है। सब होकर आत्मा है। सर्वज्ञ अर्थात् विष्णु अर्थात् सब होकर एक विष्णु है, ऐसा नहीं। एक-एक आत्मा अपने ज्ञान की पूर्णदशा प्रगट करे और लोकालोक में जाने, वह लोकालोक में व्यापे, जाने—ऐसा अर्थ करके उसे व्यापक कहा जाता है। परन्तु व्यापक सर्व एक आत्मा है, ऐसा कुछ है नहीं। यह तो अज्ञानियों ने कल्पित किया हुआ है। देखो! इन अरिहन्त को पहिचानना चाहिए, कहते हैं। ऐसा का ऐसा समझे बिना माने, वह कहीं अरिहन्त को जानते नहीं।

और, चतुर्मुख कहने से केवली अरहन्त के... केवली भगवान को चार मुख होते हैं। समवसरण में भगवान जब विराजते हैं, तब चतुर्मुख हो जायें। चारों ओर के लोग देखें कि मेरे सामने भगवान का मुख है। ऐसा मुख है। वे ब्रह्मा चतुर्मुख कहते हैं, ऐसा है नहीं। ब्रह्मा को चार मुख कहते हैं न? यह सब कल्पित बातें हैं। परमात्मा अरिहन्त

ही चतुर्मुखी हैं। प्रत्येक विशेषण ऐसे दिये हैं, देखा! **समवसरण में चार मुख चारों दिशाओं में दिखते हैं, ऐसा अतिशय है...** ऐसा तो अतिशय भगवान का है। पूर्ण केवलज्ञान—आनन्द की दशा प्रगट हुई और चारों ओर उनके मुख दिखे, ऐसा ही उनका अतिशय है।

अन्यमती ब्रह्मा को चतुर्मुख कहते हैं, ऐसा ब्रह्मा कोई नहीं है। चार मुखवाले ब्रह्मा थे, विष्णु जगत में व्यापक थे, ऐसा कोई है नहीं। अरिहन्त परमात्मा को ही यह सब विशेषण लागू पड़ते हैं। कहो, समझ में आया? और बुद्ध है... लो! वह स्वयं बुद्ध है भगवान। वह क्षणिकवादी बुद्ध, वह नहीं। **सबका ज्ञाता है—बौद्धमति क्षणिक को बुद्ध कहते हैं, वैसा ही नहीं है।** भगवान तो सबके बुद्ध—जाननेवाले हैं, इसलिए उन्हें बुद्ध कहा जाता है। अन्यमति जो बौद्ध मानते हैं, वह बुद्ध नहीं।

और, **आत्मा है अपने स्वभाव ही में निरन्तर प्रवर्तता है...** देखो! आत्मा शब्द है न? 'अप्पो वि य परमप्पो' आत्मा है। अर्थात्? अतति गच्छति। अपने स्वभाव में निरन्तर प्रवर्ते, इसलिए उसे आत्मा कहा जाता है। **अपने स्वभाव ही में निरन्तर प्रवर्तता है...** अपना आनन्द, ज्ञान, शान्ति, वीतरागता ऐसा जो स्वभाव प्रगट है, उसमें वे प्रवर्तते हैं, इसलिए उन्हें आत्मा कहते हैं। अतति गच्छति इति आत्मा। निज के स्वभाव में प्रवर्ते, इसलिए उसे आत्मा कहते हैं। देखो! यह आत्मा की व्याख्या। समझ में आया? ऐसा कहकर जो आत्मा दूसरे हैं, वे भी अपने ज्ञान-दर्शन में प्रवर्ते तो उसे आत्मा कहते हैं। राग और पुण्य में प्रवर्ते, वह आत्मा नहीं। समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दृष्टि का आत्मा अपने स्वभाव में प्रवर्तता है। रागादि हों, उसके वे जाननेवाला रहता है, उसमें प्रवर्तता नहीं। इसलिए उसे आत्मा जघन्य श्रेणी का कहा जाता है। केवली उत्कृष्ट आत्मा कि जो अपने ज्ञान, दर्शन, आनन्द के स्वभाव में पूर्ण रीति से प्रवर्ते, उसे आत्मा कहते हैं। कहो, समझ में आया? यह आत्मा की व्याख्या की। आत्मा किसे कहना?

अन्यमती वेदान्ती सबमें प्रवर्तते हुए आत्मा को मानते हैं, वैसा नहीं है। सब आत्मा में प्रवर्तनेवाला, वह आत्मा और जीव तो शरीर में रहे अल्पज्ञ और आत्मा तो सबमें प्रवर्ते, वह आत्मा—ऐसा है नहीं। ऐसा कोई आत्मा है नहीं। एक-एक आत्मा का

स्वभाव स्वयं शुद्ध चैतन्यघन, आनन्दकन्द वह आत्मा। वह अपने स्वभाव में प्रवर्ते, तब जघन्य श्रेणी प्रवर्ते, तब सम्यग्दृष्टि कहते हैं। उसे धर्मी कहते हैं। धर्मी धर्म करनेवाला, उसे कहते हैं। देखो! आत्मा में व्याख्या यह आयी, कि स्वयं जानने-देखनेवाला आनन्द उसका स्वभाव है। उसमें आंशिक प्रवर्ते, वीतरागभाव से प्रवर्ते तो उसे सम्यग्दृष्टि धर्मी आत्मा कहते हैं। समझ में आया? अकेले पुण्य और पाप में प्रवर्ते, वह तो विकार-विभाव है। उसे आत्मा नहीं कहते, उसे धर्मी भी नहीं कहते। कहो, समझ में आया?

और, परमात्मा... अन्तिम शब्द आया न? 'अप्पो वि य परमप्पो' उसे परमात्मा कहते हैं। आत्मा को पूर्णरूप अनन्त चतुष्टय उसके प्रगट हो गये हैं,... भगवान को तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य प्रगट हुआ है। इसलिए परम आत्मा उसे कहा जाता है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा परमात्मा है नहीं। समझ में आया? अरिहन्त की व्याख्या देते हैं। ऐसे अरिहन्त को णमो अरिहन्ताणं रट रखे परन्तु समझे नहीं कुछ, उसे अरिहन्त का कुछ लाभ नहीं है, ऐसा कहते हैं।

और, कर्म जो आत्मा के स्वभाव के घातक घातिया कर्मों से रहित हो गये हैं,... भगवान को चार कर्म है नहीं। घाति का नाश किया। ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय (अन्तराय)। इसलिए कर्म विमुक्त हैं, अथवा कुछ करनेयोग्य काम न रहा... लो, भगवान को क्या करने का? कुछ रहा नहीं। जानना-देखना आनन्द में प्रवर्तते हैं। बोलने की क्रिया, वह जड़ की है। उसमें कहीं भगवान आत्मा प्रवर्तता नहीं। भाषा होती है, भाषा में कोई आत्मा आता नहीं। भाषा अलग है, आत्मा अलग है। आहाहा! भगवान जड़ में प्रवर्तता नहीं; इसलिए स्वयं को कार्य कुछ रहा नहीं। जानना, देखना, आनन्द का अनुभव करना, यह ही उसका कार्य है, और कोई कार्य बाकी है नहीं। उपदेश देना, वह कार्य बाकी है, ऐसा होगा? उपदेश-वाणी आत्मा में कहाँ है? वह वाणी यह तो जड़ की है। वह वाणी करने का कार्य भी भगवान को रहा नहीं। आहाहा! वाणी होती अवश्य है, निमित्तरूप से कहेंगे इसमें। ५२ (गाथा) में। वाणी में व्यापक नहीं। वाणी का कार्य उनका नहीं। वह तो जड़ की भाषा। ज्ञानी तो जानता है कि वह जड़ की भाषा में ऐसी भाषा होती है। ऐसा जानता है। जाननेवाला है, उसका कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कुछ करनेयोग्य काम न रहा, इसलिए भी कर्मविमुक्त हैं। बाकी कार्य कुछ रहा नहीं। कृतकृत्य हो गये हैं। जिसके आत्मा के आनन्द में जिसकी रमणता पूर्ण हो गयी, पूर्ण ज्ञान हो गया, उसे अब क्या करना बाकी? सम्यग्दृष्टि-धर्मी हो, उसे तो अभी स्वरूप में रमण करने का कार्य बाकी रहता है। समझ में आया? धर्मी हो, जीव धर्मी हो अर्थात् आत्मा के आनन्द का भान हो, तब आनन्द में थोड़ा अंश उसे प्रगट हुआ होता है। सब गुणों में थोड़ा अंश प्रगट हुआ होता है। परन्तु अभी पूर्ण करने का कार्य बाकी होता है। समझ में आया? तो परमात्मा हुए, उन्हें तो कुछ बाकी रहा नहीं। पूर्णदशा हो गयी। धर्मी को अभी अन्दर, साधु हो-सच्चे सन्त तो आत्मा के आनन्द में रमते हों परन्तु अभी पूर्ण आनन्द बहुत बाकी है। उस आनन्द में पूर्ण करने का कार्य बाकी है उन्हें। इसलिए वे भी पूर्ण कार्यवन्त नहीं हैं। कार्य यह, हों! कार्य यह दया, विकल्प का कार्य या शरीर का, वह कहीं आत्मा का नहीं है। वह तो जड़ है, वह तो मिट्टी जड़ है। विकल्प क्या है? वह तो राग है, व्यवहार पुण्य है। वह कहीं आत्मा का कार्य नहीं। समझ में आया? अपने स्वभाव में चैतन्य में शुद्ध स्वभाव में प्रवर्ते, वह उसका कार्य है। धर्मी का वह उसका कार्य है। पूर्ण हो गया, उसे अब वह कार्य करना बाकी नहीं रहता।

सांख्यमती, नैयायिक सदा ही कर्मरहित मानते हैं... कितने ही ऐसा मानते हैं कि जीव तो सदा कर्मरहित ही है। ऐसा है नहीं। कर्मरहित हो तो फिर उसे पूर्ण आनन्द और पूर्णदशा प्रगट चाहिए। अनादि कर्म का सम्बन्ध निमित्तरूप से है। वह स्वभाव का भान करके अन्तर अनुभव करके पूर्णदशा प्रगट करे, तब कर्मरहित हो। पहले कर्मरहित सदा माने तो कर्मरहित होने का रहता नहीं।

ऐसे परमात्मा के सार्थक नाम हैं। लो! १५१ गाथा हुई। यह परमात्मा के सार्थक नाम हैं ये। यथार्थ नाम उसे कहते हैं। समझे बिना कहे, उसे कहते हैं कि भगवान की पहिचान है नहीं। समझ में आया? अन्यमती अपने इष्ट का नाम एक ही कहते हैं, उनका सर्वथा एकान्त के अभिप्राय के द्वारा अर्थ बिगड़ता है, इसलिए यथार्थ नहीं है। अर्हत के ये नाम नयविवक्षा से सत्यार्थ हैं, ऐसा जानो। लो! जिस नय से, जिस अपेक्षा से कहा, उस अपेक्षा से बात बराबर है, ऐसा जानना।

गाथा-१५२

आगे आचार्य कहते हैं कि ऐसा देव मुझे उत्तम बोधि देवे -

इय घाडकम्ममुक्को अट्टारहदोसवज्जिओ सयलो ।

तिहुवणभवणपदीवो देउ ममं उत्तमं बोहिं ॥१५२॥

इति घातिकर्ममुक्तः अष्टादशदोषवर्जितः सकलः ।

त्रिभुवनभवनप्रदीपः ददातु मह्यं उत्तमां बोधिम् ॥१५२॥

ये अठारह दोषों-रहित तन-सहित घाती कर्म बिन।

त्रिभुवन भवन के दीप देवें बोधि उत्तम मुझे अब ॥१५२॥

अर्थ - इस प्रकार घातिया कर्मों से रहित, क्षुधा-तृषा आदि पूर्वोक्त अठारह दोषों से रहित, सकल (शरीर सहित) और तीन भुवनरूपी भवन को प्रकाशित करने के लिए प्रकृष्टदीपक तुल्य देव है, वह मुझे उत्तम बोधि (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) की प्राप्ति देवे, इस प्रकार आचार्य ने प्रार्थना की है।

भावार्थ - यहाँ और तो पूर्वोक्त प्रकार जानना, परन्तु 'सकल' विशेषण का यह आशय है कि मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति करने के जो उपदेश हैं, वह वचन के प्रवर्तों बिना नहीं होते हैं और वचन की प्रवृत्ति शरीर बिना नहीं होती है, इसलिए अरहंत का आयु कर्म के उदय से शरीर सहित अवस्थान रहता है और सुस्वर आदि नामकर्म के उदय से वचन की प्रवृत्ति होती है। इस तरह अनेक जीवों का कल्याण करनेवाला उपदेश होता रहता है। अन्यमतियों के ऐसा अवस्थान (ऐसी स्थिति) परमात्मा के सम्भव नहीं है, इसलिए उपदेश की प्रवृत्ति नहीं बनती है, तब मोक्षमार्ग का उपदेश भी नहीं बनता है, इस प्रकार जानना चाहिए ॥१५२॥

गाथा-१५२ पर प्रवचन

आगे आचार्य कहते हैं कि ऐसा देव मुझे उत्तम बोधि देवे :- आहाहा! देखो! अब कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, यह अरिहन्त परमात्मा, वे मुझे उत्तम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-

चारित्र की दशा देवें। भगवान देते होंगे ? यह माँग में प्रार्थना है। समझ में आया ? कुछ अरिहन्त के पास है, इसके दर्शन-ज्ञान-चारित्र (कि) वे दें ? उसे समझाते हैं और समझकर जो आत्मा के अन्तर में सम्यग्दर्शन प्रगट करके अन्तर में रमणता करे, उसे भगवान ने सम्यग्दर्शन, ज्ञान दिया, ऐसा कहा जाता है। कहो, समझ में आया ?

इय घाड़कम्ममुक्को अट्टारहदोसवज्जिओ सयलो ।

तिहुवणभवणपदीवो देउ ममं उत्तमं बोहिं॥१५२॥

सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु। लो, उसमें भी आता है या नहीं ? भगवान देते होंगे कुछ ? यह तो प्रार्थना में विनय के वाक्य हैं। हे भगवान ! सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु। सिद्ध भगवान कहीं दिखाने आते हैं यहाँ ? यह तो अपनी प्रार्थना है कि मेरा स्वरूप भी हे प्रभु ! तेरे जैसा ही है। तू सिद्ध है, वैसा ही मेरा स्वरूप है। तुझमें से जो निकल गया, वह मुझमें पर है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम होते हैं, वे भी मेरे नहीं, वह तो पर है। क्योंकि तुझमें रहे नहीं, इसलिए मेरे नहीं। समझ में आया ? और तुझमें रहा अनन्त ज्ञान, दर्शन और आनन्द; वह मुझमें है। इस प्रकार धर्मी जीव की दृष्टि आत्मा के स्वभाव पर होने से विभाव से रहित जीव को मानता है। आहाहा ! समझ में आया ? ... शब्द पड़ा है न एक ? १९२१(

अर्थ :- इस प्रकार घातिया कर्मों से रहित... भगवान को चार कर्म का नाश हो गया है। अरिहन्त भगवान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। महावीर भगवान आदि तो सिद्ध हो गये। वे कहीं अरिहन्त है नहीं। वह तो चार कर्म का नाश होकर अशरीरी सिद्ध हो गये। अरिहन्त तो महाविदेह में सीमन्धर परमात्मा विद्यमान तीर्थकर विराजते हैं। वे विद्यमान तीर्थकर आदि शरीरसहित हों, उसकी व्याख्या करते हैं। **घातिया कर्मों से रहित, क्षुधा तृषा आदि पूर्वोक्त अठारह दोषों से रहित,...** भगवान अरिहन्त ऐसे होते हैं कि उन्हें क्षुधा नहीं होती, आहार नहीं होता, पानी नहीं होता, शरीर में रोग नहीं होता। समझ में आया ? उन्हें अरिहन्त कहते हैं। अरिहन्त हो, उसे फिर भूख लगे और आहार ले, रोग हो और दवा ले, ऐसे अरिहन्त नहीं हो सकते। उसे अरिहन्त की खबर ही नहीं है। समझ में आया ?

अरिहन्त इसलिए कहा न ? अरि अर्थात् राग और द्वेष जो मिथ्यात्व दुश्मन,

उसका जिन्होंने हन्त अर्थात् नाश किया और आत्मा की पूर्णदशा प्रगट की, उसे अरिहन्त कहा जाता है। यह अरिहन्त कोई पक्ष का शब्द नहीं। यह गुण का शब्द है। गुणवाचक शब्द है। समझ में आया? यहाँ देखो, लिया अठारह दोष वर्जित। भगवान को क्षुधा नहीं होती। अरिहन्त को भूख नहीं लगती, अरिहन्त को रोग हो, पानी पीवे, वे अरिहन्त के स्वरूप को नहीं जानते। अरिहन्त ऐसे होते ही नहीं। समझ में आया?

अठारह दोषों से रहित, सकल (शरीरसहित)... यहाँ जरा यह रखना है। क्योंकि अरिहन्त हैं, उन्हें यदि वाणी न हो तो उपदेश कहाँ से निकले? वाणी तो शरीर हो तो वाणी होती है। शरीर न हो, उसे वाणी होगी? सिद्ध को शरीर नहीं है, वाणी भी नहीं है। भगवान सिद्ध हो गये, उन्हें कुछ नहीं होता। शरीर भी नहीं और वाणी भी नहीं। परन्तु अरिहन्त को तो शरीर है। शरीर है तो वाणी निकलती है। वाणी निकले तो जगत को समझने में आता है कि ऐसा भगवान ने जाना, ऐसा भगवान ने कहा। दूसरे ऐसा कहते हैं कि जहाँ पूर्ण हो गया न बस, उसे वाणी नहीं होती और मुक्त हो जाए। ऐसा नहीं है। समझ में आया? शरीर बाकी होता है। जब तक सिद्ध न हों, अरिहन्तपद में विराजते हैं जब तक, (तब तक) शरीर होता है, वाणी हो तो उपदेश होता है, ऐसा कहते हैं।

तीन भुवनरूपी भवन को प्रकाशित करने के लिये प्रकृष्ट दीपकतुल्य देव है,... तीन लोक में भवन को प्रकाशित... तीन लोक को प्रकाशित करने में उत्कृष्ट दीपक भगवान है। तीन लोक, तीन काल को प्रकाशित करने में दीपक समान हैं। जैसे चीज़ देखने में दीपक निमित्त है, वैसे तीन काल को देखने में भगवान का ज्ञान है। तीन काल-तीन लोक, एक-एक परमात्मा तीन काल-तीन लोक को देखते हैं। ऐसा वह चैतन्य दीपक है। चैतन्य का जलहल दीपक, देह के रजकणों से भिन्न, तथापि अभी शरीर बाकी है।

वह मुझे उत्तम बोधि... दो। (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) की प्राप्ति देवे... कुन्दकुन्दाचार्य तो चारित्रवन्त हैं, तथापि तीन की एकता की पूर्ण शुद्धता मुझे प्राप्त होओ। ऐसा कहकर भगवान को 'मुझे दो', ऐसा कहा। समझ में आया? देव सिद्ध करना है न? पहले आ गया था। देव-देव उसे कहते हैं। दे, वह देव कहलाता है। क्या दे? उपदेश। इस प्रकार अन्दर में समझे, पहिचाने, श्रद्धा करे, स्थिर हो तो उसे धर्म होता है। कहीं उपदेश दे और वह समझे नहीं और धर्म हो जाए, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : ... दे, धर्म पावे...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दे। सब समझावे। आया था न? यह बात आ गयी।

यहाँ तो जरा देव कहा है न? देव कहा अर्थात् 'देउ ममं उत्तमं बोहिं' हमारा आत्मा शुद्ध आनन्द का भान सम्यग्दर्शन तो पहला है। हम आत्मा हैं, हम पुण्य-पाप के भाव नहीं, शरीर की क्रिया वह नहीं। हमारा आत्मा ज्ञानमूर्ति है, ऐसा तो सम्यग्दृष्टि को, धर्मी को पहले से भान है। वह भान होता है और वह भान न हो तो वह धर्मी नहीं है। समझ में आया? तदुपरान्त यह तो मुनि है। कुन्दकुन्दाचार्य समर्थ आचार्य हैं। अपने दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन तो है। परन्तु चारित्र की प्राप्ति अर्थात् उत्कृष्ट बोधि उन तीन की एकता की परिपूर्णता दो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह आत्मा राग की दया, दान, व्रत के विकल्प की क्रिया से भिन्न है। ऐसा भान है। सम्यग्दर्शन में ऐसा भान होता है। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं, उसे कुछ यह भान नहीं होता, उसे धर्म भी नहीं होता। परन्तु हमें अब सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति। बोधि का अर्थ यह किया। तीन की एकता। इस प्रकार आचार्य ने प्रार्थना की है। आचार्य भगवान ने (प्रार्थना की है कि) हमको तो यह चाहिए, प्रभु! हमें कोई दूसरी चीज़ चाहिए नहीं। हमारा आत्मा हमें पूर्ण पवित्रता की प्राप्ति करो, ऐसी हमारी प्रार्थना है। भगवान करते होंगे? तब तो ईश्वर करे, वैसा यह भगवान करे, दोनों एक हो गये। शान्तिभाई! करे या नहीं भगवान? दे नहीं? 'शिवपद हमको देना रे देना महाराज' गाते हैं न? 'शिवपद हमको देना' आता है या नहीं? कौन दे? शिवपद तेरे पास ही पड़ा है अन्दर देख न। वहाँ बहुत गाते हैं। ऋषभदेव भगवान के मन्दिर में। 'शिवपद हमको देना रे महाराज' महाराज कहे, तेरा शिवपद हमारे पास कहाँ है? तेरा तेरे पास है। तुझे तेरी खबर नहीं और तू यहाँ माँगने आया? यहाँ तो भान है, यह कहते हैं। समझ में आया?

कुन्दकुन्दाचार्य जैसे समर्थ महामुनि, जो धर्म के स्तम्भ, वे कहते हैं कि प्रभु! हमारा आत्मा पुण्य-पाप के राग और शरीर और वाणी रहित है, ऐसा हमें भान है। हमारे आत्मा का ज्ञान हमें है और आत्मा में-स्वरूप में स्थिरता के आनन्द की चारित्रदशा है। परन्तु प्रभु! तुझे तो पूर्ण हो गया है। ऐसा कहते हैं। तो मुझे पूर्ण होने की प्राप्ति दो। अर्थात् अपने आत्मा में यह भावना करते हैं। समझ में आया? गजब बात, लो! ऐसा

कहते हैं कि कोई दे नहीं और फिर माँगे। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे! यह तो निमित्त के कथन हैं। अर्थ न समझे तो इसमें गड़बड़ उठे।

भावार्थ :- यहाँ और तो पूर्वोक्त प्रकार जानना,... १५१ में कहा न? यह सब अर्थ समझना। चार कर्म का नाश। **सकल विशेषण का यह आशय है...** सकल शब्द पड़ा है न? यह सकल। सकल अर्थात् कल अर्थात् शरीरसहित। १५२ का पहली लाईन का अन्तिम शब्द। भगवान सकल है। सकल अर्थात् शरीरसहित है। कल अर्थात् शरीर, स अर्थात् सहित। यहाँ अरिहन्त की व्याख्या है। अरिहन्त को सकल है-शरीरसहित है। सिद्ध शरीररहित है। इसलिए कहते हैं कि यदि शरीर न हो तो उपदेश नहीं हो सकता, ऐसा। यह सिद्ध करना है। सकल कहकर ऐसा (सिद्ध करना है)। शरीरसहित अर्थ।

तीन भुवनरूपी भवन को प्रकाशित करने के लिये प्रकृष्ट दीपकतुल्य देव हैं,... मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति करने के जो उपदेश हैं, वह वचन के प्रवर्ते बिना नहीं होते हैं... देखो! मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति के उपदेश हैं, वह वचन के प्रवर्ते बिना नहीं होते हैं और वचन की प्रवृत्ति शरीर बिना नहीं होती है,... शरीर न हो और वचन निकले? इसलिए अरहन्त का आयुर्कर्म के उदय से शरीरसहित अवस्थान रहता है... भगवान को भी जब तक आयुष्य हो, तब तक शरीर में रहते हैं। आहाहा! समझ में आया? केवलज्ञान पाये, वीतराग हुए, आनन्द पाये, परन्तु जब तक आयुष्य बाकी है, तब तक शरीर में रहते हैं। पूर्ण नाश हो जाएगा, तब सिद्ध हो जाएँगे।

अरहन्त का आयुर्कर्म के उदय से... लो, उन्हें भी अभी आयुष्य कर्म बाकी है। शरीर सहित अवस्थान रहता है... शरीरसहित भगवान रहते हैं। महाविदेह में तीर्थकर भगवान विराजते हैं। १५२ गाथा का अर्थ चलता है। इस तरह अनेक जीवों का कल्याण करनेवाला उपदेश होता रहता है। देखो! शरीर है तो वाणी है। वाणी है, अनन्त जीवों के कल्याण के उपदेश की वाणी निकलती है। कल्याण का उपदेश, हों! आहाहा! यदि वाणी न हो तो हमने क्या जाना, यह कहने का कोई प्रसंग नहीं रहता। वाणी, वाणी स्वतन्त्र है। वाणी का कोई कर्ता नहीं। परन्तु शरीर है, इसलिए वह वाणी होती ही है। निकले तब तक, हों! एक तो यह सिद्ध किया कि अरिहन्त को आयुर्कर्म है, इसलिए शरीरसहित हैं। एक बात।

और, सुस्वर आदि नामकर्म के उदय से वचन की प्रवृत्ति होती है। कण्ठ-कण्ठ। नामकर्म की एक सुस्वर प्रकृति है। आठ में नामकर्म है न? ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, (अन्तराय) वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, (गोत्र), नामकर्म। नाम में सुस्वर। यह नामकर्म का उदय है, इसलिए भगवान की आवाज निकलती है। समझ में आया? उसके कारण आवाज निकलती है, आत्मा के कारण नहीं। समझ में आया? यह ध्वनि है। यह तो जड़ है, मिट्टी है, देखो न! यह भी जड़ है। आवाज उठती है, वह जड़ है। वह कहाँ आत्मा है? आत्मा तो अरूपी ज्ञानघन, वह आत्मा है। इसलिए वाणी सुस्वर के कारण निकलती है, ऐसा कहते हैं। शरीर आयुष्य की स्थिति के कारण से रहा हुआ है, ऐसा कहते हैं। दो बातें सिद्ध करते हैं। शरीर क्यों रहा? कि आयुष्य कर्म बाकी है, इसलिए रहा। वाणी क्यों निकलती है? कि सुस्वर के उदय के कारण वाणी निकलती है। लो! यह दूसरे उपदेशक कहे, हम वाणी का उपदेश देते हैं, यह मान्यता अज्ञान है। वह तो वाणी की आवाज है, वह तो सुस्वर की क्रिया है। वह आत्मा की क्रिया नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

सुस्वर आदि नामकर्म के उदय से वचन की प्रवृत्ति होती है। इस तरह अनेक जीवों का कल्याण करनेवाला उपदेश होता रहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वीतराग की वाणी में वीतरागता का उपदेश आता है। तेरा स्वरूप ही, हे आत्मा! ज्ञानघन है, आनन्दकन्द है। उसकी श्रद्धा और उसका ज्ञान कर और उसमें स्थिर हो, यह धर्म। ऐसी वाणी वीतराग के मुख में आती है। ऐसी वाणी वीतराग के अतिरिक्त किसी के मुख में नहीं आ सकती। आहाहा! समझ में आया? कल्याण को करनेवाली, ऐसा कहा है न? कि स्वर्ग को मिलनेवाली? कल्याण-बल्याण पागल दुनिया माने, इसलिए क्या हुआ? स्वर्ग मिले और यह धूल-पैसा मिले, वह कल्याण होगा?

यहाँ तो वीतराग का उपदेश तो कल्याण करनेवाला है। उनके उपदेश में पुण्य कर और पुण्य से स्वर्ग मिलेगा, यह वीतराग की वाणी नहीं है। समझ में आया? बतलाते हैं। आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करे, उसे धर्म होता है और उसमें रागादि भक्ति आदि होवे तो उसमें पुण्य होता है। पुण्य से स्वर्गादि मिले और इस स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करे, उससे मुक्ति मिलती है। ऐसा वीतराग की वाणी में कल्याण का उपदेश

आता है, ऐसा कहते हैं, देखो न! ओहोहो! स्वयं पूर्ण कल्याण किया है। सर्वज्ञ और वीतराग पूर्ण हो गये हैं। उनका उपदेश कल्याण का आता है। सर्वज्ञ और वीतराग होओ। अल्पज्ञ और राग छोड़। समझ में आया? अभी भगवान किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। भगवान का उपदेश कैसा आता है, इसकी खबर नहीं होती। और धर्म कैसे होता है, इसकी खबर नहीं होती और हो गया धर्म! आहाहा! समझ में आया?

अनेक जीवों का कल्याण करनेवाला उपदेश होता रहता है। अन्यमतियों के ऐसा अवस्थान (ऐसी स्थिति) परमात्मा के सम्भव नहीं है,... क्या? शरीर सम्भव नहीं, उसे वाणी नहीं होती। ऐसे को परमात्मा सिद्ध करे, वे परमात्मा तो उपदेश दे नहीं सकते। यह तो फिर क्या हुआ? इसलिए उपदेश की प्रवृत्ति नहीं बनती है,... ऐसा कि आत्मा शुद्ध हो जाए, अर्थात् देह से छूट जाए। फिर उसे देह रहे नहीं, ऐसा। शुद्धता प्रगट हो तो देह रहे नहीं। ऐसा नहीं कहते हैं। ऐसे परमात्मा की यहाँ बात नहीं है। पूर्ण दशा प्रगट होने पर भी देह रहती है, वाणी प्रवर्तती है सुस्वर नामकर्म के कारण। देखो! नामकर्म बाकी है न? आयुष्य के कारण देह में रहे, सुस्वर नामकर्म के कारण वाणी निकले। लो! नाम, गोत्र, वेदनीय। बाकी दो कर्म वर्णन किये। अभी भगवान को चार कर्म बाकी हैं न? आयुष्य, नाम, गोत्र और वेदनीय। भगवान अरिहन्त को चार बाकी हैं। उसमें से इन दो कर्मों का फल बताया। देखो! यह शरीर है, उसमें रहना वह आयुष्य कर्म के कारण से। आवाज निकलना, भगवान का उपदेश निकलना, वह नामकर्म के सुस्वर के कारण से है। सिद्ध भगवान को शरीर और नामकर्म नहीं है, इसलिए उन्हें कुछ शरीर में रहने का नहीं है और वाणी भी नहीं है। समझ में आया?

अन्यमती का ऐसा स्वरूप नहीं हो सकता, परमात्मा का, ऐसा कहते हैं। वीतरागदेव के अतिरिक्त, जैन परमेश्वर के अतिरिक्त ऐसी बात दूसरे अन्य में कहीं नहीं हो सकती। समझ में आया? इसमें ऐसा कहे भगवान मुझे देना, भगवान मुझे दे। ... प्रभु रखे, वैसा रहना भाई! क्या करना? ऐई! प्रकाशदासजी! वे कहते थे। यह बोले तुम्हारे जैन के कितने ही भगवान कहे, वह करना भाई अपने क्या, भगवान क्या करे? भगवान करे क्या? समझे बिना के ... रखे। कुछ खबर नहीं होती। भगवान करे वह सही अपने को। भगवान की मर्जी है। उन भगवान की मर्जी। भगवान की मर्जी कैसी? भगवान करे

क्या ? किसका ? वे तो केवली हैं, सर्वज्ञ वीतराग हैं। इस जैन के वाड़ा में पड़े, वे भान बिना के हैं। भगवान करे वह सही भाई, भगवान दे तो लेना। भगवान की मर्जी हो, वैसे होगा ? ऐसा जैन में भी बोलते हैं समझे बिना के, भान बिना के। भगवान पैसा दे और अपने को खर्च करना। लो, एक व्यक्ति ऐसा बोलता है। प्रभु दे, वैसे अपने को खर्च करना। धूल भी नहीं देते, सुन न! भगवान पैसा देते होंगे ?

मुमुक्षु : भगवान की मानौती माने...

पूज्य गुरुदेवश्री : मनौती माने तो मिथ्यात्व लगे। भगवान देते होंगे ? भगवान के पास है ? भगवान के पास तो अनन्त ज्ञान और आनन्द है। उसकी पहिचान कर तो तुझे तेरे में से मिलेगा। बाहर में कहाँ मिले ऐसी है कोई चीज़ ? आहाहा! मनौती माने भगवान की लड़का होने के लिये, पैसा होने के लिये। सब भटक मरने के उल्टे रास्ते हैं। भ्रमणा-मिथ्यात्व है। यह तो कहते हैं न, उन्होंने उपदेश दिया। ऐसा निमित्त से कहना। उस उपदेश प्रमाण कल्याण का मार्ग देख। तेरा कल्याण तुझमें पड़ा ही है। वह अन्दर कल्याणस्वरूप ही भगवान आत्मा है। उसका अन्तर श्रद्धा, ज्ञान और अन्तर स्थिर हो। मोक्षमार्ग हो गया। उसे मोक्षमार्गी कहते हैं। वह तुझे दिया। तब भगवान ने दिया ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ऐसा है। परन्तु गजब, भाई! जैन में रहे परन्तु इस जैन की खबर नहीं होती।

इसलिए उपदेश की प्रवृत्ति नहीं बनती है, तब मोक्षमार्ग का उपदेश भी नहीं बनता है, इस प्रकार जानना चाहिए। शरीर न हो तो वाणी नहीं होती और वाणी न हो तो उपदेश नहीं निकलता। तो उसका कल्याण का निमित्त तो बनता नहीं। क्या भगवान ने जाना केवलज्ञान में और उन्होंने क्या अनुभव किया ? यह वाणी बिना तो दूसरे को समझाने में आता नहीं। इसलिए अरिहन्त को वाणी है। शरीर है।

यह एक बड़ी बात हुई थी। (संवत्) १९८६ में। कुँवरजीभाई थे न कुँवरजी ? कुँवरजी आणन्दजी, भावनगर। परमानन्ददास भावनगर। 'वडवा-वडवा' है न ? भावनगर, ८६ की बात है। ८६ में वडवा हम गये थे बाहर निकल गये वहाँ आये। स्वयं आये। कुँवरजीभाई आये। वहाँ यह बात हुई थी। भाई! वाणी हो, शरीर हो तो वाणी निकले। इसलिए अरिहन्त को शरीर है, वाणी है। शरीर और वाणी है, हों! आत्मा को है, ऐसा

नहीं। उन्हें शरीर और वाणी का योग होता है। यदि न हो तो उन्होंने जाना क्या? अनुभव क्या किया? ऐसा दूसरे को कहने का प्रसंग तो बनता नहीं। तो दूसरे को जानना कहाँ से? समझ में आया? छद्मस्थ है, उसने पूरा जाना नहीं और केवली ने पूरा जाना। जानकर तुरन्त देह छूट जाए तो फिर दूसरों को यह जाना, तीन काल में यह जाना, छह द्रव्य देखे, मोक्षमार्ग कहा - यह सब जानने का तो मिले नहीं, कहा। वाणी होती है, परन्तु उसके कर्ता नहीं हैं। पूर्ण हो जाए इसलिए वाणी का योग छूट जाए, ऐसा नहीं है। सिद्ध हो, तो छूट जाए। फिर कुछ रहता नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं ... उन्हें तो कुछ पूछना था यह चन्द्र का। उस दिन का चलता है न? यह रॉकेट तो अभी गया, परन्तु यह चन्द्र-सूर्य का ... यह तो भगवान ने जाना, उसमें फेरफार कुछ है नहीं। भगवान ने जो कहा है, वह अभी... उसमें कुछ फेरफार नहीं है। भगवान की वाणी में आया है न, कहा। वाणी है या नहीं उन्हें? वडवा के उपाश्रय में। स्थानकवासी का उपाश्रय है वडवा में है। वहाँ ८६ की बात है। ४१ वर्ष हुए।



गाथा-१५३

आगे कहते हैं कि जो ऐसे अरहन्त जिनेश्वर के चरणों में नमस्कार करते हैं, वे संसार की जन्मरूप बेल को काटते हैं -

जिणवरचरणंबुरुहं णमंति जे परमभक्तिराएण ।

ते जम्मवेल्लिमूलं खणंति वरभावसत्थेण ॥१५३॥

जिनवरचरणांबुरुहं नमंतिये परमभक्तिरागेण ।

ते जन्मवल्लीमूलं खनंति वरभावशस्त्रेण ॥१५३॥

जो परम भक्ति राग से जिनवर पदांबुज को नमें।

वे भाव उत्तम शस्त्र से भव बेलि मूल खनन करें ॥१५३॥

अर्थ - जो पुरुष परम भक्ति अनुराग से जिनवर के चरणकमलों को नमस्कार करते हैं, वे श्रेष्ठभावरूप 'शस्त्र' से जन्म अर्थात् संसाररूपी बेल के मूल जो मिथ्यात्व आदि कर्म, उसको नष्ट कर डालते हैं (खोद डालते हैं) ।

भावार्थ - अपनी श्रद्धा-रुचि-प्रतीति से जो जिनेश्वरदेव को नमस्कार करता है, उनके सत्यार्थस्वरूप सर्वज्ञ वीतरागपने को जानकर भक्ति के अनुराग से नमस्कार करता है, तब ज्ञात होता है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का यह चिह्न है, इसलिए मालूम होता है कि इसके मिथ्यात्व का नाश हो गया, अब आगामी संसार की वृद्धि इसके नहीं होगी, इस प्रकार बताया है ॥१५३॥

गाथा-१५३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो ऐसे अरहन्त जिनेश्वर के चरणों को नमस्कार करते हैं, वे संसार की जन्मरूप बेल को काटते हैं :- लो ! १५३ गाथा । ऐसे अरिहन्त जिनेश्वर के चरण में, ... देखो ! भाषा यह । नमते हैं, वे संसार जन्म की बेल को काट डालते हैं । आहाहा ! अर्थात् कि वीतराग स्वरूप भगवान का है, ऐसा जिसने अन्तर में जाना अपना वीतरागस्वभाव । मैं दया, दान, व्रत के विकल्परहित मैं हूँ, भगवान को वे नहीं और मुझे नहीं । ऐसा जिसने आत्मा को राग और विकल्परहित जाना, वह वास्तव में भगवान को नमस्कार करनेवाला कहा जाता है ।

मुमुक्षु : भगवान को जाना किसने...

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान को जाने बिना नमस्कार किसका ? भगवान तो वीतराग हैं । वीतरागपना जाना है उसने । मैं भी वीतरागस्वरूप आत्मा हूँ । मुझमें शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के राग नहीं हैं । ऐसा जिसने-सम्यग्दृष्टि ने आत्मा का ज्ञान किया है, वह सम्यग्दृष्टि स्वभाव में नमता है, वह वीतराग के भाव को नमता है, ऐसा कहा जाता है । आहाहा ! समझ में आया ?

जिणवरचरणंबुरुहं णमंति जे परमभत्तिराएण ।

ते जम्मवेल्लिमूलं खणंति वरभावसत्थेण ॥१५३॥

१५३। आहाहा! देखो न! आचार्य को भी भक्ति उछली है न! यह शुद्धभाव है न, भगवान को शुद्धभाव पूर्ण प्राप्त हो गया। इसलिए शुद्धभाव की प्राप्ति में यह ऐसे भगवान निमित्त हैं। उनके चरणांबुज के भक्त समकित्ती, जिनेश्वरदेव के चरणकमल के तो भक्त हैं। वीतरागभाव के भक्त समकित्ती हैं, ऐसा कहते हैं। धर्मी पुण्य-पाप के भक्त नहीं। समझ में आया? धर्मी जिनवर चरण के भक्त हैं। वीतरागभाव के भक्त हैं। आहाहा! वे वीतराग को नमते हैं। जो राग की रुचि और राग के प्रेमवाले हैं, वे भगवान को नहीं नम सकते। समझ में आया?

समन्तभद्राचार्य ने कहा है, प्रभु! आपको अभव्य नहीं नमते। क्यों? ऐसे तो नमे न बाहर से। णमो अरिहन्ताणं करे, चार बोले। अन्दर में-अन्दर में राग का, जिसे पुण्य का प्रेम है वह पुण्य के राग का शुभ का प्रेम है, वह भगवान को नमता ही नहीं। वह तो राग को नमता है। ऐई! समझ में आया? समन्तभद्र की स्तुति में आता है। अभव्य सत्ता नहीं नमे प्रभु आपको। क्योंकि उस राग में पुण्य का विकल्प है, उसके रस में पड़ा है। राग से रहित मेरी चीज़ है, ऐसी श्रद्धा का भान नहीं। ऐसी श्रद्धा के भान बिना के आपको नहीं नम सकते। वे बाहर से नमते हैं, वे राग को नमते हैं। समझ में आया? देखो! एक बात। कठिन बात, बापू! वे धर्म को ऐसा मान ले बाहर से कि यह धर्म हो गया। धूल भी नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा से धर्म हो गया, ऐसा नहीं है। क्योंकि वह तो राग है और जिसे राग की रुचि है, वह वीतराग का भक्त नहीं, ऐसा कहते हैं। वह तो राग का भक्त है। समझ में आया या नहीं? बहुत कठिन बात है। पैसा कमाने के लिये राजकोट छोड़कर वहाँ कितनी मेहनत की? कितने वर्ष वहाँ बिताये? यह पुण्य हो तो मिला वहाँ। वहाँ सिरपच्ची करता है या नहीं? ऐ! मोहनभाई! पाँच-पचास लाख मिले। स्त्री, पुत्र, परिवार, सगे-सम्बन्धी छोड़कर सिर फिरावे वहाँ मुम्बई। अब धूल भी नहीं। यह वापस पुण्य हो तो मिले, उसमें कुछ पुरुषार्थ से कहीं मिलता है? धूल भी नहीं मिलता।

मुमुक्षु : मिलता नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु माल मिले किसे? क्या मिले? धूल मिले। यह हैरान-हैरान हो जाता है। देखो न यह! मलूकचन्दभाई के पुत्र कितने दुःखी हैं या नहीं? एक

लड़का वहाँ साढ़े तीन करोड़ रुपयेवाला है और एक लड़का वहाँ स्वीट्जरलैण्ड में दो करोड़वाला है और पाँच करोड़ के दो लड़के हैं। पाँच करोड़ के दो लड़के हैं।

मुमुक्षु : इनको लाभ कितना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल का भी लाभ नहीं। वहाँ गये थे तो कुछ दिया नहीं। अभी जा आये हैं वहाँ। बड़े लड़के के पास जा आये थे। उसके पास दो करोड़ हैं। लड़के को कुछ नहीं है। एक लड़की ही है। यह जा आये थे अभी पौने दो महीने वहाँ स्वीट्जरलैण्ड। कुछ दिया नहीं। विचारा हुआ नहीं। ऐ.. ऐ... करके चले आये। इनके भाव करके। क्या करे ?

मुमुक्षु : रुपये थे तो देने के लिये थे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका पिता आया घर में पौने दो महीने (रहा)। यह तो फिर जाने दिया उसने। एक शब्द कहा, इसलिए मैं समझ गया। ओय मा भाव... भाव... क्या परन्तु ? बात भी एक न्याय से तो सच्ची। और जो लक्ष्मी जहाँ जानेवाली हो, वहाँ जाए और अन्यत्र जाए भी नहीं।

मुमुक्षु : उसके ऊपर नाम लिखा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा हुआ है वह।

मुमुक्षु : मलूकचन्दभाई का नाम नहीं लिखा था तो नहीं मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने नहीं कहते कि खानेवाले का दाने-दाने पर नाम है। नहीं आता ? इसका अर्थ क्या ? कि जो दाना आनेवाला हो, वह आनेवाला है। जो नहीं आनेवाला, वह नहीं आनेवाला। तेरे प्रयत्न से ले और छोड़, इस बात में कुछ माल नहीं है। आहाहा ! ऐसा वीतराग का मार्ग, कुछ खबर नहीं होती। दाने के ऊपर नाम है। आता है या नहीं तुम्हारे ? क्या कहते हैं ? 'दाने-दाने पर लिखा है खानेवाले का नाम।' मोहर है, मोहरछाप है। ऐसे भगवान भी ऐसा कहते हैं। जो दाना जहाँ आनेवाला है, वह आनेवाला है। वह तुझसे आवे या तुझसे रुके, ऐसा तीन काल में नहीं है। ऐसा होगा ? दिलीप के पास पैसा-बैसा। तेरा पिता बहुत कमाता है न अभी ?

मुमुक्षु : नहीं, प्रभु ! कुछ नहीं कर सकता। क्या करे ? खाली खोटे भाव करके

मर जाए। संसार में भटका करे चार गति में। भाव किया करे और भटका करे।

मुमुक्षु : सीधी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सीधी करता है। परन्तु यह तेरा दादा बैठा है देखो यहाँ। वह भी करते थे न सब ?

मुमुक्षु : नहीं, वे भी नहीं करते।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! 'जिणवरचरणंबुरुहं'।

अर्थ :- जो पुरुष परम भक्ति अनुराग से जिनवर के चरणकमलों को नमस्कार करते हैं... आहाहा! इसकी व्याख्या ही ऐसी है। इसे यह भगवान है, इसलिए ऐसे नमं और चरण-वन्दन करूँ, ऐसा नहीं। यह भगवान वीतराग है। ऐसा ही मेरा वीतरागस्वभाव है। मेरी जाति के वे हैं और उनकी जाति का मैं हूँ। ऐसा आत्मा का पुण्य-पाप के विकल्प से रहित स्वभाव, वह जिसने जाना हो, वह उन्हें नमे, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अन्दर में तो राग का रस है। वीतराग का उपदेश तो वीतरागभाव का है। उस उपदेश को तो इसने माना नहीं, जाना नहीं। भगवान कैसे राग का अभाव करके वीतराग हो गये। राग रखनेयोग्य हो तो उन्होंने कैसे नहीं रखा? राग का अभाव करके, दया, दान, व्रत के विकल्प का अभाव करके वीतराग हुए। क्योंकि यह विकल्प-राग था। उनके उपदेश में यह बात आयी थी। ऐसे वीतराग के चरणकमल को नमे कि जिन्होंने वीतरागी उपदेश दिया और जिन्हें वीतरागीभाव दृष्टि में आया है, उस वीतराग में ही जिसका बहुमान है। अपना स्वभाव वीतराग, उसमें जिसका बहुमान है, वह वीतराग को सचमुच नमता है। आहाहा! राग में जिसका बहुमान है और ऐसे वीतराग को नमे, वह कहते हैं कि मुझे नमता नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया या नहीं? कठिन बात है। जादवजीभाई!

कहते हैं, जिसे वीतराग का प्रेम है, उसे राग का प्रेम अन्तर में नहीं हो सकता और जिसे राग का प्रेम है, वह वीतराग का भक्त नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया? जो पुरुष परम भक्ति अनुराग से... लो! 'परमभक्तिराण' ऐसा शब्द है न? 'परमभक्तिराण' ऐसा शब्द है। परमभक्ति। परमभक्ति। अकेली भक्ति नहीं। तब परमभक्ति

का विकल्प किसे उठे ? कि जिसे वीतरागभाव की श्रद्धा-ज्ञान वीतरागभाव, वह धर्म है। ऐसे बीच में राग आवे, वह धर्म नहीं। ऐसी जिसे दृष्टि हुई हो, वह वीतराग के परमभक्त कहे जाते हैं। समझ में आया ?

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, लो ! परम भक्ति अनुराग से... यह 'राएण' का अर्थ किया न ? 'राएण' जिनवर के चरणकमलों को नमस्कार करते हैं... आहाहा ! जिन्हें-परमात्मा को निर्विकल्प वीतराग आनन्द प्रगट हुआ है, ऐसी निर्विकल्प परमानन्ददशा वह मेरा स्वरूप ही है। ऐसे स्वरूप की जिसे दृष्टि हुई है, वही भगवान के चरणकमल को नमता है, वह उनका भगत कहलाता है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसे राग के रसिया पड़े हों अन्दर में। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो राग है, शुभभाव है। उसका जिसे रस है कि इसमें से मुझे कल्याण होगा, वह वीतराग का भक्त है ही नहीं। वह तो राग का भक्त है। समझ में आया ?

ऐसा जीव वे श्रेष्ठभावरूप शस्त्र से... देखो ! श्रेष्ठ अर्थात् स्वभाव सन्मुख का भाव है उसका। शुद्धभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! पुण्य-पाप का भाव है, वह तो अशुद्ध है। हिंसा, झूठ, चोरी, वह अशुभ है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह शुभ है। दोनों अशुद्ध हैं, दोनों राग हैं। रागरहित आत्मा का श्रेष्ठभाव। शस्त्र से जन्म अर्थात् संसाररूपी बेल के मूल जो मिथ्यात्व आदि कर्म, उनको नष्ट कर डालते हैं... देखो ! ठीक ! मिथ्यात्व का नाश करता है वह यह। उसमें आया था न ? धवल में। जिनबिम्ब के दर्शन से मिथ्यात्व का नाश करे। यह और यहाँ आया। जिनबिम्ब अर्थात् आत्मा स्वयं जिनबिम्ब है। वह वास्तव में वीतरागी स्वभाव को नमे, वह जन्मबेल को टालता है। समझ में आया ? 'वरभावसत्थेण' देखो ! 'वरभावसत्थेण' श्रेष्ठभाव ... है न ? शुभराग वह वरभाव है ? शुद्धभाव। भावपाहुड़ है न ? पुण्य-पाप के भावरहित चैतन्य का शुद्धभाव, निर्मलभाव, जो आत्मभाव आत्मभाव से परिणमा, वह श्रेष्ठभाव। उस भाव द्वारा जन्मबेल को टालता है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-१५७, गाथा-१५३ से १५५, शुक्रवार, मगसर कृष्ण १२, दिनांक २५-१२-१९७०

भावार्थ :- अपनी श्रद्धा-रुचि-प्रतीति से जो जिनेश्वरदेव को नमस्कार करता है,... क्या कहते हैं ? जिसे आत्मा निजात्मा की प्रतीति, भान हुआ है, ऐसा कहते हैं। आत्मा शुद्ध निर्विकल्प, वीतरागस्वरूप है। अकेला ज्ञानस्वभाव, पवित्र स्वभाव है, ऐसी अन्तर में सम्यग्दर्शन की प्रतीति, श्रद्धा, रुचि स्व आत्मा की जिसे हुई है, वह जीव जिनेश्वरदेव को नमस्कार करता है,... वह जिनेश्वर को नमता है। जिसे आत्मा की अभी श्रद्धा ही नहीं, खबर (नहीं) कि आत्मा क्या है। आत्मा यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव से भिन्न है। ऐसी राग से भिन्न स्वरूप की श्रद्धा, निजात्मा की श्रद्धा, रुचि और प्रतीति हुई है, वह जीव जिनेश्वरदेव को नमस्कार करता है,... वास्तविक वह वीतरागदेव को नमे, उसे नमन कहा जाता है।

उनके सत्यार्थस्वरूप सर्वज्ञ-वीतरागपने को जानकर... भगवान सर्वज्ञ, सच्चा स्वरूप सर्वज्ञ है वह। एक समय में तीन काल-तीन लोक परमात्मा अरिहन्त जानते हैं। और वीतरागपने को जानकर... वे वीतराग हैं। सर्वज्ञ हैं, उन्हें इच्छा नहीं होती। सर्वज्ञ पूर्ण ज्ञान और पूर्ण निर्दोषता-वीतरागता ऐसा स्वरूप भगवान परमात्मा का है। ऐसा जानकर भक्ति के अनुराग से नमस्कार करता है... लो! अति स्नेह से, प्रीति से, प्रेम से भक्ति भगवान की अनुभव सम्यग्दर्शनसहित सर्वज्ञ को और वीतरागपने को पहिचानकर भक्ति अनुराग से करे।

तब ज्ञात होता है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का यह चिह्न है,... वीतराग सर्वज्ञदेव पूर्ण ज्ञान और पूर्ण वीतरागता, ऐसी जिसे प्रगट दशा हुई है, ऐसे परमात्मा को नमता है, वह अपने स्वरूप में भी पूर्ण सर्वज्ञ हूँ। वे प्रगटरूप हुए हैं। मैं भी सर्वज्ञ और वीतरागस्वरूप ही हूँ, ऐसी सम्यग्दृष्टि जिसे प्रगट हुई है, वह जीव प्रगट वीतराग सर्वज्ञपने को नमन कर सकता है। ऐसा है। कहो, समझ में आया ? इसलिए स्पष्टीकरण किया भाई ने-पण्डितजी ने। अपनी श्रद्धा... ऐसा लिखा है न ? आहाहा! क्या लिखा है ? क्या है इसमें ? भावार्थ। गुजराती है। निजात्म श्रद्धा। देखो! है ? हाथ नहीं आता। भावार्थ है न ? भावार्थ की पहली लाईन। अक्षर हाथ नहीं आता। निजात्म श्रद्धा शब्द है, देखो! यहाँ अपनी... हिन्दी शब्द है।

निज । निजात्मा की श्रद्धा । तब वह वीतराग का भक्त व्यवहार से हो सकता है, ऐसा कहते हैं । आहाहा ! वह स्वयं कौन है, इसकी खबर नहीं होती और यह राग की क्रिया भगवान की भक्ति करे, उस भक्ति को भक्ति नहीं कहते । ऐसा कहते हैं भगवान । सेठ ! यह कल था न, यह मुश्किल-मुश्किल से आया । इसका दूसरा अर्थ किया, देखो ! जन्म वेलड़ी, जन्म वेलड़ी काटने का आया था भक्ति से । वहाँ फिर यह दूसरा अर्थ हुआ । यह अर्थ ही दूसरा किया है । पण्डितजी ने अर्थ दूसरा किया है, पण्डित जयचन्द्रजी ने ।

अपनी श्रद्धा... क्योंकि निजात्मा की श्रद्धा के भान बिना वीतराग का भक्त नहीं हो सकता । और पंचास्तिकाय में आता है न ? भक्ति तो वास्तव में समकिति को ही भक्ति होती है । हैं ! पंचास्तिकाय में नहीं आता ? आता है न । अन्तिम लाईन में आता है । पहले शुरुआत में ।

मुमुक्षु : मोक्षमार्गप्रकाशक में उसका आधार दिया है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : आधार दिया है । उसका ही दिया है । भक्ति तो वास्तव में ज्ञानी को ही भक्ति होती है । अज्ञानी की भक्ति (सच्ची नहीं है) । क्योंकि राग की भक्ति करे, उस राग के ऊपर उसका प्रेम है । समझ में आया ? यह वहाँ पंचास्तिकाय में है । भक्ति तो भक्ति समकिति की होती है । भक्ति भगवान की होती है । जिसे आत्मा पूर्ण चैतन्यरत्न अत्यन्त निर्मलानन्द शुद्ध पवित्र वीतरागस्वरूप है, ऐसी अन्तर्मुख होकर निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान हुआ है, वही वीतराग का भक्त व्यवहार से कहा जाता है । निश्चय से अपना भक्त है । आहाहा ! समझ में आया ? क्या है ? चेतनजी ! इसमें तो मुश्किल से चला था ऐसा । भक्ति की...

उनके सत्यार्थस्वरूप... जिनेश्वरदेव का । **सर्वज्ञ-वीतरागपने को...** किसे यथार्थ श्रद्धा है ? कि यह सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा हैं । जिसे अपना स्वभाव सर्वज्ञ और वीतरागी है, ऐसा जहाँ अनुभव भान हुआ है, उसे सर्वज्ञ वीतराग, वास्तविक वीतराग हैं, उनका ज्ञान उसे होता है । समझ में आया ? तब ज्ञात होता है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का यह चिह्न है, ... आहाहा ! कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को नमे नहीं, परन्तु नमे तो वीतराग परमात्मा को ही नमे । समझ में आया ? वे यह देवी, देवला और यह सब आते हैं न ? अम्बाजी, अमुक, अमुक, उन्हें समकिति नहीं नमता, ऐसा कहते हैं । पैसे के लिये नमे तो क्या दिक्कत ?

अम्बाजी को। नहीं? पैसा दे, ऐसा कहे यह देवी-देवला को माने तो। अम्बाजी, शिकोतर, भवानी, यह चक्री चक्रेश्वरी। धर्मी को ऐसी इच्छा होती ही नहीं। धर्मी को तो वीतरागभाव की भावना होती है। आहाहा! धर्मी किसे कहना? यह बात कहते हैं।

धर्मी को तो अपने वीतराग पवित्र निर्दोष स्वभाव की दृष्टि और भान हुआ है, उस भाव की उसकी भावना होती है। उसे राग की भावना नहीं होती, तथापि वीतराग भगवान को नमने का भाव उसे आये बिना नहीं रहता। समझ में आया? **प्राप्ति का यह चिह्न है, इसलिए मालूम होता है कि इसके मिथ्यात्व का नाश हो गया,...** लो! मिथ्यात्व का नाश हुआ है। सर्वज्ञ वीतराग मेरा स्वरूप ही यह है। मैं आत्मा और सर्वज्ञपदवाला तथा वीतराग स्वभाववाला ही आत्मा हूँ। समझ में आया? अल्पज्ञ रहे और राग रहे, वह मेरा स्वभाव ही नहीं है। अल्पज्ञपने में रहना और राग रहना, वह उसका स्वरूप नहीं है। सर्वज्ञ और वीतराग के स्थानवाला आत्मा है। ऐसा जिसे अन्तर में भान है, वह सर्वज्ञ वीतराग के स्वरूप को जानकर नमस्कार करता है। उसे भगवान का व्यवहारभक्त कहा जाता है।

अब आगामी संसार की वृद्धि इसके नहीं होगी,... स्वरूप, राग-पुण्य के विकल्प से रहित है। चैतन्यस्वरूप में तो राग नहीं, भव नहीं, भव का भाव नहीं। ऐसे भव के भावरहित स्वरूप है, ऐसा जिसे भान में आया है, उसे मिथ्यात्व का नाश हुआ है। इसलिए भविष्य में संसार की वृद्धि नहीं होगी। स्वभाव में कहाँ है तो उसकी वृद्धि हो? थोड़ा राग है, वह घटकर मोक्ष पायेगा, ऐसा कहते हैं। **इस प्रकार बताया है।** लो! यह है न वह **‘वरभावसत्थेण खणंति जम्मवेल्लिमूलं’** जन्मबेल का मूल भी मिथ्यात्व है। चौरासी के अवतार का मूल तो मिथ्यात्व है। आहाहा! चौरासी के अवतार की परम्परा की पाट पड़ी है अवतार की। उसे उसका कारण तो एक मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व टले उसने जन्मबेली टाली है। जिसने मिथ्यात्व टाला नहीं, उसे जन्म की बेल तो फला ही करेगी। चौरासी के अवतार एक के बाद एक हुआ करेंगे, उसका अन्त नहीं आयेगा।

संसार की वृद्धि इसके नहीं होगी, इस प्रकार बताया है। देखा! पाठ तो ऐसा कहा **‘जम्मवेल्लिमूलं खणंति वरभावसत्थेण’** **‘वरभावसत्थेण’** अर्थात् वर अर्थात् शुद्ध प्रधान वीतरागी परिणाम आत्मा के, उनके द्वारा जन्मबेली के मूल मिथ्यात्व को छेदता है। समझ में आया?

गाथा-१५४

आगे कहते हैं कि जो जिनसम्यक्त्व को प्राप्त पुरुष है, सो वह आगामी कर्म से लिप्त नहीं होता है -

जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलिणिपत्तं सहावपयडीए ।

तह भावेण ण लिप्पइ कसायविसएहिं सप्पुरिसो ॥१५४॥

यथा सलिलेन न लिप्यते कमलिनीपत्र स्वभावप्रकृत्या ।

तथा भावेन न लिप्यते कषायविषयैः सत्पुरुषः ॥१५४॥

स्वभाव से जल-लिप्त नहीं कमलिनी पत्र प्रकृति यही।

त्यों भाव से सत्पुरुष विषय-कषाय से लिपते नहीं ॥१५४॥

अर्थ - जैसे कमलिनी का पत्र अपने स्वभाव से ही जल से लिप्त नहीं होता है, वैसे ही सम्यग्दृष्टि सत् पुरुष है, वह अपने भाव से ही क्रोधादिक कषाय और इन्द्रियों के विषयों से लिप्त नहीं होता है।

भावार्थ - सम्यग्दृष्टि पुरुष के मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय का तो सर्वथा अभाव ही है, अन्य कषायों का यथासम्भव अभाव है। मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी के अभाव से ऐसा भाव होता है जो परद्रव्यमात्र के कर्तृत्व की बुद्धि तो नहीं है, परन्तु शेष कषायों के उदय से कुछ राग-द्वेष होता है, उसको कर्म के उदय के निमित्त से हुए जानता है, इसलिए उसमें भी कर्तृत्वबुद्धि नहीं है, तो भी उन भावों को रोग के समान हुए जानकर अच्छा नहीं समझता है। इस प्रकार अपने भावों से ही कषाय-विषयों से प्रीति बुद्धि नहीं है, इसलिए उनसे लिप्त नहीं होता है, जलकमलवत् निर्लेप रहता है। इससे आगामी कर्म का बन्ध नहीं होता है, संसार की वृद्धि नहीं होती है, ऐसा आशय है ॥१५४॥

गाथा-१५४ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो जिन सम्यक्त्व को प्राप्त पुरुष है, सो वह आगामी कर्म से लिप्त नहीं होता है :- वह सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा, जिसे आत्मा निर्लेप शुद्ध चैतन्य अबद्धस्पृष्ट,

पर से बँधा हुआ नहीं, स्पर्श नहीं, पर से लिप्त नहीं। ऐसा आत्मा जिसे सम्यग्दर्शन में प्राप्त हुआ है, भान हुआ है, उसे कर्म बँधते नहीं और उसे आगामी कर्म का लेप नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलिणिपत्तं सहावपयडीए ।

तह भावेण ण लिप्पइ कसायविसएहिं सप्पुरिसो ॥१५४॥

अर्थ :- जैसे कमलिनी का पत्र... कमलिनी का पत्र आता है न? उसके रोम कोमल होते हैं। रोम, रोम बारीक (होते हैं) कि जिन्हें पानी छूता ही नहीं। पानी में पड़ा हो तथापि पानी उसे स्पर्श नहीं करता। कमलिनी की पत्र। सूक्ष्म रोम बहुत कोमल होते हैं। **कमलिनी का पत्र अपने स्वभाव से ही...** उसका स्वभाव ही ऐसा है, कहते हैं। कमलिनी के पत्र का अपने स्वभाव से ही जल से लिप्त नहीं होता है,... जल से लिप्त नहीं होता। आहाहा!

वैसे ही सम्यग्दृष्टि सत्पुरुष है... 'सप्पुरिसो' देखो! मूल पाठ है न? सत्पुरुष है न। सत्पुरुष है, सम्यग्दृष्टि जीव, वह कर्म के लेप से लिप्त नहीं होता। **सम्यग्दृष्टि सत्पुरुष है, वह अपने भाव से ही क्रोधादिक कषाय...** क्योंकि क्रोधादि कषाय करने का भाव है, वह दृष्टि में नहीं, विषय की रुचि का भाव नहीं। आहाहा! **क्रोधादिक कषाय और इन्द्रियों के विषयों से लिप्त नहीं होता है।** जिसे विषय के सुख, राग में सुखबुद्धि नहीं। चाहे तो इन्द्राणी हो या चाहे तो छियानवें हजार स्त्रियाँ हों, कहीं सुखबुद्धि नहीं है, उसे धर्मी कहते हैं। समकिति उसे कहते हैं कि जिसे आत्मा में आनन्द है, अन्यत्र कहीं उसे आनन्द भासित नहीं होता। है नहीं (तो) कहाँ से भासित हो? आहाहा!

पैसे में सुख नहीं, इज्जत में सुख नहीं, शरीर में सुख नहीं, भोग में सुख नहीं। वह सब दुःख का भाग है, वह तो राग, वह राग दुःख है। उसमें सुख कहाँ से होगा? इसलिए सम्यग्दृष्टि की दृष्टि राग में से और पर में से सुखबुद्धि, हितबुद्धि उड़ गयी है। सुखबुद्धि कहो, हितबुद्धि कहो, इष्टबुद्धि कहो, वह बुद्धि हट गयी है। आहाहा! उसे सम्यग्दृष्टि जीव कहते हैं। यह वीतराग-वीतराग के वाडा में जन्मे और भगवान-भगवान करे, ऐसा नहीं। उसे जैन नहीं कहते, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

दुनिया शरीर की सुन्दरता मांडकर, सुन्दरता के ठाठ सन्ध्या के रंग जैसे सब दिखाई दें, उसमें कहीं सुख की संज्ञा-गन्ध नहीं है। समझ में आया ? अच्छे लड़के हुए, कमाऊ हुए, पैसे इकट्ठे हुए न, समझ में आया ? ऐसा जो सुखबुद्धि का भाव, वह तो मिथ्यादृष्टि को होता है। उसे जैनपना क्या है, इसकी खबर नहीं। जैन अर्थात् कि जो दुःख और पर का सुख मेरे स्वरूप में है नहीं। मेरे स्वरूप में तो आनन्द है। ऐसी जिसकी दृष्टि निजात्मा पर आनन्द की पड़ी है, उसे जगत की कहीं किसी चीज़ में आकर्षण उसे हो, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? आहाहा! गजब भाई! ऐसे चूरमा के लड्डू हों, अरबी के (भुजिया) हों, श्रीखण्ड-पूड़ी हो। अच्छे लड़के हों, दो-पाँच लाख...

मुमुक्षु : तबीयत अच्छी न हो तो क्या करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : देखे कि ऐसा-ऐसा मेरा ऐसा खाने के अवसर में यह बुखार आया। सही अवसर में बुखार आया। घर के लोग पचास-सौ सब दूधपाक उड़ा दे। मुझे कुछ नहीं। धूल भी नहीं अब, सुन न! वहाँ कहाँ था ? उसे सुख कहाँ था ? वह तो दुःख है। दूधपाक में लक्ष्य जाना, वह राग है, वह दुःख है। आहाहा! दूधपाक तो कढ़ा हुआ आत्मा चैतन्यरस है। चैतन्यरस। आहाहा! आनन्द का रस भगवान आत्मा, उसकी रुचि और प्रेम के समक्ष जगत के किसी रस में रस नहीं पड़ता। यह सम्यग्दृष्टि ऐसा है। ऐसे भगवान सच्चे माने, ऐसा नहीं। भगवान सच्चे अर्थात् कि मैं सच्चा। मैं सच्चा अर्थात् मैं सुखरूप सच्चा, ऐसा। मेरे अतिरिक्त दुनिया में कहीं सुख है नहीं। आहाहा!

कहते हैं, सम्यग्दृष्टि अपने भाव से ही क्रोधादिक कषाय और इन्द्रियों के विषयों से लिप्त नहीं होता है। उनसे लिप्त नहीं होता। रस न हो, वहाँ लेप कहाँ से आवे ? चिकनाहट नहीं। गोंद नहीं, वहाँ कागज किस प्रकार चिपके ? समझ में आया ? यों ही कोरा कागज चिपकाने जाए तो चिपकेगा ? गोंद हो तो चिपके। गुंदर समझते हो ? गोंद-गोंद। भाषा समझ लेना थोड़ी-थोड़ी। चिकनाहट गोंद हो। रखते हैं न गोंद नहीं रखते ? गोंद रखे इतना। ... चैक करने। ... चैक करना हो तो चुपड़ना हो गोंद। दुकान में एक गोंदिया रखते हैं। वैसे यह राग रखे, मिथ्यात्व का गोंद चिपकाता है। मिथ्यात्व का गोंद जिसने टाला है, उसे किसी पदार्थ में आत्मा के अतिरिक्त कहीं रस, कहीं रुचि, कहीं अधिकपना, कहीं आकर्षणपना उसे दिखाई नहीं देता। आहाहा! समझ में आया ?

इसलिए उसे विषय सम्बन्धी और कषाय सम्बन्धी के भाव, रस नहीं, इसलिए उसे बन्धन नहीं होता।

भावार्थ :- सम्यग्दृष्टि पुरुष के... भावार्थ है न ? सम्यग्दृष्टि धर्मी जैन को, जिसे सच्चा जैन कहते हैं। यह वाडावाले वे कहीं जैन नहीं हैं। वे तो वाडा में पड़े हैं। थैली में चिरायता भरा हो और ऊपर लिखे शक्कर। इससे कहीं चिरायता मीठा हो जाएगा ? इसी प्रकार जैन नाम धरावे। हम ऐसे जैन, हम मन्दिरमार्गी, हम स्थानकवासी, हम दिगम्बर। नाम है। वस्तु की खबर बिना ? आहाहा ! यहाँ तो सम्यग्दृष्टि—आत्मा में सुख है—ऐसी सच्ची दृष्टि। आहाहा ! सच्ची दृष्टि। सच्ची दृष्टि किसे कहते हैं ? कि आत्मा में आनन्द है। पुण्य-पाप के भाव में, दया, दान, व्रत के भाव में वह आनन्द नहीं, उसे सच्ची दृष्टि कहते हैं। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि। आहाहा ! सत्यदृष्टि। सत्यदृष्टि अर्थात् ? आत्मा का ज्ञान और आनन्द और शान्ति—वीतरागता, वह आत्मा में है। ऐसी सच्ची दृष्टि। तथा राग और पुण्य में सुख है और हित है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टि कहाँ है ? वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! दृष्टि फेर से सृष्टि है। समझ में आया ?

सम्यग्दृष्टि पुरुष के... यहाँ तो पहली व्याख्या सम्यक् अर्थात् सत्यदृष्टि पुरुष के अर्थात् सच्ची दृष्टि उसे कहते हैं कि जो सत्यस्वरूप भगवान् चिदानन्द रत्न है, अनन्त आनन्द का धाम है... आहाहा ! महा बड़ा हीरा है। सम्यग्दर्शन को भी जब रत्न कहते हैं। रात्रि में आया था। पहले भी बहुत बार कहा है। जब सम्यग्दर्शन को रत्न कहते हैं, सम्यग्ज्ञान को, चारित्र (को) रत्न कहते हैं, उसके पूर्ण फल केवलज्ञान को तो महारत्न कहते हैं। ऐसे-ऐसे महारत्न तो जिसके गुण में पड़े हैं। आहाहा ! ऐसा महाप्रभु चिन्तामणि रत्न भगवान् आत्मा, जिमें सुखसागर से डोलायमान है। जिसमें दुःख की गन्ध नहीं, विकार की गन्ध नहीं, राग को उत्पन्न होने का वह स्थान नहीं। समझ में आया ? ऐसे आत्मा को सच्ची दृष्टि करके जो श्रद्धा करे तो उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। ऐसे देव-गुरु-शास्त्र सच्चे, इसलिए सम्यग्दृष्टि-ऐसा नहीं। सच्चा तो इसका-आत्मा का स्वरूप आनन्द और शान्ति है। उसे श्रद्धा और अनुभव करे तो उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। समझ में आया ? मोहनभाई ! क्या होगा यह सब ? गजब बात।

सुख नहीं लगता हो तो छोड़ता क्यों नहीं ? और ऐसा कोई कहे। क्यों स्त्री, पुत्र

में पड़ा होता है समकिति ? सुन न ! पड़ा कहाँ है ? वह कहीं नहीं पड़ा । तुझे खबर नहीं । वह जहाँ है, वहाँ स्त्री-पुत्र नहीं और स्त्री-पुत्र में वह नहीं । वह जहाँ है, वहाँ पुण्य-पाप नहीं और पुण्य-पाप के भाव में वह नहीं । आहाहा ! कहो, कान्तिभाई ! आहाहा !

देखो न ! यह तो लिप्त नहीं होता, इसके ऊपर वजन है । लेपरहित चीज अर्थात् ? जिसमें सुखस्वरूप ही आत्मा है । अणीन्द्रिय आनन्द का रस, रस चैतन्यरस है । अणीन्द्रिय आनन्द का रस आत्मा है । ऐसी सच्ची, जैसा है, वैसी दृष्टि हुई । तब कैसे हो वह दृष्टि ? कि स्वभाव में सन्मुख होकर सत्कार करे तो हो । समझ में आया ? वीरा की एक व्याख्या आयी है । वीरा नहीं ? वीरा-वीर । उसमें आयेगा । वीर-वीर । विशेष अनन्त साम्राज्य आत्मा का जो अन्दर है । आनन्द और ज्ञान का अनन्त साम्राज्य, विशेष लक्ष्मी । उसमें है । संस्कृत में है । धीर-वीर आता है न ? पीछे । ... ऐसा ... यहाँ तो दूसरा अर्थ आया है । वीर-वीर-विशिष्ट । यह आया न ? कहाँ आया ? १५४ है । वीरा । देखो ! वीरा । विशिष्ट केवलज्ञान साम्राज्य लक्ष्मी ... स्वीकृति... उस स्वीकार के ऊपर विचार गया । वीर उसे कहते हैं कि विशिष्ट-खास केवलज्ञान साम्राज्य लक्ष्मी । ... वी का अर्थ ... वह वीरा । उसे वीर कहते हैं । समझ में आया ? उसे धीर कहते हैं और उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं । विशिष्ट ऐसा केवलज्ञान आदि साम्राज्य लक्ष्मी अपनी निज । देखो ! यहाँ साम्राज्य आया ।

उस दिन वहाँ कहा था । जामनगर । कैसे ? गुजर गये न दरबार ? दिग्विजय, दिग्विजय । वहाँ गये थे न तब ? पाव घण्टे उन्हें ... (संवत्) २०१० के वर्ष की बात है । नहीं ? लोकाशा के उपाश्रय में थे । लोकाशा के उपाश्रय में । तुम्हारा उपाश्रय लोकाशा का । तब उसने कहलवाया था । वहाँ अपना एक व्यक्ति था न रानी के पास । नौकर नहीं ? एक था । अपना स्थानकवासी था । व्यक्ति नरम । उसने कहा, महाराज गाँव में आये हैं । उनके बँगले के पास मैं दिशा को जाता था । जंगल जाना हो न दूर ? पाँच मिनट की दूरी । हमें महाराज के दर्शन करना है । मैं आ सकूँ, ऐसा नहीं है । तब यह कहा था । वह साम्राज्य यह कहलाता है । शान्तिभाई ! यह दिग्विजय और गुलाबरानी दोनों बैठे थे । सवेरे की बात थी । सवेरे मैं दिशा को वहाँ जंगल जाता था । वहाँ बेचारे तैयारी करके बैठे हुए । रंगोली-बंगोली की । रानी सामने आयी । सन्देश आया, मैं महाराज के दर्शन करने आ सकूँ, ऐसा नहीं हूँ । पाव घण्टे बैठे । यह देखो ! यहाँ का उसमें ।

केवलज्ञान साम्राज्य लक्ष्मी। आत्मा अकेली ज्ञान और आनन्दादि वस्तु है, वह निजसाम्राज्य। ऐसी लक्ष्मी को स्वीकार करे, उसे वीर और धीर और समकिति कहते हैं। आहाहा! बोले। वह बोलने में तो होशियार है न? सत्य बात महाराज। वह साम्राज्य। यह धूल में भी नहीं कहा। चला गया। कुछ नहीं मिलता। पाव घण्टे समय गया। पाव घण्टे बैठे। हजार रुपये रखे। पाव घण्टे कहा। फिर मेरे ... दूध भी (लेना का) नहीं था। सूर्य नहीं उगा था। एक हजार रुपये रखे, ज्ञान खाते में। यह राज कहलाता है। यह राज धूल का नहीं, कहा। शान्तिभाई! तुम्हारे दरबार।

वीरा-विशिष्ट केवलज्ञान साम्राज्य लक्ष्मी ... देखो! स्वीकार करे। ऐसे सम्यग्दृष्टि अपने आत्मा में आनन्द और पूर्ण ज्ञान भरा है, ऐसा स्वीकार करे। आहाहा! समझ में आया? उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। ऐसे बाहर से माने, वह कहीं (माना नहीं कहलाता)। आहाहा! सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने आत्मा परिपूर्ण आनन्द और सुख से भरपूर आत्मा देखा है और उसमें परिपूर्ण ज्ञान का साम्राज्य है। ऐसे केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति का साम्राज्य ऐसा जो भगवान, उसका जिसने अन्तर में अल्पज्ञ और राग का स्वीकार छोड़कर पूर्ण पद का स्वीकार अन्दर में करे, उसे वीर और धीर और सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! कान्तिभाई! यह रेंधा-फेंधा का यहाँ काम नहीं। यहाँ समकित हो गया। धूल भी नहीं, सुन न! कहो, समझ में आया?

मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय का तो सर्वथा अभाव ही है... लो! सम्यग्दृष्टि पुरुष के मिथ्यात्व... का भाव—पर में सुख है, पुण्यभाव में सुख है, पुण्यभाव से धर्म होता है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उसका तो नाश हो गया है। स्वभाव के आनन्द की मिठास के समक्ष पर की सब मिठास उड़ गयी है। आहाहा! धर्म -समकित हुआ वहाँ। हरितकाय का यह बड़ा फूल का गजरा नहीं आता? इतना बड़ा गजरा करते हैं न? नीचे ऐसा हो और फिर वह। वह फूल का बड़ा गजरा हो, ऐसा चौड़ा करते हैं न? पत्ते और बड़ा ऐसा। बड़ा राजा हो, उससे मान दे। यह हाथ में समल डाले, इससे कुछ कीमत नहीं रहे। इसी प्रकार कहते हैं कि आत्मा के आनन्द के समक्ष पूरी दुनिया को मसल डाली। कहीं सुख नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इसमें कुछ न कुछ अनुकूलता का एक असर कुछ आवे, वहाँ आहाहा! आहाहा! क्या है परन्तु अब? कहाँ गया खिंचकर?

घर छोड़कर परघर में कहाँ गया ? समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय का तो सर्वथा अभाव ही है,... आत्मा के स्वभाव का स्वीकार होने पर पूर्ण आनन्द की लक्ष्मी और ज्ञानलक्ष्मी का स्वीकार होने पर, सम्यग्दर्शन होने पर मिथ्यात्व का नाश होकर स्वरूप में स्थिरता का अंश होने से अनन्तानुबन्धी का नाश हुआ है। आहाहा ! मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी के अभाव से ऐसा भाव होता है। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के अभाव से ऐसे भाव होते हैं। क्या ? यद्यपि परद्रव्यमात्र के कर्तृत्व की बुद्धि तो नहीं है,... देखो ! वाह ! सम्यग्दृष्टि धर्मी जैन उसे कहते हैं कि जिसे परद्रव्य मात्र के कर्तापने की बुद्धि उड़ गयी है। इस शरीर का मैं कर सकूँ, देश का कर सकूँ, कुटुम्ब का कर सकूँ, पैसा कमा सकूँ - ऐसी परद्रव्य की कर्ताबुद्धि का नाश हुए बिना समकित नहीं होता। समझ में आया ? परद्रव्यमात्र... ऐसी भाषा ली है न ? परद्रव्यमात्र। एक शरीर, वाणी, मन, कर्म, रजकण कोई चीज़, दाल, भात, रोटी, सब्जी, इज्जत, कीर्ति, धूल, बँगले का मैं कर्ता हूँ, यह मिथ्यात्व की बुद्धि है। उसका कर्ता आत्मा नहीं है, ऐसी बुद्धि पर की उड़ गयी है। आहाहा !

मुमुक्षु : बँगला बनाना या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बनावे ? यह देखो न ! वजुभाई को करना है तो अटका पड़ा है। यह होना हो, तब होता है या यों ही होता होगा ? ऐई ! यह कराते हैं चन्द्रकान्तभाई, देखो न ! तैयार होकर पौष शुक्ल, माघ शुक्ल पंचमी कहते हैं। कहा था न ! यह तुम्हारा मिला था, वहाँ मावजीभाई। मावजीभाई न ? हो जाएगा ऐसा लगता है। ... माघ शुक्ल पंचमी। वह तो होने के रजकण के काल में होगा। वजुभाई को तो बहुत अनुभव हुआ हो न यह तो। इसी प्रकार यह एक मिला है। आहाहा ! संसार ऐसा, भगवान ! आहाहा ! यह संसार ऐसा ही होता है। ऊँट के अठारह अंग टेढ़े। यह टेढ़ा चले, वही ऊँट कहलाता है। इसका नाम संसार।

मुमुक्षु : ... होवे ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे नहीं। ऊँट के तो सब अंग टेढ़े, पैर टेढ़ा, मुख टेढ़ा, बैठने का टेढ़ा, सब टेढ़ा-टेढ़ा, अठारह अंग टेढ़े। उसमें सरल करने जाए...

मुमुक्षु : व्यवहार गति में तो टेढ़ा ही रहे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब टेढ़ा ही। सब वक्रता है।

मुमुक्षु : यह सब व्यवहार में ही रचे-पचे हो। फिर कहाँ से हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए दृष्टि बदल डालो, ऐसा कहते हैं। परद्रव्यमात्र के कर्तापने की बुद्धि धर्मी को नहीं होती। बराबर होगा यह? पैसे हजारों हुए, तेरा पिता यह हुण्डी का धन्धा करता है, ब्याज बटाव का धन्धा करता है या नहीं?

मुमुक्षु : नहीं प्रभु! किसी दिन नहीं कर सकता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कहाँ से कर सके?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा! शान्तिभाई! लड़का है न। इसके बापू बैठे हैं- दादा। इन्हें हुण्डी का व्यापार है वहाँ। हुण्डी और ब्याज बटाव का धन्धा है। इसका पिता यहाँ निवृत्त होकर बैठा है। पीछे यह बैठे इसके दादा। आहाहा! गजब बात, भाई! नवनीतभाई! ऐसा कहते थे कि दिलीप का क्षयोपशम बहुत, हों! वीर्यवाला व्यक्ति। तू आने से पहले कहता था।

मुमुक्षु : एकदम जवाब दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : जवाब दे एकदम। वीर्य से आवे वापस। ऐं... ऐं... ठेंठें नहीं। आहाहा!

आत्मा के अतिरिक्त शरीर, वाणी, मन, देह, कुटुम्ब का आत्मा कुछ नहीं कर सकता। कर सके ऐसा मानता है, वह जैन नहीं है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐई! चन्द्रकान्तभाई! सत्य होगा यह सब। इसमें खबर तो पड़ती है न! परद्रव्यमात्र के... परद्रव्यमात्र अर्थात् एक रजकण, आँख मींचकर उघाड़ना ऐसा, उसका आत्मा कर्ता नहीं। वह तो जड़ की अवस्था है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! मैं दुकान में बराबर था तो व्यवस्था व्यवस्थित चली। मूढ है, कहते हैं। उस परद्रव्य का कर्ता होता है। जो इससे हुआ नहीं और मुझसे हुआ, ऐसा मानता है। आहाहा! एक तो यह।

परन्तु शेष कषायों के उदय से कुछ राग-द्वेष होता है,... वह कहा न? कि मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी तो गये। इसलिए परद्रव्यमात्र का कर्ता तो नहीं। अब रहा

थोड़ा अभी राग। यह राग-द्वेष होता है, उसको कर्म के उदय के निमित्त से हुए जानता है,... वह मेरा स्वभाव नहीं। वह उपाधि-मैल है। आहाहा! धर्मी को राग दिखता है, वह राग को काला नाग देखता है। आहाहा! कालोतरा नाग नहीं कहते? बेचारे वह लड़का अभी मर गया। बारह वर्ष का नहीं? पालीताणा में। नाग ने डसा। यहाँ डसा। कोई बोला था कि हाथ काट डालो। शान्तिभाई कहे, यहाँ डसा था। बात सच्ची। कुछ बोला था, हाथ काट डालो। ऐसा बोला था कि यह लड़का कि काटा, कहे मुझे यहाँ से काट डालो। कौन काटे? वह तो होने की दशा। उसे काटे कौन? करे कौन? कौन काटने आये? उसे काटे कौन? लड़का भले कहे। नीचे उतरे, शरीर एकदम नीला हो गया। मर गया। यही स्थिति होनेवाली है। समझ में आया? ज्ञानी को भी ऐसा राग आवे, तब जानता है कि काला नाग। उसे कालोतरो नाग कहते थे। लड़का कहता था, अरे! बड़ा टोकरा भराये ऐसा नाग था। आयुष्य इतना। दूसरा कुछ फेरफार हो ऐसा है? इसी प्रकार से देह छूटना (था)। उसमें तीन काल में केवली भगवान ने देखा है कि इस प्रमाण होना है। उसमें फेरफार हो ऐसा नहीं है। आहाहा!

कहते हैं कि ऐसे धर्मी को राग हो, हो परन्तु वह कर्म के वैरी के संग में उत्पन्न हुआ वेरी का भाव है। आहाहा! मेरा-मित्र का भाव नहीं। पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वे कर्म के कुछ राग-द्वेष होता है, उसको कर्म के उदय के निमित्त से हुए जानता है, इसलिए उसमें भी कर्तृत्वबुद्धि नहीं है,... लो! आहाहा! परद्रव्य का कर्तापना नहीं, राग और द्वेष का विकल्प का कर्ता धर्मी नहीं। आहाहा! ज्ञानानन्दस्वरूपी भगवान को जिसने जाना और माना, वह राग का भी कर्ता नहीं। यह तो अभी राग का करना, दूसरे का कर दूँ, ऐसा कर दूँ, इस प्रकार लोग हैरान हो जाते हैं, इसलिए ऐसा हो तो हैरान नहीं हों, अमुक हो, धूल भी नहीं होगा, सुन न! अभिमान का पार नहीं होता। आहाहा!

कहते हैं कि सम्यक् सच्ची दृष्टि आत्मा की जैसी है, वैसी ज्ञाता-दृष्टा की हुई, इसलिए उसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी गये। उस सम्बन्धी तो राग और द्वेष उसे है नहीं। दूसरे अस्थिरता के राग-द्वेष आवे, उसे स्वभाव से हुआ न जानकर निमित्त की उपाधि से हुआ जानकर, उसका वह कर्ता नहीं होता। आहाहा! पूरी दुनिया छूट गयी। यह त्याग। इस त्याग की खबर नहीं होती। मिथ्यात्व के त्याग में पूरी दुनिया का कर्तृत्व

छूट गया और राग का कर्तृत्व छूट गया। इस त्याग की खबर नहीं होती और बाहर के त्याग करके बैठे फिर हम मुनि हैं और ... धूल भी नहीं, सुन न!

मुमुक्षु : बाहर का त्याग करे कौन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है न हम छोड़ते हैं। हमने छोड़ा तो ऐसा हुआ। यह शुभयोग को छोड़ने का कहते हैं, बन्ध का कारण कहते हैं। क्या कहते हैं यह ? सुन न! आहाहा!

अबन्धस्वरूप भगवान में शुभभाव तो बन्ध का कारण है, प्रभु! परन्तु तुझे न जँचे और तुझे दुःख लगे, परन्तु यह मानना पड़ेगा। यदि सुख चाहिए हो तो। यह कहीं दुनिया की सिफारिश वहाँ चले, ऐसा नहीं है कि हमको बहुत माननेवाले थे। हम कहते थे शुभभाव में धर्म है। उसे बहुत माननेवाले थे। यह प्राण फँसेंगे निकलते हुए। हाय-हाय हो जाएगा। राग की एकताबुद्धि है, उसे देह से छूटना (होगा तब) हाय हाय हो जाएगा। समझ में आया ? आहाहा! रग-रग में फेरफार हो। अन्दर रजकण-रजकण में फेरफार हो। अकेला प्रभु और यह रजकण अनन्त। किसे व्यवस्थित रखने जाएगा ? आहाहा! यह तो अनन्त रजकण धूल अजीवद्रव्य हैं। तू तो अकेला अन्दर भिन्न तत्त्व है तेरा। इस अनेक का स्वामी होकर मिट जाएगा तेरा स्वरूप। पृथक् नहीं रहता। कर्ता होगा और अपना मानेगा तो। समझ में आया ? आहाहा! कितना पुरुषार्थ है, उसकी इसे कीमत नहीं। सम्यग्दर्शन के भान बिना बाह्य का त्याग करे और फिर धर्मी है, ऐसा माने। उसमें नरक और निगोद में जाने के वे सब स्थान हैं। आहाहा! चार गति।

कहते हैं कि कर्तृत्वबुद्धि नहीं है, तो भी उन भावों को रोग के समान हुए जानकर अच्छा नहीं समझता है। वापस इतना। कर्तापने की बुद्धि नहीं, इसलिए वह पुण्य-पाप के भाव को रोग के समान हुए जानकर अच्छा नहीं समझता है। आहाहा! राग का कण, महाव्रत का कण उठे, उसे भला न जाने। उसे रोगवत् जाने, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! भगवान! शान्त होकर देख तो सही तू। शरण की चीज़ पिण्ड तो चैतन्य वीतरागी पिण्ड, वह शरण है। उस शरण को लेने के बाद उसे राग का शरण लेना नहीं रहता। आहाहा! वह राग को भला नहीं जानता। जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, उस भाव को भला नहीं जानता। पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति, हिलना, देखकर चलना

ऐसे विकल्पों को भला नहीं जानता। आहाहा! और उन्हें भला जाने तो भगवान को बुरा जाना। जिसने भगवान आत्मा को भला जाना, उसने इन्हें बुरा जाना।

कहते हैं कि बुद्धि तो कर्ता नहीं। तो भी उन भावों को रोग के समान हुए जानकर अच्छा नहीं समझता है। आहाहा! मानो कोई उपद्रव आया हो। शुभराग होने पर भी मानो उपद्रव आया हो, ऐसा ज्ञानी को लगता है। आहाहा! देखो! वीतराग का मार्ग। कहो, मोहनभाई! वीतराग का मार्ग वीतरागभाव से प्रगट होता है; राग से नहीं। आहाहा! राग को रोग जानता है, राग का कर्ता नहीं होता और राग को कर्म के निमित्त का उत्पन्न हुआ जानता है, उपाधि जानता है; मेरे स्वभाव की जाति नहीं है। तीन बातें सिद्ध की। एक तो कर्म के निमित्त से हुआ जानता है, इसलिए यह राग मेरी चीज़ नहीं है। इसलिए मैं उसका कर्ता नहीं और इसलिए वह भला है, ऐसा मैं मानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? मिथ्यात्व को मुँडे बिना बाहर से मुँडकर बैठे और फिर भटकने का दुःख हो, कुछ भान नहीं होता। आहाहा! यह ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार अपने भावों से ही कषाय-विषयों से प्रीति-बुद्धि नहीं है,... लो! बहुत सरस लिखा है। इस कारण ऐसे भाव से कषाय और विषय में प्रीति बुद्धि नहीं है। इसलिए उनसे लिप्त नहीं होता है,... लिप्त नहीं होने के इतने कारण रखे हैं। सम्यग्दृष्टि जीव अपने ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप में एकाग्रता होने से, जिसे आत्मा पवित्र शुद्ध है ऐसा भासित हुआ है, उसे जो राग होता है (तो) कहते हैं कि वह अनन्तानुबन्धी मिथ्यात्व का तो राग-द्वेष है नहीं। अब राग होता है, वह कर्म के निमित्त से उपाधि जाने और उसे कर्तापने की बुद्धि रहे नहीं और उसे रोगवत् जाने। रोगवत् जाने। ऐसा कहा न? और उसके प्रति प्रीति-बुद्धि नहीं है,... रोगवत् जाने, वहाँ तक दुःख लगा। यहाँ प्रीति बुद्धि रहे नहीं। आहाहा! देखो! पण्डित ने स्पष्टीकरण लिखा है।

इस प्रकार अपने भावों से ही... ऐसे भाव से अर्थात्? कि कर्म के निमित्त की उपाधि, कर्तापने की बुद्धि नहीं, रोगवत् जाने। ऐसे भाव से। कषाय-विषयों में प्रीति-बुद्धि नहीं है, इसलिए उनसे लिप्त नहीं होता है,... आहाहा! समझ में आया? जलकमलवत् निर्लेप रहता है। आहा! जलकमलवत्। जैसे जल में कमल निर्लेप है, उसे कहीं पानी का लेप नहीं लगता। पानी ऐसे ऊँचा किया तो सब पानी समाप्त। निर्लेप-निर्लिप्त

कमल। इसी प्रमार सम्यग्दृष्टि जीव उसे कहते हैं संसार में गृहस्थाश्रम में दिखाई दे तथापि, वह छह खण्ड के राज में भरत चक्रवर्ती थे। ऋषभदेव के पुत्र। 'भरतजी घर में वैरागी...' आता है या नहीं? घर में वैरागी। अरे! मेरी चीज़ तो कहीं बाहर नहीं। जहाँ मैं हूँ, वहाँ राग और पुण्य तथा कर्म, शरीर कुछ नहीं है। किसे मेरा कहूँ और किसे मेरा न कहूँ? आहाहा! मेरा भगवान तो मेरे पास है। मैं हूँ। पास है, इसका अर्थ कि मैं हूँ। आहाहा! मैं स्वयं ही आनन्द और ज्ञान का धारक ईश्वर हूँ। यह रागादि मेरी चीज़ नहीं, इस परवस्तु का मैं कर्ता नहीं। समझ में आया? ऐई! प्रकाशदासजी! है इसमें? पढ़ने में भी देरी लगे। अभ्यास थोड़ा है न। ऐसा पढ़ा नहीं, पढ़ा तो होगा सब। क्या कहलाता है वह? ...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। यह वस्तुस्थिति, वस्तु का स्वरूप यह है। आहाहा!

इससे आगामी कर्म का बन्ध नहीं होता है, ... इस कारण से। जितने कारण दिये, इस कारण से उसे बन्ध नहीं होता। संसार की वृद्धि नहीं होती है, ऐसा आशय है। लो!



गाथा-१५५

आगे कहते हैं कि जो पूर्वोक्त भाव सहित सम्यग्दृष्टि सत्पुरुष हैं, वे ही सकल शील संयमादि गुणों से संयुक्त हैं, अन्य नहीं हैं -

ते ऽच्चिय भणामि हं जे सयलकलाशीलसंजमगुणेहिं ।

बहुदोषाणावासो सुमलिणचित्तो ण सावयसमो सो ॥१५५॥

तानेव च भणामि ये सकलकलाशीलसंयमगुणैः ।

बहुदोषाणामावासः सुमलिनचित्तः न श्रावकसमः सः ॥१५५॥

जो भाव संयम शील गुण सब कलावान वही मुनि।

बहु दोष-गृह मन मलिन-युत श्रावक-समान भि वह नहीं ॥१५५॥

अर्थ - पूर्वोक्त भावसहित सम्यग्दृष्टि पुरुष हैं और शील संयम गुणों से सकल कला अर्थात् सम्पूर्ण कलावान् होते हैं, उन ही को हम मुनि कहते हैं। जो सम्यग्दृष्टि नहीं है, मलिनचित्तसहित मिथ्यादृष्टि है और बहुत दोषों का आवास (स्थान) है, वह तो भेष धारण करता है तो भी श्रावक के समान भी नहीं है।

भावार्थ - जो सम्यग्दृष्टि है और शील (उत्तर गुण) तथा संयम (मूलगुण) सहित है, वह मुनि है। जो मिथ्यादृष्टि है अर्थात् जिसका चित्त मिथ्यात्व से मलिन है और जिसमें क्रोधादि विकाररूप बहुत दोष पाये जाते हैं, वह तो मुनि का भेष धारण करता है तो भी श्रावक के समान भी नहीं है, श्रावक सम्यग्दृष्टि हो और गृहस्थाचार के पापसहित हो तो भी उसके बराबर वह केवल भेषमात्र को धारण करनेवाला मुनि नहीं है - ऐसा आचार्य ने कहा है ॥१५५॥

गाथा-१५५ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो पूर्वोक्त भावसहित सम्यग्दृष्टि सत्पुरुष हैं, वे ही सकल शीलसंयमादि गुणों से संयुक्त हैं, अन्य नहीं है :- अब सम्यग्दृष्टि उपरान्त शीलगुण वाला हो, उसे यहाँ मुनि कहा जाता है। ऐसा सिद्ध करते हैं। आचार्य कहते हैं, अहो! मुनि किसे कहें ?

ते च्चिय भणामि हं जे सयलकलासीलसंजमगुणेहिं ।

बहुदोसाणावासो सुमलिणचित्तो ण सावयसमो सो ॥१५५॥

अर्थ :- पूर्वोक्त भावसहित सम्यग्दृष्टि पुरुष हैं... जो कोई पहला तो सम्यग्दृष्टि हुआ है। राग के प्रेम को छोड़ा है, राग को भला नहीं जानता, राग में सुखबुद्धि नहीं है। स्वभाव में सुखबुद्धि हुई है, स्वभाव को भला जानता है। मेरा इष्ट हो तो मेरा स्वरूप शुद्ध, वह इष्ट है। मेरे इष्टजन, नहीं कहते ? इष्टजन तो मेरा मेरे पास है। मेरा ज्ञान, मेरा आनन्द, मेरी शान्ति, स्वच्छता, वीतरागता वे मेरे इष्टजन हैं। आहाहा! बाहर में कोई इष्टजन है नहीं।

१. पाठान्तरः - चिय !

२. पाठान्तरः - ह्ज्जान् अपि ।

पूर्वोक्त भावसहित... पूर्व में कहा, ऐसी दृष्टि करके। सम्यग्दृष्टि पुरुष हैं और शील संयम गुणों से सकल कला अर्थात् सम्पूर्ण कलावान होते हैं,... और फिर जिसे अन्तर की वीतरागता बढ़ गयी है। राग के कणों का अभाव अस्थिरता हुई, नाश करके जिसने अन्तर के आनन्द का उछाला अन्दर से मारा है। आहाहा! केवलज्ञान की कला के साथ ही स्वयं क्रीड़ा करता है। शील और संयम स्वरूप में रमता है। शील है, संयम है। अन्तर की इन्द्रियाँ अणीन्द्रिय की जिसे प्रगट दशा हुई है। सकल कला अर्थात् सम्पूर्ण कलावान होते हैं,... पूर्ण शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... देखो! यहाँ मुनि को भी कलावान कहा। श्रावक अमुक कलावाले हैं। आता है न? समझ में आया? ऐसा आता है कहीं, हों! श्वेताम्बर में तो आता है। ऐसे ... श्रावक को अमुक कला होती है, मुनि को अमुक कला होती है, ऐसा कहीं आता है, हों! देखो! यहाँ है यह, हों!

कला अर्थात् सम्पूर्ण कलावान होते हैं,... यह मुनि की बात हुई। सम्यग्दृष्टि उपरान्त अब। नहीं तो केवली को कला गिनते हैं परन्तु यहाँ तो सकल कलावान को मुनि कहा है। पूर्ण वीतरागता प्रगट हुई है। मुनि उसे कहते हैं। जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन पहले कहा, वह तो हो, तदुपरान्त जिसे स्थिरता में आनन्द की लहर उठी है। अतीन्द्रिय आनन्द के समक्ष जिसे विकल्प बहुत अल्प संज्वलन के अल्प हो गये हैं। आहाहा! जिसकी देह भी नग्न हो जाती है। जंगल में बसते हैं, वे मुनि। समझ में आया? ऐसा स्वरूप ही इसने सुना न हो।

कहते हैं, शील संयम गुणों से सकल... बाहर की नहीं, हों! बाहर अकेले ब्रह्मचर्य शरीर से पाले, वह नहीं। ऐसा तो अभव्य भी पालता है। आत्मा के आनन्द में लीनता का जिसका स्वभाव स्थिर हो गया है। जिसे ब्रह्मानन्द प्रगट हुआ है। आहाहा! ब्रह्म अर्थात् आत्मा का आनन्द जिसे उग्र प्रगट कर जिसका स्वभाव ही आनन्दमय हो गया है। संयम है। सहज इन्द्रिय की ओर का झुकाव का भाव ही छूट गया है। अणीन्द्रिय की ओर की जागृति की उग्रता जिसे प्रगट हुई है। वह सकल सम्पूर्ण कलावान होता है। लो! सकल कला।

उन्हीं को हम मुनि कहते हैं। आचार्य कहते हैं कि उसे हम मुनि कहते हैं। बाकी अकेले वेशधारी, जो बाहर के स्त्री-पुत्र छोड़कर बैठे, वस्त्र बदले, नग्न हुए, इसलिए

साधु। उन्हें हम साधु नहीं कहते। आहाहा! समझ में आया? आचार्य महाराज स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य (ऐसा कहते हैं)। पाठ में है न? 'च्चिय भणामि हं' उन्हें हम साधु कहते हैं, ऐसा। ऐसा आया है न पाठ में? **उन्हीं को हम मुनि कहते हैं।** जिन्हें आत्मा के आनन्द का अनुभव हुआ है और आनन्द उपरान्त जिन्हें वीरता और वीतरागता अन्दर से बढ़ गयी है और जो जंगल में आनन्द में बसते हैं। जिन्हें जगत के संग का प्रसंग नहीं और जिसे आत्मा के असंग में जिसकी लीनता बढ़ गयी है, उसे हम मुनि कहते हैं। आहाहा! वह सच्चे सन्त हैं, बापू! समझ में आया? क्या कहें? **उन्हीं को हम मुनि कहते हैं।**

जो सम्यग्दृष्टि नहीं है,... जिसे अभी सम्यग्दर्शन का भान नहीं और मान बैठे हैं कि हम साधु हैं, हम जैन हैं, उनकी यहाँ बात नहीं करते। **मलिनचित्तसहित मिथ्यादृष्टि है...** वे तो पुण्य-पाप के परिणाम को भला जानकर मिथ्यादृष्टि सेवन करते हैं। आहाहा! समझ में आया? **बहुत दोषों का आवास (स्थान) है...** मिथ्यात्व है—जहाँ पुण्य के परिणाम में प्रेम है, रुचि है, बुद्धि है, राग का कर्ता होता है, वहाँ तो उसका मलिन चित्त बहुत दोष का स्थान है। आहाहा! उस कला के साथ मिलाया। ज्ञानी सर्व कलावान है। तब यह दोष का आवास है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! टीका में है।

वह तो वेश धारण करता है तो भी श्रावक के समान भी नहीं है। समकित्ती श्रावक समान भी वह मुनि कहने में नहीं आता। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१५८, गाथा-१५५ से १५७, शनिवार, मगसर कृष्ण १३, दिनांक २६-१२-१९७०

अष्टपाहुड़, भावपाहुड़ की १५५ गाथा। १५५ है।

भावार्थ। अर्थ आ गया है, देखो! यह भावप्राभृत अधिकार है। अर्थात् भावना में शुद्धभाव। आत्मा, यह शुभ-अशुभ विकल्प जो है न दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, जप, तप का जो भाव है, वह शुभराग है। आहाहा! उस राग से रहित आत्मा का स्वरूप है उसकी जिसे अन्तर्दृष्टि सम्यक् होती है, उसे सत्य शुद्ध स्वरूप का, आनन्द का स्वाद चखकर प्रतीति होती है। उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। यह कहा न पहले?

जो सम्यग्दृष्टि है... ऐसा। सम्यग्दृष्टि अर्थात् यह। लोग मानते हैं कि हम देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं, नव तत्त्व को मानते हैं, इसलिए सम्यग्दर्शन, यह नहीं। इसे सम्यग्दर्शन भगवान नहीं कहते। सम्यग्दर्शन तो आत्मा पूर्ण शुद्ध आनन्द चैतन्यरत्नाकर अखण्ड आनन्द का सागर है। उसके सन्मुख होकर निमित्त, राग और एक समय की पर्याय से विमुख होकर स्वभाव का अन्तर भान होना और दृष्टि होना, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

जो सम्यग्दृष्टि है और... तदुपरान्त। शील (-उत्तरगुण) तथा संयम (-मूलगुण) सहित है... अन्तर के स्वरूप की रमणता—जिस प्रचुर आनन्द की दशा प्रगट हुई है और संयम के मूलगुण, उत्तरगुण आदि से सहित है, वह मुनि। जैन शासन में उसे मुनि कहा गया है। कहो, समझ में आया? शान्तिभाई! सूक्ष्म बात है। जिस-तिस उस वेशधारी को मुनि (माने), वह मुनि नहीं है, ऐसा यहाँ कहते हैं। वस्त्र पहने, महाव्रत हो गये तो साधु हो गये, वे साधु नहीं हैं। यहाँ वीतरागमार्ग में तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ यह मार्ग, वह तो जिसे आत्मा का अन्तरभान हो, सम्यग्दर्शन हो, तदुपरान्त जिसमें आत्मा की रमणता पवित्र और शुद्धता की उज्ज्वलता बहुत हो, उसे जैन में मुनि कहा जाता है। समझ में आया? वह मुनि है। है न?

और जो मिथ्यादृष्टि है अर्थात् जिसका चित्त मिथ्यात्व से मलिन है... अर्थात् जिसके पुण्य और दया, दान, व्रत के भाव वे मेरे हैं, ऐसी जिसके चित्त की वृत्ति

मिथ्यात्व से मलिन है। समझ में आया? महाव्रत के परिणाम जो कहते हैं अहिंसा, सत्य, वह भी राग का भाग है। आहाहा! वह वीतरागमार्ग नहीं। उस राग से अपने को लाभ होता है, उस पुण्य की क्रिया से जीव को लाभ होता है, ऐसा जिसका मिथ्यात्व से चित्त मलिन है। समझ में आया? **और जिसमें क्रोधादि विकाररूप बहुत दोष पाये जाते हैं,...** और क्रोध, मान (सहित है), वस्तु का भान नहीं। आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु, ज्ञान का अवतार, वह तो ज्ञान का रूप उसका पूरा है। उसके भान बिना स्वरूप में उसे स्थिरता नहीं होती, इसलिए उसका मलिन चित्त होता है। इन पुण्य के परिणाम के साथ एकत्वबुद्धि। दया, दान, व्रत, पूजा, तप आदि का भाव है, वह विकल्प है, राग है। उसके साथ जिसकी एकत्वबुद्धि मलिन है, वह क्रोधादि के दोष जो उसमें होते ही हैं। **वह तो मुनि का वेश धारण करता है...** वह मुनि का वेश धारण करे, नग्न दिगम्बर हो। सूक्ष्म बात है। वह मुनि वेश कहलाये, हों! यह वस्त्रवाले, वह मुनि वेश भी नहीं है। जैनदर्शन में तो उसे मुनि वेश भी नहीं कहते हैं। नग्न दिगम्बर हो जाए, ऐसा बाहर जिसका वेश हो, तथापि अन्तर में वे राग की क्रियायें मेरी और मुझे लाभदायक है, ऐसा मिथ्यात्व से चित्त मलिन है, **वह तो श्रावक के समान भी नहीं है...** वह श्रावक समान भी नहीं है। श्रावक कौन? सच्चे श्रावक, हों! यह वाडा के माने हुए श्रावक, वे कुछ श्रावक नहीं हैं। नाम धराया है श्रावक। समझ में आया?

श्रावक तो जिसे अन्तर में आत्मदर्शन हुआ हो, तदुपरान्त जिसे अन्तर (में) थोड़ी शान्ति बढ़ी हो और उसे बारह व्रत आदि विकल्प हो, उसे पुण्यबन्ध का कारण माने और जितनी स्वरूप की दृष्टि और स्थिरता का अंश हुआ है, उतना मोक्ष का मार्ग है। उसे श्रावक कहा जाता है। भारी बात! श्रावक, वह श्रावक है न। बाकी वाडा के श्रावक क्या? नाम धरावे। कल कहा नहीं था? थैली में चिरायता और ऊपर शक्कर नाम लिखे। चालीस रुपये की मण शक्कर है। उसका नाम लिखे (तो) चिरायता अर्थात् कड़वाहट मिट जाएगी? इसी प्रकार श्रावक नाम धरावे—हम श्रावक हैं, हम साधु। अन्तर में तो दृष्टि का भान नहीं। पुण्य-पाप के परिणाम हैं, वे मलिन हैं, दुःखरूप हैं, उसका तो भान नहीं। वे परिणाम मेरे हैं, उनसे मुझे लाभ है—ऐसी जहाँ मिथ्यादृष्टि पड़ी

है, वे तो सब विकार के, आवास के स्थान हैं। समझ में आया? सूक्ष्म बातें, भाई! वीतराग का मार्ग अपूर्व, सूक्ष्म है। समझ में आया?

मुमुक्षु : बहुत (महीन)

पूज्य गुरुदेवश्री : (महीन) अर्थात् ऊँचा। महीन / बारीक। बात सत्य। बारीक है। यह लोगों को सुनने को नहीं मिला और वाडा में पड़े हैं और (मानते हैं कि) हम धर्मी-श्रावक हैं। वह कहता है हम मुनि हैं।

कहते हैं कि जिसे आत्मा में देह की क्रिया में करता हूँ, ऐसी जिसकी बुद्धि है और राग के परिणाम मेरे हैं, मुझे यह दया, दान, व्रत के परिणाम धर्म करेंगे, ऐसी जिसकी बुद्धि है, वह मिथ्यात्व बुद्धि है। वह जैन नहीं, वह मिथ्यादृष्टि है। चन्द्रकान्तभाई! ऐसा कठिन पड़े, हों! इन वाडावालों को। वह तो **श्रावक समान भी नहीं है,...** सच्चे श्रावक, हों! सम्यग्दृष्टि श्रावक। भरत चक्रवर्ती जैसे संसार में थे, देखो! भगवान के पुत्र। छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं, समकिति थे। राज में थे, तथापि राज और राग से भिन्न आत्मा का भान था। राजपद में थे तो भी (भान था)। लोगों देखे कि यह राजपाठ में है। परन्तु वे राजपद में नहीं। वे तो आनन्दस्वरूप, रागरहित और शरीररहित स्वरूप में थे। ऐसे श्रावक से वेशधारी मुनि राग से धर्म माननेवाले, देह की क्रिया से पुण्य माननेवाले, उससे पुण्य होगा, ऐसा माननेवाले, वे सब मिथ्यादृष्टि (हैं), श्रावक समान भी गिनने में नहीं आते। देखो! कुन्दकुन्दाचार्य का कथन है। 'भणामि हं' ऐसा कहा है न? ऐसे मुनि को हम मुनि कहते नहीं। और जिसे आत्मज्ञान निर्लेप उज्ज्वल स्वभाव भगवान आत्मा का, पुण्य-पाप के विकल्प के मैल से भिन्न ऐसे आत्मा का जिसे पवित्र उज्ज्वल भान होकर सम्यग्दर्शन हुआ है, ऐसे श्रावक से भी वेशधारी मुनि हल्के हैं। समझ में आया?

श्रावक सम्यग्दृष्टि हो... देखो! श्रावक सच्चा हो, वह तो सम्यग्दृष्टि होता है। **श्रावक सम्यग्दृष्टि हो...** अर्थात् उसकी दृष्टि तो आत्मा के पवित्र (स्वभाव) पर होती है, धर्मी की। पुण्य-पाप के भाव पर उसकी दृष्टि नहीं होती। आहाहा! क्योंकि पुण्य-पाप का भाव तो मैल और आस्रव है। उस आस्रव पर समकिति की दृष्टि नहीं होती।

समकित्ती गृहस्थाश्रम में हो तो भी सम्यग्दृष्टि होता है। और गृहस्थाचार के पाप सहित हो... गृहस्थाचार के पाप के परिणाम भी होते हैं। राग के, भोग के, विषय के... आहाहा! समझ में आया? तथापि वह श्रावक (वेशधारी) मुनिपने से ऊँचा है। जिसने मुनिपना माना, जिसे भान ही नहीं। समझ में आया? सब भारी आचार्य की बात। लोगों को कड़क लगे ऐसी है। सुना नहीं जैनदर्शन क्या है? व्रत पालो, दया पालना, भक्ति करना, पूजा करना, यात्रा करना, वह धर्म। शान्तिभाई! सुनने को तो रुके हो न दो-चार दिन। क्या है यह? क्या कहते हैं यह? आहाहा! भगवान! भगवान का मार्ग भिन्न है, भाई! अभी तो सब गप्प-गप्प चलती है, और मानते हैं कि हम धर्मी और धर्म करते हैं। जयन्तीभाई!

कहते हैं, जिसके हृदय में आत्मा शुद्ध चैतन्य का भान नहीं और दया, दान, व्रत के परिणाम मेरे हैं, ऐसे मिथ्यात्वसहित जिसका चित्त मलिन है, ऐसे साधुओं से सम्यग्दृष्टि श्रावक ऊँचे हैं। और उन श्रावक से वे मुनि नीचे हैं। समझ में आया? आहाहा! गजब बातें। देखो! श्रावक सम्यग्दृष्टि हो और गृहस्थाचार के पापसहित हो... धन्धा हो, व्यापार हो, करोड़ों का व्यापार हो। राग होता है उतना पाप। परन्तु अन्तर में दृष्टि सम्यक् है, उसके कारण उस पाप को हेय मानता है और आत्मा के स्वरूप को उपादेय अन्दर आदरणीय मानता है। ऐसा अन्तर विवेक सम्यग्दृष्टि को गृहस्थाश्रम में होने पर भी राग के विकल्प से मेरा स्वरूप भिन्न है, ऐसा उसे भान होता है। उसे श्रावक और समकित्ती कहते हैं। समझ में आया? यह कहते हैं कि भले गृहस्थाश्रम के पाप सहित हो। और वह वेशधारी दया, दान के, व्रत के परिणाम करता हो। समझ में आया? परन्तु उस राग को धर्म मानता हो और वह राग है, वह मेरा स्वरूप है और मुझे लाभदायक है, ऐसा मानता है, ऐसे मिथ्यात्वदृष्टि साधु से ऐसा समकित्ती पापाचारवाला परन्तु है (वह) सम्यग्दृष्टि (अच्छा है)। आहाहा! हैं! स्पष्ट लिखा है। सेठ! आहाहा! वह स्त्री, पुत्र छोड़कर बैठा हो, नग्न होकर जंगल में रहता हो। खोटा साधु। परन्तु अन्दर में राग का विकल्प जो दया, दान, व्रत, भक्ति का आता है, उससे मेरा कल्याण होगा, ऐसी मिथ्यादृष्टि उसे है। इससे वह पाप, बाहर में पाप के परिणाम के कारण दिखते नहीं, परन्तु अन्दर मिथ्यात्व के पाप के परिणाम दिखते हैं। प्रकाशदासजी! है

इसमें? पाँच महाव्रत अंगीकार करो और अणुवत का उपदेश दो। मरो फिर दोनों। आहाहा! हैं! परन्तु क्या हो? जगत को लुटेरे मिले हैं न! बेचारे लुट गये हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

देखो! आचार्य ने एक श्लोक रखा है। आहाहा! 'ते च्चिय भणामि हं जे सयलकलासीलसंजमगुणेहिं' उसे हम मुनि कहते हैं। जिसे आत्मा का ज्ञान, आनन्द का भान है, तदुपरान्त जिसे शील और संयम—स्वरूप में रमणता प्रगट हुई है। बाहर में संयम यह वस्त्र बदले, इसलिए संयम है, ऐसा नहीं है। ऐसा तो अनन्त बार किया है। नौवें ग्रैवेयक गया तब तो... अभी वह क्रिया कहाँ है, ठिकाने बिना की। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया दिगम्बर जैन साधु होकर। तब तो उसका व्यवहार कैसा? परिणाम पुण्य के। परन्तु उन पुण्य परिणाम को धर्म माननेवाले, इसलिए मिथ्यात्व परिणाम थे। आहाहा! भारी कठिन काम। जगत को बाह्य त्याग की महिमा। अन्तर के मिथ्यात्व का त्याग, वह पूरा संसार का त्याग है, उसकी इसे खबर नहीं। मिथ्यात्व क्या? समकित क्या? दोनों की कुछ खबर नहीं होती। जय नारायण। अन्ध दौड़ से (दौड़ता जाता है)। बाईस घण्टे धन्धा करे, घण्टे-दो घण्टे मिलें तो वहाँ जाए। वहाँ इसे लूटे कि इसमें तुझे धर्म होगा, इसमें धर्म होगा। दया पालो, व्रत करो, अपवास करो तुम्हारे धर्म होगा। धर्म के लुटेरे हैं, कहते हैं। समझ में आया? राग की क्रिया में धर्म माने, वह वीतरागमार्ग में नहीं है। ऐसा यहाँ कहते हैं।

कहते हैं, श्रावक सम्यग्दृष्टि हो और गृहस्थाचार के पाप सहित हो... क्या कहा यह?

मुमुक्षु : गृहस्थाचार पापसहित होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात्? दो बातें तो अभी हो गयी। धन्धा, व्यापार हो, स्त्री-पुत्र हों, राज हो, उस पुत्र का विवाह करे, स्त्री का लालन-पालन करे, राज हो, व्यापार-धन्धा अरबों का हो, ऐसे पाप के परिणाम हों, तथापि सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! उस राग से मेरी चीज़ भिन्न है, उसके अधिक का (-भिन्न का) अनुभव होता है। समझ में आया? भारी कठिन काम।

सम्यग्दृष्टि पापाचरणवाला गृहस्थ हो तो भी मुनि वेशधारी है और अन्दर में पुण्य के, पाप के परिणाम को हितकर मानता है, व्रत और भक्ति आदि के परिणाम, वे मुझे धर्म हैं, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि श्रावक पापाचार से भी हल्का है। समझ में आया ? आहाहा ! अब यह माप निकालना किस प्रकार ?

तो भी उसके बराबर वह केवल वेशमात्र को धारण करनेवाला मुनि नहीं है,... आहाहा ! सम्यग्दृष्टि आत्मा के भानवाला, जिसे पूरा पवित्र आत्मा ही जिसे आदरणीय अन्दर प्रगट हुआ है और राग के कण से लेकर देहादि जड़ सब अचेतन मेरे नहीं, मेरे स्वभाव में नहीं, मैं उनका नहीं, वे मेरे नहीं। ऐसा जिसे अन्तर भान है, ऐसा सम्यग्दृष्टि पापसहित भले हो, मिथ्यात्व का पाप नहीं परन्तु चारित्रदोष का पाप है। ऐसा कहते हैं। आहाहा ! परन्तु मिथ्यात्व का क्या पाप ? और चारित्र का क्या पाप, इसका भान भी न हो कुछ दोनों में अन्तर में। जय नारायण ! तुम्बी में कंकड़। बजावे। रुपये होंगे या कंकड़, इसकी कुछ खबर नहीं होती। तुम्बी में कंकड़ नहीं कहते ? सूखी हो न सूखी ? वे दाने हो न, उसकी बीज ? पृथक् पड़कर बजे तो रुपये जैसे लगे। वहाँ कहीं रुपये थे ? बजे तो रुपये लगे। उसमें रुपये कहाँ से ? धूल भी नहीं होती रुपया। वहाँ तो सूखे दाने बजते हैं, सुन न ! वे सूखे बीज बजते हैं। इसी प्रकार आत्मा के भान बिना दया, दान, व्रत की क्रिया, यह खड़खड़ते यह अज्ञान के बीज हैं। आहाहा ! समझ में आया ? जिसे सम्यग्दर्शन...

श्रेणिक राजा, लो ! भगवान के भक्त, श्रेणिक राजा समकित्ती थे। हजारों रानियाँ, बड़ा राज। हजारों राजा तैनाती में चांवर ढोरते। सिंहासन पर बैठे। श्रेणिक राजा क्षायिक समकित्ती थे। तीर्थकरगोत्र बाँधा था। पापाचार था। समझ में आया ? राज के पाप, भोग के पाप, विषय-वासना के पाप (थे) परन्तु मिथ्यात्व का पाप नहीं था। आहाहा ! यह क्या कहलाता है मिथ्यात्व, यह लोगों को खबर नहीं। उस मिथ्यात्व को छोड़ा। राग और पुण्य वह मेरी चीज़ नहीं। मेरी चीज़ तो पवित्र आनन्दकन्द शुद्ध चैतन्य है। उसकी भान दशा में भगवान के निकट तीर्थकरगोत्र बाँधा है। मरकर अभी नरक में गये हैं। वह नरक का आयुष्य बँध गया था। पहले नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में

श्रेणिक राजा हैं। चौरासी हजार में ढाई हजार गये। अभी बाकी जायेंगे, तब आगामी चौबीसी में पहले तीर्थकर होंगे। शान्तिभाई! सुना नहीं यह श्रेणिक राजा का? परन्तु यह क्या कहा?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची, भाई की बात सच्ची। श्रेणिक राजा भगवान के भक्त थे। महावीर भगवान के समय में श्रेणिक राजा (हो गये)। हजारों राजा सेवा तैनात में। समकित अर्थात् आत्मभान हो गया। उनकी रानी चेलना थी, वह समकिति थीं, आत्मज्ञानी थीं। और यह था बौद्धधर्मी श्रेणिक राजा। बौद्ध को माननेवाला। जैन को माननेवाला नहीं। जैन अर्थात् अन्दर तत्त्व को माननेवाला नहीं, बौद्ध। चेलनारानी का आया है न? अभी नाटक आया था न? फतेहपुर में। चेलना रानी का विवाह श्रेणिक राजा से हुआ। ऐसे भगवान के मन्दिर, देवदर्शन नहीं, इस कारण शोक में अकेली बैठी है। उसमें श्रेणिक राजा आये। अरे! क्यों शोक में हो? अरे! क्या मैं यहाँ आयी? मुझे मेरे मन्दिर, देवदर्शन, परमात्मा, जिनवर के मन्दिर नहीं और जिन के श्रावक नहीं। अरे! मुझे कहाँ यहाँ आयी मैं? मुझे यह बहुत दुःख होता है। राजा को कहती हैं।

राजा कहता है, देखो! तेरा धर्म है मुनि का। एक नग्न मुनि ध्यान में थे। मैं उन्हें सर्प डाल आया हूँ। मुर्देरूप मर गया हुआ सर्प। तू कहती है मेरे मुनि ऐसे होते हैं। मैं डाल आया हूँ, उन्होंने वह सर्प गले में नहीं रखा होगा। निकाल डाला होगा। अन्नदाता! रानी कहती है। समकिति धर्मी थीं। आत्मा का भान (था)। (वह कहती है) हमारे मुनि ऐसे नहीं होते। मुनि तो ध्यान में, आनन्द में होते हैं। उन्हें तुमने सर्प डाला, महापाप किया। बड़ा पाप उपार्जित किया। सातवें नरक का आयुष्य बाँधा। महामुनि ध्यानी आत्मआनन्द में मस्त। चलो वहाँ जाते हैं, रानी कहती है। ऐसे देखे, वहाँ सर्प पड़ा हुआ, करोड़ों चींटियों ने खोखा बना दिया। आत्मा के ध्यान में आनन्द में थे। अन्नदाता, स्वामी! यह देखो हमारे मुनि आत्मा के आनन्द में लहर करते हैं। उनको उपसर्ग की कुछ पड़ी नहीं। उन्होंने सर्प नहीं निकाला। आहाहा! ऐसे मुनि! ऐसे धर्मी! वीतरागी मुनि ऐसे होते हैं! मुनि ने उपदेश दिया। आत्मज्ञान वहाँ प्राप्त किया। समकित हुआ।

वहाँ राग से भिन्न का भान हो गया। समझ में आया ? बौद्ध की व्याख्या आती है न ?

रानी को कहा राजा ने, हमारे बौद्ध साधु तो सर्वज्ञ होते हैं, बड़े ज्ञानी होते हैं। महाराज ! तो मैं मेरे यहाँ आहार कराने उन्हें विनती करूँ, रानी कहे। चेलना धर्मी, जैन धर्मी, समकित्ती, ज्ञानी, हों ! यह वाडावाले की बात नहीं है। आये। महाराज ! मेरे यहाँ आहार करने पधारना। बौद्ध साधु को कहती है, आये। अरे ! हमारा धर्म ऊँचा है। रानी ! धर्म मान। श्रेणिक राजा मानते हैं और तुम मानो। महाराज ! तुम आहार तो करो, भोजन-आहार करो। आहार करते समय उनकी एक जूती थी। जूती लेकर बारीक-बारीक टुकड़े किये और बढिया कढ़ी बनायी। बादाम-पिस्ता डालकर। रानी ने उनकी परीक्षा की। वे कहें, हम सर्वज्ञ हैं। तीन काल जानते हैं। अब जाना। फिर खाने बैठे तो खाया। अच्छा लगा बहुत मीठा खाया। चलने लगे। ऐ ! जूती कहाँ गयी ? साधु बाहर निकले तो जूती दिखाई नहीं दी। यह क्या हुआ ? कहते थे न तुम सर्वज्ञ हो ? सब तीन काल को जानते हैं। जूती तुम्हारे पेट में है। आहाहा !

रानी ने मेरा अपमान किया। ऐसे उल्टी करते हैं वहाँ बारीक-बारीक टुकड़े निकले। वह मिठास भरी हुई थी अच्छी। धना, जीरा सब बढिया डालकर बनायी होगी। खाया भी अवश्य। आहाहा ! राजा को कहे, मेरा अपमान किया हमारा यह ? तब कहे, मैं ऐसा ही करूँगा इसके साधु को। इसलिए वह सर्प डाल आये। पश्चात् यह धर्म को प्राप्त हुए। समझ में आया ? तीर्थकरगोत्र बाँधा है। रानी थी, राज था, पाप था परन्तु वह चारित्र के दोष का पाप अलग और मिथ्यात्व का पाप अलग। अनन्त गुणा महापाप मिथ्यात्व का है। उसकी तो जगत को खबर नहीं। यह राग का भाव जो होता है, व्रत और तप का विकल्प उठता है, वह राग है। वह मुझे धर्म है और उससे धर्म होगा, यह मान्यता मिथ्यात्व की अनन्तगुनी व्यसन से और कसाईखाने के पाप से (भी) इस मिथ्यात्व का पाप अनन्तगुना है। इसकी खबर नहीं होती। और बाहर के पाप यह।

कहते हैं कि श्रावक पापाचारवाला होने पर भी समकित्ती है। मुनि जो पुण्य को धर्म माननेवाले, राग को धर्म माननेवाले ऐसे मिथ्यादृष्टि चित्त के मलिनवाले, ऐसा कहा न ? भाई ! आहाहा ! उस श्रावक से भी बेज-हल्के हैं, कहते हैं। उतरते नम्बर के हैं

सब । खबर नहीं होती, खबर । आहाहा ! जो वेश धारण किया । अपनी अपेक्षा तो अच्छे हैं, ऐसा कहे । अपने से तो अच्छे । हम कुछ छोड़ नहीं सकते, वे बेचारे गर्म पानी पीवे, रात्रि में चारों आहार छोड़े, हरितकाय खाये नहीं, ऐसा ब्रह्मचर्य पालन करे । अरे ! तेरी अपेक्षा... सुन न ! तू तीव्र मिथ्यात्वी होगा तो वे भी मिथ्यात्वी तीव्र हैं । समझ में आया ?

मुमुक्षु : अपन मुनि कहलवाते नहीं, वे मुनि कहलवाते हैं, वे तो अधिक पापी हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक पापी हैं । मुनिपना है नहीं । आत्मज्ञान नहीं, दर्शन नहीं, अन्तर वीतराग की दशा नहीं और मुनि हैं, ऐसा मनवाते हैं, वे महामिथ्यात्व में पोषते हैं ।

ऐसा आचार्य ने कहा है । लो ! है न ? ऐसा आचार्य (कहते हैं) । कुन्दकुन्दाचार्य महाराज भगवान के पास गये थे, सीमन्धर परमात्मा के पास आठ दिन रहे थे । संवत् ४९ । वे यह कहते हैं । भगवान विराजते हैं वर्तमान में । सीमन्धर परमात्मा साक्षात् । पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है, महाविदेहक्षेत्र सीधा क्षेत्र है । दूर, हजारों (योजन) दूर । अभी परमात्मा केवलज्ञानीरूप से विराजते हैं । इन्द्रों के समक्ष (दिव्य) ध्वनि उठती है—आवाज । सामायिक में आता है न ? आज्ञा नहीं लेते ? सीमन्धर भगवान की आज्ञा ले । बीस विहरमान भगवान महाप्रभु विराजते हैं । अभी मनुष्यरूप से विराजते हैं । महावीर भगवान आदि तो सिद्धपद में गये । वे तो शरीररहित हो गये । यह तो अभी भगवान शरीरसहित अरिहन्त हैं । उनके पास गये थे । आठ दिन रहे थे, मुनि दिगम्बर सन्त आत्मध्यानी ज्ञानी । उन्होंने आकर यहाँ यह शास्त्र बनाये हैं । वे ऐसा कहते हैं कि ऐसे मिथ्यादृष्टि साधु की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि श्रावक अनन्तगुणे ऊँचे हैं । आहाहा ! कैसे होगा ? दिलीप !

मुमुक्षु : वस्तु तो ऐसी ही है । जो माने उसके लिये तो ऐसी ही है । न माने उसके लिये...

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा है । माने तो यह है । न माने ऐसा कहे । ऐई ! शान्तिभाई ! ठीक कहता है । माने तब तो ऐसा है, बाकी न माने तो भले चाहे जैसा हो ।

गाथा-१५६

आगे कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि होकर जिनने कषायरूप सुभट जीते, वे ही धीरवीर हैं-

ते धीरवीरपुरिसा खमदमखगणेण विप्फुरंतेण ।

दुज्जयपबलबलुद्धरकसायभड णिज्जिया जेहिं ॥१५६॥

ते धीरवीरपुरुषाः क्षमादमखड्गेण विस्फुरता ।

दुर्जयप्रबलबलोद्धतकषायभटाः निर्जिता यैः ॥१५६॥

जिनने प्रबल दुर्जय बलोद्धतमय कषाय-सुभट सभी।

जीते क्षमा दम तीक्ष्ण असि से धीर वीर पुरुष वही ॥१५६॥

अर्थ - जिन पुरुषों ने क्षमा और इन्द्रियों का दमन, वह ही हुआ विस्फुरता अर्थात् सजाया हुआ मलिनतारहित उज्ज्वल खड्ग, उससे जिनको जीतना कठिन है ऐसे दुर्जय, प्रबल तथा बल से उद्धत कषायरूप सुभटों को जीते, वे ही धीरवीर सुभट हैं, अन्य संग्रामादिक में जीतनेवाले तो 'कहने के सुभट' हैं।

भावार्थ - युद्ध में जीतनेवाले शूरवीर तो लोक में बहुत हैं, परन्तु कषायों को जीतनेवाले विरले हैं, वे मुनिप्रधान हैं और वे ही शूरवीरों में प्रधान है। जो सम्यग्दृष्टि होकर कषायों को जीतकर चारित्रवान् होते हैं वे मोक्ष पाते हैं, ऐसा आशय है ॥१५६॥

गाथा-१५६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जिन ने कषायरूप सुभट जीते, वे ही धीर-वीर हैं:- लो! अब आत्मदर्शन होकर सम्यग्दर्शन उपरान्त जिसने विकार को जीता है, वह सुभट कहा जाता है। सम्यग्दर्शनसहित, हों! मात्र विकार को जीते और ऐसे ब्रह्मचर्य पाले, उस वस्तु को कुछ गिनती में नहीं गिना जाता। आत्मा के भानसहित जिसने राग को जीतकर वीतरागता प्रगट की है, वह जगत में सुभट है। बाकी यह सब राज में लड़े और बड़े आगे सुभट कहलाये, वे सुभट नहीं कहलाते। १५६ गाथा।

ते धीरवीरपुरिसा खमदमखग्गेण विप्फुरंतेण ।
दुज्जयपबलबलुद्धरकसायभड णिज्जिया जेहिं ॥१५६॥

अर्थ :- जिन पुरुषों ने क्षमा और इन्द्रियों का दमन, वह ही हुआ... क्या कहते हैं? जरा अलंकार अधिक डाले हैं न! जो कोई आत्मा क्षमा और इन्द्रियों का दमन, वही हुआ विस्फुरता अर्थात् सजाया हुआ मलिनतारहित उज्ज्वल तीक्ष्ण खड्ग,... इतने तो विशेषण दिये। उत्तम क्षमा, शान्ति-शान्ति सम्यग्दर्शनसहित। मुनि का लिया न क्षमादि। दशलक्षण अर्थात् यह लिया है। आत्मा के भानसहित, अनुभवसहित जिसने फिर राग को पुण्य-पाप के भाव को, कषाय को क्षमा और इन्द्रियों का दमन, अतीन्द्रिय आनन्द में रहकर इन्द्रिय का दमन जिसे हुआ है और स्वरूप में स्थिरता करके जिसे क्षमा प्रगट हुई है। ऐसी विस्फुरता अर्थात् सजाया हुआ मलिनतारहित... समार्यु। समार्यु नहीं कहते? सब्जी सम्हारे न? सुधारे। यह सुधरा हुआ मलिनतारहित उज्ज्वल जिसका तीक्ष्ण खड्ग। आहाहा!

उससे जिनको जीतना कठिन है ऐसे दुर्जय, प्रबल तथा बल से उद्धत कषायरूप सुभटों को जीते,... लो! यह आत्मा के सम्यग्दर्शनसहित, फिर यह कषाय सुभट को जीतता है। वे ही धीरवीर सुभट हैं,... उसे धीर और वीर सुभट कहते हैं। आहाहा! यह वीर की व्याख्या थी न कल? उसमें। वीरा-वीरा की व्याख्या है। संस्कृत है। वीरा अर्थात् आत्मा उसमें आनन्द और ज्ञान अनन्त भरा है। ऐसे अनन्त गुण की साम्राज्यरूपी लक्ष्मी, आत्मा की अनन्त गुण की साम्राज्यरूपी लक्ष्मी का जिसे... अर्थात् स्वीकार किया है कि मैं तो यह हूँ। दया, दान, व्रत के परिणाम, वह मेरा स्वरूप नहीं। शरीर, वाणी, स्त्री, पुत्र वे मेरे नहीं। समझ में आया? आहाहा! वीरा। वि-विशिष्ट, खास। लक्ष्मी, यह धूल की नहीं, ऐसा कहते हैं। पैसा-बैसा धूल का कहलाता है न? वह तो धूल-मिट्टी है। वह लक्ष्मी नहीं। आत्मा में अनन्त बेहद ज्ञान और आनन्द पड़ा है। ऐसी अनन्त साम्राज्य लक्ष्मी स्व की, उसका जिसने स्वीकार किया है कि यह राज मेरा। राग, पुण्य और शरीर मेरे नहीं। उसे यहाँ वीर कहा जाता है। बाकी दूसरे को कायर और हिजडा कहा जाता है। शान्तिभाई! वीर इसे कहा जाता है। आहाहा! कहो, मोहनभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : सब नया सीखना...

पूज्य गुरुदेवश्री : नया सीखना। वस्तु नयी यह है। पुराने लोगों को तो यह मिला नहीं। हमको तो खबर है या नहीं सब? कहीं है ही नहीं। सबने गप्प ही गप्प मारी है। ऐई!

मुमुक्षु : बाप-दादा से...

पूज्य गुरुदेवश्री : बाप-दादा क्या करे? बाप-दादा सब मोटे फेटा पहनते आये हैं। तुम पेन्ट-शर्ट पहनते हो? टोपी पहनते हो। शामजीभाई क्या पहनते थे? पगड़ी पहनते थे। हमको खबर है। शामजीभाई को देखा है न, हमने देखा है। यहाँ तो ५७ वर्ष हुए न। राजकोट में चौमासा किये हैं। (संवत्) १९८९ का, ९० का। पहले सम्प्रदाय में दो चौमासे किये थे। दो बाद में किये ९५, ९९। ५७ वर्ष हुए दीक्षा के। ५८वाँ चलता है। शामजीभाई और वे सब आते थे। आहाहा! वे सब बड़े फेटा पहनते थे। तुम तो ऐसा पहनने लगे। उघाड़े सिर। बाप-दादा करे, वैसा करना—ऐसा किसने कहा?

मुमुक्षु : धर्म...

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म तो आत्मा का जैसा वीतराग ने कहा, वैसा करना। बाप-दादा ने किया, इसलिए क्या? आहाहा! समझ में आया?

धीर-वीर सुभट हैं, अन्य संग्रामादिक में जीतनेवाले तो कहने के सुभट हैं। संग्राम को जीते लाखों लोगों को, वह तो कहने के, मरकर नरक में जानेवाले। समझ में आया? बड़े राजा....

मुमुक्षु : कषाय को जीते...

पूज्य गुरुदेवश्री : कषाय को जीते, वह सुभट। आहाहा! चैतन्य भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का रस का पुंज आत्मा है। ऐसा जिसे सम्यग्दर्शन का भान है, वह जीव अणीन्द्रिय के स्वाद की स्थिरता की उग्रता द्वारा उस कषाय को जीते, उसे हम सुभट कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

भावार्थ :- युद्ध में जीतनेवाले शूरवीर तो लोक में बहुत हैं,.... मर जाये। मरकर

नरक में जाये। बहुत से राजा सिर धरते हैं। परन्तु कषायों को जीतनेवाले विरले हैं, वे मुनिप्रधान हैं... देखो! यह पुण्य-पाप के विकल्प, वह कषाय है, उसे जीते, वह मुनि कहे जाते हैं। आहाहा! कषायों को जीतनेवाले विरले हैं, वे मुनिप्रधान हैं... मुनि में प्रधान हैं। अहो! जिसे अणीन्द्रिय आत्मा का भान है और अणीन्द्रिय के स्वाद की उग्रता के समक्ष जिसने इन्द्रियों को दमन किया है, स्वरूप की स्थिरता द्वारा जिसने क्रोध को जीता है। अपने क्षमा के सागर में आत्मा झूलता है। आहाहा! उसे मुनि कहते हैं। जैनदर्शन में उसे मुनि कहा जाता है। कहो, प्रकाशदासजी! किसके मुनि? पंच महाव्रत ले लिये, इसलिए मुनि हो गये।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी ही है। हैं! खबर नहीं। मार्ग वीतराग का परमेश्वर केवली ने कहा हुआ। केवलज्ञानी परमात्मा, जिन्हें एक समय में तीन काल का ज्ञान... आहाहा! अरिहन्त परमेश्वर त्रिलोक प्रभु, उनका मार्ग तो कोई दूसरा अलौकिक है। बाहर से मानकर बैठे हैं, वह मार्ग नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

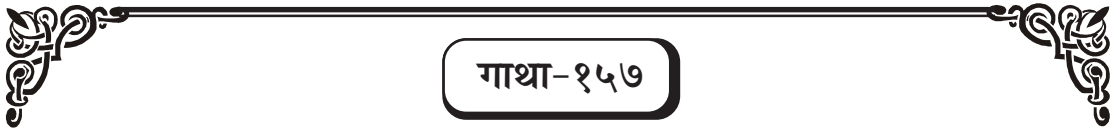
वे ही शूरवीरों में प्रधान हैं। जो सम्यग्दृष्टि होकर कषायों को जीतकर... देखो! सम्यग्दृष्टि हो और जीते ऐसा, हों! आत्मा के अरूपी अनाकुल आनन्दस्वरूप का भान करके श्रद्धा सम्यक् हुई है, ऐसा होकर जो कषाय को जीते, वह चारित्रवान है। ऐसा सिद्ध करना है न यहाँ? वह चारित्र अन्दर स्वरूप में रमता है। आनन्द का धाम भगवान, उसमें रमना, वह चारित्र है। कहीं वस्त्र-बस्त्र बदल डाले, इसलिए चारित्र हो गया, वह है नहीं। समझ में आया? चारित्रवान होते हैं, वे मोक्ष पाते हैं, ऐसा आशय है। पण्डित जयचन्द्रजी ने अर्थ किया है। आत्मा का भान करके जिसने कषाय को जीता है और जिसमें आत्मा के आनन्द की रमणता प्रगट की है। आहाहा!

श्रीमद् में आता है न? रमक शब्द दोनों में आता है, भाई! स्वद्रव्य के रमक शीघ्रता से होओ। स्वद्रव्य आनन्दस्वरूप में रमण करो, शीघ्रता से होओ, ऐसा कहते हैं। और परद्रव्य की रमणता शीघ्रता से तजो। आमने-सामने दो शब्द हैं। आहाहा! भाषा समझ में आती है? त्वरा-त्वराथी अर्थात् एकदम। भगवान आत्मा पुण्य-पाप के जो

भाव हैं, उनसे भिन्न ऐसा स्वद्रव्य, उसकी रमणता शीघ्रता से करो, शीघ्रता से होओ। और पुण्य-पाप के विकल्प वे परद्रव्य परवस्तु है। उसे शीघ्रता से छोड़ो। त्वरा से तजो शब्द है। समझ में आया? १७ वर्ष पहले कहा है, लो! उम्र १७ वर्ष के पहले। और ६० वर्ष, ६५ वर्ष के, ७० वर्ष के को अर्थ की खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : सुना न हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना न हो, बात भी सच्ची। आहाहा! सुनने में न आया हो। आहाहा! वीर का मार्ग वह वीरों को प्राप्त होता है। आहाहा!



गाथा-१५७

आगे कहते हैं कि आप दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप होते हैं, वे अन्य को भी उन सहित करते हैं, उनको धन्य है -

धण्णा ते भगवंता दंसणणाणग्गपवरहत्थेहिं।

विसयमयरहरपडिया भविया उत्तारिया जेहिं॥१५७॥

ते धन्याः भगवंतः दर्शनज्ञानाग्रप्रवरहस्तैः।

विषयमकरधरपतिताः भव्याः उत्तारिताः यैः॥१५७॥

हैं धन्य वे भगवान दर्शन ज्ञान उत्तम करों से।

जो विषय मकराकर पतित भवि पार करते तिराते॥१५७॥

अर्थ - जिन सत्पुरुषों ने विषयरूप मकरधर (समुद्र) में पड़े हुए भव्यजीवों को दर्शन और ज्ञानरूपी मुख्य दोनों हाथों से पार उतार दिये, वे मुनिप्रधान भगवान् इन्द्रादिक से पूज्य ज्ञानी धन्य हैं।

भावार्थ - इस संसार-समुद्र से आप तिरें और दूसरों को तिरा दें उन मुनियों को धन्य है। धनादिक सामग्रीसहित को 'धन्य' कहते हैं, वह तो 'कहने के लिए धन्य' हैं॥१५७॥

गाथा-१५७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो आप दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप होते हैं, वे अन्य को भी उन सहित करते हैं, उनको धन्य है :- लो! स्वयं दर्शन-ज्ञान-चारित्रवाला हो और दूसरे को तारे, वह धन्य है, कहते हैं। तारणतरण। स्वयं तिरे और तारने को निमित्त हो, उसे यहाँ धन्य कहा जाता है। पैसेवाले को धन्य नहीं कहा जाता, ऐसा कहते हैं। उसमें लिखा है, हों! धन, अधन है। सब भिखारी हैं। ऐई! सच्ची बात है? यह दो-पाँच दस लाख रुपये नगद दिखायी दें, ऐसा हो। ५०-५० हजार की आमदनी हो। यह सेठिया को फिर लाखों की आमदनी हो। उसको और अधिक हो लड़के को। लड़के को, हों! तुम्हारे भी नहीं।

मुमुक्षु : लड़का कमावे फिर, हमें कमाने की आवश्यकता क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे भी कहाँ लेना-देना है? पहिचानते हो? भाई! इनको पहिचानते हो? इनके लड़के को? पूनमचन्द मलूकचन्द। मुम्बई नहीं वे २२-२२ मंजिल के मकान बनाते हैं। तीन करोड़ रुपये। वह पूनमचन्द मलूकचन्द, यह उसके पिता हैं। पूनमचन्द के पिता यह मलूकचन्द।

मुमुक्षु : पिता को पुत्र जैसा होने का लाभ मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मलूकचन्दभाई के पुत्र हों, ऐसा बतलाया अभी तो। अभी तो यहाँ से बतलाया। है या नहीं? पूनमचन्द मलूकचन्द है। बड़ा मकान बनाता है। २२-२२ मंजिल के, मुम्बई में। तीन करोड़। उसने फिर फिल्म उतारी है। नहीं? पालखी। पूनमचन्द। इनका दूसरे नम्बर का पुत्र। पहले नम्बर का स्विटजरलैण्ड, उसके पास दो करोड़ है। इनका पहले नम्बर का। यह है तो पूनमचन्द, उसके पास तीन करोड़ है। आँकड़े गिनना है न, भिखारी है सब। आत्मा की लक्ष्मी के भान बिना सब भिखारी हैं। शान्तिभाई! यहाँ तो ऐसा है, बापू! यह रहे, देखो! दूसरे दो लड़के यहाँ हैं, अहमदाबाद। चार लड़के हैं।

मुमुक्षु : पैसेवाले हैं ऐसा कहा, परन्तु स्विट्जरलैण्ड जा आये, ऐसा नहीं कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्विट्जरलैण्ड जा आये अभी पौने दो महीने रह आये हैं। धूल भी कुछ दिया नहीं।

मुमुक्षु : ... दिखाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिखाया। लड़का भी दिखावे न। लड़का सगा हो, उसका पुत्र और यह सगे पिता हैं। दो करोड़ रुपये हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : कोट-पतलून पहनाये या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहनाये। वहाँ ऐसे में नहीं रहा जाता। अरे! किसका पुत्र और किसका पिता ? बापू! आहाहा! यह श्वास तेरा सगा नहीं, उसमें फिर पुत्र-पिता कहाँ से लाया ? यहाँ तो कहते हैं कि पुण्य-पाप का राग भी तेरा सम्बन्धी नहीं है। क्योंकि पुण्य-पाप का राग भी विकार है, छूट जाता है, वह आत्मा में नहीं रहता। सिद्ध भगवान में विकार नहीं रहता। वह पुण्य-पाप भी तेरे सगे नहीं तो फिर सगा दूसरा कौन सा लाना था यहाँ ? समझ में आया ? देखो!

धण्णा ते भगवंता दंसणणाणग्गपवरहत्थेहिं ।

विसयमयरहरपडिया भविया उत्तारिया जेहिं ॥१५७॥

अहो! कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं। दो ही लिये, हों! दर्शन-ज्ञान... देखा! ऐई! दर्शन-ज्ञान के प्रधान हक से जो दूसरे को तारता है। आहाहा! जिसे सच्चा सम्यग्दर्शन और ज्ञान बताता है, उससे वह तिरता है, ऐसा कहते हैं। चारित्र की बात ली ही नहीं। स्वयं चारित्रवन्त हैं। आहाहा! धन्य-धन्य!

अर्थ :- जिन सत्पुरुषों ने विषयरूप मकरघर (समुद्र)... देखो! समुद्र। मकरघर। मकर अर्थात् मगर। यह क्या कहलाये ? मगर। मगर को धारे वह मकरघर / समुद्र। मकरघर का अर्थ समुद्र। जिसमें मगरमच्छ बसते हैं, ऐसा जो समुद्र। उसी प्रकार यहाँ विषयरूप मकरघर... आहाहा! मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणामरूपी महामकरघर संसार समुद्र, उसमें पड़े प्राणी। आहाहा! जैसे समुद्र में पड़े प्राणी को जैसे बाहर निकाले, वैसे ही संसार पुण्य-पाप के परिणाम मेरे, मलिन परिणाम मिथ्यात्व और पुण्य-पाप के परिणाम में पड़े हुए, ऐसा समुद्र मकरघर में पड़े हुए भव्यजीवों को... उन्हें पार उतारा। आहाहा!

देखो! कुन्दकुन्दाचार्य भी कहते हैं। पार उतारा गुरु ने शिष्य को, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसे शिष्य मिले उन्हें, ऐसा कहते हैं।

जो अनादि से भव्य प्राणी, अपने आनन्दस्वभाव को भूलकर पुण्य-पाप के मैल चित्त परिणाम, चित्त की मलिनता करनेवाले, उनमें जो डूब रहे हैं। डूब रहे हैं। बड़े भवजल सागर में पड़े हैं। आहाहा! ऐसे जीव को जिसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान बताकर तारा है, कहते हैं। यह बात तो बहुत अच्छी आयी है। मोहनभाई! आहाहा! देखो! सम्यग्दर्शन-ज्ञान से। दो हाथ। दो हाथ से निकाले न समुद्र में से मनुष्य? इसी प्रकार संसार में भटकते डूबे हुए प्राणी, मिथ्यात्व और कषाय के परिणाम में भवजल, भवजल बड़ा, उसमें डूबे हैं। चैतन्य समुद्र आनन्दकन्द भिन्न रह गया है। उसे जिसने आनन्दकन्द के श्रद्धा-ज्ञान कराये। आहाहा! जिसने आत्मा निराकुलस्वरूप है, ऐसा भाव जिसे बताकर ऐसे भाव का भासन जिसे हुआ। आहाहा! उस गुरु ने शिष्य को भवजल में से तारा है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

‘भवजल तारणहार प्रभु तुं भवजल तारणहार।’ भवजल में डूबे हुए प्राणी को... आहाहा! धन्य भगवन्त! धन्य है, कहते हैं। लो! यह भगवान है, कहते हैं। आहाहा! भय को जीता, वह निर्भय है और ऐसे भयवन्त है। आहाहा! वन्ता अर्थात् भय को जिसने वमन कर डाला है। ऐसे निर्भय हुए हैं भगवान। आहाहा! मुनि को अब संसार का भय नहीं। संसार है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। धर्मात्मा को अब निःसन्देह संसार नहीं है। हम कहाँ जायेंगे, ऐसा मुनि को है नहीं। हम तो आत्मा के ज्ञान में समाकर मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! यह तो अभी साधु होकर हमारा क्या होगा? कितने भव होंगे? (ऐसी शंका में होता है)। धूल भी नहीं साधु, सुन न! समझ में आया?

कहते हैं कि धन्य वे भयवन्त मुनि, जिन्हें भव के भय का नाश हो गया है। जिन्होंने आत्मा की निर्भय दशा, सिंह की भाँति जैसे दहाड़ मारकर, जैसे भय का नाश करे, वैसे नाश की है, ऐसे मुनि, सन्त, अरे! दो हाथ द्वारा—दर्शन और ज्ञान द्वारा। दर्शन और ज्ञानरूपी मुख्य दोनों हाथों से... लो, यह दो हाथ। आहाहा! जोर देखो यहाँ! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान। यह तो फिर उसे चारित्र होगा ही। ऐसा। यह दो दिये।

भाई! तेरा स्वरूप तो इन शुभ-अशुभ क्रियाकाण्ड के राग से भिन्न है, भगवान! ऐसी श्रद्धा कर, उसका ज्ञान कर। इस श्रद्धा और ज्ञान के दो हाथ द्वारा ऐसे भव्य प्राणी को भवसागर से तारा है। धन्य उन्हें भगवन्त हैं वे, कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो अभी उसे अपना ठिकाना न हो कि अपने अब कितने भव करेंगे? अनन्त भव होंगे, भगवान ने देखा। लो! अब यह साधु। साधु कैसा तू? अभी अनन्त भव होंगे और भव करना है, ऐसा भाव है, वह तो मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? मित्रसेनजी! परन्तु भारी कठिन काम, भाई! सुनने आते थे या नहीं वहाँ? तुम्हारा छोटा? आता है कभी? किसी दिन। यह तो बात ही दूसरी है, बापू! क्या करें? धर्म की चीज़ ही वीतराग की दूसरी है। अभी लोगों को दूसरे रास्ते चढ़ा दिया है।

कहते हैं, वे मुनिप्रधान भगवान... 'भयवंत' का अर्थ किया न भगवान? इन्द्रादिक से पूज्य ज्ञानी धन्य हैं। लो! इन्द्र से भी वह पूज्य है। आहाहा! धन्य अवतार! जिसने अवतार को सफल किया, जिसने भव में आकर भव का अभाव किया। और भव के अभाव करने का उपदेश देकर जगत को तारा, ऐसा कहते हैं। ऐई! उसने भव के अभाव का उपदेश दिया। सम्यग्दर्शन-ज्ञान की बात की न? आहाहा! उसे ऐसा नहीं कि तू पुण्य कर, दया-व्रत पालन कर और भक्ति कर और उसमें से तू तिरेगा। यह है नहीं। सम्यग्दर्शन और ज्ञान तिरने का उपाय है। समझ में आया?

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है, सिद्ध समान है। सिद्ध का स्वरूप और तेरे स्वरूप में कुछ अन्तर नहीं है। ऐसा तेरा अन्दर स्वरूप है। राग का कण भी सिद्ध को नहीं। तो तुझमें भी नहीं। शरीर नहीं, कर्म नहीं। वे तो तुझमें भी नहीं। ऐसी चीज़ का दर्शन कराकर, श्रद्धा कराकर और उसका ज्ञान कराकर, ऐसा कहते हैं। भव्य जीव को तारा है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य देखो न! स्वयं कहते हैं। समुच्चय बात करते हैं न सब? चैतन्य के रस के कन्द में जिन्हें जोड़ दिया। जो अनादि अज्ञानी राग में जुड़े थे, उन्हें चैतन्य के स्वभाव में जिसने श्रद्धा और ज्ञान द्वारा जोड़े और उन्हें भव से पार उतारा। आहाहा!

गोम्मटसार में आता है न? अन्तिम कड़ी में नहीं? नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती

कहते हैं, हों! गोम्मटसार में। ओहो! धन्य भगवान गुरु! तुमने संसार से हमें तारा। ऐसा मुनि स्वयं कहते हैं। निर्णय हो गया कि हमें संसार नहीं? आहाहा! जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन और ज्ञान-भान हुए, संसार संसार है ही नहीं। संसार ही नहीं। इस क्षण में नहीं, बाद के क्षण में संसार कहाँ से आयेगा? आहाहा! कहते हैं कि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के दो हाथ द्वारा; भव्य जीव संसारसमुद्र के मिथ्यात्व के गहरे पाप में पड़े थे, आहाहा! उन्हें तिराया। हाथ देकर उभारा, सहारा दिया। आहाहा! देखो! यहाँ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का जोर दिया है, हों! आहाहा! चारित्रवन्त तो है मुनि सम्यग्दर्शन सहितवाले। उन्होंने दूसरे को सम्यग्दर्शन-ज्ञान द्वारा तारा है। यह दो मुख्य हाथ हैं। मुख्य हाथ हैं। समझ में आया? वे मुनि प्रधान... इसका अर्थ क्या हुआ?

जिन्हें मुनि के उपदेश में उसे आत्मा का दर्शन हो और राग से भिन्न पड़े, ऐसा उनका उपदेश था। उसे उपदेश मुनि सच्चे भगवान का उपदेश कहते हैं। कि जिस उपदेश में यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हैं, वह बन्ध का कारण है। उससे भिन्न भगवान आत्मा है, वह रागरहित चीज़ है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करने से भव से तिरता है, ऐसा उपदेश था, वह मुनि का सच्चा उपदेश कहा जाता है। इससे दूसरा उपदेश करे, वह मुनि का उपदेश नहीं है। आहाहा! क्या कहा यह? कि जिनके उपदेश में सम्यग्दर्शन और ज्ञान, स्वभाव के आश्रय से प्रगटे, ऐसा जिनका उपदेश हो, वे जगत को दर्शन-ज्ञान द्वारा तारते हैं, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! गजब बात, भाई!

भावार्थ :- इस संसार-समुद्र से आप तिरे और दूसरों को तिरा देवे, उन मुनियों को धन्य हैं। धनादिक सामग्रीसहित को धन्य कहते हैं, वह तो कहने के लिये धन्य है... क्या कहा? इन पैसेवाले को धन्य कहे। धन्य धूल के भी धन्य नहीं। ऐई!

मुमुक्षु : ... कहा तो सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दुनिया कहती है इसलिए कहा। लड़का लकड़ी लेकर खड़ा हो घोड़ा मानकर। उसका बाप भी कहे, ऐ... तेरा घोड़ा आगे रखना। क्या करे? घोड़ा कहाँ था? परन्तु वह खड़ा हो लकड़ी लेकर ऐसे ऊपर। चौखट में। आम लेकर पिता आया हो। कहो, घोड़ा आगे रख। क्योंकि उसे धुन-धुन, घोड़ा-घोड़ा हो गया है

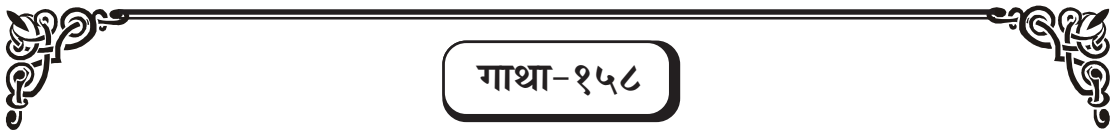
न? लकड़ी दूर रख तो सुने नहीं बराबर। इसी प्रकार यह कहते हैं कि ये लोग अज्ञानी धन्य कहते हैं। ऐई! पैसेवाले-पैसेवाले धन्य भाई! धूल भी धन्य नहीं, सुन न!

मुमुक्षु : ... न दे तो पैसे बिना के...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उसे होता है इतना। पैसेवाले थे कब? होते हैं। गृहस्थाश्रम में थोड़ी लक्ष्मी हो। निमित्त बिल्कुल नहीं होता। ऐसे भाव लिये। ... दुःखी। उसमें आता है। यह आता है। पैसे बिना के गृहस्थ दुःखी। ऐसा। यह तो यों ही बातें कीं।

यहाँ तो धनादिक शब्द लड़के आदि, मकान आदि, इज्जत आदि सब लेना। बड़ी इज्जत हो, बहुत लड़के हों, बहुत लक्ष्मी हो, बड़े बँगले-मकान हो। ऐसे को सामग्रीसहित को धन्य कहते हैं, वह तो कहने के धन्य हैं। कहनेमात्र धन्य है। परन्तु यह आत्मा के स्वभाव का उपदेश जिसे प्राप्त होकर जन्म-मरण टाले, ऐसे उपदेश के देनेवाले और कहनेवाले को धन्य कहा जाता है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



गाथा-१५८

आगे फिर ऐसे मुनियों की महिमा करते हैं -

मायावेल्लिल असेसा मोहमहातरुवरम्मि आरूढा ।

विसयविसपुप्फुल्लिय लुणंति मुणि णाणसत्थेहिं ॥१५८॥

मायावल्लीं अशेषां मोहमहातरुवरे आरूढाम् ।

विषयविषपुष्पपुष्पितां लुनंति मुनयः ज्ञानशस्त्रैः ॥१५८॥

जो महा मोह तरु चढ़ी बहु विषय-विष-पुष्पों भरी।

संपूर्ण माया बेलि छेदें ज्ञान असि से मुनी ही॥१५८॥

अर्थ - माया (कपट) रूपी बेल जो मोहरूपी महा वृक्ष पर चढ़ी हुई है तथा

विषयरूपी विष के फूलों से फूल रही है, उसको मुनि ज्ञानरूपी शस्त्र से समस्ततया काट डालते हैं अर्थात् निःशेष कर देते हैं।

भावार्थ - यह मायाकषाय गूढ़ है, इसका विस्तार भी बहुत है, मुनियों तक फैलती है, इसलिए जो मुनि ज्ञान से इसको काट डालते हैं, वे ही सच्चे मुनि हैं, वे ही मोक्ष पाते हैं ॥१५८॥

प्रवचन-१५९, गाथा-१५८ से १६०, रविवार, मगसर कृष्ण १४, दिनांक २७-१२-१९७०

अष्टपाहुड़, भावपाहुड़। १५८ गाथा।

मायावेल्लि असेसा मोहमहातरुवरम्मि आरूढा।

विसयविसपुप्फुल्लिय लुणंति मुणि गाणसत्थेहिं ॥१५८॥

मुनि की मुख्यता से कथन है। अन्तिम आखिर की गाथायें हैं न? १६५ (गाथायें) हैं। तो यह १५८वीं है। यह अष्टपाहुड़ में यह बड़ा अधिकार १६५ गाथाओं का एक अधिकार है। शुद्ध। मूल तो शुद्धभाव। आत्मा जो चैतन्यमूर्ति रत्नाकर अनन्त गुण के पवित्र रत्न से भरपूर पदार्थ है। वह शुद्ध है। उसकी अन्तर की एकाग्रता करने से शुद्धभाव प्रगटे, वह शुद्धभाव धर्म और मुक्ति का कारण है। समझ में आया? यह वास्तव में तो शुद्धभाव अधिकार है।

चैतन्य का स्वभाव अनाकुल आनन्द और ज्ञान की मूर्ति आत्मा है। उसका भाव तीन प्रकार का। एक अशुभ—हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, यह अशुभभाव है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नाम, स्मरण आदि, यह शुभभाव है। परन्तु दोनों शुभ और अशुभभाव बन्धरूप हैं, संसाररूप है, दुःखरूप है। इनसे रहित आत्मा के आनन्द का स्वभाव, उसके सन्मुख की एकता ऐसा जो शुद्धभाव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति, वह मोक्ष का मार्ग है, वह धर्म है। कहो, समझ में आया इसमें? सूक्ष्म बातें हैं। संसार से पूरी अलग जाति है।

मुमुक्षु : सूक्ष्म बात को...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... बड़ी, बड़ी विगत है। लो, यह कहेंगे अभी।

अर्थ :- माया (कपट) रूपी बेल जो मोहरूपी वृक्ष पर चढ़ी हुई है तथा विषयरूपी विष के फूलों से फूल रही है, उसको मुनि ज्ञानरूपी शस्त्र से समस्ततया काट डालते हैं... मुख्य धर्मात्मा मुनि की व्याख्या है न? गौणरूप से समकिति, श्रावक की भी व्याख्या है। धर्मात्मा उसे कहते हैं कि माया, कपटरूपी बेल। कपट (अर्थात्) होवे कुछ, मानना कुछ, करना कुछ, वाणी कुछ। ऐसा जो कपटभाव। मुनि की प्रधानता है। मुनि को तो अन्तर अनाकुल आनन्द की दशा वीतरागदशा होती है। कहते हैं कि ऐसी दशा न हो और कपट करके ऐसा मनावे तो वह मिथ्यादृष्टि चार गति में भटकनेवाला है। वह मुनि नहीं है। आहाहा!

(कपट) रूपी बेल... कैसे? कि तीन शल्य है। एक मिथ्यात्व शल्य—उल्टी मान्यता। पुण्य के भाव को धर्म मानना, पाप के भाव में ठीक और हित मानना, संयोगी चीज़ में ठीक-अठीक है, ऐसी कल्पना करना, यह सब मिथ्यात्वभाव महापाप, यह बड़ा शल्य है। इस शल्य को पहले आत्मज्ञान की दृष्टि द्वारा टालना। आहाहा! सहजात्मस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन आनन्द का भूप आत्मा है। वह आनन्द का राजा है। समझ में आया? यह क्या होगा? यह पैसे के भूप कहलाये, इज्जत के राजा कहलाये। सब रंक भिखारी है, कहते हैं। रंक वर्तमान और कुछ माँगता है, इसलिए भिखारी है। ऐसा। गुणुभाई! सत्य होगा?

आत्मा अनन्त आनन्द की लक्ष्मी से भरपूर है। उसका साम्राज्य है। यह पहले आ गया है इसमें। वीरा... वीरा... वीरा... देखो! यह १५६ में आ गया है। 'धीरवीर...' अर्थ में नहीं यह, संस्कृत में है। चन्दुभाई! वीर कहा है। क्या वीर? कि आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प, वह तो उसका स्वरूप है नहीं और उसमें है ही नहीं। यह वाणी, शरीर और लक्ष्मी, धूल उसमें है नहीं। धूल होगी लक्ष्मी?

मुमुक्षु : धूल भी पुद्गल है और लक्ष्मी भी पुद्गल है। दोनों समान ही हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों समान हैं। लो, ठीक! यह लड़का कहता है। आहाहा! लक्ष्मी और पुद्गल सब धूल है।

मुमुक्षु : कल कहता था मिट्टी का ढेला ।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिट्टी का ढेला कहता था कल । तेरे दादा ने रखा और तेरे बापू ने आदर किया । फिर बापू छोड़कर फिर तुझे आदरना पड़ेगा ।

मुमुक्षु : नहीं, मैं नहीं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं ? आहाहा !

यह कहते हैं कि आत्मा में वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का भूप—राजा प्रभु है । उसकी दृष्टि करके मिथ्यात्वरूपी शल्य को जिसने नष्ट किया है, उसे धर्म की पहली शुरुआतवाला सम्यग्दृष्टि कहा जाता है । यहाँ तो उसके बाद की विशेष बात है । कपट शल्य न हो । मिथ्यात्व शल्य तो न हो । कपट और निदान । मैं क्रिया करके कुछ फल माँगू यह शल्य जिसे न हो । वह मायारूपी कपट वेलड़ी, ज्ञानरूपी शस्त्र । आहाहा ! देखो ! यह कषायभाव है, यह कटे किस प्रकार ? क्रिया करे तो दया, दान, व्रत पालने से कटे ? वह तो राग स्वयं कषाय है । आहाहा ! यह आत्मा आनन्द और ज्ञान का धाम प्रभु है । उसके सन्मुख में, उसकी जो लक्ष्मी है पूर्ण आनन्द और ज्ञान, उसकी जो विशिष्ट शक्ति, वीरा-वीरा । वी अर्थात् विशेष आत्मा की आनन्द, ज्ञान, शक्ति का साम्राज्य उसे रा । रा अर्थात् स्वीकृति । उसे वीर कहते हैं ।

जगत के शत्रुओं को नष्ट करे और उसे सुभट दुनिया पागल, पागल उसे सुभट कहती है । सुभट तो इसे कहते हैं कि जो आत्मा के स्वभाव में अनहद, बेहद, अपरिमित आनन्द और ज्ञान का राज, साम्राज्य पड़ा है । ऐसी विशिष्ट अर्थात् दूसरी साधारण लक्ष्मी और इज्जत से, वी अर्थात् विशिष्ट खास पृथक् आत्मा की लक्ष्मी अन्दर की । उसे रा । वीरा-विशिष्ट रा । विशिष्ट का स्वीकार करे, उसे वीर कहा जाता है । नवनीतभाई ! भारी ऐसी बातें, भाई !

कहा न वहाँ जामनगर दरबार के पास गये थे न एक बार । सवेरे जंगल जाते हैं तो उन्हें खबर पड़ी कि महाराज हमारे बँगले के पास पाँच मिनट के रास्ते में आते हैं । वह दिग्विजय थे न ? वहाँ कहे, महाराज ! मुझे शरीर ठीक नहीं है । आदमी भेजा । मुझे दर्शन करना है । मैं तो वहाँ ... वह करोड़ का तालुका । दिग्विजय और उनकी रानी थी

गुलाब । बहुत होशियार है । लौकिक । यह भटकने की होशियार । फिर गये तो बैठे पाव घण्टे । पाव घण्टे में यह कहा कि यह राज नहीं धूल का । तब राज किसे कहते हैं ? एक करोड़ का तालुका । एक करोड़ की आमदनी है । राज तो आत्मा के आनन्द और ज्ञान के धाम में अन्दर स्वरूप जो पूर्ण है, ऐसा निज साम्राज्य । उसका जो धनी हो, उसे राजा और साम्राज्य का स्वामी कहा जाता है । नवनीतभाई ! गुलाबरानी बोले थे । सत्य बात, महाराज ! अब इसमें धूल में क्या था । ये सब चार गति में भटकने के रास्ते हैं । समझ में आया ? गेंद को जैसे गोडी मारे, वैसे यह भटकने की मिथ्यात्व की लकड़ी है । चार गति में भटकने की ।

यह राज—चैतन्य भगवान । आहाहा ! शरीर से भिन्न, कर्म से भिन्न । यह दया, दान के, व्रत के परिणाम शुभ मैल उनसे भिन्न और अपने शान्त और आनन्दस्वभाव से अभिन्न, ऐसा निज साम्राज्य । उसे जो स्वीकारे, आदर करे और उसका जो धनी हो, उसे यहाँ वीर कहा जाता है । बाकी दूसरे को भिखारी और रंक कहा जाता है । समझ में आया ? यह यहाँ कहते हैं ।

अरे ! वीर ! तुझे तो कपट की बेलड़ी छेद डालना चाहिए । आहाहा ! साधुपना न हो और मनाने के लिये बाहर की खोटी चेष्टाएँ करके मानो हम साधु हैं । ऐसी चेष्टाएँ करके मनावे, अन्तर में तीन कषाय के अभाव का वीतरागपना तो हो नहीं । उसे यहाँ आचार्य कहते हैं, भाई ! कपटरूपी बेलड़ी को ज्ञानरूपी शस्त्र (द्वारा छेद) । आहाहा ! अन्दर आनन्दरूपी, ज्ञानरूपी शस्त्र है न, ज्ञानस्वभाव ? उस स्वभाव में एकाग्रता द्वारा जो कपटरूपी बेलड़ी का नाश हो सकता है । समझ में आया ? निजराज में एकाग्र होने से इन कपट की बेलड़ियों का नाश हो सकता है । आहाहा !

कैसी है मायाबेली ? मोहरूपी महा वृक्ष... मिथ्यात्वरूपी बड़ा वृक्ष । मोहरूपी बड़ा वृक्ष । यह मेरे... यह मेरे... यह मेरे... यह मेरे... यह मेरे... अनन्त मेरे । मोहरूपी बड़ा वृक्ष । मोहरूपी वृक्ष पर चढ़ी हुई है... मोहरूपी वृक्ष में महाबेलड़ी फैल गयी है, कहते हैं । आहाहा ! विस्तार । मोहरूपी वृक्ष के ऊपर माया बेलड़ी का विस्तार फैला है । चिदानन्द भगवान आत्मा मेरा है, उसकी तो इसे खबर नहीं । यह पुण्य और पाप के

भाव, शरीरवाला (मैं), ऐसा जो मिथ्यात्वभाव महावृक्ष। साधुपद में भी भान नहीं, तब तक बेलड़ी फैल गयी है। मायारूपी बेलड़ी का विस्तार यह है, कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन को जानकर, उसका विस्तार शान्ति, ज्ञान और आनन्द का विस्तार है। यह उसकी प्रजा है। यह तो माया बेलड़ी की सब प्रजा है। आहाहा! यह लड़के मेरे, यह परिवार मेरा, धूल भी नहीं कहीं, सुन न! राग का कण उठे दया, दान का, वह क्षणिक और विकार है। वह तेरा नहीं। आहाहा! भारी कठिन काम परन्तु। वीतरागमार्ग को जानना, पहिचानना कठिन। पालना तो बाद में। समझ में आया? कहते हैं, अरे! मिथ्यात्वरूपी महामोह। विपरीत मान्यता के मोह में माया फैल गयी है, कहते हैं। आहाहा!

और, विषयरूपी विष के फूलों से फूल रही है... क्या कहते हैं? माया बेलड़ी विषयरूपी जहर के फूल से फूल गयी है। आहाहा! विषय, पाँच इन्द्रिय के विषय, विकल्पों में जहर है, वे सब विषय। उन विषयरूपी जहर की इस मायाबेलड़ी के वे सब फूल हैं। फूल से फैली है। समझ में आया? आचार्य, देखो कुन्दकुन्दाचार्य! आहाहा! विषयरूपी विष के फूलों से फूल रही है... विषयरूपी जहर। आहाहा! अमृत के आनन्द के भोगवटा छोड़कर विषय के भोग के भाव में यह विषयरूपी जहर के ये फूल हैं। आहाहा! भोग खाने के, पीने के, यह... यह... हमें शब्द सुनने के ऊँचे, हमारी इज्जत ऊँची, हमारा खाना-पीना ऊँचा, हमारे सोने का मकान भी अलग प्रकार के ऊँचे। यह विषय के जहर, उसके फूल हैं, कहते हैं। उसके पुष्प से फूली हुई है। आहाहा! सेठ! बँगला बड़ा हो, ऐसे हवा-पानी आते हों। सिर पर पंखा घूमता हो, नीचे बैठा हो। उसमें और सब आये हों, गप्पमार सब इकट्ठे हुए हों। आहाहा! साहेब! तुम तो बहुत सुखी, हों!

कहते हैं कि विषयरूपी जहर, उसके फूल से फूली है यह माया। समझ में आया? इसके अमृत को गला डालती है। भगवान अमृतस्वरूप है, उसे विषयरूपी जहर के फूल अमृत को मार डालते हैं। और जहर से जीता है वह। आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म-बारीक बात! यह तो वीतराग के घर की बातें हैं। सम्यग्दृष्टि वह

विषय के भोग को दुःखरूप जहर जानता है। अज्ञानी उस विषय की अनुकूलता के भाव को मिठासरूप से वेद कर मजा मानता है। मूढ़ को जहर चढ़ गया है। मिथ्यात्व का जहर चढ़ा है। सर्प काटा हो, उसे नीम कड़वा नहीं लगता। उसी प्रकार जिसे मिथ्यात्वरूपी जहर चढ़ा है। राग मेरा, पुण्य मेरा, पाप मेरा, स्वयं सच्चिदानन्द प्रभु आनन्द के धाम को भूलकर मिथ्यात्वरूपी जहर चढ़ा है। यह विषय-भोग दुःखरूप हैं, उन्हें यह सुखरूप मानता है। समझ में आया? यह नीम कड़वा जहर चढ़ा हुआ इसे मीठा लगता है। जहर का नशा है न? कौन कहता था अभी? भाई ही कहते थे – रामजीभाई! तुम्हारे दादा को सर्प काटा था तो नीम खिलाया। कड़वा नहीं लगता पहले। जहर चढ़ गया है न! आहाहा!

अभी लड़के को काटा न सर्प यहाँ पालीताणा में। बेचारा बारह वर्ष का। बैठा था वहाँ कहीं से आकर मार डाला। भगवान की-ऋषभदेव भगवान की पूजा की। बारह वर्ष का लड़का। बाहर बैठा। उसकी दो बहनें थीं। कहीं से पीछे से आया। ऐसे बैठा होगा। चटका, हो गया। उसे ऐसा कि मर जाएगा। काट डालो, भाई! कौन काट डालो। कौन काटे? ऐसा कि यह (जहर) न चढ़े। हाथ कोई काट डालो। हथियार कहाँ हो? शस्त्र कहाँ हो? नीचे उतारा। एकदम नीला हो गया। जहर चढ़ गया, मर गया। यह स्थिति।

यह जहर चढ़ा है, कहते हैं। मिथ्यात्व के वृक्ष पर विषय के फूल जहर चढ़े हैं, कहते हैं। आहाहा! एक शब्द सुनकर खुशी, रूप देखकर खुशी, इज्जत देखकर खुशी, अभिनन्दन के बड़े पूंछड़े सुनकर खुशी। सौ, दो सौ, पाँच सौ, हजार, दो हजार लोगों में बैठाया हो सामने कुर्सी पर, वहाँ तो ओहोहो! वापस बोले फिर ऐसा कि मैं तो यद्यपि लायक नहीं, परन्तु तुमने मुझे पसन्द किया। ऐसा बोले। अन्दर तो गलगलिया (होती) हों। ऐई! चन्दुभाई! यह तो सबकी बात है न! पूनमभाई की अकेली की कहाँ बात है?

मुमुक्षु : इन्हें अनुभव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्हें अनुभव है।

मुमुक्षु : यह प्रमुख के पास रहे, यह अपने को खबर ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने को खबर नहीं। यह कहीं अपने को खबर नहीं। परन्तु यह तो जहाँ इसे बैठाया हो कहीं, इसलिए वापस बोले ऐसा। इतने में बहुत मेरी अपेक्षा भी अच्छे लोग हैं, उसमें मुझे पसन्द किया, यह तुम्हारी कदरता तुमने की है। अब इस प्रकार वापस बनाये रखना। ऐसा कहे। किरणभाई! यह सब किरण विषय के। आहाहा! हैं! और अन्दर तो गलगलिया हो कि ऐसा कहे मुझे पास किया, अच्छा किया, हों! मेरे स्त्री-पुत्र तो मानेंगे कि आहाहा! अपने घर के लोगों को भारी महिमा भाई लो। यह जहर की जाल फली है। आहाहा! अमृत की बेल प्रभु आत्मा, अमृत का सागर डोलता है अन्दर में। आहाहा! उसकी दृष्टि और रुचि बिना इस मिथ्यात्व की रुचि में यह बेलड़ी विष की फली है, कहते हैं।

भगवान आनन्दस्वरूप है, उसमें यदि अन्दर जाए तो आनन्द फैले, मूल तो ऐसा कहते हैं। परन्तु ऐसे बाहर में जाता है, इसलिए विषय के फल जहर जैसे फैलते हैं। आहाहा! देखो न! आचार्य की शैली तो देखो! गुलांट खाकर ऐसी बात करते हैं। ऐसा करके ऐसा कहते हैं। प्रभु आत्मा अनाकुल आनन्द का धाम है प्रभु तू तो। अतीन्द्रिय अमृत, अणीन्द्रिय स्वभाव का धनी तू है। उसे छोड़कर यह पुण्य और पाप के भाव तथा उनके फल, जहर जैसे हैं, उनकी रुचि में उन्हें तू भोगता है। समझ में आया? नशा चढ़ा है मिथ्यात्व का-जहर का। आहाहा! मोहनभाई! क्या होगा यह सब? ऐसे सब पागल होंगे?

मुमुक्षु : ऐ प्रभु! पूरा पागल है, पूरा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा। एक बार कहा था न, क्या कहा था? अपने नहीं कहा था?

मुमुक्षु : पागल जैसे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल जैसे हैं कहा था। ...भाई! यह सब पागल जैसे हैं। यह कहे पागल जैसे नहीं। जैसे नहीं, पागल है। इसके पिता भी आ जाते होंगे। पैसेवाले मनुष्य हैं। हुण्डी का धारधीर का बड़ा व्यापार है। क्या कहलाता है? ब्याज बटाव का। अब इसके दादा बैठे हैं, लो! यह करके बैठे हैं। इसका पिता करता है, वहाँ कलकत्ता। लाखोंपति

व्यक्ति है। अब वह करता है। यह जहर चढ़ा है। पागल है, कहा। परवस्तु को अपनी माने वह पागल जैसे हैं। कहो, समझ में आया? सच्ची बात होगी यह? आहाहा!

कहते हैं, **विषयरूपी विष के फूलों से फूल रही है...** आहाहा! विषयरूपी जहर के फूल हैं यह सब। फल आया तो सही। आहाहा! प्रभु! तेरा आनन्दस्वभाव है न। तेरे अनाकुल शान्ति के आनन्द के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तृणवत् दिखते हैं, ऐसे आनन्द का नाथ धनी इन विषय में एकाकार होकर जहर को अनुभव करता है, यह तुझे कैसे शोभा देता है? ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ :- यह मायाकषाय गूढ़ है,... कपट बहु गूढ़ मायावी। आहाहा! शास्त्र तो कहते हैं कि बहुत मायाकपट जिसका कलेजा हाथ न आवे। बोले कुछ, कहे कुछ, व्यापार हो कुछ, धन्धा हो कुछ, भाव हो कुछ। कुछ न कुछ लडावे। हैं! समझ में आया? यह कपट कहते हैं कि बहुत गूढ़ है। माया। **इसका विस्तार भी बहुत है,...** आहाहा! शास्त्र तो कहते हैं न बहुत ऐसे मायावी कपटी मरकर ढोर होते हैं। समझ में आया? क्योंकि जिसके शरीर आड़े हो गये हैं ऐसे, देखो! गायें, भैंसे, घोड़े, हाथी, साँप, नेवला, घूस (मोटा चूहा), गिलहरी ऐसे आड़े हैं। मनुष्य खड़े हैं। पूर्व में इसने ऐसे मायाकपट की वक्रताई, गहरे हृदय में कपट, ऐसी माया सेवन की, जिसके फलरूप से वर्तमान में तो आड़ापन इसकी दशा में है। शरीररूप से आड़ा मिला फलरूप से, वह तिर्यच और तिरछा आड़ा कहलाता है। आहाहा! समझ में आया? सुनाई देता है या नहीं? ऐई! जयन्तीभाई! नहीं तो यहाँ नजदीक आओ। सुनाई देता है। कान में जरा रखा है न। यहाँ सुनने आये हैं तो सुनना चाहिए न बराबर?

मायाकषाय गूढ़ है, इसका विस्तार भी बहुत है,... आहाहा! विस्तार लम्बा है। **मुनियों तक फैलती है,...** देखो! साधु हो, वहाँ तक माया चली जाती है। साधु हो, वहाँ तक माया चली जाती है। यह कपट माया से बड़ा नाम धरावे, अन्दर में कुछ माल न हो। हैं! आहाहा! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की गन्ध नहीं हो और बाहर में बड़े मिथ्या बड़प्पन में चढ़ गये। कहते हैं कि वहाँ तक माया गयी। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **इसलिए जो मुनि ज्ञान से इसको काट डालते हैं...** यह देखो! इस दोष

का ज्ञान की एकाग्रता से ही नाश होता है। दूसरा कोई इसका उपाय है नहीं। यह सब दोष विषय के, जहर के, भोग के, माया-कपट के, इनके नाश का उपाय प्रभु आत्मा आनन्द और ज्ञान का धाम है। उसमें एकाकार होने पर यह कपट और माया जीती जा सकती है, अन्तर के स्वरूप में एकाग्र होने पर। ज्ञान अर्थात् अकेला जानपना, ऐसा नहीं। ज्ञानस्वभाव में एकाग्र होना। एकाग्र होना, वह चारित्र है, मूल तो ऐसा कहना है। ज्ञानस्वभाव आत्मा का, उसकी प्रतीति—समकित। उसमें स्थिरता, वह चारित्र। इसलिए ज्ञान में, स्वभाव में स्थिरता, वह चारित्र। वह दोष को काटने का उपाय है। इतने उपवास करना या इतना अमुक करना, ऐसा नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं, लो! प्रायश्चित्त में आता है न इतना प्रायश्चित्त लेना, अमुक करना। यहाँ तो यह कहा। ऐसे सब दोष का नाश आत्मा के ज्ञानस्वभाव, चैतन्य समुद्र प्रभु में एकाग्र होने से नाश होता है। दूसरी दोष के नाश होने की कोई पद्धति दूसरी है नहीं। ज्ञान से इसको काट डालते हैं, वे ही सच्चे मुनि हैं, वे ही मोक्ष पाते हैं।



गाथा-१५९

आगे फिर उन मुनियों की सामर्थ्य को कहते हैं -

मोहमयगारवेहिं य मुक्का जे करुणभावसंजुत्ता ।

ते सव्वदुरियखंभं हणंति चारित्तखग्गेण ॥१५९॥

मोहमदगारवैः च मुक्ताः ये करुणभावसंयुक्ताः ।

ते सर्वदुरितस्तंभं घ्नंति चारित्रखड्गेण ॥१५९॥

मद मोह गारव रहित करुणा भाव-युत वे मुनी ही।

सब दुरित खंभा घातते चारित्र असि से शीघ्र ही॥१५९॥

अर्थ - जो मुनि मोह-मद-गौरव से रहित हैं और करुणाभाव सहित हैं, वे ही चारित्ररूपी खड्ग से पापरूपी स्तंभ को हनते हैं अर्थात् मूल से काट डालते हैं।

भावार्थ – परद्रव्य से ममत्वभाव को ‘मोह’ कहते हैं। ‘मद’-जाति आदि परद्रव्य के संबन्ध से गर्व होने को ‘मद’ कहते हैं। ‘गौरव’ तीन प्रकार का है – ऋद्धिगौरव, सातगौरव और रसगौरव। जो कुछ तपोबल से अपनी महन्तता लोक में हो उसका अपने को मद आवे, उसमें हर्ष माने वह ‘ऋद्धिगौरव’ है। यदि अपने शरीर में रोगादिक उत्पन्न न हों तो सुख माने तथा प्रमादयुक्त होकर अपना महंतपना माने ‘सातगौरव’ है। यदि मिष्ट पुष्ट रसीला आहारादिक मिले तो उसके निमित्त से प्रमत्त होकर शयनादिक करे ‘रसगौरव’ है। मुनि इस प्रकार गौरव से तो रहित हैं और परजीवों की करुणा से सहित हैं – ऐसा नहीं है कि परजीवों से मोह ममत्व नहीं है, इसलिए निर्दय होकर उनको मारते हैं, परन्तु जब तक राग अंश रहता है, तब तक परजीवों की करुणा ही करते हैं, उपकारबुद्धि रहती है। इस प्रकार ज्ञानी मुनि पाप रूप अशुभकर्म, उसका चारित्र के बल से नाश करते हैं॥१५९॥

गाथा-१५९ पर प्रवचन

आगे फिर उन मुनियों के सामर्थ्य को कहते हैं :- १५९।

मोहमयगारवेहिं य मुक्का जे करुणभावसंजुत्ता।

ते सव्वदुरियखंभं हणंति चारित्तखग्गेण॥१५९॥

वहाँ ज्ञानशस्त्र कहा। यहाँ चारित्र कहा। दोनों एक की एक बात की। इस ज्ञान में एकाग्र होना, वह चारित्र है। समझ में आया? चारित्र कोई क्रियाकाण्ड, वह चारित्र नहीं। पंच महाव्रत के परिणाम और नग्नपना, वह कहीं चारित्र नहीं है। चारित्र तो आत्मा के ज्ञानस्वभाव में स्थिर होना, रमना, जमना, अतीन्द्रिय आनन्द की इच्छा बिना के अमृत का स्वाद लेना, उसे भगवान चारित्र कहते हैं और उस चारित्र बिना किसी की मुक्ति नहीं हो सकती। समझ में आया?

अर्थ :- जो मुनि मोह-मद-गौरव से रहित हैं... प्रत्येक का अर्थ करेंगे। और करुणाभाव सहित हैं,... जब तक राग का अंश है न, तब तक मुनि को पर की करुणा होती है। है राग, परन्तु उन्हें पर को मारने का या ध्वंस करने का भाव नहीं होता। दया का भाव होता है, उसे राग का अंश है तब तक। है वह राग का अंश, हों! करुणा। पर

की करुणा, वह धर्म नहीं। आहाहा! रागभाग है, पुण्य का भाग है। चारित्ररूपी खड्ग से पापरूपी स्तम्भ को हनते हैं अर्थात् मूल से काट डालते हैं। आहाहा! चक्रवर्ती को एक तलवार होती है। एक हजार देव सेवा करते हैं। चक्रवर्ती को सोलह हजार देव (होते हैं), उसमें चौदह रत्न के चौदह हजार देव होते हैं और दो हजार उसके शरीर के रक्षक होते हैं। सोलह हजार। उसमें एक तलवार होती है और एक हजार देव सेवा करते हैं। तलवार की, हों! एक तलवार। ऐसी तलवार वह हो कि खड़ा वज्र का स्तम्भ हो, ऐसे काटे तो वह ककड़ी काटे जैसे काट डाले। काकड़ी समझते हो? ककड़ी। वज्र का स्तम्भ, हों! वज्र, यह हीरा का स्तम्भ हो।

इसी प्रकार कहते हैं कि राग और द्वेष के विकारी भाव वे आत्मा के ज्ञानरूपी खड्ग, चारित्ररूपी खड्ग, तीक्ष्ण धार—स्वरूप में स्थिरता की धार, उसके द्वारा उन राग-द्वेष को छेद सकता है। बड़ा स्तम्भ कहते हैं, देखो न! पापरूपी स्तम्भ। पाठ में है न। 'सर्वदुरियखंभं' 'सर्वदुरियखंभं' 'दुरिय' अर्थात् पाप का स्तम्भ। स्तम्भ। आहाहा! मूल से काटता है, कहते हैं। भगवान आत्मा का शरण लेकर आनन्द के पहलू में जाकर, चिदानन्द प्रभु आनन्दमूर्ति है, उसके पहलू में जाकर, एकाकार होकर विकार के दोष को मुनि ध्वंस कर डालते हैं। उपदेश में शैली तो यह आवे न। दोपहर में तो ऐसा आया कि घातना कहाँ है? अभाव ही है उसमें। दोष का तो अभाव है। यह तो उपदेश की शैली में तो आवे। दोष का जीव में अभाव है। दोपहर में आया था न? भाव अभाव, भावअभाव, अभावभाव। यहाँ तक आया है। चार बोल आये हैं। शक्ति का चलता है। अभी बाकी है। ३६ चली है कल। ११ बाकी हैं। वहाँ अभाव।

भगवान आत्मा में एक अभाव नाम की शक्ति है। वह क्या? कि दोष का तो उसके द्रव्य-गुण-पर्याय में अभाव है। आहाहा! ऐसा अभाव नाम का गुण अनादि है। अनादि गुण है। उस गुण के धरनेवाले को जहाँ पकड़ा, कहते हैं कि पर्याय में विकार के अभावरूप परिणमन हो, ऐसा उसमें गुण है। पवित्ररूप परिणमे, ऐसा उसमें गुण है। अपवित्ररूप से परिणमना, वह उसका गुण है नहीं। अपवित्रता है ही नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। अपवित्र का तो अभाव है। जहाँ अभाव है, उस अपवित्र को नाश करना, यह तो (उपदेश की शैली है)।

मुमुक्षु : ... नाश करने का...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न। इसलिए तो याद किया। उस समय तो ऐसा कहा था कल अभी दोपहर को। और अभी यह वापस आया। ऐई! सवेरे का ठण्डा पहोर और दोपहर में अन्तर होगा कुछ ?

मुमुक्षु : कथन का तो अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कथन की पद्धति अनेक प्रकार से होती है। उसका हेतु क्या है, यह समझना चाहिए। नष्ट होते हैं तो आत्मा की एकाग्रता द्वारा नष्ट हो जाते हैं अर्थात् उत्पन्न नहीं होता। इसलिए उसका परिणमन ही नहीं होता। उसे यहाँ नष्ट करता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! शैली तो शैली शास्त्र की। वीतरागमार्ग की शैली अलौकिक है।

यहाँ कहते हैं कि दोषरूप न हो, ऐसा तो उसका अभाव नाम का गुण है। वस्तु की दृष्टि होने पर समकिति को और मुनि को दोषरूप तो परिणमन होता ही नहीं। उसे द्रव्य, गुण और पर्याय निर्मल कहते हैं। यहाँ कहते हैं कि दोषरूपी स्तम्भ को ज्ञानी नष्ट कर डालता है। उपदेश के वाक्य हैं। समझ में आया ? ऐई! वजुभाई! स्तम्भ होगा उसके पास वहाँ। पुण्यरूप न होना, ऐसा तो उसमें गुण है। भगवान गुण का स्तम्भ है। पुण्य-पापरूप न होना ऐसा तो उसमें गुण है। अब हुआ है स्तम्भ, उसे काटता है, इसका अर्थ क्या ? यह तो उपदेश की शैली ऐसी ही आती है। व्यवहार के बहुत प्रकार। उसे भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का नाथ, उसमें डुबकी मारने से आनन्द ही बढ़ता है, शान्ति बढ़ती है, उसमें यह दोष की उत्पत्ति नहीं होती, वह दोष को नष्ट करता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ? मूल से काट डालते हैं।

भावार्थ :- परद्रव्य से ममत्वभाव को मोह कहते हैं। परद्रव्य का ममत्वभाव। स्त्री मेरी, शरीर मेरा, परिवार मेरा, जाति मेरी, देश मेरा, लड़का मेरा, लड़की मेरी, दामाद मेरा, समधि-रिश्तेदार मेरे—यह सब मोह मिथ्यात्वभाव है। **मद-जाति आदि परद्रव्य के सम्बन्ध से गर्व...** लो! जाति आदि का गर्व हो। हम उत्तम जाति के हैं, उत्तम कुल के हैं, हम उत्तम पदवी के हैं, ईश्वरदशा में यह ईश्वर की महत्ता। अमलदार अधिकारी हैं। हमारी पदवी को राजा की ओर से इतना मान मिलता है, अमुक है। ऐसे

जो अभिमान, उसे गौरव कहते हैं। 'गर्व होने को मद कहते हैं।' मद को गर्व कहते हैं, ऐसा कहते हैं। मद को गर्व कहते हैं। जाति का, कुल का, बल का, अरे! किसका गर्व बापू! जाति, कुल वे तेरे हैं ही कहाँ? तेरी जाति तो आनन्द सिद्ध की जाति है। उसमें और इस जाति का गर्व, वह तो मिथ्यात्वभाव है।

गौरव तीन प्रकार का है—ऋद्धिगौरव, सातागौरव और रसगौरव। जो कुछ तपोबल से अपनी महन्तता लोक में हो... कुछ तपस्या अथवा पुण्य के कारण बाहर में महत्ता हो, महत्ता। उसका अपने को मद आवे,... देखो! हम बड़े हैं, हमारी कुर्सी पहली पड़े, हमें सामने पहले बैठावे। समझ में आया? यह सब अभिमान के जहर हैं, कहते हैं। अभिमान की अफीम पीकर उसे अमल चढ़ा है। समझ में आया? अपनी महन्तता लोक में हो... लोक में हो, ऐसा कहे। उसका अपने को मद आवे,... देखो! हमारा कुल, देखो! हमारे पैसेवाले को। कैसी हमारी आमदनी, हमारे मुनीम कैसे, हमारी स्त्री कैसी, उसके लड़के कैसे, उसके समधि कैसे, साले के साले का विवाह हो तो भी कैसा बड़ा, ऐसी हमारी इज्जत और ऐसे हम ऊँचे कुल के। मर गया अब सुन न! वह कहाँ तेरा था? समझ में आया?

अपने को मद आवे, उसमें हर्ष माने... प्रभु में आनन्द में हर्ष छोड़कर इनमें हर्ष मानना, वह तो मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? क्योंकि आनन्द तो आत्मा में है। उसके बदले परपदार्थ की कुछ भी अनुकूलता देखकर हर्ष करना, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! सरकार में नाम पहला आवे, जे.पी. चढ़ावे। क्या जे.पी. कहते हैं? ईलकाब। अभी किसी का कल समाचारपत्र में आया था। किसी को जे.पी. किया होगा कुछ। कल था अपने जैन में कहीं। वह ऋद्धिगौरव है।

यदि अपने शरीर में रोगादिक उत्पन्न न हो... निरोगी हो, वर्ण अच्छा हो, कण्ठ अच्छा हो इत्यादि। उसका इसे मद होता है, सुख उपजता है। अब वह तो धूल है तेरी। शरीर को निरोगता में क्या सुख है? मरते ऐसे ८० वर्ष हुए परन्तु कभी सिर पर सोंठ चुपड़ी नहीं, ऐसी बातें करने बैठे फालतू। किसी दिन सोंठ चुपड़ी नहीं। तो क्या है परन्तु अब? उसमें अभिमान किसका करता है? वह तो जड़ है। समझ में आया? इतने वर्ष हुए परन्तु कभी सिर पर कुछ चुपड़ा नहीं। कभी गंठोडा खाया नहीं। दवा हमने

नाड़ी में चढ़ायी नहीं। रोग होवे तो ले न दवा ? तो क्या है परन्तु ? उसका इसे अभिमान होता है, प्रसन्नता-प्रसन्नता बताता है, बातें करे। मूढ़ है, कहते हैं। समझ में आया ? रोगी तो आते होंगे न दवाखाने में ? कोई निरोगी आते होंगे ? निरोगी घर में ऐसा अभिमान करे बैठा-बैठा। होशियारी के कारण पूरा दिन घूमा करे। हमने तो कभी शीशी ली नहीं। घर में शीशी का नाम नहीं। ऐसी हमारी (निरोगता)। और खाने-पीने का ध्यान बहुत रखते हैं न, इसलिए हमें (कुछ नहीं होगा)। धूल भी ध्यान रखे तो न हो, सुन न! खाने-पीने का बहुत ध्यान रखे तो रोग आवे नहीं।

बहुत वर्ष पहले की बात है। लाठी में थे एक। नाम नहीं देना। वृद्ध चले तो ऐसे धीरे-धीरे, धीरे-धीरे चले। ऐसे धीरे-धीरे। शरीर में कुछ रोग नहीं। कफ-बफ कुछ नहीं। शरीर निरोगी। मुझे ऐसा हुआ कि यह वृद्ध धीरे-धीरे क्यों चलता है ? दूसरे को पूछा ऐसा क्यों ? यह धीरे-धीरे चलता है, उसमें निरोगता बढ़ी रहे। कहा, यह शरीर अच्छा है। लाठी के कौन हैं ? त्रिभुवनभाई हैं या नहीं ? त्रिभुवन नहीं आये ? ... त्रिभुवन विठ्ठल, वे थे। वृद्ध थे। उम्र बढ़ी ८० की। शरीर में रोग नहीं, कुछ नहीं, राति रायण जैसा शरीर। कहा, यह ऐसे धीरे-धीरे क्यों चलता है ? किसी को पूछा तो कहा कि इसे धीरे-धीरे चलने में श्वास तो कम लिये जायें और निरोगता टिकी रहे। आयुष्य बढ़े। बराबर होगा ? क्या होगा इसमें ?

मुमुक्षु : प्रभु! ऐसा कुछ है ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं ? आयुष्य बढ़े नहीं ? श्वास थोड़े लें तो।

मुमुक्षु : नहीं। आयुष्य बढ़े, वह आत्मा के आधीन है ही नहीं। वह जैसा होना हो, वैसा हो, उसमें वह ऐसे धीरे-धीरे करे या चाहे जो करे, उसमें घट-बढ़ नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं ? आहाहा!

शरीर में रोगादिक उत्पन्न न हों तो सुख माने तथा प्रमादयुक्त होकर अपना महन्तपना माने... बस, ऐई खा-पीकर लहर। हम तो बस नळिया पीले हों तब उठें। धूप-बूप चढ़े तब नींद उड़े। हम तो लहर करते हैं सुख में।

मुमुक्षु : नळिया सोना के हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोना के कहा। नळिया समझते हो ? नळिया नहीं कहते ? ... क्या कहलाता है ? सूरज उगता है न ? फिर पीले होते हैं न ? सूरज उगे तब पीले हों, तब जगे भाईसाहेब। आठ बजे, साढ़े आठ बजे। ... करते-करते। ऐसा ... सो रहा हो मजे का। हम सब प्रकार से सुखी हैं। धूल में भी नहीं, सुन न! दुःखी का सरदार है। सिंक गया है दुःख में। भगवान आत्मा कौन है, इसकी तो तुझे खबर नहीं। और बाहर के सुख में गर्व करे, वे अभिमानी हैं कि महन्तपना माने। लो!

यदि मिष्ट-पुष्ट रसीला आहारादिक मिले... पुडला मिले ऐसे प्रतिदिन खाने को। क्या कहलाते हैं वे ? साटा (गुजराती मिठाई) मिले। मीठे-फीके साटा घी में तले हुए। और पच भी जाए। उसके निमित्त से प्रमत्त होकर शयनादिक करे... दूधपाक भले प्रकार से खाया हो तो सोवे। नशा चढ़े दूधपाक का। भैंस के दूध का दूधपाक हो ठीक सा। और डाला हो, वह क्या कहलाता है ? जायफल को ? जायफल डाले। जायफल डाले और फिर सेर-डेढ़ सेर चढ़ाया हो। ऐई... नींद निकाले बारह बजे। दिन के बारह (बजे) सोवे और दो बजे उठे। दो-दो घण्टे सोवे। साता-साता। धूल में भी नहीं। सुन न! वह तो राग है, प्रमाद है। आहाहा!

कबीर की है न एक लाईन ? कबीर की एक लाईन है। 'सुखियो सब संसार खाय-पीके सोवे, दुखियो दास कबीर जब जागे तब रोवे।' यह तो दुकान के ऊपर लाईन आयी थी न। जैन समाचार में ऐसा आया था। पुस्तक आयी थी। (संवत्) १९६४-६५ के वर्ष की बात है। जैन समाचार दुकान पर मँगाते थे। पत्र जैन समाचार था। वाडीलाल मोतीलाल अहमदाबादवाले का। उसमें एक भेंट पुस्तक दे न ? वह पत्र मँगाते थे। कबीर की। उस दिन की यह लाईन है। १९६४-६५। तुम तो उस भव में कहीं होंगे। 'सुखिया सब संसार खाय-पीके सोये, दुखिया दास कबीर जब जागे तब रोवे।' अरे! दो घड़ी व्यर्थ गयी। नींद में दो घड़ी मेरे आत्मा में से व्यर्थ गयी। कबीर का। वैरागी हो न। कषाय मन्द। तत्व की वस्तु पूरी दूसरी है। अब उसकी तो खबर होती नहीं। क्या करे ? कहो, समझ में आया ? वह दो घड़ी, चार घड़ी सोकर उठे, ओहो! आज तो बहुत साता है। कबीर कहते हैं कि सोकर उठा, वहाँ अरे रे! मेरी दो घड़ी व्यर्थ गयी। निद्रा में गयी, आत्मा का कुछ हुआ नहीं। बहुत अन्तर परन्तु, हों! दुनिया को और धर्म को भारी अन्तर।

और, निमित्त से प्रमत्त होकर... मिष्ट, पुष्ट। पुष्ट देखा! सालमपाक हो ऊँचा, दूधपाक हो, अडदिया-अडदिया। लो! अभी था न यहाँ अडदिया। अडदिया हो अडदिया। अडदिया समझते हो? उड़द के लड्डू होते हैं न? गेहूँ के लड्डू बनावे, उड़द के बनावे। चने के आटे के लड्डू। लड्डू अर्थात् मैसुख। यह अलग-अलग नाम दिये हैं। सब धूल है। निमित्त से प्रमत्त होकर शयनादिक करे... शयन आदि अर्थात्? सोवे, खेल में चढ़े, शतरंज खेले, साता अनुकूल। चढ़ा हो रात के बारह-बारह बजे तक शतरंज खेले। मूर्ख के जाम ऐसे काल बितावे। आहाहा! वे सब अभिमानी हैं, कहते हैं। जागरण हो तो भी हमको रोग नहीं आता। हमारा शरीर ऐसा है। हमारा शरीर ऐसा है। अब शरीर कब तेरा था? वह तो जड़ का है, मिट्टी का है। तीन-तीन दिन लगातार जागरण हो तो भी हमें कुछ नहीं होता। सिर नहीं दुःखता। परन्तु अब उसमें क्या है? वह तो शरीर की स्थिति जड़ की। उसमें तुझे किसका अभिमान? आहाहा! यह तो सूक्ष्म में सूक्ष्म दोषों का भी प्रकार तो समझावे न? यह गौरवरहित होता है।

मुनि इस प्रकार गौरव से तो रहित हैं और परजीवों की करुणा से सहित हैं;... कोई जीव की एकेन्द्रिय से लेकर किसी को दुःख हो, ऐसा भाव नहीं होता। ऐसा नहीं है कि परजीवों से मोहममत्व नहीं है इसलिए निर्दय होकर उनको मारते हैं,.... ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं? परजीवों से मोहममत्व नहीं है... परजीव से ममता नहीं, इसलिए अब निर्दय से उसे घात करना, ऐसा नहीं होता। ऐसा कहते हैं। परजीव तो परजीव है। मुझे और उसे सम्बन्ध क्या है? (ऐसा नहीं है कि) परजीवों से मोहममत्व नहीं है इसलिए निर्दय होकर उनको मारते हैं, परन्तु जब तक राग अंश रहता है, तब तक पर जीवों की करुणा ही करते हैं,.... देखो! राग अंश रहे, तब तक यह करुणा करे। वह राग है न? वह धर्म नहीं परन्तु राग का अंश है। आहाहा! पर जीवों की करुणा ही करते हैं, उपकारबुद्धि रहती है। राग है न? तब तक उपकारबुद्धि रहे। राग छूट जाए तो वीतराग हो गया, पश्चात् वह राग होता नहीं। इस प्रकार ज्ञानी मुनि पाप जो अशुभकर्म उसका चारित्र के बल से नाश करते हैं। देखो! स्वरूप की रमणता द्वारा ऐसे विकल्पभाव को उत्पन्न होने न दे। होने न दे अर्थात् कि हो नहीं, ऐसा। भारी बात।

गाथा-१६०

आगे कहते हैं कि जो इस प्रकार मूलगुण और उत्तरगुणों से मंडित मुनि हैं वे जिनमत में शोभा पाते हैं -

गुणगणमणिमालाए जिणमयगयणे णिसायरमुणिंदो ।

तारावलिपरियरिओ पुण्णिमइं दुव्व पवणपहे ॥१६०॥

गुणगणमणिमालया जिनमतगगने निशाकरमुनींद्रः ।

तारावलीपरिकरितः पूर्णिमेन्दुरिव पवनपथे ॥१६०॥

पूनम शशि तारावली-युत सुशोभित नभ में यथा।

गुण-गण-मणी-माला-सहित जिन-मत-गगन मुनि चन्द्रमा ॥१६०॥

अर्थ - जैसे पवनपथ (आकाश) में ताराओं की पंक्ति के परिवार से वेष्टित पूर्णिमा का चन्द्रमा शोभा पाता है, वैसे ही जिनमत रूप आकाश में गुणों के समूहरूपी मणियों की माला से मुनीन्द्ररूप चन्द्रमा शोभा पाता है।

भावार्थ - अट्टाईस मूलगुण, दशलक्षण धर्म, तीन गुप्ति और चौरासी लाख उत्तरगुणों की मालासहित मुनि जिनमत में चन्द्रमा के समान शोभा पाता है, ऐसे मुनि अन्यमत में नहीं हैं ॥१६०॥

गाथा-१६० पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो इस प्रकार मूलगुण और उत्तरगुणों से मण्डित मुनि हैं, वे जिनमत में शोभा पाते हैं :- आहाहा! वीतरागमार्ग में ऐसे धर्मात्मा होते हैं, अन्यत्र हो नहीं सकते, ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग परमात्मा तीर्थकरदेव केवली ने तीन काल-तीन लोक देखे। उन्होंने जो वस्तु का स्वरूप कहा, क्योंकि धर्म का मूल तो सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ जिसके मत में नहीं, उसके मत में एक भी वस्तु सच्ची नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! तीन काल-तीन लोक जिसने आत्मा की पर्याय में जाने नहीं, ऐसा आत्मा का स्वभाव जिसने स्वीकार नहीं किया। उसके मत में धर्म कभी नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। देखो न! चलता है न यह सब? मुम्बई में। रजनीश का। मजा पड़ता है, रस आता है। वह कहा नहीं जा सकता। कहो, ऐसे के ऐसे। अरे रे!

प्रवचन-१६०, गाथा-१६० से १६२, सोमवार, मगसर कृष्ण १५, दिनांक २८-१२-१९७०

भावपाहुड़। १६० गाथा का भावार्थ है। यहाँ मुनि चारित्रवन्त कैसे होते हैं? उसकी श्रद्धा कराते हैं।

मुमुक्षु : समकित की बात करके ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी बात चलती है। उसकी श्रद्धा। मुनि कैसे होते हैं? उसकी यह श्रद्धा कराने की यह गाथा है। और जिसे सम्यग्दर्शन होता है, उसे उत्तम में उत्तम जगत के पद हैं, वे प्राप्त होते हैं, यह बाद में कहेंगे। मुनिपना वीतरागमार्ग में आत्मा का सम्यक् अनुभव, शुद्ध चैतन्य का-आनन्द का अनुभव निर्विकल्प होकर प्रतीति होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। लोग माने, वह सम्यग्दर्शन नहीं। सम्यग्दर्शन सूक्ष्म चीज़ है, अपूर्व है। अनन्त काल में इसने सब दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, ऐसा अनन्त बार किया परन्तु इसने सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं किया। ऐसे पुण्य के भाव किये तो मिथ्यात्वसहित स्वर्गादि में जाए। वापस वहाँ से निकलकर पशु आदि ढोर होकर नरक और निगोद में जाए। छगनभाई! भारी काम ऐसा!

सम्यग्दर्शन वह ऐसी अपूर्व चीज़ है कि एक बार उसका पता लगा आत्मा शुद्ध आनन्द है, यह दया, दान, व्रत के विकल्प राग हैं, इनसे वह भिन्न तत्त्व है। उसके भान में अनुभव होकर सम्यग्दर्शन हो। उसके पश्चात् उसे मुनिपना कैसा होता है, इसकी व्याख्या है। उसे अट्टाईस मूलगुण हों। भावार्थ में है। अट्टाईस मूलगुण होते हैं। पंच महाव्रत, एक बार आहार, अचेल-वस्त्ररहित रहना, ऐसे उसके अट्टाईस मूलगुण हैं, वीतरागमार्ग के अनादि के। समझ में आया ?

सच्चे मुनि हों, उन्हें आत्मज्ञान हुआ होता है, तदुपरान्त उन्हें अट्टाईस मूलगुण, चारित्र की रमणतासहित होते हैं। चारित्र अर्थात् स्वरूप में रमना, अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन का अनुभव करना, इसका नाम चारित्र है। इस चारित्र की भूमिका में अट्टाईस मूलगुण होते हैं। पंच महाव्रत, खड़े-खड़े आहार, एक बार आहार, अचेलरूप से वस्त्र रहित रहना, ऐसा भगवान का मार्ग अनादि का यह है। मोहनभाई! यह तो सब नये सुनते

हैं न सब। अभी तक हम वस्त्र-पात्रवाले को साधु मानते हैं न। ऐसा नहीं, भाई! फेरफार हो गया बड़ा। वीतरागमार्ग, जो अनादि वीतराग सर्वज्ञ मार्ग परमेश्वर का कहा हुआ, वह मार्ग महाविदेह में तो धोख (राज) मार्ग चलता है।

कहते हैं, उन्हें अट्टाईस मूलगुण, दशलक्षण धर्म,... होते हैं। उत्तम क्षमा आदि वीतराग-वीतराग, वीतरागता जिसे प्रगट हुई होती है। जिन्हें वस्त्र का एक धागा नहीं होता, जिन्हें दूसरा परिग्रह तो किसका होगा? तीन गुप्ति... मन, वचन और काया गोपना। स्वरूप में लीनता करते हैं। आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा में जो बाहर से गुप्त होकर अन्दर लीन होते हैं। चौरासी लाख उत्तरगुणों... होते हैं। लम्बी व्याख्या है। इत्यादि गुणों की मालासहित... ऐसे गुण की मालावाले, उसे वीतराग शासन में मुनि कहा जाता है। जिनमत में चन्द्रमा के समान शोभा पाता है,... जैसे चन्द्रमा हजारों ताराओं से वेष्टित, परिवेष्टित शोभता है; उसी प्रकार ऐसे मुनि अनन्तगुण की माला में वीतरागमार्ग में होते हैं। अन्यत्र ऐसे होते नहीं। अन्यत्र ऐसे कोई होते नहीं। अन्यमत में भले नग्न हो, बाबा जंगल में रहे, परन्तु वीतरागमार्ग की दृष्टि और भान बिना वे सब मिथ्या साधु हैं। समझ में आया? जिसमें सर्वज्ञपद नहीं और वह भी सर्वज्ञ, सर्वज्ञरूप से उसे तीन काल-तीन लोक जानने में आवे, ऐसा जिसका स्वभाव है, उन्होंने जो तीन काल-तीन लोक देखकर धर्म कहा, वह जिनवीतराग में ही ऐसा धर्म है। ऐसा धर्म अन्यत्र (होता नहीं)। अन्यमत में, वेदान्त में, विष्णु में कहीं यह बात नहीं होती। समझ में आया? जिनमत में चन्द्रमा के समान शोभा पाता है। ऐसी भाषा आचार्य ने की है। यह अन्तिम गाथायें हैं न?

कुन्दकुन्दाचार्य महामुनि दिगम्बर सन्त थे। संवत् ४९। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, जो कुन्दकुन्दाचार्य सीमन्धर भगवान अभी महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं, वहाँ गये थे। अभी भी भगवान विराजते हैं। दो हजार वर्ष पहले थे और अभी वे हैं और अभी तो अरबों वर्ष रहेंगे। सीमन्धर भगवान तीर्थकरदेव, जिन्हें विहरमान भगवान कहते हैं न? वे महाविदेह में अभी विराजते हैं। मौजूद है। देह है, समवसरण है, वाणी निकलती है। तीर्थकरपद में अरिहन्त हैं। महावीर भगवान आदि तो सिद्ध पद में हो गये। उन्हें अब शरीर नहीं है। वे तो अशरीरी सिद्ध हो गये। भगवान अरिहन्तपद में विराजते हैं।

आगामी चौबीसी के तेरहवें तीर्थकर यहाँ होंगे, तब मोक्ष पधारेंगे। उनके पास कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। दो हजार वर्ष पहले। आठ दिन रहकर यह शास्त्र रचे हैं। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि भगवान का तो यह सन्देश है। परमात्मा ऐसा कहते हैं। जिसे आत्मदर्शन पहले हुआ हो—सम्यग्दर्शन। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन नहीं; वह तो राग है। नव तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, वह भी सम्यग्दर्शन नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

सम्यग्दर्शन वह आत्मा का स्वभाव जो था, उसे भान में लाया, अनुभव में प्रतीति में यह चैतन्यमूर्ति आनन्द और शुद्ध है, ऐसी शुद्धता के भान में शुद्धता प्रगट हुई, उसमें प्रतीति हुई कि अहो! आत्मा पूरा शुद्ध ही है। उसमें अशुद्धता, दया, दान, व्रत के विकल्प भी उसके स्वरूप में हैं नहीं। ऐसा अन्तर में भान होकर प्रतीति होना, इसका नाम समकित है। यह अनन्त काल में इसने प्रगट नहीं किया। इस जिनमत में ऐसे मुनि शोभते हैं। ऐसे मुनि अन्यमत में नहीं है। है? ऐसे अन्यमत में नहीं हो सकते।



गाथा-१६१

आगे कहते हैं कि जिनके इस प्रकार विशुद्ध भाव हैं, वे सत्पुरुष तीर्थकर आदि पद के सुखों को पाते हैं -

चक्कहररामकेसवसुरवरजिणगणहराइसोक्खाइं ।

चारणमुणिरिद्धीओ विसुद्धभावा णरा पत्ता ॥१६१॥

चक्रधररामकेशवसुरवरजिनगणधरादिसौख्यानि ।

चारणमुन्यद्धीः विशुद्धभावा नराः प्राप्ताः ॥१६१॥

सुविशुद्ध भावों से पुरुष चक्रेश केशव राम जिन।

गणधर सुरेशों के सुखों चारण मुनि ऋद्धि लब्ध सब ॥१६१॥

अर्थ - विशुद्ध भाववाले ऐसे नर मुनि हैं, वह चक्रधर (चक्रवती, छह खंड का राजेन्द्र) राम (बलभद्र), केशव (नारायण, अर्द्धचक्री) सुरवर (देवों का इन्द्र) जिन (तीर्थकर पंचकल्याणक सहित, तीन लोक से पूज्य पद) गणधर (चार ज्ञान और सप्तऋद्धि के धारक मुनि) इनके सुखों का तथा चारणमुनि (जिनके आकाशगामिनी आदि ऋद्धियाँ पाई जाती हैं) की ऋद्धियों को प्राप्त हुए।

भावार्थ - पहिले इस प्रकार निर्मल भावों के धारक पुरुष हुए, वे इस प्रकार के पदों के सुखों को प्राप्त हुए, अब जो ऐसे होंगे वे पावेंगे, ऐसा जानो ॥१६१॥

गाथा-१६१ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जिनके इस प्रकार विशुद्ध भाव हैं, वे सत्पुरुष तीर्थकर आदि पद के सुखों को पाते हैं :- क्या कहते हैं ? जिसे यह आत्मा पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव जो विकार है, उनसे रहित आत्मा शुद्ध वीतरागमूर्ति आत्मा है, उसकी जिसे श्रद्धा-ज्ञान और शुद्धभाव जिसे प्रगट हुआ है, सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, वह शुद्धभाव प्रगटा है। आहाहा! वह विशुद्ध भाव हैं, वे सत्पुरुष तीर्थकर आदि पद के सुखों को पाते हैं :- यह नाम देते हैं सब।

चक्रधररामकेसवसुरवरजिणगणहराइसोक्खाइं ।

चारणमुणिरिद्धीओ विसुद्धभावा णरा पत्ता ॥१६१॥

अर्थ :- विशुद्ध भाववाले ऐसे नर मुनि हैं... मुनि आदि, समकित्ती आदि हों भले। समझ में आया ? जिसे ऐसे विशुद्ध चैतन्य के आनन्द के भाव प्रगट हुए हैं। चैतन्य का अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र स्वाद जिसे प्रगट हुआ है। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है। उस अतीन्द्रिय आनन्द का जिसे स्वाद—अन्तर में वेदन प्रगट हुआ है, उसे शुद्धभाव कहा जाता है। शब्द भी सुने न हों, यह क्या होगा ? भगवान जाने। छगनभाई! आहाहा!

कहते हैं, जिसे ऐसे विशुद्धभाव हों, वह वह चक्रधर (चक्रवती, छह खण्ड का राजेन्द्र)... होता है। यहाँ ऐसा कहना चाहते हैं कि जिसे आत्मा भगवान ने कहा, ऐसा अनुभव के स्वाद का भान नहीं, स्वाद आया नहीं, ऐसा जीव चाहे जैसी दया, व्रत, पूजा,

भक्ति आदि करे परन्तु उसे चक्रवर्ती पद नहीं मिलता। क्योंकि वह दृष्टि उसकी मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? श्रेणिक राजा, देखो! भगवान के समय श्रेणिक राजा हो गये हैं न? भगवान के परम भक्त आत्मज्ञानी समकिति, क्षायिक समकिति। श्रेणिक राजा। उन्होंने पहले मुनि-सच्चे सन्त की विराधना की थी, इससे उन्होंने ३३ सागर का आयुष्य नरक का बाँधा। तैतीस सागरोपम का। परन्तु उनकी रानी थी वह समकिति, जैन समकिति आत्मभान (सहित), हों! जैन अर्थात् वाड़ा, ऐसा नहीं। उसे आत्मा का भान अन्दर प्रगट हुआ था। रानी स्त्री थी। उनके निमित्त से वे मुनि के पास समकित प्राप्त हुए थे। श्रेणिक राजा पहले बौद्धधर्मी थे। वह आत्मा का ज्ञान-भान हुआ। तब उसने तैतीस सागर की जो स्थिति पहले साधु की असातना में बाँधी थी, उसे तोड़ डाला। चौरासी हजार वर्ष की रह गयी। चौरासी हजार। वह असंख्य अरब वर्ष का आयुष्य नरक का बाँधा था। सच्चे सन्त आत्मध्यानी-ज्ञानी आनन्द में रमते थे। ऐसे मुनि की गर्दन में मरा हुआ सर्प डाला था, तो करोड़ों चींटियाँ हो गयी और (शरीर) खोखा बना था। उसका उन्हें बहुत पाप लगा था। तैतीस सागर की स्थिति। परन्तु उन्हें आत्मज्ञान उन्हीं मुनि के पास समकित-धर्म प्राप्त हुए।

ओहो! यह आत्मा परमानन्द की मूर्ति है। उसमें दुःख और विकल्प की गन्ध नहीं। कर्म तो नहीं, शरीर तो नहीं भगवान आत्मा में, परन्तु इसमें पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प - राग उठे, वह भी स्वरूप में है नहीं। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें। ऐसा उसे अन्तर में भान हुआ, पश्चात् भगवान के समवसरण में गये, महावीर परमात्मा के। वहाँ उन्होंने तीर्थकरगोत्र बाँधा। यह समकित का प्रताप है, ऐसा कहना है। समझ में आया?

समकितरूपी विशुद्धभाव जिसे प्रगट हुआ। त्याग नहीं था, चारित्र नहीं था, अभी हजारों रानियाँ थीं, राजपाट में थे; तथापि सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, उसके कारण जन्म-मरण को काट डाला, चौरासी हजार वर्ष की स्थिति नरक की रह गयी। आयुष्य बाँधा वह तो भोगना ही पड़ेगा। लड्डू बाँधा हो लड्डू, वह तो फिर खाना ही पड़ता है। उसमें से घी निकालकर पूड़ी नहीं तली जाती उसमें से। उसमें से आटा निकालकर रोटी नहीं होती। हाँ, वह लड्डू हो, उसमें घी डालना हो तो ऊपर से डाला जाता है और यह

सूखाना हो तो दो-चार दिन सूखे। परन्तु लड्डू में से घी निकालकर रोटी हो या ऐसा हो - ऐसा नहीं होता। इसी प्रकार एक बार आयुष्य बँध गया हो, वह आयुष्य नहीं बदलता, गति नहीं बदलती, आयुष्य कम-ज्यादा हो। समझ में आया? यह चौरासी हजार वर्ष की स्थिति रह गयी। आत्मज्ञान को प्राप्त हुए।

शुद्ध चिदानन्द आत्मा सम्यग्दर्शन की पवित्रता अन्दर से प्रगट की। दूसरा राजपाट था, चारित्र नहीं था। भले न हो। परन्तु यह आत्मा के ज्ञान और सम्यग्दर्शन के कारण शुभभाव में उन्होंने तीर्थकरपद बाँधा। वे नरक में गये हैं परन्तु वहाँ से निकलकर पहले तीर्थकर होंगे। आगामी चौबीसी में पहले तीर्थकर, यहाँ महावीर जैसे थे, यहाँ महावीर भगवान् अन्तिम, वे होंगे पहले। शान्तिभाई! यह सुना नहीं? यह न सुना हो बहुत। विस्तार से सुना न हो। दुकान के रस में समय नहीं मिले न! कहो, समझ में आया? आहाहा! देखो! यह कुछ त्याग नहीं था, तपस्या नहीं थी, चारित्र नहीं था। परन्तु यह सम्यग्दर्शन ऐसी चीज़ है कि यह लोगों को खबर नहीं कि सम्यग्दर्शन किसे कहना। समझ में आया?

यह सम्यक् अन्तर में वर्तमान ज्ञान की दशा द्वारा पूरे चैतन्य को पकड़ना कि जो अनन्त काल में इसने पकड़ा नहीं। आहाहा! यह जो वस्तु की गुलॉट खाकर राग और संयोग और अल्पज्ञता की रुचि थी, वह मिथ्यादृष्टि था। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, मुनिपना ले ले तो भी वह मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि उसे राग पर दृष्टि है। दया, दान की क्रिया वह मेरी, ऐसी दृष्टि है। और अल्पज्ञ पर्याय का उघाड़ है, उतना मैं हूँ—ऐसा मानता है। सम्यग्दर्शन में वह दृष्टि गुलॉट खाती है। अल्पज्ञ राग और निमित्त, वह मैं नहीं, उसमें मैं नहीं, उतना मैं नहीं। आहाहा! मैं तो शुद्ध चैतन्यदल हूँ। चैतन्य का नूर का पूर आत्मा है अन्दर अकेला। चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्यप्रकाश का पूर। उसका स्वभाव अन्दर पकड़कर अनुभव में वेदन में शान्ति और आनन्द आवे, उसे समकित कहते हैं। समझ में आया? और सम्यग्दर्शन बिना श्रावक नहीं होता, सम्यग्दर्शन बिना साधु नहीं हो सकता। अंक बिना के शून्य को संख्या में गिनने में नहीं आता। समझ में आया? मोहनभाई! आहाहा!

चक्रधर... चक्रवर्ती हो, देखो! भरत चक्रवर्ती। ऋषभदेव भगवान् के पुत्र। पहले तीर्थकर थे न ऋषभदेव भगवान्? वे चक्रवर्ती भरत हुए। वे पूर्व में समकित प्राप्त थे,

आत्मज्ञान हुआ था। उसमें पुण्य बँध गया (तो) वे चक्रवर्ती हुए। ऋषभदेव भगवान तीर्थकर के पहले पुत्र भरत चक्रवर्ती। जिनके घर में छियानवें हजार तो पद्मिनी जैसी रानियाँ। छियानवें करोड़ सैनिक, छियानवें करोड़ गाँव, तथापि आत्मज्ञान और भान था। शान्तिभाई! यह सूक्ष्म चीज़ है। त्याग नहीं था परन्तु आत्मदर्शन था। और पूर्व में सम्यग्दर्शन प्राप्त थे तो यह चक्रवर्ती पद होता है। सम्यग्दृष्टि बिना अकेले मिथ्यादृष्टि व्रत, नियम और पुण्य आदि करे, उसे चक्रवर्ती पद नहीं मिलता। कोई देव आदि हल्के पद मिले और फिर चार गति में भटके। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, विशुद्धभाव से चक्रवर्ती होता है, छह खण्ड का राजेन्द्र। उसका फल बताते हैं। जहाँ सौ कलथी अनाज हो, वहाँ सौ गाड़ी घास साथ में होती है। खड्-खड्-घास। ... दाना पके। सौ कलथी दाना पके जिस किसान को, उसे घास तो साथ में होती ही है। समझ में आया ? इसी प्रकार धर्मी जीव को आत्म-सम्यग्दर्शन की भूमिका में उसे तो उसमें धान पका है। परन्तु साथ में पुण्य आ जाए वह घास है, पुण्य वह। उस पुण्य की घास के फल में चक्रवर्ती हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? जिसकी ऋद्धि सुनी जाए नहीं, इतनी तो ऋद्धि! सोलह-सोलह हजार तो देव जिसकी सेवा करे। इन्द्र तो जिसके-चक्रवर्ती के मित्र हों। इन्द्र, हों! आकर साथ में सिंहासन में मित्र होकर बैठे। आहाहा! ऐसा समकित जिसे आत्मदर्शन पहले हुआ हो, उसे बीच में ऐसा शुभभाव आवे, उसे चक्रवर्ती पद बँध जाता है।

मुमुक्षु : लाभ होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे लाभ की यहाँ बात नहीं। यहाँ तो (ऐसा कहना है), ऐसे बाहर की सामग्री की उत्कृष्टता भी समकित जीव को होती है। अज्ञानी को ऐसा पद होता नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। वह कहीं सुख है नहीं, उसमें चक्रवर्तीपद में। वह तो बाहर की बड़ी ऋद्धि है। अच्छे दाने पकें, उसके डण्ठल भी बहुत ऊँचे होते हैं। हें! बहुत मीठे और ऊँचे होते हैं। एक बार अलियाबाड़ा गये थे न एकबार। जामनगर गये थे न, जब पहले (संवत्) १९९० के वर्ष में। अलियाबाड़ा है न ? वहाँ गये थे। लोग सामने पूरी वह आयी थी। ९० के वर्ष की बात है। स्पेशल आयी थी। जामनगर पूरी रेल। १५०० लोग आये। उनका रिवाज है, उन लोगों का साधु के सामने आने का। फिर

बहुत लोगों में एक व्यक्ति लाया बड़ा डण्ठल बाजरे का। बाजरा हो वहाँ बड़ा। वह डण्ठल इतना। बाजरा इतना। डण्ठल इतना कसदार अन्दर। ऐसे डण्ठल बड़े और इतना वह नहीं। वह तो डण्ठल ही पूरा बड़ा सब। उसके ऊपर दाने... दाने... दाने... दाने... इतना कोरा था छोटा, बस। बाकी ऊपर सब लम्बी डाल। वह कुछ नयी प्रकार का बाजरा होता है। अलियाबाड़ा में देखा था। जामनगर में है न? भाई शान्तिभाई! चार कोस।

मुमुक्षु : ...डुंडा होता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोटा और बाकी सब बाजरा था। उसका नाम कुछ कहते थे परन्तु हमें खबर नहीं। यह तो ९० के वर्ष की बात है।

इसी प्रकार अच्छे दाने हों, उसके डूँडे भी ऊँचे होते हैं, इसी प्रकार जिसे आत्मदर्शन और सम्यग्दर्शन हुआ है, उसकी उज्ज्वलता बहुत होती है। परन्तु उसमें जो पुण्य बँधता है, वह भी अलग प्रकार का पुण्य—उसके डूँडे होते हैं। आहाहा! समझ में आया? देखो! आचार्य अन्त में यह कहना चाहते हैं, देखो! १६१वीं गाथा। आहाहा! वह राजेन्द्र होता है, छह खण्ड का धनी। देव जिसकी सेवा करते हों, देव जिसके मित्र हों, लो! समझ में आया? आहाहा!

ऋषभदेव भगवान अष्टापद पर्वत के ऊपर मोक्ष पधारे, तब भरत और इन्द्र वहाँ उपस्थित हुए। अष्टापद पर्वत है, वहाँ ऋषभदेव भगवान पहले मोक्ष पधारे, भरत को खबर पड़ी। वहाँ भरत और इन्द्र आये। भरत ऐसे देखते हैं भगवान की, देह छूटी हुई। आँखों में से आँसू बहते हैं। वे भी समकित्ती हैं, इस भव में मोक्ष जाना है। भरत को इस भव में मोक्ष है, तथापि भगवान को देखकर ऐसे। आहा! अरे! भरत का सूर्य आज अस्त हो गया। जिसके पास हम समाधान करते थे, वे यह भगवान गये। यह सूर्य तो उगे और अस्त हो। यह तो उगा, वह अभी चला गया। ऐसा करके आँख में से आँसू (बहते हैं)। राग है न अभी? वीतराग नहीं। भान है, हों! कि राग, वह मेरा स्वरूप नहीं।

इन्द्र कहता है कि अरे! भरत! किसलिए (रोते हो)? हम तो अभी एक भव करनेवाले हैं, इन्द्र कहता है। हमारे तो अभी एक भव है। इन्द्र है न? शकेन्द्र। पहले देवलोक का इन्द्र। अट्टाईस लाख विमान का स्वामी समकित्ती ज्ञानी आत्म-अनुभवी है।

और उसकी रानी भी अनुभवी-समकिति है। वह समकित क्या है, यह लोक को अभी खबर ही नहीं है। यह मानकर बैठे भगवान सच्चे। यह नहीं। ऐसा तो अनन्त बार माना है। सुन न अब। सम्यक्त्व किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और हो गये धर्मी। वह रानी और उसका पति शकेन्द्र दोनों एकावतारी हैं। यहाँ से एक भव करके मोक्ष जानेवाले।

उन्होंने कहा, भरत जब भगवान को देखकर रोते हैं, इन्द्र कहता है कि अरे! भरत! हमारे तो अभी एक देह करना है। मनुष्य होकर मोक्ष जायेंगे। तुम्हें तो इस देह में मोक्ष है। इन्द्र! इन्द्र जैसा मित्र बड़ा बत्तीस लाख विमान का स्वामी। विमान का स्वामी, हों! असंख्य देव का। (भरत कहते हैं), इन्द्र! मुझे खबर है। मुझे खबर है हम इस देह में मोक्ष में जानेवाले हैं। हमारे दूसरी देह नहीं है। इस भव में हम मोक्ष जानेवाले हैं। चक्रवर्ती, हों! शान्तिभाई! आहा! मोक्ष भगवान ने कहा हुआ और अपने को खबर है कि मेरा यह अन्तिम देह है। मैं इस भव में ही मोक्ष जानेवाला हूँ। परन्तु भगवान के प्रेम से मुझे राग के कारण यह प्रकार हो जाता है। जानता हूँ कि राग मेरी चीज़ है नहीं। परन्तु कमजोरी के कारण यह राग आता है। इसी भव में हमारी मुक्ति है। अब हमारे दूसरा देह है नहीं। यह सम्यग्दर्शन के प्रताप से चक्रवर्ती पद मिला हुआ और इस भव में इस समय भी समकिति थे। तीन ज्ञान के धनी थे उस समय। समझ में आया? यह चीज़ क्या है, लोगों को इसकी कीमत ही नहीं होती। यह बाहर से देव-गुरु-धर्म को माना, यह श्रद्धा की, नव तत्त्व माने और समकित है। और फिर व्रत-व्रत पाले, वह चारित्र। धूल भी नहीं, सुन न! समकित भी नहीं, व्रत भी नहीं और कुछ नहीं। सब थोथा है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, चक्रवर्ती राजेन्द्र होता है। सम्यग्दृष्टि उसके, दाना तो पके परन्तु साथ में घास ऐसे पद के चक्रवर्ती आदि पद मिले, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? राम (बलभद्र)... होते हैं। राम है न राम? यह रामचन्द्रजी और सब बलभद्र। वे सब उत्तम पदवीवाले समकित प्राप्त पहले। आत्मदर्शन अनुभव हुआ, फिर उन्हें ऐसा पुण्य बँधा तो उसमें बलभद्र हों। यह राम बलभद्र। श्रीकृष्ण के समय (भी) बलभद्र थे। थे न? श्रीकृष्ण वासुदेव थे। बलभद्र थे न! राम स्वयं बलभद्र थे। रामचन्द्रजी बलभद्र थे, उस

भव में मोक्ष गये हैं। उन रामचन्द्रजी की पदवी भी पूर्व में आत्मदर्शन प्राप्त। जिन्हें समकित अनन्त काल में नहीं हुआ, ऐसा हुआ। उसके पद में ऐसे पुण्य आये कि जिसके कारण राम हुए। जितने बलभद्र होते हैं, वे सब पूर्व के समकित होते हैं और पुण्य में वे बलभद्र होते हैं। ऐसा समकित के शुद्धभाव का माहात्म्य है। ऐसी बात करते हैं। और समकित बिना सब व्रत और नियम, तप और चारित्र के क्रियाकाण्ड सब एक बिना के शून्य हैं। समझ में आया ?

केशव (-नारायण, अर्धचक्री)... होते हैं। यह वासुदेव और वह। यह सब पूर्व में समकित प्राप्त। श्रीकृष्ण वासुदेव अर्धचक्री। आठ-आठ हजार देव जिनकी तैनाती में हों। वे सब पहले सम्यग्दर्शन (प्राप्त)। श्रीकृष्ण बलभद्र के साथ लक्ष्मण, ये सब अर्धचक्री कहलाते हैं। तीन खण्ड के धनी। चक्रवर्ती छह खण्ड के धनी। यह भरत के तीन खण्ड के धनी। ये सब समकित पूर्व में थे। सम्यग्दर्शन आत्मा के भान बिना ऐसा पुण्य कभी बँधता नहीं। अज्ञानी को ऐसे पद नहीं हो सकते, ऐसा कहते हैं। उसे मोक्ष तो मिलेगा ही, परन्तु उसे बीच में पुण्य रहा, उसमें ऐसे पद उन्हें प्राप्त होते हैं। आत्मा के समकित के शुद्धभाव के फल में ऐसी भूमिका में बँधेगा। समझ में आया ? केशव नारायण। आहाहा!

सुरवर (-देवों का इन्द्र)... होते हैं। सम्यग्दृष्टि देव के इन्द्र होते हैं। साधारण देव नहीं होते वे। महापुण्य बँध जाए। अभी शकेन्द्र है, कहा न। शकेन्द्र समकित है, ज्ञानी है। भगवान के समवसरण में महाविदेह में परमात्मा विराजते हैं, उनके समवसरण में आता है। उसकी पत्नी को लेकर। दोनों जनें—पति-पत्नी और बहुत देव लाखों-करोड़ों लेकर (आते हैं)। भगवान की भक्ति (करते हैं)। समझते हैं कि यह भगवान की भक्ति है, वह शुभराग है, परन्तु राग बिना की मेरी चीज़ है, उसका उसे भान है। आहाहा! समझ में आया ? जैन के वाड़ा में जन्मे परन्तु जैनपना किसे कहना, इसकी खबर नहीं। चिरायता की थैली, ऊपर लिखा शक्कर। चालीस रुपये की मण। अन्दर चिरायता। नाम लिखा शक्कर तो चिरायता कड़वा मिट जाएगा ? इसी प्रकार नाम हम जैन हैं, हम यह पंथी। किसे कहना जैन ? समझ में आया ?

कहते हैं कि जिसे यह पुण्य और पाप, शुभ-अशुभभाव भी जो मेरे नहीं और

जिसका वीतरागभाव मेरा पूरा है, वह मैं हूँ—ऐसी अनुभवदृष्टि होती है, उसे सम्यग्दृष्टि और उसे धर्म की शुरुआत कहा जाता है। आहाहा! इसके बिना सब बिना एक के शून्य हैं। समझ में आया? 'जिन कही तीर्थकर...' होते हैं। है? 'तीर्थकर पंच कल्याणक सहित...' होते हैं। सम्यग्दृष्टि होते हैं, वे तीर्थकर होते हैं। मिथ्यादृष्टि चाहे जैसे व्रत और नियम पाले, तपस्या करके सूख जाए, मर जाए तो भी वह तीर्थकर नहीं होता। षोडशकारण भावना आती है न? सोलह भावना। वह तीर्थकर भी सम्यग्दर्शन जिसे... तीर्थकरपना पावे, वह भाव है अपराध, परन्तु उस भाव में उसे तीर्थकरपने की पदवी मिले, बस इतना। अपराध है। भारी गजब बात है। जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बाँधे, वह भाव अपराध है, राग है परन्तु ऐसा राग समकित्ती को ही होता है; अज्ञानी को नहीं होता। ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

(तीर्थकर पंच कल्याणक सहित,...) ऐसा कहा, भाई! ऐसा अर्थ है। तीन कल्याणकवाले होते हैं। महाविदेह में जहाँ भगवान विराजते हैं, वहाँ कितने ही तीर्थकर... महावीर भगवान आदि तो पंच कल्याणक तीर्थकर थे। पंच कल्याणक अर्थात्? वे माता के उदर में आवे, वह गर्भ कल्याणक हो, जन्म कल्याणक हो, दीक्षा कल्याणक, केवल कल्याणक और मोक्ष कल्याणक ये पाँच हों। परन्तु महाविदेह में कितने ही जीव ऐसे होते हैं, भगवान कहते हैं कि वे जन्मे तब कल्याणक न हो। तीर्थकरपद बाँधकर नहीं आये हों। दीक्षा लेने के पहले तीर्थकरगोत्र बाँधे। तो उनके दीक्षा, केवल और मोक्ष तीन कल्याणक होते हैं। और कोई दीक्षा लेने के बाद तीर्थकरगोत्र बाँधे तो केवलज्ञान और मोक्ष दो कल्याणक होते हैं। ऐसे तीर्थकर महाविदेह में होते हैं। सीमन्धर भगवान हैं, वे तो पंच कल्याणकवाले हैं। भगवान विराजते हैं न बीस तीर्थकर अभी। पाँच सौ धनुष्य का देह, करोड़ पूर्व का आयुष्य। भगवान विराजते हैं। अभी अरबों वर्ष रहेंगे। वह पंच कल्याणकवाले हैं, इसलिए जब से जन्मे, तब से इन्द्रों ने उनकी पंच कल्याणकता मनायी थी। गर्भ की, जन्म की। समझ में आया?

तो कहते हैं कि ऐसे समकित्ती जीव, जिसे आत्मदर्शन और आत्मा का भान है, ऐसे जीवों को पुण्यभाव ऐसा आ जाए, जिसमें तीर्थकर हों और जिनके जन्म में इन्द्र आकर माता की सेवा करे। आहाहा! पूजा में आता है, पूजा में। भगवान जब जन्मते हैं।

इन्द्र आते हैं, इन्द्र ऊपर से। इन्द्र और इन्द्राणी लेकर। जन्मते हैं, इसलिए पहले चरण-वन्दन करते हैं। माता! तुझे मेरा नमस्कार! समझ में आया? पश्चात् तीर्थकर को नमस्कार करते हैं। जनेता! ऐसे तीर्थकर पुरुष को, जो समकित तो लेकर आये हैं, तीन ज्ञान हैं, ऐसे को तुमने जन्म दिया। समझ में आया? नमो रत्नकूखधारिणी। इन्द्र आकर माता को कहता है। हे माता! ऐसे रत्न को कूख में रखा, तुम्हें मेरा नमस्कार है! समझ में आया? ऐसा कहता है।

वह कहता है माता को। देखो! समकित्ती आत्मदर्शन पाकर तीर्थकरगोत्र बाँधा हुआ। आहाहा! जन्मते इन्द्र उसे कहे—‘पुत्र तुम्हारा स्वामी हमारा, तारणतरण जहाज रे, माता जतन करके रखना इनको...’ ऐई! शान्तिभाई! यह पूजा में आता है। इतना और इसे याद है। इन्द्र कहता है। इन्द्र महाराज। वे स्वयं एकावतारी, एक भव में मोक्ष जानेवाले और यह भगवान तो इस भव में मोक्ष जानेवाले। परन्तु ऐसे जन्मते हैं, तब (ऐसा) कहता है। यह आत्मदर्शन समकित प्राप्त। उन्हें तीर्थकरगोत्र होता है। अज्ञानी को तेतरगोत्र होता है। आहाहा!

इन्द्र उसे कहते हैं, माता! ‘पुत्र तुम्हारा स्वामी हमारा, तारणतरण जहाज रे, माता जतन करके रखना इसको, तुम पुत्र हम आधार रे।’ माता! तू जगत की माता। तेरा पुत्र हमारा आधार है। तीर्थकर होगा। केवलज्ञान पायेगा और महाउपदेश से बहुत जीव तिरेंगे। समझ में आया? आहाहा! यह पद सब समकितसहित होते हैं, ऐसा यहाँ कहना है। ऐसा यहाँ आचार्य कहना चाहते हैं। जिसे सम्यग्दर्शन क्या, अभी इसका भान नहीं हो। अभी सच्चे देव-गुरु-शास्त्र किसे कहना, इसकी खबर न हो और उसे समकित-धर्म हो जाए। धूल भी नहीं, सुन न। धर्म कोई अपूर्व चीज़ है। अपूर्व अर्थात् पूर्व में जितना किया, उससे यह दूसरे प्रकार की बात है।

उस समकित के स्थान में (तीर्थकर पंच कल्याणक सहित, तीन लोक से पूज्य पद) है। देखो! तीन लोक में पूज्य पदवी है। उसके जैसी पुण्यप्रकृति जगत में दूसरी नहीं है। वे सब समकित्ती जीव को ऐसे घास पके। है तो घास, हों! वह कुछ धर्म नहीं है। आहाहा! यह कुछ अनाज नहीं है। गणधर (चार ज्ञान और सप्तऋद्धि के धारक मुनि)... होते हैं। गणधर है न भगवान के? गौतमस्वामी आदि। वे सब पूर्व में समकित्ती

हों और या यहाँ भी समकित प्राप्त करके ऐसे पद प्राप्त करें। उत्तम सुख को पावे धर्मवाले। गणधर पद। तीर्थकर के दीवान। तीर्थकर भगवान धर्म के राजेन्द्र। धम्म-वरचाउरंत-चक्कवटीणं, आता है या नहीं? नमोत्थुणं में आता है। नमोत्थुण किया हो उसे खबर हो। नमोत्थुणं में आता है। नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आईगराणं... नहीं? धम्म-वरचाउरंत-चक्कवटीणं, दीवोताणं, सरणगईपईट्टा। अर्थ नहीं आता। दीवा टाणे संघवी पीट्या, ऐसा एक व्यक्ति ने अर्थ किया था। इसका अर्थ ऐसा किया था एक महिला ने। शान्तिभाई ठीक कहते हैं कि उसका अर्थ नहीं आता। दीवोताणं उसमें आता है। हे भगवान! आप तो द्वीप समान हो। समुद्र में, सागर में जैसे (हो वैसे)। तब एक महिला ने, वह विरोध था न संघवी के साथ, अर्थ आवे नहीं। दीवा टाणे संघवी पीट्या। परन्तु इसमें कहाँ से आया यह? वह दीवोताणं, सरणगई पईट्टा आया न, अर्थ की खबर नहीं होती, भान नहीं होता और कहे, हमें धर्म होगा। सामायिक लेकर बैठे, प्रौषध लेकर बैठे। क्या कहलाये वह घड़ी, घड़ी। घड़ी-घड़ी। शान्तिभाई! वह रेती की। बापू! यह धर्म नहीं। अभी तुझे खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा!

गणधर (चार ज्ञान और सप्तऋद्धि के धारक मुनि)... जिसका पेशाब यदि दूसरे को स्पर्श करे तो सोने जैसा शरीर हो जाए, रोग मिट जाए। ऐसी तो ऋद्धि गणधर को प्रगट हो। यह सब सम्यग्दर्शन की शुद्धभावना फलरूप से होती है। इनके सुखों को तथा चारणमुनि... होते हैं। लो, चारणमुनि। (जिनके आकाशगामिनी आदि ऋद्धियाँ पाई जाती है) मुनि ऐसे होते हैं कोई समकित, आकाश में चलें। नीचे चले नहीं। आकाशगामिनी आदि ऋद्धियाँ पाई जाती है कि ऋद्धियों को प्राप्त हुए। सम्यग्दर्शन शुद्धभाववाले को अनन्त काल में नहीं प्रगट हुआ शुद्धभाव, उसकी भूमिका में ऐसे पद सुख के बाहर के प्राप्त होते हैं। चारणऋद्धि कहलाती है न? चारणऋद्धि ऊपर...

मुमुक्षु : भगवान को...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आये न। भगवान को नहीं आते? महावीर भगवान के समय। महावीर भगवान दसवें भव में सिंह थे। दसवें भव में सिंह थे, भगवान महावीर। और एक हिरण को मारते थे। अपने वहाँ फोटो है। प्रवचन मण्डप में। दसवें भव पहले वे सिंह थे और तब हिरण को मारकर खाते थे। उसमें ऊपर से चारणमुनि, ऐसे निकले।

आकाश में निकले हुए। आत्मध्यानी नग्नमुनि आत्मा में मस्त, जिन्हें वस्त्र का धागा नहीं और आत्मा के अनुभव की मस्ती अन्दर चढ़ गयी है। वे आकाश में जाते थे। उसमें उस सिंह को झपट्टा मारा हुआ देखा। नीचे उतरे। सिंह ऐसा देखता रहा। यह क्या? मेरे समीप मनुष्य निकला हो तो चला जाए। यह ऊपर से जाए और यह नीचे आये? सिंह स्थिर हो गया।

एक मुनि ने कहा, अरे! सिंह! तुम तो दसवें भव में तीर्थकर होनेवाले हो। महावीर परमात्मा का तुम्हारा जीव है। हैं! यह तुम्हें! तीर्थकर के केवलियों ने हमें कहा, भगवान ने हमें कहा है कि सिंह का जीव दसवें भव में तीर्थकर होगा। आहाहा! सुनते हैं। कौन जाने भाषा का ज्ञान हो गया उसे। लो! नहीं तो सिंह थे जंगल में। परन्तु मुनि बात करते हैं, वह ख्याल आ गया कि यह ऐसा कहते हैं। आँसू की धारा बहती है। वहीं का वहीं जातिस्मरण ज्ञान पाते हैं और समाधिमरण करते हैं और स्वर्ग में जाते हैं, लो! आहाहा! क्षण में पलटा मारा अन्दर से हमने। आहा! हम आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु आनन्द के धाम, केवली के पथानुगामी हम हैं। आहाहा! ऐसा अन्तर में भान हो गया। दसवें भव में चौबीसवें तीर्थकर हुए। यह सब सम्यग्दर्शन पावे, उसे ऐसा पद होता है। सम्यग्दर्शन के बिना कोई तीर्थकरभावना भावे कि हम तीर्थकर होंगे, उसे हो नहीं सकता। लो!

भावार्थ :- पहिले इस प्रकार निर्मल भावों के धारक पुरुष हुए... पूर्व में ऐसे निर्मल भावना धरनेवाले पुरुष हुए। वे इस प्रकार के पदों के सुखों को प्राप्त हुए, अब जो ऐसे होंगे वे पावेंगे,... अब भी कोई सम्यग्दृष्टि होंगे, वे भी ऐसे पद को पायेंगे। हुए वे पाये और होंगे वे पायेंगे। हुए वे पाये और होंगे वे पायेंगे। आहाहा! कहो, समझ में आया? निर्मल भावना धरनेवाले। आहाहा!

राग की एकताबुद्धि है, वह चित्त की मलिनता है, ऐसा कहते हैं। बहुत सूक्ष्म बात। राग है न? चाहे तो शुभराग हो। परन्तु आत्मस्वभाव के साथ... यह चित्त मलिनता आयी थी पहले उसमें। चित्त मलिनता की व्याख्या यह है कि भगवान आत्मा तो शुद्ध आनन्द का धाम आत्मा है। शुद्धस्वभावी प्रभु आत्मा है, अभी, हों! उसे एक शुभभाव का राग का कण, उसके साथ एकत्व करना, वह उसका चित्त मलिन है। मिथ्यादृष्टिपने से उसका चित्त मलिन है। आहाहा! भले फिर दया, दान और व्रत के परिणाम पालता

हो, परन्तु उसका चित्त मिथ्यात्व से मलिन है। समझ में आया ? आहाहा! और जिसे अशुभभाव भी हो। वह आया था, नहीं ? गृहस्थाश्रम में समकित्ती पापसहित हो। भाई! आ गया न ? कलश में आ गया। ७८ में आ गया, देखो! ऊपर है। ७८ में है।

श्रावक सम्यग्दृष्टि हो और गृहस्थाचार के पापसहित हो तो भी उसके बराबर वह-केवल वेशमात्र को धारण करनेवाला मुनि नहीं है, ... साधु का वेश धारण किया हो परन्तु अन्दर राग को धर्म माने, पुण्य को धर्म माने, क्रिया, दया, दान, व्रत के परिणाम उसे धर्म माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। और समकित्ती गृहस्थ हो और पापाचरणवाला हो तो भी उसके तुल्य वह नहीं। वह ऊँचा श्रावक है। है इसमें, देखो! अपने आ गया है यह। १५५ गाथा का अर्थ है।

मुमुक्षु : मलिन उसमें ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मलिन उसमें ही है, देखो न! 'सुमलिणचित्तो' यह है। आहाहा! 'ण सावयसमो' श्रावक जैसा भी नहीं। सच्चा श्रावक, हों! सच्चा। जिसे सम्यग्दर्शन हुआ है, वह भले पाप के परिणामवाला हो, हिंसा, झूठ, चोरी, भोग, वासना (हो), तथापि उसे आत्मभान है। और यह पाप के त्याग परिणाम किये हों, दया, दानवाला हो परन्तु मिथ्यादृष्टि राग को धर्म मानता है। उस मिथ्यादृष्टि मुनि से सम्यग्दृष्टि पापवाला भी ऊँचा जीव है। कहो, छगनभाई! ऐसी बात है। दुनिया के माप अलग और ज्ञानी के माप अलग। आहाहा!

वे कहे, देखो! यह विषय लेता नहीं, देखो! यह एक ओर बैठता है। देखो! यह निवृत्ति ली है, गर्म पानी पीता है, ब्रह्मचर्य पालता है। अब लाख पाले नहीं। उसकी श्रद्धा तो भ्रष्ट है। दया, दान, व्रत के परिणाम तो राग हैं। उसे वह धर्म मानता है और धर्म का कारण मानता है। मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? और सम्यग्दृष्टि राग से रहित आत्मा के स्वभाव का भान है। फिर भले पाप के परिणाम चारित्रदोष के आवें परन्तु उसे मिथ्यादर्शन का दोष नहीं है। समझ में आया ? फँसा है सब ऐसा अनादि का। भान नहीं होता कुछ और मानता है कि हम हो गये धर्मी। धूल भी धर्म नहीं, सुन न!

कहते हैं, अहो! ऐसे चक्रवर्ती आदि के संयोग... बाह्य सुख की बात है न। यह सम्यग्दर्शन के सुख में ऐसा राग होता है तो उसके फलरूप से समकित्ती को ऐसे पद

प्राप्त होते हैं। मिथ्यादृष्टि है, भले साधु हुआ हो, बाहर जंगल में रहता हो, परन्तु जिसे श्रद्धा में यह क्रियाकाण्ड मेरी चीज़ है और यह राग की क्रिया भी मेरा धर्म है। महाव्रत परिणाम आदि हैं, वे राग के हैं; वे धर्म के नहीं। आहाहा! महाव्रत के परिणाम राग हैं, उन्हें वह धर्म परिणाम मानता है। मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। उसके सब परिणाम एक बिना के शून्य जैसे हैं। आहाहा! और समकिति गृहस्थाश्रम में हो। आत्मा का भान है, पहिचान है और उसे जरा राग के परिणाम अशुभ होते हैं। बड़ा करोड़ों का धन्धा होता है, अरबों का। इससे क्या? समझ में आया? धन्धा छोड़कर बैठा, इसलिए धर्मी है, ऐसा नहीं है। मणिभाई! कल कोई कहता था न छोड़कर बैठे। छोड़ने का नहीं, यह दूसरी बात है। नवलभाई! कल भाई कहते थे, मैं सुनता था। छोड़कर बहुत बैठना है। मणिभाई ने कहा था न, कल कहते थे न। हमारे ख्याल में बात आयी थी। यह छोड़ना नहीं। ऐसा कि यह नवलभाई छोड़कर बैठे, ऐसा अपने को छोड़ना चाहिए। ऐसा नहीं। ऐई! नवलभाई!

अन्दर में राग का भाव जो है पुण्य-पाप, दया-दान का विकल्प, उसे श्रद्धा में से छोड़ना और वह मेरी चीज़ नहीं है, इसका नाम त्याग है। भाई कल बोलते थे। बात ऐसी, वीतराग का मार्ग ऐसा है। इसके लिये तो यह गृहस्थाश्रम की बात की है कि गृहस्थाश्रम में समकिति को पापभाव हो। हिंसा, झूठ, विषयभोग, रानियाँ आदि हों। परन्तु अन्दर में उस राग से भिन्न का भान है, इसलिए वह समकिति धर्मी है और जिसने बाह्य सब त्याग किया है और अन्दर में दया, दान, व्रत के शुभभाव को धर्म मानता है, वह मेरा कर्तव्य (है, ऐसा) मानता है। वह मिथ्यादृष्टि अर्थात् पापी है। कठिन बात है, बापू! यह कहीं झट पकड़ में आये ऐसा नहीं है। शान्तिभाई! शान्तिभाई अभी पहले-पहले आते हैं न यहाँ तो! सब मिटावें तब हो, ऐसा है। पोता नहीं देते, लड़के ने लिख लिया हो न। पोता रखते थे पहले, हों! लड़के छोटी उम्र के। डिब्बी में पोता रखे। पहले रखते थे। यह तो ७० वर्ष पहले की बातें हैं। १०-११ वर्ष की उम्र थी न जब। यह तो अभी तो ८१ चलते हैं। यह तो ७० वर्ष पहले पोता डिब्बी में रखते थे। लिखा हो न पूरा, उसके ऊपर पोता फेरे। गत काल की मान्यता को मिटावे तो यह बैठे ऐसा है। समझ में आया? आहाहा!

अब जो ऐसे होंगे वे पावेंगे,... देखो! जो कोई पूर्व में आत्मदर्शन समकिति पाये

शुद्धभाव, उन जीवों को ऐसे पद प्राप्त हुए। चक्रवर्ती के, गणधर के, इन्द्र के, तीर्थकर के, केशव के, बलभद्र के आदि। और जो कोई इस प्रकार से अभी भी सम्यग्दर्शन पायेगा, धर्म की पहिचान अन्तर से करेगा, उस जीव को पुण्य ऐसा होगा, ऐसे पद को वह प्राप्त करेगा। समझ में आया ? आहाहा ! यह बात करते हैं, देखो ! १६२। मुक्ति का सुख ऐसा है, ऐसा कहते हैं। अब ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव, उन्हें ऐसे पद मिलने पर भी फिर उन्हें छोड़कर स्वरूप में स्थिर होंगे, चारित्र लेंगे। चारित्र अर्थात् वस्तु में अन्दर आनन्द में स्थिर होना। उसे मुक्ति होगी। वह सिद्धपद को पायेगा। वह सिद्धपद कैसा होता है, अब उसकी व्याख्या करते हैं। णमो सिद्धाणं। आता है न ? यह सिद्धपद कैसा होता है ?

मुमुक्षु : इतना सब सीखना पड़ेगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना सब उसमें कहाँ था ? सब उल्टा सीखकर बैठा है अनादि का। संसार में याद नहीं रखता सब बातें ? उल्टी कितनी रखता है ? एक घर में दुकान तीन हों, पचास हजार का, लाख का माल हो। तो किस भाव माल आया, कितना बिका, अभी क्या भाव चलता है, नये कितने भाव का माल कितना लाना, कितना है ? सब याद होता है। तीन-तीन पटु, चार-चार पटु याद होता है। हजारों रकमें खर्च हुई हो। बड़ा मणियारा का धन्धा आदि हो उसे। यह किराने के धन्धे में उसमें कितनी चीजें बादाम, पिस्ता सब अनेक प्रकार की बखारियाँ भरी हो। बस तीन-तीन, चार-चार पटु ज्ञान हो, लो ! इस भाव का माल तब अपने पाँच इलायची की बोरी लाये थे। उसमें से साढ़े तीन समाप्त हो गयी है और डेढ़ पड़ी है। ऐई ! शान्तिभाई ! यह सब याद रहता है या नहीं ? वहाँ रस है, इसलिए रहता है।

मुमुक्षु : स्वार्थ है इसलिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें रस है। रस है। वापस नया भाव यह चलता है। उसकी बोरी इतनी मंगाओ। विवाह का प्रसंग है, ग्राहक बहुत आयेंगे।

मुमुक्षु : यह आगे-पीछे का ध्यान रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आगे-पीछे का सब ध्यान इसे रहे। हमारे पालेज में ऐसा होता है वहाँ। पालेज में तो पाटीदारों के विवाह के प्रसंग हों न, तब नागरबेल के पान

बहुत बिकते हैं। टोकरे के टोकरे। पाटीदार गृहस्थ हैं पालेज में। गुजराती। इसलिए दुकानों में तब माल बहुत लाना पड़ता है। इतना सब बिकता है। ... सब खबर रहे। लो, हमारे आणन्दजी था, उसे सब याद रहता था। अपने को बहुत रस नहीं था। करते थे परन्तु अन्दर बहुत रस नहीं था। उसे बहुत रस था।

कहते हैं कि यह आत्मा ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धता पावे तो उस शुद्धता के फलरूप से उसे मुक्ति का सुख अर्थात् सिद्ध का सुख प्राप्त होता है। वह सिद्ध भगवान होता है। वह मुक्ति को प्राप्त करता है। वह मुक्ति का सुख कैसा है? पहले वे बाहर के बताये। चक्रवर्ती, इन्द्र आदि के। यह अब अन्तर के सुख (बताते हैं)। सिद्ध में अनन्त सुख। लोगस्स में आता है। 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु' लोगस्स किया है? नहीं किया होगा। शान्तिभाई! नहीं किया। लोगस्स में आता है। 'समाहिवर' हे प्रभु! मुझे समाधि (दो)। समाधि अर्थात् आत्मा का आनन्द। वर अर्थात् ऊँचा। 'मुत्तमं दिंतु' मुझे दो। ऐसा आता है। परन्तु अर्थ की खबर नहीं होती न। मणिभाई! लोगस्स आता हो, अर्थ की खबर नहीं होती। भाई इनकार करते हैं। कुछ खबर नहीं होती। आहाहा!

मुमुक्षु : अर्थ अर्थात् तो पैसा होता है न, उसकी खबर थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पैसा धूल है। पैसा में क्या था? जैसे जड़ के अनन्त आये और गये, उसके साथ आत्मा को क्या? कहाँ स्वयं बैठा और पैसा गया, कहीं पैसा रहा और स्वयं मर गया। उसके साथ क्या सम्बन्ध है? लक्ष्मी तो यह है। आत्मा में अनन्त आनन्द, अनन्त आनन्द-ज्ञान की लक्ष्मी पड़ी है। उस लक्ष्मी का भण्डार खोलना तुझे आवे तो तेरे पास है। वह सम्यग्दर्शन की चाबी से वह खुले ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

अज्ञानी का खजाना बन्द है। भाई ने कहा था न? न्यालभाई ने। न्यालभाई सोगानी ने। अज्ञानी का खजाना बन्द है। क्योंकि राग और पुण्य की क्रिया मेरी, उसका ताला खजाने को लगाया है। न्यालभाई सोगानी कलकत्तावाले ने कहा। नाम सुना है या नहीं? वह द्रव्यदृष्टिप्रकाश नहीं? दो भाग लिये न? वे। बनिये थे न। बनिये को डालना भी आवे और कहना भी आवे, यह तो उसकी तुम्हें खबर है न, इतनी बात। उन्होंने एक जगह कहा है। वे कलकत्ता के दिगम्बर गृहस्थ थे। बहुत लाखोंपति। बड़ा व्यापार है। कपड़े का। बड़े बहुत लाखोंपति। परन्तु छोटी उम्र में यहाँ आये थे। दूसरे वर्ष में। ३४

वर्ष की उम्र में। बहुत पढ़ा हुआ, बहुत सब पढ़ा हुआ। और इतना एक कहा यहाँ। भाई! यह ज्ञान और राग का विकल्प दो भिन्न चीज़ है। इतना कहा और अपने वह समिति है न? भोजनशाला। कमरे में चले गये। शाम से सवेरे ध्यान में बैठ गये। यह जो समकित कहते हैं, उसे क्षण में प्राप्त कर गये। एक रात्रि में अनुभव करके सवेरे उठ गये। रात्रि चार पहर नींद नहीं ली। ध्यान में अन्दर निर्विकल्प शान्ति (प्राप्त हुई)। उन्होंने किसी के ऊपर थोड़े पत्र लिखे, उसमें एक यह लिखा है।

अरे! अज्ञानी के निधान बन्द है, उसने ताला लगाया है। निधान तो पड़ा है, अन्दर, परन्तु जिसने यह पुण्य और पाप के विकल्प मेरे हैं, ऐसे एकत्वबुद्धि के ताले लगाये हैं, उसका खजाना बन्द है परन्तु जिसने राग से भिन्न भगवान आत्मा देखा, जाना और अनुभव किया समकित ने, उसका खजाना खुल गया है। समझ में आया? यह खजाना खोलते-खोलते कहते हैं कि सिद्धपद को पाता है। १६२ गाथा है।



गाथा-१६२

आगे कहते हैं कि मोक्ष का सुख भी ऐसे ही पाते हैं -

शिवमजरामरलिंगमणोवममुत्तमं परमविमलमतुलं ।

पत्ता वरसिद्धिसुहं जिणभावणभाविया जीवा ॥१६२॥

शिवमजरामरलिंगं अनुपममुत्तमं परमविमलमतुलम् ।

प्राप्तो वरसिद्धिसुखं जिणभावनाभाविता जीवाः ॥१६२॥

जिन-भावना-भावित पुरुष शिव अजर अमर स्वरूप को।

अनुपम परम निर्मल अतुल उत्तम सुसिद्धि प्राप्त हों ॥१६२॥

अर्थ - जो जिनभावना से भावित जीव हैं वे ही सिद्धि अर्थात् मोक्ष के सुख को पाते हैं। कैसा है सिद्धि सुख? 'शिव' है, कल्याणरूप है, किसी प्रकार उपद्रव सहित

नहीं है, 'अजरामरलिंग' है अर्थात् जिसका चिह्न वृद्ध होना और मरना इन दोनों से रहित है, 'अनुपम' है जिसको संसार के सुख की उपमा नहीं लगती है, 'उत्तम' (सर्वोत्तम) है, 'परम' (सर्वोत्कृष्ट) है, महार्घ्य है अर्थात् महान् अर्घ्य पूज्य प्रशंसा के योग्य है, 'विमल' है कर्म के मल तथा रागादिकमल से रहित है। 'अतुल' है, इसके बराबर संसार का सुख नहीं है, ऐसे सुख को जिनभक्त पाता है, अन्य का भक्त नहीं पाता है ॥१६२॥

गाथा-१६२ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि मोक्ष का सुख भी ऐसे ही पाते हैं :- 'सुख भी' क्यों कहा? देखा? उस चक्रवर्ती को बाहर का सुख कहा था न? वह समकिती शुद्धभाववाला ही उसे पाता है, वैसे ही मुक्ति का सुख भी समकिती और ज्ञानी और चारित्रवन्त पाता है। ऐसा कहते हैं।

सिवमजरामरलिंगमणोवममुत्तमं परमविमलमतुलं ।

पत्ता वरसिद्धिसुहं जिणभावणभाविया जीवा ॥१६२॥

लो! उस नमोत्थुणं में आता है। सिव मलय मरुय मणंत मक्ख य मव्वाबाहम। अर्थ तो नहीं आता होगा परन्तु इसमें आता है। जिनभावना बहुत जगह ली है। बहुत जगह। ८, ६८, ७२, ८८, १३०। यह शब्द सर्वत्र पड़े हैं।

अर्थ :- जो जिनभावना से भावित जीव हैं... देखो! कहते हैं कि जिसका आत्मा वीतरागस्वरूप है और ऐसी दृष्टि होने पर जिसे वीतरागभाव की ही भावना है। पुण्य-पाप के विकल्प उठें, उसकी भावना जिसे होती नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसे जिनभावना, जिनस्वरूप आत्मा है, जिन सो ही आत्मा। वह वीतरागमूर्ति आत्मा अन्दर स्थित स्वयं सच्चिदानन्द प्रभु है, उसका जिसे भान है, वह जिन भावना भाता है। वीतरागी भावना भाता है। निर्दोष वस्तु है। निर्दोष दृष्टि हुई है और निर्दोष दशा की भावना करता है। यह राग आवे, उसकी भावना भाता नहीं कि यह राग होता है और पुण्य बँधता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसे जीव सिद्धि को पाते हैं। कैसी सिद्धि, यह विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१६१, गाथा-१६२-१६३, मंगलवार, पौष शुक्ल ४, दिनांक २९-१२-१९७०

भावपाहुड़ की १६२ गाथा चलती है।

सिवमजरामरलिंगमणोवममुत्तमं परमविमलमतुलं।

पत्ता वरसिद्धिसुहं जिणभावणभाविया जीवा ॥१६२॥

१६२। क्या कहते हैं ?

अर्थ : जो जिनभावना से भावित जीव हैं, वे ही सिद्धि अर्थात् मोक्ष के सुख को पाते हैं। अर्थात् क्या कहते हैं ? कि यह आत्मा, जो यह शुभ-अशुभभाव है—दया, दान, व्रत, भक्ति, जप, तप आदि के भाव, वे सब शुभभाव हैं, वे शुद्ध नहीं। इसलिए वह धर्म और मुक्ति का कारण नहीं। मुक्ति का कारण तो आत्मा शुद्ध चिद्घन वीतरागमूर्ति की अन्तर में शुद्धता प्रगट करे, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति इत्यादि, उस स्वभाव के आश्रय से शुद्धता, पुण्य-पाप के भावरहित और पवित्र परिणाम प्रगट करे, वह पवित्र परिणाम मुक्ति के सुख का कारण है। समझ में आया ? इसलिए जिनभावना का अर्थ वीतरागभावना। यह पुण्य-पाप के भाव, वह तो राग है। उनकी भावना नहीं। धर्मी को उनकी रुचि भी नहीं हो सकती। (भाव) हो, परन्तु उनकी रुचि नहीं होती। उसे धर्मी और धर्म कहते हैं। जिसे आत्मा शुभ-अशुभराग से भिन्न और अपने निर्दोष अविकारीस्वभाव से अभिन्न, ऐसी अन्तर में दृष्टि करने से शुद्धता प्रगटे, वह शुद्धता मुक्ति का और धर्म का कारण है। गजब बात ! समझ में आया ?

अनन्त काल से इसने किया नहीं। बाहर से सब माना। क्रिया व्यवहार की जो है, वह धर्म है, ऐसा मानकर संसार में अनन्त काल से भटकता है। इसलिए यहाँ परमात्मा कहते हैं, **जिनभावना से भावित जीव हैं,...** पहली लाईन है न ? जिनभावना अर्थात् वीतरागभावना। वीतरागभावना अर्थात् रागरहित आत्मा का जो शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, उसकी अन्तर में एकाग्रतारूपी सम्यग्दर्शन-ज्ञान और उसकी भावना। बारम्बार वीतराग होने के लिये स्वरूप में स्थिरता करना, ऐसी जिनभावना। उससे **भावित जीव हैं, वे ही सिद्धि अर्थात् मोक्ष के सुख को पाते हैं।** कहो, समझ में आया ? यह तो मुद्दे

की बात है। आहाहा! कभी इसने जाना नहीं, माना नहीं, पहिचाना नहीं (कि) शुद्ध क्या है।

इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं, **जिनभावना से भावित...** आत्मा का स्वभाव अकषाय वीतराग पूर्ण आनन्द और अनाकुल शान्ति से भरपूर पदार्थ है। उसकी अन्तर्मुख की दृष्टि-ज्ञान और रमणता, वह शुद्धभाव है। उस शुद्धभाव का फल मुक्ति-सिद्धि-सिद्धपद है। बीच में पुण्य आदि आवे, वह बन्ध का कारण है। समझ में आया? **जिनभावना से भावित जीव, वे ही सिद्ध अर्थात् मोक्ष के सुख को पाते हैं।** यह संसार के दुःख का नाश करके यह शुद्धभाववाला जीव पुण्य-पाप के भाव का नाश करके, शुद्धभाववाला जीव मुक्ति को पाता है। कहो, छगनभाई! समझ में आया? उसकी श्रद्धा में अभी ठिकाना नहीं होता, उसे धर्म कहाँ से होगा? और धर्म सन्मुख रहने की रुचि भी नहीं उसे। उसे तो यह सब करूँ और इससे मेरी कल्याणदशा होगी। इसलिए वहाँ से उसकी रुचि हटती नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि, जिसे अन्तर में वीतरागता प्रगट करनी है न? वीतरागता प्रगट करनी है, वह वीतरागता कहाँ से आयेगी? कहीं बाहर से आयेगी? इसका-आत्मा का स्वभाव ही वीत् अर्थात् रहित, रागरहित, दोषरहित ऐसा उसका चैतन्य का त्रिकाली द्रव्यस्वभाव शुद्ध स्वभाव का पिण्ड आत्मा है। उसमें वीतरागता और पूर्ण सुख और सब अन्दर पड़ा है। उसके सन्मुख की एकाग्रता की शुद्धता, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। उसके फलरूप से आत्मा का जो आनन्द स्वभाव में है, वह प्रगटरूप आनन्द पूर्ण होता है, उसे मुक्ति और उसे सिद्धि कही।

कैसा है सिद्धिसुख? कैसा है मुक्ति का, आत्मा के आनन्द का सुख? आत्मा के वीतरागभाव की भावना भानेवाला सिद्धिसुख को पाता है, वह कैसा है सुख? **शिव है, कल्याणरूप है,...** कुछ उपद्रव नहीं। सिद्धिसुख में आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... इस दुनिया का तो कल्पित सुख है मिथ्यादृष्टि ने। अज्ञानी ने पैसे में सुख है, शरीर में सुख है, इज्जत में सुख है (-ऐसा माना है), वह तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है। उसे जैन परमेश्वर की श्रद्धा नहीं है। आहाहा! वह जिनभक्त नहीं। जिसे शरीर में, पैसे में, इज्जत में, भोग में, कीर्ति में सुख लगे, सुख माने, वह जैन नहीं, वह जैन का भक्त नहीं। वह

अज्ञान का और विकार का भक्त है। आहाहा! खबर भी नहीं कि अभी कि मैं क्या करता हूँ और कैसी मेरी मान्यता, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

कहते हैं, शिव है... नमोत्थुणं में आता है शिव मलयं मरुय... नहीं आता नमोत्थुणं? नमोत्थुणं आता है न सातवाँ पाठ? इसमें आता है। शिवमलयंमरुय शिवं है। शून्य है। शिव मलय मरुय मणंत मक्ख य मव्वाबाह... नमोत्थुणं में आवे परन्तु अर्थ भी न आते हों। पाठ भी किया न हो। नेमिदासभाई! नमोत्थुणं किया है किसी दिन? अर्थ भी आता न हो, किया हो तो। पहाड़े बोल रखे हों। जब सामायिक करे न नाम? नाम सामायिक, हों! वस्तु नहीं। वस्तु जो आत्मा वीतरागमूर्ति है, उसका तो जहाँ भान नहीं, उसमें स्वभाव ही अकेला शुद्ध और आनन्द पड़ा है, उसकी तो खबर नहीं, उसकी ओर के झुकाव की दशा, उसका नाम सामायिक और प्रौषध है। उसकी तो खबर नहीं और सामायिक तथा प्रौषध हो जाए। शून्य हो शून्य अकेले एकड़ा बिना के। शान्तिभाई!

मुमुक्षु : शास्त्र में है ऐसा कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, दुनिया ऐसा कहे। दुनिया ऐसा कहे कि इसने यह किया। किया क्या? धूल किया? शान्तिभाई ने सामायिक की। निवृत्त होकर बैठे थे। आहाहा! ऐसी तो सामायिक अनन्त बार की। वह तो राग की मन्दता मिथ्यात्वसहित है। क्योंकि वह जड़ की क्रिया करता हूँ, वह मेरी और राग होता है, वह तो विकल्प उठता है कि ऐसा करूँ। वह तो राग है। राग में धर्म मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है। वीतरागमार्ग में राग को धर्म माने, वह वीतराग है नहीं। वीतराग का भक्त ही नहीं, वीतराग की श्रद्धावाला ही नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, शिव है, कल्याणरूप है,... सिद्धपद तो। अकेला उपद्रवरहित निर्मल कल्याण का पुंज प्रभु है। ऐसी पदवी को शुद्धभाववाला पाता है। और कैसा है? अजरामरलिंग है... सिद्ध परमात्मा। जिसका चिह्न वृद्ध होना... अजर अर्थात् वृद्ध नहीं, अमर अर्थात् मरना नहीं। दोनों से रहित हैं, अनुपम है,... वृद्धा अवस्था या मरण, वह सिद्ध को है नहीं (कि) वे बहुत पुराने सिद्ध हो गये, इसलिए उन्हें वृद्धावस्था हो गयी। वृद्धावस्था तो शरीर हो तो होती है। वह तो आत्मा है। अकेला 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' आता है या नहीं? लोगस्स में आता है। 'अवमये अभिथुआ, विहुयरयमला

पहीणजरमणा...' अर्थ भी न आते हों, उसे कहाँ खबर है कुछ ? तुम्बी में कंकड़ जैसा है। आहाहा!

कहते हैं, लिंग जिसे, वृद्धावस्था और मरण जिसे नहीं अर्थात् कि आत्मा के आनन्द की पुष्टि और ऐसा का ऐसा अमररूप से कायम सिद्धपद रहता है। उसका कारण शुद्धउपयोग, शुद्धभाव है, ऐसा कहते हैं। भावपाहुड़ है न? हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, कमाना, कामभोग, ये सब पाप के परिणाम हैं; और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण, दान, जप, तप, ये सब भाव शुभ पुण्य है। सब राग है, दोनों। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों में से भला कौन सा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों में से एक भी भला नहीं। राग भला होगा ? समझ में आया ? परन्तु यह खबर नहीं होती। खबर नहीं होती।

यह यहाँ कहते हैं कि जिसे वृद्धावस्था और मरण है नहीं। आत्मा का आनन्द शुद्धभाव से जो प्रगट हुआ, वह ऐसा का ऐसा कायम ऐसा का ऐसा रहता है और वहाँ से नाश होना उसे है नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा अकेला रहता है। यों भी यहाँ कहाँ आत्मा शरीर बिना यहाँ रहता है। शरीर तो जड़ है। यह तो जड़ में शरीर है। शरीर जड़रूप रहा है, आत्मारूप नहीं। आत्मा आत्मारूप से भिन्न पृथक् है।

मुमुक्षु : अभी शरीररहित है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीररहित ही है अभी। पानी के कलश में पानी कलशरहित ही है। सुना नहीं। अभी व्यवहार की खबर नहीं होती। यह कलश पानी का नहीं ? काशी घाट का। यह भी काशी घाट का कलश है न, देखो न ! इस काशी घाट के कलश में पानी भरा हो, वह पानी का आकार और पानी का स्वरूप पृथक् है और कलश का स्वरूप पृथक् है। दोनों भिन्न चीज़ें हैं। इसी तरह यहाँ शरीर में जड़रूप से भिन्न चीज़ है और अरूपी ज्ञानघन आत्मा वह भिन्न चीज़ है।

मुमुक्षु : परन्तु जीव को शरीर है सही न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही नहीं। शरीर कैसा ? ऐई !

मुमुक्षु : जी प्रभु ! यदि आत्मा को शरीर हो तो उससे अलग पड़े नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पड़े नहीं। लो ठीक ! ऐई ! तुम्हारे रोकड़िया जवाब है। आत्मा और शरीर एक हो और यदि शरीर हो तो शरीररहित आत्मा हो नहीं। ऐसा है नहीं। ऐई ! कमलभाई ! धीरुभाई ! है न यह लड़का ? कितने को लज्जित करे ऐसा ? बड़ी उम्रवालों को लज्जित करे ऐसा है।

कहते हैं... आहाहा ! जिसे लिंग नहीं, वृद्धावस्था और मरण नहीं। जिसके शुद्धभाव प्रगट हुआ है, वह शरीररहित ऊपर मुक्तिशिला पर आगे उससे बहुत दूर है, हों ! मुक्तिशिला बहुत दूर है। मुक्तिशिला पर कोई विराजते नहीं। वह तो अरूपी इस लोक के अग्र में हैं। एकदम लोक चौदह ब्रह्माण्ड यह है, भगवान ने देखा, उसके छोर में। पाँच सौ धनुष का देह हो या सात हाथ का हो, तत्प्रमाण वहाँ, शरीर प्रमाण वहाँ ... पाँच सौ धनुष हो। अरे ! अरूपी भगवान आत्मा में शरीर का-रूपी का तो अत्यन्त अभाव है। अभी। आहाहा ! भान नहीं होता, भान नहीं होता। दूध और पानी दोनों इकट्टे एक दिखाई देते हैं। इकट्टे नहीं। दूध की मिठास का मावा अलग है। पानी अलग चीज़ है; उसी प्रकार यह शरीर जड़, मिट्टी, धूल है, यह तो अजीव और आत्मा भगवान अन्दर ज्ञान और आनन्द का धाम है। उसने माना है कि पर में सुख है, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व और दुःख है। आहाहा !

मुमुक्षु : पर में सुख दिखता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ है ? क्या है ? धूल में भी नहीं। देखे न। टुकड़े करो शरीर के, है कुछ थोथा में ? पैसे के टुकड़े करो, उसमें से सुख लटकता है ? वह तो मिट्टी है, जड़ है, धूल है, वह तो अजीव पुद्गल है। भगवान तो अजीव होकर शरीर रहा है, ऐसा कहते हैं और तू कहता है कि मेरा होकर रहा है। मूढ़ है। किसी की चीज़ आयी नजदीक में, वहाँ मेरी हो गयी, ऐसा तूने माना। समझ में आया ? झबेरी की दुकान में निकला अहमदाबाद के रास्ते में, माणेक चौक में। ऐसे नजर में दिखे जवाहरात तो कहे, यह मेरे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वत्र ऐसा है। यह शरीर, वाणी जड़ है, अपने आप उसके वे आये हैं। वहाँ यह निकला अन्दर में तो कहे, यह मेरा।

यहाँ तो उससे रहित दूसरी बात है। शरीर तो अब कहीं रह गया। यह तो पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वे भी विकारी भाव हैं, वह भी आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा! जिसे आत्मा का स्वरूप जानना हो, उसके लिये यह है। धर्म करना हो तो। यह पुण्य और पाप के विकल्प हैं, वे राग हैं। उस राग से आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूप... 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु'। आता है न? लोगस्स में आता है। 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु'। ऐसा मुझे दो। उसके अर्थ की खबर नहीं होती। समाधि—इस आत्मा के आनन्द की शान्ति, पुण्य-पाप के विकल्प बिना का शान्ति का स्वरूप, वह मुझे प्राप्त होओ, ऐसी प्रार्थना करता है। परन्तु अर्थ भी नहीं आता, भाव नहीं आता। अनादि काल ऐसा का ऐसा इसने गँवाया है और अभी इसे ऐसा का ऐसा जाता है। अपनी चीज़ अन्दर परमानन्द का धाम, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वादिष्ट आत्मा है। समझ में आया? ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद को लेता हुआ, जीव शुद्ध भाव को प्रगट करता हुआ, उस शुद्धभाव द्वारा मुक्ति की सुख की प्राप्ति होती है। बाकी कोई क्रियाकाण्ड से, पर से प्राप्ति नहीं होती। लो!

और, कैसे हैं भगवान? अनुपम है, जिसको संसार के सुख की उपमा नहीं लगती है,... सिद्ध भगवान तो संसारसुख से उनका दूसरी जाति का सुख है। आहाहा! सुख माना है, इसलिए लोग मानते हैं। लोग मूर्ख हैं। मानते हैं कि पैसे में सुख है। मानते अर्थात् कहते हैं कि संसारी सुख अज्ञानी ने माना है, उससे यह सुख कोई दूसरे प्रकार का है। सिद्ध का सुख दूसरे प्रकार का है। संसार के गृहस्थाश्रम में समकिति हो, चक्रवर्ती का राज हो। कहीं सुख नहीं मानता। आहाहा! भरत चक्रवर्ती। श्रेणिक राजा, लो न! भगवान के भक्त थे, आत्मा के भक्त थे। श्रेणिक राजा महावीर भगवान के समय में (हुए हैं)। आत्मा के भक्त थे। मैं तो शुद्ध चैतन्य का भक्त हूँ, मैं राग का, पुण्य का भक्त नहीं। ऐसे श्रेणिक राजा को हजारों रानियाँ थीं, राज था। था नहीं। वे मेरे नहीं, वह मैं नहीं। मुझमें है, वह उसमें नहीं, उसमें है, वह कुछ मुझमें नहीं। आहाहा! समझ में आया?

गन्ने के सांठा में जैसे अकेला मीठा रस भरा हो न, वह सांठा जड़ है, इसी प्रकार

यह आत्मा के आनन्द के रस का सांठा भरा है। कैसे जँचे? कभी खबर नहीं होती न। समझ में आया? यह गन्ने का छिलका, कूचा निकल जाए और अकेला रस अन्दर रह जाए। वह रस और छिलका दोनों भिन्न हैं या एक हैं? यदि एक हो तो भिन्न पड़े नहीं। पीलकर छिलके निकाल डालते हैं, (छिलके) भिन्न और रस भिन्न। इसी प्रकार यह तो छिलका है जड़। पुण्य-पाप के भाव वह छिलके हैं-विकार। आहाहा! अन्दर आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है। जैसे गन्ने का रस मीठा है, वैसा आत्मा आनन्द का मीठा स्वादिष्ट आत्मतत्त्व है। भगवान जाने कहाँ होगा? खबर नहीं होती। भगवान तो जानते ही हैं न! समझ में आया? आहाहा!

धर्मी जीव अपने आनन्द का रसरूप आत्मा, उसे चूसता है, शुद्धभाव से उसे स्वादता है, ऐसे शुद्धभाव को धर्म कहा जाता है। आहाहा! अभी कान में बात पड़ी न हो, उसमें कहाँ पहुँचना। पूर्व-पश्चिम का मार्ग! आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान का सुख अनुपम है। संसारी के सुख की तो कल्पना दी गयी। यह चक्रवर्ती का सुख कैसा? कि यह इन्द्र जैसा। इन्द्र का सुख कैसा? अमुक जैसा। परन्तु यह तो कल्पना, अज्ञानी की कल्पना है, सुख है नहीं। जहर है। आहाहा! स्त्री का विषय, पैसे का ढेर करोड़ों हो, माने कि मुझे इसमें ठीक है। यह कल्पना है। यह तो मिथ्यादृष्टि की मान्यता है, जैन की मान्यता उसे नहीं है। जैन की उसे खबर नहीं है। जैन परमेश्वर आत्मा कैसा कहते हैं। छगनभाई! परन्तु काम बहुत भारी, आहाहा!

कहते हैं कि उसके सुख की उपमा किसे लागू पड़े? हैं! घी के स्वाद की बात भी जब कही नहीं जा सकती। घी का स्वाद तो जन्म घुट्टी में से मिला है। परन्तु कैसा स्वाद? जानने में है परन्तु कैसा, कह नहीं सकते। किसके जैसा स्वाद, किसके जैसा? मिश्री जैसा? गुड़ जैसा, घी-केले जैसा? यह ख्याल में है कि ऐसा है, परन्तु जगत की किसी चीज़ के साथ उपमा देकर कहूँ, ऐसी वह चीज़ नहीं है। घी जैसे के स्वाद की उपमा नहीं होती तो भगवान आत्मा के आनन्द की उपमा तो हो नहीं सकती। आहाहा! शान्तिभाई! घी का स्वाद कैसा? लो, कहो। जन्मघुट्टी में से मिला है या नहीं तुम्हें?

मुमुक्षु : ... यह नहीं खबर पड़ती। घी के स्वाद की तो खबर पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर पड़ती है परन्तु वह किसके जैसा ? ऐसा कहो न ! लो इतने वर्ष हुए, ६४ वर्ष, ६५ वर्ष । किसके जैसा लाओ । बात यह । उसके ख्याल में आवे कि ऐसा स्वाद है, परन्तु कैसा पदार्थ है, इसकी...

मुमुक्षु : न आवे...

पूज्य गुरुदेवश्री : न आवे स्वाद किस प्रकार ? जब घी का स्वाद जड़ है । घी तो, मिट्टी-धूल है वह तो । उसका स्वाद जड़ है, उसका ख्याल आवे कि यह जाति है, तथापि किसी पदार्थ के साथ मिलान नहीं किया जा सकता, तो सिद्ध के सुख की बात क्या करना ? कहते हैं । उसे इन्द्र के सुख का जहर जैसा सुख, उसके साथ उसकी उपमा नहीं दी जा सकती । आहाहा ! समझ में आया ? वस्तु की खबर नहीं, वस्तु की, क्या चीज़ है ।

सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने आत्मा कहा । उसका सम्यग्दर्शन, उसके फलरूप से मुक्ति का सुख क्या चीज़ है ? कभी दरकार ही नहीं होती । ऐसा का ऐसा अनादि से उल्टी श्रद्धा, मिथ्यात्व के रास्ते चढ़ा । वहाँ का वहाँ जन्म करे और मरे चार गति में । शुद्धभाव बिना इसे धर्म और मुक्ति कभी नहीं होती । समझ में आया ? उपमा लागू नहीं पड़ती ।

कैसा है ? उत्तम (सर्वोत्तम) सुख है, ... सिद्ध का सुख सर्वोत्तम । यह तो अपेक्षा की बात । बाकी उनके जैसा सुख दूसरा कहीं है नहीं । यह सम्यग्दर्शन में पहला सुख प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं । धर्मी जहाँ सम्यग्दृष्टि हो, तब पहला अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है । जैसा सिद्ध का (सुख का) स्वाद है, वैसा स्वाद आवे, तब उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है । नहीं तो उसे सम्यग्दृष्टि नहीं कहा जाता । वह तो मिथ्यादृष्टि है । आहाहा !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होगा ? वह क्या आत्मा है या नहीं ? आत्मा है या नहीं ? तो आत्मा शुद्ध है तो उसका शुद्धोपयोग हो सकता है । उसे न हो, इसलिए दुनिया में न हो, ऐसा कहा जाएगा ? समझ में आया ? शुद्ध न हो तो धर्म नहीं । शुभ है, वह धर्म है नहीं । सूक्ष्म बात है, बापू ! यह तो वीतराग का मार्ग है, यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर का (मार्ग है) । इसे किसी के साथ अपनी कल्पना से मिलावे तो मिला सके, ऐसा नहीं है । आहाहा !

कहते हैं कि यह तो सर्वोत्कृष्ट सुख है परमात्मा का। ऐसा ही सुख आत्मा में भरा है अनादि-अनन्त। आत्मा में वह आनन्द भरा है। समझ में आया? छोटी पीपर का दृष्टान्त देते हैं या नहीं? छोटी पीपर है न इतनी छोटी? परन्तु चौंसठ पहरी चरपराहट अन्दर भरी है। है या नहीं? घोंटे तब आती है तो कहाँ से आती है? पत्थर में से आती है? छोटी पीपर चौंसठ पहरी चरपराहट होती है न? चौंसठ पहरी कहते हैं। बहुत सर्दी है तो जरा इतनी दो। वह चौंसठ पहरी अर्थात् चौंसठ पहर घोंटे, तब उसमें से चौंसठ पहरी निकले। अन्दर में है, वह निकलती है। पत्थर से पत्थर को घोंटे तो निकले? उसमें कहाँ थी? इसमें है। इस पीपर के दाने में छोटे में रंग काला और कद में छोटी, तथापि चौंसठ पहरी अर्थात् रुपया-रुपया अन्दर चरपराहट भरी है तो चौंसठ पहरी प्रगट होती है। है, उसमें से आती है। इसी प्रकार आत्मा में चौंसठ पहरा आनन्द और पूर्ण ज्ञान भरा है। इसे खबर कहाँ है? पीपर की खबर हो कि इस पीपर के घोंटे और निकले। पत्थर से घूँटने से निकलती नहीं। उसमें है, वह बाहर आती है। घूँटने से प्रगटे तो चना और यह कंकड़, कोयला घूँटे नहीं चौंसठ पहर? अधिक काला होगा। वहाँ कहाँ चरपराहट भरी थी अन्दर? समझ में आया?

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा शरीरप्रमाण भिन्न आत्मा। पुण्य और पाप के रागरहित आत्मा में पूरा आनन्द और पूरा ज्ञान भरा है। आहाहा! भगवान जाने। यहाँ तो लक्ष्मी बहुत तो दो-पाँच-दस करोड़, पच्चीस करोड़। ... कहाँ गये? पोपटभाई गये? गये लगते हैं। लींबड़ीवाले। दो अरब और चालीस करोड़ रुपये हैं। सुना है या नहीं? गोवा में था। उसके बहनोई अभी आये थे। चले गये लगते हैं। पोपटभाई थे। शान्तिलाल खुशाल है न वहाँ? दशाश्रीमाली बनिया है। अपने प्रेमचन्दभाई नहीं थे? राणपुरवाले, उनके मामा का पुत्र है। दो अरब रुपये। चालीस करोड़। अंक गिनने हैं न धूल के... भाई! सुना है या नहीं? गोवा में है। शान्तिलाल खुशाल। एक, सवा लाख की आमदनी दिन की है। उनके बहनोई कल कहते थे। सवा लाख की एक दिन की। उसमें आधी जाए मजदूरी में और आधी रहे घर में, ममता में। वहाँ कहाँ उसके पास आता है? वह तो ममता आती है उसके पास। सब दुःखी है, धूल भी नहीं कहीं, सुन न! वस्तु तो हो, ऐसा कहे या न हो ऐसा कहे?

मुमुक्षु : पैसे की कीमत पैसेवाले को होवे न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी पैसे की कीमत नहीं। अच्छा हार पहनकर बाजार में निकला कहीं कौने में मुम्बई में उसकी गली होवे न। पच्चीस-पचास हजार का हार पहनकर निकला हो, गुण्डा (आवे)। उसे पैसे की कीमत है। वह मार डालेगा। मार डाले। परन्तु भाईसाहब ले जा। कहे, नहीं। वापस तू मुझे पहिचानता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मारकर ले जाए। परन्तु यह हीरा। ऐसा बना था। मुम्बई में गली में। बना था। एक गली में निकला पच्चीस हजार का वह लेकर। यह तो बहुत वर्ष की बात है। हीरा (लेकर), पच्चीस हजार का हीरा लेकर, वह पहनकर निकला। उसमें गुण्डे को खबर होगी। अब उस गली में कोई मनुष्य आते-जाते में नहीं थे। वह घुसा वहाँ गुण्डा गया और मारकर भाग गया। आहाहा! हीरा की शोभा अँगुली की, उसने करायी मृत्यु। धूल में भी नहीं अब, सुन न! ऐई! मोहनभाई!

मुमुक्षु : यह तो एक दृष्टान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे दृष्टान्त तो कितने ही हैं न। मार डालते हैं। जीवित मार डालते हैं। अभी नहीं? अभी मुम्बई में नहीं हुआ? नौकर ने घर के सबको मार डाला। नौकर ने सबको पैसे के लिये मार डाला। आहाहा! ऐसा है, भाई! धूल भी नहीं कुछ। मूढ़ होकर जहाँ-तहाँ सन्निपातिया होकर सुख मानता है। सन्निपातिया होवे न सन्निपात? वात, पित्त और कफ का बिगाड़, उसे सन्निपात कहा जाता है। सन्निपात अर्थात् तीन का जुड़ान। वात, पित्त और कफ वक्री हो जाए, वहाँ वह दाँत निकालता है। वह सुखी है? बल आता है अन्दर, आठ व्यक्ति पकड़े उतना बल होगा वहाँ? धूल भी नहीं। वह तो रोग का बल है। समझ में आया? ...भाई! सुने कि बात... यह है या नहीं ऐसा भाई? सन्निपात में दाँत निकालता है तो वह सुखी है। रोग बढ़ गया है, भान नहीं। दाँत निकाले (खिलखिलाकर हँसे)।

यह तो भाई! हमने नजरों से देखा है। नजरों से अर्थात् बहुत वर्ष की बात है, हों! ४०-५० वर्ष पहले की बात है। लीमडे बाहर उतरे थे। लीमडे दुकान ... और उसमें

लींमडा में जवान व्यक्ति ३२ वर्ष का। उसे सन्निपात हुआ। और उसमें बाहर। हम गये, उसका मकान वहाँ। उसमें चिल्लाहट मचाये, दाँत निकाले खिलखिलाकर। लोग देखे, कुटुम्ब देखे हाय... हाय...। सवेरा नहीं पड़ेगा, सवेरा नहीं पड़ेगा। परन्तु यह दाँत निकालता है न? आठ व्यक्ति पकड़े तो भी न रहे। ३२ वर्ष का जवान, हों! ... बहुत वर्ष की बात है, ५० वर्ष की। मर गया सवेरे, वहाँ समाप्त हो गया। वह सुखी था? दाँत निकालता था, इसलिए (सुखी था)? इसी प्रकार यह पैसा, स्त्री, शरीर देखकर दाँत निकालता है, वह सुखी है? सन्निपात लगा है। मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मिथ्या आचरण का। सन्निपातिया है। ऐई! छगनभाई! यहाँ क्या हो दूसरा? आहाहा! जादवजीभाई! कैसे होगा? कैसे यह सब तेरे पिता को सुखी कहा जाता है पैसेवाले।

मुमुक्षु : वह तो मूर्ख की दृष्टि में कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा, ले! तेरे दादा पैसेवाले, तेरा पिता पैसेवाला, तेरा काका पैसेवाला।

मुमुक्षु : आत्मा पैसेवाला किस प्रकार होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं? पैसेवाला कहाँ से आया? पैसा तो बाहर रह गया, धूल दूर। अरे! इसने कहीं का कहीं माना है न! इसकी मान्यता के कारण परिभ्रमण कर रहा है। सच्चे तत्त्व की खबर नहीं होती, सुनने को नहीं मिलता। कहीं का कहीं मानकर उल्टे रास्ते पड़कर चार गति में भटकता है।

कहते हैं, भगवान के सुख को सर्वोत्तम कहते हैं। उसके साथ ऐसा सुख कभी मिल नहीं सकता। आहाहा! दुनिया कहाँ... धूल भी नहीं। चक्रवर्ती के बड़े राज हों। वह तो धूल के ढेर हैं। आहाहा! विष्टा के ढेर पर बैठाया हो और सुखी माने, ऐसा वह है, लो! समझ में आया? नयी खाट बनावे, तब कुत्ते को नहीं बैठाते? गाँव में होता है। हमारे यहाँ ऐसा था। नया खाट बनावे न काथी का, तब पहले मनुष्य नहीं सोवे। वहम पड़ता है। क्योंकि मर जाऊँगा तो? खाट समझे न? काथी का। गाँव में (होता है)। तुम्हारे कहाँ है अब वहाँ शहर में खाट-बाट होती नहीं। यह तो गाँव में होती है। नयी काथी की खाट बनावे, तब पहले न सोवे। पहले सोने और बैठने नहीं दे किसी को।

पहले बीच में रोटी डाले और कुत्ता ऊपर चढ़े और कुत्ता खाये। फिर रात्रि में बिस्तर करे। ऐ! कुत्ता बढ़ गया तेरी अपेक्षा? हैं! ऐसे वहम के पुतले और कहे, हमें धर्म होगा। धूल भी धर्म नहीं, सुन न! वहम के रंग में रँग गया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि आत्मा अपने आनन्दस्वरूप का जहाँ भान हुआ, मेरा आनन्द मुझमें है, मेरा सुख मुझमें है, मेरा ज्ञान पूर्ण सर्वज्ञ होने की शक्ति भी मुझमें है। ऐसा जहाँ सम्यग्दर्शन में, अभी सम्यग्दर्शन में, हों! श्रावक-बावक तो कहीं दूर रह गये। वह तो सब वाडा के श्रावक, वे सच्चे श्रावक हैं नहीं। समझ में आया? सच्चा समकित होने पर उसे आत्मा के आनन्द के समक्ष दुनिया में कहीं सुख भासित नहीं होता। इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए कचरे जैसे लगते हैं। उसे धर्मी कहते हैं। इन्द्र के इन्द्रासन भी सड़े हुए तिनके जैसे दुर्गन्ध लगे। आहाहा! उसे आत्मा की श्रद्धा है कि आनन्द मुझमें है। मेरा आनन्द पुण्य के भाव में भी नहीं। पुण्य के भाव करे, उसमें नहीं तो यह फिर धूल में कहाँ आया बाहर में? ऐसी शुद्धता जिसने अन्तर में श्रद्धा-ज्ञान प्रगट हुए हैं, उस शुद्धता के फल में मुक्ति का सुख मिलता है। उसे धर्म कहते हैं और उस धर्म में मुक्ति है। आहाहा! समझ में आया?

परम (सर्वोत्कृष्ट) है,... पहले सर्वोत्तम कहा। उत्तम कहा था न? और फिर परम सर्वोत्कृष्ट सुख सिद्ध का है। समकित्ती को सुख है, परन्तु थोड़ा आत्मा के आनन्द का। श्रावक हो, सच्चा श्रावक। उसे आनन्द चौथे (गुणस्थानवर्ती) समकित्ती से अतीन्द्रिय आनन्द बढ़ जाता है। समझ में आया? पाँचवें गुणस्थान के श्रावक। सच्चे की बात है न! यह वाडा की कहाँ बात है? वाडा बाँधा, उसमें कहीं श्रावक हो गया नाम दे इसलिए? चिरायता की थैली हो और ऊपर लिखे शक्कर, इसलिए चिरायता कड़वा मिट जाता होगा? शक्कर नाम दे इसलिए। इसी प्रकार नाम दे श्रावक और साधु। अन्दर में तो कुछ भान नहीं होता। समझ में आया?

कहते हैं, परमात्मा सिद्ध भगवान जो हुए, यह उन्हें सर्वोत्कृष्ट सुख है। क्यों? कि जिसे आत्मा परमानन्द की मूर्ति है, ऐसी जिसे अन्तर में सम्यग्दर्शन की शुद्धता प्रगट हुई है, ऐसे शुद्धता के फल में उसे सिद्ध का सर्वोत्कृष्ट सुख प्राप्त होता है। समझ में आया? और कैसे हैं? महार्घ्य है अर्थात् महान अर्घ्य-पूज्य प्रशंसा के योग्य है, सिद्ध

भगवान के सुख का तो क्या कहना ? कहते हैं। वचनातीत सुख है। प्रशंसा के योग्य है। यह तुम्हारे धूल में कहीं सुख नहीं है, ऐसा कहते हैं, सेठ! यह सब तुमको सुखी कहते हैं। सब करोड़पति हो, अरबपति हो, धूलपति हो।

मुमुक्षु : भ्रम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भ्रम है। भ्रमणा है, भाई! सुख तो आत्मा में है। वह स्वयं सुख का सागर आत्मा है। उसका भान कहाँ है इसे कुछ ? अतीन्द्रिय आनन्द से लवालव भरपूर आत्मा है। जैसे समुद्र पानी से लवालव भरपूर है, वैसा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान पूर्णानन्द भरपूर है। ऐसा जिसे सम्यग्दर्शन में भान होता है, सम्यग्दर्शन में भान होता है, उसे शुद्धता प्रगट होती है। और आगे श्रावक होने पर शुद्धता अधिक प्रगट होती है। सच्चे श्रावक की बात है, हों! यह वाडा की बात नहीं। और साधु हो, उसे तो आनन्द का उफान अन्दर से आ जाता है। अतीन्द्रिय आनन्द का उफान ज्वार से पानी जैसे समुद्र का उछलकर किनारे ज्वार आता है, जैसे अन्तर में आनन्द का समुद्र भरा है, यह भगवान, इसमें एकाग्र होने पर साधु को तो अतीन्द्रिय आनन्द उछलता है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द को शुद्धभाव कहते हैं। उस शुद्धभाव के फलरूप से सिद्धपद है। मुक्ति का सुख तो ऐसे शुद्धभाव से प्राप्त होता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा वह राग है। शुभराग से मुक्ति-बुक्ति नहीं मिलती। समझ में आया ?

कैसा है ? विमल है... और परमात्मा का-सिद्ध का सुख कैसा है ? कर्म के मल तथा रागादिकमल से रहित हैं। भगवान को कर्म भी नहीं और पुण्य-पाप का राग भी नहीं, ऐसे सिद्ध भगवान णमो सिद्धाणं आता है न ? वे सिद्ध ऐसे होते हैं। ... सिद्ध वहाँ शरीररहित। गाड़ी नहीं, वाड़ी नहीं, घोड़ी नहीं, लाडी नहीं। लाडी अर्थात् स्त्री नहीं। क्या सुख होगा ? धूल में भी सुख नहीं, सुन न इसमें। मोटर में ... मोटर इसके सिर पर चढ़ बैठी होती है। निभाना कैसे ? मोटर जिसने घर में रखी हो पच्चीस हजार की, उसका निभाव कैसे करना, यह सब बोझा सिर पर पड़ा हो अन्दर। ऐई! जमनादासभाई! उसके प्रमाण में मोटरें दो-चार घर में रखे। ... लड़की का विवाह करे वहाँ दो-पाँच हजार दिये जाते होंगे ? लड़के का विवाह करे तो बड़ा खर्च करना पड़े। लड़की का विवाह करे तो खर्च करे, बाप मरे तो कुछ खर्च पड़े। बड़ा बोझा पड़ा हो सिर पर।

दवाब में पड़ा हो और उसे दुनिया सुखी माने। धूल भी सुखी नहीं। समझ में आया ? बात में बहुत अन्तर। पूर्व-पश्चिम का अन्तर। दुनिया के साथ मिलान करने जाए तो कहीं मेल खाये, ऐसा नहीं है।

यहाँ परमात्मा कहते हैं कि सिद्ध के सुख को कौन पावे ? कि जिसे आत्मा के आनन्द का भान होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होकर, चारित्र अर्थात् वस्तु की रमणता में जिसे प्रचुर आनन्द प्रगट हुआ, वह चारित्र। चारित्र, वह कहीं वस्त्र-बस्त्र बदले और महाव्रत के विकल्प (हुए), वह चारित्र नहीं।

मुमुक्षु : कारण तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी कारण नहीं। जहर अमृत का कारण होता होगा ? लहसुन खाकर कस्तूरी की डकार आती होगी ? कारण है न लहसुन ? गले तक ढोकला में डाला हो लहसुन, खाया हो फिर, किसकी डकार आयी ? कि कस्तूरी की। धूल भी नहीं आयी। तुझे भान भी नहीं। लहसुन के फल में कस्तूरी की डकार नहीं होती। उसी प्रकार पुण्य-पाप के परिणाम में शुद्धता प्रगट नहीं होती। बात तो ऐसी अजर बातें हैं भाई ! अन्दर में अनन्त काल से इसने झेली नहीं। इसने दरकार ही नहीं की। ऐसे का ऐसा अवतार व्यर्थ। उसमें पाँच-पच्चीस लाख मिले और जरा शरीर-बरीर ठीक हो, लड़के ठीक हों तो मैं चौड़ा और गली सकड़ी। हो गया। गया मरकर चार गति में भटकने। समझ में आया ? ऐई ! शान्तिभाई ! क्या कहा भाई ने ?

मुमुक्षु : मैं चौड़ा और गली सकड़ी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सत्य बात। मैं चौड़ा और गली सकड़ी। पैसे अधिक हो गये हों तो गली में से ... निकाले। हमारे छह लड़के हैं। छह कमरे चाहिए। दो-दो कमरे, एक पायखाना, एक फलाना-ढीकणा, क्या कहलाता है तुम्हारे ?

मुमुक्षु : बाथरूम।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाथरूम। वहाँ बैठे। विधवा को निकाले, घर जा। परन्तु भाईसाहब ! हमारा पाँच हजार का मकान। चौड़ा हो गया। मर जाएगा परन्तु सुन न अब। धूल में भी नहीं वहाँ। आत्मा के आनन्द के स्वाद का जहाँ धर्मी को भान होता है, उसे

धर्मी और जैन कहते हैं कि इसे आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका जिसे अन्दर स्वाद आता है। उसे विकार का स्वाद जहर जैसा लगता है। आहाहा! पुण्य के परिणाम भी जिसे जहर जैसे लगते हैं। गजब बात है। आहाहा! यह वह कहीं जैन की श्रद्धा नहीं होती और माने कि हमें जैन की श्रद्धा है। जैन परमेश्वर तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : तो फिर क्या करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना यह। आत्मा कैसा है ? उसमें राग क्या होता है ? शुद्ध क्या है, उसे जानना, यह करना। यह तुम्हारे प्रश्न करते हैं, यह तुम्हारे भाईयों की ओर से। सुना न हो एक भी बार, क्या कहते हैं यह ? नवलचन्दभाई यहाँ पड़े हैं अकेले। वह तो कहते हैं कि पति-पत्नी थे निवृत्त। परन्तु हमारे क्या करना इन सबमें ? अधिक लड़के-लड़कियाँ। धूल भी नहीं अब सुन न! कोई लड़का किसका ? पिता किसका ? आत्मा को लड़का-बड़का होता है कभी ? यह तो खोटी गप्पमाला है।

कल ऐसा कहता था कहा, तेरे दादा-इसके पिता के पिता हैं न यह ? कहा, तेरे दादा हैं न पैसेवाले दादा ? एक आत्मा मैं और दादा मेरा दूसरा, यह डींग है। और तीसरा ? कहा, तेरा पिता। यह तो दूसरा डींग है। आत्मा को पिता कैसा ? यह कहता था। थे न भाई जमनादासभाई थे। यह उसके दादा तब तुम नहीं थे। कहा, यह तेरे दादा के पास कितना पैसा और कितना व्यापार ! वहाँ क्या कहलाये ? धीरधार। ब्याजबटाव हुण्डी का धन्धा किया। अब यहाँ बैठे। अब तेरा बाप वहाँ करता है, कलकत्ता। तब कहे, दादा कैसे ? आत्मा को दादा ? यह एक डींग है। और आत्मा का पिता ? यह दूसरा डींग है। भाई ! इस आत्मा को बाप-दादा कैसा ? आत्मा तो आत्मा है, भिन्न है। वह किसी का पुत्र नहीं और किसी का पिता भी नहीं। आहाहा ! मार डाला जगत को तो। मिथ्याभाव से मरणतुल्य हो गया है, तथापि उसकी इसे खबर नहीं कि मैं क्या हूँ ? कहाँ हूँ ? आहाहा !

कहते हैं, अतुल है, इसके बराबर संसार का सुख नहीं है, ... सिद्ध परमात्मा के सुख की क्या बात करना, कहते हैं। उस सुख की प्राप्ति किसे होती है ? जिसे शुद्धभाव पुण्य और पाप के भावरहित आत्मा के स्वभाव का शुद्धभाव प्रगट हो, उसे मुक्ति होती है, ऐसा यहाँ सत् सिद्ध करना है। उसके व्रत के, दया, दान के, पूजा के परिणाम से

मुक्ति होती नहीं। वह राग है। उससे यह बाहर की धूल-बूल मिले कदाचित् यह पैसा। समझ में आया? उसमें सुख नहीं। यह दूसरी बात है, शान्तिभाई! अलौकिक बातें हैं। ६४ वर्ष में नया सुनने जैसा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धभाव प्रगट करे। यह शुद्ध करे तो धर्म हो, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वापस ...

पूज्य गुरुदेवश्री : तो हो गया। न छोड़े तो। यह तो समझने के लिये तो बात चलती है। इसे यह करनेयोग्य है, यह इसे पहले निर्णय करना चाहिए।

मुमुक्षु : लाभ बताओ न कुछ।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसमें लाभ? शुद्ध में लाभ बताया न शुद्ध में। शुभ में क्या लाभ है? धूल? वह तो अनन्त बार ऐसे शुभ किये, बड़ा अरबोंपति अनन्त बार हुआ। अरबोंपति अनन्त बार हुआ। नया कहाँ है इसमें? इसे ऐसा लगता है कि यह नया। ऐसा मनुष्यपना तो अनन्त बार आया है। अनन्त बार।

श्रीमद् ने नहीं कहा? श्रीमद् में आता है या नहीं? भाई ने पढ़ा होगा। श्रीमद् में आता है, भाई!

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये?

परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धि नय पर तौलिये?

संसार का बढ़ना अरे नरदेह की यह हार है।

नहीं एक क्षण तुझको अरे इसका विवेक विचार है।

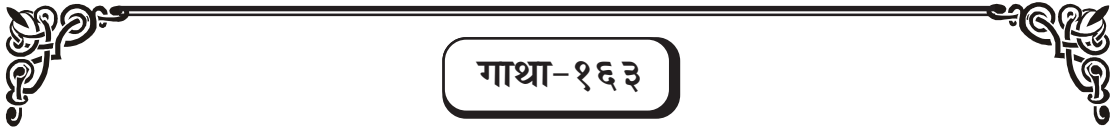
तूने कभी विचार नहीं किया। आहाहा! बाहर के जहाँ पाँच-पचास मिले, धूल मिली कुछ, हो गया। ऐसा हो गया। ऐई! सच्ची बात होगी? देखो! यहाँ कहते हैं।

ऐसे सुख को जिन-भक्त पाता है... है अन्तिम शब्द? जिनभक्त अर्थात् वीतराग आत्मा का स्वभाव है, उसका भक्त अर्थात् शुद्धभाव प्रगट करे, वह जिनभक्त है। राग को प्रगट करे और राग का प्रेमी, वह जिनभक्त नहीं, वह तो राग का भक्त है। समझ में आया? जिन आत्मस्वरूप। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, कर्म कटे

जिनवचन सो, जिनभाव सो।' वचन का अर्थ भाव। आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु का वीतरागस्वभाव, उसका अन्तर अनुभव करके वीतरागभाव प्रगट करे, वह जिन का भक्त कहा जाता है। बाकी राग के, क्रियाकाण्ड का राग करके उसकी भक्ति करे, राग मेरा माने, वह जिनभक्त नहीं; वह राग का भक्त है। समझ में आया? आहाहा! गजब बातें परन्तु भाई! बाहर का नशा चढ़ गया हो न बाहर की बात का जहाँ। नशा उतर जाए, ऐसा है अन्दर से। लो, यह १६२ गाथा हुई।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... की बात करता हूँ। सड़ा हुआ कहा न, लौकी सड़ी हुई हो दागवाली एक भी अच्छी न हो वह लौकी। सब सड़ गयी हो। इसी प्रकार भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव, वह आत्मा राग और पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करे, उसे धर्म होता है और उसे मुक्ति होती है। समझ में आया?



गाथा-१६३

आगे आचार्य प्रार्थना करते हैं कि जो ऐसे सिद्धसुख को प्राप्त हुए सिद्ध भगवान् वे मुझे भावों की शुद्धता देवें -

ते मे तिहुवणमहिया सिद्धा सुद्धा णिरंजणा णिच्चा ।

दिंतु वरभावसुद्धिं दंसण णाणे चरित्ते य॥१६३॥

ते मे त्रिभुवनसहिताः सिद्धाः सुद्धाः निरंजनाः नित्याः ।

ददतु वरभावशुद्धिं दर्शने ज्ञाने चारित्रे च॥१६३॥

वे त्रिजग-पूजित शुद्ध नित्य कलंक-विरहित सिद्ध गण।

दे ज्ञान दर्शन चरित्र में वर भाव शुद्धि-हेतु वर॥१६३॥

अर्थ - सिद्ध भगवान् मुझे दर्शन-ज्ञान में और चारित्र में श्रेष्ठ उत्तमभाव की शुद्धता देवें। कैसे हैं सिद्ध भगवान् ? तीन भुवन से पूज्य हैं, शुद्ध हैं अर्थात् द्रव्यकर्म

और नोकर्मरूप मल से रहित हैं, निरंजन है अर्थात् रागादि कर्म से रहित हैं, जिनके कर्म की उत्पत्ति नहीं है, नित्य हैं - प्राप्त स्वभाव का फिर नाश नहीं है।

भावार्थ - आचार्य ने शुद्धभाव का फल सिद्ध अवस्था और जो निश्चय से इस फल को प्राप्त हुए सिद्ध, इनसे यही प्रार्थना की है कि शुद्धभाव की पूर्णता हमारे होवे ॥१६३॥

गाथा-१६३ पर प्रवचन

अब आचार्य... अन्तिम गाथायें हैं न। ओहोहो! आचार्य प्रार्थना करते हैं। ऐसे सिद्धसुख को प्राप्त हुए सिद्ध भगवान वे मुझे भावों की शुद्धता देवें :- भगवान कहाँ दे? परन्तु यहाँ प्रार्थना है, यहाँ। ओहोहो! 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु' आता है न? 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु।' भगवान देते होंगे किसी को? भगवान कर्ता है किसी के? वे तो वीतराग हैं, सर्वज्ञ हैं। उनके पास पड़ा है तेरा सुख? तेरी मुक्ति? तेरी मुक्ति तेरे पास है। परन्तु विनय के वाक्यों से ऐसा बोलने में आता है। ऐसे बाहर में यह नहीं कहते? बहुत पुण्य बढ़ा हो और पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़ हो जाए तो (ऐसा बोले), हमारे बुजुर्गों का पुण्य खाते हैं। ऐसा कहे। बुजुर्गों के पास कुछ नहीं था। ऐई!

मुमुक्षु : उसके ऊपर वापस...

पूज्य गुरुदेवश्री : उनके पास पच्चीस-तीस हजार की पूँजी, तीस-पैंतीस हजार की। नहीं? नारायण सेठ की पैंतीस हजार की पूँजी, उसके पिता के पिता को पैंतीस हजार की पूँजी। हमको खबर है न! छोटाभाई को पैंतीस हजार की। यह सब लड़के को बाँटे, तब पैंतीस हजार में से बाँटे। यह दो लड़के हुए वे बड़े पाँच करोड़वाले हुए। मुम्बई में नहीं? भाई! क्या कहलाता है? पूमचन्द, यह पहिचानते हो न पालखीवाला नहीं? पालखी की पहिचान है। पूनमचन्द मलूकचन्द। नाम सुना नहीं? बाईस मंजिल का मकान। उसके यह पिता हैं। पूनचन्द के पिता यह मलूकचन्द। पूनमचन्द मलूकचन्द शाह। मुम्बई में बड़े २२-२२ मंजिल के मकान हैं। तीन करोड़ के। धूल में भी लाभ नहीं। यह प्रसन्न होने का लाभ मिलता है पाप का। मुम्बई में है न एक? और एक है वह

स्वीट्जरलैण्ड में है। उसके पास दो करोड़ है। इसके पास तीन करोड़ है। यह इनका पिता है मलूकचन्द। परन्तु इनके पास कुछ नहीं, हों! इनके पास तो... होगा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं कुछ। उनके भी नहीं और इसके भी नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि हे भगवान! जिसे अन्तर में सिद्धपद का अविकारी स्वभाव है, ऐसा भान है। जिसे सिद्धपद का सम्यग्दृष्टि को भान है, यह मुनि है न! यह तो भावलिंगी सन्त है। दिगम्बर सन्त थे, जंगल में बसते थे। संवत् ४९ के वर्ष की बात है। दिगम्बर सन्त जो भगवान के पास गये थे, कुन्दकुन्दाचार्य। प्रभु महाविदेह में विराजते हैं। (वहाँ जाकर) आठ दिन रहे थे। दिगम्बर सन्त थे। एक मोरपिच्छी और कमण्डल ही था। जैनधर्म की पद्धति अनादि की एक ही थी। फिर यह दो भाग पड़ गये। यह ४९ के वर्ष में भगवान के पास गये थे। वहाँ से आठ दिन रहकर यह सब आकर शास्त्र बनाये। भगवान के सन्देश लेकर आये हैं। कहो, समझ में आया? यह कहते हैं कि हे परमात्मा! हमने सिद्धपद को जाना है। हमारा स्वरूप ही सिद्ध है। 'सिद्ध सो ही यह आत्मा' सिद्ध, वह आत्मा है। सर्व जीव हैं सिद्ध सम। आता है न? आत्मसिद्धि में आता है। आत्मसिद्धि में आता है। सिद्ध सम स्वरूप है इसका। ऐसे स्वरूप का जिसे सम्यग्दर्शन होकर धर्मी जैनरूप से पहली श्रेणी में आया हो। अभी धर्म की पहली श्रेणी। तदुपरान्त यह तो आचार्य हैं। मुनि दिगम्बर सन्त जंगल में बसनेवाले। जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार आता था। जैसे समुद्र में ज्वार आवे, वैसे अतीन्द्रिय आनन्द उछला था। ऐसी दशावन्त को मुनि और आचार्य कहा जाता है। इन आचार्य को अभी पूर्ण आनन्द नहीं। सिद्धपद प्रगट नहीं हुआ, इसलिए सिद्ध के समक्ष प्रार्थना करते हैं। लो!

ते मे तिहुवणमहिया सिद्धा सुद्धा णिरंजणा णिच्चा ।

दित्तु वरभावसुद्धिं दंसण णाणे चरित्ते य॥१६३॥

आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो अन्दर है। अन्तर अनुभव है। परन्तु अब आगे बढ़ जाऊँ और परमात्मा! तेरे सुख को मैं सिद्धसुख को प्राप्त करूँ, ऐसी प्रार्थना है।

आहाहा! अन्तिम गाथायें हैं न? यहाँ से अपने को शुद्धभाव है। शुद्ध पूर्ण हुआ नहीं। अभी शुभ है, इसलिए स्वर्ग में जायेंगे। पंचम काल के मुनि आत्मज्ञानी-ध्यानी भी स्वर्ग में जाते हैं। पूर्ण शुद्धता प्रगटे नहीं। इसलिए माँगते हैं। प्रभु! मुझे तो पूर्ण शुद्धता चाहिए। मुझे यह स्वर्ग-फर्ग नहीं चाहिए। आहाहा! हमारे सुख की पूर्णता (चाहिए)। सोलह कला से खिला हुआ जैसे चन्द्र होता है, वैसे मेरा आत्मा पूर्णानन्द को खिलकर पूर्ण सुख को प्राप्त करे। हे परमात्मा! यह मुझे दो, ऐसी मैं प्रार्थना करता हूँ। विनय के वाक्य हैं। समझ में आया? भगवान देते नहीं। भगवान किसे दे? भगवान कर्ता हैं? प्रार्थना करे, 'शिवपद हमको देना रे महाराज, शिवपद...' भगवान कहते हैं, तेरा शिवपद तेरे पास है। ले लेना अन्दर से। अन्दर में नजर कर न? मेरे पास कहाँ तेरा शिवपद था, वह माँगने आया है यहाँ? समझ में आया? खबर नहीं होती कि यह मैं कौन हूँ? कैसा हूँ? कहाँ हूँ? कहते हैं कि मुझे खबर है, प्रभु! मैं शुद्ध चैतन्य हूँ। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित मुनि है। वे भी परमात्मा के समक्ष माँगते हैं। प्रभु! मेरी पूर्णता-शुद्धता होओ। बस! यह भावपाहुड़ है न! मेरी शुद्धता पूर्ण होओ... पूर्ण होओ। दूसरा कुछ मुझे नहीं चाहिए। आहाहा!

अर्थ :- सिद्ध भगवान मुझे दर्शन, ज्ञान में और चारित्र में श्रेष्ठ उत्तमभाव की शुद्धता देवें। लो! प्रार्थना है, हों! देते नहीं। ईश्वरकर्ता दे दूसरे को, वैसे यह भगवान देते होंगे? तब तो ईश्वरकर्ता हो। शान्तिभाई! दूसरे को ईश्वर दे न कुछ? कहते हैं न? ऐसे भगवान देते होंगे?

मुमुक्षु : भगवान के पास क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उनके पास उनका आत्मा है। परन्तु विनय से बोले। यह नम्रता की वाणी ऐसी ही होती है। विनय का वाक्य है। लोक में ऐसा ही कहा जाता है। साधारण गृहस्थ हो तो ऐसा वह लड़का निर्मानरूप से कहे कि बुजुर्गों का पुण्य खाते हैं। ऐसा कहे। बुजुर्गों का पुण्य कहाँ इतना था तेरे जितना? उनके पास थोड़ा है। इसको बढ़ गया है। दुनिया में बढ़ा, ऐसा दुनिया कहे न।

कहते हैं, जिसे आत्मा के सुख का भान हुआ है, जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया है। ऐसा जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ, वे मुनि कहते हैं कि

मुझे प्रभु! शुद्धता पूर्ण दो। मेरी शुद्धता अपूर्ण थोड़ी है। चारित्रवन्त हूँ परन्तु शुद्धता थोड़ी है। यथाख्यातचारित्र की शुद्धता मुझे नहीं है, केवलज्ञान की शुद्धता मुझे नहीं है। आहाहा! ऐसा विनय से कहते हैं। परन्तु अन्दर में मुझे प्राप्त होओ, मेरी एकाग्रता से, ऐसी प्रार्थना की जाती है। समझ में आया? सिद्ध भगवान हैं, वे मोकूँ अर्थात् मुझे। सम्यग्दर्शन-ज्ञान। दर्शन-ज्ञान में और चारित्र में श्रेष्ठ उत्तम शुद्धभाव प्राप्त हो। **उत्तमभाव की शुद्धता देवें।** शुद्धता, पवित्रता, निर्मलता, उज्ज्वलता यह मुझे पूर्ण दो, प्रभु! ऐसा कहकर विनय से अपने भाव की शुद्धि की प्रार्थना करते हैं। मेरी शुद्धि प्रगट हुई है, परन्तु पूर्ण शुद्धता होओ। ऐसी अन्तर में भावना है। भगवान को विनती में, प्रार्थना में ऐसा कहते हैं।

कैसे हैं सिद्ध भगवान? तीन भुवन से पूज्य हैं,... 'महिया' आता है न? 'महिया' लोगस्स में आता है। 'कित्तियवंदियमहिया...' 'महिया' अर्थात् पूजनिक है। भगवान तीन लोक के नाथ सिद्ध भगवान पूजनीक हैं। ऐसा पूज्यपना दूसरे को नहीं होता। ऐसी जिसे अन्तर में अपने सिद्धपद की खबर है, उसे अपने स्वभाव के साथ मिलाया है कि मैं भी रागरहित मुझे भान हुआ। ऐसी पूर्ण रागरहित दशा सिद्ध को प्रगट हुई है, इसलिए सिद्ध भगवान को विनय से पूर्ण होने की प्रार्थना करते हैं।

कैसे हैं भगवान? शुद्ध हैं, अर्थात् द्रव्यकर्म और नोकर्मरूप मल से रहित हैं,... भगवान को जड़कर्म भी नहीं और पुण्य-पाप के भाव भी नहीं। 'विहुयरयमला...' आता है या नहीं लोगस्स में? परन्तु इसे उसके अर्थ की खबर नहीं हो। शान्तिभाई! 'विहुयरयमला' आता है लोगस्स में। विहुय अर्थात् काया है, रज अर्थात् कर्म की धूल और मल अर्थात् पुण्य-पाप के भाव, ऐसा अर्थ है। समझे बिना 'विहुयरयमला' का विहा रोई मल्या, ऐसा अर्थ होता है इसका।

लींबड़ी में ऐसा हुआ था। एक बुढ़िया थी और उन दशा तथा विसा का विवाद। और नमोत्थुणं बोलने लगे लोगस्स। वह घड़ी लेकर बैठे। घड़ियाल—घड़ी-घड़ी। फिर बोलते-बोलते आया यह लोगस्स। और थी दशाश्रीमाली की महिला। और विसाश्रीमाली के साथ विरोध था। तो लोगस्स में यह आया, तब कहे विहा रोई मल्या। अल्या परन्तु यह अपना इसमें कहाँ से आया? लोगस्स में कहाँ से आया यह? ऐ! देखो

तो सही अन्दर। तब कहे, यह तो 'विहयुरयमला' है। वि अर्थात् विशेष, हुय अर्थात् टाले हैं। क्या भगवान? आपने टाले हैं। क्या? रयमला—रय अर्थात् रज कर्म। आठ कर्म को आपने टाला है और मल अर्थात् पुण्य-पाप के विकारी मैल उसे टाला है। ऐसा यहाँ अर्थ है। विहा रोई मल्या कहाँ से आया यहाँ? अर्थ की खबर नहीं होती, अब उसे भाव कहाँ बैठे और किसे धर्म हो? आहाहा!

इसलिए यहाँ कहते हैं कि भगवान तो जड़कर्म और मैल से रहित है। जिनके कर्म की उत्पत्ति नहीं है,... जिन्हें अब कर्म उपजता नहीं। नित्य हैं—प्राप्त स्वभाव का फिर नाश नहीं है। लो! सिद्ध भगवान हुए, वे अब फिर से अवतार धारण नहीं करते, ऐसे सिद्धपद की प्राप्ति आत्मा के शुद्धभाव द्वारा होती है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१६२, गाथा-१६३ से १६५, गुरुवार, पौष शुक्ल ३, दिनांक ३१-१२-१९७०

अष्टपाहुड़, भावपाहुड़ की १६३ गाथा। उसका भावार्थ। अर्थ चला था।

भावार्थ :- आचार्य ने शुद्धभाव का फल सिद्ध अवस्था और जो निश्चय से इस फल को प्राप्त हुए सिद्ध, इनसे यही प्रार्थना की है कि शुद्धभाव की पूर्णता हमारे होवे। क्या कहते हैं? कि इस आत्मा में जो अनादि से शुभ और अशुभभाव होते हैं, वे तो अशुद्ध हैं, मैल हैं, बन्ध का कारण है। पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव से रहित आत्मा का शुद्ध स्वभाव जो त्रिकाल है, उसके आश्रय से जो शुद्धभाव होता है, वह धर्म और वह मुक्ति का कारण है। आचार्य कहते हैं कि शुद्धभाव का फल सिद्ध अवस्था... शुद्धभाव का फल मुक्तदशा-मुक्तदशा। पुण्य-पाप का फल चार गति। शुभभाव होवे तो स्वर्ग, यह मनुष्यादि और पाप होवे तो नरक और पशु आदि हो।

शुद्धभाव से चार गति नहीं मिलती। शुद्धभाव से धर्म होता है और उससे मुक्ति मिलती है। वह शुद्धभाव आत्मा पवित्र अखण्ड आनन्द का कन्द, सुखकन्द—ऐसा जो

आत्मा, उसका अन्तर आश्रय करके, परद्रव्य के अनुसार होते शुभाशुभपरिणाम का लक्ष्य-आश्रय छोड़कर चैतन्यदल आनन्दकन्द ध्रुवस्वरूप शुद्ध अनाकुल चैतन्यरस आत्मा का आश्रय करके जो शुद्धभाव हो—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह धर्म है और वह मुक्ति का कारण है। गुजराती थोड़ा-थोड़ा समझते हो न ?

शुद्धभाव का फल सिद्ध अवस्था... शुद्धभाव, वह भी एक आत्मा की पवित्र परिणति-अवस्था है। शुद्धभाव, वह आत्मा, पवित्र आत्मा, पूर्ण प्रभु पवित्र का पिण्ड आत्मा है। उसकी पवित्रता पर्याय में-अवस्था में शुद्धतारूपी पवित्रता प्रगट हो, वह भी एक अवस्था है और उसका फल सिद्ध अवस्था, मुक्ति अवस्था, वह भी एक पर्याय है-दशा है। समझ में आया ? तो कहते हैं, **शुद्धभाव का फल सिद्ध अवस्था और जो निश्चय से इस फल को प्राप्त हुए सिद्ध,...** और उस शुद्धभाव द्वारा भगवान आत्मा पवित्र, पूर्णइदं, उसका आश्रय करके जो शुद्धभाव हुआ, उससे सिद्ध हुए, इनसे यही **प्रार्थना की है...** लो! व्यवहार से। परन्तु भाषा ही यह है, देखो!

कि शुद्धभाव की पूर्णता हमारे होवे। देवुं के जगह होऊँ किया है। देवुं तो एक विनय का वाक्य है। सिद्ध भगवान कहीं शुद्धता देते नहीं। परन्तु अर्थ किया न कि सिद्ध परमात्मा के समक्ष प्रार्थना **कि शुद्धभाव की पूर्णता हमारे होवे।** शुद्धता तो है। आचार्य हैं, मुनि हैं, दिगम्बर सन्त हैं। आत्मा के आनन्द की प्रचुर स्वसंवेदता प्रगट हुई है। समझ में आया ? आत्मा में सम्यग्दर्शन होने पर अल्प स्वसंवेदन की शुद्धता परिणति प्रगट होती है, परन्तु मुनि को तो... मुनि अर्थात् सच्चे मुनि की बात है, उन्हें तो आत्मा का प्रचुर स्वसंवेदन आनन्द का धाम भगवान का प्रचुर अर्थात् विशेष, सं अर्थात् अपना सं प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन उग्ररूप से हो, उसे साधु कहते हैं। शान्तिभाई कहे, यह और ऐसी बातें।

मुमुक्षु : पाँचवें काल में तो अन्तर नहीं होना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर क्या पाँचवें काल में ? सूखड़ी (गुजराती मिठाई) में गुड़ के बदले गारा डालते होंगे ? पाँचवें काल में। शान्तिभाई! सूखड़ी खाते हैं न सूखड़ी ? उसमें गुड़ के बदले गारा डालते होंगे कोई ? पाँचवाँ काल है। और आटे की जगह धूल चलती होगी ? और घी की जगह पानी चलता होगा ? नहीं चलता। काल

बदला है न! परन्तु लौकिक में जब नहीं बदलता तो लोकोत्तर में किसका बदले? ऐसा यहाँ कहते हैं। पंचम काल में हो या चौथे काल में हो। धर्म तो जो है, वह है। सूखड़ी तो इन तीन की ही होती है—घी, गुड़ और आटा। भले मिठास में अन्तर हो। पहले की और अभी में। मिठास में अन्तर होने पर भी वस्तु दूसरी नहीं होती। जाति नहीं बदलती।

इसी प्रकार आत्मा में चौथे काल में विशेष शुद्धि की विशेष शुद्धि प्रगट होकर एकदम केवलज्ञान ले। समझ में आया? ऐसी विशेष शुद्धि भले न हो, परन्तु उसकी योग्यता प्रमाण पुण्य-पाप के विकल्प बिना शुद्ध भगवान आनन्द का धाम परमात्मा, स्वयं ही शुद्ध परमात्मा है, उस परमात्मा में अन्तर ध्यान में प्रवेश करने से शुद्धता के आनन्द के जो अंश प्रगट होते हैं, उस प्रचुर आनन्द का वेदन है। आहाहा! उस आनन्द के वेदन को शुद्ध परिणति, शुद्ध अवस्था, शुद्धभाव कहा जाता है। सेठ! आहाहा! भारी बातें। ऐसी बातें हैं।

शुद्धभाव की पूर्णता... क्योंकि शुद्धभाव तो है। इसलिए पूर्णता प्राप्त करता है। इस पंचम काल के मुनि हैं। शान्तिभाई! यह तो अभी पाँचवें काल के, (संवत्) ४९ के वर्ष के।

मुमुक्षु : शुद्ध भावना भी सम्पूर्ण...

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्पूर्ण माँगते हैं। शुद्ध है तो सही। पूर्ण माँगते हैं, मुझे तो पूर्ण शुद्ध हो। शुद्धता है। आहाहा! चैतन्य शुद्ध भगवान परिपूर्ण शान्ति और आनन्द के रस से छलाछल भरपूर है। खबर नहीं होती इसे। समझ में आया? ऐसे आनन्द में डुबकी मारने से; जैसे समुद्र में प्रवेश करने से गहरे जाने से उसे मोती हाथ आते हैं। समुद्र में मोती होते हैं न समुद्र में गहरे जाये वहाँ? मोती हाथ आवें। इसी प्रकार आत्मा के अन्तर में जाने से शुद्धता के आनन्द के कण हाथ आते हैं। ऐसी दशा सम्यग्दर्शन से प्रगट होती है। परन्तु वह थोड़ी। मुनि को तो उग्र शुद्धता (प्रगट हुई है)। यह कहते हैं कि हमको शुद्धता तो है, परन्तु प्रभु! तुम्हारे जितनी शुद्धता अब हमें हो।

लोगस्स में आता है या नहीं? 'सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु'। आता है। कण्ठस्थ किया होगा, उसे खबर होगी। शान्तिभाई! लोगस्स किया था या नहीं? किया था, भूल

गये। 'सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु'। हे सिद्ध भगवान! मुझे सिद्धपद दिखाओ अथवा दो। इसका अर्थ यह कि ... अर्थात् कि आत्मा केवलज्ञान प्राप्त करे, तब सिद्धपद को प्रत्यक्ष देखे। इसका अर्थ कि आत्मा अपनी पूर्ण शुद्धता को प्राप्त करे, ऐसी भावना धर्म की होती है। समझ में आया? आहाहा! शुद्धता की खबर भी नहीं होती कि शुद्धता किसे कहना और धर्म हो गया, लो! आहाहा!

साधु अनन्त बार हुआ, नौवें ग्रेवेयक गया परन्तु वह शुभभाव; धर्म नहीं। पंच महाव्रत पालन किये, अट्टाईस मूलगुण पालन किये, राग को पालन किया। वह तो राग है। आहाहा! राग से रहित पूर्ण चैतन्यस्वभाव शुद्ध में एकाग्रता होने पर जो शुद्धता प्रगट होती है, उसमें आनन्द और शान्ति का स्वाद और शान्ति और आनन्द की उग्रता प्रगट होती है। कौन जाने कहाँ होगा? इसकी वेदना में विशेष माँगते हैं। प्रभु! हमको तो पूर्ण शुद्धता हो।



गाथा-१६४

आगे भाव के कथन का संकोच करते हैं -

किं जंपिण्ण बहुणा अत्थो धम्मो य काममोक्खो च ।

अण्णे वि य वावारा भावम्मि परिठ्ठिया सव्वे ॥१६४॥

किं जल्पितेन बहुना अर्थः धर्मः च काममोक्षः च ।

अन्ये अपि च व्यापाराः भावे परिस्थिताः सर्वे ॥१६४॥

है बहु कथन से क्या? धर्म धन काम मुक्ति अन्य भी।

कुछ दूसरे व्यापार होते शुद्धता से भाव की ॥१६४॥

अर्थ - आचार्य कहते हैं कि बहुत कहने से क्या? धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और अन्य जो कुछ व्यापार है, वह सब ही शुद्धभाव में समस्तरूप से स्थित है।

भावार्थ - पुरुष के चार प्रयोजन प्रधान हैं - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। अन्य भी

जो कुछ मन्त्रसाधनादिक व्यापार हैं, वे आत्मा के शुद्ध चैतन्य परिणामस्वरूप भाव में स्थित हैं। शुद्धभाव से सब सिद्धि है, इस प्रकार संक्षेप में कहना जानो, अधिक क्या कहें? ॥१६४॥

गाथा-१६४ पर प्रवचन

आगे भाव के कथन का संकोच करते हैं :- लो ! बहुत समय से आता है । १६५ गाथाओं का यह (पाहुड़) है । १६५ । अब १६४ (गाथा ।)

किं जंपिण बहुणा अत्थो धम्मो य काममोक्खो च ।

अण्णे वि य वावारा भावम्मि परिठ्ठिया सव्वे ॥१६४॥

आहाहा ! पहले आ गया था । भगवान आत्मा अर्थ, काम और मोक्ष देगा वह । मोक्ष अधिकार में । भगवान तो सिद्ध परमात्मा आत्मा को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देंगे । उसका अर्थ यह समझाते हैं और यह प्रगट होता है, उसे देते हैं, ऐसा कहा जाता है । आहाहा !

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि बहुत कहने से क्या ? अरे ! बहुत कहकर क्या कहूँ ? बहुत कहकर क्या कहना है ? धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और अन्य जो कुछ व्यापार है, वह सब ही शुद्धभाव से समस्तरूप से स्थित है । लो ! अहो ! प्रवचनसार में आता है न अन्तिम गाथा में ? शुद्धभाव, वह समकित है ; शुद्धभाव, वह चारित्र है ; शुद्धभाव, वह मोक्षमार्ग है ; शुद्धभाव, वह सिद्ध है । समझ में आया ? अभी इसे श्रद्धा के ज्ञान में खबर न हो कि शुद्धता क्या है और अशुद्धता क्या है ? वह अशुद्धता के परिणाम पुण्य और पाप के, उनसे भिन्न भगवान आत्मा का अवलम्बन लेने से जो पर्याय निर्मल शुद्ध प्रगट होती है, कहते हैं कि ऐसे भाव से लक्ष्मी भी प्राप्त होती है । अर्थात् क्या ? कि जहाँ शुद्धभाव धर्म की श्रद्धा, ज्ञान आदि प्रगट हुए हैं, वहाँ ऐसा विकल्प बाकी रह गया होता है, उससे लक्ष्मी, चक्रवर्ती, तीर्थकरपद मिले । वह शुद्धभाव से नहीं परन्तु शुद्धभाव की भूमिका में जो राग शुभराग रहा है, अभी पूर्ण शुद्ध हुआ नहीं । पूर्ण शुद्ध होवे तब तो ... अर्थात् जहाँ शुद्धता आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र की प्रगट हुई है, वहाँ अभी

शुद्धभाव होता है। उसके फलरूप से यहाँ तो शुद्धभाव के फलरूप से उसे गिना है। उसकी भूमिका में शुद्धभाव है न, इसलिए (गिना है)। आहाहा! अज्ञानी को जो मिथ्यादृष्टि और लक्ष्मी आदि मिले, उसकी गिनती नहीं है। वह तो सब हल्का पुण्य है। धर्मी को जो पुण्य होता है, वह ऊँचा पुण्य होता है। यह पहले आ गया है। अच्छा अनाज पके, उसके तृण ऊँची होती है। खड समझे ? तृण, तिनके। आहाहा! इसी प्रकार जहाँ भगवान आत्मा अपने आनन्त शुद्ध साम्राज्य राज का राज अन्दर से प्रगट हुआ, उसकी पवित्रता के फल में तो मुक्ति है, परन्तु उसके स्थान में रहा हुआ शुभभाव, उसका फल चक्रवर्ती पद आदि लक्ष्मी मिले, वह शुद्धभाव की भूमिका में से मिले, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ?

धर्म... अर्थात् पुण्य। वह पुण्य भी समकित्ती शुद्ध जीववाले को होता है, वैसा पुण्य दूसरे को नहीं हो सकता। चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द का नाथ चिद्भूप, वह आनन्द का और ज्ञान का राजा आत्मा है। उससे राजते शोभते शोभता है। ऐसा जो आत्मा, उसकी जिसे श्रद्धा-ज्ञान शुद्धता प्रगटी है, कहते हैं कि उसके स्थान में धर्म होता है। पूर्ण शुद्धता नहीं है; इसलिए पुण्यभाव (होता है)। धर्म अर्थात् पुण्यभाव। ऐसे शुद्धभाववाले को पुण्यभाव होता है। शुद्धभाववाले को पुण्य के फलरूप से लक्ष्मी होती है और ऐसे शुद्धभाववाले को पुण्य के फलरूप से काम के साधन, काम के विशेष होते हैं। अर्थात् काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष, ये चारों ही शुद्धभाव की भूमिकावाले को मिलते हैं। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ धूल भी यह कैसे कहाँ थे ? यह कैसे की बात ही कहाँ थी ? यह तो धूल के अब कोई पाँच-पच्चीस लाख हो गये हों, वह पैसा है ? पहले तो चक्रवर्ती के पद, तीर्थकर के पद, इन्द्र के पद, बलदेव के पद, वासुदेव के पद, शलाका पुरुष दुनिया में श्लागनीय ऐसे पुरुषों का फल, वह सब शुद्धभाव की भूमिका में होता है। समझ में आया ? अब यहाँ पाँच-दस करोड़, धूल करोड़ लो न उसे है न, दो अरब चालीस करोड़। है न अभी ? उसमें क्या, सब दुःखी है, रंक है। वह तो पापानुबन्धी पुण्य है। पूर्व में कोई मिथ्यात्व में कोई शुभभाव हो गया हो, उसके फलरूप से एकेन्द्रिय में

से शुद्धभाव हो, वह मरकर बड़ा अरबोंपति हो। परन्तु उसमें क्या है? उस चीज़ में माल क्या है? समझ में आया?

यह तो आत्मा के भान की भूमिका में, आत्मा भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, वैसा आत्मा, उसे अन्तर आनन्द का धाम, अनन्त गुण का साम्राज्य आत्मा। आहाहा! अनन्त-अनन्त समृद्धि की ऋद्धि वहाँ पड़ी है, ऐसे आत्मा की सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति के शुद्धभाव प्रगट हों, उसे शुभभाव बीच में होता है, वह पुण्य है अर्थात् व्यवहार धर्म है। उसके फलरूप से लक्ष्मी मिले, उसके फलरूप से काम-भोग यह साधन बाहर के स्त्री-कुटुम्ब आदि के मिलें, तथापि धर्मी को वह काम और पैसा तथा पुण्य की रुचि धर्मी को नहीं होती। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : धर्मी को वह रुचि नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : रुचि नहीं, तथापि आये बिना रहे नहीं। त्यागे उसके आगे और माँगे उससे भागे, इतना अन्तर है। जिसे पुण्य और पुण्य के फल भोग और लक्ष्मी चाहिए नहीं, तथापि आत्मा के भान की भूमिका में ऐसा भाव आता है, इसलिए आते हैं, तथापि धर्मी को उनका रस नहीं है। पुण्य के भाव का रस नहीं है, पुण्य के फल में लक्ष्मी का रस नहीं, उसके भोग में भी ज्ञानी को रस नहीं होता। जहर देखे, वहाँ रस कैसा? आहाहा! ज्ञानी तो राग को काला नाग देखता है। चाहे तो पुण्य हो या अशुभ हो। आहाहा! शान्त-शान्त आत्मा का स्वरूप, उसमें वह राग तो शान्ति को जलाता है... समझ में आया? राग जलाता है। दृष्टान्त दिया है न दान अधिकार में। खुरचन-खुरचन का। खुरचन। शान्तिभाई! किसे कहे उकडिया अपने यह खिचड़ी-चावल।

मुमुक्षु : खिचड़ी में चिपक जाए उसे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह। पुराने लोग हों तो खबर तो हो न! भले किया न हो परन्तु खबर होती है। यह खिचड़ी और चावल खाये स्वयं। फिर वह खुरचन होती है। तवे से खुरचकर। पहले ऐसा था। घर के पास पत्थर की एक कुण्डी रखते थे। उस कुण्डी में डाले। इसलिए कोई कौवा आवे, कुत्ता आवे वह खावे। ऐसा था। हमारे पालेज में ऐसा था। हमारे दुकान थी, उसके पीछे एक वोरा रहते थे। बुढ़िया काकी कहलाती। वे काकी-काका पूरे गाँव में। वहाँ नीम थी, नीम के पास पत्थर की वह-कुण्डी थी। कोई

हो वहाँ डाले। इसलिए नीचे धूल न आवे। धूल हो तो उस खानेवाले को धूल न आवे। वह कुण्डी पत्थर की होती है। उसमें डालते थे खुरचन। उस खुरचन का दृष्टान्त है। दान अधिकार में, पद्मनन्दि पंचविंशति में। भाई! तूने पूर्व में कोई पुण्यभाव किया होगा, शुभभाव, वह वास्तव में तो खुरचन है। जली हुई है, जली हुई। जली हुई होती है न वह? खिचड़ी और चावल जले हुए हों, उसे खुरचन कहते हैं। तवे से उखाड़े। इसी प्रकार पूर्व में कोई तेरा शुभभाव आत्मा की शान्ति जलकर शुभभाव हुए। उसके फलरूप से पुण्य बँधा और उसके फलरूप से यह कुछ पाँच-पच्चीस लाख कूका। कूका अर्थात् यह धूल-धूल पत्थर। चिमनभाई! यहाँ तो उसकी ऐसी कीमत है।

मुमुक्षु : ... था कि प्रत्येक घर के आगे ऐसी कुण्डी रखते। उसमें (जूठन) डाले इसलिए गाय, ढोर, पशु (खा जाए)।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए कहा न। उसमें डाले। जूठन डाले। रोटी के टुकड़े-टुकड़े ऐसा डाले और गाय खाये।

यहाँ तो दूसरा कहना है। उस खुरचन के स्थान पर पूर्व में तेरे शुभभाव हुए हों, वह खुरचन की जली हुई खुरचन है, वह आत्मा का धर्म नहीं। पुण्यभाव, वह जला हुआ भाव है, उसके फलरूप से पुण्य और उसके फलरूप से यह धूल-बूल मिली हो... वहाँ तो जरा ऐसा कहा है। कठोर कहा वहाँ। उस पुण्य के फल में तुझे कुछ यह मिला हो और यदि अकेला खाये तो तू कौवे से गया बीता है। क्योंकि वह खुरचन कौवे को मिले, उस कौवा अकेला नहीं खाता। वह कौवा काँव.. काँव... काँव... पाँच-पन्द्रह को बुलाकर खाता है। कुत्ते ऐसे नहीं होते। कुत्ते सामने लड़ते हैं। कौवा है, वह तो उसका स्वभाव को... काँव.... काँव... करके खाता है, उसका स्वभाव ही ऐसा है। तो कहते हैं कि उसे खुरचन मिली, वह कौवा अकेला नहीं खाता, अधिक मिलकर खाते हैं। यह तुझे पुण्य के भावरूप से यह बाहर की धूल मिली, और अकेला तेरे भोग में, स्त्री में, पुत्र में, विवाह में खर्च कर डालेगा और राग की मन्दता करके धर्म के लिये सदुपयोग व्यवहार में नहीं करेगा (तो) कौवे से भी गया-बीता है। शान्तिभाई! आचार्यों को क्या है? वहाँ पैसे इकट्ठे करना है? कुछ मक्खन चुपड़ना है? प्रसन्न हो तो पैसे भरे, ऐसा नहीं है। आना हो, वह आवे और जाना हो, वह जाए।

यहाँ तो दूसरा कहना है। वह पुण्यभाव, वह जला हुआ भाव है; शुद्धभाव नहीं। तथापि धर्मी जीव को आत्मा के भान की भूमिका में तीर्थकरगोत्र बाँधे ऐसे पुण्यभाव उसे होते हैं। चक्रवर्तीपना, गणधरपना, बलदेवपना, इन्द्रपना—ऐसा पुण्य समकिति शुद्धभाववाले को होता है। इतना यहाँ वर्णन करना है कि शुद्धभाव में सब है जगत में। शुद्धभाव में लक्ष्मी, शुद्धभाव में भोग, शुद्धभाव में पुण्य और शुद्धभाव से मोक्ष। समझ में आया ?

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और अन्य जो कुछ व्यापार है... मन्त्र-तन्त्र आदि कोई भी है, यह कहते हैं। सब ही शुद्धभाव में समस्तरूप से स्थित है। शुद्धभाववाले को सब सिद्ध होते हैं। मन्त्र तो उसे साबित होता है। समझ में आया ? तन्त्र आदि साधन। शुद्धभाव जगत में प्रधान धर्मदशा है। आहाहा! समकित है, वह शुद्धभाव है। समकित है, वह शुद्धभाव है। वह आत्मा का ध्यान है। आत्मा को ध्यान द्वारा चार गति और मोक्ष मिलता है। क्या कहा यह ? ध्यान द्वारा ही मोक्ष और चार गति मिलती है। आर्त और रौद्रध्यान द्वारा यह नरक और पशु (गति) मिलती है। यह है ध्यान का फल। और स्वर्ग तथा लक्ष्मी आदि मिले, वह भी एक धर्मध्यान, व्यवहार पुण्य धर्म—पुण्य उसका वह फल है और ध्यान, आत्मा के शुद्ध का ध्यान। उस ध्यान से उसे मुक्ति मिलती है। ध्यान से मनुष्य, ध्यान से देव, ध्यान से नारकी, ध्यान से पशु और ध्यान से सिद्ध। समझ में आया ? ध्यान है न ? इन पाप के परिणाम में एकाग्र होता है या नहीं ? कमाने में, भोग में एकाकार हो जाए, वह बुरा-खोटा ध्यान है।

मुमुक्षु : एकाकार...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... बदले। शुद्ध हो तो उसे सब खबर पड़े। शुद्ध बिना भान शुद्ध का कहाँ है ठिकाना ?

यहाँ तो कहते हैं, ऐसे शुभभाव अज्ञानी को होते हैं। परन्तु जैसे शुभभाव धर्मी को होते हैं, वैसे उसे नहीं होते। अपनी पहले आ गया है। चक्रवर्ती, तीर्थकर, गणधरों को... वह पद आ गया है। चक्रहर। १६१। चक्रवर्ती, राम, केशव, सुरवर, जिन, जिनेश्वर, गणधर आदि सुख, वे सब शुद्धभाववाले को पुण्यभाव में से प्राप्त होते हैं। आहाहा! समझ में आया ? धर्मात्मा आत्मा का जो शुद्धभाव प्रगट करके जो धर्म हुआ और उसे

जो पुण्य बँधे, वह जहाँ अवतरित हो, वहाँ उसे यह जलसा करके मान लेना, ऐसा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। उसे तो दुनिया मान देने आवे, ऐसा ही पुण्य बाँधकर आया होता है। जहाँ वह धर्मात्मा जन्मे वहाँ समुद्र के किनारे, समुद्र में मछलियाँ पकें, उन्हें करोड़ों-अरबों के मोती पकते हैं। ऐसा यह पुण्य लेकर धर्म की भूमिका में आत्मा के भान में जहाँ वह ऐसा करके जन्मा हो। यह... समुद्र में यह मछलियाँ मोती पके। क्या कहते हैं यह? आसोज महीने के? स्वाति नक्षत्र का पानी ऊपर पड़े वहाँ मोती पके। ऐसा धर्मात्मा जहाँ जन्मे, तब से उसका पुण्य ही इतना आया होता है। और आसपास के पत्थर के दल हों, वे नीलमणि हो जाते हैं। पत्थर होता है न? यह क्या कहलाता है तुम्हारे? टाईल्स। उस टाईल्स के पत्थर निकले, वहाँ पुण्यवन्त धर्मी जीव जो पुण्य लेकर आया हो, उसे आसपास के पत्थर के दल नीलम हो जायें, ऐसा पुण्य शुद्धभाववाले को होता है, ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया? बाकी तो सब रंक जैसे पुण्य हैं। पापानुबन्धी पुण्य। आहाहा!

धर्म अर्थात् शुभभाव; अर्थ अर्थात् पैसा; काम अर्थात् भोग; मोक्ष अर्थात् पूर्ण पवित्रता। और अन्य जो कुछ व्यापार है, वह सब ही शुद्धभाव में समस्तरूप से स्थित है। शुद्धभाव में ही यह सब होता है। शुद्धभाव के अतिरिक्त ऐसी उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ :- पुरुष के चार प्रयोजन प्रधान हैं - मुख्य चार प्रयोजन हैं। एक तो पुण्य, दूसरा लक्ष्मी, तीसरा काम, चौथा मोक्ष। और अन्य भी जो कुछ मन्त्रसाधनादिक व्यापार है... मन्त्र आदि। वे आत्मा के शुद्ध चैतन्यपरिणामस्वरूप भाव में स्थित हैं। आहाहा! आत्मा के शुद्ध चैतन्य परिणामस्वरूप भाव। देखो! ज्ञान की मूर्ति प्रभु, चैतन्य का नूर। चैतन्य का नूर ऐसा आत्मा, उसके चैतन्य की निर्मल अवस्था का परिणमन ऐसे भाव में यह सब होते हैं। समझ में आया? देखो! यह शुद्धभाव की प्रशंसा करते हैं। अधिकार शुद्धभाव का है न! भाव बतलाना है न! पूरा करते हैं।

आत्मा के शुद्ध चैतन्यपरिणामस्वरूप भाव... अर्थात् पर्याय में इसके कारण सब होता है। समझ में आया? चक्रवर्ती के पद, गणधर के पद, तीर्थकर के पद ये सब समकित्ती जो शुद्धभाव में आया होता है, पुण्य-पाप के परिणाम से रहित शुद्धभाव

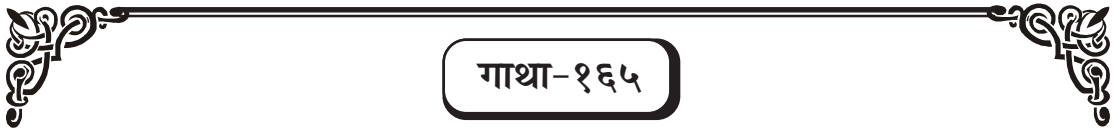
जिसे प्रगट हुआ है, ऐसे जीव को ऐसे सब ऊँचे पद होते हैं। अज्ञानी को ऐसे पद नहीं होते।

मुमुक्षु : शुद्ध भावना भाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। भाषा तो बहुत है। भावे केवलज्ञान, भावे जिनवर पूजिये। ऐसा है या नहीं? भावे जिनवर पूजिये। यह उसमें है संस्कृत में। संस्कृत में यह श्लोक है। 'न देवो विद्यते भावे सुविज्यते देव तद्भावो विकारणं' लो! ... कोई पत्थर में कमल पकते होंगे? पत्थर में भले पानी अमृत का सींचे, इससे कहीं कमल होते हैं? इसी प्रकार आत्मा के भान बिना, शुद्धभाव बिना कुछ नहीं होता। ऐसा कहते हैं। वापस कहते हैं ... उस लकड़ी में भगवान नहीं। उस प्रतिमा में भगवान नहीं। समझ में आया? ... मिट्टी के पुतले में भगवान नहीं। भगवान तो यहाँ है। समझ में आया? ... अन्दर शुभभाव... उसमें अर्थ किया है। किसमें किया है? देखो! उसमें अर्थ किया है।

'देव काच की बनायी हुई मूर्ति में नहीं तथा संगमरमर पाषाण या मिट्टी की मूर्ति में भी देव नहीं। देव तो भाव है।' यह आत्मा का शुद्धभाव, वह देव है। आहाहा! जिसकी दिव्यशक्ति शुद्धभाव। भगवान स्वयं शुद्ध है और उसे प्रगट हुई दशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शुद्धता, धर्म की दशा प्रगटे, उसे देव कहा जाता है। इसलिए भाव ही कारण है। पश्चात् उसने लिखा—'भावे जिनवर पूजिये, भावे दीजे दान, भावे भावना भाविये, भावे केवलज्ञान।' यह शुद्धभाव की बात है। समझ में आया? किसे खबर क्या होगा? शान्तिभाई! बात तो ऐसी है भाई! लोग ऐसे के ऐसे भाषा बोल जाते हैं, रट जाते हैं। यहाँ लिखा है। पुस्तक नहीं मिलती। निवृत्ति नहीं और निवृत्ति हो तो फिर बाहर का सुना हो यह। करो भक्ति, करो पूजा, करो यात्रा तुम्हें धर्म होगा। यहाँ कहते हैं कि वह तो पुण्यभाव है। पाप से बचने के लिये ऐसा पुण्यभाव होता है। परन्तु वह धर्म नहीं है। समझ में आया? उसमें यह दृष्टान्त है। उसका अर्थ किया है। ... संस्कृत है। भाव ही कारण है। शुद्धभाव, हों! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव तो शुभ है। वह धर्म नहीं है; वह तो पुण्य है। उससे रहित आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति स्वरूप में, अन्तर शुद्धभाव सन्मुख की एकाग्रता, उस भाव में सब है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?कहो, समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, शुद्धभाव से सब सिद्धि है, इस प्रकार संक्षेप से कहना जानो, अधिक क्या कहें? क्या कहें, कहते हैं। तेरे शुभ और अशुभभाव, वे तो चार गति के देनेवाले हैं। गति संसार है। चाहे जितना दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, जप, तप (करे), उन सबका फल संसार है। समझ में आया? आहाहा! उससे रहित आत्मा सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप आत्मा का, उसका अन्तर ध्यान करके जो शुद्धता प्रगट होती है, उसमें सब है। पूरा जैनशासन उसमें आता है। उसे जैनशासन कहा जाता है, लो! आहाहा! कहो, समझ में आया? अन्तिम।



गाथा-१६५

आगे इस भावपाहुड को पूर्ण करते हैं, इसके पढ़ने सुनने व भाव करने का (चिन्तन का) उपदेश करते हैं -

इय भावपाहुडमिणं सर्व्वंबुद्धेहि देसियं सम्मं।

जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ अविचलं ठाणं ॥१६५॥

इति भावप्राभृतमिदं सर्व्वबुद्धैः देशितं सम्यक्।

यः पठति शृणोति भावयति सः प्राप्नोति अविचलं स्थानम् ॥१६५॥

सर्वज्ञ द्वारा प्ररूपित इस भाव-पाहुड शास्त्र को।

एकाग्र हो जो सुने भावे पढ़े पावे मोक्ष को ॥१६५॥

अर्थ - इस प्रकार इस भावपाहुड का सर्व्वबुद्ध-सर्वज्ञदेव ने उपदेश दिया है, इसको जो भव्यजीव सम्यक् प्रकार से पढ़ते हैं, सुनते हैं और इसका चिन्तन करते हैं, वे शाश्वत सुख के स्थान मोक्ष को पाते हैं।

भावार्थ - यह भावपाहुड ग्रन्थ सर्वज्ञ की परम्परा से अर्थ लेकर आचार्य ने कहा है, इसलिए सर्वज्ञ का ही उपदेश है, केवल छद्मस्थ का ही कहा हुआ नहीं है, इसलिए आचार्य ने अपना कर्तव्य प्रधान कर नहीं कहा है। इसके पढ़ने सुनने का फल मोक्ष

कहा, वह युक्त ही है, शुद्धभाव से मोक्ष होता है और इसके पढ़ने से शुद्धभाव होते हैं। (नोंध - यहाँ स्वाश्रयी निश्चय में शुद्धता करे तो निमित्त में शास्त्र पठनादि में व्यवहार से निमित्त कारण-परम्परा कारण कहा जाय। अनुपचार=निश्चय बिना उपचार=व्यवहार कैसा ?) इस प्रकार इसका पढ़ना, सुनना, धारणा और भावना करना परम्परा मोक्ष का कारण है।

इसलिए हे भव्यजीवों ! इस भावपाहुड को पढ़ो, सुनो, सुनाओ, भावो और निरन्तर अभ्यास करो जिससे भाव शुद्ध हों और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पूर्णता को पाकर मोक्ष को प्राप्त करो तथा वहाँ परमानन्दरूप शाश्वतसुख को भोगो।

इस प्रकार श्री कुन्दकुन्दनामक आचार्य ने भावपाहुडग्रन्थ पूर्ण किया।

इसका संक्षेप ऐसे है - जीवनामक वस्तु का एक असाधारण शुद्ध अविनाशी चेतना स्वभाव है। इसकी शुद्ध, अशुद्ध दो परिणति हैं। शुद्ध दर्शन-ज्ञानोपयोगरूप परिणमना 'शुद्धपरिणति' है, इसको शुद्धभाव कहते हैं। कर्म के निमित्त से राग-द्वेष-मोहादिक विभावरूप परिणमना 'अशुद्ध परिणति' है, इसको अशुद्धभाव कहते हैं। कर्म का निमित्त अनादि से है, इसलिए अशुद्धभावरूप अनादि ही से परिणमन कर रहा है। इस भाव से शुभ-अशुभ कर्म का बन्ध होता है, इस बन्ध के उदय से फिर शुभ या अशुभ भावरूप (अशुद्धभावरूप) परिणमन करता है, इस प्रकार अनादि सन्तान चला आता है। जब इष्टदेवतादिक की भक्ति, जीवों की दया, उपकार मन्दकषायरूप परिणमन करता है, तब तो शुभकर्म का बन्ध करता है। इसके निमित्त से देवादिक पर्याय पाकर कुछ सुखी होता है। जब विषय-कषाय तीव्र परिणामरूप परिणमन करता है, तब पाप का बन्ध करता है, इसके उदय से नरकादि पर्याय पाकर दुःखी होता है।

इस प्रकार संसार में अशुद्धभाव से अनादिकाल से यह जीव भ्रमण करता है। जब कोई काल ऐसा आवे जिसमें जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ वीतराग के उपदेश की प्राप्ति हो और उसका श्रद्धान रुचि प्रतीति आचरण करे तब स्व और पर का भेदज्ञान करके शुद्ध-अशुद्ध भाव का स्वरूप जानकर अपने हित-अहित का श्रद्धान रुचि प्रतीति आचरण हो तब शुद्धदर्शनज्ञानमयी शुद्ध चेतना परिणमन को तो 'हित' जाने, इसका फल संसार की निवृत्ति है, इसको जाने और अशुद्धभाव का फल संसार है, इसको जाने, तब शुद्धभाव के ग्रहण का और अशुद्धभाव के त्याग का उपाय करे। उपाय का स्वरूप जैसे सर्वज्ञ वीतराग के आगम में कहा है, वैसे करे।

इसका स्वरूप निश्चयव्यवहारात्मक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग कहा है। शुद्धस्वरूप के श्रद्धान ज्ञान चारित्र को 'निश्चय' कहा है और जिनदेव सर्वज्ञ वीतराग तथा उसके वचन और उन वचनों के अनुसार प्रवर्तनवाले मुनि श्रावक की भक्ति वन्दना विनय वैयावृत्त्य करना 'व्यवहार' है, क्योंकि यह मोक्षमार्ग में प्रवर्तने को उपकारी है। उपकारी का उपकार मानना न्याय है, उपकार लोपना अन्याय है। स्वरूप के साधक अहिंसा आदि महाव्रत तथा रत्नत्रयरूप प्रवृत्ति, समिति, गुप्तिरूप प्रवर्तना और इनमें दोष लगने पर अपनी निन्दा गर्हादिक करना, गुरुओं का दिया हुआ प्रायश्चित्त लेना, शक्ति के अनुसार तप करना, परिषह सहना, दशलक्षणधर्म में प्रवर्तना इत्यादि शुद्धात्मा के अनुकूल क्रियारूप प्रवर्तना, इनमें कुछ राग का अंश रहता है, तब तक शुभकर्म का बन्ध होता है तो भी वह प्रधान नहीं है, क्योंकि इनमें प्रवर्तनेवाले के शुभकर्म के फल की इच्छा नहीं है, इसलिए अबन्धतुल्य है, इत्यादि प्रवृत्ति आगमोक्त 'व्यवहार मोक्षमार्ग' है। इसमें प्रवृत्तिरूप परिणाम हैं तो भी निवृत्तिप्रधान है, इसलिए निश्चय मोक्षमार्ग में विरोध नहीं है।

इस प्रकार निश्चय-व्यवहारस्वरूप मोक्षमार्ग का संक्षेप है। इसी को 'शुद्धभाव' कहा है। इसमें भी सम्यग्दर्शन को प्रधान कहा है, क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना सब व्यवहार मोक्ष का कारण नहीं है और सम्यग्दर्शन के व्यवहार में जिनदेव की भक्ति प्रधान है, यह सम्यग्दर्शन को बताने के लिए मुख्य चिह्न है, इसलिए जिनभक्ति निरन्तर करना और जिन आज्ञा मानकर आगमोक्त मार्ग में प्रवर्तना यह श्रीगुरु का उपदेश है। अन्य जिन-आज्ञा सिवाय सब कुमार्ग हैं, उनका प्रसंग छोड़ना, इस प्रकार करने से आत्मकल्याण होता है।

(छप्पय)

जीव सदा चिदभाव एक अविनाशी धारै ।

कर्म निमित्तकूं पाय अशुद्धभावनि विस्तारै ॥

१. 'शुद्धभाव' का निरूपण दो प्रकार से किया गया है, जैसे 'मोक्षमार्ग दो नहीं हैं' किन्तु उसका निरूपण दो प्रकार का है, इसीप्रकार शुद्धभाव को जहाँ दो प्रकार के कहे हैं, वहाँ निश्चयनय से और व्यवहारनय से कहा है - ऐसा समझना चाहिए। निश्चय सम्यग्दर्शनादि है उसे ही व्य. मान्य है और उसे ही निरतिचार व्यवहार रत्नत्रयादिक में व्यवहार से 'शुद्धत्व' अथवा 'शुद्ध संप्रयोगत्व' का आरोप आता है, जिसको व्यवहार में 'शुद्धभाव' कहा है, उसी को निश्चय अपेक्षा अशुद्ध कहा है-विरुद्ध कहा है, किन्तु व्यवहारनय से व्यवहारविरुद्ध नहीं है।

कर्म शुभाशुभ बांधि उदै भरमै संसारै ।
 पावै दुःख अनंत च्यारि गतिमें डुलि सारै ॥
 सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब ।
 निजशुद्धभाव धरि कर्महरि लहै मोक्ष भरमै न तब ॥
 (दोहा)

मंगलमय परमात्मा, शुद्धभाव अविकार ।
 नमूं पाय पाऊं स्वपद, जाचूं यहै करार ॥२॥

इति श्री कुन्दकुन्दस्वामि विरचित भावप्राभृत की जयपुरनिवासी पण्डित जयचन्द्रजी
 छाबड़ाकृत देशभाषामय वचनिका समाप्त ॥५॥

गाथा-१६५ पर प्रवचन

आगे इस भावपाहुड़ को पूर्ण करते हुए इसके पढ़ने-सुनने व भावना करने का
 (चिन्तन का) उपदेश करते हैं :- अन्तिम ।

इय भावपाहुडमिणं सव्वंबुद्धेहि देसियं सम्मं ।
 जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ अविचलं ठाणं ॥१६५॥

‘भावइ सो पावइ अविचलं ठाणं ।’

अर्थ :- इस प्रकार इस भावपाहुड़ का सर्वबुद्ध-सर्वज्ञदेव ने... ऐसा लिया ।
 वृद्ध नहीं चाहिए । बुद्ध । सर्व बुद्ध अर्थात् ज्ञानी । सर्वज्ञ परमात्मा । अनन्त तीर्थकर,
 अनन्त केवली, उन्हें सर्व बुद्ध जो सर्वज्ञदेव, उन्होंने उपदेश दिया है,... कहते हैं कि यह
 कथन कहीं मेरा नहीं है । अनन्त तीर्थकर इस प्रमाण कहते आये हैं । अनन्त-अनन्त
 भगवान हो गये, (वर्तमान में) महाविदेह में विराजते हैं; भविष्य में अनन्त भगवान
 तीर्थकर केवली होंगे । यह उनका कथन है, कहते हैं । समझ में आया ? पाठ में क्या है ?
 ‘सव्वंबुद्धेहि’ ऐसा है । जितने केवली तीर्थकर हुए, उन्होंने यह शुद्धभाव का अधिकार
 वर्णन किया था । आहाहा ! यह १६५ गाथा का वर्णन है । बड़े में बड़ा यही है ।

सर्वज्ञदेव ने उपदेश दिया है,... परमात्मा केवली प्रभु, उन्होंने यह भावपाहुड़ की

व्याख्या उन्होंने की थी। उनका किया हुआ है। इसको जो भव्यजीव सम्यक् प्रकार पढ़ते हैं,... सम्यक् प्रकार से पढ़े। ऐसा। समझ में आया? 'सर्व्वंबुद्धेहि देसियं सम्मं' यह 'सम्मं जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ' जिस प्रकार से कहना है, उस प्रकार से यदि सुने, पढ़े और भावे तो 'पावइ अविचलं ठाणं' मोक्षपद को पावे। अविचल-टले नहीं, जहाँ गति प्राप्त हुई मोक्ष की, उससे टलना नहीं, ऐसी दशा को प्राप्त होते हैं। कहो, समझ में आया?

पढ़ते हैं... अर्थात् पढ़े। सुनते हैं... अर्थात् सुने। स्वयं पढ़े। दूसरे से सुने और भावे और इसका चिन्तन करते हैं, वे शाश्वत सुख के स्थान मोक्ष को पाते हैं। लो! पूर्णानन्द की प्राप्तिरूपी मुक्ति, जिसमें सादि अनन्त-अनन्त समाधि शान्ति, ऐसी जो मुक्तदशा को वे पाते हैं।

भावार्थ :- यह भावपाहुड़ ग्रन्थ सर्वज्ञ की परम्परा से... सर्वज्ञ की परम्परा से। अनन्त तीर्थकर हुए, उनकी परम्परा से अर्थ लेकर आचार्य ने कहा है,... उसमें से अर्थ लेकर आचार्य ने कहा है। अनन्त तीर्थकरों ने परम्परा से कहा, उसका अर्थ लेकर यह कहा है। मेरे घर का है नहीं। मैंने अकेले ने कहा है, ऐसा नहीं। अनन्त तीर्थकरों ने कहा, वह मैं कहता हूँ। समझ में आया? परम्परा से... ओहोहो! देखो न! श्रद्धा का जोर कितना बताते हैं! अनन्त सर्वज्ञ हो गये, उनकी परम्परा में जो भगवान सर्वज्ञ ने कहा था, उसमें से अर्थ लेकर यह आचार्य ने कहा है। मेरे घर की बात है नहीं।

इसलिए सर्वज्ञ का ही उपदेश है,... भावपाहुड़ सर्वज्ञ से ही उपदेशित है। भावपाहुड़ का भाव सर्वज्ञ भगवान ने ही कहा हुआ है। केवल छद्मस्थ का ही कहा हुआ नहीं है,... अल्पज्ञानी अकेले छद्मस्थ का कहा हुआ नहीं है। इसलिए आचार्य ने अपना कर्तव्य प्रधानकर नहीं कहा है। मुख्य करके यह मेरा काम नहीं है, ऐसा। मुख्य तो भगवान सर्वज्ञ हुए, उन्होंने जो कहा, वह कहता हूँ। समझ में आया? तेरा आत्मा, भाई! शुद्ध आनन्द का धाम है। परम पवित्र का सागर है। ऐसे स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान अन्तर से करे, उसे शुद्धभाव होता है और उस शुद्धभाव से मुक्ति मिलती है। ऐसा अनन्त सर्वज्ञों ने कहा, उसे मैं कहता हूँ। समझ में आया? यह तो भगवान

के पास गये थे। महाविदेह में सीमन्धर प्रभु के पास गये थे। है इसमें पीछे। संस्कृत में है। संस्कृत में है। अन्त में पीछे प्रत्येक में संस्कृत में है। श्लोक पूरा हो, पश्चात् संस्कृत में लिखा है।

‘इति श्री पद्मनन्दी...’ इनका—कुन्दकुन्दाचार्य का नाम था। कुन्दकुन्दाचार्य, वक्रग्रीव, ऐलाचार्य, गृद्धपिच्छ ऐसे पाँच नाम थे। यह आचार्य नाम ... पंच, ... पाँच से शोभित। ‘श्री सीमन्धरस्वामी सम्यक् ...’ सीमन्धर भगवान के पास गये थे। यह संस्कृत में है। श्री सीमन्धरस्वामी। परमात्मा। महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर प्रभु विराजते हैं। केवली वीतरागी तीर्थकर। वे सम्बोधक वहाँ जाकर बोध पाये थे। समझ में आया? ... भव्यजन के लिये ‘श्री जिनचन्द्रसूरी भट्टारक...’ इनके गुरु का नाम दिया। दिगम्बर मुनि जिनचन्द्रसूरी भट्टारक थे। उनके शिष्य कुन्दकुन्दाचार्य। ‘कलिकाल सर्वज्ञेन...’ यह कलिकाल के तो सर्वज्ञ हैं कुन्दकुन्दाचार्य। समझ में आया? ... उनकी अपनी बात की है। यह तो सीमन्धर भगवान के पास गये थे। सम्बोधित। वहाँ आगे सुना भगवान के पास, श्रुतकेवलियों के पास सुना। धर्मात्मा मुनि तो थे, आचार्य तो थे। विशेष भगवान के समीप में बहुत निर्मलता का ज्ञान प्रगट हुआ। वहाँ से आकर यह शास्त्र रचे हैं। आहाहा! क्या करे? समझ में आया? प्रत्येक ग्रन्थ पूरा होने पर यह है।

सर्वज्ञ का ही उपदेश है,... यह ऐसा कहते हैं। बहुत-बहुत बातें। क्या है यह? भावपाहुड़। समझ में आया? आचार्य ने अपना कर्तव्य प्रधानकर नहीं कहा है। मुख्य करके नहीं कहा। है तो सही। इसके पढ़ने-सुनने का फल मोक्ष कहा,... ऐसा भगवान आत्मा, पूर्ण शुद्ध प्रभु, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-शुद्धता जो प्रगटे, उसके फलरूप से इसके पढ़ने-सुनने का फल मोक्ष कहा, वह युक्त ही है। शुद्धभाव से मोक्ष होता है,... लो! शुद्धभाव, यह पुण्य-पाप के शुभ-अशुभभाव से रहित। आत्मा की पवित्रता का जो भाव प्रगट होता है, उससे उसे मुक्ति मिलती है।

और इसके पढ़ने से शुद्धभाव होते हैं। लो, निमित्त से कथन है न। इस भावपाहुड़ को समझे, पढ़े, पढ़े, सुने तो शुद्धभाव होता है। उसे खबर पड़े कि अहो! चैतन्य पवित्र अनन्त गुण का धाम, उसमें अन्तर में जाना, उसे स्पर्श करना, इसका नाम शुद्धभाव है।

बाकी सब परद्रव्यानुसारी शुभाशुभभाव हैं। चाहे तो भगवान की पूजा करे, यात्रा करे या भगवान का स्मरण करे, सब पुण्यभाव है, धर्मभाव नहीं। आहाहा! उसे ही सब सर्वस्व अभी तो मान लिया गया है। यह पूजा करो, यह करो, कर्म दहन की पूजा करो, शान्ति, जिनेश्वर, सिद्धचक्र सब परद्रव्य के अनुसार का शुभ विकल्प करता हो तो। और उसमें वापस धर्म माने तो मिथ्यात्वसहित का पुण्य जरा पुण्य बँधे इसे। आहाहा! समझ में आया ?

परम्परा मोक्ष का कारण है। ऐसा। ऐसा सुनना वह तो परलक्ष्यी ज्ञान है, परन्तु इसमें कहना चाहते हैं यह कि अन्तर चैतन्यस्वभाव में जा। भगवान कहते हैं कि हमको भी भूल जा। आहाहा! और तेरे भगवान के सन्मुख देख और उसे स्मरण कर। समझ में आया? ऐसा अनन्त तीर्थकर, अनन्त केवलियों ने यह कहा है कि यह जो सुने, उसे शुद्धभाव होता है। ऐसी यहाँ सन्धि की है न? होता ही है। **इस प्रकार पढ़ना, सुनना, धारण और भावना करना परम्परा मोक्ष का कारण है।** धारना कि यह क्या कहते हैं। ऐसा का ऐसा सुनकर इस कान से निकाल डाले, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग!

शरीर तो रजकण है, धूल। 'रजकण तेरे भटकेंगे ज्यों भटकती रेत; फिर नरतन पाये कहाँ चेत चेत नर चेत।' आहाहा! वह मोरबी का गाता था। नहीं? वह छोटा लड़का बहुत गाता था। उसे अतिरेक हो गया। जरा अच्छा कण्ठ और वह हुआ। मुसलमान का लड़का था। यह ... मुसलमान था। जैन के गीत बहुत गाता। छोटा लड़का था, बारह वर्ष का। बारह-तेरह वर्ष का। ऐसा कण्ठ। पाँच-पाँच हजार लोगों को डोला दे एक बार। ऐसा कण्ठ। वह बोलता था 'रजकण रजकण तेरे भटकेंगे...' कण्ठ मीठा था। 'अरु ज्यों भटकती रेत।' भाई नहीं पहिचानते होंगे। वहाँ है। नन्दलालभाई मोरबी में मुसलमान हैं।

मुमुक्षु : ... के लड़के।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... के लड़के। वह विद्याबहिन नहीं? हिम्मतभाई की बहिन। उसका ... भी ऐसा गाता। 'फिर नरतन पाये कहाँ चेत, चेत, नर चेत।' यह मुसलमान के लड़के। उसके पिता के पिता यह गाते थे। वह परम्परा आयी है। यह सब सीखे।

उसमें से पैसा मिले। धन्धा। धन्धा, अरे! गाने में क्या रहा? वह तो कण्ठ की ध्वनि जड़ की है। वह आत्मा की नहीं, आत्मा ध्वनि कर नहीं सकता। आहाहा! उसकी ध्वनि तो शुद्धता का प्रगट भाव हो, वह उसकी ध्वनि है। आहाहा!

कहते हैं, उससे परम्परा मोक्ष का कारण है। इस भावपाहुड़ को पढ़ना, सुनना, धारणा और भावना करना। अन्तर्मुख की भावना चैतन्य प्रभु, पूर्ण अनन्त साम्राज्य शान्ति का राज लेकर अन्दर पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? विकृत दशा जो पुण्य-पाप की है, उसके पीछे है, यह भगवान अन्दर। उसके अन्दर में एकाग्र होने पर उसे शुद्धता प्रगट होती है, उसकी भावना करना। इसलिए हे भव्यजीवो! इस भावपाहुड़ को पढ़ो,... ऐसी शिक्षा करते हैं। सुनो, सुनाओ... दूसरे को सुनाओ कि भगवान मार्ग ऐसा कहते हैं। भावो... बारम्बार भावना करो। चैतन्य के स्वभाव के सन्मुख होने की बारम्बार एकाग्रता करो। तब शुद्धता होगी। नहीं तो शुद्धता होगी नहीं। निरन्तर अभ्यास करो। लो! निरन्तर। लगनी तो लगा, कहते हैं। संसार की कैसे निरन्तर लगनी लगती है? धूल की। पाँच-दस लाख जहाँ मिले वहाँ यह कुटुम्ब ... परगाँव अकेला भटकता है। माँ-बाप यहाँ पड़े हों, कुटुम्ब पड़ा हो, ऐई! परदेश में पच्चीस-पचास... अफ्रीका में देखा!

मुमुक्षु : परन्तु अब सब निकल गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वहाँ ले लिया अब तो क्या करे? विराणी का ले लिया सब बहुत विराणी दुकानें। विराणी की दुकानें थी न, वहाँ अफ्रीका में। करोड़ोंपति। रामजीभाई नहीं? दौलतजी, रामजी विराणी के पुत्र। उनका बहुत ले लिया। ले लिया। पूरी दुकानें ले ली। और भाई यह नानजीभाई नहीं? नानजी कालीदास, उसके ... पोरबन्दर आठ-दस करोड़ कहलाते थे। एक अरब रुपये। माल, सामान सब सरकार के आधीन हो गया। अब तुम्हारा नहीं। तुम्हारा नहीं। तुम कहाँ यहाँ लाये थे कुछ? चले जाओ। पुण्य बदला। अरबों का, हों! सेठ! एक अरब का कहते थे। मनसुखभाई। मनसुखभाई के मकान के सामने उनका मकान है। एक अरब कहा वहाँ। सरकार ने अधिकार में कर लिया। यहाँ से तुम्हारे देश में नहीं ले जाया जाएगा। यह चीज़ यहाँ से कमायी और यहाँ

की चीज़ है। लो, हो गया। मेहनत कर-करके मर गये। वे भी मर गये, गुजर गये। नानजीभाई लोहाणा गुजर गये। आते थे। यहाँ आते थे। व्याख्यान में आवे, वहाँ भी व्याख्यान में आवे। आवे परन्तु सब बाहर का अभिमान मार डाले। बड़ी महिमा दे कि ओहोहो! सेठ साहेब तो कोई ईश्वर के अंश हैं। यह राजा को ऐसा कहते हैं न? राजा को ऐसा कहे—ईश्वर के अंश हैं ये। धूल भी नहीं अब, सुन न! वह नरकगामी है। यहाँ से मरकर राजा-बाजा नरक में जानेवाला है। आहाहा! देखो न, जगत से उल्टी बात है भाई यह तो। खम्मा-खम्मा कहते हों। छह-छह मोटरें, ५०-५० लाख के बड़े बँगलें हों ऐसे। वह भाई पोढ़े, जाये नीचे। पाप के भाव किये हैं। पुण्य का ठिकाना नहीं। धर्म तो किसका होगा? आहाहा!

कहते हैं कि यह भावपाहुड़, जिसमें शुद्धता की प्रधानता के कथन हैं, उसका निरन्तर अभ्यास करो। जिससे भाव शुद्ध हों और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य की पूर्णता को पाकर... देखो! मोक्ष को प्राप्त करो तथा वहाँ परमानन्दरूप शाश्वत सुख को भोगो। आहाहा! यह दुःख... दुःख... दुःख... है संसार में पूरा। अग्नि से जल-सुलग रहे हैं सब। पैसेवाले, निर्धन, राजा। नहीं सुखी देवता देवलोये। आया था न? आता है न? देव के देवता सुखी नहीं, पृथ्वी के राजा सुखी नहीं। सुखी आत्मा के ध्यान का ज्ञान जिसने किया, आत्मा की शान्ति प्रगट की, वह एक ही सुखी, बाकी सब दुःखी हैं। एगन्त सुखी मुनि वीतरागी। परन्तु वीतरागी मुनि, हों! बाहर के वस्त्र बदले और साधु, वे नहीं।

मुमुक्षु : वे वीतरागी...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी वीतरागी नहीं। वीतराग कहाँ से लाया? अभी तो देह की क्रिया मैं करता हूँ, राग की क्रिया मेरी है, (ऐसा माननेवाले) मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! धीरुभाई! कठिन भारी। वीतराग का मार्ग कड़क और कठिन। सर्वज्ञ का मार्ग है। जिसके फलरूप से परमात्मा सिद्ध होते हैं, वह मार्ग कोई अलौकिक मार्ग है। परमानन्द शाश्वत् सुख को भोगो। लो!

इस प्रकार श्री कुन्दकुन्द नामक आचार्य ने भावपाहुड़ ग्रन्थ पूर्ण किया। इसका

संक्षेप ऐसे है - पण्डितजी स्वयं करते हैं अब थोड़ा। पूरे भावपाहुड़ का। जीव नामक वस्तु का... यह भगवान आत्मा एक वस्तु है, ऐसा कहते हैं। जैसे यह जड़ वस्तु है शरीर, वाणी यह सब। वैसे आत्मा भी एक वस्तु है, पदार्थ है, अस्ति है, सत्ता है। वह जीव नामक वस्तु का एक असाधारण शुद्ध अविनाशी चेतना स्वभाव है। देखो! त्रिकाली। जीव नामक वस्तु का एक असाधारण... एक ही गुण कि जो दूसरे में है नहीं। शुद्ध अविनाशी चेतना स्वभाव है। आहाहा! जानने-देखने का स्वभाव। भगवान आत्मा अविनाशी ऐसा उसका शुद्ध चेतनास्वभाव भी अविनाशी।

एक असाधारण... अर्थात् दूसरा नहीं ऐसा। दूसरे में नहीं और दूसरा नहीं ऐसा। शुद्ध अविनाशी चेतना स्वभाव है। आत्मा में तो जानने-देखने का अनादि-अनन्त स्वभाव है, कहते हैं। अनादि-अनन्त चेतना अविनाशी स्वभाव है। इसकी शुद्ध, अशुद्ध दो परिणति हैं। यह त्रिकाल जो शुद्ध अविनाशी चेतनास्वभाव, उसकी वर्तमान दशा के दो प्रकार। वर्तमान दशा। तीन प्रकार हो गये। एक आत्मा वस्तु त्रिकाली, उसका शुद्ध चेतनास्वभाव त्रिकाली उसे गुण कहा। पहला द्रव्य कहा। अब उसकी परिणति अर्थात् पर्याय-अवस्था कहेंगे। द्रव्य-गुण और पर्याय साबित करते हैं। जीववस्तु त्रिकाली, उसका एक असाधारण अविनाशी चेतनास्वभाव। वह अविनाशी, वह भी त्रिकाली। उसकी शुद्ध और अशुद्ध दो अवस्था / हालत / वर्तमान दशा। एक शुद्धदशा, एक अशुद्धदशा।

शुद्ध दर्शन-ज्ञानोपयोगरूप परिणमना शुद्ध परिणति है, इसको शुद्धभाव कहते हैं। यह व्याख्या की। शुद्ध दर्शन-ज्ञानोपयोगरूप परिणमना... आत्मा के शुद्धभाव में दर्शन-ज्ञान की जो शुद्ध परिणति से परिणमना, रागरूप नहीं होना, पुण्यरूप न होकर, स्वभाव की शुद्धतारूप होना, वह शुद्धपरिणति। परिणति के दो भेद कहे थे न ऊपर? शुद्ध और अशुद्ध अवस्था। उसमें शुद्ध अवस्था यह। वस्तु जीव अनादि-अनन्त पदार्थ, उसका शुद्ध चेतनास्वभाव अनादि-अविनाशी। उसकी वर्तमान दशा दो प्रकार की— एक शुद्धदशा, एक अशुद्धदशा। शुद्धदशा अर्थात्? ज्ञान और दर्शन का जो भाव उपयोग त्रिकाली, उसका परिणमन शुद्ध का होना, वह शुद्ध परिणतिरूपी शुद्धभाव। शुद्ध अवस्थारूपी शुद्धभाव। वह शुद्धदशारूपी शुद्धभाव। भाषा सुनी न हो अभी, यह क्या

शुद्ध और शुभ ? परिणति और भाव । वीतराग मार्ग का ऐकड़ा है, यह अभी तो ।

कहते हैं, शुद्ध दर्शन-ज्ञानोपयोगरूप... जो दर्शन और ज्ञान है शुद्ध, उसका उपयोग अर्थात् व्यापार । उसरूप शुद्धरूप परिणमना, इसका नाम शुद्धपरिणति है । और उस शुद्धपरिणति को शुद्धभाव कहा जाता है । लो, यह शुद्धपरिणति, यह शुद्धभाव, यह धर्म । दर्शन-ज्ञान के उपयोग को शुद्धरूप परिणमना अर्थात् होना, ऐसी शुद्धपरिणति को शुद्धभाव कहते हैं । दशा है, वह शुद्ध अवस्था है । त्रिकाली अविनाशी द्रव्य, त्रिकाली अविनाशी चेतनास्वभाव, उसके आश्रय से शुद्ध परिणमन होना, पुण्य-पाप के रागरहित ऐसी शुद्ध परिणति का शुद्धभाव, वह मोक्ष का कारण है ।

अब अशुद्धपरिणति । कर्म के निमित्त से राग-द्वेष-मोहादिक विभावरूप परिणमना अशुद्ध परिणति है,... स्वभाव का आश्रय था त्रिकाली अविनाशी । दर्शन-ज्ञान उपयोग । यहाँ कर्म के निमित्त में राग और द्वेष, पुण्य और पाप और मिथ्यात्व आदि विभावरूप परिणमना अशुद्ध परिणति है,... विकाररूप होना, वह अशुद्धदशा । इसको अशुद्धभाव कहते हैं । चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो । दोनों को अशुद्ध कहते हैं । समझ में आया ? स्वभाव का दर्शन-ज्ञान का उपयोग, वह शुद्ध है, निमित्त के आधीन होकर जो शुभ-अशुभभाव करे, वह अशुद्ध । आहाहा !

यह कर्म का निमित्त अनादि से है, इसलिए अशुद्धभावरूप अनादि ही से परिणमन कर रहा है । यह तो अनादि से करता ही है, कहते हैं । पुण्य-पाप के भाव कर्म के निमित्त के लक्ष्य से अनादि से करता आया है । यह कोई नया नहीं है । आहाहा ! इस भाव से शुभ-अशुभकर्म का बन्ध होता है,... लो ! शुभ-अशुभभाव, यह अशुद्ध है, इसलिए शुभ हो तो पुण्य बँधता है, अशुभ हो तो पाप बँधता है । धर्म नहीं । इस बन्ध के उदय से फिर शुभ या अशुभभावरूप (अशुद्धभावरूप) परिणमन करता है, इस प्रकार अनादि सन्तान चला आता है । संसार का शुभ-अशुभ परिणाम बन्ध हो, उस बन्ध के उदय से शुभाशुभ परिणाम ऐसे चला ही आता है । उसमें से इसकी दृष्टि छोड़कर आत्मा की दृष्टि करना, उसे शुद्धभाव और मुक्ति का कारण कहते हैं ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-१६३, गाथा-१६५, शुक्रवार, पौष शुक्ल ४, दिनांक ०१-०१-१९७१

यह भावपाहुड़ की १६५ गाथा पूरी हुई। फिर से वह श्री कुन्दकुन्द नामक आचार्य ने भावपाहुड़ ग्रन्थ पूर्ण किया। इसका संक्षेप ऐसे है :- १६५ गाथा के भावार्थ में क्या है...

जीव नामक वस्तु का एक असाधारण शुद्ध अविनाशी चेतना स्वभाव है। देखो! इस भावपाहुड़ में साररूप से क्या कहना है, उसका संक्षेप कहते हैं कि यह आत्मा जो वस्तु है, वह जीव नामक वस्तु-पदार्थ है, उसका एक असाधारण शुद्ध अविनाशी चेतना स्वभाव है। एक ही असाधारण चेतना शुद्ध चेतना अविनाशी त्रिकाल है। आत्मा जैसे अविनाशी एक वस्तु है, वैसे उसका चेतनास्वभाव, शुद्ध चेतना जानना-देखना, शुद्ध चेतना वह अविनाशी एक स्वभाव उसका स्वतन्त्र है।

अब उसकी दो पर्यायें। ऐसा शुद्ध चेतनास्वभाव, उसका अविनाशी होने पर भी, उसकी वर्तमान दशा में दो प्रकार की परिणति, अवस्था, दशा होती है। समझ में आया? जीव नाम की वस्तु सिद्ध की कि आत्मा वस्तु है, जैसे यह परमाणु आदि हैं, वैसे। और उसमें एक असाधारण दूसरा गुण नहीं और दूसरे में नहीं, ऐसा एक असाधारण शुद्ध चेतना, पवित्र जानना और देखना ऐसी अविनाशी चेतना, उसका गुण, स्वभाव, सत्त्व, तत्त्व है। अब उसकी अवस्था। यह द्रव्य-गुण की व्याख्या की। अब उसकी पर्याय।

इसकी शुद्ध, अशुद्ध दो परिणति हैं। शुद्ध चेतना स्वभाव, यह अविनाशी आत्मा का भाव, उसकी दो अवस्था—पर्याय है। परिणति अर्थात् अवस्था। शुद्ध दर्शन-ज्ञानोपयोगरूप परिणमना... ऊपर तो कहा था कि शुद्ध अविनाशी चेतना स्वभाव है। इस चेतनास्वभाव के दर्शन और ज्ञान दो भाग हैं। उनमें एक दर्शन-ज्ञान का चेतनास्वभाव शुद्ध उपयोगरूप परिणमे, शुद्ध उपयोगरूप अन्दर जानना-देखना, उसकी पर्याय में पुण्य-पाप के पर्याय मैलरहित शुद्ध स्वभाव का उपयोग शुद्धरूप हो तो वह तो शुद्धपरिणति है—वह शुद्ध अवस्था है। समझ में आया?

शुद्ध जीव वस्तु है। शुद्ध वस्तु पदार्थ आत्मा है। उसका शुद्ध चेतना स्वभाव

अविनाशी गुण है। और उसकी पर्याय अर्थात् हालत-वर्तमान दशा शुद्ध दर्शन-ज्ञान-उपयोग। जानना और देखना, ऐसे शुद्धभावरूप परिणमन हो, अवस्था हो, उसे यहाँ शुद्ध परिणति, अवस्था, पर्याय, हालत कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? यह तो सादी भाषा है। इसमें कोई बहुत ऐसा (कठिन नहीं है)। कहो, पण्डितजी! द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों यहाँ शुद्ध पहले वर्णन की है।

शुद्धपरिणति, वह भाव है और शुद्धपरिणति, वह आत्मा के निर्मल गुण की पवित्र दशा है। उसे धर्म कहते हैं। समझ में आया? त्रिकाली वस्तु शुद्ध है। आत्मा पदार्थ है न? अस्ति, सत्ता, होनेवाला, मौजूदगी (धराता) पदार्थ, उसका गुण शुद्ध चेतना जानना-देखना, अविनाशी एक अखण्ड चैतन्यस्वभाव है। उसकी पर्याय अर्थात् हालत, दशा जानने-देखने का स्वभाव जो है, उसका शुद्धरूप जानना-देखना, राग और पुण्य-पाप के परिणाम के मैल-मिलावट बिना अकेला शुद्ध जानने का-देखने का परिणमन—दशा हो, उसे शुद्धपरिणति, शुद्धभाव कहते हैं। इसको शुद्धभाव कहते हैं। यह भावपाहुड़ है न? एक बात।

अब दूसरी। अशुद्ध परिणति अनादि की है, यह बात करते हैं। और बहुरि अर्थात् और। कर्म के निमित्त से... अर्थात् कि अपने शुद्ध जानने-देखने की परिणति से विरुद्ध, जड़ कर्म के संग से, लक्ष्य से राग-द्वेष-मोहादिक विभावरूप परिणमना... राग, द्वेष और मोह। मिथ्यात्व—मिथ्यात्व। विषय, वासना आदि। विभावरूप होना, परिणमना, अवस्था का धरना, वह 'अशुद्ध परिणति' है,... वह अशुद्ध अवस्था है। इसको अशुद्धभाव कहते हैं। कहो, समझ में आया? कर्म का निमित्त अनादि से है,... अशुद्ध परिणति होने में शुद्धपने को भूलकर, अपना स्वभाव तो शुद्ध सच्चिदानन्द पवित्र अनाकुल आनन्द और ज्ञान-दर्शन की शुद्धता से भरपूर पदार्थ है परन्तु उसे भूलकर कर्म का निमित्त अनादि से है,... उसकी दशा में कर्म के जड़पने का निमित्त अर्थात् दूसरी चीज़ का संग उसे अनादि से है।

इसलिए अशुद्धभावरूप अनादि ही से परिणमन कर रहा है। इसलिए पुण्य और पाप तथा मिथ्यात्व और विषय-वासना ऐसे मलिन परिणाम से, पर्याय से, भाव से, अनादि से परिणम-हो रहा है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह अधर्म है। अपना

स्वभाव शुद्ध चेतनास्वभाव जानना-देखना शुद्ध, ऐसा अविनाशी स्वभाव, उसे भूलकर अनादि से कर्म के निमित्त के संग में उसे मिथ्यात्व, राग-द्वेष, विषय-वासना, हर्ष-शोक—ऐसे जो भाव अनादि के होते हैं, वह अशुद्ध परिणति है—वह अशुद्धभाव है। वह अशुद्धभाव, बन्ध का कारण है। ऐसा सिद्ध करना है।

अशुद्धभावरूप अनादि ही से परिणमन कर रहा है। निगोद से लेकर अनन्त... अनन्त... अनन्त... संसार सिर पर हुआ। अनादि से मलिन मिथ्यात्व राग-द्वेष, शुभ-अशुभ परिणाम उसरूप अनादि से परिणमता है, ऐसा कहते हैं। देखो! इसमें शुभ और अशुभरूप अनादि से होता है, ऐसा कहते हैं। अनादि से शुभ-अशुभ—अशुद्धरूप परिणमता है। अनादि में निगोद आया या नहीं? सभी जीव आये। आहाहा!

कर्म के संग से स्वसंग चीज़ को भूलकर, जाति अपनी आनन्द और ज्ञान और दर्शन की शुद्ध जाति है, ऐसे स्वभाव को भूलकर, आत्मा से विलक्षण दूसरा तत्त्व है; यह आत्मा का लक्षण है, उससे विलक्षण—दूसरे लक्षणवाला तत्त्व है, उसके संग में—लक्ष्य से मिथ्यात्व और राग-द्वेष और विषय-वासना, हर्ष-शोकादि पर्याय / अवस्थारूप होती है, वह अशुद्धभाव है।

इस भाव से शुभ-अशुभ कर्म का बन्ध होता है,... देखो! यह क्या कहा? कि अनादि का शुभ और अशुभभाव होता है, उसे शुभ और अशुभभाव से शुभ-अशुभ कर्म का बन्धन होता है। देखो! यह शुभ तो अनादि से होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शुभ और अशुभभाव मलिन है, स्वभाव का शुद्धपना, जाति की ज्ञानदशा और आनन्द की जाति, ऐसे आत्मा को भूलकर पर के संग से शुभ और अशुभ ऐसा जो अशुद्धभाव, उसरूप होता है; इसलिए उसे शुभ-अशुभकर्म का बन्धन होता है। तब इसका अर्थ क्या हुआ? कि शुभभाव भी कर्म के निमित्त के संग से अनादि से करता है। पण्डितजी! बराबर है? यह कहेंगे। शुभभाव किसे कहना? अनादि से इसे शुभभाव से पुण्य का शुभबन्धन (हुआ)। अशुभभाव से पाप का बन्धन (हुआ)। अनादि से कर्म के संग से यह भाव उसका होता है। इसमें अनादि के जीव में शुभ-अशुभभाव सिद्ध हुए या नहीं? कि अनादि के अशुभभाव ही अकेले थे? सेठ! दोनों थे। आहाहा! कहा न? अनादि से अशुद्धभाव परिणमित हुए। अशुद्धभाव अर्थात् शुभ-अशुभ परिणाम।

उससे इस भाव से शुभ-अशुभ कर्म का बन्ध होता है,... शुभभाव के काल में शुभ पुण्य बाँधता है, अशुभभाव के काल में अशुभ पाप बाँधता है। ऐसा अनादि से प्रत्येक प्राणी को एकेन्द्रिय से लेकर नौवें ग्रैवेयक जैन का साधु होकर गया, उसे इस प्रकार बन्धन हुआ करता है। अब कहते हैं। यह शुभ-अशुभ की व्याख्या करते हैं।

इस बन्ध के उदय से फिर शुभ या अशुभ भावरूप (अशुद्धभावरूप) परिणामन करता है,... लो ! शुभ-अशुभभाव, अशुद्धभाव। शुभ-अशुभ दोनों मिलकर अशुद्धभाव। इस कारण से शुभाशुभ बाँधते हैं और उसके उदय से—यह कर्मबन्धन हुआ, उसका जब पाक काल आवे, तब फिर शुभ या अशुभ भावरूप (अशुद्धभावरूप) परिणामन करता है,... और शुभ-अशुभभाव होता है। समझ में आया ? अनादि सन्तान चला आता है। इस प्रकार अनादि सन्तान। सन्तान कहते हैं न ? सन्तान का सन्तान... सन्तान का सन्तान... ऐसी परम्परा अनादि से सन्तान ऐसी चली आती है। आहाहा ! इसने अनादि काल में शुद्धभाव कभी किया नहीं; इसलिए इसे धर्म हुआ नहीं। ऐसा कहते हैं।

अनादि सन्तान चला आता है। जब इष्टदेवतादिक की भक्ति,... अब शुभ-अशुभ की व्याख्या करते हैं। इष्टदेव आदि की भक्ति। जीवों की दया, उपकार मन्दकषायरूप परिणामन करता है,... किसी को भले जीव की दया, इष्टदेव की न हो परन्तु मन्दकषायरूप परिणामे। क्योंकि निगोद के जीव को तो मन्दकषायरूप परिणामन है। समझ में आया ? निगोद के एकेन्द्रिय जीव को भी शुभभावरूपी (मन्दकषाय होती है)। एक शरीर में अनन्त जीव, एक-एक जीव को अनादि से कर्म के संग में... कोई पंचेन्द्रिय हो तो इष्टदेवादि की भक्ति, जीव की दया, उपकार और यह न हो तो मन्दकषायरूप भाव (होता है), इन सबको मन्दकषाय कहा है। मन्दकषायरूप परिणामे, तब तो शुभकर्म का बन्ध करता है। तब शुभकर्म का बन्धन करता है। अनादि से ऐसे भाव इसे होते हैं। यह नीम, पीपल, चींटी, मकोड़ा, उन्हें भी शुभभाव होते हैं। शुभभाव हों, इसलिए पुण्य बाँधते हैं, अशुभ हो, तब पाप बाँधते हैं। यह अशुद्ध का परिणामन... अशुद्ध अर्थात् शुद्ध स्वभाव भगवान आत्मा का, इससे विरुद्ध अशुद्ध का परिणामन इसे अनादि से चला आता है। आहाहा ! देखो न, कितना स्पष्ट किया है !

वस्तु अनादि, उसका चेतना निर्मल स्वभाव अनादि, परन्तु उसकी वर्तमान पर्याय

में अनादि अशुद्ध परिणमन उसे चला आता है। आहाहा! अर्थात् कि अधर्म का परिणमन अनादि से चला आता है। आहाहा! जब इसे ऐसी राग की मन्दता, कषायरूप भाव होता है तो शुभकर्म का बन्धन करे। इसके निमित्त से देवादिक पर्याय पाकर... शुभ के कारण देव और पैसे का धनी यह सेठिया कहलाये न जरा? जरा कहलाये, हों! नहीं। देवादिक पर्याय पाकर कुछ सुखी होता है। देखो ने! दुनिया में किंचित् सुखी कहलाये। पाँच-पच्चीस लाख मिले। अब तो पाँच-पच्चीस लाख घट गये। कम हुए। बहुत पैसे बढ़ गये। करोड़-दो करोड़-पाँच करोड़ मिले। पूर्व के कोई शुभभाव हों, उसने किये थे। करता है। उसमें कुछ नया नहीं है। उसके कारण ऐसा मिलता है। कुछ सुखी होता है। थोड़ा। नारकी के दुःख की अपेक्षा किंचित् इसे सुख जैसा लगे। सुख है नहीं। किंचित् सुख जैसा अज्ञानी को लगे। वह सुखी है, यह उस नरक की अपेक्षा से सुखी कहा। सुखी कब था? समझ में आया? लोग मानते हैं न? कि हमें अभी ठीक है, बादशाही है। पैसा-बैसा है, शरीर निरोगी, लड़के अच्छे, इज्जत अधिक, नये लड़के हों, वह भी पुण्यशाली पकते हैं। इसलिए हमारा पुण्य अभी अब बढ़ता है और हम सुखी हैं। ऐसा दुनिया कहती है, इसकी अपेक्षा से कहा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ धूल में सुख है? यह देखो न, यह गन्ध मारता है। आये हैं (तब के) दवा ऐसी गन्ध मारती है। सुखी किसे कहना?

मुमुक्षु : दवा गन्ध मारे, उसमें यह क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : चुपड़कर आये हैं ये। बहुत रोग अन्दर है। बाहर लगे अच्छा रूपवान और अन्दर हो कीड़े। कहा नहीं था? एक-एक शरीर में पाँच करोड़ अड़सठ लाख नब्बे हजार पाँच सौ चौरासी रोग है। यह शरीर। कल तो उत्पत्ति की बात की थी कि यह कहाँ से उत्पन्न हुआ। इस शरीर में इतने रोग भगवान ने देखे हैं। पाँच करोड़ अड़सठ लाख नब्बे हजार पाँच सौ चौरासी। कहो, अभी तो इतने पैसे भी नहीं हों तुम्हारे पास, सेठ! पाँच करोड़ अड़सठ लाख, नब्बे हजार...। परन्तु शरीर में इतने रोग हैं। प्रस्फुटित हो, तब खबर पड़े। कितने ही रोग तो सदा होते हैं ही थोड़े-थोड़े। अधिक प्रगटे, तब ऐसा कहा जाता है, यह हुआ, यह हो गया। शरीर में तो अंकूर फूटे और रोग

फटे। वहाँ कहाँ अमृत झरे ? आहाहा ! मगनभाई ! क्या है इसमें ? निकले तो यह निकले, लो ! आँख से सूझे नहीं, पैर चले नहीं, शरीर में चक्कर आवे। कितने ही रोग तो साथ के साथ होते हैं।

भगवती आराधना में यह संख्या बतायी है। शिवभूति मुनि। शिव कैसे ? शिवकोटी। शिवार्य। ऐसे एक शरीर में रोग है। भगवान में अनन्त निरोगता के गुण हैं। यह दोपहर में पढ़ा जाता है। जीवत्वशक्ति, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य इत्यादि अनन्त-अनन्त महिमावन्त अतुल-अखण्ड-अचल ऐसे निरोगी गुण भरे हैं। उनका इसे माहात्म्य नहीं और इस धूल का माहात्म्य। समझ में आया ?

मुमुक्षु : सब्जी हो, वह भी पैसे से आती है और यह गुण...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब्जी धूल भी नहीं आती। लड़के के पास सब्जी नहीं। उसके घर में सब्जी नहीं आती ? दिलीप ! सब्जी खाता है या नहीं तू ?

मुमुक्षु : नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आती है न घर में ? घर में आती है या नहीं ?

मुमुक्षु : घर तो जड़ का और सब्जी उसकी।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले उसकी परन्तु आती है न सब्जी ?

मुमुक्षु : सब्जी उसकी क्रियावर्ती शक्ति के कारण (आती है)।

दूसरा मुमुक्षु : संयोगरूप से तो होती है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हं, ऐसा।

मुमुक्षु : वह आत्मा को नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अलग। परन्तु यह सब्जी आती है न ? इतनी बात है। जड़ आती है न ? जड़ नहीं होता ? यह लकड़ी आयी, लो ! लकड़ी आयी। भले आत्मा में नहीं परन्तु लकड़ी आयी यह तो बराबर है या नहीं ? वह तो उसके कारण से आयी। यह सब्जी उसके कारण से आयी। उसके कारण से आयी। पैसे बिना आयी। कहो, छोटी लड़की को सब्जी देते हैं या नहीं ? वहाँ पैसा है उसके पास ?

मुमुक्षु : उसके पिता ने दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पिता कहाँ था ? किसका ? यहाँ तो सब्जी आने की हो वहाँ आती है। ऐसे... नहीं लिखा हुआ ? 'खानेवाले का नाम दाने-दाने पर' आता है या नहीं ? कहो, पण्डितजी ! क्या आता है ? खानेवाले का नाम दाने में मोहरछाप पड़ी है।

मुमुक्षु : दाने-दाने में मोहर लगी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। मोहर लगी है, इसका अर्थ यह है। जो दाना और जो वनस्पति के टुकड़े आनेवाले होंगे, वे आयेंगे। आत्मा उसका पुरुषार्थ करे तो आते हैं और जाते हैं, ऐसा नहीं है। हिन्दुस्तान में चलता है। हमारे यहाँ काठियावाड़ में चलता है। खानेवाले का नाम दाने-दाने पर लिखा है। वहाँ अन्दर लिखा है ? परन्तु ऐसा कहा जाता है। इसका अर्थ यह कि जो वनस्पति, जो पैसा, जो दाने, जो दाल-भात, जो सब्जी, यह दूध, जो आम, वह क्या कहलाता है तुम्हारे ? द्राक्ष। अंगूर। नवनीतभाई का रिश्तेदार वहाँ रहता है। लटकते हैं न ? द्राक्ष, अंगूर। वह अंगूर-बंगूर उसके कारण से जिसे आना हो, वे आते हैं। ऐसी उनमें छाप है। इस अंगूर का कण यहाँ जाने का हो, वह ही जाता है। इसके आत्मा के कारण से वह आता है और जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा ! यह यहाँ कहते हैं, देखो !

मुमुक्षु : ... मोहर छाप...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। मोहर का अर्थ उसके पास आनेवाला है, वह आयेगा। यह छाप उसमें है। जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी।

निमित्त से देवादिक पर्याय पाकर... शुभकर्म बाँधे। राग की मन्दता हो तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा इत्यादि-इत्यादि। इष्ट देवतादिक कहा न ? इष्ट देव, इष्ट गुरु, इष्ट शास्त्र, उनकी भक्ति, उनकी पूजा, यह शुभभाव हो तो उससे देवादि पर्याय पावे। और जब... तब की जगह जब लिया है। जब विषय-कषाय तीव्र परिणामरूप परिणामन करता है,... जब विषय की वासना, राग की वासना, कषाय की वासना तीव्र (परिणमे)। तीव्र परिणामरूप परिणामन करता है, तब पाप का बन्ध करता है,... पाप का बन्ध करता है। इसके उदय से नरकादि पर्याय पाकर दुःखी होता है। लो ! उसके उदय से

नरक, पशु, ढोर आदि पर्याय-शरीर पाकर दुःखी होता है। यह अनादि से ऐसे हो रहा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इस प्रकार संसार में अशुद्धभाव से अनादि काल से यह जीव भ्रमण करता है। चौरासी में क्यों भटकता है? कि इस अशुद्धभाव से। यह भावपाहुड़ है न? अशुद्धभाव अर्थात् पुण्य-पाप के भाव से भटकता है। अनादि काल से यह जीव भ्रमण करता है। शुभभाव से भ्रमता है, ऐसा संसार में कहे तो सब शोर मचाये। परन्तु यह शुभ और अशुभ दोनों संसार है। यह क्या कहते हैं यह? समझ में आया? पुण्य संसार है। अरे...! चिल्लाहट मचाये। इसके गले में चुभता है। धूल भी नहीं, सुन न! अनादि के अशुद्धभाव से अनादि से जीव भ्रमण कर रहा है।

जब कोई काल ऐसा आवे... इसकी योग्यता का काल ऐसा आवे जीव को कि जिसमें जिनेश्वरदेव... आहाहा! सर्वज्ञ वीतराग के उपदेश की प्राप्ति हो... जिनेश्वर तीन लोक के नाथ परमात्मा, जिनदेव, तीर्थकरदेव, सर्वज्ञ वीतराग, तीन लोक का जिन्हें ज्ञान हो वीतराग परमात्मा जो हुए, उनके उपदेश की प्राप्ति हो। प्राप्ति हो उपदेश की। और उसका श्रद्धान रुचि प्रतीति आचरण करे... भगवान की आज्ञा का उपदेश है कि आत्मा का स्वभाव पवित्र है, उसकी श्रद्धा कर। भगवान की यह आज्ञा है। उपदेश में यह आता है। अखण्डानन्द प्रभु ध्रुव अविनाशी शुद्धता के भण्डार का स्वरूप तेरा है। ऐसे स्वभाव की अन्तर्मुख होकर श्रद्धा कर। अन्तर्मुख होकर उसका वेदन-ज्ञानवेदन कर। अन्तर्मुख होकर आचरण (कर)—स्थिर हो। कहो, समझ में आया?

श्रद्धान रुचि प्रतीति... ऐसे तीन शब्द लिये हैं। श्रद्धान कर, उसकी रुचि कर, उसकी प्रतीति कर। आचरण कर—स्वरूप में स्थिर हो। भगवान की आज्ञा के उपदेश में यह आया है। तुझे करना हो तो अन्तर्मुख होकर श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र करना है। बहिर्मुख का तो ऐसा अनन्त बार किया है। शुभाशुभ परिणाम अनन्त बार हुए। यह बहिर्मुखी दृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

तब स्व और पर का भेदज्ञान करके... लो! ऐसा जब आत्मा के पवित्र स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और आचरण करे, तब उसे अपना और पर का भेदज्ञान करके, रागादि पुण्य-पाप के भाव, वे पर हैं; मेरा स्वभाव शुद्ध स्व है। जड़ पर है; चैतन्यद्रव्य उससे

भिन्न है, ऐसा स्व और पर का भेदज्ञान करके... लो! भिन्न करके शुद्ध-अशुद्ध भाव का स्वरूप जानकर... शुद्ध-अशुद्ध भाव का स्वरूप जाने। अपने हित-अहित का श्रद्धान... आहाहा! आत्मा का शुद्ध स्वभाव आनन्द, उसकी श्रद्धा-ज्ञान, वह हितरूप है। कहो, समझ में आया? और इसके अतिरिक्त की बाहर की श्रद्धा अहितरूप है। विश्वास करना कि इसमें से मुझे लाभ होगा, ऐसे हित-अहितरूप श्रद्धानरूपी प्रतीति आचरण हो, तब... देखो! हित का आचरण (करना) और अहित का आचरण छोड़ना, ऐसा। हित-अहित के भेदज्ञान का कहा न यहाँ?

शुद्धदर्शनज्ञानमयी शुद्ध चेतना परिणमन को तो 'हित' जाने,... देखो! शुद्ध दर्शन-ज्ञान, आत्मा दृष्टा और ज्ञाता, उसका अविनाशी स्वभाव, इस प्रकार शुद्धदर्शनज्ञानमयी शुद्ध चेतना परिणमन को... शुद्ध पवित्र की परिणति होना तो 'हित' जाने,... उसे हित माने। देखो! आत्मा का पवित्र स्वभाव, उसकी श्रद्धा-ज्ञान को हित जाने। उसका आचरण-स्थिर होना, उसे हित जाने। इसका फल संसार की निवृत्ति है,... इसका फल संसार से निवृत्ति है। कहो, समझ में आया? अपना जो अविनाशी दर्शन-ज्ञान-शुद्ध स्वभाव, उसके सन्मुख होकर शुद्ध परिणति अर्थात् निर्मल दशा करना, उस निर्मल दशा का फल संसार से निवृत्ति है। मुक्ति की प्राप्ति है। लो, ऐसा तो कितना सादी भाषा में लिखा है। पण्डित जयचन्द्रजी (ने), तथापि विवाद (करे), शुभ ऐसा होता है और शुभ से यह होता है। अनादि से शुभाशुभ से तो संसार है।

चैतन्यस्वभाव शुद्ध वस्तु पवित्र है। उसे पवित्र के आश्रय होकर जो पवित्रता प्रगट हो, उससे संसार की निवृत्ति होती है। शुभाशुभ फलरूप संसार की उससे—शुद्धभाव से निवृत्ति होती है। कहो, समझ में आया? इसको जाने... जाने कि इसका—शुद्धभाव का फल तो संसार की निवृत्ति है। और अशुद्ध भाव का फल संसार है, इसको जाने,... पुण्य और पाप के भाव जो अशुद्ध हैं, उनका फल तो संसार है, लो! दो बातें की। शुद्धभाव का फल संसार से निवृत्ति। शुभाशुभ अशुद्धभाव का फल संसार की प्राप्ति। कहो, इसे अन्दर जाने। पुण्य और पाप के दोनों भाव अशुद्ध हैं, उनसे संसार की प्राप्ति है और आत्मा के स्वभाव की शुद्धता का परिणमन, वीतरागी दशा, वह संसार की निवृत्ति का उपाय है। समझ में आया?

तब शुद्धभाव के ग्रहण का... शुद्धभाव को अंगीकार करे। शुद्धभाव, उसका फल संसार की निवृत्ति, अशुद्धभाव (का फल) संसारी की प्राप्ति है, ऐसा जानकर शुद्धभाव को अंगीकार करे। स्व के सन्मुख देखकर शुद्ध परिणमन प्रगट करे। समझ में आया? पर के सन्मुख, कर्म के निमित्त के सन्मुख देखकर संसार के परिणाम उत्पन्न होते हैं। उसका फल संसार भटकने का है। आहाहा! ऐसा है। आहाहा! तब शुद्धभाव के ग्रहण का और अशुद्धभाव के त्याग का उपाय करे। अपने पवित्र स्वभाव-सन्मुख का, शुद्धभाव को अंगीकार करने का प्रयत्न करे और पुण्य-पाप के अशुद्धभाव को छोड़ने का उपाय करे, ऐसा कहते हैं। देखो! आहाहा! शुभ-अशुभभाव ऐसे अशुद्धभाव के त्याग का उपाय करे। रखने का उपाय करे, ऐसा नहीं। यह बड़ा विवाद, विवाद आवे ऐसा। आहाहा!

उपाय का स्वरूप जैसे सर्वज्ञ वीतराग के आगम में कहा है,... उपाय का स्वरूप जैसा सर्वज्ञ वीतराग के शास्त्र में कहा, उसका उपाय सच्चा। जिसे सर्वज्ञपना नहीं, तीन काल का ज्ञान नहीं और जिसे वीतरागता प्रगट हुई नहीं, उसकी वाणी में आगम नहीं हो सकता। आहाहा! वैसे करे। इसका स्वरूप निश्चयव्यवहारात्मक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग कहा है। लो! भगवान के उपदेश में निश्चयसम्यग्दर्शन, निश्चयज्ञान, निश्चयचारित्र और व्यवहारसम्यग्दर्शन, व्यवहारज्ञान और व्यवहारचारित्र—इन दो को—निश्चय-व्यवहार को मोक्षमार्ग कहा। निश्चयमोक्षमार्ग, वह सत्य है, व्यवहारमोक्षमार्ग, वह उपचार से ओरापित कथन है। सत्य वहाँ नहीं... भाई! कारण सो व्यवहार। शुद्धस्वरूप के श्रद्धान ज्ञान चारित्र को 'निश्चय' कहा है... शुद्ध स्वरूप भगवान आत्मा, ज्ञानानन्द अनन्त चैतन्य रत्नाकर का भण्डार, ऐसे शुद्ध स्वरूप का श्रद्धान, ऐसे शुद्ध स्वरूप की रुचि, उसका ज्ञान और चारित्र को निश्चय कहा।

व्यवहार जिनदेव सर्वज्ञ वीतराग तथा उसके वचन और उन वचनों के अनुसार प्रवर्तनवाले मुनि-श्रावक की भक्ति वन्दना विनय वैयावृत्त्य करना 'व्यवहार' है,... लो! व्यवहार, वह पुण्यबन्ध का कारण है। व्यवहार जिनदेव... यह परद्रव्य आया न? परद्रव्य, इसलिए व्यवहार हुआ, ऐसा कहते हैं। स्वद्रव्य की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, वह निश्चय है; परद्रव्य की श्रद्धा आदि का भाव, वह व्यवहार है। जिनदेव सर्वज्ञ

वीतराग तथा उसके वचन... उनके वचन। उन वचनों के अनुसार प्रवर्तनवाले... भगवान के वचन में कहा हुआ, उनके अनुसार, उनके अनुसार प्रवर्तन करनेवाले मुनि और श्रावक, ऐसा कहते हैं। देखो! आहाहा! भगवान के वचन में जो कहा, उसके अनुसार प्रवर्तनेवाले मुनि और श्रावक, उनकी भक्ति वन्दना विनय वैयावृत्त्य करना... ऐसा कहा। भगवान के आगम प्रमाण मुनि और श्रावक हों, उन्हें वन्दना और भक्ति करना, यह व्यवहारभाव, यह पुण्यभाव कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? कितना समझना और सुनना? शर्ते कितनी?

व्यवहार तो उसे कहते हैं। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के वचन और उन वचन के अनुसार प्रवर्तनेवाले मुनि, श्रावक उनकी भक्ति, वन्दना, विनय, वैयावृत्त्य करना 'व्यवहार' है, ... यह व्यवहार है, ऐसा। वह निश्चय था। स्व भगवान आत्मा की शुद्ध स्वभाव की स्व के आश्रय से श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र (हो), वह निश्चय है। वह सत्य वस्तु थी। साथ में ऐसा परद्रव्य सर्वज्ञ के कहे हुए वचन, सर्वज्ञदेव और उनके वचन अनुसार प्रवर्तनेवाले मुनि और श्रावक। समझ में आया? क्योंकि यह मोक्षमार्ग में प्रवर्तने को उपकारी है। पहले ... है न? वीतरागदेव, वीतराग की वाणी और वीतराग के देव अनुसार प्रवर्तनेवाले मुनि और श्रावक, वे मोक्षमार्ग में प्रवर्तने को उपकारी है। उपकारी का मानना न्याय है। यहाँ व्यवहार सिद्ध करना है न? समझ में आया? उपकार लोपना अन्याय है। जिनेश्वरदेव, उनकी वाणी—आगम, उसके अनुसार प्रवर्तनेवाले मुनि और श्रावक, उनका विनय, वन्दना आदि यथायोग्य करना, वह न्याय है। वे सब उपकारी हैं। समझ में आया? और उनका उपकार लोपना, वह अन्याय है। ऐसा भाव आता है या नहीं? शुभभाव व्यवहार ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञदेव परमात्मा त्रिलोकनाथ का नाम मात्र ही लाभदायक है। अब अपने अरिहन्त की व्याख्या आयेगी इसके बाद। बोधपाहुड़ में रह गया है न? भाई! अरिहन्तदेव। अरिहन्त का स्वरूप रह गया है। २८ गाथा से अमुक तक है।

और स्वरूप के साधक अहिंसा आदि महाव्रत... देखो! यहाँ स्वरूप जो आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, उसमें निमित्तरूप राग की मन्दता के अहिंसा आदि के भाव होते हैं, उन्हें व्यवहार साधक कहा जाता है। महाव्रत तथा रत्नत्रयरूप प्रवृत्ति, ...

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के शुभ विकल्प की प्रवृत्ति समिति, गुप्तिरूप प्रवर्तना... लो! उसमें राग का अंश है परन्तु वह आये बिना रहता नहीं। जब तक वीतराग न हो, उसे शुद्धभाव की भूमिका में, शुद्ध परिणति में, निश्चय में ऐसा व्यवहार होता है।

महाव्रत तथा रत्नत्रयरूप प्रवृत्ति,... रत्नत्रय अर्थात् व्यवहार। व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञान और व्यवहार महाव्रत का विकल्प आदि। समिति, गुप्तिरूप प्रवर्तना... यह भी राग है। ईर्या—शोधकर चलना, यह सब विकल्प राग है। परन्तु ऐसा व्यवहार निश्चयवाले को होता है। इनमें दोष लगने पर अपनी निंदा-गर्हादिक करना,... महाव्रतादि में दोष लगा हो तो निन्दा-गर्हा करना। गुरुओं का दिया हुआ प्रायश्चित्त लेना,... यह सब व्यवहार विकल्प होता है, इतनी बात। शक्ति के अनुसार तप करना,... शक्ति अनुसार अर्थात् शक्ति प्रमाण। जैसी अपनी शक्ति हो, उसके प्रमाण में तप करना। उपवास आदि व्यवहार तप की बात है। परिषह सहना, दशलक्षणधर्म में प्रवर्तना इत्यादि शुद्धात्मा के अनुकूल... निमित्त। शुद्धात्मा की श्रद्धा-ज्ञान की भूमिका में अनुकूल अर्थात् निमित्त क्रियारूप प्रवर्तना, इनमें कुछ राग का अंश रहता है, तबतक शुभकर्म का बन्ध होता है... राग का अंश है, उतना उसे पुण्यबन्धन होता है। तो भी वह प्रधान नहीं है,... प्रधानता—गिनती निश्चय की—स्वभाव की है, ऐसा कहते हैं। जरा राग होता है। उस राग को शुद्ध का आरोप दिया जाता है।

क्योंकि इनमें प्रवर्तनेवाले के शुभकर्म के फल की इच्छा नहीं है,... लो! ऐसा राग आता है, परन्तु उसके फल की इच्छा धर्मी को नहीं होती। इसलिए अबन्धतुल्य है,... इस अपेक्षा से। दृष्टि और ज्ञान और चारित्र की निर्मलता का जोर है, वहाँ फिर राग का भाग ऐसा आता है, उससे कुछ बन्ध है, परन्तु उसे प्रधानरूप से गिनने में (नहीं आया है)। प्रधान यह शुद्ध रत्नत्रय है। इसलिए इसे अबन्धतुल्य कहा है। इत्यादि प्रवृत्ति आगमोक्त 'व्यवहारमोक्षमार्ग है। यह भी आगम की आज्ञा व्यवहार प्रमाण मोक्षमार्ग व्यवहार से कहा गया है। इसमें प्रवृत्तिरूप परिणाम हैं... उसमें रागरूप प्रवृत्ति के परिणाम हैं। तो भी निवृत्तिप्रधान है, इसलिए निश्चयमोक्षमार्ग में विरोध नहीं है। निश्चय भूमिका में व्यवहार का भाव ऐसा होता है। इससे कहीं निश्चय विरोध नहीं आता। आहाहा!

इस प्रकार निश्चय-व्यवहारस्वरूप मोक्षमार्ग का संक्षेप है। इसी को 'शुद्धभाव' कहा है। देखो! शुद्धभाव तो शुद्ध ही है। व्यवहार को—उसको शुद्ध कहा (जाता है)। व्यवहार से शुद्ध। मूल ऐसा है। व्यवहार शुद्ध। शुभ को व्यवहार शुद्ध कहा। शुद्ध को निश्चय शुद्ध कहा। इसमें न समझे तो गड़बड़ उठावे। ऐसा कहे कि देखो! इन दोनों को शुद्ध कहा। आहाहा! इसी को 'शुद्धभाव' कहा है। इसी को शुद्धभाव कहा है। ऐई! किसे? दोनों को। एक यथार्थ और एक आरोपित। जैसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र एक निश्चय और एक आरोपित। ऐसे शुद्धभाव यथार्थ, वह यथार्थ। शुभ को व्यवहार-आरोपित। आहाहा! लो! इसमें तो ऐसा स्पष्ट है।

निश्चय और व्यवहार से निर्जरा होती है। जयधवल में है न? इसका अर्थ क्या? व्यवहार का आरोप करके कथन किया है। ऐसी वस्तु है। लोगों को अभिप्राय बँध जाता है न? उससे छूटना भारी पड़ जाता है। चारित्रदोष है, वह तो टल सकने की इसे दृष्टि है तो टल सकता। परन्तु अभिप्राय को टालना... आहाहा! इसलिए कहा कि, 'दंसण भट्टा सिज्झंति नहिं। चरित्त भट्टा सिज्झंति।' दर्शनभ्रष्ट है, वह कभी नहीं सीझता। चारित्रभ्रष्ट—चारित्र का दोष होगा तो उसके श्रद्धा-ज्ञान में ख्याल है, वह क्रम-क्रम से छूट जायेगा। परन्तु जिसकी श्रद्धा ही विपरीत है, यह पुण्य परिणाम, वही निर्जरा और संवर है और धर्म है—ऐसे अभिप्रायवाले दर्शन से भ्रष्ट हैं। समझ में आया? सत्य से दूर हैं। चारित्रदोष है, वह सत्य से अस्थिरता की अपेक्षा से अलग-थलग है। अभिप्राय की अपेक्षा से अलग-थलग नहीं। दोष है। राग दोष है। समझ में आया?

इसमें सम्यग्दर्शन को प्रधान कहा है,... देखो! वापस इसमें भी सम्यग्दर्शन की प्रधानता। तीन—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय और व्यवहार। उसमें भी सम्यग्दर्शन की मुख्यता। क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना सब व्यवहार मोक्ष का कारण नहीं है... जिसे निर्विकल्प आत्मा की श्रद्धा का भान नहीं, उसे ऐसे सब व्यवहार कोई मोक्ष का व्यवहार कारण भी नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आठ-आठ वर्ष के लड़के समझते हैं। आहाहा! आठ वर्ष के बालक राजकुमार केवल (ज्ञान) पाते थे। संसार समुद्र का सागर बड़ा भटकने का अपार है। उसमें से दुःख लगा। अरे रे! इस भव जल सागर में से तिरना, वह मुझे करना है। वह मुझे करना है; बाकी मुझे कुछ करना नहीं। समझ में

आया ? शुभाशुभ परिणाम का फल तो संसार है। कहा न ? इस संसार के भवसागर में डूब रहा है। इससे अब मुझे तिरना, यह करना है। तिरना वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय है। उससे तिर सकता है। गजब ! संक्षिप्त बात में बड़ी बात। जवाबदारी, शर्ते बड़ी।

सम्यग्दर्शन के बिना सब व्यवहार... देखो ! ऊपर कहा न व्यवहार ? जिसे व्यवहार से शुद्ध कहा था, वे सब मोक्ष का कारण नहीं है... उसमें तो आरोप आता था। सम्यग्दर्शन आत्मा का भान, निर्विकल्प श्रद्धा तथा राग, वह हेय है - ऐसा भान था। उसे राग में आरोप आता था। अज्ञानी तो कहते हैं श्रद्धा बिना को आरोप भी नहीं होता। सम्यग्दर्शन के व्यवहार में जिनदेव की भक्ति प्रधान है, ... अब सम्यग्दर्शन में भी व्यवहार में जिनदेव की भक्ति प्रधान है। वीतराग तीर्थकरदेव केवलज्ञानी सूर्य, जागती ज्योति सूर्य, वह उगा सो उगा, अस्त नहीं होगा। ऐसे परमात्मा जिनेन्द्रदेव की भक्ति, व्यवहार में मुख्य है।

यह सम्यग्दर्शन को बताने के लिए मुख्य चिह्न है, ... जिनेन्द्रदेव की जिसे अन्तर श्रद्धा आत्मा की हुई है, उसे ऐसे जिनेन्द्रदेव के प्रति भक्ति और मुख्यता गिनने में (आयी है)। व्यवहार में। इसलिए जिनभक्ति निरन्तर करना... व्यवहार का विकल्प है न ? इसकी श्रद्धा निरन्तर रखना। जिन आज्ञा मानकर आगमोक्त मार्ग में प्रवर्तना... वीतराग की आज्ञा जानना, आज्ञा मानना। आगमोक्त-भगवान के आगम प्रमाण मार्ग में प्रवर्तना। यह श्रीगुरु का उपदेश है। अन्य जिन-आज्ञा सिवाय सब कुमार्ग हैं, ... जिनेन्द्र की आज्ञा के अतिरिक्त जितने जगत में मार्ग हैं, वे सब कुमार्ग हैं, पाखण्ड मार्ग हैं, अन्य मार्ग हैं। आहाहा ! उनका प्रसंग छोड़ना, ... ऐसो का संग करना नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? वीतराग परमात्मा तीर्थकरदेव ने कहा हुआ मार्ग शुद्ध और शुभ, इसके अतिरिक्त दूसरे कहनेवालों का मार्ग छोड़ना, प्रसंग छोड़ना, संग करना नहीं, परिचय करना नहीं। समझ में आया ? और अपने भगवान की आज्ञाप्रमाण अपने आत्मा का हित करना। इस प्रकार करने से आत्मकल्याण होता है। लो ! ऐसा करे, उसे आत्मकल्याण होता है। लो ! ऐसा भावपाहुड़ का सार कहा। १६५ गाथा बहुत समय से चलती थी।

जीव सदा चिदभाव एक अविनाशी धारै ।
 कर्म निमित्तकूं पाय अशुद्धभावनि विस्तारै ॥
 कर्म शुभाशुभ बांधि उदै भरमै संसारै ।
 पावै दुःख अनंत च्यारि गतिमें डुलि सारै ॥
 सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब ।
 निजशुद्धभाव धरि कर्महरि लहै मोक्ष भरमै न तब ॥

देखो ! वापस लेखन में स्पष्ट कर दिया । ‘जीव सदा चिदभाव’ पहले आया था । जीव सदा चेतना अविनाशी स्वभाववाला है । ‘जीव सदा चिदभाव एक अविनाशी धारै ।’ आत्मा का चिदानन्द ज्ञान-दर्शनस्वभाव अविनाशी अनादि-अनन्त, उसे दृष्टि में ले—धारे । ‘कर्म निमित्तकूं पाय’ अनादि से । आया है उसी का स्पष्टीकरण किया । कर्म का निमित्त पाकर अशुद्धभाव को विस्तारे । यह निमित्त को प्राप्त करे का अर्थ ही निमित्त स्वयं लक्ष्य में लेता है, इसलिए निमित्त कहलाता है । ऐसा । ‘कर्म निमित्तकूं पाय अशुद्धभावनि विस्तारै ॥’ पर के निमित्त के लक्ष्य से तो अशुद्धभाव का—पुण्य-पाप का ही विस्तार होता है । उसमें संसार की निवृत्ति का उपाय नहीं होता ।

‘कर्म शुभाशुभ बांधि’ पुण्य के, पाप के जो कुछ शुभ-अशुभभाव करे, शुभ-अशुभ बाँधे । और, ‘उदै भरमै संसारै ।’ और उदय आवे तो और भ्रम में पड़कर पुण्य-पाप के भाव करे और संसार में भटके । आहाहा ! ‘पावै दुःख अनंत’ चारों ही गति का दुःख है । ‘च्यारि गतिमें डुलि सारै ॥’ देखो ! चारों ही गति में डूबेगा, ऐसा कहते हैं । उसमें कुछ सुख, कहा था न ?

मुमुक्षु : बहुत सुखी कहा था, अब दुःख कहा ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो लोगों को... आहाहा !

‘गतिमें डुलि’ चार गति में डोलता फिरता है । परिभ्रमण करता है । आहाहा ! ‘सर्वज्ञदेशना पायकै’ परमात्मा सर्वज्ञदेव । क्योंकि आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव है, उसे ही आत्मा पूरा कहते हैं और ऐसी सर्वज्ञदशा जिसे प्रगट हुई, ऐसे आत्मा को वास्तव में आत्मा कहते हैं । ऐसे भगवान की जो आज्ञा—देशना । ‘सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब ।’ देखो ! तब ही मिथ्यात्वभाव तजे । सर्वज्ञ की आज्ञाप्रमाण आत्मा को

जाने, श्रद्धा करे तो मिथ्यात्व जाता है। अज्ञानियों के कहे अनुसार आत्मा को माने, ध्यान करे तो उसे मिथ्यात्व जाता नहीं। समझ में आया ?

‘सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब। निजशुद्धभाव धरि’ आत्मा का पवित्र स्वभाव सम्यग्दर्शन में धारण किया, ऐसा कहते हैं। मिथ्यात्व छूटा। यह शुद्ध निज आत्मा परमानन्दस्वरूप ज्ञान का सूर्य, आनन्द का सागर ऐसा ‘निजशुद्धभाव धरि’ धारण करके ‘कर्महरि’ कर्म को टालकर ‘लहै मोक्ष भरमै न तब।’ वह मोक्ष ले ‘भरमै न तब।’ वह भरमाये नहीं और संसार में रहे नहीं।

मंगलमय परमात्मा, शुद्धभाव अविकार।

नमूं पाय पाऊं स्वपद, जाचूं यहै करार॥

‘मंगलमय परमात्मा,’ परमात्मा तो मंगलमय पूर्ण शुद्ध को प्राप्त, वह मंगलमय है। आत्मा शुद्धभाव स्वयं ही मंगलमय की मूर्ति है। ‘शुद्धभाव अविकार’ और शुद्धभाव, यह विकार बिना की भाव दशा है। पुण्य-पाप का भाव तो विकार है। उससे रहित आत्मा के स्वभाव के आश्रय से होता अविकारी शुद्धभाव है। ‘नमूं पाय पाऊं स्वपद,’ उसे नमन करता हूँ। मेरे स्वपद को प्राप्त करूँ ‘जाचूं यहै करार।’ मेरा करार यह है कि मेरे निजपद को प्राप्त करूँ, यह मेरा करार है। करारनामा लिखते हैं न? यह हमारे करार है, कहते हैं। ‘नमूं पाय पाऊं स्वपद, जाचूं यहै करार॥’

श्री कुन्दकुन्दस्वामि विरचित भावप्राभृत की जयपुरनिवासी पण्डित जयचन्द्रजी छाबड़ाकृत देशभाषामय वचनिका समाप्त। लो!

आगे यह आयेगा—बोधपाहुड़ है न? उसकी २८वीं गाथा। वहाँ से अपने बाकी रहा है। २७ गाथा हो गयी है। बोधपाहुड़ की २८वीं गाथा।